बौद्धभारतीगन्थमालाय

छब्बीसत्तिमं पुप्फं

सुत्तपिटके

मज्झिमनिकायपालि

MAJJHIMANIKAYA

(३. उपरिपण्णासकं)

[पञ्चमो भागो]

बौद्धभारती

वाराणसी

१९९३

बौद्धभारतीग्रन्थमाला–२६

Bauddha Bharati Series-26

सुत्तपिटके

मज्झिमनिकायपालि

(३. उपरिपण्णासकं)

[हिन्दी-अनुवादसहिता]

प्रधानसम्पादक

स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

Bauddha Bharati Series-26

The

MAJJHIMANIKAYA

(3. Upari Pannasaka)

With

Hindi Translation

[Fifth Volume]

Editor & Translator

SWĀMI DWĀRIKĀDĀS SHĀSTRI

BAUDDHA BHARATI

VARANASI

B. E. 2537] 1993 [V. E. 2050

बौद्धभारतीग्रन्थमाला–२६

सुत्तपिटके

मज्झिमनिकायपालि

(३. उपरिपण्णासकं)

(हिन्दी-अनुवादसहिता)

[पञ्चमो भागो]

सम्पादको अनुवादको च

स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

बौद्धभारती

२५३७ बुद्धाब्द]   वाराणसी   [१९९३ ख्रिष्टाब्द

प्रकाशक :

© बौद्धभारती,

पो० बॉ० १०४९, वाराणसी

पिन : २२१ ००१

Published by :

© BAUDDHA BHARATI

P. B. 1049, VARANASI

Pin : 221 001

सहसम्पादक :

धर्मकीर्त्तिशास्त्री

चन्द्रकीर्त्तिशास्त्री

प्रथम संस्करण : १९९३

First Edition : 1993

मूल्य : १५०) रु०

(एक सौ पचास रुपया)

Price : Rs. 150/-

(Rs. One hundred Fifty)

मुद्रक :

साधना प्रेस

जगतगंज, वाराणसी–२२१ ००२

Printed by :

Sadhana Press

Jagat ganj, VARANASI–221 002

प्रकाशकीय वक्तव्य

"'अनुजानामि, भिक्खवे, सकाय निरुत्तिया परियापुणितुं'' ति।

—विनयपिटके भगवा बुद्धो

समग्र त्रिपिटक के हिन्दी-अनुवादसहित प्रकाशन के पूर्व संकल्पानुसार आज बौद्धभारती के रजतजयन्ती (२५वें) वर्ष के शुभ अवसर पर मज्झिम-निकाय का यह पञ्चम भाग विद्वानों के सम्मुख प्रस्तुत किया जा रहा है। यों यह ग्रन्थ (हिन्दी-अनुवादसहित) पाँच भागों में सम्पन्न हो पाया है।

इसमें हमने पालि-पाठ के लिये बर्मा में हुए छट्ठ संगायन पर आधृत एवं श्रीलंका, स्याम (थाईलैण्ड), तथा पालि टेक्स्ट सोसाइटी, लन्दन के संस्करणों का सहयोग लेकर १९५६-६१ में 'पालि त्रिपिटक प्रकाशन बोर्ड' नालन्दा से प्रकाशित एवं आदरणीय श्री भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देव-नागरीसंस्करण को आदर्श रूप में रखा है। इसमें हमने, कहीं-कहीं मुद्रणजन्य अशुद्धियों के संशोधन के अतिरिक्त, बहुत कम परिवर्तन किया है।

साथ ही हमने उक्त सभी संस्करणों की पृष्ठ-संख्या रोमन अक्षरों में क्रमशः यथास्थान दे दी है, ताकि अनुसन्धाता, उन उन संस्करणों को भी देखकर, लाभान्वित हो सकें।

अपने इस हिन्दी-अनुवाद में, हमने आचार्य श्रीबुद्धघोष की अट्ठकथा एवं महापण्डित श्रीराहुल सांकृत्यायन कृत हिन्दी-अनुवाद को आदर्श माना है। इनके सहारे स्वतन्त्र अनुवाद कर उसे पालिपाठ के साथ नीचे दिया है। इससे पाठकों को पालि एवं उसकी हिन्दी--दोनों ही अत्यन्त सरलता से हृदयङ्गम हो सकेंगी—ऐसा हमारा विश्वास है।

यों इस भाग के साथ मज्झिमनिकाय के तीनों खण्ड पूर्ण हो चुके हैं।

यहाँ हमें एक निवेदन अवश्य करना है कि विषय-वैशद्य (बात को समझाने) के लिये पालि में विषय का अनुकूल-प्रतिकूल या आरोह-अवरोह—दोनों क्रमों से विस्तृत (अक्षरशः) वर्णन किया जाता है। इस शैली में भाषाच्छटा तो अवश्य आ जाती है, परन्तु इस शब्द-समूह में फँस कर पाठक से मूल विषय दूर-दूर सा होने लगता है। इसके लिये पालि-संग्रहकारों ने ऐसे विशेष स्थानों (जहाँ पाठ पुनः पुनः आवृत्त हो) के लिये '…पे०…'की

परम्परा रखी है। इस परम्परा का इससे पहले के संस्करणों में अन्य विद्वानों द्वारा भी निर्भयता से उपयोग हुआ है। अतः इस परम्परा को हमने भी अपने हिन्दी-अनुवाद में स्वीकार कर लिया है। परन्तु '...पे०...' का अनुवाद हमने '...पूर्ववत्...' करके दिया है, या प्रायः '...' इस चिह्न का प्रयोग किया है, ताकि पाठक उस प्रसङ्ग के प्रधान विषय से दूर न हो जाँय।

एक कार्य हमने इस प्रसङ्ग में और किया है। ग्रन्थ में वर्णित सूत्रों का संक्षेप, हिन्दी भाषा में, ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही दे दिया है। जिससे पाठक को सूत्रों का वर्ण्य विषय एक ही दृष्टि में हृदयङ्गम हो सके।

यों, हमने एक अभिनव पद्धति में बुद्धवचन (त्रिपिटक) का प्रकाशन प्रारम्भ किया है। विद्वानों को यह पद्धति अत्यन्त रुचिकर व अनुकूल प्रतीत हुई है, तभी तो इस अत्यन्त अल्प काल में ही इस ग्रन्थ का प्रथम भाग मुद्रणावशिष्ट हो चुका है। अतः हम उसका निकट भविष्य में ही पुनर्मुद्रण करेंगे।

पाठकों के इस अपूर्व सहयोगप्रदान से उत्साहित होकर अब हम अनुपद में ही समग्र दीघनिकाय का प्रकाशन भी इसी पद्धति से प्रारम्भ करने जा रहे हैं।

इस तरह हम इस ग्रन्थमाला को पालि व हिन्दी—दोनों ही भाषाओं के विद्वानों के लिये उपयोगी बना रहे हैं--ऐसा हमारा विश्वास है।

बुद्धपूर्णिमा, २०५० वि०,
वाराणसी
६-५-९३

अध्यक्ष,
बौद्धभारतीपरिषद्

मज्झिमनिकाय के

उपरिपण्णासक (अन्तिम भाग) की

विषयवस्तु

मज्झिमनिकाय के इस (अन्तिम) भाग में जो कि 'उपरिपण्णासक' कहलाता है, पाँच वर्गों में विभक्त कर, १०-१० सूत्रों के माध्यम से ५२ सूत्रों का व्याख्यान हुआ है। वे पाँचवर्ग ये हैं—१. देवदहवर्ग, २. अनुपदवर्ग, ३. शून्यतावर्ग ४. विभङ्गवर्ग एवं ५. अववादवर्ग।

इन वर्गों का नामकरण उस उस वर्ग के प्रथम सूत्र के नाम के आधार पर किया गया है।

१. देवदहवर्ग

१. देवदहसुत्त : भगवान् ने इस सूत्र का उपदेश देवदहनिगम में किया था। इस में जैनमतानुयायी निर्ग्रन्थों की साधनापद्धति (दुःखनिर्जरावाद=आत्मक्लमथानुयोग) का विविध तर्कों से खण्डन करते हुए भगवान् बुद्ध ने उसकी पूर्णता १. दुःखनिदान की अध्युपेक्षा से, २. दुःखक्रियाओं में एक सीमित समय तक अपने को व्यापृत करने से और ३. दुःखनिरोधगामिमार्गनिरूपित साधना करने से बतलायी है। और अपनी उस साधना की दश तरह से प्रशंसा की है॥

२. पञ्चत्तयसुत्त : भगवान् ने इस सूत्र का उपदेश भिक्षुओं को श्रावस्ती के जेतवनाराम में किया था। इसमें भगवान् ने मरणानन्तर आत्मा की स्थिति के विषय में बहुप्रचलित पाँच मतवादों का खण्डन किया है। और इसी तरह जन्म से पूर्व आत्मा की कल्पना को लेकर १६ मतवादों का खण्डन करते हुए, इन दोनों ही स्थितियों में कल्पित आत्मा का परित्याग करते हुए लाभसंयोजनों से दूर रहकर एकान्त चिन्तन को ही साधक के लिये हितावह बताया॥

३. किन्तिसुत्त : भगवान् ने कुसिनारा के बलिहरण वनप्रदेश में इस सूत्र का भिक्षुओं को उपदेश किया था। इसमें भगवान् ने भिक्षुओं को परस्पर मेल-जोल बढाने में ही उनका हित बताते हुए एकता के महत्त्व का निरूपण कर उस एकता की अधिगति का उपाय भी बताया है॥

४. सामगामसुत्त : शाक्य प्रदेश के सामग्राम में जैन तीर्थङ्कर महावीरस्वामी के देहपात के बाद, जैनों में वृद्धिङ्गत हुए परस्पर कलह को आयुष्मान् आनन्द से सुनकर भगवान् ने कहा-"आनन्द, तथागतानुमोदित बोधिपक्षीय धर्मों के विषय में

मेरे भिक्षुओं में ऐसा विवाद होना असम्भव है; क्यों कि क्रोध, म्रक्ष, ईर्ष्या, शठता, पापेच्छा एवं मिथ्यादृष्टि—ये छह हेतु ही विवादकारक होते हैं। मैंने इन छह विवादकारक हेतुओं के विनाश के लिये सात विवादशामक उपाय भिक्षुओं को पहले से ही बता रखे हैं। इनका सहारा लेने से सङ्घ में किसी भी प्रकार का विवाद असम्भव है।" भगवान् ने यहाँ प्रसङ्गवश छह स्मरणीय मैत्रीयुक्त कार्यक्रम, आदि धर्मों का भी उपदेश किया है॥

५. सुनक्खत्तसुत्त : एक बार वैशाली की महावनस्थ कूटागारशाला में लिच्छवि-पुत्र सुनक्षत्र ने कुछ भिक्षुओं द्वारा जनता में अपनी अर्हत्त्वप्राप्ति का झूठा बखान करने का भगवान् से उपालम्भ दिया। इस प्रसङ्ग में भगवान् ने उन भिक्षुओं को वैसा करने का निषेध किया और नाना युक्तियों के सहारे पाँच कामगुणों का सर्वथा परित्याग करने का उपदेश किया॥

६. आनेञ्जसप्पायसुत्त : इस सूत्र का उपदेश भगवान् ने भिक्षुओं को कम्मासदम्म नामक कुरु-निगम में किया था। इसमें भगवान् ने सांसारिक कामभोगों की तुच्छता, असत्यता, अनित्यता और मायामयता बतायी है। इसके बदले में, भगवान् ने भिक्षुओं को आनेञ्ज्य सप्पाय, आकिञ्चन्यायतन एवं नैवसंज्ञानासंज्ञायतन की प्राप्ति के उपाय बताये। और यह भी बताया कि कौन भिक्षु वस्तुतः परिनिर्वृत होता है, तथा आर्यविमोक्ष क्या है ?॥

७. गणकमोग्गल्लानसुत्त—इसमें भगवान् ने गणकमौद्गल्यायन ब्राह्मण को बताया है कि जैसे किसी भवन के निर्माण में क्रमिक शिक्षा एवं क्रमिक क्रिया होती है, उसी तरह हमारे इस धर्मानुशासन में भी आनुपूर्वी शिक्षा आवश्यक है। जैसे कोई अश्वारोही किसी घोड़े को क्रमशः शिक्षा देता है, उसी तरह शास्ता सभी भिक्षुओं को निर्वाण के साक्षात्कारहेतु पहले क्रमशः शील, इन्द्रियसंयम, भोजन में मात्रा का ज्ञान, जागरण, स्मृतिसम्प्रजन्य एवं पाँचों नीवरणों के परित्याग की शिक्षा देता है तब वह अन्त में उसे प्रथम ध्यान आदि का अभ्यास कराता है। इतने पर भी कुछ भिक्षु निर्वाण तक पहुँच पाते हैं, कुछ नहीं भी पहुँचते। परन्तु, ब्राह्मण, इसमें तथागत का क्या दोष ! वे तो केवल मार्गोपदेष्टा हैं, उस मार्ग पर चलने का अभ्यास कर निर्वाण तक पहुँचना तो भिक्षु का ही कर्तव्य है। भिक्षु अपने किसी प्रमाद से वहाँ तक न पहुँच पाये तो इसमें तथागत क्या कर सकते हैं !॥

८. गोपकमोग्गल्लान० : इस सूत्र में आयुष्मान् आनन्द द्वारा राजगृह के वेणुवनस्थित कलन्दकनिवाप के समीप रहने वाले गोपक मोग्गलान के सम्मुख भगवान् बुद्ध की अपूर्व मार्गोपदेष्टा के रूप में प्रशंसा की गयी है। और बताया गया है कि तथागत के बाद उनके द्वारा उपदिष्ट धर्म ही अब भिक्षुजन का एकमात्र आश्रय-

स्थल है। भिक्षु भगवदुपदिष्ट धर्म को ही उनका उत्तराधिकारी मानते हैं। प्रसङ्गवश आनन्द ने भगवदुपदिष्ट शील आदि दश श्रद्धोत्पादक धर्मों तथा चार ध्यानों का भी वर्णन किया है॥

९. महापुण्णिम० : यह सूत्र श्रावस्तीस्थित पूर्वाराम के मृगारमातृप्रासाद में भगवान् द्वारा भिक्षुओं को उपदिष्ट है। इसमें पाँच उपादानस्कन्ध, सत्कायदृष्टि, रूपादि विषयों में आदीनवदर्शन, अहङ्कार और ममत्व का प्रहाण, आत्मा का कर्म-स्पर्शनिषेध आदि का व्याख्यान है॥

१०. चुल्लपुण्णिम० : इस सूत्र में राजगृह के पूर्वाराम में ही भगवान् द्वारा भिक्षुओं के सम्मुख असत्पुरुष के दुर्गुण एवं सत्पुरुष के गुणों का प्रतिपादन हुआ है॥

२. अनुपदवर्ग

११. अनुपद० : इस सूत्र में श्रावस्ती के जेतवनराम में भगवान् द्वारा भिक्षुओं के सम्मुख आर्य शारिपुत्र के अद्भुत गुणों की चर्चा की गयी है। भगवान् मानते हैं कि शारिपुत्र आर्यविनयानुमोदित सभी साधनाओं को पूर्ण कर चुके हैं। वह आर्यशील एवं आर्यसमाधि में अधिकारप्राप्त, पारङ्गत भिक्षु है॥

१२. छब्बिसोधन० : इस सूत्र के द्वारा जेतवनाराम में विराजे भगवान् ने भिक्षुओं को बताया है कि कैसे किसी भिक्षु के विषय में जाना जाय कि वह अर्हत् (ज्ञानी) हुआ कि नहीं ? भगवान् ने बताया कि (१) जो भिक्षु चार व्यवहारों से, (२) पाँच उपादानस्कन्धों से, (३) छह धातुओं से, (४) या आध्यात्मिक एवं बाह्य आयतनों से मुक्त हो गया हो, (५) और जिसका सभी निमित्तों के प्रति ममत्व का नाश हो चुका हो; उसे ही अर्हत् समझना चाहिये॥

१३. सप्पुरिस० : इस सूत्र में, श्रावस्ती के जेतवनाराम में विराजे भगवान् ने भिक्षुओं को असत्पुरुष एवं सत्पुरुष के लक्षण बताये हैं। उनके मत में असत्पुरुष वह है—(१) जो अपने उच्चकुल में जन्म लेने का अभिमान करता हो, (२) जो अपने जनप्रसिद्ध होने का दम्भ करता हो, (३) जो अपनी अधिक चीवर-पिण्डपातप्राप्ति का, (४) जो अपने बहुश्रुत होने का, (५) अपने विनयधर होने का, (६) धर्मकथिक होने का, (७) धुताङ्गधर होने का, (८) या ध्यानलाभी होने का अभिमान करता है वह भिक्षु होते हुए भी 'असत्पुरुष' है। तथा जो इन उपर्युक्त अभिमानों से रहित हो उसे सत्पुरुष समझना चाहिये। वस्तुतः वही 'क्षीणास्रव' भिक्षु है॥

१४. सेवितब्बासेवितब्ब० : एक समय भगवान् जब जेतवनाराम (श्रावस्ती) में विराजमान थे, तब उन्होंने भिक्षुओं को आचरणीय कायकर्म, वाक्कर्म तथा मनः-

कर्म के विषय में कुछ संक्षेप से उपदेश किया। अतः भिक्षु भगवान् का आशय भलीभाँति नहीं समझ पाये। तब शारिपुत्र द्वारा भगवत्कृत उस संक्षिप्त उपदेश का विस्तृत वर्णन किया गया। अन्त में भगवान् ने भी शारिपुत्र के इस विस्तृत व्याख्यान का अनुमोदन किया॥

१५. बहुधातुक० : श्रावस्ती के जेतवनाराम में विराजते हुए भगवान् ने आनन्दप्रमुख भिक्षुओं को इस सूत्र का उपदेश किया था। इसमें उन्होंने बताया कि (१) बुद्धिमान् भिक्षु को विचारक (वीमंसक) होना चाहिए, (२) अष्टादशधातुकुशल होना चाहिये, (३) आयतनकुशल होना चाहिए, (४) प्रतीत्यसमुत्पादकुशल होना चाहिए, और (५) स्थानास्थानकुशल भी होना चाहिए॥

१६. इसिगिलि० : इस सूत्र में भगवान् ने भिक्षुओं को राजगृह के समीपवर्ती पर्वतों के विषय में उनका पूर्व इतिहास कहा। जैसे—१. वैभारपर्वत, २. पाण्डवपर्वत, ३. वैपुल्यपर्वत, ४. गृध्रकूटपर्वत, एवं ५. ऋषिगिलिपर्वत। प्रसङ्गवश ऋषिगिलि पर्वत का यह नाम क्यों पड़ा ?—यह भी बताया। और उस पर्वत में प्राचीन समय में जितने प्रत्येक बुद्धों ने तपस्या की थी—उनके नाम भी बताये॥

१७. महाचत्तारिस० : इस में भगवान् ने श्रावस्ती के जेतवनाराम में विराजते हुए भिक्षुओं को आर्य सम्यक्सम्बोधि अष्टाङ्गिकमार्ग की देशना की थी। इसी देशना को बीस-बीस के दो (कुशलपक्षीय एवं अकुशलपक्षीय) भागों में बाँटकर अपना आशय विस्तार से समझाया है।

१८. आनापानस्सतिसुत्त : इस सूत्र के माध्यम से राजगृह के पूर्वाराम में भगवान् द्वारा भिक्षुओं को धर्मदेशना की गयी है। इसमें भगवान् ने बताया है कि आनापानस्मृति द्वारा स्मृतिप्रस्थानों में कैसे पूर्णता प्राप्त की जा सकती हैं ! स्मृतिप्रस्थानों की पूर्णता से सातों सम्बोध्यङ्गों में भी पूर्णता प्राप्त की जा सकती है॥

१९. कायगतास्मृतिसुत्त : इस सूत्र के द्वारा भगवान् ने भिक्षुओं को कायगता स्मृति एवं ध्यानभावना का उपदेश किया था। कायगता स्मृति की साधना के उपायों में १. आनापानस्मृति, २. ईर्यापथस्मृति, ३. शरीरगत बत्तीस अशुचियों का प्रत्यवेक्षण, ४. धातुमनस्कार, एव ५. शरीरविषयक अशुभानुस्मृति को महत्त्वपूर्ण बताया। ध्यानभावना (चारों ध्यानों के अभ्यास की पद्धति) बतायी और आश्वासन दिया कि मार द्विविध साधनाओं के अभ्यासी को कुछ भी हानि नहीं पहुँचा सकता। अपितु उस साधक को अभिज्ञा का साक्षात्कार हो जाता है। अन्त में कायगता स्मृति के दश माहात्म्य भी बताये हैं॥

२०. सङ्खारुप्पत्तिसुत्त : भगवान् द्वारा श्रावस्ती के जेतवनाराम में भिक्षुओं को उपदिष्ट इस सूत्र में पुण्यसंस्कारों के विपाकभूत मार्ग का वर्णन किया गया है॥

३. शून्यतावर्ग

२१. चुल्लसुञ्ञत० : यह सूत्र भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द को उद्देश्य करके श्रावस्ती के पूर्वाराम में कहा था। इसमें बताया गया है कि परिशुद्ध शून्यता की साधना से साधक परिनिर्वाण तक पहुँचा सकता है। भगवान् ने इस शून्यता-साधना के आठ उपाय बताये हैं॥

२२. महासुञ्ञत० : इस सूत्र में भगवान् ने कपिलवस्तु के न्यग्रोधाराम में कालक्षेमक शाक्य के घर में ठहरे भिक्षुओं को बताया कि समूह में अधिक समय तक रहना साधक के लिये दोषप्रद एवं एकान्तसेवन हितकर है। वहाँ एकान्त में रह कर वास्तविक ज्ञानप्राप्ति की पद्धति भी बतायी। प्रसङ्गवश भगवान् ने आचार्य एवं सब्रह्मचारियों में अधिक साथ रहने के कारण उत्पद्यमान दोषों का भी वर्णन किया है। और यह भी बताया है कि श्रावक को शास्ता के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये॥

२३. अच्छरियअब्भुतसुत्त : इस सूत्र के माध्यम से श्रावस्ती के जेतवनाराम में रहते आयुष्मान् आनन्द ने भिक्षुओं को भगवान् बुद्ध में विद्यमान आश्चर्यमय एवं अद्भुत धर्मों का नातिविस्तृत वर्णन किया है।

२४. बाकुलसुत्त : इस सूत्र में राजगृह वेणुवनवासी आयुष्मान् बाकुल एवं उनके पुराने गृहस्थधर्म के साथी अचेलकाश्यप (नग्न परिव्राजक) की संवाद है। इसमें प्रश्नोत्तररूप में अचेलकाश्यप द्वारा की गयी कठोर तितिक्षामय अद्भुत धर्मसाधना का वर्णन है॥

२५. दन्तभूमि सुत्त : इस सूत्र में भगवान् के राजगृह स्थित वेणुवनाराम में साधना करते समय, जयसेन राजकुमार एवं अचिरवत श्रामणेर का संवाद वर्णित है। जब जयसेन राजकुमार ने अचिरवत द्वारा व्याख्यात धर्म से अपनी असहमति जतायी तो अचिरवत ने यह बात भगवान् को आकर सुनायी। भगवान् ने राजकुमार की अशिक्षित पशु, एवं पर्वत के नीचे खड़े पुरुष से तुलना करते हुए अपनी राजा के योग्य हाथी को शिक्षित करने वाले महावत से तुलना की और अशिक्षित एवं शिक्षित के देहपात का अन्तर बताया॥

२६. भूमिजसुत्त : इस सूत्र में भी राजगृह में ही हुए जयसेन राजकुमार एवं भूमिज भिक्षु का धार्मिक सवाद वर्णित है। बाद में भूमिज भिक्षु के धर्मोपदेश का तथागत ने भी तैलार्थी, क्षीरार्थी, नवनीतार्थी एवं अग्न्यर्थी की अनुकूल-प्रतिकूल उपमाओं से अनुमोदन किया॥

२७. अनुरुद्धसुत्त : इस सूत्र में पञ्चकाङ्ग स्थपति एवं आयुष्मान् अनुरुद्ध का अप्रमाण एवं महद्गत चेतोविमुक्ति, चार भवोपपत्तियाँ, परीत्ताभ तथा अप्रमाणाभ देवता तथा संक्लिष्टाभ एवं परिशुद्धाभ देवताओं के विषय में संवाद है ॥

२८. उपक्किलेस० : कौसाम्बी के घोषिताराम में भिक्षुओं को परस्पर कलह एवं विवाद करते देखकर दुःखी हुए भगवान् घोषिताराम से लवणकार ग्राम के आयुष्मान् भृगु को धर्मदेशना कर पास के ही पुराने वंशदाव में पहुँचे। वहाँ उन्होंने साधना कर रहे आयुष्मान् अनुरुद्ध, किमिल, एवं नन्दिय भिक्षुओं को परस्पर प्रेम भाव से रहते हुए अपने चित्तोपक्लेशों के प्रहाण का सदुपदेश किया ॥

२९. बालपण्डित० : इस सूत्र में भगवान् ने जेतवनाराम में भिक्षुओं को मूर्खों के तीन लक्षण, मूर्खों के अधःपतन, उनके दुष्कर्मों से उनका नरकगमन, एवं मानवदेह-प्राप्ति की दुर्लभता बतलाते हुए सप्तरत्नसमन्वित चक्रवर्ती राजा का दृष्टान्त कर पण्डितजन के भी तीन लक्षण बताये हैं ॥

३०. देवदूतसुत्त : भगवान् ने इस सूत्र में श्रावस्ती के जेतवनाराम में भिक्षुओं को पाँच देवदूतों की उपमा के सहारे, जीवन की पाँच अवस्थाओं—जन्म, जरा, व्याधि, कर्म एवं मृत्यु के विषय में बताते हुए पञ्चविधबन्धन नामक दण्ड का विस्तृत वर्णन किया, ताकि अपराधी पापकर्म से डरते हुए उनसे दूर रहें ॥

४. विभङ्गवर्ग

३१. भद्देकरत्त० : भगवान् ने श्रावस्ती के जेतवनाराम में इस सूत्र का उपदेश किया था। भगवान् ने भिक्षुओं को बताया-कि-साधक अतीत का व्यर्थ चिन्तन न करे, न भविष्य की चिन्ता में ही उद्वेलित हो; क्यों कि जिसे तुम 'अतीत' कहते हो वह तो नष्ट हो गया, और भविष्य अभी आया ही नहीं। वर्तमान को ही यथाप्रसङ्ग देखना चाहिये। जो कुछ असंहार्य (न टलने वाला) है, बुद्धिमान् पुरुष को उसे ही आगे बढाना चाहिये। क्या पता, कब मृत्यु सम्मुख आ जाय! अतः अभी से शुभ कर्मों में लग जाना चाहिये ॥

३२. आनन्दभद्देकरत्त० : इस सूत्र में, श्रावस्ती में भगवान् द्वारा उपदिष्ट 'भद्रैकरक्त' का आनन्द ने विस्तृत व्याख्यान किया था। भगवान् ने आनन्द के कथन का अनुमोदन किया ॥

३३. महाकच्चानभद्देकरत्त० : इस सूत्र में उसी भगवदुपदिष्ट भद्रैकरक्त का आयुष्मान् महाकात्यायन ने राजगृह के तपोदाराम में आयुष्मान् समिद्धि एवं भिक्षुओं को विस्तृत उपदेश किया था। भगवान् ने भी महाकात्यायन का अनुमोदन किया ॥

३४. लोमशकङ्गीयभद्देक० : इस सूत्र में श्रावस्ती के जेतवनाराम में रहते हुए भगवान् ने लोमशकाङ्गीय भिक्षु को भद्रैकरत्त का उपदेश किया है ॥

३५. चुल्लकम्मविभङ्ग० : श्रावस्ती के जेतवनाराम में भगवान् ने इस सूत्र के माध्यम से तोदेयपुत्र शुभ माणवक को मनुष्यों की पारस्परिक हीनता व उच्चता के हेतु बताये। उनका कहना है कि इस हीनता व उच्चता का कारण मनुष्य के स्वकृत कर्म ही होते हैं। भगवान् के उपदेश से सन्तुष्ट हो शुभ माणवक उनका उपासक बन गया ॥

३६. महाकम्मविभङ्ग० : इसमें भगवान् ने, राजगृह से वेणुवनस्थित कलन्दकनिवाप में आयुष्मान् आनन्द तथा समिद्धि को, महाकर्मविभङ्ग का उपदेश करते हुए, पुद्‌गलों के चार भेद बताये--(१) कोई प्राणातिपातादिदोषयुक्त होकर देहपात के बाद नरकगामी होता है। (२) कोई प्राणातिपातादिदोषयुक्त होकर भी नरकगामी नहीं होता। (३) कोई प्राणातिपातादिदोषरहित होकर इस देहपात के बाद स्वर्गगामी होता है। और (४) कोई साधक प्राणातिपातादिदोषमुक्त होकर भी स्वर्ग नहीं पहुँच पाता। इस का कारण बताते हुए भगवान् कहते हैं—इन में से पहला पुद्‌गल पूर्व में ही किये हुए पापकर्म के कारण या मिथ्यादृष्टि के कारण नरकगामी होता है। दूसरा पुद्‌गल पहले अकुशल कर्म करता हुआ भी इस देहपात के समय सम्यग्दृष्टिसम्पन्न होने के कारण नरकगामी नहीं होता। तीसरा पुद्‌गल पहले से किये हुए कुशल कर्मों के कारण सम्यग्दृष्टि सम्पन्न होने से स्वर्गगामी होता है। और चौथा पुरुष पूर्वकृत कुशल कर्मों के रहते हुए भी देहपात के समय मिथ्यादृष्टि उत्पन्न होने के कारण स्वर्ग नहीं जा पाता ॥

३७. सळायतनविभङ्ग० : इस सूत्र में भगवान् ने श्रावस्ती के जेतवनाराम-स्थित भिक्षुओं को उपदेश करते हुए बताया कि—साधक को (१) छह आध्यात्मिक एवं (२) छह बाह्य आयतन, (३) छह विज्ञानकाय, (४) छह स्पर्शकाय, (५) अट्ठारह मनउपविचार (सौमनस्य लाने वाले अनुभव पर मन की क्रिया), (६) छत्तीस सत्तपद, (७) उन सत्तपदों में से किसको त्याग कर किसे ग्रहण करना, एवं (८) तीन स्मृतिप्रस्थान—इन सबको जानना चाहिये ॥

३८. उद्देसविभङ्ग० : इस सूत्र में भगवान् ने जेतनारामस्थित भिक्षुओं को यह देशना की है—साधक को वैसे-वैसे उपपरीक्षण करना चाहिये कि जैसे-जैसे उपपरीक्षण करने से उसका विज्ञान (चित्त) बाहर विक्षिप्त विसृष्ट न हो और भीतर भी असंस्थित होने के कारण परित्रस्त न हो। ऐसा करने से उस साधक के लिये भावी जन्म-जरा-मरणरूपी दुःखोत्पत्ति का कोई हेतु नहीं रह जाता ॥

३९. अरणविभङ्ग० : इसमें भी भगवान् ने जेतवनाराम स्थित भिक्षुओं को ही उपदेश करते हुए कहा है—"साधक को हीन, निकृष्ट, ग्राम्य, पृथग्जनों द्वारा ही करणीय, अनार्य, अनर्थयुक्त कामसुखों में नहीं लगना चाहिये और न दुःखद अनार्य, अनर्थयुक्त, आत्मपीड़ादायक क्लेशकर्मों के आचरण में लगना चाहिये; अपितु इन दोनों ही अतियों को छोड़कर मध्यम मार्ग का अनुसरण करना चाहिये, वही सम्यग्मार्ग ज्ञान एवं निर्वाण की तरफ ले जाने वाला है" ॥

४०. **धातुविभङ्ग०** : इस सूत्र में राजगृह के भगव कुम्भकार के घर में साधनारत आयुष्मान् पुक्कुसाति को भगवान् ने धातुविभङ्ग का उपदेश करते हुए बताया—भिक्षु यह पुद्गल छह धातुओं वाला, छह स्पर्शायतनों वाला, अट्ठारह मनउपविचारोंवाला, चार अधिष्ठानों वाला है जहाँ स्थिर रहने वाले साधक को सांसारिक मान या उत्सव प्रवृत्त नहीं होते। जिससे वह 'शान्त' एवं 'मुनि' पद तक पहुँच जाता है ॥

४१. **सच्चविभङ्ग०** : इस सूत्र में भगवान् भिक्षुओं के सम्मुख सारिपुत्र एवं मौद्गल्यायन द्वारा वाराणसी के ऋषिपतन में आर्यसत्यों के विस्तृत व्याख्यान की भूरि-भूरि प्रशंसा की है ॥

४२. **दक्खिणाविभङ्ग०** : इस सूत्र में भगवान् ने महाप्रजापति गौतमी द्वारा भेंट किये दुशाले को सङ्घ के प्रति समर्पित करने की अनुज्ञा की और बताया कि इस तरह कोई भी भेंट यदि व्यक्ति को न देकर सङ्घ को दी जाय तो वह अधिक महत्त्व सम्मान तथा पुण्य दायक होती है।

५. ओवादवर्ग

४३. **अनाथपिण्डिकोवाद०** : यह सूत्र भगवान् द्वारा श्रावस्ती के जेतवनाराम में साधना (विहार) करते समय सारिपुत्र द्वारा अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी को उपदिष्ट है। इसमें सारिपुत्र ने श्रेष्ठी को देशना की है कि वह चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, मन और इनके विषय एवं विज्ञानों का, इनके द्वारा होनेवाली वेदना का, धातुओं आदि का उपादान न करे, न इस लोक या परलोक के दृष्ट, श्रुत, स्मृत आदि विषयों में आसक्त हो ॥

४४. **छन्नोवाद०** : यह सूत्र भगवान् द्वारा राजगृह में साधनाविहार के समय आयुष्मान् सारिपुत्र द्वारा आयुष्मान् छन्न को उपदिष्ट है। इसमें अनासक्त पुरुष की अचञ्चल चित्तवृत्ति की प्रशंसा की गयी है ॥

४५. **पुण्णोवाद०** : इस सूत्र में जेतवनाराम में भगवान् ने आयुष्मान् पुण्ण को सूनापरन्तक जनपदवासियों द्वारा दिये जाने वाले कष्ट को तितिक्षापूर्वक सहन करने का उपदेश किया है ॥

४६. नन्दकोवाद० : इस सूत्र में, भगवान् द्वारा जेतवनाराम में साधनाविहार करते समय आयुष्मान् नन्दक ने भगवान् की आज्ञा से भिक्षुणियों को प्रश्नोत्तरपद्धति से इन्द्रियों, उन के विषयों एवं विज्ञानों की अनित्यता आदि का उपदेश किया है ॥

४७. चूळराहुलोवाद० : इस सूत्र द्वारा श्रावस्ती में भगवान् ने आयुष्मान् राहुल को स्वचित्तविकारों के क्षयहेतु इन्द्रियादि की अनित्यता-साधना का उपदेश किया है।

४८. छछक्क० : इस सूत्र में श्रावस्ती के जेतवनाराम में भगवान् ने भिक्षुओं को उपदेश करते समय बताया कि उन्हें छह आध्यात्मिक, आयतन छह बाह्य, छह विज्ञानकाय, छहस्पर्शकाय, छह वेदनाकाय और छह तृष्णाकाय— इनका यथातथ रूप से परिशीलन करना चाहिये ॥

४९. महासळायतनिक० : इस सूत्र में जेतवनाराममें विहार करते समय भगवान् ने भिक्षुओं को उपदेश किया था कि विषयानुरागी पुरुष दुःख से सम्पृक्त होता है और विषयों में अनासक्त पुरुष ही सुखानुभव करता हुआ धर्मसाधना करते हुए शमथ एवं विपश्यना द्वारा विद्या और विमुक्ति का साक्षात्कार कर पाता है ॥

५०. नगरविन्देय्य० : इस सूत्र में भगवान् ने नगरविन्दवासी गृहपतियों को बताया है कि कैसे दुर्गुणों से युक्त श्रमण-ब्राह्मणों का सत्कार नहीं करना चाहिये और और कैसे गुणों से युक्त श्रमण-ब्राह्मणों का सत्कार करना चाहिये ॥

५१. पिण्डपातपारिसुद्धि० : इस सूत्र में राजगृह के वेणुवन में विहार करते समय भगवान् ने सारिपुत्र को बताया कि शून्यता-साधना द्वारा उच्चसाधनाभ्यास ही साधकों का सच्चा साधनामार्ग है और साधक को चाहिये कि वह भिक्षा के लिये आते-जाते समय भी अपनी शारीरिक क्रियाओं एवं चित्तवृत्तियों का समीक्षण करता रहे ॥

५२. इन्द्रियभावनासुत्त : भगवान् ने इस सूत्र का उपदेश गजङ्गला के सुवेणुवन में पाराशिविय के अन्तेवासी उत्तर माणव को किया था। उसमें भगवान् ने पराशिविय के मत का खण्डन करते हुए अद्वितीय इन्द्रियभावना का उपाय बताया है ॥

⊙

मज्झिमनिकाये

उपरिपण्णासकस्स

विसयक्कमो

पिट्ठङ्का

३. सुञ्ञतवग्गो १२८०-१४०६

★ नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स ★

मज्झिमनिकायपालि

(उपरिपण्णासकं)

१. देवदहसुत्तं

१. निगण्ठानं दुक्खनिज्जरावादो

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा [N. III 3, B. 1, R. II 224] सक्केसु विहरति देवदहं नाम सक्यानं निगमो। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—"सन्ति, भिक्खवे, एके समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—'यं किञ्चायं पुरिसपुग्गलो पटिसंवेदेति सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा, सब्बं तं पुब्बेकतहेतु। इति पुराणानं कम्मानं तपसा व्यन्तीभावा, नवानं कम्मानं अकरणा, आयतिं अनवस्सवो; आयतिं अन-

---

★ उस भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध को प्रणाम है ★

(उपरिपञ्चाशतक[1])

१. देवदहसूत्र

निग्रन्थों (जैनों) का दुःखनिर्जरावाद

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) शाक्य प्रदेश के देवदह[2] (देव=राजा, दह=पुष्करिणी, उसके कारण इसके आस-पास का प्रदेश इसी नाम से प्रख्यात हो गया) नामक कस्बे में साधनाहेतु विचरण कर रहे थे। वहाँ भगवान् ने (कभी) भिक्षुओं को—"भिक्षुओ !" कह कर अपने पास बुलाया। भिक्षुओं ने भी "हाँ, भन्ते" कह कर उत्तर दिया। तब भगवान् ने यों देशना प्रारम्भ की—

"भिक्षुओ ! कोई-कोई श्रमण-ब्राह्मण इस वाद (सिद्धान्त), इस दृष्टि (विचारधारा) वाले होते हैं—'यह पुरुषपुद्गल जो कुछ भी सुख, दुःख या अदुःख-असुख अनुभव करता है, वह सब पूर्व जन्म में किये कर्मों के कारण (ही होता है)। इस प्रकार पुराने कर्मों (के फल) का तपस्या द्वारा अन्त (नाश) करके, नये कर्मों को न करते हुए, भविष्य में इन कर्मों का फलविपाक नहीं होता। भविष्य में यह

---

१. इस मज्झिमनिकाय का—मूल (आदि), मज्झिम (मध्यम) और उपरि (अन्त) पण्णासक नाम से तीन भागों में पचास-पचास-बावन सूत्रों का विभाजन कर उपदेश किया गया है।

२. यह कस्बा लुम्बिनीवन के पास है—ऐसा अट्ठकथाकारों का मानना है।

वस्सवा कम्मक्खयो; कम्मक्खया दुक्खक्खयो; दुक्खक्खया वेदनाक्खयो; वेदनाक्खया सब्बं दुक्खं निज्जिण्णं भविस्सती' ति। एवंवादिनो, भिक्खवे, निगण्ठा। एवंवादाहं, भिक्खवे, निगण्ठे उपसङ्कमित्वा एवं वदामि—'सच्चं किरं तुम्हे, आवुसो निगण्ठा, एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—यं किञ्चायं पुरिस-पुग्गलो पटिसंवेदेति सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा, सब्बं तं पुब्बेकतहेतु ···पे०··· वेदनाक्खया सब्बं दुक्खं निज्जिण्णं भविस्सती' ति? ते च मे, [B. 2] भिक्खवे, निगण्ठा एवं पुट्ठा 'आमा' ति पटिजानन्ति। त्याहं एवं वदामि—'किं पन तुम्हे, आवुसो निगण्ठा, जानाथ—अहुवम्हे व मयं पुब्बे, न नाहुवम्हा' ति? 'नो हिदं, आवुसो'।

[N. 4] 'किं पन तुम्हे, आवुसो निगण्ठा, जानाथ—अकरम्हे व मयं पुब्बे पापकम्मं, न नाकरम्हा' ति? 'नो हिदं ,आवुसो'।

'किं पन तुम्हे, आवुसो निगण्ठा, जानाथ—एवरूपं वा एवरूपं वा पाप-कम्मं अकरम्हा' ति? 'नो हिदं, आवुसो'।

'किं पन तुम्हे, आवुसो निगण्ठा, जानाथ—एत्तकं वा दुक्खं निज्जिण्णं, एत्तकं वा दुक्खं निज्जीरेतब्बं, एत्तकम्हि वा दुक्खे निज्जिण्णे सब्बं दुक्खं [R. 215] निज्जिण्णं भविस्सती' ति? 'नो हिदं, आवुसो'।

कर्मफलविपाक न होने से कर्मक्षय हो जाता है, कर्मक्षय से दुःखक्षय हो जाता है, दुःखक्षय से वेदनाक्षय हो जाता है, वेदनाक्षय से सभी प्रकार के दुःख निर्जीर्ण (=न उत्पन्न होने वाले) हो जाते हैं।' भिक्षुओ! ऐसा निर्ग्रन्थ (जैनमतानुयायी) कहते हैं। भिक्षुओं! उन ऐसा कहने वाले निर्ग्रन्थों के पास जाकर मैं पूछता हूँ—'आयुष्मन् निर्ग्रन्थो! क्या तुम सचमुच ऐसा कहने वाले ऐसा मानने वाले हो—यह पुरुषपुद्गल जो कुछ भी···पूर्ववत्···निर्जीर्ण हो जाते हैं?' भिक्षुओ! मेरे द्वारा ऐसा पूछे जाने पर वे निर्ग्रन्थ 'हाँ' कहकर अपने कथन को स्वीकार करते हैं। तब मैं उनको फिर यह पूछना चाहता हूँ—'आयुष्मन् निर्ग्रन्थो! क्या तुम जानते हो कि हम पहले हुए ही थे, या नहीं भी हुए थे?'

(उनका उत्तर होता है—) 'नहीं आयुष्मन्'।

'आयुष्मन् निर्ग्रन्थो! क्या तुम यह भी जानते हो कि हमने ये पापकर्म किये ही थे, या नहीं भी किये?" 'नहीं, आयुष्मन्'!

'आयुष्मन् निर्ग्रन्थो! क्या तुम यह जानते हो कि हमने ये ये पापकर्म किये हैं?

'नहीं, आयुष्मन्!'

'आयुष्मन् निर्ग्रन्थो! यह जानते हो कि (तपस्या करते-करते) हमारा इतना दुःख निर्जीर्ण हो चुका है, हमें इतना दुःख और निर्जीर्ण करना है, इतना दुःख निर्जीर्ण होने पर हमारा समग्र दुःख निर्जीर्ण हो सकेगा।" 'नहीं, आयुष्मन्!'

'किं पन तुम्हे, आवुसो निगण्ठा, जानाथ—दिट्ठेव धम्मे अकुसलानं धम्मानं पहानं, कुसलानं धम्मानं उपसम्पदं' ति ? 'नो हिदं, आवुसो'।

२. 'इति किर तुम्हे, आवुसो निगण्ठा, न जानाथ—अहुवम्हे व मयं पुब्बे न नाहुवम्हा ति, न जानाथ—अकरम्हे व मयं पुब्बे पापकम्मं न नाकरम्हा ति, न जानाथ--एवरूपं वा एवरूपं वा पापकम्मं अकरम्हा ति, न जानाथ--एत्तकं वा दुक्खं निज्जिण्णं, एत्तकं वा दुक्खं निज्जीरेतब्बं, एत्तकम्हि वा दुक्खे निज्जिण्णे सब्बं दुक्खं निज्जिण्णं भविस्सती ति, न जानाथ—दिट्ठेव धम्मे अकुसलानं धम्मानं पहानं, कुसलानं धम्मानं उपसम्पदं। एवं सन्ते आयस्मन्तानं निगण्ठानं न कल्लमस्स वेय्याकरणाय—यं किञ्चायं पुरिसपुग्गलो पटिसंवेदेति सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा, सब्बं तं पुब्बेकतहेतु। इति पुराणानं कम्मानं तपसा ब्यन्तीभावा, नवानं कम्मानं अकरणा, आयतिं अनवस्सवो; आयतिं अनवस्सवा कम्मक्खयो; कम्मक्खया दुक्खक्खयो; दुक्खक्खया वेदनाक्खयो; वेदनाक्खया सब्बं दुक्खं निज्जिण्णं भविस्सती' ति।

'सचे पन तुम्हे, आवुसो निगण्ठा, जानेय्याथ--अहुवम्हे व मयं पुब्बे न नाहुवम्हा ति, जानेय्याथ--अकरम्हे व मयं पुब्बे पापकम्मं न नाकरम्हा ति, जानेय्याथ--एवरूपं वा एवरूपं वा पापकम्मं अकरम्हा ति, [N. 5] जानेय्याथ--एत्तकं वा दुक्खं निज्जिण्णं, एत्तकं वा दुक्खं निज्जीरेतब्बं, एत्तकम्हि वा दुक्खे निज्जिण्णे सब्बं दुक्खं निज्जिण्णं भविस्सती ति, जानेय्याथ—दिट्ठेव धम्मे अकुसलानं धम्मानं पहानं, कुसलानं धम्मानं

'आयुष्मन् निर्ग्रन्थो ! क्या तुम्हें ज्ञात है कि इसी जन्म में अकुशल धर्मों का प्रहाण एवं कुशल धर्मों का उत्पाद होना है ?' 'नहीं, आयुष्मन् !'

२. 'आयुष्मन् निर्ग्रन्थो ! तुम यह भी नहीं जानते कि हम पहले हुए थे या नहीं; यह भी नहीं जानते कि ऐसा ऐसा पापकर्म हम पहले कर चुके हैं; यह भी नहीं जानते कि (तपस्या करते-करते) हमारा इतना दुःख क्षीण हो चुका है, इतना दुःख क्षीण होना बाकी है, इसके क्षीण होते ही हमारा समग्र दुःख क्षीण हो जायगा'; और तुम यह भी नहीं जानते कि इसी जन्म में दुःख (अकुशल) का प्रहाण एवं कुशल (सुख) का उत्पाद हो पाता है। ऐसा होने पर, आप लोगों का यह कहना (व्याकरण), यह मानना उचित प्रतीत नहीं होता कि 'यह पुरुष-पुद्गल जो कुछ भी···दुःख निर्जीर्ण हो जाते हैं'।

'आयुष्मन् निर्ग्रन्थो ! यदि तुम यह जानते कि हम पहले हुए थे या नहीं हुए थे···पूर्ववत्···दुःख निर्जीर्ण हो जाते हैं'।

[B. 3] उपसम्पदं; एवं सन्ते आयस्मन्तानं निगण्ठानं कल्लमस्स वेय्याकरणाय––यं किञ्चायं पुरिसपुग्गलो पटिसंवेदेति सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा सब्बं तं पुब्बेकतहेतु···पे०···वेदनाक्खया सब्बं दुक्खं [R. 216] निज्जिण्णं भविस्सती' ति ।

३. 'सेय्यथापि, आवुसो निगण्ठा, पुरिसो सल्लेन विद्धो अस्स सविसेन गाळ्हूपलेपनेन; सो सल्लस्स पि वेधनहेतु दुक्खा तिब्बा कटुका वेदना वेदियेय्य । तस्स मित्तामच्चा ञातिसालोहिता भिसक्कं सल्लकत्तं उपट्ठापेय्युं। तस्स सो भिसक्को सल्लकत्तो सत्थेन वणमुखं परिकन्तेय्य; सो सत्थेन पि वणमुखस्स परिकन्तनहेतु दुक्खा तिब्बा कटुका वेदना वेदियेय्य । तस्स सो भिसक्को सल्लकत्तो एसनिया सल्लं एसेय्य; सो एसनिया पि सल्लस्स एसनाहेतु दुक्खा तिब्बा कटुका वेदना वेदियेय्य । तस्स सो भिसक्को सल्लकत्तो सल्लं अब्बुहेय्य; सो सल्लस्स पि अब्बुहनहेतु दुक्खा तिब्बा कटुका वेदना वेदियेय्य । तस्स सो भिसक्को सल्लकत्तो अगदङ्गारं वणमुखे आदहेय्य; सो अगदङ्गारस्स पि वणमुखे ओदहनहेतु दुक्खा तिब्बा कटुका वेदना वेदियेय्य । सो अपरेन समयेन रूळ्हेन वणेन सञ्छविना अरोगो अस्स सुखी सेरी सयंवसी येनकामङ्गमो । तस्स एवमस्स––अहं खो पुब्बे सल्लेन विद्धो अहोसिं सविसेन गाळ्हूपलेपनेन । सोहं सल्लस्स पि वेधनहेतु दुक्खा तिब्बा कटुका वेदना वेदयिं । तस्स मे मित्तामच्चा ञातिसालोहिता भिसक्कं सल्लकत्तं उपट्ठपेसुं । तस्स मे सो भिसक्को सल्लकत्तो सत्थेन वणमुखं परिकन्ति; सोहं सत्थेन पि वणमुखस्स परिकन्तनहेतु दुक्खा तिब्बा कटुका

---

३. 'आयुष्मन् निर्ग्रन्थो ! जैसे कोई पुरुष विष के गाढे लेप से युक्त शल्य (बाण) से बींध दिया गया हो, वह इस शल्य से बींधे जाने के कारण दुःखद, कटु, एवं तीव्र वेदना अनुभव करे । तब उसे उसके सहायक, मित्र, नाते-रिश्तेदार किसी शल्यचिकित्सक के पास ले जाँय । तब वह शल्य का निःसारक चिकित्सक किसी औजार से उस के व्रण का मुँह खोल दे । तब वह (रोगी) औजार से व्रण का मुँह खोलने के समय दुःखद कटु एवं तीव्र वेदना अनुभव करे तो वह शल्यचिकित्सक शलाका द्वारा उस व्रण (घाव) की गहराई तक की खोज करे । ऐसी खोज करते समय भी वह रोगी दुःखद वेदना का अनुभव करे । फिर वह शल्यचिकित्सक इस विंधे हुए बाण को व्रण से बाहर निकाल दे । वह रोगी इस बाण को व्रण से बाहर निकलते समय भी दुःखद वेदना अनुभव करे । तब वह शल्यचिकित्सक उस व्रण पर विषनाशक व व्रणपूरक औषध का लेपन कर दे । वह रोगी उस औषध का लेपन होते समय भी दुःखद वेदना का अनुभव करे । परन्तु ज्यों-ज्यों उस औषध

वेदना वेदियिं। तस्स मे सो भिसक्को सल्लकत्तो एसनिया सल्लं एसि; सो अहं एसनिया पि सल्लस्स एसनाहेतु दुक्खा तिब्बा कटुका वेदना वेदियिं। तस्स मे सो भिसक्को सल्लकत्तो सल्लं अब्बुहि; सोहं [N. 6, B. 4] सल्लस्स पि अब्बुहनहेतु दुक्खा तिब्बा कटुका वेदना वेदियिं। तस्स मे सो भिसक्को सल्लकत्तो अगदङ्गारं वणमुखे ओदहि; सोहं अगदङ्गारस्स पि वणमुखे ओदहनहेतु दुक्खा तिब्बा कटुका वेदना वेदियिं। सोम्हि एतरहि रूळ्हेन वणेन सञ्छविना अरोगो सुखी सेरी सयंवसी येन- [R. 217] कामङ्गमो ति।

'एवमेव खो, आवुसो निगण्ठा, सचे तुम्हे जानेय्याथ--अहुवम्हे व मयं पुब्बे न नाहुवम्हा ति, जानेय्याथ--अकरम्हे व मयं पुब्बे पापकम्मं न नाकरम्हा ति, जानेय्याथ--एवरूपं वा एवरूपं वा पापकम्मं अकरम्हा ति, जानेय्याथ—एत्तकं वा दुक्खं निज्जिण्णं, एत्तकं वा दुक्खं निज्जीरेतब्बं, एत्तकम्हि वा दुक्खे निज्जिण्णे सब्बं दुक्खं निज्जिण्णं भविस्सती ति, जानेय्याथ--दिट्ठेव धम्मे अकुसलानं धम्मानं पहानं, कुसलानं धम्मानं उपसम्पदं; एवं सन्ते आयस्मन्तानं निगण्ठानं कल्लमस्स वेय्याकरणाय--यं किञ्चायं पुरिसपुग्गलो पटिसंवेदेति सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा सब्बं तं पुब्बेकतहेतु...पे०...वेदनाक्खया सब्बं दुक्खं निज्जिण्णं भविस्सती ति। यस्मा च खो तुम्हे, आवुसो निगण्ठा, न जानाथ--अहुवम्हे व मयं पुब्बे न नाहुवम्हा ति, न जानाथ--अकरम्हे व मयं पुब्बे पापकम्मं न नाकरम्हा ति, न जानाथ--एवरूपं वा एवरूपं वा पापकम्मं अकरम्हा ति, न जानाथ--एत्तकं वा दुक्खं निज्जिण्णं, एत्तकं वा दुक्खं निज्जीरेतब्बं, एत्तकम्हि वा दुक्खे निज्जिण्णे सब्बं दुक्खं निज्जिण्णं भविस्सती ति, न जानाथ--दिट्ठेव धम्मे अकुसलानं धम्मानं पहानं, कुसलानं धम्मानं उप-

---

के प्रभाव से उसका वह व्रण रोपित होता (भरता) जाय, उसकी वे वेदनाएँ भी कम होती जाँय, और एक समय आने पर वह अपने आप को नीरोग सुखी, हलका, स्वयं कार्य करने में समर्थ (स्वयंवशी), यथेच्छ इधर-उधर चलने फिरने में योग्य हो जाता है। तब उसको यह विचार हो—मैं पहले...शल्यविद्ध... औषध के लेप करते समय भी दुःखद वेदना अनुभव करता था, पर अब मैं उस औषध के प्रभाव से नीरोग, सुखी...चलने-फिरने के योग्य हो चुका हूँ।

'इसी तरह, आयुष्मन् निगण्ठो ! यदि तुम पहले से यह जानते कि हम पहले हुए थे, या नहीं हुए थे,...तो तुम्हारा यह कहना, यह मानना उचित लगता कि यह पुरुषपुद्गल...दुःख निर्जीर्ण हो जाते हैं। जब तुम यह जानते ही नहीं कि हम

सम्पदं; तस्मा आयस्मन्तानं निगण्ठानं न कल्लमस्स वेय्याकरणाय--यं किञ्चायं पुरिसपुग्गलो पटिसंवेदेति सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा सब्बं तं पुब्बेकतहेतु...पे०...वेदनाक्खया सब्बं दुक्खं निज्जिण्णं भविस्सती' ति ।

[B. 5, R. 218] ४. "एवं वुत्ते, भिक्खवे, ते निगण्ठा मं एतदवोचुं-'निगण्ठो, आवुसो, नाटपुत्तो सब्बञ्ञू सब्बदस्सावी, अपरिसेसं ञाणदस्सनं पटिजानाति—चरतो च मे तिट्ठतो च सुत्तस्स च जागरस्स च सततं समितं ञाणदस्सनं पच्चुपट्ठितं ति । सो एवमाह--अत्थि खो वो, आवुसो निगण्ठा, पुब्बे व पापकम्मं कतं, तं इमाय कटुकाय दुक्करकारिकाय निज्जीरेथ, यं पनेत्थ एतरहि कायेन संवुता वाचाय संवुता मनसा संवुता तं [N. 7] आयतिं पापकम्मस्स अकरणं । इति पुराणानं कम्मानं तपसा व्यन्तीभावा, नवानं कम्मानं अकरणा, आयतिं अनवस्सवो; आयतिं अनवस्सवा कम्मक्खयो; कम्मक्खया दुक्खक्खयो; दुक्खक्खया वेदनाक्खयो; वेदनाक्खया सब्बं दुक्खं निज्जिण्णं भविस्सती ति । तं च पनम्हाकं रुच्चति चेव खमति च, तेन चम्हा अत्तमना' ति ।

२. अफलो उपक्कमो अफलं पधानं

५. "एवं वुत्ते अहं, भिक्खवे, ते निगण्ठे एतदवोचं—'पञ्च खो इमे,

---

पहले हुए थे या नहीं...तो तुम्हारा यह कहना यह मानना कैसे उचित हो सकता है कि 'यह पुरुष-पुगदल...दुःख निर्जीण हो जाते हैं !

४. "भिक्षुओ ! मेरे द्वारा एसा कहे जाने पर उन निर्ग्रन्थों ने मुझ से कहा—आयुष्मन् ! निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अपने अखिल ज्ञान-दर्शन की प्रतिज्ञा करते हैं कि चलते, खड़े रहते, सोते-जागते सदा निरन्तर मुझे ज्ञान-दर्शन उपस्थित रहता है । वे ऐसा कहते हैं—'आयुष्मन् निर्ग्रन्थो ! जो तुम्हारा पूर्वकृत कर्म है, उसे इस क्लेशसाध्य दुष्कर कारिका (तपश्चर्या) से नष्ट कर दो । और जो इस समय तुम, काय वाक् मन से संवृत हो यह तुम्हें भविष्य में पाप न करने में सहायक होगा । यों पुराने पापकर्मों के तपस्या द्वारा क्षय, नये कर्मों के न होने से भविष्य में तुम लोग क्षीणकर्मा हो जाओगे । कर्मों के क्षीण होने से तुम्हारा समग्र दुःख विनष्ट हो जायगा । दुःखनाश से तुम्हारी सभी वेदनाओं (कुशल-अकुशल अनुभूतियों) का नाश हो जायगा । यों, वेदनाओं के नाश से तुम्हारा सभी प्रकार का दुःख निर्जीण हो जायगा । उनका यह कहना हमको रुचता है, अच्छा लगता है, इससे हम सन्तुष्ट हैं' ।

क्रम (साधना) और प्रधान (प्रयत्न) की निष्फलता

५. "उनके ऐसा कहने पर, भिक्षुओ, मैंने उन निग्रन्थों से यों कहा—'आयुष्मन्

आवुसो निगण्ठा, धम्मा दिट्ठेव धम्मे द्विधाविपाका। कतमे पञ्च? सद्धा, रुचि, अनुस्सवो, आकारपरिवितक्को, दिट्ठिनिज्झानक्खन्ति—इमे खो, आवुसो निगण्ठा, पञ्च धम्मा दिट्ठेव धम्मे द्विधाविपाका। तत्रायस्मन्तानं निगण्ठानं का अतीतंसे सत्थरि सद्धा का रुचि को अनुस्सवो को आकारपरिवितक्को का दिट्ठिनिज्झानक्खन्ती' ति। एवंवादी खो अहं, भिक्खवे, निगण्ठेसु न कञ्चि सहधम्मिकं वादपटिहारं समनुपस्सामि।

"पुन च पराहं, भिक्खवे, ते निगण्ठे एवं वदामि—'तं किं मञ्ञथ, आवुसो निगण्ठा, यस्मिं वो समये तिब्बो उपक्कमो होति तिब्बं पधानं, तिब्बा तस्मिं समये ओपक्कमिका दुक्खा तिब्बा कटुका वेदना वेदियेथ; यस्मिं पन वो समये न तिब्बो उपक्कमो होति न तिब्बं पधानं, न तिब्बा तस्मिं समये ओपक्कमिका दुक्खा तिब्बा कटुका वेदना वेदियेथा' ति?

'यस्मिं नो, आवुसो गोतम, समये तिब्बो उपक्कमो होति तिब्बं पधानं, तिब्बा तस्मिं समये ओपक्कमिका दुक्खा तिब्बा कटुका वेदना वेदियाम; यस्मिं पन नो समये न तिब्बो उपक्कमो होति न तिब्बं पधानं, [R. 219] न तिब्बा तस्मिं समये ओपक्कमिका दुक्खा तिब्बा कटुका वेदना वेदियामा' ति।

निर्ग्रन्थो! ये पाँच धर्म इसी जन्म में द्विधा फल(विपाक)दायक होते हैं। कौन से पाँच? (१) श्रद्धा, (२) रुचि, (३) अनुश्रव, (४) आकारपरिवर्तक एवं (५) दृष्टिनिध्यानक्षान्ति। आयुष्मन् निर्ग्रन्थो! ये पाँच धर्म इसी जन्म में फलदायक होते हैं। यहाँ आप आयुष्मान् निर्ग्रन्थों की अपने अतीतांशवादी शास्ता (निर्ग्रन्थ नाटपुत्र) में कैसी श्रद्धा, कैसी रुचि कैसा अनुश्रव (धर्मश्रवण), कैसा आकारपरिवितर्क और कैसी दृष्टिनिध्यानक्षान्ति है?'—ऐसा पूछने पर भी; भिक्षुओ! मुझे उन निर्ग्रन्थों की तरफ से कोई वादपरिहार (उत्तर) नहीं मिला।

"और फिर भिक्षुओ! मैंने जब उन निर्ग्रन्थों से यों पूछा—'तो क्या मानते हो, आयुष्मन् निर्ग्रन्थो! जिस समय तुम्हारा उपक्रम (साधना) तीव्र होता है, प्रधान (दुःखक्षयहेतु प्रयत्न) तीव्र होता है उस समय तुम उस उपक्रमसम्बन्धी दुःखद, तीव्र वेदनाएँ अनुभव करते हो; या जिस समय तुम्हारे वह उपक्रम व प्रधान तीव्र नहीं होते तो क्या उस समय तुम वैसी तीव्र वेदनाएँ अनुभव नहीं करते?'

'हाँ, आयुष्मन् गौतम! जिस समय हमारा तीव्र उपक्रम व प्रधान होता है, उस समय हमें तीव्र वेदनाएँ अनुभव होती हैं, और जिस समय हमारा वह उपक्रम या प्रधान तीव्र नहीं होता तब हमें वेदनाएँ भी वैसी तीव्र नहीं होतीं'!

[B. 6] ६. 'इति किर, आवुसो निगण्ठा, यस्मिं वो समये तिब्बो [N. 8] उपक्कमो होति तिब्बं पधानं, तिब्बा तस्मिं समये ओपक्कमिका दुक्खा तिब्बा कटुका वेदना वेदियेथ; यस्मिं पन वो समये न तिब्बो उपक्कमो होति न तिब्बं पधानं, न तिब्बा तस्मिं समये ओपक्कमिका दुक्खा तिब्बा कटुका वेदना वेदियेथ। एवं सन्ते आयस्मन्तानं निगण्ठानं न कल्लमस्स वेय्याकरणाय—यं किञ्चायं पुरिसपुग्गलो पटिसंवेदेति सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा, सब्ब तं पुब्बेकतहेतु···पे०···वेदनाक्खया सब्बं दुक्खं निज्जिण्णं भविस्सती ति। सचे, आवुसो निगण्ठा, यस्मिं वो समये तिब्बो उपक्कमो होति तिब्बं पधानं, न तिब्बा तस्मिं समये ओपक्कमिका दुक्खा तिब्बा कटुका वेदना वेदियेथ, यस्मिं पन वो समये न तिब्बो उपक्कमो होति न तिब्बं पधानं, तिब्बा तस्मिं समये ओपक्कमिका दुक्खा तिब्बा कटुका वेदना वेदियेथ; एवं सन्ते आयस्मन्तानं निगण्ठानं कल्लमस्स वेय्याकरणाय—यं किञ्चायं पुरिसपुग्गलो पटिसंवेदेति सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा सब्बं तं पुब्बेकतहेतु···पे०···वेदनाक्खया सब्बं दुक्खं निज्जिण्णं भविस्सती ति। यस्मा च खो, आवुसो निगण्ठा, यस्मिं वो समये तिब्बो उपक्कमो होति तिब्बं पधानं, तिब्बा तस्मिं समये ओपक्कमिका दुक्खा तिब्बा कटुका वेदना वेदियेथ; यस्मिं पन वो समये न तिब्बो उपक्कमो होति न तिब्बं पधानं, न तिब्बा तस्मिं समये ओपक्कमिका दुक्खा तिब्बा कटुका वेदना वेदियेथ, ते तुम्हे सामं येव ओपक्कमिका दुक्खा तिब्बा कटुका [R. 220] वेदना वेदयमाना अविज्जा अञ्ञाणा सम्मोहा विपच्चेथ—

---

६. 'इस प्रकार, आयुष्मन् निर्ग्रन्थो ! (क) जिस समय तुम्हारा उपक्रम व प्रधान तीव्र होता है···और जब तुम्हारा उपक्रम व प्रधान तीव्र नहीं होता तो वेदनाएँ भी तीव्र नहीं होती; ऐसा होने पर तुम्हारा यह-कहना उचित नहीं प्रतीत होता कि 'जो कुछ भी यह पुरुषपुद्गल...सभी प्रकार के दुःख निर्जीण हो जाते हैं। (ख) और यदि, आयुष्मन् निर्ग्रन्थो ! जिस समय तुम्हारा वह तीव्र उपक्रम या प्रधान चलता रहता है, तब तुम्हें तीव्र वेदनाएँ अनुभव नहीं होती, और जब वह तीव्र उपक्रम नहीं चलता रहता तब तुम्हें तीव्र वेदनाएँ अनुभव होती हैं, ऐसा होने पर भी तुम्हारा यह कहना उचित प्रतीत नहीं होता कि जो कुछ भी यह पुरुषपुद्गल... सभी प्रकार के दुःख निर्जीण हो जाते हैं।

'क्योंकि आयुष्मन् निर्ग्रन्थो ! जिस समय तुम्हारा उपक्रम तीव्र ... वेदनाएं तीव्र...; और जिस समय तुम्हारा उपक्रम तीव्र नहीं...; वेदनाएं भी तीव्र नहीं अनुभव करते, अतः तुम स्वयं ही (अपनी ओर से) उपक्रमसम्बन्धी वेदनाएँ अनुभव

यं किञ्चायं पुरिसपुग्गलो पटिसंवेदेति सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा सब्बं तं पुब्बेकतहेतु...पे०...वेदनाक्खया सब्बं दुक्खं निज्जि- [B. 7] ण्णं भविस्सती' ति। एवंवादी पि खो अहं, भिक्खवे, निगण्ठेसु न कञ्चि सहधम्मिकं वादपटिहारं समनुपस्सामि।

७. (क) "पुन च पराहं, भिक्खवे, ते निगण्ठे एवं वदामि—'तं किं मञ्ञथावुसो निगण्ठा, यमिदं कम्मं दिट्ठधम्मवेदनीयं तं उपक्कमेन वा पधानेन वा सम्परायवेदनीयं होतू ति लब्भमेतं' ति? 'नो हिदं आवुसो'। 'यं पनिदं कम्मं सम्परायवेदनीयं तं उपक्कमेन वा पधानेन वा [N. 9] दिट्ठधम्मवेदनीयं होतू ति लब्भमेतं' ति? 'नो हिदं आवुसो'।

(ख) 'तं किं मञ्ञथावुसो निगण्ठा, यमिदं कम्मं सुखवेदनीयं तं उपक्कमेन वा पधानेन वा दुक्खवेदनीयं होतू ति लब्भमेतं' ति? 'नो हिदं आवुसो'। 'यं पनिदं कम्मं दुक्खवेदनीयं तं उपक्कमेन वा पधानेन वा सुखवेदनीयं होतू ति लब्भमेतं' ति? 'नो हिदं, आवुसो'।

(ग) 'तं किं मञ्ञथावुसो निगण्ठा, यमिदं कम्मं परिपक्कवेदनीयं

करते हुए अविद्यावश, अज्ञानवश, मोहवश यों उलटा (विपरीत) सोच लेते हो कि 'जो कुछ भी यह पुरुषपुद्गल...दुःख निर्जीर्ण हो जाते हैं'।

'भिक्षुओ! निगण्ठों से, मेरे द्वारा ऐसा पूछा जाने पर भी, उनकी तरफ से मुझे कोई उचित धर्मानुकूल उत्तर नहीं मिला।

७. (क) "और फिर, भिक्षुओ! मैंने उन निर्ग्रन्थों से यों पूछा—'तो क्या मानते हो आयुष्मन् निर्ग्रन्थो! यह जो इसी जन्म में भोगा जाने वाला (वेदनीय) कर्म है वह उपक्रम या प्रधान से दूसरे जन्म में वेदनीय (भोग्य) बनाया जा सकता है?' 'नहीं आयुष्मन्!' 'और यह जो दूसरे जन्म में भोगा जाने वाला कर्म है वह अपने उपक्रम या प्रधान से इसी जन्म में भोगा जाने योग्य बनाया जा सकता है?' 'नहीं आयुष्मन्!'

(ख) 'तो क्या मानते हो, निर्ग्रन्थो! यह जो सुख-भोग कराने वाला कर्म है, क्या उसे तुम दुःख-भोग कराने वाले के रूप में बदल सकते हो?' 'नहीं, आयुष्मन्!' 'और यह जो दुःख-भोग कराने वाला कर्म है क्या तुम उसे अपने उपक्रम या प्रधान से सुख-भोग कराने वाले कर्म के रूप में बदल सकते हो?' 'ऐसा भी नहीं है, आयुष्मन्!'

(ग) 'तो क्या मानते हो, निर्ग्रन्थो! यह जो परिपक्व अवस्था (वृद्धावस्था) में भोग्य कर्म हैं, क्या उन्हें तुम अपने उपक्रम या प्रधान के सहारे, अपरिपक्व

तं उपक्कमेन वा पधानेन वा अपरिपक्कवेदनीयं होतू ति लब्भमेतं' ति ? 'नो हिदं आवुसो'। 'यं पनिदं कम्मं अपरिपक्कवेदनीयं तं उपक्कमेन वा पधानेन वा परिपक्कवेदनीयं होतू ति लब्भमेतं' ति ? 'नो हिदं, आवुसो'।

(घ) 'तं किं मञ्ञथावुसो निगण्ठा, यमिदं कम्मं बहुवेदनीयं तं उपक्क-[R. 221] मेन वा पधानेन वा अप्पवेदनीयं होतू ति लब्भमेतं' ति ? 'नो हिदं, आवुसो'। 'यं पनिदं कम्मं अप्पवेदनीयं तं उपक्कमेन वा पधानेन वा बहुवेदनीयं होतू ति लब्भमेतं' ति ? 'नो हिदं, आवुसो'।

(ङ) तं किं मञ्ञथावुसो निगण्ठा, यमिदं कम्मं सवेदनीयं तं उपक्कमेन वा पधानेन वा अवेदनीयं होतू ति लब्भमेतं' ति ? 'नो हिदं, आवुसो'। 'यं पनिदं कम्मं अवेदनीयं तं उपक्कमेन वा पधानेन वा सवेदनीयं होतू ति [N. 10] लब्भमेतं' ति ? 'नो हिदं, आवुसो'।

८. 'इति किर, आवुसो निगण्ठा, यमिदं कम्मं दिट्ठधम्मवेदनीयं तं उपक्कमेन वा पधानेन वा सम्परायवेदनीयं होतू ति अलब्भमेतं, यं पनिदं कम्मं सम्परायवेदनीयं तं उपक्कमेन वा पधानेन वा दिट्ठधम्मवेदनीयं होतू

(बाल्य) अवस्था में भोगने योग्य बना सकते हो ?' 'नहीं आयुष्मन् !' 'और जो यह अपरिपक्व अवस्था में भोगने योग्य कर्म हैं, उन्हें क्या तुम अपने उपक्रम या प्रधान के सहारे परिपक्वावस्था के भोग्य बना सकते हो ?' 'ऐसी भी बात नहीं है, आयुष्मन् !'

(घ) 'तो क्या मानते हो निर्ग्रन्थो ! ये जो तुम्हारे बहुवेदनीय कर्म हैं, उन्हें तुम अपने उपक्रम या प्रधान के सहारे अल्पवेदनीय (कुछ समय के लिये भोग्य) बना सकते हो ?' 'नहीं, आयुष्मन् !' 'और ये जो अल्पवेदनीय कर्म हैं उन्हें क्या तुम अपने उपक्रम या प्रधान के सहारे बहुवेदनीय (बहुत काल तक भोगने योग्य) कर्म के रूप में बदल सकते हो ?' 'ऐसा भी नहीं है, आयुष्मन् !'

(ङ) 'तो क्या मानते हो, आयुष्मन् ! ये जो सवेदनीय (भोगने योग्य) कर्म हैं उन्हें तुम अपने उपक्रम या प्रधान के सहारे अवेदनीय (अभोग्य) बना सकते हो ? 'नहीं आयुष्मन् !' 'और ये जो अवेदनीय कर्म हैं, ये तुम्हारे उपक्रम के सहारे सवेदनीय हो जाँय—ऐसा कुछ कर सकते हो ?' 'ऐसा भी नहीं है, आयुष्मन् !'

८. आयुष्मन् निर्ग्रन्थो ! ये जो इसी जन्म में भोग्य कर्म हैं वे उपक्रम या प्रधान से आगामी जन्म के लिये भोग्य बन जाँय—यह असम्भव है; इसी प्रकार आगामी जन्म में भोगे जाने वाले कर्मों को उपक्रम के सहारे इसी जन्म में भोगा जाने वाला नहीं बनाया जा सकता। और ये जो सुख भोगाने वाले कर्म हैं, उन्हें

ति अलब्भमेतं, यमिदं कम्मं सुखवेदनीयं तं उपक्कमेन वा पधानेन वा दुक्खवेदनीयं होतू ति अलब्भमेतं, यमिदं कम्मं दुक्खवेदनीयं तं उपक्कमेन वा पधानेन वा सुखवेदनीयं होतू ति अलब्भमेतं, यमिदं कम्मं [B. 8] परिपक्कवेदनीयं तं उपक्कमेन वा पधानेन वा अपरिपक्कवेदनीयं होतू ति अलब्भमेतं, यमिद कम्मं अपरिपक्कवेदनीयं तं उपक्कमेन वा पधानेन वा परिपक्कवेदनीयं होतू ति अलब्भमेतं, यमिदं कम्मं बहुवेदनीयं तं उपक्कमेन वा पधानेन वा अप्पवेदनीयं होतू ति अलब्भमेतं, यमिदं कम्मं अप्पवेदनीयं तं उपक्कमेन वा पधानेन वा बहुवेदनीयं होतू ति अलब्भमेतं, यमिदं कम्मं सवेदनीयं तं उपक्कमेन वा पधानेन वा अवेदनीयं होतू ति अलब्भमेतं, यमिदं कम्मं अवेदनीयं तं उपक्कमेन वा पधानेन वा सवेदनीयं होतू ति अलब्भमेतं; एवं सन्ते आयस्मन्तानं निगण्ठानं अफलो उपक्कमो होति, अफलं पधानं'। [R. 222]

"एवंवादी, भिक्खवे, निगण्ठा। एवंवादीनं, भिक्खवे, निगण्ठानं दस सहधम्मिका वादानुवादा गारय्हं ठानं आगच्छन्ति।

९. "सचे, भिक्खवे, सत्ता पुब्बेकतहेतु सुखदुक्खं पटिसंवेदेन्ति; अद्धा, भिक्खवे, निगण्ठा पुब्बे दुक्कटकम्मकारिनो यं एतरहि एवरूपा दुक्खा

उपक्रम या प्रधान से दुःख भोगाने वाले के रूप में परिवर्तित कर दिया जाँय—यह भी असम्भव लगता है; और इसी तरह दुःख भोगाने वाले कर्मों को भी उपक्रम या प्रधान के सहारे सुख भोगाने वाले के रूप में नहीं परिवर्तित किया जा सकता। इसी तरह ये जो परिपक्ववेदनीय कर्म हैं उन्हें उपक्रम या प्रधान से अपरिपक्ववेदनीय के रूप में नहीं बदला जा सकता; इसी तरह अपरिपक्ववेदनीय कर्मों को परिपक्ववेदनीय कर्म के रूप में नहीं बदला जा सकता। और जो बहुवेदनीय कर्म हैं उसे अल्पवेदनीय कर्म के रूप में, और अल्पवेदनीय कर्मों को बहुवेदनीय कर्मों के रूप में नहीं बदला जा सकता। और ये जो सवेदनीय कर्म हैं उनको अवेदनीय, या अवेदनीय कर्मों को सवेदनीय कर्म के रूप में उपक्रम के सहारे नहीं परिवर्तित किया जा सकता। यों, उन आयुष्मान् निर्ग्रन्थों का उपक्रम (तपश्चर्या) व प्रधान (दुःखक्षय के लिये प्रयत्न) निष्फल हो जाता है।

"भिक्षुओ ! ये निर्ग्रन्थ श्रमण ऐसे मत का प्रख्यापन करने वाले हैं। भिक्षुओ ! ऐसे मतवाद निर्ग्रन्थों के समक्ष वादानुवाद (शास्त्रचर्चा या विचारगोष्ठी) में दश स्थानों पर निन्दनीय (गर्हा योग्य) स्थिति आ जाती है।

९. (१) "यदि, भिक्षुओ ! (निर्ग्रन्थ ऐसा मानते हैं कि) प्राणी स्वकीय पूर्वजन्मकृत कर्मों के कारण सुख-दुःख भोगते हैं; तो भिक्षुओ ! निश्चय ही ये निर्ग्रन्थ पूर्वजन्म

तिब्बा कटुका वेदना वेदियन्ति। सचे, भिक्खवे, सत्ता इस्सरनिम्मानहेतु सुखदुक्खं पटिसंवेदेन्ति; अद्धा, भिक्खवे, निगण्ठा पापकेन इस्सरेन निम्मिता यं एतरहि एवरूपा दुक्खा तिब्बा कटुका वेदना वेदियन्ति। सचे, भिक्खवे, सत्ता सङ्गतिभावहेतु सुखदुक्खं पटिसंवेदेन्ति; अद्धा, भिक्खवे, निगण्ठा पापसङ्गतिका यं एतरहि एवरूपा दुक्खा तिब्बा कटुका वेदना वेदियन्ति। सचे, भिक्खवे, सत्ता अभिजातिहेतु सुखदुक्खं पटिसंवेदेन्ति; अद्धा, भिक्खवे, [N. 11] निगण्ठा पापाभिजातिका यं एतरहि एवरूपा दुक्खा तिब्बा कटुका वेदना वेदियन्ति। सचे, भिक्खवे, सत्ता दिट्ठधम्मूपक्कमहेतु सुखदुक्खं पटिसंवेदेन्ति; अद्धा, भिक्खवे, निगण्ठा एवरूपा दिट्ठधम्मूपक्कमा यं एतरहि एवरूपा दुक्खा तिब्बा कटुका वेदना वेदियन्ति।

"सचे, भिक्खवे, सत्ता पुब्बेकतहेतु सुखदुक्खं पटिसंवेदेन्ति, गारय्हा निगण्ठा; नो चे सत्ता पुब्बेकतहेतु सुखदुक्खं पटिसंवेदेन्ति, गारय्हा निगण्ठा!

में दुष्कर्म करने वाले रहे होंगे, तभी तो वे इस जन्म में दुःखद तीव्र, कड़वी वेदनाएँ भोग रहे हैं।

(२) "यदि, भिक्षुओ! प्राणी ईश्वर द्वारा निर्मित होने के कारण (इस्सर-निम्मानहेतु) सुख दुःख भोगते हैं, तो भिक्षुओ! ये निर्ग्रन्थ अवश्य किसी पापी ईश्वर द्वारा रचे गये हैं जिससे उन्हें आज ये दुःखमय वेदनाएँ भोगनी पड़ रही हैं।

(३) "यदि, भिक्षुओ! प्राणी सङ्गति (पूर्वजन्म के प्रारब्ध के संसर्ग) से सुख-दुःख भोगते हैं तो अवश्य इन निर्ग्रन्थों ने भी पूर्वजन्म में पापमय कर्मसङ्गति की होगी, जिसके कारण उन्हें···।

(४) "यदि, भिक्षुओ! अभिजाति (=वंशकुल) के कारण सुख-दुःख का भोग माना जाय तो, भिक्षुओ! ये निर्ग्रन्थ अवश्य पापाभिजातिक रहे होगें जिस कारण उन्हें··· ।

(५) यदि, भिक्षुओ! प्राणी इसी जन्म के उपक्रम के कारण सुख-दुःख भोगते हैं, तो, भिक्षुओ! इन निर्ग्रन्थों का उपक्रम पापमय रहा होगा जिसके कारण इन्हें आज ये दुःखद, तीव्र और कटुक वेदनाएँ भोगनी पड़ रही हैं।

(६) "भिक्षुओ! यदि प्राणी स्वकीय पूर्वजन्मकृत कर्मों के कारण सुख-दुःख भोगता है (जैसा कि निर्ग्रन्थों का मत है) तो (पूर्वोक्त हेतु से) ये निर्ग्रन्थ निन्दा के पात्र हैं, और पूर्वजन्मकृत कर्मों के कारण सुख-दुःख नहीं भोगते तो भी (उन निर्ग्रन्थों का मत खण्डित हो जाने से) वे निन्दा के पात्र ही कहलायेंगे।

(७) "भिक्षुओ, यदि 'प्राणी ईश्वर द्वारा निर्मित होने के कारण सुख-दुःख भोगते

सचे, भिक्खवे, सत्ता इस्सरनिम्मानहेतु सुखदुक्खं पटिसंवेदेन्ति, गारय्हा निगण्ठा; नो चे सत्ता इस्सरनिम्मानहेतु सुखदुक्खं पटिसंवेदेन्ति, गारय्हा निगण्ठा। सचे, भिक्खवे, सत्ता सङ्गतिभावहेतु सुखदुक्खं पटिसंवेदेन्ति, गारय्हा निगण्ठा; नो चे सत्ता सङ्गतिभावहेतु सुखदुक्खं पटिसंवे· [B. 9] देन्ति, गारय्हा निगण्ठा। सचे, भिक्खवे, सत्ता अभिजातिहेतु सुखदुक्खं पटिसंवेदेन्ति, गारय्हा निगण्ठा; नो चे सत्ता अभिजातिहेतु सुखदुक्खं पटिसंवेदेन्ति, गारय्हा निगण्ठा; नो चे सत्ता अभिजातिहेतु सुखदुक्खं पटि· संवेदेन्ति, गारय्हा निगण्ठा। सचे, भिक्खवे, सत्ता दिट्ठधम्मूपक्कमहेतु सुखदुक्खं पटिसंवेदेन्ति, गारय्हा निगण्ठा; नो चे सत्ता दिट्ठधम्मूपक्कमहेतु सुखदुक्खं पटिसंवेदेन्ति, गारय्हा निगण्ठा। एवंवादी, [R. 223] भिक्खवे, निगण्ठा। एवंवादीनं, भिक्खवे, निगण्ठानं इमे दस सहधम्मिका वादानुवादा गारय्हं ठानं आगच्छन्ति। एवं खो, भिक्खवे, अफलो उपक्कमो होति, अफलं पधानं।

हैं' –ऐसा माना जाय तो ये निर्ग्रन्थ (पूर्वोक्त हेतु के कारण) शास्त्रचर्चाओं में निन्दनीय ही कहलायेंगे ; और ईश्वर-रचना वाला यह मत न माना जाय तो भी (इस मतवाद का खण्डन होने से) ये निर्ग्रन्थ निन्दा के पात्र ही होंगे।

(८) "भिक्षुओ ! यदि प्राणी (पूर्वोक्त) सङ्गति से सुख-दुःख के भोक्ता बनते हैं तो (पूर्वोक्त हेतु से ही) वे निर्ग्रन्थ निन्दनीय हैं ; और यदि प्राणी सङ्गति के कारण सुख-दुःख का भोक्ता न माना जाय तो (उनका मतवाद खण्डित हो जाने के कारण) भी वे निन्दा के ही पात्र बनते हैं।

(९) "भिक्षुओ ! यदि प्राणी अभिजाति के कारण सुखदुख के भोक्ता माने जाँय तो (पूर्वोक्त हेतु के कारण) ये निर्ग्रन्थ गर्हित ही समझे जाँयगें। और यह मत न माना जाय तो (उनका) यह मत खण्डित हो जाने के कारण वे समाज में निन्दा के पात्र ही होंगे।

(१०) "यदि, भिक्षुओ ! प्राणी इसी जन्म में कृत कर्मों के कारण सुख-दुःख का भोक्ता है तो ये निर्ग्रन्थ (पूर्वोक्त हेतु के कारण) निन्दनीय ही समझे जाँयगें। और यदि इस मत को न माना जाय तो (इस मत का खण्डन हो जाने के कारण) भी वे निर्ग्रन्थ प्रश्नोत्तर में निन्दनीय ही कहे जाँयगें।

"भिक्षुओ ! ये निर्ग्रन्थ ऐसा मतवाद रखते हैं। भिक्षुओ ! ऐसे मतवादी इन निर्ग्रन्थों को वादानुवाद (शास्त्रचर्चा=प्रश्नोत्तर) में इन उपर्युक्त दश स्थानों पर निन्दा (गर्हा) की स्थिति बन जाती है। यों, भिक्षुओ ! इन निर्ग्रन्थों का यह उपक्रम यह प्रधान निष्फल ही हो जाता है।

३. सफलो उपक्कमो सफलं पधानं

१०. "कथं च, भिक्खवे, सफलो उपक्कमो होति, सफलं पधानं ? इध, भिक्खवे, भिक्खु न हेव अनद्धभूतं अत्तानं दुक्खेन अद्धभावेति, धम्मिकं च सुखं न परिच्चजति, तस्मि च सुखे अनधिमुच्छितो होति। सो एवं पजानाति—'इमस्स खो मे दुक्खनिदानस्स सङ्खारं पदहतो सङ्खारप्पधाना विरागो होति, इमस्स पन मे दुक्खनिदानस्स अज्झुपेक्खतो उपेक्खं भावयतो विरागो होती' ति।

(१) दुक्खनिदानस्स अज्झुपेक्खतो

सो यस्स हि ख्वास्स दुक्खनिदानस्स सङ्खारं पदहतो सङ्खारप्पधाना [N. 12] विरागो होति, सङ्खारं तत्थ पदहति। यस्स पनस्स दुक्खनिदानस्स अज्झुपेक्खतो उपेक्खं भावयतो विरागो होति, उपेक्खं तत्थ भावेति। तस्स तस्स दुक्खनिदानस्स सङ्खारं पदहतो सङ्खारप्पधाना विरागो होति—एवं पिस्स तं दुक्खं निज्जिण्णं होति। तस्स तस्स दुक्खनिदानस्स अज्झुपेक्खतो उपेक्खं भावयतो विरागो होति—एवं पिस्स तं दुक्खं निज्जिण्णं होति।

---

३. सफल उपक्रम, सफल प्रधान

१०. "और कैसे, भिक्षुओ ! यह किया गया उपक्रम सफल कहलाता है, या प्रधान सफल कहलाता है ? भिक्षुओ ! यहाँ कोई भिक्षु (१) दुख से अनभिभूत शरीर को दुःख से अभिभूत (पीड़ित) नहीं करता ; (२) धार्मिक क्रियाओं से होने वाले सुख का परित्याग नहीं करता ; (३) परन्तु उस सुख से अपने को मूर्छित नहीं करता; (४) वह ऐसा जानता है—'इस दुःखहेतु के सस्कार का अभ्यास करने वाले को संस्कार के अभ्यास के सहारे विराग होता है; और (५) इस दुःखनिदान की उपेक्षा करने वाले को उपेक्षा की भावना करने से भी विराग होता है'।

(१) दुःखनिदान की अध्युपेक्षा से

(साधक को) जिस दुःखनिदान के चिन्तन के सहारे प्राप्त संस्कारों के अभ्यास से विराग होता है, वह उस संस्कार का भी अभ्यास करता है। जिस दुःखनिदान की उपेक्षा करने से, उपेक्षा की भावना करने से विराग होता है वह उस उपेक्षा की भी भावना करता है। यों, उस दुःखनिदान के चिन्तन से प्राप्त सस्कारों द्वारा निरोधाभ्यास से जो विराग होता है—इस प्रकार भी दुःख निःशेषेण जीर्ण हो जाता है। उस दुःखनिदान की उपेक्षा भावना करने से प्राप्त उपेक्षा भावना के अभ्यास से जो विराग होता है—इस प्रकार भी वह दुःख निःशेषतः जीर्ण हो जाता है।

११. "सेय्यथापि, भिक्खवे, पुरिसो इत्थिया सारत्तो पटिबद्धचित्तो तिब्बच्छन्दो तिब्बापेक्खो। सो तं इत्थि पस्सेय्य अञ्ञेन पुरिसेन सद्धिं सन्तिट्ठन्ति सल्लपन्ति सञ्जग्घन्ति संहसन्ति। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, अपि नु तस्स पुरिसस्स अमुं इत्थिं दिस्वा अञ्ञेन सद्धिं सन्तिट्ठन्तिं सल्लपन्तिं सञ्जग्घन्तिं संहसन्तिं उप्पज्जेय्युं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सूपायासा'' ति ? "एवं, भन्ते"।

"तं किस्स हेतु" ?

"अमु हि, भन्ते, पुरिसो अमुस्सा इत्थिया सारत्तो पटिबद्ध- [R. 224] चित्तो तिब्बच्छन्दो तिब्बापेक्खो। तस्मा तं इत्थिं दिस्वा अञ्ञेन [B. 10] पुरिसेन सद्धिं सन्तिट्ठन्तिं सल्लपन्ति पञ्जग्घन्तिं संहसन्ति उप्पज्जेय्युं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सूपायासा" ति।

"अथ खो भिक्खवे, तस्स पुरिसस्स एवमस्स—'अहं खो अमुस्सा इत्थिया सारत्तो पटिबद्धचित्तो तिब्बच्छन्दो तिब्बापेक्खो। तस्स मे अमुं इत्थि दिस्वा अञ्ञेन पुरिसेन सद्धिं सन्तिट्ठन्ति सल्लपन्ति सञ्जग्घन्ति संहसन्ति उप्पज्जन्ति सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सूपायासा। यन्नूनाहं यो मे अमुस्सा इत्थिया छन्दरागो तं पजहेय्यं' ति। सो यो अमुस्सा इत्थिया छन्दरागो तं पजहेय्य। सो तं इत्थि पस्सेय्य अपरेन समयेन अञ्ञेन पुरिसेन सद्धिं सन्तिट्ठन्ति सल्लपन्ति सञ्जग्घन्ति संहसन्ति। तं किं मञ्ञथ,

---

११. "भिक्षुओ ! जैसे कोई पुरुष किसी स्त्री में अनुरक्त (सराग) हो, प्रतिबद्धचित्त (=आसक्त) हो, तीव्ररागी हो उसका तीव्र अपेक्षी हो। वह कभी अपनी उस प्रेमास्पद स्त्री को किसी दूसरे पुरुष के साथ बैठी, चुहल-बाजी करते, बात-चीत करते, हास-परिहास करते देखे तो क्या मानते हो, भिक्षुओ ! उस स्त्री को परपुरुष के साथ बैठी,...परिहास करते देखकर उस पुरुष को, इस कारण, शोक-परिदेव-दुःख-दौर्मनस्य या उपायास (हैरानी) उत्पन्न नहीं होंगे ?" "अवश्य होंगे, भन्ते !"

"वह किस कारण ?"

"क्योंकि भन्ते ! वह पुरुष उस स्त्री में अनुरक्त है...उसका तीव्र अपेक्षी है। इसलिये उस स्त्री को परपुरुष के साथ...उपायास उत्पन्न होंगे ही !"

"तब भिक्षुओ ! उस पुरुष को यह विचार हो—'मैं इस स्त्री में अनुरक्त हूँ... अतः इस स्त्री को परपुरुष के साथ...हँसते देख शोक...उत्पन्न होते हैं; तो क्यों न मैं, मेरा जो इस स्त्री में छन्दराग है, उसको छोड़ दूँ'। यह सोचकर वह उस स्त्री में अपने छन्दराग का परित्याग कर दे। फिर दूसरे किसी समय वह उस स्त्री को

भिक्खवे, अपि नु तस्स पुरिसस्स अमुं इत्थिं दिस्वा अञ्ञेन पुरिसेन सद्धिं सन्तिट्ठन्तिं सल्लपन्तिं सञ्जग्घन्तिं संहसन्तिं उप्पज्जेय्युं सोकपरिदेवदुक्ख-
[N. 13] दोमनस्सूपायासा" ति? "नो हेतं, भन्ते"।

"तं किस्स हेतु"?

"अमु हि, भन्ते पुरिसो अमुस्सा इत्थिया वीतरागो। तस्मा तं इत्थिं दिस्वा अञ्ञेन पुरिसेन सद्धिं सन्तिट्ठन्तिं सल्लपन्तिं सञ्जग्घन्तिं संहसन्तिं न उप्पज्जेय्युं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सूपायासा" ति।

"एवमेव खो, भिक्खवे, भिक्खु न हेव अनद्धभूतं अत्तानं दुक्खेन अद्धभावेति, धम्मिकं च सुखं न परिच्चजति, तस्मिं च सुखे अनधिमुच्छितो होति। सो एवं पजानाति—'इमस्स खो मे दुक्खनिदानस्स सङ्खारं पदहतो सङ्खारप्पधाना विरागो होति, इमस्स पन मे दुक्खनिदानस्स अज्झुपेक्खतो उपेक्खं भावयतो विरागो होती' ति। सो यस्स पि ख्वास्स दुक्खनिदानस्स सङ्खारं पदहतो सङ्खारप्पधाना विरागो होति, सङ्खारं तत्थ पदहति; यस्स पनस्स दुक्खनिदानस्स अज्झुपेक्खतो उपेक्खं भावयतो विरागो होति, उपेक्खं तत्थ भावेति। तस्स तस्स दुक्खनिदानस्स सङ्खारं पदहतो सङ्खार-
[R. 225] प्पधाना विरागो होति—एवं पिस्स तं दुक्खं निज्जिण्णं होति। तस्स-तस्स दुक्खनिदानस्स अज्झुपेक्खतो उपेक्खं भावयतो विरागो होति—एवं पिस्स तं दुक्खं निज्जिण्णं होति। एवं पि भिक्खवे, सफलो उपक्कमो होति, सफलं पधानं।

(२) दुक्खाय अत्तानं पदहतो

१२. "पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु इति पटिसञ्चिक्खति—'यथासुखं

पर-पुरुष के साथ...हँसते देखे, तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! क्या, तब भी उस स्त्री को परपुरुष के साथ...हँसते देख उस पुरुष को शोक...उत्पन्न होंगे?"

"नहीं, भन्ते!"

"ऐसा किस कारण?"

"क्योंकि भन्ते! वह पुरुष अब उस स्त्री से वीतराग हो चुका है इसलिये उस स्त्री को...हँसते देखकर भी उस पुरुष को शोक...उत्पन्न होंगे।"

"भिक्षुओ! ऐसे ही कोई भिक्षु दुःख से अनभिभूत शरीर को दुःखाभिभूत नहीं करता, धार्मिक कृत्यों से प्राप्त होने वाले सुख का परित्याग नहीं करता...पूर्ववत्...इस प्रकार भी उसका दुःख निःशेषतः जीर्ण हो जाता है। भिक्षुओ! इस विधि से भी (साधक का) उपक्रम सफल होता है, प्रधान सफल होता है।

(२) दुःखक्रियाओं में अपने को लगाने से

१२. "और फिर, भिक्षुओ! कोई साधक भिक्षु ऐसा सोचता है—सुखपूर्वक

खो मे विहरतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ति; दुक्खाय पन मे अत्तानं पदहतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति। यन्नूनाहं दुक्खाय अत्तानं पदहेय्यं' ति। सो दुक्खाय अत्तानं पदहति। तस्स दुक्खाय अत्तानं पदहतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति। सो न अपरेन समयेन दुक्खाय अत्तानं पद- [B. 11] हति। तं किस्स हेतु? यस्स हि सो, भिक्खवे, भिक्खु अत्थाय दुक्खाय अत्तानं पदहेय्य स्वास्स अत्थो अभिनिप्फन्नो होति। तस्मा न अपरेन समयेन दुक्खाय अत्तानं पदहति। सेय्यथापि, भिक्खवे, उसुकारो तेजनं द्वीसु अला- [N. 14] तेसु आतापेति परितापेति उजुं करोति कम्मनियं। यतो खो, भिक्खवे, उसुकारस्स तेजनं द्वीसु अलातेसु आतापितं होति परितापितं उजुं कतं कम्मनियं, न सो तं अपरेन समयेन उसुकारो तेजनं द्वीसु अलातेसु आतापेति परितापेति उजुं करोति कम्मनियं। तं किस्स हेतु? यस्स हि सो, भिक्खवे, अत्थाय उसुकारो तेजनं द्वीसु अलातेसु आतापेय्य परितापेय्य उजुं करेय्य कम्मनियं स्वास्स अत्थो अभिनिप्फन्नो होति। तस्मा न अपरेन समयेन उसुकारो तेजनं द्वीसु अलातेसु आतापेति परितापेति उजुं करोति कम्मनियं। एवमेव खो, भिक्खवे, भिक्खु इति पटिसञ्चिक्खति--'यथासुखं खो मे विहरतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ति; दुक्खाय पन मे अत्तानं पदहतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति, कुसला धम्मा

साधन करते हुए भी मेरे अकुशल धर्म बढ़ते हैं, कुशल धर्म क्षीण होते हैं; किन्तु अपने को दुःख (कष्ट की साधना) में लगाते मेरे अकुशल धर्म क्षीण होते हैं, कुशल धर्म वृद्धिङ्गत होते हैं, तो क्यों न मैं स्वयं को कष्टकारी साधना में ही लगाऊँ। इस प्रकार वह अपने आपको कष्टकारी साधना में लगाता है। उसके द्वारा ऐसी साधना करने से उसके अकुशल धर्म क्षीण होने लगते हैं और कुशल धर्म बढ़ने लगते हैं। फिर एक समय आने पर, धीरे-धीरे यह अपने आपको उस कष्टमय साधना से दूर कर लेता है। वह किस कारण? भिक्षुओ! क्योंकि वह भिक्षु जिस प्रयोजन से अपने आपको उस कष्टकारी साधना में लगाये हुए था, वह प्रयोजन उसका पूर्ण हो गया। इसलिये वह आगे अपने आप को उस कष्टकारी साधना में नहीं लगाये रखता। जैसे, भिक्षुओ! कोई इषुकार (बाण बनाने वाला लौहकार) दो अंगारों पर बाण के फल (अग्रभाग) को यहाँ तक तपाता है कि उसे सीधा कर ले, पतला (तेज) कर ले। और, भिक्षुओ! जब उस इषुकार के बाण का फल सीधा हो जाता है, तेज हो जाता है यों अन्त में जब वह काम लायक हो जाता है तब वह इषुकार फिर से दोबारा उसे अंगारों पर नहीं रखता। वह किस कारण? भिक्षुओ! वह इषुकार

अभिवड्ढन्ति । यन्नूनाहं दुक्खाय अत्तानं पदहेय्यं' ति । सो दुक्खाय अत्तानं पदहति । तस्स दुक्खाय अत्तानं पदहतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति, [R. 226] कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति । सो न अपरेन समयेन दुक्खाय अत्तानं पदहति । तं किस्स हेतु ? यस्स हि सो, भिक्खवे, भिक्खु अत्थाय दुक्खाय अत्तानं पदहेय्य, स्वास्स अत्थो अभिनिप्फन्नो होति । तस्मा न अपरेन समयेन दुक्खाय अत्तानं पदहति । एवं पि, भिक्खवे, सफलो उपक्कमो होति, सफलं पधानं ।

(३) दुक्खनिरोधगामिनीपटिपदं भावयतो

१३. "पुन च परं, भिक्खवे, इध तथागतो लोके उप्पज्जति अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा । सो इमं लोकं सदेवकं समारकं सब्रह्मकं सस्समणब्राह्मणिं पजं सदेवमनुस्सं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेति । सो धम्मं देसेति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं [B. 12] सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेति । तं धम्मं सुणाति गहपति वा गहपतिपुत्तो वा अञ्ञतरस्मिं वा कुले पच्चाजातो । सो तं धम्मं सुत्वा तथागते सद्धं पटिलभति । सो तेन सद्धापटि- [N. 15] लाभेन समन्नागतो इति पटिसञ्चिक्खति– 'सम्बाधो घरावासो रजापथो, अब्भोकासो पब्बज्जा । नयिदं सुकरं अगारं अज्झावसता एकन्तपरिपुण्णं एकन्तपरिसुद्धं सङ्खलिखितं ब्रह्मचरियं चरितुं । यन्नूनाहं केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजेय्यं' ति । सो अपरेन समयेन अप्पं वा भोगक्खन्धं पहाय महन्तं वा भोगक्खन्धं पहाय, अप्पं वा ञातिपरिवट्टं पहाय महन्तं वा ञातिपरिवट्टं पहाय केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजति ।

जिस प्रयोजन (सीधा और तेज करने) के लिये उस बाण के फल को दो अंगारों पर तपाता था, वह प्रयोजन उसका पूर्ण हो चुका । ऐसे ही, भिक्षुओ ! वह भिक्षु ऐसा सोचता है—सुखपूर्वक विहार करने से मेरे अकुशल धर्म ...बढ़ने लगते हैं । इस प्रकार भी, भिक्षुओ ! उपक्रम सफल होता है, प्रधान सफल होता है ।

(३) दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा की भावना करने से

१३. फिर भिक्षुओ ! यहाँ लोक में तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध विद्याचरण से युक्त सुगत...पूर्ववत्[1] ...उत्पन्न होते हैं ।...धर्मोपदेश करते हैं ...घर छोड़ बेघर हो प्रव्रजित हो जाता है ।

---

१. द्र०—पीछे पृ० ३५४—५५ (चूळहत्थिपदोपमसुत्त)

१४. "सो एवं पब्बजितो समानो भिक्खूनं सिक्खासाजीवसमापन्नो पाणातिपातं पहाय पाणातिपाता पटिविरतो होति निहितदण्डो निहितसत्थो, लज्जी दयापन्नो सब्बपाणभूतहितानुकम्पी विहरति। अदिन्नादानं पहाय अदिन्नादाना पटिविरतो होति दिन्नादायी दिन्नपाटिकङ्खी, अथेनेन सुचिभूतेन अत्तना विहरति। अब्रह्मचरियं पहाय ब्रह्मचारी होति आराचारी विरतो मेथुना गामधम्मा। मुसावादं पहाय मुसावादा पटिविरतो होति सच्चवादी सच्चसन्धो थेतो पच्चयिको अविसंवादको लोकस्स। पिसुणं वाचं पहाय पिसुणाय वाचाय पटिविरतो होति; इतो सुत्वा न अमुत्र अक्खाता इमेसं भेदाय, अमुत्र वा सुत्वा न इमेसं अक्खाता अमूसं भेदाय—इति भिन्नानं वा सन्धाता सहितानं वा अनुप्पदाता समग्गारामो समग्गरतो समग्गनन्दी समग्गकरणिं वाचं भासिता होति। फरुसं वाचं पहाय फरुसाय वाचाय पटिविरतो होति; या सा वाचा नेला कण्णसुखा पेमनीया हदयङ्गमा पोरी बहुजनकन्ता बहुजनमनापा तथारूपिं वाचं भासिता होति। सम्फप्पलापं पहाय सम्फप्पलापा पटिविरतो होति कालवादी भूतवादी अत्थवादी धम्मवादी विनयवादी, निधानवतिं वाचं भासिता कालेन सापदेसं परियन्तवतिं अत्थसंहितं। सो बीजगामभूतगामसमारम्भा पटिविरतो होति। एकभत्तिको होति रत्तूपरतो विरतो विकालभोजना। नच्चगीतवादितविसूकदस्सना पटिविरतो होति। मालागन्धविलेपनधारणमण्डनविभूसनट्ठाना [B. 13] पटिविरतो होति। उच्चासयनमहासयना पटिविरतो होति। जातरूपरजतपटिग्गहणा पटिविरतो होति। आमकधञ्ञपटिग्गहणा पटिविरतो होति। आमकमंसपटिग्गहणा पटिविरतो होति। इत्थिकुमारिकपटिग्गहणा पटिविरतो होति। दासिदासपटिग्गहणा पटिविरतो होति। [N. 16] अजेळकपटिग्गहणा पटिविरतो होति। कुक्कुटसूकरपटिग्गहणा पटिविरतो होति। हत्थिगवस्सवळवपटिग्गहणा पटिविरतो होति। खेत्तवत्थुपटिग्गहणा पटिविरतो होति। दूतेय्यपहिणगमनानुयोगा पटिविरतो होति। कयविक्कया पटिविरतो होति। तुलाकूटकंसकूटमानकूटा पटिविरतो होति। उक्कोटनवञ्चननिकतिसाचियोगा पटिविरतो होति। छेदन-वध-बन्धन-विपरामोस-आलोपसहसाकारा पटिविरतो होति।

१४. भिक्षुओ ! वह यों प्रव्रजित हो शिक्षा-सदाचार से परिपूर्ण हो प्राणातिपात को छोड़...पूर्ववत्[1]...इस आर्यशीलस्कन्ध से युक्त हो आध्यात्मिक एवं निर्दोष सुख अनुभव करता है।

१. द्र०—पीछे पृ० ३५५—३५७।

"सो सन्तुट्ठो होति कायपरिहारिकेन चीवरेन, कुच्छिपरिहारिकेन पिण्डपातेन। सो येन येनेव पक्कमति समादायेव पक्कमति। सेय्यथापि नाम पक्खी सकुणो येन येनेव डेति सपत्तभारो व डेति, एवमेव भिक्खु सन्तुट्ठो होति कायपरिहारिकेन चीवरेन, कुच्छिपरिहारिकेन पिण्डपातेन; सो येन येनेव पक्कमति समादायेव पक्कमति। सो इमिना अरियेन सीलक्खन्धेन समन्नागतो अज्झत्तं अनवज्जसुखं पटिसंवेदेति।

१५. "चक्खुना रूपं दिस्वा न निमित्तग्गाही होति नानुब्यञ्जनग्गाही। यत्वाधिकरणमेनं चक्खुन्द्रियं असंवुतं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं तस्स संवराय पटिपज्जति, रक्खति चक्खुन्द्रियं, चक्खुन्द्रिये संवरं आपज्जति। सोतेन सद्दं सुत्वा…पे०…घानेन गन्धं घायित्वा …पे०…जिव्हाय रसं सायित्वा…पे०…कायेन फोट्ठब्बं फुसित्वा…पे०… मनसा धम्मं विञ्ञाय न निमित्तग्गाही होति नानुब्यञ्जनग्गाही। यत्वाधिकरणमेनं मनिन्द्रियं असंवुतं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं तस्स संवराय पटिपज्जति, रक्खति मनिन्द्रियं, मनिन्द्रिये संवरं आपज्जति। सो इमिना अरियेन इन्द्रियसंवरेन समन्नागतो अज्झत्तं अब्यासेकसुखं पटिसंवेदेति।

[B. 14] "सो अभिक्कन्ते पटिक्कन्ते सम्पजानकारी होति, आलोकिते विलोकिते सम्पजानकारी होति, समिञ्जिते पसारिते सम्पजानकारी होति, सङ्घाटिपत्तचीवरधारणे सम्पजानकारी होति, असिते पीते खायिते सायिते सम्पजानकारी होति, उच्चारपस्सावकम्मे सम्पजानकारी होति, गते ठिते
[N. 17] निसिन्ने सुत्ते जागरिते भासिते तुण्हीभावे सम्पजानकारी होति।

१६. "सो इमिना च अरियेन सीलक्खन्धेन समन्नागतो, इमाय च अरियाय सन्तुट्ठिया समन्नागतो, इमिना च अरियेन इन्द्रियसंवरेन समन्नागतो, इमिना च अरियेन सतिसम्पजञ्ञेन समन्नागतो विवित्तं सेनासनं भजति अरञ्ञं रुक्खमूलं पब्बतं कन्दरं गिरिगुहं सुसानं वनपत्थं अब्भोकासं पलालपुञ्जं। सो पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो निसीदति पल्लङ्कं आभुजित्वा, उजुं कायं पणिधाय, परिमुखं सतिं उपट्ठपेत्वा। सो अभिज्झं लोके पहाय विगताभिज्झेन चेतसा विहरति, अभिज्झाय चित्तं परिसोधेति।

---

१५. "वह चक्षुरिन्द्रिय से रूप को देखकर…पूर्ववत्…इस आर्य इन्द्रियसंवर से युक्त हो निर्दोष सुख का अनुभव करता है।

"वह अभिक्रान्त प्रतिक्रान्त में…पूर्ववत्…सम्प्रजानकारी होता है।

१६. "वह इस आर्य शीलस्कन्ध से युक्त हो, इस आर्य सन्तुष्टि से, इस आर्य इन्द्रियसंवर से, इस आर्य स्मृतिसम्प्रजन्य से युक्त हो एकान्तवास-स्थान, वृक्ष के

व्यापादपदोसं पहाय अब्यापन्नचित्तो विहरति सब्बपाणभूतहितानुकम्पी, व्यापादपदोसा चित्तं परिसोधेति। थीनमिद्धं पहाय विगतथीनमिद्धो विहरति आलोकसञ्ञी सतो सम्पजानो, थीनमिद्धा चित्तं परिसोधेति। उद्धच्चकुक्कुच्चं पहाय अनुद्धतो विहरति अज्झत्तं वूपसन्तचित्तो, उद्धच्चकुक्कुच्चा चित्तं परिसोधेति। विचिकिच्छं पहाय तिण्णविचिकिच्छो विहरति अकथङ्कथी कुसलेसु धम्मेसु, विचिकिच्छाय चित्तं परिसोधेति। सो इमे पञ्च नीवरणे सहाय चेतसो उपक्किलेसे पञ्ञाय दुब्बलीकरणे विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति। एवं पि, भिक्खवे, सफलो उपक्कमो होति, सफलं पधानं।

"पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं सम्पसादनं चेतसो एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं समाधिजं पीतिसुखं दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। एवं पि, भिक्खवे, सफलो उपक्कमो होति, सफलं पधानं।

"पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु पीतिया च विरागा उपे- [B. 15]
क्खको च विहरति सतो च सम्पजानो, सुखं च कायेन पटिसंवेदेति। यं तं अरिया आचिक्खन्ति—'उपेक्खको सतिमा सुखविहारी' ति ततियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। एवं पि, भिक्खवे, सफलो उपक्कमो होति, सफलं पधानं।

"पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु सुखस्स च पहाना दुक्खस्स [N. 18]

नीचे, पर्वत, कन्दरा, गिरिगुहा, श्मशान, वनप्रदेश, मैदान, पलाल के ढेर का उपभोग करता है। वह भोजन के बाद...पूर्ववत्[1]...आसन लगा, शरीर को सीधा रख, स्मृति को सम्मुख उपस्थित कर बैठता है। वह लोक में लोभ (अभिध्या) का त्यागकर लोभरहित चित्त से विचरण करता है, अभिध्या से चित्त को परिशुद्ध कर लेता है। व्यापाद (द्वेष) को छोड़, अव्यापन्नचित्त हो, सब प्राणियों के हितार्थ अनुकम्पायुक्त हो विचरण करता है! स्त्यानमृद्ध छोड़...औद्धत्य-कौकृत्य छोड़...विचिकित्सा छोड़...। वह चित्त के इन पाँच नीवरणों का परित्याग कर...पूर्ववत्[1]...प्रथम ध्यान को प्राप्त हो विचरण करता है। इस प्रकार भी, भिक्षुओ! उपक्रम व प्रधान सफल होते हैं।

और फिर भिक्षुओ! वितर्क-विचारों के उपशम से द्वितीय ध्यान...पूर्ववत्[1]...

१-१-१. द्र०—पीछे पृ० ३५८—३६०।

च पहाना, पुब्बेव सोमनस्सदोनस्सानं अत्थङ्गमा, अदुक्खमसुखं उपेक्खासतिपारिसुद्धिं चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। एवं पि, भिक्खवे, सफलो उपक्कमो होति, सफलं पधानं।

१७. "सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते पुब्बेनिवासानुस्सतिञाणाय चित्तं अभिनिन्नामेति। सो अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति, सेय्यथीदं--एकं पि जातिं द्वे पि जातियो तिस्सो पि जातियो चतस्सो पि जातियो पञ्च पि जातियो दस पि जातियो वीसं पि जातियो तिंसं पि जातियो चत्तालीसं पि जातियो पञ्ञासं पि जातियो जातिसतं पि जातिसहस्सं पि जातिसतसहस्सं पि अनेके पि संवट्टकप्पे अनेके पि विवट्टकप्पे अनेके पि संवट्टविवट्टकप्पे—'अमुत्रासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो-एवंसुखदुक्खप्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो अमुत्र उदपादिं; तत्रापासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवं सुखदुक्खप्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो इधूपपन्नो' ति। इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति। एवं पि, भिक्खवे, सफलो उपक्कमो होति, सफलं पधानं।

१८. "सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते सत्तानं चुतूपातञाणाय चित्तं अभिनिन्नामेति। सो दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सति चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे, सुगते दुग्गते [B. 16] यथाकम्मूपगे सत्ते पजानाति—'इमे वत भोन्तो सत्ता कायदुच्चरितेन समन्नागता वचीदुच्चरितेन समन्नागता मनोदुच्चरितेन समन्नागता अरियानं उपवादका मिच्छादिट्ठिका मिच्छादिट्ठिकम्मसमादाना, ते कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपन्ना, इमे वा

तृतीय ध्यान, चतुर्थ ध्यान को प्राप्त हो विचरण करता है। यों भी, भिक्षुओ ! भिक्षु के उपक्रम व प्रधान सफल होते हैं।

१७. वह, भिक्षुओ समाहितचित्त ... पूर्ववत्[1] ... अनेक प्रकार के पूर्वजन्मों का स्मरण करता है। यों भी भिक्षुओ ! उपक्रम व प्रधान सफल होते हैं।

१८. वह भिक्षु यों समाहितचित्त[2] ... हो दिव्य चक्षु से प्राणियों को च्युत होते,

१. द्र०—पीछे पृ० ३६१।

२. द्र०—पीछे पृ० ३६१।

पन भोन्तो सत्ता कायसुचरितेन समन्नागता वचीसुचरितेन समन्नागता मनोसुचरितेन समन्नागता अरियानं अनुपवादका सम्मादिट्ठिका सम्मादिट्ठिकम्मसमादाना, ते कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपन्ना' ति। इति दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते [N. 19] पस्सति चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे, सुगते दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानाति। एवं पि, भिक्खवे, सफलो उपक्कमो होति, सफलं पधानं।

१९. "सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे [R. 227] विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते आसवानं खयञाणाय चित्तं अभिनिन्नामेति। सो 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खसमुदयो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खनिरोधो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति; 'इमे आसवा' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं आसवसमुदयो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं आसवनिरोधो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं आसवनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति। तस्स एवं जानतो एवं पस्सतो कामासवा पि चित्तं विमुच्चति, भवासवा पि चित्तं विमुच्चति, अविज्जासवा पि चित्तं विमुच्चति। विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाति। एवं पि खो, भिक्खवे, सफलो उपक्कमो होति, सफलं पधानं।

एवंवादी, भिक्खवे, तथागता। एवंवादीनं, भिक्खवे, तथागतानं दस सहधम्मिका पासंसट्ठाना आगच्छन्ति।

४. तथागतानं दस पासंसट्ठाना

२०. "सचे, भिक्खवे, सत्ता पुब्बेकतहेतु सुखदुक्खं पटिसंवेदेन्ति; अद्धा,

---

उत्पन्न होते…जानता है। यों भी, भिक्षुओ! भिक्षु का प्रधान व उपक्रम सफल होता है।

१६. यों समाहितचित्त…पूर्ववत्[1]…जन्म क्षीण हो गया। साधना पूर्ण हुई, अब मेरा कोई करणीय शेष नहीं बचा—ऐसा जानता है। यों भी, भिक्षुओ! उपक्रम एवं प्रधान सफल होता है।

"भिक्षुओ! तथागत इस मत के प्रख्यापक हैं। भिक्षुओ! ऐसा मत मानने वाले तथागतों की धर्मानुसार प्रशंसा के दश स्थान हैं।

४. तथागत के दश प्रशंसा-स्थान

२०. (१) भिक्षुओ! यदि प्राणी पूर्वकृत कर्मों के कारण सुख-दुःख भोगते

---

१. द्र०—पीछे पृ०३६१ ३६२।

भिक्खवे, तथागतो पुब्बे सुकतकम्मकारी यं एतरहि एवरूपा अनासवा सुखा वेदना वेदेति। सचे, भिक्खवे, सत्ता इस्सरनिम्मानहेतु सुखदुक्खं पटिसंवेदेन्ति; अद्धा, भिक्खवे, तथागतो भद्दकेन इस्सरेन निम्मितो यं एतरहि [B. 17]एवरूपा अनासवा सुखा वेदना वेदेति। सचे, भिक्खवे, सत्ता सङ्गतिभावहेतु सुखदुक्खं पटिसवेदेन्ति; अद्धा, भिक्खवे, तथागतो कल्याणसङ्गतिको यं एतरहि एवरूपा अनासवा सुखा वेदना वेदेति। सचे, भिक्खवे, [N. 20] सत्ता अभिजातिहेतु सुखदुक्खं पटिसंवेदेन्ति; अद्धा, भिक्खवे, तथागतो कल्याणाभिजातिको यं एतरहि एवरूपा अनासवा सुखा वेदना वेदेति। सचे, भिक्खवे, सत्ता दिट्ठधम्मूपक्कमहेतु सुखदुक्खं पटिसवेदेन्ति, अद्धा, भिक्खवे, तथागतो कल्याणदिट्ठधम्मूपक्कमो यं एतरहि एवरूपा अनासवा सुखा वेदना वेदेति।

"सचे, भिक्खवे, सत्ता पुब्बेकतहेतु सुखदुक्खं पटिसंवेदेन्ति, पासंसो तथागतो; नो चे सत्ता पुब्बेकतहेतु सुखदुक्खं पटिसवेदेन्ति, पासंसो तथागतो। सचे, भिक्खवे, सत्ता इस्सरनिम्मानहेतु सुखदुक्खं पटिसंवेदेन्ति, पासंसो तथागतो; नो चे सत्ता इस्सरनिम्मानहेतु सुखदुक्खं पटिसंवेदेन्ति, पासंसो तथागतो। सचे, भिक्खवे, सत्ता सङ्गतिभावहेतु सुखदुक्खं पटिसवेदेन्ति, पासंसो तथागतो; नो चे सत्ता सङ्गतिभावहेतु सुखदुक्ख पटिसंवेदेन्ति, पासंसो तथागतो। सचे, भिक्खवे, सत्ता अभिजातिहेतु सुखदुक्खं पटिसंवेदेन्ति, पासंसो तथागतो; नो चे सत्ता अभिजातिहेतु सुखदुक्खं पटिसंवेदेन्ति,

---

अनुभव करते हैं तो अवश्य भिक्षुओ! तथागत पहले पुण्य करने वाले रहे होंगे, जो कि उसी के कारण आज आस्रवरहित (निर्मल) सुखमय वेदना का अनुभव कर रहे हैं; (२) यदि ये प्राणी ईश्वरनिर्माण के कारण उत्पन्न होते हैं, तो भिक्षुओ! वह ईश्वर अवश्य अच्छा (भद्र) रहा होगा जिसके कारण तथागत आज...। (३) सङ्गति (पूर्वजन्मकृत कर्मों के संसर्ग) से ये प्राणी हुए हैं तो भी तथागत के विषय में यही माना पड़ेगा कि वे पूर्वजन्म कर्मों के सत्संसर्ग ही आज...। (४) अभिजाति (कुल) के कारण यदि प्राणियों की उत्पत्ति मानी जाय तो भी मानना पड़ेगा कि तथागत उत्तम अभिजाति वाले हैं उसी के कारण आज...। (५) यदि यह कहो कि इसी जन्म के उपक्रम के कारण...तो तथागत इस जन्म के सुन्दर उपक्रम वाले... अनुभव कर रहे हैं। (६) यदि भिक्षुओ! प्राणी पूर्वकृत कर्मों के कारण सुख-दुःख अनुभव करते हैं तब तो तथागत प्रशंसनीय हैं ही; परन्तु यदि प्राणी पूर्वकृत कर्मों के प्रभाव से सुख-दुःख अनुभव नहीं करते तब भी तो तथागत प्रशंसनीय ही हैं। (७) भिक्षुओ यदि प्राणी ईश्वरनिर्माण के कारण...ईश्वरनिर्माण के

पासंसो तथागतो। सचे, भिक्खवे, सत्ता दिट्ठधम्मूपक्कमहेतु सुखदुक्खं पटिसंवेदेन्ति, पासंसो तथागतो; नो चे सत्ता दिट्ठधम्मूपक्कमहेतु [R. 228] सुखदुक्खं पटिसंवेदेन्ति, पासंसो तथागतो।

एवंवादी, भिक्खवे, तथागता। एवंवादीनं, भिक्खवे, तथागतानं इमे दस सहधम्मिका पासंसट्ठाना आगच्छन्ती'' ति।

२१. इदमवोच भगवा। अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति।

●

कारण नहीं भी हों तब भी···। (९) ···अभिजाति के कारण···। (१०) इस जन्म के उपक्रम (साधना) के कारण···इस जन्म के उपक्रम के कारण नहीं भी हों तब भी तथागत इन सुख वेदनाओं के कारण लोक में प्रशंसनीय ही हैं।

"भिक्षुओ! तथागत इस वाद को मानने वाले हैं। भिक्षुओ! ऐसे वाद की स्थापना करने वाले तथागत के साथ ये दश प्रशंसा स्थान जुड़े हुए हैं।"

२१. भगवान् ने यह उपदेश किया। प्रसन्नमना भिक्षुओं ने भगवान् के इस उपदेश का अभिनन्दन किया।

देवदहसुत्त समाप्त॥

●

२. पञ्चत्तयसुत्तं

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं [N. 21, B. 18] विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्य आरामे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं।

१. अपरन्तानुदिट्ठिनो अधिवुत्तिपदानि

भगवा एतदवोच—"सन्ति, भिक्खवे, एके समणब्राह्मणा अपरन्तकप्पिका अपरन्तानुदिट्ठिनो अपरन्तं आरब्भ अनेकविहितानि अधिवुत्तिपदानि अभिवदन्ति। 'सञ्ञी अत्ता होति अरोगो परं मरणा' ति—इत्थेके अभिवदन्ति; 'असञ्ञी अत्ता होति अरोगो परं मरणा' ति—इत्थेके अभिवदन्ति; 'नेवसञ्ञीनासञ्ञी अत्ता होति अरोगो परं मरणा' ति—इत्थेके अभिवदन्ति; सतो वा पन सत्तस्स उच्छेदं विनासं विभवं पञ्ञापेन्ति,

---

२. पञ्चत्रय सूत्र

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्तीस्थित अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। (वहाँ किसी समय) भगवान् ने भिक्षुओं को "भिक्षुओ" सम्बोधन कर (उन्हें देशनाहेतु) अपने पास बुलाया। "हाँ, भदन्त" कहकर वे भिक्षु भगवान् के सम्मुख सादर उपस्थित हुए।

१. अपरान्तानुदृष्टि अधियुक्तिवाद

भगवान् यों बोले—"भिक्षुओ! यहाँ कुछ श्रमण-ब्राह्मण ऐसे हैं जो मरने के बाद (अपरान्त) की स्थिति के विषय में कल्पना करते हुए अपने नानाविध मतवाद (मनोविकल्प) प्रस्तुत करते रहते हैं। उनमें से कुछ यह कहते हैं—(१) मरने के बाद भी हमारा यह आत्मा सचेतन (संज्ञी) रहता हुआ स्वस्थ तथा नित्य (मरने के बाद भी) रहता है। और दूसरे कुछ यह कहते हैं—(२) वह आत्मा इस शरीरपात (मरण) के बाद भी स्वस्थ व नित्य रहता है, परन्तु अचेतन होता हुआ रहता है। और (३) तीसरे प्रकार के श्रमण-ब्राह्मणों का यह कहना है—यह आत्मा मरणानन्तर न चेतन और न अचेतन अवस्थावाला होकर स्वस्थ व नित्य रहता है। और (४) चौथे प्रकार के श्रमण-ब्राह्मण आत्मा (सत्त्व) को नित्य व स्वस्थ मानते हुए भी उस आत्मा का उच्छेद, विभव (असत्ता) व विनाश बताते हैं। और (५) पाँचवे प्रकार के श्रमण-ब्राह्मण 'आत्मा का, नित्य होते हुए भी, इसी जन्म में निर्वाण हो जाता है'—ऐसा मानते हैं। यों ये सभी आत्मा को शाश्वत व स्वस्थ मान कर भी (१) मरणानन्तर भी उसका रहना या (२) उसका उच्छेद व विनाश प्रख्यापित करते रहते हैं, या (३) फिर ऐसी स्थिति में भी इसी

दिट्ठधम्मनिब्बानं वा पनेके अभिवदन्ति । इति सन्तं वा अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा सतो वा पन सत्तस्स उच्छेदं विनासं विभवं पञ्ञापेन्ति, दिट्ठधम्मनिब्बानं वा पनेके अभिवदन्ति । इति इमानि पञ्च हुत्वा तीणि होन्ति, तीणि हुत्वा पञ्च होन्ति—अयमुद्देसो पञ्चत्तयस्स ।

२. "तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा सञ्ञि अत्तानं [R. 229] पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा, रूपिं वा ते भोन्तो समणब्राह्मणा सञ्ञि अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा, अरूपिं वा ते भोन्तो समणब्राह्मणा सञ्ञि अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा, रूपिं च अरूपिं च वा ते भोन्तो समणब्राह्मणा सञ्ञि अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा, नेवरूपिं नारूपिं वा ते भोन्तो समणब्राह्मणा सञ्ञि अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा, एकत्तसञ्ञि वा ते भोन्तो समणब्राह्मणा सञ्ञि अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा, नानत्तसञ्ञि वा ते भोन्तो समणब्राह्मणा सञ्ञि अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा, परित्तसञ्ञि वा ते [N. 22] भोन्तो समणब्राह्मणा सञ्ञि अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा, अप्पमाणसञ्ञि वा ते भोन्तो समणब्राह्मणा सञ्ञि अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं

जन्म में मनुष्य का निर्वाण भी स्वीकार करते हैं। यों उन श्रमण-ब्राह्मणों के ये उक्त मतवाद सङ्ख्या में पाँच हैं फिर भी इन का तीन मतवादों में ही समाहार किया जा सकता है। या फिर ये वस्तुतः हैं तो तीन ही, समझाने भर के लिये इनका पाँच प्रकार से व्याख्यान कर दिया जाता है।

यों, यह इन पाँच मतवादों का नामसङ्कीर्तनमात्र (उद्देश) हुआ।

२. "यहाँ, भिक्षुओ ! कुछ श्रमण-ब्राह्मण जो आत्मा को मरणानन्तर नित्य, शाश्वत व स्वस्थ मानते हैं उनमें से कुछ उसे उस समय (मरणानन्तर) या तो रूपी (साकार) मानते हैं, या फिर अरूपी (निराकार), कुछ उसे उस समय रूपी-अरूपी—दोनों प्रकार का मानते हैं, या फिर कुछ लोग उसे न रूपी न अरूपी मानकर स्वस्थ शाश्वत सिद्ध करते हैं। कुछ यह मानते हैं कि वह एकात्मसंज्ञी (मरने के बाद सभी आत्माओं का एक सचेतन रूप में रहना) है। कुछ उसे उस अवस्था (मरणान्तर) में भी नाना आत्माओं के कारण नाना रूप से सचेतन मानते हैं (अर्थात् उस समय भी उन आत्माओं को अपने नाना होने का ज्ञान रहता है)। उस आत्मा के ज्ञान के विषय में भी उनमें मतभेद है। कुछ उसे पर्याप्त (=अल्प, परित्त) चेतना वाला बतलाते है, तो कुछ उसे अपरिमित (अप्रमाण) चेतना वाला घोषित करते हैं। इनमें से कुछ (आगे बढ़कर) विज्ञान-कात्स्न्र्य (विज्ञानकसिण)

[B. 19] मरणा, एतं वा पनेकेसं उपातिवत्ततं विञ्ञाणकसिणमेके अभिवदन्ति अप्पमाणं आनेञ्जं। तयिदं, भिक्खवे, तथागतो अभिजानाति।

"ये खो ते भोन्तो समणब्राह्मणा सञ्ञि अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा, रूपिं वा ते भोन्तो समणब्राह्मणा सञ्ञि अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा, अरूपिं वा ते भोन्तो समणब्राह्मणा सञ्ञि अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा, रूपिं च अरूपिं च वा ते भोन्तो समणब्राह्मणा सञ्ञि अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा, नेवरूपिं नारूपिं वा ते भोन्तो समणब्राह्मणा सञ्ञि अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा, एकत्तसञ्ञि वा ते भोन्तो समणब्राह्मणा सञ्ञि अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा, नानत्तसञ्ञि वा ते भोन्तो समणब्राह्मणा सञ्ञि अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा, परित्तसञ्ञि वा ते भोन्तो समणब्राह्मणा सञ्ञि अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा, अप्पमाणसञ्ञि वा ते भोन्तो समणब्राह्मणा सञ्ञि अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा, या वा पनेतासं सञ्ञानं [R. 230] परिसुद्धा परमा अग्गा अनुत्तरिया अक्खायति—यदि रूपसञ्ञानं यदि अरूपसञ्ञानं यदि एकत्तसञ्ञानं तदि नानत्तसञ्ञानं। 'नत्थि किञ्ची' ति आकिञ्चञ्ञायतनमेके अभिवदन्ति अप्पमाणं आनेञ्जं। 'तयिदं सङ्खतं ओळारिकं अत्थि खो पन सङ्खारानं निरोधो अत्थेतं' ति—इति विदित्वा तस्स निस्सरणदस्सावी तथागतो तदुपातिवत्तो।

को ही अप्रमाण (अतिविशाल) या फिर आनिञ्ज्य (निश्चल) मानते हैं। इन्हें तथागत भलीभाँति जानते हैं।

"और भिक्षुओ! यहाँ जो श्रमण-ब्राह्मण मरणानन्तर आत्मा को सचेतन (संज्ञी) मानते हुए इसे रूपी (साकार)...कुछ अरूपी (निराकार)...कुछ रूपी-अरूपी (साकार भी निराकार भी)...और न रूपी न अरूपी (न साकार न निराकार ही)...और कुछ नाना रूप से सचेतन...कुछ इसे पर्याप्त (परित्त)...और कुछ अप्रमाण (विशाल प्रमाण वाला) या आनिञ्ज्य (निश्चल) मानते हैं। परन्तु रूपसंज्ञा, अरूपसंज्ञा, एकत्वसंज्ञा या नानात्वसंज्ञा—इन संज्ञाओं में जो संज्ञा परिशुद्ध, परमश्रेष्ठ व अनुपम कही जाती है वह 'कुछ नहीं' (नत्थि किञ्चि)—इस आकिञ्चन्य (नहीं कुछ पन) आयतन (प्राणिलोक) को ही कोई-कोई श्रमण-ब्राह्मण अप्रमाण एवं आनिञ्ज्य बतलाते हैं। परन्तु वस्तुतः यह संस्कृत (कृत्रिम) है, स्थूल है। और 'संस्कारों (कृतों) का निरोध होता है'—भिक्षुओ! ऐसा जानकर उससे निकलने का रास्ता (उपाय) जानने वाले तथागत उससे विरत व अतिक्रान्त हो चुके हैं।

३. "तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा असञ्ञि अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा, रूपिं वा ते भोन्तो समणब्राह्मणा असञ्ञि अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा, अरूपिं वा ते भोन्तो समणब्राह्मणा असञ्ञि अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा, रूपिं च अरूपिं च वा ते भोन्तो समणब्राह्मणा असञ्ञि अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा, नेवरूपिं नारूपिं वा ते भोन्तो समणब्राह्मणा असञ्ञि अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा। तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा सञ्ञि अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा तेसमेते पटिक्कोसन्ति। तं किस्स हेतु? [N. 23] सञ्ञा रोगो सञ्ञा गण्डो सञ्ञा सल्लं, एतं सन्तं एतं पणीतं यदिदं— 'असञ्ञं' ति। तयिदं, भिक्खवे, तथागतो अभिजानाति।

"ये खो ते समणब्राह्मणा असञ्ञि अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा, रूपिं वा ते भोन्तो समणब्राह्मणा असञ्ञि अत्तानं पञ्ञापेन्ति [B. 20] अरोगं परं मरणा, अरूपिं वा ते भोन्तो समणब्राह्मणा असञ्ञि अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा, रूपिं च अरूपिं च वा ते भोन्तो समणब्राह्मणा असञ्ञि अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा, नेवरूपिं नारूपिं वा ते भोन्तो समणब्राह्मणा असञ्ञि अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा। यो हि कोचि, भिक्खवे, समणो वा ब्राह्मणो वा एवं वदेय्य—'अहमञ्ञत्र

---

३. "वहाँ, भिक्षुओ! जो श्रमण-ब्राह्मण आत्मा को नित्य और अचेतन (असंज्ञी) मानते हैं वे श्रमण-ब्राह्मण भी मरने के बाद उस नित्य अचेतन आत्मा को या तो साकार मानते हैं, या फिर निराकार या साकार-निराकार—दोनों ही, या फिर न साकार न निराकार—दोनों ही प्रकार का मानने वाले होते हैं।

"वहाँ, भिक्षुओ! जो श्रमण-ब्राह्मण आत्मा को चेतन मानने वाले हैं उन्हें ये अचेतनवादी श्रमण-ब्राह्मण निन्दनीय समझते हैं। वह किस कारण? वह इस कारण कि इनकी दृष्टि में चेतना (संज्ञा) रोग के समान है, गण्ड (व्रण) के समान है, शल्य (क्षत) के समान है। इसके विपरीत इनके मत में अचेतना (असंज्ञा) ही शान्त है, उत्तम (प्रणीत) है। भिक्षुओ! तथागत इन मतवादों से अभिज्ञ हैं।

"भिक्षुओ! जो कोई श्रमण-ब्राह्मण ऐसा कहें—'आत्मा मरने के बाद भी नित्य अचेतन है, भले ही फिर वह रूपी हो, या अरूपी, या रूपी-अरूपी—दोनों हो, या फिर रूपी-अरूपी—दोनों ही न हो'; तो भिक्षुओ! ऐसे मतवादी श्रमण-ब्राह्मण जब यह कहें कि 'मैं रूप से भिन्न हूँ, वेदना... संज्ञा... संस्कारों से भिन्न हूँ। वैसा होता हुआ भी मैं विज्ञान के आवागमन, जन्म-मरण, वृद्धि, विरूढि, वैपुल्य को जानूँगा'

रूपा, अञ्ञत्र वेदनाय, अञ्ञत्र सञ्ञाय, अञ्ञत्र सङ्खारेहि, विञ्ञाणस्स आगतिं वा गतिं वा चुतिं वा उपपत्तिं वा वुद्धिं वा विरूळ्हिं वा वेपुल्लं वा पञ्ञापेस्सामी' ति—नेतं ठानं विज्जति। 'तयिदं सङ्खतं ओळारिकं अत्थि [R. 231] खो पन सङ्खारानं निरोधो अत्थेतं' ति—इति विदित्वा तस्स निस्सरणदस्सावी तथागतो तदुपातिवत्तो।

४. "तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा नेवसञ्ञीनासञ्ञिं अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा, रूपिं वा ते भोन्तो समणब्राह्मणा नेवसञ्ञीनासञ्ञिं अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा, अरूपिं वा ते भोन्तो समणब्राह्मणा नेवसञ्ञीनासञ्ञिं अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा, रूपिं च अरूपिं च वा ते भोन्तो समणब्राह्मणा नेवसञ्ञीनासञ्ञिं अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा, नेवरूपिं नारूपिं वा ते भोन्तो समणब्राह्मणा नेवसञ्ञीनासञ्ञिं अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा। तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा सञ्ञिं अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा तेसमेते पटिक्कोसन्ति, ये पि ते भोन्तो समणब्राह्मणा असञ्ञिं अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा तेसमेते पटिक्कोसन्ति। तं किस्स हेतु? सञ्ञा रोगो, सञ्ञा गण्डो, सञ्ञा सल्लं, असञ्ञा सम्मोहो, एतं सन्तं एतं पणीतं यदिदं—[N. 24] 'नेवसञ्ञानासञ्ञं' ति। तयिदं, भिक्खवे, तथागतो अभिजानाति।

तो उसका यह कहना उचित नहीं लगता; क्योंकि वह (विज्ञान) वस्तुतः संस्कृत है, और संस्कारों का निरोध सम्भव है ही। भिक्षुओ! तथागत इस वास्तविकता (सचाई) को जानकर उस मतवाद से बचने का उपाय समझ चुके हैं और उक्त मतवाद से विरत (अनासक्त) है।

४. "वहाँ ये जो श्रमण-ब्राह्मण मरणानन्तर आत्मा को न चेतन या न अचेतन मानते हैं, उनमें से कुछ उसे उस अवस्था (न चेतन, न अचेतन) में भी रूपी… अरूपी…न रूपी न अरूपी…न नैवरूपी या नारूपी मानते हैं। इतना ही नहीं, ये ऐसा मानने वाले श्रमण-ब्राह्मण उन आत्मा को नित्य व चेतन मानने वालों को तथा नित्य परन्तु अचेतन मानने वालों को कोसते भी हैं, उन की निन्दा भी करते हैं। वह क्यों? इसलिये कि उनके मत में 'संज्ञा' तो रोग, गण्ड, शल्य की तरह है। जबकि 'असंज्ञा' भी एक प्रकार से सम्मोह ही है। उनके मत में आत्मा का शान्त व उत्तम पद वही है जब उसे 'चेतन न अचेतन' के रूप में माना जाय। तथागत इस मतवादी के विषय सम्यक्तया जानते हैं।

"ये खो ते भोन्तो समणब्राह्मणा नेवसञ्ञीनासञ्ञिं अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा, रूपिं वा ते भोन्तो समणब्राह्मणा नेवसञ्ञीनासञ्ञिं अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा, अरूपिं वा ते भोन्तो समणब्राह्मणा नेवसञ्ञीनासञ्ञिं अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा, [B. 21] रूपिं च अरूपिं च वा ते भोन्तो समणब्राह्मणा नेवसञ्ञीनासञ्ञिं अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा, नेवरूपिं नारूपिं वा ते भोन्तो समणब्राह्मणा नेवसञ्ञीनासञ्ञिं अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा। ये हि केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा दिट्ठसुतमुतविञ्ञातब्बसङ्खारमत्तेन एतस्स आयतनस्स उपसम्पदं पञ्ञापेन्ति, ब्यसनं हेतं, भिक्खवे, [R. 232] अक्खायति एतस्स आयतनस्स उपसम्पदाय। न हेतं, भिक्खवे, आयतनं सङ्खारसमापत्तिपत्तब्बमक्खायति; सङ्खारावसेससमापत्तिपत्तब्बमेतं, भिक्खवे, आयतनमक्खायति। 'तयिदं सङ्खतं ओळारिकं अत्थि खो पन सङ्खारानं निरोधो अत्थेतं' ति—इति विदित्वा तस्स निस्सरणदस्सावी तथागतो तदुपातिवत्तो।

५. "तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा सतो सत्तस्स उच्छेदं विनासं विभवं पञ्ञापेन्ति; तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा सञ्ञिं अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा तेसमेते पटिक्कोसन्ति, ये पि ते भोन्तो समणब्राह्मणा असञ्ञिं अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा तेसमेते पटिक्कोसन्ति, ये

"भिक्षुओ! ये श्रमण-ब्राह्मण न चेतन न अचेतन आत्मा को मरणानन्तर भी स्वस्थ, नित्य न रूपी…अरूपी…रूपी अरूपी…नैव रूपी नारूपी…मानते हैं। भिक्षुओ! जो कोई श्रमण-ब्राह्मण दृष्ट, श्रुत, स्मृत, विज्ञेय इस आयतन (न चेतन न अचेतन—नैव संज्ञा नासंज्ञा वाले लोक) को संस्कारमात्र से प्राप्ति (उपसम्पदा) मानते हैं, तो भिक्षुओ! इस आयतन की प्राप्ति का यह व्यसन (अनिष्ट) ही कहा जायगा। भिक्षुओ! यह आयतन संस्कारसमापत्ति (क्रियमाण समाधि) से ही प्राप्त नहीं होता। यह आयतन तो संस्कारावशेष(संस्कारनिरोध)समापत्ति से ही प्राप्त किया जा सकता है। इस तरह 'यह संस्कारसमापत्ति भी संस्कृत (कृत्रिम) ही हुई और सभी संस्कारों का निरोध एक न एक दिन होना ही है, तो यहाँ नित्यता कैसी!'—यह जानकर तथागत इस मतवाद से दूर रहने का उपाय जानते हुए इससे विरत ही रहते हैं।

५. "यहाँ कुछ श्रमण-ब्राह्मण विद्यमान (सत्) सत्त्व का उच्छेद, विनाश, क्षय मानते हैं। ये उन श्रमण-ब्राह्मणों की, जो आत्मा को नित्य चेतन…नित्य अचेतन…नित्य चेतन-अचेतन…नित्य न चेतन…मानते हैं, निन्दा करते हैं उन्हें।

पि ते भोन्तो समणब्राह्मणा नेवसञ्ञीनासञ्ञि अत्तानं पञ्ञापेन्ति अरोगं परं मरणा तेसमेते पटिक्कोसन्ति। तं किस्स हेतु ? सब्बे पिमे भोन्तो समण-ब्राह्मणा उद्धं सरं आसत्तिं येव अभिवदन्ति—'इति पेच्च भविस्साम, इति पेच्च भविस्सामा' ति। सेय्यथापि नाम वाणिजस्स वाणिज्जाय गच्छतो एवं होति—'इतो मे इदं भविस्सति, इमिना इदं लच्छामी' ति एवमेविमे भोन्तो समणब्राह्मणा वाणिजूपमा मञ्ञे पटिभन्ति—'इति पेच्च भविस्साम, इति पेच्च भविस्सामा' ति। तयिदं, भिक्खवे, तथागतो अभिजानाति।

[N. 25] "ये खो ते भोन्तो समणब्राह्मणा सतो सत्तस्स उच्छेदं विनासं विभवं पञ्ञापेन्ति ते सक्कायभया सक्कायपरिजेगुच्छा सक्कायञ्ञेव अनु-परिधावन्ति अनुपरिवत्तन्ति। सेय्यथापि नाम सा गद्दुलबद्धो दळ्हे थम्भे [R. 233] वा खिले वा उपनिबद्धो तमेव थम्भं वा खिलं वा अनुपरि-[B. 22] धावति अनुपरिवत्तति; एवमेविमे भोन्तो समणब्राह्मणा सक्काय-भया सक्कायपरिजेगुच्छा सक्कायञ्ञेव अनुपरिधावन्ति अनुपरिवत्तन्ति। 'तयिदं सङ्खतं ओळारिकं अत्थि खो पन सङ्खारानं निरोधो अत्थेत' ति—इति विदित्वा तस्स निस्सरणदस्सावी तथागतो तदुपातिवत्तो।

६. "ये हि केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा अपरन्तकप्पिका

कोसते हैं। यह किस लिये ? ये सभी श्रमण-ब्राह्मण उनके विषय में कहते हैं—'ये सभी श्रमण-ब्राह्मण अग्रिम लोक की आसक्ति की ही बात करते हैं कि 'मैं मरकर ऐसा होऊँगा, या फिर मर कर ऐसा होऊँगा'। यों कहते हुए ये श्रमण-ब्राह्मण उस बनिये (व्यापारी) की तरह ही लगते हैं जो व्यापार के लिये जाते समय यों सोचता रहता है कि 'यहाँ से मुझे इतना मिलेगा, इससे मुझे इतना लाभांश मिलेगा'। इसी तरह ये श्रमण-ब्राह्मण भी, उस बनिये की तरह, यही कहते रहते हैं कि 'मरने पर मैं यह होऊँगा, या यह होऊँगा'। भिक्षुओ ! तथागत इस बात को भी जानते हैं।

"जो श्रमण-ब्राह्मण इस विद्यमान सत्त्व (चेतन-सन्तति) का उच्छेद, विनाश या विभव मानते हैं वे सत्काय (आत्मा की नित्यता मानने) के भय से, सत्काय के प्रति घृणा से (फिर भी) सत्काय की ओर ही दौड़ते हैं, उसी के पीछे लगे रहते रहते हैं। जैसे कोई कुत्ता, खम्भे या खूँटे में डंडे से बँधा उसी खम्भे या खूँटे के चारों ओर घूमता है, चक्कर लगाता है; इसी तरह ये श्रमण-ब्राह्मण भी उस सत्काय के ही चारों ओर घूम रहे हैं। पर वस्तुतः यह (सत्काय) भी संस्कृत है···अतः तथागत उसे विरत हैं।

६. "भिक्षुओ ! जो कोई श्रमण-ब्राह्मण अपरान्तकल्पित होते हुए अपने ऐसे

अपरन्तानुदिट्ठिनो अपरन्तं आरब्भ अनेकविहितानि अधिवुत्तिपदानि अभिवदन्ति, सब्बे ते इमानेव पञ्चायतनानि अभिवदन्ति, एतेसं वा अञ्ञतरं।

२. पुब्बन्तानुदिट्ठिनो अधिवुत्तिपदानि

७. "सन्ति, भिक्खवे, एके समणब्राह्मणा पुब्बन्तकप्पिका पुब्बन्तानुदिट्ठिनो पुब्बन्तं आरब्भ अनेकविहितानि अधिवुत्तिपदानि अभिदवन्ति। 'सस्सतो अत्ता च लोको च, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' ति—इत्थेके अभिवदन्ति, 'असस्सतो अत्ता च लोको च, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' ति—इत्थेके अभिवदन्ति, 'सस्सतो असस्सतो च अत्ता च लोको च, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' ति इत्थेके अभिवदन्ति, 'नेवसस्सतो नासस्सतो अत्ता च लोको च, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' ति—इत्थेके अभिवदन्ति, 'अन्तवा अत्ता च लोको च, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' ति—इत्थेके अभिवदन्ति, 'अनन्तवा अत्ता च लोको च, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' ति—इत्थेके अभिवदन्ति, 'अन्तवा च अनन्तवा च अत्ता च लोको च, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' ति--इत्थेके अभिवदन्ति, 'नेवन्तवा नानन्तवा अत्ता च लोको च, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' ति—इत्थेके अभिवदन्ति, 'एकत्तसञ्ञी अत्ता च लोको च, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' ति—इत्थेके अभिवदन्ति, 'नानत्तसञ्ञी अत्ता च लोको च, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' ति—इत्थेके अभिवदन्ति, 'परित्तसञ्ञी अत्ता च लोको [N. 26]

नानाविध मतवाद अपरान्त की दृष्टि (मान्यता) रखते हुए प्रस्तुत करते रहते हैं, वे सभी इन्हीं पाँच प्रकार के आयतनों (वादों) का सहारा लेकर अपनी बात कहते हैं, या इनमें से किसी एक के सहारे से अपनी मान्यताओं को प्रस्तुत करते हैं।

२. पूर्वान्तानुदृष्टिपोषक अधियुक्तिवाद

७. "भिक्षुओ! कुछ दूसरे श्रमण-ब्राह्मण ऐसे भी हैं जो पूर्वान्तकालिक या पूर्वान्तानुदृष्टि (संसार के प्रारम्भ—पूर्व—के विषय में कल्पना करने वाले) होते हुए इसी से सम्बद्ध तरह-तरह के मत प्रस्तुत करते रहते हैं। जैसे—(१) 'यह आत्मा और लोक शाश्वत (नित्य=अनादि) है'—यही बात सत्य है, बाकी सब झूठ है; और कोई कहते हैं—(२) 'यह आत्मा और लोक अशाश्वत (अनित्य=सादि) है'—यही बात सत्य है, बाकी सब झूठ है; और कुछ लोग कहते हैं—(३) 'यह आत्मा और लोक शाश्वत भी है, अशाश्वत भी है'—यही बात...; बाकी कुछ लोग यह कहते हैं—(४) 'यह आत्मा और लोक न शाश्वत है न अशाश्वत ही'—यही बात सत्य है, बाकी सब झूठ है। कुछ लोग यह कहते हैं—(५) 'यह आत्मा और लोक सान्त (अन्तवान्) है'...; (६) 'यह आत्मा और

च, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' ति--इत्थेके अभिवदन्ति, 'अप्पमाणसञ्ञी अत्ता च लोको च, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं" ति—इत्थेके अभिवदन्ति, 'एकन्तसुखी अत्ता च लोको च, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' ति--इत्थेके अभि- [R.234] वदन्ति, एकन्तदुक्खी अत्ता च लोको च, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' ति--इत्थेके अभिवदन्ति, 'सुखदुक्खी अत्ता च लोको च, इदमेव सच्चं मोघ-मञ्ञं' ति--इत्थेके अभिवदन्ति, 'अदुक्खमसुखी अत्ता च लोको च, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' ति—इत्थेके अभिवदन्ति।

[B. 23] ८. "तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवं-दिट्ठिनो—'सस्सतो अत्ता च लोको च, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' ति, तेसं वत अञ्ञत्रेव सद्धाय अञ्ञत्र रुचिया अञ्ञत्र अनुस्सवा अञ्ञत्र आकार-परिवितक्का अञ्ञत्र दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया पच्चत्तं येव ञाणं भविस्सति परिसुद्धं परियोदातं ति--नेतं ठानं विज्जति। पच्चत्तं खो पन, भिक्खवे, ञाणे असति परिसुद्धे परियोदाते यदपि ते भोन्तो समणब्राह्मणा तत्थ ञाण-भागमत्तमेव परियोदपन्ति तदपि तेसं भवतं समणब्राह्मणानं उपादानमक्खा-यति। 'तयिदं सङ्खतं ओळारिकं अत्थि खो पन सङ्खारानं निरोधो अत्थेतं' ति--इति विदित्वा तस्स निस्सरणदस्सावी तथागतो तदुपातिवत्तो।

लोक अनन्त (अन्त वाला नहीं) है'···, (७) 'यह आत्मा और लोक सान्त भी है अनन्त भी है'···, (८) 'यह लोक न सान्त है न अनन्त है'···। (९) 'यह आत्मा और लोक सत्त्वसंज्ञी (आत्मा का एकत्व) है'···, (१०) यह···नानात्व-संज्ञी (आत्मा का अनेकत्व) है'···, (११) यह···अल्पप्रमाण (परीत्त) संज्ञा वाला है"···(१२) 'यह···असीमित प्रमाण संज्ञा वाला है'···, (१३) 'यह··· एकान्ततः सुखी है'···, (१४) यह···एकान्ततः दुःखी है'···, (१५) 'यह···सुखी भी है, दुःखी भी है'···, (१६) 'यह न सुखी है, न दुःखी है'—यही बात सत्य है—बाकी सब झूठ है—ऐसा कुछ श्रमण-ब्राह्मण कहते हैं।

८. "वहाँ, भिक्षुओ ! जो श्रमण-ब्राह्मण ऐसा मत ऐसा विचार रखते हैं— 'यह आत्मा और लोक शाश्वत है—यही मत ठीक है. बाकी सब गलत; उनको अपनी श्रद्धा, रुचि, अनुश्रव (गुरुमुख से शास्त्र-श्रवण), अपने शास्त्रग्रन्थ, आकार-परिवितर्क और दृष्टिनिध्यानक्षान्ति से आगे अध्यात्म (अपने ही अन्दर) परिशुद्ध, पर्यवदात ज्ञान हो—यह सम्भव नहीं। इस अध्यात्मपरिशुद्ध, पर्यवदात ज्ञान के न होने पर भी इन श्रमण-ब्राह्मणों द्वारा जो कुछ ज्ञानलेश समाज के सामने रखा जाता है वह भी उनका उपादान (आग्रह) मात्र है—ऐसा कहा जा सकता है; क्योंकि

९. "तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—'असस्सतो अत्ता च लोको च, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' ति···पे०···सस्सतो च असस्सतो च अत्ता च लोको च···नेवसस्सतो नासस्सतो अत्ता च लोको च···अन्तवा अत्ता च लोको च···अनन्तवा अत्ता च लोको च···अन्तवा च अनन्तवा च अत्ता च लोको च···नेवन्तवा नानन्तवा अत्ता च लोको च···एकत्तसञ्ञी अत्ता च लोको च···नानत्तसञ्ञी अत्ता च लोको च···परित्तसञ्ञी अत्ता च लोको च···अप्पमाणसञ्ञी अत्ता च लोको च···एकन्तसुखी अत्ता च लोको च···एकन्तदुक्खी अत्ता च लोको च···सुखदुक्खी अत्ता च लोको च··· अदुक्खमसुखी अत्ता च लोको च, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं ति, तेसं वत अञ्ञत्रेव सद्धाय अञ्ञत्र रुचिया अञ्ञत्र अनुस्सवा अञ्ञत्र आकारपरिवितक्का अञ्ञत्र दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया पच्चत्तं येव ञाणं भविस्सति परिसुद्धं परियोदातं ति—नेतं ठानं विज्जति। पच्चत्तं खो पन, [N. 27, R. 235] भिक्खवे, ञाणे असति परिसुद्धे परियोदाते यदपि ते भोन्तो समणब्राह्मणा तत्थ ञाणभागमत्तमेव परियोदपेन्ति तदपि तेसं भवतं समणब्राह्मणानं उपादानमक्खायति। 'तयिदं सङ्खतं ओळारिकं अत्थि खो पन सङ्खारानं निरोधो अत्थेतं' ति—इति विदित्वा तस्स निस्सरणदस्सावी तथागतो तदुपातिवत्तो।

३. पुब्बन्तापरन्तानुदिट्ठीनं पटिनिस्सग्गा

१०. "इध, भिक्खवे, एकच्चो समणो वा ब्राह्मणो वा पुब्ब- [B. 24] न्तानुदिट्ठीनं च पटिनिस्सग्गा, अपरन्तानुदिट्ठीनं च पटिनिस्सग्गा, सब्बसो कामसंयोजनानं अनधिट्ठाना, पविवेकं पीतिं उपसम्पज्ज विहरति—'एतं सन्तं पणीतं यदिदं पविवेकं पीतिं उपसम्पज्ज विहरामी' ति। तस्स सा पवि-

---

वस्तुतः वह संस्कृत है। और सभी संस्कृत धर्मों (संस्कारों) का निरोध सम्भव है ही—ऐसा जानकर तथागत उससे दूर रहने का उपाय समझे-बूझे हुए हैं।

९. और, भिक्षुओ ! वहाँ जो कई श्रमण-ब्राह्मण ऐसा कहने या ऐसा विचार रखते हैं कि यह आत्मा और लोक अशाश्वत है···पूर्ववत्[1]···तथागत इससे दूर रहने का उपाय समझे-बूझे हुए हैं।

३. पूर्वान्त एवं अपरान्त दृष्टियों का त्याग

१०. यहाँ, भिक्षुओ ! कोई श्रमण या ब्राह्मण इन पूर्वोक्त पूर्वान्त एवं अपरान्त अनुदृष्टियों को छोड़, इनसे भी आगे बढ़कर, काम-संयोजनों (विषय-बन्धनों) का भी सर्वथा परित्याग करता हुआ प्रविवेका (एकान्त चिन्तन की) प्रीति (सुख) की साधना करता हुआ विचरण करता है, और वह इस विषय में यों सोचता है—

---

१. अनुपद में आये ८ वें पैरे के पाठ की तरह ही इस का भी अनुवाद समझना चाहिये।

वेका पीति निरुज्झति। पविवेकाय पीतिया निरोधा उपज्जति दोमनस्सं, दोमनस्सस्स निरोधा उप्पज्जति पविवेका पीति। सेय्यथापि, भिक्खवे, यं छाया जहति तं आतपो फरति, यं आतपो जहति तं छाया फरति; एवमेव खो, भिक्खवे, पविवेकाय पीतिया निरोधा उप्पज्जति दोमनस्सं, दोमनस्सस्स निरोधा उप्पज्जति पविवेका पीति। तयिदं, भिक्खवे, तथागतो अभिजानाति। अयं खो भवं समणो वा ब्राह्मणो वा पुब्बन्तानुदिट्ठीनं च पटिनिस्सग्गा, अपरन्तानुदिट्ठीनं च पटिनिस्सग्गा, सब्बसो कामसंयोजनानं अनधिट्ठाना, पविवेकं पीतिं उपसम्पज्ज विहरति—'एतं सन्तं एतं पणीतं यदिदं पविवेकं पीतिं उपसम्पज्ज विहरामी' ति। तस्स सा पविवेका पीति निरुज्झति। पविवेकाय पीतिया निरोधा उप्पज्जति दोमनस्सं, दोमनस्सस्स निरोधा उप्पज्जति पविवेका पीति। 'तयिदं सङ्खतं ओळारिकं अत्थि खो पन सङ्खारानं निरोधो अत्थेतं' ति—इति विदित्वा तस्स निस्सरणदस्सावी तथागतो तदुपातिवत्तो।

११. "इध पन, भिक्खवे, एकच्चो समणो वा ब्राह्मणो वा पुब्बन्तानुदिट्ठीनं च पटिनिस्सग्गा, अपरन्तानुदिट्ठीनं च पटिनिस्सग्गा, सब्बसो काम- [N. 28] संयोजनानं अनधिट्ठाना, पविवेकाय पीतिया समतिक्कमा निरामिसं सुखं उपसम्पज्ज विहरति—'एतं सन्तं एतं पणीतं यदिदं निरामिसं

'यही शान्त एवं उत्तम पद (साधना=उपाय) है कि मैं इस प्रविवेका प्रीति की साधना करता रहूँ'। परन्तु उसकी, कुछ समय बीतने पर, वह प्रविवेका प्रीति निरुद्ध हो जाती है और उस (निरोध) के कारण उसे दौर्मनस्य (खेद) उत्पन्न होने लगता है। फिर यह क्रम निरन्तर चलता रहता है अर्थात् कभी प्रीति-निरोध हो जाता है तो दौर्मनस्य का उत्पाद हो जाता है, कभी दौर्मनस्य का निरोध होकर प्रीति का उत्पाद हो जाता है। जैसे छाया हटती है तो धूप उसे घेर लेती है और धूप हटती है तो छाया उसका साथ पकड़ लेती है। इसी तरह भिक्षुओ! प्रविवेका प्रीति के निरोध से दौर्मनस्य का उत्पाद एवं दौर्मनस्य-निरोधानन्तर प्रविवेका प्रीति का उत्पाद होता रहता है। यों, ये उत्पाद एवं निरोध संस्कृत हुए और संस्कारों का निरोध कभी न कभी होगा ही। इस निरोध के रहते प्रविवेका प्रीति की नित्यता कहाँ ठहर पायगी!—तथागत इस बात को भलीभाँति जानते हैं। ये श्रमण-ब्राह्मण पूर्वान्त व अपरान्त दृष्टियों का परित्याग...निरोध कभी न कभी होगा ही—यह जानकर उससे बचने का उपाय समझने वाले तथागत उससे विरत रहते हैं।

११. भिक्षुओ! यहाँ कोई श्रमण ब्राह्मण पूर्वान्त...अपरान्त...कामसंयोजनों...

सुखं उपसम्पज्ज विहरामी' ति। तस्स तं निरामिसं सुखं निरुज्झति। निरामिसस्स सुखस्स निरोधा उप्पज्जति पविवेका पीति, पविवेकाय पीतिया निरोधा उप्पज्जति निरामिसं सुखं। सेय्यथापि, भिक्खवे, यं [R. 236] छाया जहति तं आतपो फरति, यं आतपो जहति तं छाया फरति; एवमेव खो, भिक्खवे, निरामिसस्स सुखस्स निरोधा उप्पज्जति पविवेका पीति, पविवेकाय पीतिया निरोधा उप्पज्जति निरामिसं सुखं। तयिदं, भिक्खवे, तथागतो अभिजानाति। अयं खो भवं समणो वा ब्राह्मणो वा पुब्बन्तानुदिट्ठीनं च पटिनिस्सग्गा, अपरन्तानुदिट्ठीनं च पटिनिस्सग्गा, सब्बसो कामसंयोजनानं अनधिट्ठाना, पविवेकाय पीतिया समतिक्कमा, निरामिसं सुखं उपसम्पज्ज विहरति—'एतं सन्तं एतं पणीतं यदिदं निरामिसं सुखं उपसम्पज्ज विहरामी' ति। तस्स तं निरामिसं सुखं निरुज्झति। [B. 25] निरामिसस्स सुखस्स निरोधा उप्पज्जति पविवेका पीति, पविवेकाय पीतिया निरोधा उप्पज्जति निरामिसं सुखं। 'तयिदं सङ्खतं ओळारिकं अत्थि खो पन सङ्खारानं निरोधो अत्थेतं' ति—इति विदित्वा तस्स निस्सरणदस्सावी तथागतो तदुपातिवत्तो।

१२. "इध पन, भिक्खवे, एकच्चो समणो वा ब्राह्मणो वा पुब्बन्तानुदिट्ठीनं च पटिनिस्सग्गा, अपरन्तानुदिट्ठीनं च पटिनिस्सग्गा, सब्बसो कामसंयोजनानं अनधिट्ठाना, पविवेकाय पीतिया समतिक्कमा, निरामिसस्स सुखस्स समतिक्कमा, अदुक्खमसुखं वेदनं उपसम्पज्ज विहरति—'एतं सन्तं एतं पणीतं यदिदं अदुक्खमसुखं वेदनं उपसम्पज्ज विहरामी' ति। तस्स सा अदुक्खमसुखा वेदना निरुज्झति। अदुक्खमसुखाय वेदनाय निरोधा उप्पज्जति निरामिसं सुखं, निरामिसस्स सुखस्स निरोधा उप्पज्जति अदुक्खमसुखा वेदना। सेय्यथापि, भिक्खवे, यं छाया जहति तं आतपो फरति, यं आतपो जहति तं छाया फरति; एवमेव खो, भिक्खवे, अदुक्खमसुखाय वेदनाय निरोधा उप्पज्जति निरामिसं सुखं, निरामिसस्स सुखस्स

प्रविवेका प्रीति से भी आगे बढ़कर निर्विषयक सुख को प्राप्त हो उसकी साधना करता है, और उसके विषय में यह दृढ़ धारणा बना लेता है कि यही शान्त व उत्तम पद...पूर्ववत्...यह समझकर उससे बचने का उपाय जानने वाले तथागत उससे दूर रहते हैं।

१२. यहाँ भिक्षुओ ! कोई श्रमण ब्राह्मण पूर्वान्त दृष्टियों...अपरान्त दृष्टियों... कामसंयोजनों का सर्वथा परित्याग करते हुए प्रविवेका प्रीति से भी आगे बढ़ कर,

निरोधा उप्पज्जति अदुक्खमसुखा वेदना। तयिदं, भिक्खवे, तथागतो अभिजानाति। अयं खो भवं समणो वा ब्राह्मणो वा पुब्बन्तानुदिट्ठीनं च पटिनिस्सग्गा, अपरन्तानुदिट्ठीनंच पटिनिस्सग्गा, सब्बसो कामसंयोजनानं अनधि-
[N. 29] ट्ठाना, पविवेकाय पीतिया समतिक्कमा, निरामिसस्स सुखस्स समतिक्कमा, अदुक्खमसुखं वेदनं उपसम्पज्ज विहरति—'एतं सतं एतं पणीतं
[R. 237] यदिदं अदुक्खमसुखं वेदनं उपसम्पज्ज विहरामी' ति। तस्स सा अदुक्खमसुखा वेदना निरुज्झति। अदुक्खमसुखाय वेदनाय निरोधा उप्पज्जति निरामिसं सुखं, निरामिसस्स सुखस्स निरोधा उप्पज्जति अदुक्खमसुखा वेदना। 'तयिदं सङ्खतं ओळारिकं अत्थि खो पन सङ्खारानं निरोधो अत्थेतं' ति—इति विदित्वा तस्स निस्सरणदस्सावी तथागतो तदुपातिवत्तो।

१३. "इध पन, भिक्खवे, एकच्चो समणो वा ब्राह्मणो वा पुब्बन्तानुदिट्ठीनं च पटिनिस्सग्गा, अपरन्तानुदिट्ठीनं च पटिनिस्सग्गा, सब्बसो कामसंयोजनानं अनधिट्ठाना, पविवेकाय पीतिया समतिक्कमा, निरामिसस्स सुखस्स समतिक्कमा, अदुक्खमसुखाय वेदनाय समतिक्कमा--'सन्तोहमस्मि, निब्बुतोहमस्मि, अनुपादानोहमस्मी' ति समनुपस्सति। तयिदं, भिक्खवे, तथागतो अभिजानाति। अयं खो भवं समणो वा ब्राह्मणो वा पुब्बन्तानु-
[B. 26] दिट्ठीनं च पटिनिस्सग्गा, अपरन्तानुदिट्ठीनं च पटिनिस्सग्गा, सब्बसो कामसंयोजनानं अनधिट्ठाना, पविवेकाय पीतिया समतिक्कमा, निरामिसस्स सुखस्स समतिक्कमा, अदुक्खमसुखाय वेदनाय समतिक्कमा—'सन्तोहमस्मि, निब्बुतोहमस्मि, अनुपादानोहमस्मी' ति समनुपस्सति; अद्धा अयमायस्मा निब्बानसप्पायं येव पटिपदं अभिवदति। अथ च पनायं भवं

निरामिष सुख वेदना को भी अतिक्रान्त कर, अदुःख असुख वेदना का अनुभव करता हुआ उसी की साधना करता है और उसके विषय में मानने लगता है कि यही शान्त और उत्तम पद है...पूर्ववत्...तथागत उससे दूर रहते हैं।

१३. "और फिर, भिक्षुओ! यहाँ कोई श्रमण ब्राह्मण पूर्वान्त...अपरान्त...कामसंयोजनों...प्रविवेका प्रीति...निर्विषयक सुख...अदुःख असुख वेदना को भी अतिक्रान्त कर 'मैं शान्त हूँ, मै निर्वृत हूँ, मैं अपरिग्रही हूँ'—ऐसी साधना में ध्यान लगाता है...पूर्ववत्...अवश्य यह श्रमण-ब्राह्मण ऐसा करता हुआ कुछ न कुछ निर्वाणानुकूल मार्ग को ही अपनाता है, परन्तु यह पूर्वान्तानुदृष्टि...अदुःखा असुख

समणो वा ब्राह्मणो वा पुब्बन्तानुदिट्ठि वा उपादियमानो उपादियति, अपरन्तानुदिट्ठि वा उपादियमानो उपादियति, कामसंयोजनं वा उपादियमानो उपादियति, पविवेकं वा पीतिं उपादियमानो उपादियति, निरामिसं वा सुखं उपादियमानो उपादियति, अदुक्खमसुखं वा वेदनं उपादियमानो उपादियति। यं च खो अयमायस्मा—'सन्तोहमस्मि, निब्बुतोहमस्मि, अनुपादानोहमस्मी' ति समनुपस्सति तदपि इमस्स भोतो समणस्स ब्राह्मणस्स उपादानमक्खायति। 'तयिदं सङ्खतं ओळारिकं अत्थि खो पन सङ्खारानं निरोधो अत्थेतं' ति—इति विदित्वा तस्स निस्सरणदस्सावी तथागतो तदुपातिवत्तो।

"इदं खो पन, भिक्खवे, तथागतेन अनुत्तरं सन्तिवरपदं अभिसम्बुद्धं यदिदं—छन्नं फस्सायतनानं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं [N. 30] च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं विदित्वा अनुपादा- [R. 238] विमोक्खो" ति।

१४. इदमवोच भगवा। अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति।

वेदना में उपादान करता है फिर उसे छोड़ता है। तो ये उपादान और त्याग भी तो संस्कृत हैं ! संस्कृतों का निरोध यथाकथमपि सम्भव है ही'''तथागत उससे विरत रहते हैं।

"परन्तु, भिक्षुओ ! तथागत ने इस शान्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को यों जाना है—यह जो छह स्पर्शायतनों (चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय और मन के विषयों) के समुदय (उत्पत्ति), अस्तगमन (नाश), आस्वाद, आदीनव (दुष्परिणाम) और उनसे छुटकारे (निस्सरण) के उपायों को यथार्थतः जानकर, उनका उपादान (आग्रह या ग्रहण) न कर विमोक्ष (मुक्ति) है वही शान्त मुक्ति की ओर ले जाने वाला मार्ग है। भिक्षुओ ! तथागत ने इस शान्ति मार्ग का साक्षात्कार किया है।"

भगवान् ने यह उपदेश किया। आत्तमना भिक्षुओं ने भगवान् के इस उपदेश का अभिनन्दन किया॥

पञ्चत्तयसुत्त समाप्त॥

३. किन्तिसुत्तं

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा कुसिनारायं विहरति [N. 31] बलिहरणे वनसण्डे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि--"भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं।

१. अविवदमानेहि सिक्खितब्बं

भगवा एतदवोच—"किन्ति वो, भिक्खवे, मयि होति—'चीवरहेतु वा [B. 27] समणो गोतमो धम्मं देसेति, पिण्डपातहेतु वा समणो गोतमो धम्मं देसेति, सेनासनहेतु वा समणो गोतमो धम्मं देसेति, इतिभवाभवहेतु वा समणो गोतमो धम्मं देसेती' " ति ?

"न खो नो, भन्ते, भगवति एवं होति—'चीवरहेतु वा समणो गोतमो धम्मं देसेति, पिण्डपातहेतु वा समणो गोतमो धम्मं देसेति, सेनासनहेतु वा समणो गोतमो धम्मं देसेति, इतिभवाभवहेतु वा समणो गोतमो धम्मं देसेती' " ति।

"न च किर वो, भिक्खवे, मयि एवं होति—'चावरहेतु वा समणो गोतमो धम्मं देसेति…पे०…इतिभवाभवहेतु वा समणो गोतमो धम्मं देसेती' ति; अथ किन्ति चरहि वो, भिक्खवे, मयि होती" ति ?

---

३. किमिति सूत्र

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) कुसिनारा के बलिहरण नामक वन प्रदेश में साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को "भिक्षुओ" सम्बोधन कर अपने पास बुलाया। वे भिक्षु भी "हाँ, भन्ते" कह कर भगवान् के सम्मुख आ कर एकत्र हुए।

१. परस्पर मेलजोल बढ़ाना चाहिये

भगवान् यों बोले—"भिक्षुओ ! (जब मैं जनता को उपदेश करता हूँ तब) तुम्हें मेरे बारे में क्या यह विचार होता है—'श्रमण गौतम चीवरप्राप्ति के लिये (जनता को) धर्मोपदेश करते हैं, अच्छे-अच्छे (रुचिकर) भोजन की प्राप्ति के लिये …अच्छे-अच्छे सुखप्रद शयनासनों की प्राप्ति के लिये…अच्छी-अच्छी जातियों में जन्म लेने या हीन जातियों में जन्म न लेने के लिये श्रमण गौतम धर्मोपदेश करते हैं ?"

"नहीं, भन्ते ! (जब आप धर्मोपदेश करते हैं तो) हमें आप के बारे में यह विचार नहीं होता—'श्रमण गौतम चीवरप्राप्ति…हीन जातियों, जन्म न लेने के लिये श्रमण गौतम धर्मोपदेश करते हैं' ।"

"यदि, भिक्षुओ ! तुम्हें मेरे बारे में यह विचार नहीं होता—श्रमण गौतम

"एवं खो नो, भन्ते, भगवति होति—'अनुकम्पको भगवा हितेसी; अनुकम्पं उपादाय धम्मं देसेती'" ति।

"एवं च किर वो, भिक्खवे, मयि होति—'अनुकम्पको भगवा हितेसी; अनुकम्पं उपादाय धम्मं देसेती' ति।

२. "तस्मातिह, भिक्खवे, ये वो मया धम्मा अभिञ्ञा देसिता, सेय्यथीदं—चत्तारो सतिपट्ठाना चत्तारो सम्मप्पधाना चत्तारो इद्धिपादा पञ्चिन्द्रियानि पञ्च बलानि सत्त बोज्झङ्गा अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो, [R. 239] तत्थ सब्बेहेव समग्गेहि सम्मोदमानेहि अविवदमानेहि सिक्खितब्बं। तेसं च वो, भिक्खवे, समग्गानं सम्मोदमानानं अविवदमानानं सिक्खतं [N. 32] सियुं द्वे भिक्खू अभिधम्मे नानावादा। तत्र चे तुम्हाकं एवमस्स—'इमेसं खो आयस्मन्तानं अत्थतो चेव नानं व्यञ्जनतो च नानं' ति, तत्थ यं भिक्खुं सुवचतरं मञ्ञेय्याथ सो उपसङ्कमित्वा एवमस्स वचनीयो—'आयस्मन्तानं खो अत्थतो चेव नानं, व्यञ्जनतो च नानं। तदमिनापेतं आयस्मन्तो जानाथ

चीवर प्राप्ति के लिये…नीच जाति में जन्म न लेने के…तो भिक्षुओ ! तुम्हें उस समय क्या विचार होता है !"

"भन्ते ! भगवान् जब उपदेश करते रहते हैं तब आप के विषय में यह विचार होता रहता है कि भगवान् हमारे (व जनता के) बहुत अधिक हितैषी हैं। हमारे हित को ध्यान में रखकर, हम पर अनुकम्पा करते हुए ये ऐसा धर्मोपदेश करते हैं।"

"अच्छा, भिक्षुओ ! तुम्हें मेरे विषय में, मेरे धर्मोपदेश के समय यह विचार… धर्मोपदेश करते हैं।"

"२. तो, भिक्षुओ ! मैंने स्वयं साक्षात्कार कर जिन धर्मों का उपदेश किया है; जैसे—चार स्मृतिप्रस्थान, चार सम्यक्प्रधान, चार ऋद्धिपाद, पाँच इन्द्रियाँ, पाँच बल, सात बोध्यङ्ग और आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग—इन सब में आप सबको इकट्ठे होकर, प्रसन्नतापूर्वक, विना कोई विवाद किये मन लगाना चाहिये, इनका अभ्यास करना चाहिये।

"भिक्षुओ ! इस तरह तुम लोगों के इकट्ठे होकर प्रेमपूर्वक विना किसी विवाद के अभ्यास करते हुए, यदि कोई दो भिक्षु अभिधर्म के विषय में मतभेद रखते हुए वाद कर रहे हों; वहाँ यदि तुम्हें ऐसा लगे—'ये तो दोनों ही भिक्षु अर्थ और व्यञ्जन (शब्द)—दोनों ही तरफ से अभिधर्म के विरुद्ध बोल रहे हैं', तो वहाँ तुम उन दोनों पक्षों में से प्रथम पक्ष में जिसको अपेक्षाकृत अधिक सुमधरभाषी समझो उसके पास पहले जाकर यह कहो—'आप दोनों पक्षों के आयुष्मानों का

--यथा अत्थतो चेव नानं; व्यञ्जनतो च नानं। मायस्मन्तो विवादं आपज्जित्था' ति। अथापरेसं एकतोपक्खिकानं भिक्खूनं यं भिक्खुं सुवचतरं मञ्ञेय्याथ सो उपसङ्कमित्वा एवमस्स वचनीयो--'आयस्मन्तानं खो अत्थतो चेव नानं, व्यञ्जनतो च नानं। तदमिनापेतं आयस्मन्तो जानाथ--यथा [B. 28] अत्थतो चेव नानं, व्यञ्जनतो च नानं। मायस्मन्तो विवादं आपज्जित्था' ति। इति दुग्गहीतं दुग्गहीततो धारेतब्बं, सुग्गहीतं सुग्गहीततो धारेतब्बं। दुग्गहीतं दुग्गहीततो धारेत्वा सुग्गहीतं सुग्गहीततो धारेत्वा यो धम्मो यो विनयो सो भासितब्बो।

३. "तत्र चे तुम्हाकं एवमस्स--'इमेसं खो आयस्मन्तानं अत्थतो हि खो नानं, व्यञ्जनतो समेती' ति, तत्थ यं भिक्खुं सुवचतरं मञ्ञेय्याथ सो उपसङ्कमित्वा एवमस्स वचनीयो--'आयस्मन्तानं खो अत्थतो हि नानं, व्यञ्जनतो समेति। तदमिनापेतं आयस्मन्तो जानाथ--यथा अत्थतो हि खो नानं, व्यञ्जनतो समेति। मायस्मन्तो विवादं आपज्जित्था' ति। अथापरेसं एकतोपक्खिकानं भिक्खूनं यं भिक्खुं सुवचतरं मञ्ञेय्याथ सो उपसङ्कमित्वा एवमस्स वचनीयो--'आयस्मन्तानं खो अत्थतो हि खो नानं, व्यञ्जनतो समेति। तदमिनापेतं आयस्मन्तो जानाथ--यथा अत्थतो हि खो नानं,

---

अभिधर्मविषयक यह वाद अर्थ और शब्द—उभयथा अभिधर्म के विरुद्ध है, आप दोनों ही इस बात को भलीभाँति समझ लें कि आप का यह वाद अर्थ और व्यञ्जन-उभयदृष्टि से अभिधर्मविरुद्ध है, अतः आप लोग इस विषय में आगे व्यर्थ वाद न करें।" फिर दूसरे पक्ष में जिसको तुम लोग अपेक्षाकृत सुमधुरभाषी या सरलता से समझाने योग्य समझो उससे भी जाकर यही कहो—'आप दोनों पक्षों के आयुष्मानों का अभिधर्मविषयक यह वाद"' आगे व्यर्थ वाद न करें।' इस प्रकार वहाँ उलटा समझे हुए को उलटा समझा (दुर्गृहीत) जानो और सही समझे हुए को सही समझा हुआ (सुगृहीत) जानो। उनके बारे में ऐसा जान कर निर्णय कर वहाँ (उस वाद में) वस्तुतः जो धर्म (सूत्र) या विनय (प्रातिमोक्ष के शिक्षाप्रद) के अनुकूल हो उसे बताना चाहिये।

३. "और यदि वहाँ तुम्हें ऐसा लगे—'इन (उभयपक्षीय) आयुष्मानों का यह वाद अर्थ से तो धर्मानुकूल नहीं है, परन्तु शब्द (व्यञ्जन) से धर्मानुकूल दिखाई पड़ रहा है' तो तुम उन विवादग्रस्त भिक्षुओं के पास जाकर, उनमें जो तुम्हें अपेक्षाकृत सुमधुरभाषी लगे, पहले उसके पास जाकर यों कहना चाहिये—'आप लोगों का यह वाद अर्थ से तो"आप लोग यह विवाद न करें।' फिर दूसरे

ब्यञ्जनतो समेति। मायस्मन्तो विवादं आपज्जित्था' ति। [R. 240] इति दुग्गहीतं दुग्गहीततो धारेतब्बं, सुग्गहीतं सुग्गहीततो धारेतब्बं। दुग्गहीतं दुग्गहीततो धारेत्वा सुग्गहीतं सुग्गहीततो धारेत्वा यो धम्मो यो विनयो सो भासितब्बो।

४. "तत्र चे तुम्हाकं एवमस्स—'इमेसं खो आयस्मन्तानं अत्थतो हि खो समेति, ब्यञ्जनतो नानं' ति, तत्थ यं भिक्खुं सुवचतरं [N. 33] मञ्ञेय्याथ सो उपसङ्कमित्वा एवमस्स वचनीयो—'आयस्मन्तानं खो अत्थतो हि समेति, ब्यञ्जनतो नानं। तदमिनापेतं आयस्मन्तो जानाथ—यथा अत्थतो हि खो समेति, ब्यञ्जनतो नानं। अप्पमत्तकं खो पनेतं यदिदं—ब्यञ्जनं। मायस्मन्तो अप्पमत्तके विवादं आपज्जित्था' ति। अथापरेसं एकतोपक्खिकानं भिक्खूनं यं भिक्खुं सुवचतरं मञ्ञेय्याथ सो उपसङ्कमित्वा एवमस्स वचनीयो—'आयस्मन्तानं खो अत्थतो हि समेति, ब्यञ्जनतो नानं। तदमिनापेतं आयस्मन्तो जानाथ—यथा अत्थतो हि खो खो समेति, ब्यञ्जनतो नानं। अप्पमत्तकं खो पनेतं यदिदं—ब्यञ्जनं। मायस्मन्तो अप्पमत्तके विवादं आपज्जित्था' ति। इति सुग्गहीतं [B. 29] सुग्गहीततो धारेतब्बं, दुग्गहीतं दुग्गहीततो धारेतब्बं। सुग्गहीतं सुग्गहीततो धारेत्वा दुग्गहीतं दुग्गहीततो धारेत्वा यो धम्मो यो विनयो सो भासितब्बो।

५. "तत्र चे तुम्हाकं एवमस्स—'इमेसं खो आयस्मन्तानं अत्थतो चेव

पक्ष के भिक्षुओं में जो तुम्हें अपेक्षाकृत सरलता से समझाने योग्य दिखायी देता हो पहले उसके पास जाकर यों कहो—'आप लोगों का यह वाद अर्थ से तो धर्मानुकूल नहीं...आप लोग यह वाद न करें।' यों, उलटा समझे हुए को...धर्म और विनय के अनुकूल बताना चाहिये।

४. "और यदि वहाँ ऐसा लगे—'इन दोनों विवादग्रस्त आयुष्मानों का यह वाद अर्थ से तो धर्मानुकूल है परन्तु शब्द से धर्मविरुद्ध लग रहा है', तो तुम उन विवाद कर रहे भिक्षुओं के पास जाकर...कहो--'...आप लोगों को यह वाद अर्थ से तो धर्मानुकूल है, पर शब्द से थोड़ा धर्म के विपरीत जान पड़ता है; साधारण सी बात के लिये आप लोग क्यों विवाद खड़ा कर रहे हैं!' यों सही समझे हुए को सही और उल्टा (विपरीत) समझे हुए को विपरीत ही...मानकर वहाँ जो धर्म और विनय के अनुकूल हो उसे कहना चाहिये।

५. "और वहाँ यदि तुमको ऐसा लगे कि ये विवदमान दोनों ही पक्ष अर्थ

समेति ब्यञ्जनतो च समेती' ति, तत्थ यं भिक्खुं सुवचतरं मञ्ञेय्याथ सो उपसङ्कमित्वा एवमस्स वचनीयो—'आयस्मन्तानं खो अत्थतो चेव समेति, ब्यञ्जनतो च समेति। तदमिनापेतं आयस्मन्तो जानाथ--यथा अत्थतो चेव समेति ब्यञ्जनतो च समेति। मायस्मन्तो विवादं आपज्जित्था' ति। अथापरेसं एकतोपक्खिकानं भिक्खूनं यं भिक्खुं सुवचतरं मञ्ञेय्याथ सो उपसङ्कमित्वा एवमस्स वचनीयो—'आयस्मन्तानं खो अत्थतो चेव समेति ब्यञ्जनतो च समेति। तदमिनापेतं आयस्मन्तो जानाथ—यथा अत्थतो चेव समेति ब्यञ्जनतो च समेति। मायस्मन्तो विवादं आपज्जित्था' ति। इति [R. 241] सुग्गहीतं सुग्गहीततो धारेतब्बं। सुग्गहीतं सुग्गहीततो धारेत्वा यो धम्मो यो विनयो सो भासितब्बो।

२. सामग्गिकुसलता

६. "तेसं चे वो, भिक्खवे, समग्गानं सम्मोदमानानं अविवदमानानं सिक्खतं सिया अञ्ञतरस्स भिक्खुनो आपत्ति सिया वीतिक्कमो, तत्र, भिक्खवे, न चोदनाय तरितब्बं। पुग्गलो उपपरिक्खितब्बो—'इति मय्हं च [N. 34] अविहेसा भविस्सति परस्स च पुग्गलस्स अनुपघातो, परो हि पुग्गलो अक्कोधनो अनुपनाही अदळ्हदिट्ठि सुप्पटिनिस्सग्गी, सक्कोमि चाहं एतं पुग्गलं अकुसला वुट्ठापेत्वा कुसले पतिट्ठापेतुं' ति। सचे, भिक्खवे, एवमस्स, कल्लं वचनाय।

और शब्द--उभयदृष्ट्या धर्मानुकूल ही वाद कर रहे हैं तो जो···कहें--'आप लोगों का यह वाद अर्थ और व्यञ्जन--दोनों ही दृष्टियों से धर्मानुकूल है, अतः आप यहाँ निरर्थक वाद न करें···। यों सही बोलने वालों को सही बोलने वाला ही···मानकर वहाँ जो धर्म और विनय के अनुकूल हो, उसे बोलना चाहिये।

२. एकता (सामग्री) का महत्त्व—

६. ''भिक्षुओ! यों इकट्ठा रहते, विवादरहित हो धर्माभ्यास करते यदि किसी भिक्षु से असावधानीवश कोई प्रमाद (आपत्ति) हो जाय (किसी शिक्षापद का) उल्लङ्घन (व्यतिक्रम) हो जाय तो, भिक्षुओ! उसके प्रति अभियोग (चोदना) लाने की शीघ्रता नहीं करनी चाहिये। (अपितु पहले) उस पुद्गल की परीक्षा (जाँच) करनी चाहिये--'ऐसा अभियोग लाने पर मुझे (बाद में) कष्ट तो न होगा, या अभियोज्य पुद्गल की कोई हानि तो न हो जायगी, या वह अक्रोधी मन में द्वैत न रहने वाला (अनुपनाही), समझदार (अमन्ददृष्टि) आसानी से आग्रह को छोड़ देने वाला (सुप्रतिनिसर्गी) तो है, क्या मैं इसे बुराई से हटाकर

"सचे पन, भिक्खवे, एवमस्स--'मय्हं खो अविहेसा भविस्सति परस्स च पुग्गलस्स उपघातो, परो हि पुग्गलो कोधनो उपनाही अदळ्हदिट्ठि सुप्पटिनिस्सग्गी, सक्कोमि चाहं एतं पुग्गलं अकुसला वुट्ठापेत्वा कुसले पतिट्ठापेतुं। अप्पमत्तकं खो पनेतं यदिदं--परस्स पुग्गलस्स उपघातो। अथ खो एतदेव बहुतरं--स्वाहं सक्कोमि एतं पुग्गलं अकुसला वुट्ठापेत्वा कुसले [B. 30] पतिट्ठापेतुं' ति। सचे, भिक्खवे, एवमस्स, कल्लं वचनाय।

"सचे पन, भिक्खवे, एवमस्स--'मय्हं खो विहेसा भविस्सति परस्स च पुग्गलस्स अनुपघातो। परो हि पुग्गलो अक्कोधनो अनुपनाही दळ्हदिट्ठि दुप्पटिनिस्सग्गी, सक्कोमि चाहं एतं पुग्गलं अकुसला वुट्ठापेत्वा कुसले पतिट्ठापेतुं। अप्पमत्तकं खो पनेतं यदिदं--मय्हं विहेसा। अथ खो एतदेव बहुतरं--स्वाहं सक्कोमि एतं पुग्गलं अकुसला वुट्ठापेत्वा कुसले पतिट्ठापेतुं" ति। सचे, भिक्खवे, एवमस्स, कल्लं वचनाय।

"सचे पन, भिक्खवे, एवमस्स—'मय्हं च खो विहेसा भविस्सति परस्स

अच्छाई की तरफ मोड़ सकता हूँ !' यदि भिक्षुओ ! उसके बारे में ऐसा लगे तो (पहले) समझाना ही ठीक रहेगा।

"भिक्षुओ ! यदि (किसी प्रकरण में) ऐसा लगे—'ऐसा अभियोग लाने पर मुझे भी कष्ट होगा, और अभियोज्य की भी हानि सम्भव है; परन्तु सम्मुखस्थ यह पुद्गल क्रोधी भी है, मन में द्वेष (उपनाह) रखने वाला भी है, उतना समझदार भी नहीं है, और सरलता से अपने आग्रह को छोड़ने वाला भी नहीं है। परन्तु यदि मै समझदारी से काम लूं तो इसे अकुशल (बुराई) से दूर हटा कर कुशल की ओर प्रेरित कर सकता हूँ। फिर थोड़े से के लिये उसका ज्यादा नुकसान करना उचित भी नहीं है। यही क्या बड़ी बात नहीं है कि मैं उसे थोड़े परिश्रम से उसे अकुशल से विरत कर सकता हूँ !' यदि भिक्षुओ ! इसके बारे में ऐसा लगे तो उसे समझाना ही ठीक रहेगा।

"भिक्षओ ! यदि कभी तुम्हें ऐसा लगे—'अभियोग लगाने पर मुझे तो कष्ट होगा, पर अभियोज्य की कोई हानि नहीं होगी। यह आदमी क्रोधी भी नहीं है, न उपनाही ही, दृढ़निश्चयी भी है, जल्दी से पीछे हटने वाला भी नहीं हैं, फिर भी सम्भव है कि मैं इसे इसके अकुशल से दूर हटाकर कुशल की तरफ प्रवृत्त कर सकूँ। ऐसी स्थिति में, मुझे कुछ कष्ट भी हो तो उसकी कोई विचार नहीं। उतने पर ही यह क्या कम बात होगी कि मैं इसे अकुशल से हटाकर कुशल की ओर प्रवृत्त कर लूंगा ! यदि ऐसा हो तो उसे (पहले) समझाना ही चाहिये।

[R. 242] च पुग्गलस्स उपघातो। परो हि पुग्गलो कोधनो उपनाही दळ्हदिट्ठि दुप्पटिनिस्सग्गी, सक्कोमि चाहं एतं पुग्गलं अकुसला वुट्ठापेत्वा पतिट्ठापेतुं। अप्पमत्तकं खो पनेतं यदिदं—मय्हं च विहेसा भविस्सति परस्स च पुग्गलस्स उपघातो। अथ खो एतदेव बहुतरं—स्वाहं सक्कोमि एतं पुग्गलं अकुसला वुट्ठापेत्वा कुसले पतिट्ठापेतुं' ति। सचे, भिक्खवे, एवमस्स, कल्लं वचनाय।

"सचे पन, भिक्खवे, एवमस्स—'मय्हं च खो विहेसा भविस्सति परस्स च पुग्गलस्स उपघातो। परो हि पुग्गलो कोधनो उपनाही दळ्हदिट्ठि दुप्प- [N. 35] टिनिस्सग्गी, न चाहं सक्कोमि एतं पुग्गलं अकुसला वुट्ठापेत्वा कुसले पतिट्ठापेतुं' ति। एवरूपे, भिक्खवे, पुग्गले उपेक्खा नातिमञ्ञितब्बा।

७. "तेसं च वो, भिक्खवे, समग्गानं सम्मोदमानानं अविवदमानानं सिक्खतं अञ्ञमञ्ञस्स वचीसंहारो उप्पज्जेय्य दिट्ठिपळासो चेतसो आघातो अप्पच्चतो अनभिरद्धि। तत्थ एकतोपक्खिकानं भिक्खूनं यं भिक्खुं सुवचतरं मञ्ञेय्याथ सो उपसङ्कमित्वा एवमस्स वचनीयो—'यं नो, आवुसो, अम्हाकं समग्गानं सम्मोदमानानं अविवदमानानं सिक्खतं अञ्ञमञ्ञस्स

"यदि भिक्षुओ! कभी ऐसा हो—'इसको तो मुझे भी कष्ट होगा और सम्मुखस्थ की भी हानि होगी। फिर यह सामने वाला क्रोधी भी है, मन में गाँठ रखने वाला भी, दृढ़निश्चयी भी है, दुराग्रही भी। हाँ, इसे मैं अकुशल से हटाकर कुशल में प्रवृत्त कर सकता हूँ। यही मेरे लिये क्या कम महत्त्वपूर्ण होगा कि मैं अकुशल से हटा कर इसे कुशल में प्रवृत्त कर दूँगा।' यदि ऐसी स्थिति हो तो उसे समझाने का ही प्रयास करना चाहिये।

"हाँ, यदि भिक्षुओ! किसी प्रकरण में तुम्हें ऐसा लगे—'मुझे भी कष्ट ही होगा, इस पुद्गल की भी हानि होगी। यह पुद्गल क्रोधी भी है, उपनाही भी दृढ़निश्चयी भी है, दुराग्रही भी। और मैं इसे समझा-बुझा कर अकुशल से हटा कर कुशल में प्रवृत्त भी न कर पाऊँगा।' तो, भिक्षुओ! ऐसे पुद्गल की तुम्हें उपेक्षा ही करनी चाहिये।

७. "भिक्षुओ! इस प्रकार, प्रसन्नतापूर्वक इकट्ठे होकर, विवादरहित रहते हुए धर्माभ्यास करते तुम लोगों कभी परस्पर किसी बात में अन्तर आ जाय, कहासुनी होने पर समझ में कोई अन्तर पड़ जाय; या चित्त में आघात, अविश्वास, व असन्तोष उत्पन्न हो जाय; तो यहाँ पहले पक्ष वाले भिक्षुओं में से जो सबसे अधिक मधुरभाषी हो, उसके पास जाकर यों कहना चाहिये—'आयुष्मन्! यों जो हमलोगों के

वचीसंहारो उप्पन्नो दिट्ठिपळासो चेतसो आघातो अप्पच्चयो अनभिरद्धि, तं जानमानो समणो गरहेय्या' ति। सम्मा ब्याकरमानो, भिक्खवे, भिक्खु एवं ब्याकरेय्य—'यं नो, आवुसो, अम्हाकं समग्गानं सम्मोद- [B. 31] मानानं अविवदमानानं सिक्खतं अञ्ञमञ्ञस्स वचीसंहारो उप्पन्नो दिट्ठिपळासो चेतसो आघातो अप्पच्चयो अनभिरद्धि, तं जानमानो समणो गरहेय्या ति। एतं पनावुसो, धम्मं अप्पहाय निब्बानं सच्छिकरेय्या' ति। सम्मा ब्याकरमानो, भिक्खवे, भिक्खु एवं ब्याकरेय्य—'एतं, आवुसो, धम्मं अप्पहाय न निब्बानं सच्छिकरेय्या' ति।

"अथापरेसं एकतोपक्खिकानं भिक्खूनं यं भिक्खुं सुवचतरं मञ्ञेय्याथ, सो उपसङ्कमित्वा एवमस्स वचनीयो—'यं नो, आवुसो, अम्हाकं समग्गानं सम्मोदमानानं अविवदमानानं सिक्खतं अञ्ञमञ्ञस्स वचीसंहारो उप्पन्नो दिट्ठिपळासो चेतसो आघातो अप्पच्चयो अनभिरद्धि, तं जानमानो समणो गरहेय्या' ति। सम्मा ब्याकरमानो, भिक्खवे, भिक्खु एवं ब्याकरेय्य—'यं नो, आवुसो, अम्हाकं समग्गानं, सम्मोदमानानं अविवदमानानं सिक्खतं अञ्ञमञ्ञस्स वचीसंहारो उप्पन्नो दिट्ठिपळासो चेतसो आघातो अप्पच्चयो अनभिरद्धि तं जानमानो समणो गरहेय्या ति। एतं पनावुसो, धम्मं अप्पहाय निब्बानं सच्छिकरेय्या' ति। सम्मा ब्याकरमानो, भिक्खवे, भिक्खु एवं ब्याकरेय्य—'एतं खो, आवुसो, धम्मं अप्पहाय न निब्बानं [R. 243] सच्छिकरेय्या' ति।

प्रसन्नतापूर्वक···अभ्यास करते किसी बात में अन्तर आ गया है, कहा-सुनी हो गयी है, इससे चित्त में आघात, अविश्वास व असन्तोष उत्पन्न हो गया है, उसे कोई दूसरा सुनेगा तो वह हम लोगों की निन्दा ही करेगा न!'। भिक्षुओ! सामने सुनने वाला भिक्षु यदि सही कहना चाहेगा तो यही कहेगा—'हाँ आयुष्मन्! हम लोगों के प्रसन्नतापूर्वक रहते···अविश्वास हो गया है, उसे सुनकर दूसरा हमारी निन्दा ही करेगा। इससे तो अच्छा हो कि हम धर्माभ्यास को न छोड़ते हुए निर्वाण की ओर ही अग्रसर हों।' पहले कहने वाला भिक्षु भी, यदि उसे ठीक से कहना होगा तो उसे यही कहना पड़ेगा—'हाँ, आयुष्मन्! हम लोगों के लिये यही उचित होगा कि हम धर्माभ्यास न छोड़ते हुए उसी के सहारे निर्वाण की ओर अग्रर हों।

"फिर दूसरे पक्ष में बाकी बचे भिक्षुओं में जो अपेक्षाकृत सरल, व मधुरभाषी हो उसके पास जाकर उससे भी यही कहना चाहिये—'हम लोगों के प्रसन्नतापूर्वक रहते···निर्वाण की ओर अग्रसर हों।

[N. 36] ८. "तं चे, भिक्खवे, भिक्खुं परे एवं पुच्छेय्युं—'आयस्मता नो एते भिक्खू अकुसला वुट्ठापेत्वा कुसले पतिट्ठापिता' ति ? सम्मा ब्याकरमानो, भिक्खवे, भिक्खु एवं ब्याकरेय्य—'इधाहं, आवुसो, येन भगवा तेनुपसङ्कमिं, तस्स मे भगवा धम्मं देसेसि, ताहं धम्मं सुत्वा तेसं भिक्खूनं अभासिं। तं ते भिक्खू धम्मं सुत्वा अकुसला वुट्ठहिंसु, कुसले पतिट्ठहिंसू' ति। एवं ब्याकरमानो खो, भिक्खवे, भिक्खु न चेव अत्तानं उक्कंसेति, न परं वम्भेति, धम्मस्स चानुधम्मं ब्याकरोति, न च कोचि सहधम्मिको वादानुवादो गारय्हं ठानं आगच्छती" ति।

९. इदमवोच भगवा। अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति।

---

८. भिक्षुओ! उस एकता कराने वाले भिक्षु से यदि कोई यह पूछे—'आयुष्मन्! आपने इन भिक्षुओं को अकुशल से हटाकर कुशल की ओर कैसे प्रवृत्त कर दिया?' यदि वह बात को यथार्थ रूप से कहना चाहता हो, तो उसे यों कहना चाहिये—आयुष्मन्! मैं पहले जहाँ भगवान् विराजमान् थे वहाँ गया, वहाँ भगवान् ने मुझको धर्मोपदेश किया। उस धर्मश्रवण के बाद उस धर्म को मैंने उन भिक्षुओं को सुनाया। वे भिक्षु भगवदुपदिष्ट उस धर्म को सुन कर ही कुशल में प्रवृत्त हुए।' भिक्षुओ! इस प्रकार कहते हुए वह भिक्षु न तो आत्म-प्रशंसा करने का ही दोषी होगा, न दूसरे की निन्दा करने का ही। और धार्मिक प्रश्न का धर्म के अनुसार ही उत्तर देने वाला कहलायगा। और न किसी धार्मिक विवाद में उलझकर अपने आप को निन्दा का पात्र ही बनायगा।"

भगवान् ने यों कहा। प्रसन्नमन हो भिक्षुओ ने भगवान् के भाषण को अभिनन्दनपूर्वक सराहा॥

किन्तिसुत्त समाप्त॥

४. सामगामसुत्तं

१. नातपुत्ते कालङ्कते भिन्ना निगण्ठा

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सक्केसु विहरति [N. 37, B. 32] सामगामे। तेन खो पन समये निगण्ठो नातपुत्तो पावायं अधुनाकालङ्कतो होति। तस्स कालङ्किरियाय भिन्ना निगण्ठा द्वेधिकजाता भण्डनजाता कलहजाता विवादापन्ना अञ्ञमञ्ञं मुखसत्तीहि वितुदन्ता विहरन्ति—"न त्वं इमं धम्मविनयं आजानासि। अहं इमं धम्मविनयं आजानामि, किं त्वं इमं धम्मविनयं आजानिस्ससि ! मिच्छापटिपन्नो त्वमसि, अहमस्मि सम्मापटिपन्नो। सहितं मे, असहितं ते। पुरेवचनीयं पच्छा-अवच, पच्छावचनीयं पुरे अवच। अधिचिण्णं ते विपरावत्तं। [R. 244] आरोपितो ते वादो। निग्गहितोसि, चर वादप्पमोक्खाय; निब्बेठेहि वा सचे पहोसी" ति। वधो येव खो मञ्ञे निगण्ठेसु नातपुत्तियेसु वत्तति। ये पि निगण्ठस्स नातपुत्तस्स सावका गिही ओदातवसना ते पि

---

४. सामगामसूत्र

१. ज्ञातिपुत्र के निधन के बाद निर्ग्रन्थों में विग्रह

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् बुद्ध शाक्यों के सामग्राम में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र (जैनतीर्थङ्कर महावीर) का पावा नगरी में अभी-अभी देहावसान हुआ ही था। उनके देहावसान के तत्काल बाद ही जैन साधु धीरे-धीरे दो भागों में विभक्त होते चले गये। वे विभक्त होते, परस्पर कलह करते, वाद करते, एक दूसरे को अपशब्द बोलते, इधर-उधर एक दूसरे को यह कहते हुए घूमने लगे--'अरे ! तूँ क्या इस धर्म के गूढ अर्थ को जानेगा, तूँने तो इसे सही ढंग से पढ़ा भी नहीं है, (अपि तु) मैंने ही इसे सही ढंग से पढ़ा है'; 'तेरा कहना निरर्थक है, मेरा कहना ही सार्थक (धर्मानुकूल) है'; 'तूने पहले कहने योग्य को बाद में कहा और बाद में कहने योग्य बात को पहले ही कह डाला'; 'तूने यह विना विचारे असङ्गत ही कह डाला'; 'तूने वाद प्रारम्भ किया था, परन्तु इस तर्क से तूँ निग्रहस्थान में आ गया, अब देखता हूँ तूँ इससे कैसे छूटेगा, जा, इस तर्क का किसी से यथार्थ उत्तर पूछने के लिये घूमता फिर ! यदि सामर्थ्य हो तो इसका सही उत्तर देने के लिये फिर आना।' यों मालूम पड़ रहा था कि निर्ग्रन्थों में परस्पर युद्ध (कलह=मारकाट) सा ही हो रहा था। उधर उन निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र के जो श्वेतवस्त्रधारी गृहस्थ उपासक थे वे भी, उन निर्ग्रन्थों के प्रति वैसे ही विरक्त, विमुख व उपेक्षक से हो गये, जैसे वे उनके धर्म के प्रति हो रहे थे। जो धर्म पहले ही दुष्प्रवेदित (सम्यक्तया असाक्षात्कृत) दुराख्यात (सम्यक्तया

निगण्ठेसु नातपुत्तियेसु निब्बिन्नरूपा विरत्तरूपा पटिवानरूपा यथा तं दुरक्खाते धम्मविनये दुप्पवेदिते अनिय्यानिके अनुपसमसंवत्तनिके असम्मासम्बुद्धप्पवेदिते भिन्नथूपे अप्पटिसरणे।

२. अथ खो चुन्दो समणुद्देसो पावायं वस्सं वुत्थो येन सामगामो येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं आनन्दं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो चुन्दो समणुद्देसो आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच– "निगण्ठो, भन्ते, नातपुत्तो पावायं अधुनाकालङ्कतो। तस्स कालङ्किरियाय भिन्ना निगण्ठा द्वेधिकजाता···पे०···भिन्नथूपे अप्पटिसरणे" ति।

एवं वुत्ते, आयस्मा आनन्दो चुन्दं समणुद्देसं एतदवोच—"अत्थि खो इदं, आवुसो चुन्द, कथापाभतं भगवन्तं दस्सनाय। आयाम, आवुसो [N. 38] चुन्द, येन भगवा तेनुपसङ्कमिस्साम; उपसङ्कमित्वा एतमत्थं भगवतो आरोचेस्सामा" ति। "एवं, भन्ते" ति खो चुन्दो समणुद्देसो आयस्मतो आनन्दस्स पच्चस्सोसि।

[B. 33] अथ खो आयस्मा च आनन्दो चुन्दो च समणुद्देसो येन

अकथित), अनैर्याणिक (पार न पहुँचाने वाला), अनुपशमसंवर्तनिक (अशान्ति की ओर ले जाने वाला), किसी सम्यक्सम्बुद्ध द्वारा अननुमोदित, प्रतिष्ठारहित, भिन्नस्तूप (बेसहारा) है, एवं किसी को आश्रय (शरण) देने में असमर्थ है।

२. तब चुन्द श्रमणोद्देश पावा में वर्षावास कर जहाँ साम ग्राम में आयुष्मान् आनन्द थे वहाँ पहुँचे। पहुँच कर उन्होंने आयुष्मान् आनन्द का अभिवादन किया, और एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे वे चुन्द श्रमणोद्देश आयुष्मान् आनन्द से यों बोले—'भन्ते! पावा नगरी में निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र का अभी-अब देहावसान हो गया है। उनके देहावसान के बाद उनका शिष्यवर्ग भी मतभेदों के चलते कई भागों में बँट गया है। उसी तरह उनका धर्म···पूर्ववत्···भी आश्रयविहीन हो गया है।"

ऐसा कहे जाने पर, आयुष्मान् आनन्द ने चुन्द श्रमणोद्देश से यह कहा—"आयुष्मन् चुन्द! यह बात तो भगवान् के दर्शन के समय उन्हें भी कही जायगी। आओ! चलो! भगवान् के दर्शन के लिये चलें। चलकर उन्हें यह बात बतावें।" चुन्द श्रमणोद्देश ने "अच्छा, भन्ते!" कहकर आयुष्मान् आनन्द को उत्तर दिया।

तब आयुष्मान् आनन्द और चुन्द श्रमणोद्देश, जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ

भगवा तेनुपसङ्कमिसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं [R. 245] एतदवोच--"अयं, भन्ते, चुन्दो समणुद्देसो एवमाह--'निगण्ठो, भन्ते, नातपुत्तो पावायं अधुनाकालङ्कतो। तस्स कालङ्किरियाय भिन्ना निगण्ठा द्वेधिकजाता...पे०... भिन्नथूपे अप्पटिसरणे' ति। तस्स मय्हं, भन्ते, एवं होति--'मा हेव भगवतो अच्चयेन सङ्घे विवादो उप्पज्जि; स्वास्स विवादो बहुजनाहिताय बहुजनासुखाय बहुनो जनस्स अनत्थाय अहिताय दुक्खाय देवमनुस्सानं' " ति।

२. बोधिपक्खियेसु धम्मेसु अविवादो

३. "तं किं मञ्ञसि, आनन्द, ये वो मया धम्मा अभिञ्ञा देसिता, सेय्यथीदं--चत्तारो सतिपट्ठाना चत्तारो सम्मप्पधाना चत्तारो इद्धिपादा पञ्चिन्द्रियानि पञ्च बलानि सत्त बोज्झङ्गा अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो, पस्ससि नो त्वं, आनन्द, इमेसु धम्मेसु द्वे पि भिक्खू नानावादे" ति ?

"येमे, भन्ते, धम्मा भगवता अभिञ्ञा देसिता, सेय्यथीदं--चत्तारो सतिपट्ठाना चत्तारो सम्मप्पधाना चत्तारो इद्धिपादा पञ्चिन्द्रियानि पञ्च बलानि सत्त बोज्झङ्गा अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो, नाहं पस्सामि इमेसु

पहुँचे। पहुँचकर, भगवान् को प्रणाम कर दोनों एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से यों निवेदन किया—"भन्ते! यह चुन्द श्रमणोद्देश बता रहा है कि निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र...पूर्ववत्...धर्म भी...आश्रयविहीन हो गया है। भन्ते! यह सुनकर अब मुझे यह हो रहा है कि भगवान् के बाद हमारे सङ्घ में यही विवाद की स्थिति न आ जाय। यदि यह विवाद हो गया तो यह अनेक जनों के लिये अहितकर असुखकर यहाँ तक कि देवता और उसी कोटि के मनुष्यों के लिये भी दुःखदायी व अहितकारी ही होगा।"

२. बोधिपक्षीय धर्मों के विषय में विवाद असम्भव

३. "तो क्या मानते हो, आनन्द! जिन धर्मों का मैंने स्वयं साक्षात्कार कर तुम्हें उपदेश किया है; जैसे—चार स्मृतिप्रस्थान, चार सम्यक्प्रधान, चार ऋद्धिपाद, पाँच बल और सात बोध्यङ्ग तथा आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग—आनन्द! इन धर्मों के विषय में किन्हीं दो भिक्षुओं में भी विवाद होता देखते हो ?"

"भन्ते! जिन धर्मों का स्वयं साक्षात्कार कर आपने हम लोगों को उपदेश किया है...किन्हीं दो भिक्षुओं में भी विवाद होते नहीं देखता। परन्तु, भन्ते! जो पुद्गल भगवान् के आश्रय (सहारे) से विहरण (साधना) की ओर अग्रसर हैं

धम्मेसु द्वे पि भिक्खू नानावादे। ये च खो, भन्ते, पुग्गला भगवन्तं पतिस्सयमानरूपा विहरन्ति ते पि भगवतो अच्चयेन सङ्घे विवादं जनेय्युं अज्झाजीवे वा अधिपातिमोक्खे वा; स्वास्स विवादो बहुजनाहिताय बहुजनासुखाय बहुनो जनस्स अनत्थाय अहिताय दुक्खाय देवमनुस्सानं" ति।

"अप्पमत्तको सो, आनन्द, विवादो यदिदं—अज्झाजीवे वा अधिपातिमोक्खे वा। मग्गे वा हि, आनन्द, पटिपदाय वा सङ्घे विवादो उप्पज्जमानो [N. 39] उप्पज्जेय्य; स्वास्स विवादो बहुजनाहिताय बहुजनासुखाय बहुनो जनस्स अनत्थाय अहिताय दुक्खाय देवमनुस्सानं।

३. छ विवादमूलानि

४. "छयिमानि, आनन्द, विवादमूलानि। कतमानि छ? इधानन्द, भिक्खु कोधनो होति उपनाही। यो सो, आनन्द, भिक्खु कोधनो होति उपनाही सो सत्थरि पि अगारवो विहरति अप्पतिस्सो, धम्मे पि अगारवो [B. 34] विहरति अप्पतिस्सो, सङ्घे पि अगारवो विहरति अप्पतिस्सो सिक्खाय पि न परिपूरकारी होति। यो सो, आनन्द, भिक्खु सत्थरि अगारवो विहरति अप्पतिस्सो, धम्मे…सङ्घे अगारवो विहरति अप्पतिस्सो, सिक्खाय [R. 246] न परिपूरकारी होति, सो सङ्घे विवादं जनेति; यो होति

वे, भगवान् के न रहने के बाद, सङ्घ में जीविका व प्रातिमोक्ष (भिक्षुनियमों) को लेकर विवाद कर सकते हैं और वह विवाद अनेक लोगों के लिये अहितकर…मनुष्यों के लिये दुःखदायी व अहितकारी होगा।"

"आनन्द! आजीविका व भिक्षुनियमों को लेकर विवाद होना तो साधारण (अल्पमात्रक) बात है; हाँ, मार्ग या प्रतिपद् के विषय में यदि कभी विवाद उत्पन्न हो जाय तो वह बहुतों के लिये अहितकर…यहाँ तक कि देव और मनुष्यों तक के लिये दुःखदायी होगा।

३. विवाद के छह कारण

४. आनन्द! विवाद के ये छह मूल हैं। कौन से छह? यहाँ कोई भिक्षु (१) क्रोधी, पाखण्डी (उपनाही) होता है। आनन्द! जो भिक्षु क्रोधी, उपनाही होता है वह शास्ता (गुरु) में भी सम्मान न रखता हुआ, उसको सहारा न मानता हुआ ही साधना करता है; धर्म में भी…सङ्घ में भी…साधना करता है; यों वह शिक्षा (भिक्षु-नियमपालन) में त्रुटि करने वाला होता है। आनन्द! जो भिक्षु इस तरह शास्ता में, धर्म में, सङ्घ में सम्मान न रखता हुआ…शिक्षा में त्रुटि करने वाला होता है वही सङ्घ में विवाद करने वाला होता है। वह विवाद बहुत जनों

विवादो बहुजनाहिताय बहुजनासुखाय बहुनो जनस्स अनत्थाय अहिताय दुक्खाय देवमनुस्सानं। एवरूपं चे तुम्हे, आनन्द, विवादमूलं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा समनुपस्सेय्याथ, तत्र तुम्हे, आनन्द, तस्सेव पापकस्स विवादमूलस्स पहानाय वायमेय्याथ। एवरूपं चे तुम्हे, आनन्द, विवादमूलं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा न समनुपस्सेय्याथ, तत्र तुम्हे, आनन्द, तस्सेव पापकस्स विवादमूलस्स आयतिं अनवस्सवाय पटिपज्जेय्याथ। एवमेतस्स पापकस्स विवादमूलस्स पहानं होति, एवमेतस्स पापकस्स विवादमूलस्स आयतिं अनवस्सवो होति।

५. "पुन च परं, आनन्द, भिक्खु मक्खी होति पळासी…पे०…इस्सुकी होति मच्छरी…पे०…सठो होति मायावी…पे०…पापिच्छो होति मिच्छादिट्ठि…पे०…सन्दिट्ठिपरामासी होति आधानग्गाही दुप्पटिनिस्सग्गी। यो सो, आनन्द, भिक्खु सन्दिट्ठिपरामासी होति आधानग्गाही दुप्पटिनिस्सग्गी सो सत्थरि पि अगारवो विहरति अप्पतिस्सो, धम्मे पि अगारवो विहरति अप्पतिस्सो, सङ्घे पि अगारवो विहरति अप्पतिस्सो, सिक्खाय पि न परिपूरकारी होति। यो सो, आनन्द, भिक्खु सत्थरि अगारवो विहरति अप्पतिस्सो, धम्मे…सङ्घे…सिक्खाय न परिपूरकारी होति सो सङ्घे [N. 40] विवादं जनेति; यो होति विवादो बहुजनाहिताय बहुजनासुखाय बहुनो जनस्स अनत्थाय अहिताय दुक्खाय देवमनुस्सानं। एवरूपं चे तुम्हे, आनन्द, विवादमूलं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा समनुपस्सेय्याथ, तत्र तुम्हे, आनन्द, तस्सेव

के लिये…देव मनुष्यों तक के लिये परिणाम में अहितकर होता है। आनन्द ! ऐसे आध्यात्मिक या बाह्य पापमूलक विवाद की तरफ जब भी तुम्हारी दृष्टि पड़े तभी तुम्हें उस पापमूलक विवाद के शमनहेतु प्रयास प्रारम्भ कर देना चाहिये। और ऐसा पापमूलक विवाद तुम्हारे सामने न आवे तो भी ऐसा प्रयास तो करते ही रहना चाहिये कि भविष्य में भी कभी ऐसा पापमूलक विवाद सङ्घ में न पैदा हो पाय। आनन्द ! यों यह पापमूलक विवाद उत्पन्न नहीं होता और न भविष्य में कभी इसके उत्पन्न होने की सम्भावना ही रहती है।

५. (२) आनन्द ! कोई भिक्षु म्रक्षी (मन में मैल रखने वाला) व पलासी (प्रदाशी) होता है; जो भिक्षु म्रक्षी व पलासी होता है…पूर्ववत्…सम्भावना ही रहती है।

(३) कोई भिक्षु ईर्ष्यालु व घमण्डी (मत्सरी) होता है। जो भिक्षु ईर्ष्यालु व घमण्डी होता है…पूर्ववत्…सम्भावना ही रहती है।

(४) कोई भिक्षु शठ व मायावी…सम्भावना ही रहती है।

पापकस्स विवादमूलस्स पहानाय वायमेय्याथ। एवरूपं चे तुम्हे, आनन्द, विवादमूलं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा न समनुपस्सेय्याथ, तत्र तुम्हे, आनन्द, तस्सेव पापकस्स विवादमूलस्स आयतिं अनवस्सवाय पटिपज्जेय्याथ। [R. 247] एवमेतस्स पापकस्स विवादमूलस्स पहानं होति, एवमेतस्स पापकस्स विवादमूलस्स आयतिं अनवस्सवो होति। इमानि खो, आनन्द, छ विवादमूलानि।

४. सत्त अधिकरणसमथा

[B. 35] ६. "चत्तारिमानि, आनन्द, अधिकरणानि। कतमानि चत्तारि? विवादाधिकरणं, अनुवादाधिकरणं, आपत्ताधिकरणं, किच्चाधिकरणं—इमानि खो, आनन्द, चत्तारि अधिकरणानि। सत्त खो पनिमे, आनन्द, अधिकरणसमथा—उप्पन्नुप्पन्नानं अधिकरणानं समथाय वूपसमाय सम्मुखाविनयो दातब्बो, सतिविनयो दातब्बो, अमूळ्हविनयो दातब्बो, पटिञ्ञाय कारेतब्बं, येभुय्यसिका, तस्सपापियसिका, तिणवत्थारको।

---

(५) कोई भिक्षु पापेच्छुक व मिथ्यादृष्टि···सम्भावना ही रहती है।

(६) कोई भिक्षु दृष्टिपरामर्शी (मिथ्या दृष्टियों में लगा रहने वाला) आधानग्राही व दुष्प्रतिनिसर्गी (अपनी जिद पर अड़ा रहने वाला) होता है। आनन्द! जो भिक्षु दृष्टिपरामर्शी···पूर्ववत्···और न भविष्य में भी इस पापमूलक विवाद के उत्पन्न होने की सम्भावना ही रहती है। आनन्द! विवाद के ये छह मूल (कारण) हैं।

४. सात अधिकरण शमथ

६. आनन्द! विवाद के ये चार प्रकार के अधिकरण होते हैं—(१) विवाद-अधिकरण, (२) अनुवाद-अधिकरण, (३) आपत्ति-अधिकरण और (४) कृत्य-अधिकरण।

और आनन्द! ये सात अधिकरणशमथ (विवादशामक उपाय) हैं, जिन्हें सङ्घ को समय-समय उत्पन्न हुए विवादों (कलहों) के शमन के लिये प्रयोग में लाना चाहिये—(१) समय-समय पर उत्पन्न हुए विवादों के लिये सम्मुखविनय देना चाहिये; (२) स्मृतिविनय देना चाहिये; (३) अमूढविनय···; (४) प्रतिज्ञा का कराना···; (५) यद्भूयसिक···; (६) तत्पापीयसिक···, एवं (७) तृणावस्तारक देना चाहिये।

(१) सम्मुखाविनयो[1]

७. "कथं च, आनन्द, सम्मुखाविनयो होति ? इधानन्द, भिक्खू विवदन्ति धम्मो ति वा अधम्मो ति वा, विनयो ति वा अविनयो ति वा। तेहानन्द, भिक्खूहि सब्बेहेव समग्गेहि सन्निपतितब्बं। सन्निपतित्वा धम्मनेत्ति समनुमज्जितब्बा। धम्मनेत्तिं समनुमज्जित्वा यथा तत्थ समेति तथा तं अधिकरणं वूपसमेतब्बं। एवं खो, आनन्द, सम्मुखाविनयो होति; एवं च पनिधेकच्चानं अधिकरणानं वूपसमो होति यदिदं—सम्मुखाविनयेन।

(२) सतिविनयो

८. "कथं च, आनन्द, सतिविनयो होति ? इधानन्द, भिक्खू [N. 41] भिक्खुं एवरूपाय गरुकाय आपत्तिया चोदेन्ति पाराजिकेन वा पाराजिकसामन्तेन वा—सरतायस्मा एवरूपिं गरुकं आपत्तिं आपज्जिता पाराजिकं वा पाराजिकसामन्तं वा' ति ? सो एवमाह—'न खो अहं, आवुसो, सरामि एवरूपिं गरुकं आपत्तिं आपज्जिता, पाराजिकं वा पाराजिकसामन्तं वा' ति। तस्स खो, आनन्द, भिक्खुनो सतिविनयो दातब्बो। एवं [R. 248]

---

१. सम्मुखविनय

"आनन्द ! सम्मुखविनय कैसे होता है ? आनन्द ! जब कभी भिक्षुओं में ऐसा विवाद उत्पन्न हो कि यह धर्म है या अधर्म ? यह विनय है या अविनय ? तब सभी भिक्षुओं को आवास में एक जगह एकत्र होना चाहिये। एकत्र हो धर्मरूपी रस्सी का ज्ञान से परीक्षण करना चाहिये। यों जैसे वह विवाद शान्त हो वैसे उसको शान्त करना चाहिये। इस प्रकार आनन्द ! सम्मुखविनय होता है। यों सम्मुखविनय से भी विवादों का शमन किया जा सकता है।

२. स्मृतिविनय

८. "आनन्द ! स्मृतिविनय कैसे होता है ? यहाँ, आनन्द ! कोई भिक्षु किसी भिक्षु पर कोई पाराजिक या पाराजिक के समान भारी आपत्ति (दोष) का आरोप लगाते हुए कहते हैं—'आयुष्मन् ! तुम ऐसी गम्भीर (गुरु) आपत्ति से आपन्न हो, जो पाराजिक या पाराजिक के समान है, क्या तुम्हें यह स्मरण है ?' तब वह (आरोपित) भिक्षु कहता है—'आयुष्मन् ! मुझे तो ऐसा दोष, जो पाराजिक या उसके समान हो, अपने द्वारा किया हुआ याद नहीं आता' आनन्द ! तब उस भिक्षु

---

१. विशेष—यहाँ नालन्दा संस्करण में इन सातों अधिकरणसमथों का व्याख्यान परम्परा से हटकर विपर्यस्त रूप में प्रकाशित हुआ है। हम उसे यहाँ '४. सत्त अधिकरणसमथा' उपबन्ध में वर्णित अवतरणिका के आधार पर उचित स्थान पर प्रकाशित कर रहे हैं।

खो, आनन्द, सतिविनयो होति, एवं च पनिधेकच्चानं अधिकरणानं वूपसमो होति यदिदं--सतिविनयेन ।

(३) अमूळ्हविनयो

[B. 36] ९. "कथं च, आनन्द, अमूळ्हविनयो होति ? इधानन्द, भिक्खू भिक्खुं एवरूपाय गरुकाय आपत्तिया चोदेन्ति पाराजिकेन वा पाराजिकसामन्तेन वा--'सरतायस्मा एवरूपिं गरुकं आपत्तिं आपज्जिता पाराजिकं वा पाराजिकसामन्तं वा' ति ? सो एवमाह—'न खो अहं, आवुसो, सरामि एवरूपिं गरुकं आपत्तिं आपज्जिता पाराजिकं वा पाराजिकसामन्तं वा' ति । तमेनं सो निब्बेठेन्तं अतिवेठेति—'इङ्घायस्मा साधुकमेव जानाहि यदि सरसि एवरूपिं गरुकं आपत्तिं आपज्जिता पाराजिकं वा पाराजिकसामन्तं वा' ति । सो एवमाह--'अहं खो, आवुसो, उम्मादं पापुणिं चेतसो विपरियासं । तेन मे उम्मत्तकेन बहुं अस्सामणकं अज्झाचिण्णं भासितपरिक्कन्तं । नाहं तं सरामि । मूळ्हेन मे एतं कतं' ति । तस्स खो, आनन्द, भिक्खुनो अमूळ्हविनयो दातब्बो । एवं खो, आनन्द, अमूळ्हविनयो होति,

---

को अन्य भिक्षुओं द्वारा तत्कृत दोष (आपत्ति) की याद दिलानी चाहिये । यों आनन्द ! यह 'स्मृतिविनय' कहलाता है । यों, इस स्मृतिविनय से भी कभी-कभी कोई विवाद शान्त हो जाया करता है ।

३. अमूढविनय

९. "आनन्द ! अमूढविनय कैसे होता है ? यहाँ, आनन्द ! कोई भिक्षु किसी भिक्षु पर गम्भीर आपत्ति का आरोप करता है, जो (आपत्ति) पाराजिक या पाराजिक के समान हो—'आयुष्मन् ! क्या तुम्हें तुम्हारे द्वारा की हुई गम्भीर आपत्ति, जो पाराजिक या पाराजिक के ही समान है, याद है ?' वह (आरोपित) भिक्षु कुछ दबा हुआ सा इसका यों उत्तर दे—'आयुष्मन् ! मुझे तो ऐसी कोई अपनी आपत्ति याद नहीं आती जो पाराजिक या उसके समान हो ।' तब उस (आरोप से) दबे हुए भिक्षु को थोड़ा और दबाते हुए फिर पूछना चाहिये—'आयुष्मन् ! तुम्हारे लिये यही अच्छा होगा कि तुम याद करो कि तुम ऐसी गम्भीर आपत्ति से तो ग्रस्त नहीं हुए हो जो पाराजिक या पाराजिक के समान गम्भीर हो, भली भाँति याद करो ।' तब वह आरोपित भिक्षु यों कहे—'हाँ, आयुष्मन् ! मैं उन्मत्त हो गया था, मुझे मतिभ्रम हो गया था, उस उन्मत्तता, मतिभ्रम की अवस्था में ही मुझ से वह श्रमणों से अकरणीय आचरण हो गया ! मैंने असद्भाषण भी किया ! पर वह मुझे याद नहीं आ रहा है । मेरी मतिमन्दता (मूढता) से यह सब कुछ हो गया होगा !'

एवं च पनिधेकच्चानं अधिकरणानं वूपसमो होति यदिदं— [N.42] अमूळ्हविनयेन ।

(४) पटिञ्ञातकरणं

१०. "कथं च, आनन्द, पटिञ्ञातकरणं होति ? इधानन्द, भिक्खु चोदितो वा अचोदितो वा आपत्तिं सरति, विवरति उत्तानीकरोति । तेन, आनन्द, भिक्खुना वुड्ढतरं भिक्खुं उपसङ्कमित्वा एकंसं चीवरं कत्वा पादे वन्दित्वा उक्कुटिकं निसीदित्वा अञ्जलिं पग्गहेत्वा एवमस्स वचनीयो— 'अहं, भन्ते, इत्थन्नामं आपत्तिं आपन्नो, तं पटिदेसेमी' ति । सो एवमाह— 'पस्ससी' ति ? 'आम, पस्सामी' ति ।

'आयतिं संवरेय्यासी' ति ? 'संवरिस्सामी' ति ।

"एवं खो, आनन्द, पटिञ्ञातकरणं होति, एवं च पनिधेकच्चानं अधिकरणानं वूपसमो होति यदिदं—पटिञ्ञातकरणेन ।

(५) येभुय्यसिका

११. "कथं च, आनन्द, येभुय्यसिका होति ? ते चे, आनन्द, भिक्खू न

तो, आनन्द ! उस भिक्षु को 'अमूढविनय' की सुविधा देनी चाहिये । आनन्द ! 'अमूढविनय' के प्रयोग की यह विधि है । इस अमूढविनय से भी कभी-कभी कई विवादों को सुलझाया जा सकता है ।

४. प्रतिज्ञा कराना

१०. "और, आनन्द ! विवाद सुलझाने के लिये प्रतिज्ञातकरण कैसे होता है ? यहाँ, आनन्द ! कोई भिक्षु किसी के द्वारा आरोप लगाने पर या बिना लगाये ही अपने किये अपराध का स्मरण कर लेता है, तो, आनन्द ! उस भिक्षु को अपने से अधिक वृद्ध भिक्षु के सामने जाकर चीवर को एक कन्धे पर कर, उसके चरणों में प्रणाम कर, उकड़ू बैठ, हाथ जोड़ यों निवेदन करना चाहिये—'मैं, भन्ते ! इस नाम की आपत्ति (दोष) से आपन्न (ग्रस्त) हूँ । उसकी मैं यह प्रतिदेशना (निवेदन) करता हूँ ।' तब उस वृद्ध भिक्षु को उससे यों कहना चाहिये—'उस दोष की बुराई समझ रहे हो ?' 'हाँ, भन्ते समझ रहा हूँ ।' 'भविष्य में तो ऐसा आपत्ति-जनक गलत कार्य नहीं करोगे ?' 'हाँ, भन्ते ! नहीं करूँगा ।' आनन्द यों यह 'प्रतिज्ञातकरण' कहलाता है । इस प्रतिज्ञातकरण से भी सङ्घ में बहुत से विवाद मिटाये जा सकते हैं ।

५. यद्भूयसिका

११. "आनन्द ! 'यद्भूयसिक' अधिकरणशमथ कैसे सम्पन्न होता है ? आनन्द !

सक्कोन्ति तं अधिकरणं तस्मिं आवासे वूपसमेतुं, तेहानन्द, भिक्खूहि यस्मिं आवासे बहुतरा भिक्खू सो आवासो गन्तब्बो। तत्थ सब्बेहेव समग्गेहि सन्निपतितब्बं। सन्निपतित्वा धम्मनेत्ति समनुमज्जितब्बा। धम्मनेत्तिं समनुमज्जित्वा यथा तत्थ समेति तथा तं अधिकरणं वूपसमेतब्बं। एवं खो, आनन्द, येभुय्यसिका होति, एवं च पनिधेकच्चानं अधिकरणानं वूपसमो होति यदिदं—येभुय्यसिकाय।

(६) तस्सपापियसिका

[R. 249] १२. "कथं च, आनन्द, तस्सपापियसिका होति? इधानन्द, भिक्खु भिक्खुं एवरूपाय गरुकाय आपत्तिया चोदेति पाराजिकेन वा, पाराजिकसामन्तेन वा--'सरतायस्मा एवरूपिं गरुकं आपत्तिं आपज्जिता पाराजिकं वा, पाराजिकसामन्तं वा' ति? सो एवमाह--'न खो अहं, आवुसो, सरामि एवरूपिं गरुकं आपत्तिं आपज्जिता पाराजिकं वा, पारा-
[B. 37] जिकसामन्तं वा' ति। तमेनं सो निब्बेठेन्तं अतिवेठेति--'इङ्घा-

---

यदि कभी उस (एक) आवास में रहने वाले भिक्षु उस आवासवासी भिक्षुओं में उत्पन्न किसी विवाद को न शान्त कर सकें तो, आनन्द! उन भिक्षुओं को, अपने वाले आवास से बड़े आवास में, जहाँ अधिक (भूयस्) भिक्षु रहते हो, जाना चाहिये। वहाँ सभी (दोनों आवासों में रहने वाले) भिक्षुओं को एकत्र बैठना चाहिये। एकत्र मिल बैठे उन भिक्षुओं को धर्मनेत्री (ज्ञान रज्जु) का समीक्षण-परीक्षण (समनुमार्जन) करना चाहिये। इस समनुमार्जन के सहारे से, जिस तरह भी वह विवाद मिटे, मिटाने का सब को प्रयास करना चाहिये। यों, आनन्द! यह 'यद्भूयसिका' अधिकरणशमथ सम्पन्न होता है। उसका सहारा लेकर भी संघ में उठे विवादों को सुलझाने में कभी-कभी सफलता मिल जाती है।

६. तत्पापीयसिका (तस्सपापियसिका)

१२. आनन्द! 'तत्पापीयसिका' अधिकरणशमथ उपाय कैसे सम्पन्न होता है? यहाँ, आनन्द! कोई भिक्षु किसी अन्य भिक्षु को इस तरह की गम्भीर आपत्ति से आरोपित करे जो पाराजिक या पाराजिक के समान ही गम्भीर हो—'आयुष्मन्! तुम इस समय पाराजिक या पाराजिक तुल्य ही गम्भीर आपत्ति से आपन्न हो चुके हो—क्या तुम्हें यह स्मरण है?' वह (आरोपित) दबा हुआ सा यदि यह कहे—'नहीं, आयुष्मन्! मुझे तो अपने में कोई ऐसी आपत्ति का स्मरण नहीं होता जो पाराजिक या पाराजिक के ही तुल्य हो'। तो उस दबे हुए भिक्षु पर और दबाव डालते हुए भिक्षु को उससे फिर यह कहना चाहिये—'आयुष्मन्! ठीक तरह बात

यस्मा साधुकमेव जानाहि यदि सरसि एवरूपिं गरुकं आपत्तिं आपज्जिता पाराजिकं वा, पाराजिकसामन्तं वा' ति। सो एवमाह--'न खो अहं, आवुसो, सरामि एवरूपिं गरुकं आपत्तिं आपज्जिता पाराजिकं वा, पाराजिकसामन्तं वा; सरामि च खो अहं आवुसो, एवरूपिं अप्पमत्तिकं आपत्तिं आपज्जिता' ति। तमेनं सो निब्बेठेन्तं अतिवेठेति--'इङ्घायस्मा साधुकमेव जानाहि यदि सरसि एवरूपिं गरुकं आपत्तिं आपज्जिता पाराजिकं वा पाराजिकसामन्तं वा' ति? सो एवमाह--'इमं हि नामाहं, आवुसो, अप्पमत्तिकं आपत्तिं आपज्जित्वा अपुट्ठो पटिजानिस्सामि। किं पनाहं एवरूपिं गरुकं आपत्तिं आपज्जित्वा पाराजिकं वा पाराजिकसामन्तं वा पुट्ठो न पटिजानिस्सामी' ति? सो एवमाह--'इमं हि नाम त्वं, आवुसो, अप्पमत्तिकं आपत्तिं आपज्जित्वा अपुट्ठो न पटिजानिस्ससि, किं पन त्वं एवरूपिं गरुकं आपत्तिं आपज्जित्वा पाराजिकं वा पाराजिकसामन्तं वा पुट्ठो पटिजानिस्ससि! इङ्घायस्मा साधुकमेव जानाहि यदि सरसि एवरूपिं गरुकं आपत्तिं आपज्जिता पाराजिकं वा पाराजिकसामन्तं वा' ति। सो एवमाह—'सरामि खो अहं, आवुसो, एवरूपिं गरुकं आपत्तिं आपज्जिता पाराजिकं वा पाराजिकसामन्तं वा। दवा मे एतं वुत्तं, मे रवा एतं वुत्तं-- [N. 43]

कर लो, तुम...आपन्न हो चुके हो'। तब वह आरोपित भिक्षु यह कहने लगे—'नहीं, आयुष्मन्! मैं पाराजिक या पाराजिकतुल्य आपत्ति से अपनी आपन्नता तो नहीं स्मरण कर पा रहा हूँ, पर हाँ, किसी छोटी-मोटी (अल्पमात्रिक) आपत्ति से आपन्न हुआ हूँ—ऐसा याद आ रहा है' तब वह भिक्षु उस दबे हुए भिक्षु को और दबा कर पूछता है—'आयुष्मन्! अच्छी तरह याद कर लो...आपत्ति से आपन्न हो?' तब वह (आरोपित) भिक्षु कहे--'आयुष्मन्! जब मैं अपने आपको विना ही पूछे, उस छोटी आपत्ति से आपन्न हुआ स्वीकार कर रहा हूँ तो यदि मैं उस पाराजिकतुल्य गुरु आपत्ति से ग्रस्त होता तो उसे भी यों ही विना पूछे स्वीकार न कर लेता?' तब वह समझाने वाला भिक्षु उससे फिर यह कहे--'अरे आयुष्मन्! जब तुमने वह छोटी आपत्ति भी विना कहे, विना दबाव डाले अपने में स्वीकार नहीं की तो यह इतनी बड़ी आपत्ति, विना जोर-दबाव डाले कैसे स्वीकार करोगे! अब भी समय है, अच्छी तरह याद कर लो, क्या तुम पाराजिक या तत्तुल्य बड़ी आपत्ति से आपन्न नहीं हो?' तब वह आरोपित भिक्षु सब तरह के दबाव से अपनी हार मानता हुआ सा यह कहे--'हाँ, आयुष्मन्! अब मुझे याद आ रहा है कि मैं अवश्य पाराजिक या पाराजिकतुल्य गम्भीर आपत्ति से ग्रस्त हूँ। पहले मैंने मृषावाद के अतिसाहस (दव) तथा प्रमाद (रव) से आपके सामने असत्य कह

नाहं तं सरामि एवरूपिं गरुकं आपत्तिं आपज्जिता पाराजिकं वा पाराजिकसामन्तं वा' ति। एवं खो, आनन्द, तस्सपापियसिका होति, एवं च पनिधेकच्चानं अधिकरणानं वूपसमो होति यदिदं--तस्सपापियसिकाय।

(७) तिणवत्थारको

[R. 250] १३. "कथं च, आनन्द, तिणवत्थारको होति ? इधानन्द, भिक्खूनं भण्डनजातानं कलहजातानं विवादापन्नानं विहरतं बहुं अस्सामणकं अज्झाचिण्णं होति भासितपरिक्कन्तं। तेहानन्द, भिक्खूहि सब्बेहेव समग्गेहि सन्निपतितब्बं सन्निपतित्वा एकतोपक्खिकानं भिक्खूनं ब्यत्तेन भिक्खुना उट्ठायासना एकंसं चीवरं कत्वा अञ्जलिं पणामेत्वा सङ्घो ञापेतब्बो--

'सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। इदं अम्हाकं भण्डनजातानं कलहजातानं [B. 38] विवादापन्नानं विहरतं बहुं अस्सामणकं अज्झाचिण्णं भासितपरिक्कन्तं। यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, अहं या चेव इमेसं आयस्मन्तानं आपत्ति या च अत्तनो आपत्ति, इमेसं चेव आयस्मन्तानं अत्थाय अत्तनो च अत्थाय, सङ्घमज्झे तिणवत्थारकेन देसेय्यं, ठपेत्वा थुल्लवज्जं ठपेत्वा गिहिपटिसंयुत्तं' ति।

दिया था कि मैं तथा आपन्न नहीं हूँ।' आनन्द ! यह कहलाता है 'तस्सपापियसिका' अधिकरणशमथ ! (इसका स्पष्ट अर्थ है—उस पापी के पाप को किसी भी तरह, अधिक से अधिक कड़ाई करके, स्पष्टतया स्वीकार कराना।) इस अधिकरणशमथ का सहारा लेकर संघ के विवादों को शान्त करने में सहायता मिल सकती है।

७. तृणावस्तारक (तिणवत्थारक)

१३. "और आनन्द ! जानते हो, तृणावस्तारक (तृण से ढाँकने जैसा) अधिकरणशमथ कैसे होता है ? यहाँ, आनन्द ! कुछ भिक्षु अपने में एक दूसरे की भद्द उड़ाते (अशिष्टता करते) कलह करते, विवाद करते हुए बहुत से श्रामण्यविरुद्ध आचरण करते रहते हैं, वे एक दूसरे के विरुद्ध अन्यथाभाषण भी करते रहते हैं। आनन्द ! ऐसे उन सब भिक्षुओं को एक जगह एकत्र होना चाहिये। एकत्र होकर उनमें से एक पक्ष वाले भिक्षुओं में से किसी कुशल (व्यक्त) भिक्षु को आसन से उठ, चीवर को एक कन्धे पर कर, हाथ जोड़, प्रणाम कर सङ्घ को ज्ञापित करना चाहिये—

'भन्ते सब मेरी बात सुनें ! हम भिक्षुओं द्वारा एक दूसरे की भद्द उड़ाते, परस्पर कलह-विवाद करते हुए बहुत से श्रामण्यधर्म के प्रतिकूल आचरण हुए हैं, हमने एक दूसरे को व्यर्थ ही बुरा-भला भी कहा है। यदि सङ्घ को स्वीकार्य हो (रुचे) तो मैं अपने व मेरे साथी भिक्षुओं की उन आपत्तियों (दोषों) को, अपने

"अथापरेसं एकतोपक्खिकानं भिक्खूनं ब्यत्तेन भिक्खुना [N. 44] उट्ठायासना एकंसं चीवरं कत्वा अञ्जलिं पणामेत्वा सङ्घो ञापेतब्बो--

'सुणातु मे, भन्ते, सङ्घो। इदं अम्हाकं भण्डनजातानं कलहजातानं विवादापन्नानं विहरतं बहुं अस्सामणकं अज्झाचिण्णं भासितपरिक्कन्तं। यदि सङ्घस्स पत्तकल्लं, अहं या चेव इमेसं आयस्मन्तानं आपत्ति या च अत्तनो आपत्ति, इमेसं चेव आयस्मन्तानं अत्थाय अत्तनो च अत्थाय, सङ्घमज्झे तिणवत्थारकेन देसेय्यं, ठपेत्वा थुल्लवज्जं ठपेत्वा गिहिपटिसंयुत्तं' ति।

"एवं खो, आनन्द, तिणवत्थारको होति, एवं च पनिधेकच्चानं अधिकरणानं वूपसमो होति यदिदं--तिणवत्थारकेन।

५. छ साराणीया धम्मा

१४. "छयिमे, आनन्द, धम्मा साराणीया पियकरणा गरुकरणा सङ्गहाय अविवादाय सामग्गिया एकीभावाय संवत्तन्ति। कतमे छ?

इधानन्द, भिक्खुनो मेत्तं कायकम्मं पच्चुपट्ठितं होति सब्रह्मचारीसु आवि चेव रहो च। अयं पि धम्मो साराणीयो पियकरणो गरुकरणो सङ्गहाय अविवादाय सामग्गिया एकीभावाय संवत्तति। (१)

व इन मेरे साथी भिक्षुओं के लिये तृणावस्तारक अधिकरणशमथ के सहारे से, सङ्घ के सामने रखूँ; इनमें वे बातें सम्मिलित नहीं होगी जो स्थूल अवद्य (बड़ा दोष) या गृहिप्रतिसंयुक्त (गृहस्थसम्बन्धी दोष) से सम्पृक्त हों।'

"तब दूसरे पक्ष वाले भिक्षुओं में किसी एक चतुर भिक्षु को''' सङ्घ को ज्ञापित करना चाहिये--

'भन्ते, सङ्घ''' पूर्ववत्''' सम्पृक्त हों।

"आनन्द! इस तरह यह तृणावस्तारक अधिकरणशमथ का प्रयोग होता है। और इस उपाय से भी सङ्घ के विवाद को सुलझाये जा सकते हैं।

५. छह स्मरणीय धर्म

आनन्द! ये (अधोलिखित) छह धर्म सतत स्मरणीय (या प्रसन्नतादायक), प्रियकारक, आचरण में गम्भीरता लाने वाले, सङ्ग्रह योग्य, विवाद को सुलझाने वाले, इकट्ठा (सङ्घबद्ध) रहने में सहायक एवं एकता बनाने वाले हैं। कौन से छह?

(१) "आनन्द! भिक्षु का अपने सब्रह्मचारियों (साथी भिक्षुओं) के साथ गुप्त या प्रकट-उभयथा मैत्रीयुक्त कायकर्म रहे—वह धर्म''' एकता बनाने वाला है।

"पुन च परं आनन्द, भिक्खुनो मेत्तं वचीकम्मं पच्चुपट्ठितं होति सब्रह्मचारीसु आवि चेव रहो च। अयं पि धम्मो साराणीयो पियकरणो गरुकरणो सङ्गहाय अविवादाय सामग्गिया एकीभावाय संवत्तति। (२)

[R. 251] "पुन च परं, आनन्द, भिक्खुनो मेत्तं मनोकम्मं पच्चुपट्ठितं होति सब्रह्मचारीसु आवि चेव रहो च। अयं पि धम्मो साराणीयो पियकरणो गरुकरणो सङ्गहाय अविवादाय सामग्गिया एकीभावाय संवत्तति। (३)

"पुन च परं, आनन्द, भिक्खु--ये ते लाभा धम्मिका धम्मलद्धा अन्तमसो पत्तपरियापन्नमत्तं पि तथारूपेहि लाभेहि--अपटिविभत्तभोगी होति, [B. 39] सीलवन्तेहि सब्रह्मचारीहि साधारणभोगी। अयं पि धम्मो साराणीयो पियकरणो गरुकरणो सङ्गहाय अविवादाय सामग्गिया एकीभावाय संवत्तति। (४)

[N. 45] "पुन च परं, आनन्द, भिक्खु—यानि तानि सीलानि अखण्डानि अच्छिद्दानि असबलानि अकम्मासानि भुजिस्सानि विञ्ञुप्पसत्थानि अपरामट्ठानि समाधिसंवत्तनिकानि तथारूपेसु सीलेसु—सीलसामञ्ञगतो विहरति सब्रह्मचारीहि आवि चेव रहो च। अयं पि धम्मो साराणीयो पियकरणो गरुकरणो सङ्गहाय अविवादाय सामग्गिया एकीभावाय संवत्तति। (५)

---

(२) "आनन्द! फिर उस भिक्षु का अपने···मैत्रीयुक्त वाक्कर्म···एकता बनाने वाला है।

(३) "आनन्द! फिर उस भिक्षु का अपने···मैत्रीयुक्त मनःकर्म···एकता लाने वाला है।

(४) "और फिर, आनन्द! भिक्षु का जो कुछ भी धार्मिक लाभ, धर्माचरण से प्राप्त (चीवर, पिण्डपात आदि) लाभ हो, फिर भले ही वह इतना कम हो कि जिससे पात्र ही चुपड़ा जा सके; इन लाभों को वह अपने शीलसम्पन्न सब्रह्मचारियों के साथ मिल-बाँट कर उपयोग में लाये (अप्रतिविभक्तभोगी हो) तो यह धर्म भी··· एकता लाने वाला है।

(५) "और फिर, आनन्द! ये जो अखण्ड, अच्छिद्र, अविभक्त, निष्कलङ्क (अकल्मष), सदा आचरणीय, विद्वानों द्वारा प्रशस्त, अनिन्दित एवं समाधि में सहायक शील (सदाचार) हैं, भिक्षु को इन शीलों में न गुप्त न प्रकट रूप से शीलश्रामण्यभाव से सम्पन्न हो सब्रह्मचारियों में रहना चाहिये। यह धर्म भी···सङ्घ में एकताकारक है।

"पुन च परं, आनन्द, भिक्खु—यायं दिट्ठि अरिया निय्यानिका निय्याति तक्करस्स सम्मा दुक्खक्खयाय, तथारूपाय दिट्ठिया दिट्ठिसामञ्ञ-गतो विहरति सब्रह्मचारीहि आवि चेव रहो च। अयं पि धम्मो साराणीयो पियकरणो गरुकरणो सङ्गहाय अविवादाय सामग्गिया एकीभावाय संवत्तति। इमे खो, आनन्द, छ साराणीया धम्मा पियकरणा गरुकरणा सङ्गहाय अविवादाय सामग्गिया एकीभावाय संवत्तन्ति। (६)

"इमे चे तुम्हे, आनन्द, छ साराणीये धम्मे समादाय वत्तेय्याथ, पस्सथ नो तुम्हे, आनन्द, त वचनपथं अणुं वा थूलं वा यं तुम्हे नाधिवासेय्याथा" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

"तस्मातिहानन्द, इमे छ साराणीये धम्मे समादाय वत्तथ। तं वो भविस्सति दीघरत्तं हिताय सुखाया" ति।

१५. इदमवोच भगवा। अत्तमनो आयस्मा आनन्दो भगवतो भासितं अभिनन्दी ति।

●

---

(६) और फिर आनन्द! यह जो नैर्याणिक आर्य (सम्मत) दृष्टि (सिद्धान्त, मत) है, जिस पर आचरण करने वाले का दुःखक्षय सम्यक्तया हो ही जाता है, ऐसी दृष्टि के सहारे दृष्टिश्रामण्यभाव से गुप्त या प्रकट रूप से सम्पन्न हो साथी भिक्षुओं के साथ रहना है, यह धर्म भी'''एकताकारक है।

"और आनन्द! क्यों कि तुम लोग इन छह स्मरणीय धर्मों के सहारे साधना में तत्पर हो तो आनन्द! क्या तुम्हें अब अपने आप में एक भी ऐसा छोटा या बड़ा दोष दिखायी देता है, जो वाणी पर लाया जा सके!"

"नहीं, भन्ते!"

"इस लिये, आनन्द! इन छह स्मरणीय धर्मों के सहारे साधना करते रहो। यही तुम्हारे लिये दीर्घकाल तक हितकर व सुखकर होगा।"

१५. भगवान् ने यह कहा। आप्तमना आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् के इस कथन का अभिनन्दन किया॥

सामगामसुत्त समाप्त॥

●

५. सुनक्खत्तसुत्तं

१. भिक्खूनं अञ्ञाब्याकरणं

[N. 46, R. 252] १. एवं मे सुत्तं । एकं समयं भगवा वेसालियं [B. 40] विहरति महावने कूटागारसालायं । तेन खो पन समयेन सम्बहुलेहि भिक्खूहि भगवतो सन्तिके अञ्ञा[1] ब्याकता होति—"खीणा जाति वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानामा" ति। अस्सोसि खो सुनक्खत्तो लिच्छविपुत्तो—"सम्बहुलेहि किर भिक्खूहि भगवतो सन्तिके अञ्ञा ब्याकता होति—'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानामा" ति। अथ खो सुनक्खत्तो लिच्छविपुत्तो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्त निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सुनक्खत्तो लिच्छविपुत्तो भगवन्तं एतदवोच—"सुतं मेतं, भन्ते—'सम्बहुलेहि किर भिक्खूहि भगवतो सन्तिके अञ्ञा ब्याकता होति—खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया ति पजानामा' ति। ये ते, भन्ते, भिक्खू भगवतो सन्तिके अञ्ञं ब्याकंसु—'खीणा जाति, वसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं नापरं इत्थत्ताया ति पजानामा' ति, कच्चि ते, भन्ते, भिक्खू सम्मदेव अञ्ञं ब्याकंसु उदाहु सन्तेत्थेकच्चे भिक्खू अधिमानेन अञ्ञं ब्याकंसू" ति ?

---

५. सुनक्षत्रसूत्र

१. भिक्षुओं द्वारा अपनी अर्हत्त्वप्राप्ति का बखान

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) वैशाली की महावनस्थ कूटागारशाला में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय प्रायः बहुत से भिक्षुओं ने भगवान् के सामने आकर अपनी अर्हत्त्व-प्राप्ति का बखान किया—"हमारी जन्मपरम्परा क्षीण हो चुकी है, हमारी धर्मसाधना पूर्ण हो चुकी है, हमने सभी करणीय (कर्तव्य) पूरे कर लिये, हमारा अब कोई कर्तव्य शेष नहीं है—यह हम जानते हैं।" सुनक्षत्र लिच्छविपुत्र ने जब यह सुना कि 'प्रायः बहुत से भिक्षुओं ने...यह हम जानते हैं।' तब वह सुनक्षत्र लिच्छविपुत्र जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचा। पहुँचकर भगवान् को प्रणाम कर एक तरफ बैठ गया। एक तरफ बैठे सुनक्षत्र लिच्छविपुत्र ने भगवान् से यों निवेदन किया—"भन्ते ! मैंने सुना है कि 'बहुत से भिक्षुओं ने...यह हम जानते हैं।' भन्ते ! इन जिन भिक्षुओं ने अपनी अर्हत्त्व-प्राप्ति का बखान किया है, क्या वे सभी सचमुच अर्हत्त्व प्राप्त कर

---

१. अञ्ञा=ज्ञा, अर्थात् ज्ञान (अर्हत्त्वप्राप्ति, अथवा—
अञ्ञा=आज्ञा, अर्थात् आ+समन्तात्+ज्ञा=ज्ञान (अर्हत्त्वप्राप्ति)।

२. "ये ते, सुनक्खत्त, भिक्खू मम सन्तिके अञ्ञं ब्याकंसु—'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया ति पजानामा' ति, सन्तेत्थेकच्चे भिक्खू सम्मदेव अञ्ञं ब्याकंसु, सन्ति पनिधेकच्चे भिक्खू अधिमानेन पि अञ्ञं ब्याकंसु। तत्र, सुनक्खत्त, ये ते भिक्खू सम्मदेव अञ्ञं ब्याकंसु तेसं तं तथेव होति; ये पन ते भिक्खू अधिमानेन अञ्ञं ब्याकंसु तत्र, सुनक्खत्त, तथागतस्स एवं होति—'धम्मं नेसं देसेस्सं' ति। एवं चेत्थ, सुनक्खत्त, तथागतस्स होति—'धम्मं नेसं देसेस्सं' ति। अथ च पनिधेकच्चे मोघपुरिसा पञ्हं अभिसङ्खरित्वा अभिसङ्खरित्वा तथागतं उपसङ्कमित्वा पुच्छन्ति। तत्र, सुनक्खत्त, यं पि तथागतस्स एवं [N. 47] होति—'धम्मं नेसं देसेस्सं' ति तस्स पि होति अञ्ञथत्तं" ति। [R. 253]

"एतस्स, भगवा, कालो, एतस्स, सुगत, कालो, यं भगवा धम्मं देसेय्य। भगवतो सुत्वा भिक्खू धारेस्सन्ती" ति।

२. तथागतस्स देसना

३. "तेन हि, सुनक्खत्त, सुणाहि, साधुकं मनसि करोहि; भासिस्सामी"

चुके हैं, या उनमें से कुछ ने अपने अतिमानवश अपनी झूठी अर्हत्त्व प्राप्ति का बखान (डींग मारना) कर दिया है?"

२. "हाँ, सुनक्षत्र! कुछ भिक्षुओं ने मेरे सामने आकर अपनी अर्हत्त्व प्राप्ति··· हम जानते हैं। उनमें से कुछ भिक्षु तो ऐसे अवश्य थे जिन्होंने अपनी वास्तविकता का बखान किया है, परन्तु उनमें से कुछ ऐसे भी थे जिन्होंने अपनी अर्हत्त्वप्राप्ति की डींग ही हाँकी है, वे अभी, वस्तुतः अर्हत् नहीं हुए हैं। वहाँ, सुनक्षत्र! जिन्होंने अपनी अर्हत्त्वप्राप्ति के लिये वास्तविकता बतायी है, उनके बारे में तो कोई मैंने कोई अन्यथा विचार नहीं किया; परन्तु जिन्होंने अपनी अर्हत्त्वप्राप्ति की झूठी डींग हाँकी है उनके बारे में मुझे विचार होता है कि मैं इन्हें फिर से धर्मोपदेश करूँ। किन्तु यहाँ सुनक्षत्र! कुछ बुद्धि के शत्रु (मोघपुरुष) ऐसे भी हैं जो बनावटी प्रश्न बना-बनाकर मुझसे पूछने आते हैं, वहाँ, सुनक्षत्र! जो मैंने पहले सोचा था कि 'इन्हें पुनः धर्मोपदेश करूँ'—इसमें भी अन्यथात्व (विपरीतभाव) आ जाता है।"

"(नहीं भन्ते! आप ऐसा न सोचें) भगवन्! अब तो इसी बात का समय है, इसी बात का अवसर है कि आप भगवान् (ऐसे लोगों के लिये भी) धर्म का उपदेश करें। भगवान् से सुनकर भिक्षु उसे पुनः उचित (सही) ढंग से धारण करेंगे।"

२. तथागत की देशना

३. "तो, सुनक्षत्र! ठीक से ध्यान दो। मैं देशना (उपदेश) कर रहा

ति। "एवं, भन्ते" ति खो सुनक्खत्तो लिच्छविपुत्तो भगवतो पच्चस्सोसि। भगवा एतदवोच--

"पञ्च खो इमे, सुनक्खत्त, कामगुणा। कतमे पञ्च? [B. 41] चक्खुविञ्ञेय्या रूपा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया, सोतविञ्ञेय्या सद्दा···पे०···घानविञ्ञेय्या गन्धा···जिव्हाविञ्ञेय्या रसा··· कायविञ्ञेय्या फोट्ठब्बा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया —इमे खो, सुनक्खत्त, पञ्च कामगुणा।

४. "ठानं खो पनेतं, सुनक्खत्त, विज्जति यं इधेकच्चो पुरिसपुग्गलो लोकामिसाधिमुत्तो अस्स। लोकामिसाधिमुत्तस्स खो, सुनक्खत्त, पुरिसपुग्गलस्स तप्पतिरूपी चेव कथा सण्ठाति, तदनुधम्मं च अनुवितक्केति, अनुविचारेति, तं च पुरिसं भजति, तेन च वित्तिं आपज्जति; आनेञ्जपटिसंयुत्ताय च पन कथाय कच्छमानाय न सुस्सूसति, न सोतं ओदहति, न अञ्ञा चित्तं उपट्ठापेति, न च तं पुरिसं भजति, न च तेन वित्तिं आपज्जति।

"सेय्यथापि, सुनक्खत्त, पुरिसो सकम्हा गामा वा निगमा वा चिरविप्पवुत्थो अस्स। सो अञ्ञतरं पुरिसं पस्सेय्य तम्हा गामा वा निगमा वा

हूँ।" "अच्छा, भन्ते" कह कर सुनक्षत्र ने भगवान् की आज्ञा को स्वीकार किया।

भगवान् बोले—"सुनक्षत्र! ये पाँच कामगुण हैं—कौन से पाँच? (१) चक्षुर्विज्ञेय रूप जो कि इष्ट, कान्त, मनाप, प्रिय कामसम्पृक्त एवं रागमय हैं। (२) श्रोत्रविज्ञेय शब्द···(३) घ्राणविज्ञेय गन्ध···(४) जिह्वाविज्ञेय रस···(५) कायविज्ञेय स्पर्श योग्य विषय···सुनक्षत्र! ये पाँच कामगुण होते हैं।

४. "सुनक्षत्र! यह सम्भव है कि यहाँ कोई सांसारिक लाभ का अभिलाषुक हो। सुनक्षत्र! इस सांसारिक लाभ के इच्छुक पुरुष-पुद्गल की बात इस लाभ के अनुरूप ही होती है, इसके अनुसार ही वह सोचता-विचारता है, वैसे ही पुरुषों की वह संगति भी करता है, उन्हीं के साथ उठता-बैठता है। आनिञ्ज्य (=सुख व दुःख से परे की समाधि-) सम्बन्धिनी बात उसके गले नहीं उतरती, वह उसे सुनना ही नहीं चाहता, न उधर अपने कान लगाता है न अपना चित्त। न वैसा उपदेश करने वाले साधक के पास वह बैठना ही चाहता है, न उसके साथ कोई सम्पर्क रखना चाहता है।

"सुनक्षत्र! जैसे कोई पुरुष अपने गाँव या निगम से बहुत समय पहले प्रवास

अचिरपक्कन्तं। सो तं पुरिसं तस्स गामस्स वा निगमस्स वा खेमत्तं च सुभिक्खतं च अप्पाबाधतं च पुच्छेय्य; तस्स सो पुरिसो तस्स गामस्स वा निगमस्स वा खेमत्तं च सुभिक्खतं च अप्पाबाधतं च [R. 254] संसेय्य। तं किं मञ्ञसि, सुनक्खत्त, अपि नु सो पुरिसो तस्स पुरिसस्स सुस्सूसेय्य, सोतं ओदहेय्य, अञ्ञा चित्तं उपट्ठापेय्य, तं च [N. 48] पुरिसं भजेय्य, तेन च वित्तिं आपज्जेय्या" ति? "एवं, भन्ते"।

"एवमेव खो, सुनक्खत्त, ठानमेतं विज्जति यं इधेकच्चो पुरिसपुग्गलो लोकामिसाधिमुत्तो अस्स। लोकामिसाधिमुत्तस्स खो, सुनक्खत्त, पुरिसपुग्गलस्स तप्पतिरूपी चेव कथा सण्ठाति, तदनुधम्मं च अनुवितक्केति, अनुविचारेति, तं च पुरिसं भजति, तेन च वित्तिं आपज्जति; आनेञ्जपटिसंयुत्ताय च पन कथाय कच्छमानाय न सुस्सूसति, न सोतं ओदहति, न अञ्ञा चित्तं उपट्ठापेति, न च तं पुरिसं भजति, न च तेन वित्तिं आपज्जति। सो एवमस्स वेदितब्बो—'आनेञ्जसंयोजनेन हि खो विसंयुत्तो लोकामिसाधिमुत्तो पुरिसपुग्गलो' ति।

५. "ठानं खो पनेतं, सुनक्खत्त, विज्जति यं इधेकच्चो [B. 42] पुरिसपुग्गलो आनेञ्जाधिमुत्तो अस्स। आनेञ्जाधिमुत्तस्स खो, सुनक्खत्त, पुरिसपुग्गलस्स तप्पतिरूपी चेव कथा सण्ठाति, तदनुधम्मं च अनुवितक्केति,

---

ले चुका हो; वह कभी अपने उस पूर्व ग्राम या निगम से कुछ ही समय पूर्व आये किसी अन्य पुरुष को देखे। वह उस पुरुष से उस ग्राम या निगम का हालचाल, कुशल-मङ्गल, सुभिक्षता या नीरोगता पूछे, तब उसको वह पुरुष उस ग्राम-निगम का हालचाल···नीरोगता बतावे। तो क्या मानते हो, सुनक्षत्र! क्या वह (चिर प्रवासी) पुरुष उस (अचिरप्रवासी) पुरुष की बात सुनना चाहेगा? उसे कार्य (आजीविका) देगा? उसकी तरफ अपना चित्त (ध्यान) लगायगा? उस पुरुष की संगति करेगा? उससे मेल-जोल बढ़ायगा?"

"हाँ, भन्ते!"

"ऐसे ही, सुनक्षत्र! सांसारिक लाभ के इच्छुक पुरुष की बात (चर्या) उसके अनुरूप ही होती है।···। ऐसे पुरुष को आनिञ्ज्य समाधि से कोई सम्पर्क न रखने वाला केवल सांसारिक लाभ का इच्छुक ही समझना चाहिये।

५. "सुनक्षत्र! यह सम्भव है कि यहाँ कोई पुरुष आनिञ्ज्य (समाधि) का अनुरागी हो। सुनक्षत्र! आनिञ्ज्यानुरागी इस पुरुष की चर्या भी इसके अनुरूप

अनुविचारेति, तं च पुरिसं भजति, तेन च वित्तिं आपज्जति; लोकामिस-पटिसंयुत्ताय च पन कथाय कच्छमानाय न सुस्सूसति, न सोतं ओदहति, न अञ्ञा चित्तं उपट्ठापेति, न च तं पुरिसं भजति, न च तेन वित्तिं आपज्जति। सेय्यथापि, सुनक्खत्त, पण्डुपलासो बन्धना पवुत्तो अभब्बो हरितत्ताय; एवमेव खो, सुनक्खत्त, आनेञ्जाधिमुत्तस्स पुरिसपुग्गलस्स ये लोकामिससंयोजने ते पवुत्ते। सो एवमस्स वेदितब्बो—'लोकामिससंयोजनेन हि खो विसंयुत्तो आनेञ्जाधिमुत्तो पुरिसपुग्गलो' ति।

६. "ठानं खो पनेतं, सुनक्खत्त, विज्जति यं इधेकच्चो पुरिसपुग्गलो आकिञ्चञ्ञायतनाधिमुत्तो अस्स। आकिञ्चञ्ञायतनाधिमुत्तस्स खो, सुनक्खत्त, पुरिसपुग्गलस्स तप्पतिरूपी चेव कथा सण्ठाति, तदनुधम्मं च अनुवितक्केति, अनुविचारेति, तं च पुरिसं भजति, तेन च वित्तिं आपज्जति; [R. 255] आनेञ्जपटिसंयुत्ताय च पन कथाय कच्छमानाय न सुस्सूसति, [N. 49] न सोतं ओदहति, न अञ्ञा चित्तं उपट्ठापेति, न च तं पुरिसं भजति, न च तेन वित्तिं आपज्जति। सेय्यथापि, सुनक्खत्त, पुथुसिला द्वेधा भिन्ना अप्पटिसन्धिका होति; एवमेव खो, सुनक्खत्त, आकिञ्चञ्ञाय-तनाधिमुत्तस्स पुरिसपुग्गलस्स ये आनेञ्जसंयोजने से भिन्ने। सो एवमस्स वेदितब्बो—'आनेञ्जसंयोजनेन हि खो विसंयुत्तो आकिञ्चञ्ञायतनाधिमुत्तो पुरिसपुग्गलो' ति।

ही होती हैं, इसके अनुसार ही वह सोचता-विचारता है, वैसे ही (साधक) पुरुषों का वह संसर्ग करता है, उन्हीं के साथ उठता-बैठता है, उन्हीं की सङ्गति करता है। सांसारिक लाभ सम्बन्धी कथा, कहने पर भी नहीं सुनना चाहता। उसकी तरफ कान भी नहीं देता। उनके साथ सम्पर्क रखने की बात तो बहुत दूर रह जाती है! सुनक्षत्र! जैसे वृक्ष का टूटा पीला पत्ता वापस हरा नहीं हो सकता; इसी तरह, सुनक्षत्र! आनिञ्ज्यानुरागी उस पुरुष के जो सांसारिक लाभ के फन्दे थे, वे कट चुके हैं। ऐसे पुरुष को यही समझना चाहिये कि वह सांसारिक लाभ से दूर हो आनिञ्ज्यानुरागी हो चुका है।

६. सुनक्षत्र! यह भी सम्भव है कि कोई पुरुष आकिञ्चन्यायतन (समाधि) का अनुरागी हो। उस आकिञ्चन्यायतनानुरागी की कथा (चर्या) भी उसी के अनुरूप…पूर्ववत्[1]…जैसे, सुनक्षत्र! कोई दो टुकड़े हुई शिला, फिर किसी भी दशा में नहीं जुड़ सकती; उसी तरह सुक्षत्र!…आकिञ्चन्यायतनानुरागी हो चुका है।

---

१. पिछले पाँचवे पैरे की तरह, 'आनिञ्ज्य' के स्थान पर आकिञ्चन्यायतन लगाकर पढ़ें।

७. "ठानं खो पनेतं, सुनक्खत्त, विज्जति यं इधेकच्चो पुरिसपुग्गलो नेवसञ्ञानासञ्ञायतनाधिमुत्तो अस्स, नेवसञ्ञानासञ्ञायतनाधिमुत्तस्स खो, सुनक्खत्त, पुरिसपुग्गलस्स तप्पतिरूपी चेव कथा सण्ठाति, तदनुधम्मं च अनुवितक्केति, अनुविचारेति, तं च पुरिसं भजति, तेन च वित्तिं आपज्जति; आकिञ्चञ्ञायतनपटिसंयुत्ताय च पन कथाय कच्छमानाय न सुस्सूसति, न सोतं ओदहति, न अञ्ञा चित्तं उपट्ठापेति, न च तं पुरिसं भजति, न च तेन वित्तिं आपज्जति। सेय्यथापि, सुनक्खत्त, पुरिसो मनुञ्ञभोजनं भुत्तावी छड्डेय्य। तं किं मञ्ञसि, सुनक्खत्त, अपि नु तस्स पुरिसस्स तस्मिं भत्ते पुन भोत्तुकम्यता अस्सा" ति? "नो हेतं, [B. 43] भन्ते"। "तं किस्स हेतु"? "अदुं हि, भन्ते, भत्तं पटिकूलसम्मतं" ति। "एवमेव खो, सुनक्खत्त, नेवसञ्ञानासञ्ञायतनाधिमुत्तस्स पुरिसपुग्गलस्स ये आकिञ्चञ्ञायतनसंयोजने से वन्ते। सो एवमस्स वेदितब्बो—'आकिञ्चञ्ञायतनसंयोजनेन हि खो विसंयुत्तो नेवसञ्ञानासञ्ञायतनाधिमुत्तो पुरिसपुग्गलो' ति।

८. "ठानं खो पनेतं, सुनक्खत्त, विज्जति यं इधेकच्चो पुरिसपुग्गलो सम्मा निब्बानाधिमुत्तो अस्स। सम्मा निब्बानाधिमुत्तस्स खो, सुनक्खत्त, पुरिसपुग्गलस्स तप्पतिरूपी चेव कथा सण्ठाति, तदनुधम्मं च अनुवितक्केति, अनुविचारेति, तं च पुरिसं भजति, तेन च वित्तिं आपज्जति; नेवसञ्ञानासञ्ञायतनपटिसंयुत्ताय च पन कथाय कच्छमानाय न सुस्सूसति, न सोतं ओदहति, न अञ्ञा चित्तं उपट्ठापेति, न च तं पुरिसं भजति, [R. 256]

---

७. यह भी सम्भव है, सुनक्षत्र! कि कोई पुरुष नैवसंज्ञा-नासंज्ञायतन (समाधि) का अनुरागी हो।...पूर्ववत्...[1]...सुनक्षत्र! जैसे कोई पुरुष सुन्दर भोजन कर उसका वमन कर दे, तो क्या मानते हो, सुनक्षत्र! वह पुरुष अपने वमन को पुनः खाना चाहेगा?" नहीं, भन्ते! "वह किस लिये?" "वह इस लिये कि वह घृणा की चीज है?" इसी तरह, सुनक्षत्र! नैवसंज्ञानासंज्ञायतनानुरागी के जो आकिञ्चन्यायतन के साथ सम्बन्ध थे, वे सब टूट चुके हैं। उस नैवसंज्ञानासंज्ञायतनानुरागी को आकिञ्चन्यायतन से सर्वदा के लिये असम्पृक्त ही समझना चाहिये।

८. "सुनक्षत्र! यह भी सम्भव है कि कोई पुरुष पुद्गल निर्वाणानुरागी हो... पूर्ववत्...जैसे सुनक्षत्र! शिरकटा ताड़ वृक्ष पुनः आगे ऊपर उठने में असमर्थ है;

---

१. इसी सूत्र के पचवे पैरे की तरह।

न च तेन विंत्ति आपज्जति। सेय्यथापि, सुनक्खत्त, तालो मत्थकच्छिन्नो [N. 50] अभब्बो पुन विरुळ्हिया; एवमेव खो, सुनक्खत्त, सम्मा निब्बानाधिमुत्तस्स पुरिसपुग्गलस्स ये नेवसञ्ञानासञ्ञायतनसंयोजने से उच्छिन्नमूले तालावत्थुकते अनभावङ्कते आयतिं अनुप्पादधम्मे। सो एवमस्स वेदितब्बो—'नेवसञ्ञानासञ्ञायतनसंयोजनेन हि खो विसंयुत्तो सम्मा निब्बानाधिमुत्तो पुरिसपुग्गलो' ति।

९. "ठानं खो पनेतं, सुनक्खत्त, विज्जति यं इधेकच्चस्स भिक्खुनो एवमस्स—'तण्हा खो सल्लं समणेन वुत्तं, अविज्जाविसदोसो, छन्दरागब्यापादेन रुप्पति। तं मे तण्हासल्लं पहीनं, अपनीतो अविज्जाविसदोसो, सम्मा निब्बानाधिमुत्तोहमस्मी' ति। एवंमानि अस्स अतथं समानं। सो यानि सम्मा निब्बानाधिमुत्तस्स असप्पायानि तानि अनुयुञ्जेय्य; असप्पायं चक्खुना रूपदस्सनं अनुयुञ्जेय्य, असप्पायं सोतेन सद्दं अनुयुञ्जेय्य, असप्पायं घानेन गन्धं अनुयुञ्जेय्य, असप्पायं जिव्हाय रसं अनुयुञ्जेय्य, असप्पायं [B. 44] कायेन फोट्ठब्बं अनुयुञ्जेय्य, असप्पायं मनसा धम्मं अनुयुञ्जेय्य। तस्स असप्पायं चक्खुना रूपदस्सनं अनुयुत्तस्स, असप्पायं सोतेन सद्दं अनुयुत्तस्स, असप्पायं घानेन गन्धं अनुयुत्तस्स, असप्पायं जिव्हाय रसं अनुयुत्तस्स, असप्पायं कायेन फोट्ठब्बं अनुयुत्तस्स, असप्पायं मनसा धम्मं

इसी तरह सम्यग्निर्वाणानुरागी पुरुष के जो नैवसंज्ञानासंज्ञायतन के बन्धन थे, वे सभी छिन्न-भिन्न हो चुके हैं। भविष्य में उनके पुनः उत्पन्न होने की भी कोई आशा नहीं है। अतः उस सम्यग्निर्वाणानुरागी को नैवसंज्ञानासंज्ञायतन के बन्धनों से सर्वथा विमुक्त ही समझना चाहिये।

९. "हो सकता है, सुनक्षत्र ! कि किसी भिक्षु को ऐसा लगे—'श्रमण (भगवान् बुद्ध) ने तृष्णा को शल्य (बाण का फर) कहा है, अविद्या को विष-दोष (जहर बुझा) कहा है, वह छन्द-राग (लोभ) और व्यापाद (द्रोह) से रोपी जाती हैं। तो मैंने वह तृष्णारूपी शल्य निकालकर फेंक दिया है, अविद्यारूपी विष-दोष को हटा दिया है। अब मैं वैसा (उनसे सम्पृक्त) न होता हुआ सम्यग्निर्वाणानुरागी हूँ।' उसका ऐसा मानना झूठा व अतिमानग्रस्त है। और तब वह जो बातें (धर्म) सम्यग्निर्वाणानुरागी पुरुष के लिये अहितकर हों उनमें व्यापृत हो जाय, चक्षुरिन्द्रिय के माध्यम से अहितकर रूपदर्शन में लग जाय, श्रोत्रेन्द्रिय के माध्यम से अहितकर शब्दश्रवण में...घ्राणेन्द्रिय से अहितकर गन्ध में...रसनेन्द्रिय से अहितकर रसास्वाद ...त्वगिन्द्रिय से अहितकर स्प्रष्टव्य...मन इन्द्रिय से अहितकर मनोधर्मों में लग जाय। यों उसके द्वारा उपर्युक्त उन-उन इन्द्रियों के विषयों के आस्वाद में लगे

अनुयुत्तस्स रागो चित्तं अनुद्धंसेय्य। सो रागानुद्धंसितेन चित्तेन मरणं वा निगच्छेय्य मरणमत्तं वा दुक्खं।

"सेय्यथापि, सुनक्खत्त, पुरिसो सल्लेन विद्धो अस्स सविसेन गाळ्हुपलेपनेन। तस्स मित्तामच्चा ञातिसालोहिता भिसक्कं सल्लकत्तं उपट्ठापेय्युं। तस्स सो भिसक्को सल्लकत्तो सत्थेन वणमुखं परिकन्तेय्य। सत्थेन वणमुखं परिकन्तित्वा एसनिया सल्लं एसेय्य। एसनिया सल्लं एसित्वा सल्लं अब्बुहेय्य, अपनेय्य विसदोसं सउपादिसेसं। अनुपादि- [R. 257] सेसो ति जानमानो सो एवं वदेय्य—'अम्भो पुरिस, उब्भतं खो ते सल्लं, अपनीतो विसदोसो सउपादिसेसो। अनलं च ते अन्तरायाय। [N. 51] सप्पायानि चेव भोजनानि भुञ्जेय्यासि, मा ते असप्पायानि भोजनानि भुञ्जतो वणो अस्सावी अस्स। कालेन कालं च वणं धोवेय्यासि, कालेन कालं वणमुखं आलिम्पेय्यासि, मा ते न कालेन कालं वणं धोवतो न कालेन कालं वणमुखं आलिम्पतो पुब्बलोहितं वणमुखं परियोनन्धि। मा च वातातपे चारित्तं अनुयुञ्जि, मा ते वातातपे चारित्तं अनुयुत्तस्स रजोसूकं वणमुखं

रहने के कारण, उसका चित्त शनैः शनैः अशान्त (ध्वस्त) होने लगता है। वह (अभिमानी निर्वाणानुरागी) इस चित्तविध्वंस के कारण, एक न एक दिन मृत्यु को प्राप्त हो सकता है, या मृत्युतुल्य कष्ट को।

"जैसे, सुनक्षत्र ! कोई पुरुष गाढे विषबुझे बाण (शल्य) से विंधा हो। उसके साथी-सहायक या नाते-रिश्तेदार उसे किसी शल्योद्धारक वैद्य के पास ले जाँय। वह शल्योद्धारक वैद्य किसी शस्त्र से उसके व्रणमुख (चोट लगे स्थान) को चारों ओर से काटकर चौड़ा कर दे। शस्त्र से व्रणमुख को काटकर चौड़ा करके एषणी (सँडसी) से उस शल्य को निकाल ले। एषणी से शल्य को निकालकर व्रण को साफ करे। व्रण को साफ कर उसे सर्वदा निर्दोष कर दे। व्रण को सर्वथा निर्दोष जान वह वैद्य रोगी से यों कहे—'अरे भाई ! तुम्हारा शल्य निकाल दिया गया, और वहाँ की सारी खराबी भी सर्वथा दूर कर दी गयी। अब तुम्हें कोई सङ्कट (खतरा) नहीं है। परन्तु अभी (१) पथ्यकर (व्रण सुखाने वाले) पदार्थ खाना, अपथ्यकर नहीं, अन्यथा तुम्हारा यह व्रण फिर से पककर बहने लगेगा। (२) समय-समय व्रण को (कीटहर औषध से सम्पृक्त जल से) धोते रहना। (३) धोकर इस व्रण पर औषध का लेप करते रहना। ताकि तुम्हारा यह व्रण समय-समय पर न धोने या लेप न लगाने से कहीं इसमें पुनः गन्दा पूय (मवाद) न भर जाय। (४) अधिक हवा या धूप में भी ज्यादा न चलना-फिरना। अन्यथा ऐसा न हो

अनुद्धंसेसि। वणानुरक्खी च, अम्भो पुरिस, विहरेय्यासि वणसारोपी' ति। तस्स एवमस्स—'उब्भतं खो मे सल्लं, अपनीतो विसदोसो अनुपादिसेस। अनलं च मे अन्तरायाया' ति। सो असप्पायानि चेव भोजनानि भुञ्जेय्य। तस्स असप्पायानि भोजनानि भुञ्जतो वणो अस्सावी अस्स। न च कालेन कालं वणं धोवेय्य, न च कालेन कालं वणमुखं ओलिम्पेय्य। तस्स न कालेन कालं वणं धोवतो, न कालेन कालं वणमुखं आलिम्पतो पुब्बलोहितं वणमुखं परियोनन्धेय्य। वातातपे च चारित्तं अनुयुञ्जेय्य। तस्स वातातपे [B. 45] चारित्तं अनुयुत्तस्स रजोसूकं वणमुखं अनुद्धंसेय्य। न च वणानुरक्खी विहरेय्य न वणसारोपी। तस्स इमिस्सा च असप्पायकिरियाय असुचि विसदोसो अपनीतो सउपादिसेसो तदुभयेन वणो पुथुत्तं गच्छेय्य। सो पुथुत्तं गतेन वणेन मरणं वा निगच्छेय्य मरणमत्तं वा दुक्खं।

"एवमेव खो, सुनक्खत्त, ठानमेतं विज्जति यं इधेकच्चस्स भिक्खुनो एवमस्स—'तण्हा खो सल्लं समणेन वुत्तं, अविज्जाविसदोसो छन्दराग-[R. 258] व्यापादेन रुप्पति। तं मे तण्हासल्लं पहीनं, अपनीतो अविज्जाविसदोसो, सम्मा निब्बानाधिमुत्तोहमस्मी' ति। एवंमानि अस्स अतथं समानं। सो यानि सम्मा निब्बानाधिमुत्तस्स असप्पायानि तानि अनुयुञ्जेय, असप्पायं चक्खुना रूपदस्सनं अनुयुञ्जेय्य, असप्पायं सोतेन सद्दं अनुयुञ्जेय्य, असप्पायं घानेन गन्धं अनुयुञ्जेय्य, असप्पायं जिव्हाय रसं अनुयुञ्जेय्य,

---

कि बाहरी मल हवा या धूप का सहारा पाकर तुम्हारे इस व्रणमुख में प्रवेश करने लगे। (५) अब तुम कुछ दिन अपनी दिनचर्या इस तरह बनाओ कि जिससे तुम्हारा यह व्रण सूखकर भर जाय'। परन्तु तब उस रोगी के मन में यह हो—'मेरा शल्य तो निकल गया, इसका विषदोष भी समाप्त हो गया। अब मुझे कोई सङ्कट नहीं है।' तब वह अपथ्यकर भोजन खाने लगे, उसके वैसा करने से व्रण में फिर गन्दा पूय जमा होने लगे। वह समय-समय पर व्रण को धोये भी नहीं, न व्रण पर वैसा लेप ही करे जिससे वह जमा हुआ गन्दा पूय उसके व्रण का मुँह फिर से ढक दें। या धूप या हवा में टहलने से भी अपने को न बचावे, ताकि बाहरी धूल के कण (रजःशूक) उस व्रण में प्रविष्ट होने लगे। न वह अपने उस व्रण की रक्षा में ही कोई विशेष ध्यान दे। उसके इस प्रकार अपथ्य के सेवन से उसके उस व्रण में विष का प्रभाव पुनः उभर आये और व्रण पकने लगें। अन्त में हो सकता है कि वह रोगी उस व्रण के पकने से मृत्यु को प्राप्त हो जाय या मृत्युतुल्य कष्ट को।

"उसी तरह, सुनक्षत्र ! यह सम्भव है कि किसी भिक्षु के मन में यह विचार

असप्पायं कायेन फोट्ठब्बं अनुयुञ्जेय्य, असप्पायं मनसा धम्मं अनुयुञ्जेय्य। तस्स असप्पायं चक्खुना रूपदस्सनं अनुयुत्तस्स, असप्पायं सोतेन सद्दं अनुयुत्तस्स, असप्पायं घानेन गन्धं अनुयुत्तस्स, असप्पायं जिव्हाय [N. 52] रसं अनुयुत्तस्स, असप्पायं कायेन फोट्ठब्बं अनुयुत्तस्स, असप्पायं मनसा धम्मं अनुयुत्तस्स रागो चित्तं अनुद्धंसेय्य। सो रागानुद्धंसितेन चित्तेन मरणं वा निगच्छेय्य मरणमत्तं वा दुक्खं। मरणं हेतं, सुनक्खत्त, अरियस्स विनये यो सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तति; मरणमत्तं हेतं, सुनक्खत्त, दुक्खं यं अञ्ञतरं सङ्किलिट्ठं आपत्तिं आपज्जति।

१०. "ठानं खो पनेतं, सुनक्खत्त, विज्जति यं इधेकच्चस्स भिक्खुनो एवमस्स—'तण्हा खो सल्लं समणेन वुत्तं, अविज्जाविसदोसो छन्दरागब्यापादेन रुप्पति। तं मे तण्हासल्लं पहीनं, अपनीतो अविज्जाविसदोसो, सम्मा निब्बानाधिमुत्तोहमस्मी' ति। सम्मा निब्बानाधिमुत्तस्सेव सतो सो यानि सम्मा निब्बानाधिमुत्तस्स असप्पायानि तानि नानुयुञ्जेय्य, असप्पायं चक्खुना रूपदस्सनं नानुयुञ्जेय्य, असप्पायं सोतेन सद्दं नानुयुञ्जेय्य, असप्पायं घानेन गन्धं नानुयुञ्जेय्य, असप्पायं जिव्हाय रसं नानुयुञ्जेय्य, असप्पायं कायेन फोट्ठब्बं नानुयुञ्जेय्य, असप्पायं मनसा धम्मं नानुयुञ्जेय्य। तस्स असप्पायं चक्खुना रूपदस्सनं नानुयुत्तस्स, असप्पायं सोतेन सद्दं नानुयुत्तस्स, असप्पायं घानेन गन्धं नानुयुत्तस्स, असप्पायं जिव्हाय [B. 46] रसं नानुयुत्तस्स, असप्पायं कायेन फोट्ठब्बं नानुयुत्तस्स, असप्पायं मनसा धम्मं नानुयुत्तस्स रागो चित्तं नानुद्धंसेय्य। सो न रागानुद्धं- [R. 259] सितेन चित्तेन नेव मरणं वा निगच्छेय्य न मरणमत्तं वा दुक्खं।

उठे—'श्रमण (भगवान् बुद्ध) ने तृष्णा को शल्य···पूर्ववत्···या मृत्युतुल्य कष्ट को ! सुनक्षत्र ! (हमारे इस) आर्यविनय में मृत्युतुल्य कष्ट यही कहलाता है कि कोई भिक्षु शिक्षापदों का पालन न कर पुनः गृहस्थ धर्म में लौट जाय।

१०. "हो सकता है सुनक्षत्र ! कि किसी भिक्षु को ऐसा हो—'श्रमण (भगवान् बुद्ध) ने तृष्णा को शल्य···पूर्ववत्···अब मैं सम्यक्तया निर्वाणानुरागी हो चुका हूँ।' ऐसा वह भिक्षु निर्वाणानुरागी होकर भी जो निर्वाण की ओर जाने में विघ्नकारक धर्म हैं उनसे सम्पृक्त न हो, चक्षुरिन्द्रिय···श्रोत्रेन्द्रिय···घ्राणेन्द्रिय···रसनेन्द्रिय··· त्वगिन्द्रिय···मन इन्द्रिय के अहितकर धर्मों से सम्पृक्त न हो; यों वह उन धर्मों से सम्पृक्त न होता हुआ अपने चित्त को राग से ध्वस्त होने से बचा ले। यों राग से प्रध्वस्त चित्त वाला वह भिक्षु न तो कभी असमय में ही मृत्यु को प्राप्त होगा, न मृत्युतुल्य कष्ट को।

"सेय्यथापि, सुनक्खत्त, पुरिसो सल्लेन विद्धो अस्स सविसेन गाळ्हूपलेपनेन। तस्स मित्तामच्चा ञातिसालोहिता भिसक्कं सल्लकत्तं उपट्ठापेय्युं। तस्स सो भिसक्को सल्लकत्तो सत्थेन वणमुखं परिकन्तेय्य। सत्थेन वणमुखं परिकन्तित्वा एसनिया सल्लं एसेय्य। एसनिया सल्लं एसित्वा सल्लं अब्बुहेय्य अपनेय्य विसदोसं अनुपादिसेसं। अनुपादिसेसो ति जानमानो सो एवं वदेय्य—'अम्भो पुरिस, उब्भतं खो ते सल्लं, अपनीतो विसदोसो अनुपादिसेसो। अनलं च ते अन्तरायाय। सप्पायानि चेव भोजनानि भुञ्जेय्यासि, मा ते असप्पायानि भोजनानि भुञ्जतो वणो अस्सावी अस्स। [N. 53] कालेन कालं च वणं धोवेय्यासि, कालेन कालं वणमुखं आलिम्पेय्यासि, मा ते न कालेन कालं वणं धोवतो न कालेन कालं वणमुखं आलिम्पतो पुब्बलोहितं वणमुखं परियोनन्धि। मा च वातातपे चारित्तं अनुयुञ्जि, मा ते वातातपे चारित्तं अनुयुत्तस्स रजोसूकं वणमुखं अनुद्धंसेसि। वणानुरक्खी च, अम्भो पुरिस, विहरेय्यासि वणसारोपी' ति। तस्स एवमस्स—'उब्भतं खो मे सल्लं, अपनीतो विसदोसो अनुपादिसेसो। अनलं च मे अन्तरायाया' ति। सो सप्पायानि चेव भोजनानि भुञ्जेय्य। तस्स सप्पायानि भोजनानि भुञ्जतो वणो न अस्सावी अस्स। कालेन कालं च वणं धोवेय्य, कालेन कालं वणमुखं आलिम्पेय्य, तस्स कालेन कालं वणं धोवतो कालेन कालं वणमुखं आलिम्पतो न पुब्बलोहितं वणमुखं परियोनन्धेय्य। न च वातातपे चारित्तं अनुयुञ्जेय्य। तस्स वातातपे चारित्तं अननुयुत्तस्स रजोसूकं वणमुखं नानुद्धंसेय्य। वणानुरक्खी च विहरेय्य वणसारोपी। तस्स इमिस्सा च सप्पायकिरियाय असु च विसदोसो अपनीतो अनुपादिसेसो तदुभयेन वणो विरुहेय्य। सो रुळ्हेन वणेन सञ्छविना नेव मरणं वा निगच्छेय्य न मरणमत्तं वा दुक्खं।

"जैसे, सुनक्षत्र ! कोई पुरुष गाढे विष से सम्पृक्त (लिये) बाण से···पूर्ववत्··· अब कोई सङ्कट नहीं है।···यह व्रण सूखकर पुनः आरोपित (भर) न जाय। तब उसको यह विचार हो—'मेरा शल्य तो···अब कोई सङ्कट नहीं है'। फिर भी वह पथ्यकर भोज्य ही ले, समय-समय पर व्रण को धोये, धोकर लेप करे, धूप व हवा में व्यर्थ न घूमे, तात्पर्य यह है कि वह ऐसे सभी उपाय करे जिससे उसका वह व्रण शीघ्र ही सूख जाय व भर जाय। यों, उसके पथ्यसेवन से उसका व्रण भी शीघ्र ही भर जायगा, और शल्य के साथ शरीर में पहुँचा विषदोष भी समाप्त हो जायगा। तब स्वस्थ हुए उस रोगी की न तो मृत्यु होगी न उसे मृत्युतुल्य कष्ट ही होगा।

"एवमेव खो, सुनक्खत्त, ठानमेतं विज्जति यं इधेकच्चस्स [B. 47] भिक्खुनो एवमस्स—'तण्हा खो सल्लं समणेन वुत्तं, अविज्जा- [R. 260] विसदोसो छन्दरागब्यापादेन रुप्पति । तं मे तण्हासल्लं पहीनं, अपनीतो अविज्जाविसदोसो, सम्मा निब्बानाधिमुत्तोहमस्मी' ति । सम्मा निब्बानाधिमुत्तस्सेव सतो सो यानि सम्मा निब्बानाधिमुत्तस्स असप्पायानि तानि नानुयुञ्जेय्य, असप्पायं चक्खुना रूपदस्सनं नानुयुञ्जेय, असप्पायं सोतेन सद्दं नानुयुञ्जेय्य, असप्पायं घानेन गन्धं नानुयुञ्जेय्य, असप्पायं जिव्हाय रसं नानुयुञ्जेय्य, असप्पायं कायेन फोट्ठब्बं नानुयुञ्जेय्य, असप्पायं मनसा धम्मं नानुयुञ्जेय्य । तस्स असप्पायं चक्खुना रूपदस्सन नानुयुत्तस्स, असप्पायं सोतेन सद्दं नानुयुत्तस्स, असप्पायं घानेन गन्धं नानुयुत्तस्स, असप्पायं जिव्हाय रसं नानुयुत्तस्स, असप्पायं कायेन फोट्ठब्बं नानुयुत्तस्स, असप्पायं मनसा धम्मं नानुयुत्तस्स, रागो चित्तं नानुद्धंसेय्य । सो [N. 54] न रागानुद्धंसितेन चित्तेन नेव मरणं वा निगच्छेय्य न मरणमत्तं वा दुक्खं ।

११. "उपमा खो मे अयं, सुनक्खत्त, कता अत्थस्स विञ्ञापनाय । अयं येवेत्थ अत्थो—वणो ति खो, सुनक्खत्त, छन्नेतं अज्झत्तिकानं आयतनानं अधिवचनं; विसदोसो ति खो, सुनक्खत्त, अविज्जायेतं अधिवचनं; सल्लं ति खो, सुनक्खत्त, तण्हायेतं अधिवचनं; एसनी ति खो, सुनक्खत्त, सतियायेतं अधिवचनं; सत्थं ति खो, सुनक्खत्त, अरियायेतं पञ्ञाय अधिवचनं; भिसक्को सल्लकतो ति खो, सुनक्खत्त, तथागतस्सेतं अधिवचनं अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स ।

"सो वत, सुनक्खत्त, भिक्खु छसु फस्सायतनेसु संवुतकारी 'उपधि

"इसी तरह, सुनक्षत्र ! यही सम्भव है कि किसी भिक्षु को···पूर्ववत्···रागानुध्वस्त चित्त से न मृत्यु को प्राप्त हो, न मृत्युतुल्य कष्ट को ।

११. "सुनक्षत्र ! यह मैंने तुमको, प्रासङ्गिक बात को समझाने के लिये, दृष्टान्तमात्र दिया है । इसका यही निष्कर्ष समझो सुनक्षत्र ! कि यहाँ (इस प्रसङ्ग में) 'व्रण' से तात्पर्य है—यह आध्यात्मिक (शरीरान्तर्गत) आयतन । सुनक्षत्र ! 'विषदोष' का तात्पर्य है—अविद्या । 'शल्य' का तात्पर्य है—तृष्णा । 'एषणा' का तात्पर्य है—स्मृति । 'शस्त्र' से तात्पर्य है—आर्यप्रज्ञा । 'शल्योद्धारक वैद्य' से तात्पर्य है—तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध का ।

"सुनक्षत्र ! जो भिक्षु छह स्पर्शायतनों (चक्षु, घ्राण, श्रोत्र, जिह्वा, काय एवं

दुक्खस्स मूलं' ति—इति विदित्वा निरुपधि उपधिसङ्ख्ये विमुत्तो उपधिस्मि वा कायं उपसंहरिस्सति, चित्तं वा उप्पादेस्सती ति—नेतं ठानं विज्जति।

"सेय्यथापि, सुनक्खत्त, आपानियकंसो वण्णसम्पन्नो गन्धसम्पन्नो रससम्पन्नो; सो च खो विसेन संसट्ठो। अथ पुरिसो आगच्छेय्य जीवितुकामो अमरितुकामो सुखकामो दुक्खपटिकूलो। तं किं मञ्ञसि, सुनक्खत्त, अपि नु सो पुरिसो अमुं आपानियकंसं पिवेय्य यं जञ्ञा—'इमाहं पिवित्वा मरणं वा निगच्छामि मरणमत्तं वा दुक्खं' " ति? "नो हेतं, भन्ते"।

[R. 261] "एवमेव खो, सुनक्खत्त, सो वत भिक्खु छसु फस्सायतनेसु संवुतकारी 'उपधि दुक्खस्स मूलं' ति—इति विदित्वा निरुपधि उपधि-
[B. 48] सङ्ख्ये विमुत्तो उपधिस्मि वा कायं उपसंहरिस्सति, चित्तं वा उप्पादेस्सती ति—नेतं ठानं विज्जति।

सेय्यथापि, सुनक्खत्त, आसीविसो घोरविसो। अथ पुरिसो आगच्छेय्य जीवितुकामो अमरितुकामो सुखकामो दुक्खपटिकूलो। तं किं मञ्ञसि, सुनक्खत्त, अपि नु सो पुरिसो अमुस्स आसीविसस्स घोरविसस्स हत्थं वा
[N. 55] अङ्गुट्ठं वा युञ्जेय्य यं जञ्ञा—'इमिनाहं दट्ठो मरणं वा निगच्छामि मरणमत्तं वा दुक्खं' " ति? "नो हेतं, भन्ते"।

मन) में संयम रखता हुआ साधनारत हो, 'उपधि (विषययोग्य कामभोगसंग्रह) दुःख का मूल है'—यह जानकर उस उपधि से रहित हो उपधिक्षय से विमुक्त हो चुका है, वह फिर से उसी उपधि में अपने शरीर व मन को लगायगा—यह सम्भव ही नहीं। जैसे सुनक्षत्र! कोई जल से भरा कांस्यपात्र सुन्दर वर्ण एवं गन्ध वाला हो, किन्तु वह विषलिप्त हो, तब वहाँ कोई जीना चाहने वाला, परन्तु मरना न चाहने वाला, सुखाकांक्षी, परन्तु दुःख के पास तक न फटकने वाला पुरुष आवे; सुनक्षत्र! क्या वह पुरुष उस पात्र से, यह जानते हुए भी, जल पीयेगा कि इस पात्र का जल पीने से मुझे मृत्यु प्राप्त हो सकती है, या मृत्युतुल्य कष्ट?" "नहीं भन्ते!" "ऐसे ही सुनक्षत्र! जो भिक्षु उक्त छह स्पर्शायतनों में संयमी है…पूर्ववत्…वह उपधि में फिर से अपने शरीर या मन को लगावे—यह सम्भव नहीं।

"जैसे, सुनक्षत्र! कहीं कोई भयङ्कर विषधर सर्प हो, वहाँ कोई पुरुष जो जीना चाहने वाला…न फटकनेवाला पुरुष हो, आवे; तो क्या मानते हो, सुनक्षत्र! वह पुरुष

"एवमेव खो, सुनक्खत्त, सो वत भिक्खु छसु फस्सायतनेसु संवुतकारी 'उपधि दुक्खस्स मूलं' ति—इति विदित्वा निरुपधि उपधिसङ्खये विमुत्तो उपधिस्मिं वा कायं उपसंहरिस्सति, चित्तं वा उप्पादेस्सती ति—नेतं ठानं विज्जती" ति।

१२. इदमवोच भगवा। अत्तमनो सुनक्खत्तो लिच्छविपुत्तो भगवतो भासितं अभिनन्दी ति।

●

अपना हाथ या अँगूठा उस साँप की ओर बढ़ायगा, जब कि वह जानता हो कि इस साँप के काटने से मुझे मृत्यु या मृत्युतुल्य कष्ट मिल सकता है ?" "नहीं, भन्ते !" इसी तरह सुनक्षत्र जो भिक्षु उक्त छह···यह सम्भव नहीं।"

१२. भगवान् ने यह कहा। आत्तमना (सन्तुष्ट) सुनक्षत्र लिच्छविपुत्र ने भगवान् के इस भाषण का अभिनन्दन किया॥

सुनक्खत्तसुत्त समाप्त॥

⊙

६. आनेञ्जसप्पायसुत्तं

[N. 56] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा कुरूसु विहरति कम्मासधम्मं नाम कुरूनं निगमो। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं।

१. आनेञ्जसप्पाया पटिपदा

भगवा एतदवोच—"अनिच्चा, भिक्खवे, कामा तुच्छा मुसा मोसधम्मा। मायाकतमेतं, भिक्खवे, बाललापनं। ये च दिट्ठधम्मिका कामा, ये च सम्प-
[R. 262] रायिका कामा; या च दिट्ठधम्मिका कामसञ्ञा, या च सम्परायिका कामसञ्ञा—उभयमेतं मारधेय्यं, मारस्सेस विसयो, मारस्सेस निवापो, मारस्सेस, गोचरो। एत्थेते पापका अकुसला मानसा अभिज्झा पि ब्यापदा पि सारम्भा पि संवत्तन्ति, तेव अरियसावकस्स इधमनुसिक्खतो अन्तरायाय सम्भवन्ति।

तत्र, भिक्खवे, अरियसावको इति पटिसञ्चिक्खति—'ये च दिट्ठधम्मिका कामा, ये सम्परायिका कामा; या च दिट्ठधम्मिका कामसञ्ञा,

---

६. आनिञ्ज्यसम्प्रेयसूत्र

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) कुरुप्रदेश के कल्मषधर्म (कम्मासदम्म) नामक कुरुवासियों के निगम में साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को सम्बोधन किया—"भिक्षुओ !" "हाँ, भन्ते" कहकर भिक्षुजन भगवान् के सम्मुख उपस्थित हो गये।

१. आनिञ्ज्यसम्प्रेय मार्ग

(तब) भगवान् ने उनको यों उपदेश देना प्रारम्भ किया—"भिक्षुओ ! सांसारिक कामभोग तुच्छ हैं, मिथ्या हैं, असत्य हैं, अनित्य हैं, इन्द्रजाल के समान (मायामय) एवं बच्चों को बहकाने भर के लिये जैसे हैं। भले ही फिर वे ऐहलौकिक कामभोग हों, या पारलौकिक, या ऐहलौकिक कामसंज्ञा (कामभोगों का ध्यान) हों, या पारलौकिक कामसंज्ञा—ये उभयविध ही मार के फंदे (पाश) की तरह हैं, मार द्वारा जनता को फँसाने के लिये फेंके गये चारे (निवाप) के समान हैं, ये मार के विषय (वास-स्थान) हैं, या मार के गोचर (लक्ष्य) हैं। यहाँ ये पापमय अकुशल मनोभाव उत्पन्न होते हैं—अभिध्या (लोभ) भी, व्यापाद (द्वेष) भी, सारम्भ (पीड़ा) भी। और ये सभी अभ्यास की ओर अग्रसर साधक के लिये विघ्नस्वरूप हैं।

"वहाँ, भिक्षुओ ! वह साधनारत आर्यश्रावक यों सोचता है—'ये ऐहलौकिक

या च सम्परायिका कामसञ्ञा—उभयमेतं मारधेय्यं, मारस्सेस विसयो, मारस्सेस निवापो, मारस्सेस गोचरो। एत्थेते पापका अकुसला [B. 49] मानसा अभिज्झा पि ब्यापदा पि सारम्भा पि संवत्तन्ति, तेव अरियसावकस्स इधमनुसिक्खतो अन्तरायाय सम्भवन्ति। यन्नूनाहं विपुलेन महग्गतेन चेतसा विहरेय्यं अभिभुय्य लोकं अधिट्ठाय मनसा। विपुलेन हि मे महग्गतेन चेतसा विहरतो अभिभुय्य लोकं अधिट्ठाय मनसा ये पापका अकुसला मानसा अभिज्झा पि ब्यापादा पि सारम्भा पि ते न भविस्सन्ति। तेसं पहाना अपरित्तं च मे चित्तं भविस्सति अप्पमाणं सुभावितं' ति। तस्स एवंपटिपन्नस्स तब्बहुलविहारिनो आयतने चित्तं पसीदति। सम्पसादे सति एतरहि वा आनेञ्जं समापज्जति पञ्ञाय वा अधिमुच्चति कायस्स भेदा परं मरणा। ठानमेतं विज्जति यं तंसंवत्तनिकं विञ्ञाणं अस्स आनेञ्जूपगं। [N. 57] अयं, भिक्खवे, पठमा आनेञ्जसप्पाया पटिपदा अक्खायति। (१)

२. "पुन च परं, भिक्खवे, अरियसावको इति पटिसञ्चिक्खति—'ये च दिट्ठधम्मिका कामा, ये च सम्परायिका कामा; या च दिट्ठधम्मिका कामसञ्ञा, या च सम्परायिका कामसञ्ञा; यं किञ्चि रूपं चत्तारि च महाभूतानि, चतुन्नं च महाभूतानं उपादायरूपं...' ति तस्स एवंपटिपन्नस्स तब्बहुलविहारिनो आयतने चित्तं पसीदति। सम्पसादे सति एतरहि वा

या पारलौकिक कामभोग व उनका चिन्तन—दोनों ही...पूर्ववत्...आर्यश्रावक के लिये अन्तरायभूत हैं। क्यों न मैं व्यापक एवं विशाल चित्त से लोक को अभिभूत (वश में) करता हुआ मन से अधिष्ठित कर साधना करूँ। यों साधना करते हुए मुझे ये अभिध्या, व्यापाद आदि दोष भी परेशान नहीं करेंगे। उनके नाश से मेरा यह चित्त भी विशाल (बहुजनहितेरत) व व्यापक रूप से सुसंयत हो जायगा।' उसके इस प्रकार, साधनारत होने पर, बाहुल्येन ऐसी साधना करते-करते आयतन (स्वस्थ) में चित्त प्रसन्न हो जाता है। प्रसन्नता (सम्प्रसाद) होने पर, या तो उसी समय उसका चित्त आनिञ्ज्य (स्थिरता) को प्राप्त हो जाता है, या वह प्रज्ञा द्वारा देहपात से बाद मरणानन्तर मुक्त हो जाता है। यह अधिक सम्भव है कि इस प्रकार साधनारत विज्ञान (जीवन) आनिञ्ज्य को ही प्राप्त हो जाय। भिक्षुओ! यह प्रथम आनिञ्ज्यानुकूल मार्ग (प्रतिपदा) है। (१)

२. फिर, भिक्षुओ! वह आर्य श्रावक यों सोचता है—जो ये ऐहलौकिक या पारलौकिक कामभोग...जो कुछ रूप और चार महाभूत है और इन चारों महाभूतों को लेकर जो रूप है वह मार...आर्यश्रावक के लिये अन्तरायतुल्य हैं। क्यों न

आनेञ्जं समापज्जति पञ्ञाय वा अधिमुच्चति कायस्स भेदा परं मरणा। ठानमेतं विज्जति यं तंसंवत्तनिकं विञ्ञाणं अस्स आनेञ्जूपगं। अयं भिक्खवे, दुतिया आनेञ्जसप्पाया पटिपदा अक्खायति। (२)

[R. 263] ३. "पुन च परं, भिक्खवे, अरियसावको इति पटिसञ्चिक्खति—'ये च दिट्ठधम्मिका कामा, ये च सम्परायिका कामा; या च दिट्ठधम्मिका कामसञ्ञा, या च सम्परायिका कामसञ्ञा; ये च दिट्ठधम्मिका रूपा, ये च सम्परायिका रूपा; या च दिट्ठधम्मिका रूपसञ्ञा, या च सम्परायिका रूपसञ्ञा—उभयमेतं अनिच्चं। यदनिच्चं तं नालं अभिनन्दितुं, नालं अभिवदितुं, नालं अज्झोसितुं' ति। तस्स एवंपटिपन्नस्स तब्बहुलविहारिनो आयतने चित्तं पसीदति। सम्पसादे सति एतरहि वा आनेञ्जं समापज्जति पञ्ञाय वा अधिमुच्चति कायस्स भेदा परं मरणा। ठानमेतं विज्जति यं तंसंवत्तनिकं विञ्ञाणं अस्स आनेञ्जूपगं। अयं, भिक्खवे, ततिया आनेञ्जसप्पाया पटिपदा अक्खायति। (३)

२. आकिञ्चञ्ञायतनसप्पाया पटिपदा

[B. 50] ४. "पुन च परं, भिक्खवे, अरियसावको इति पटिसञ्चिक्खति—'ये च दिट्ठधम्मिका कामा, ये च सम्परायिका कामा; या च दिट्ठधम्मिका कामसञ्ञा या च सम्परायिका कामसञ्ञा; ये च दिट्ठधम्मिका रूपा, ये च सम्परायिका रूपा; या च दिट्ठधम्मिका रूपसञ्ञा, या च सम्परायिका रूपसञ्ञा; या च आनेञ्जसञ्ञा—सब्बा सञ्ञा। यत्थेता अपरिसेसा

मैं व्यापक व विशाल चित्त से...आनिञ्ज्य को ही प्राप्त हो जाऊँ। यह द्वितीय आनिञ्ज्यानुकूल मार्ग है। (२)

३. और फिर भिक्षुओ! वह आर्यश्रावक यों सोचता है—'जो ये ऐहलौकिक...पारलौकिक रूपसंज्ञा है—वे दोनों ही अनित्य हैं। जो अनित्य है उसको अभिनन्दित या इनकी चर्चा करना उचित नहीं।' उसके इस प्रकार सम्पृक्त होने पर...। भिक्षुओ! यह तीसरा आनिञ्ज्यानुकूल मार्ग है। (३)

२. आकिञ्चञ्ञायतनानुकूल प्रतिपदा

४. "और, भिक्षुओ! वह आर्यश्रावक यों सोचता है—'ये जो ऐहलौकिक कामभोग हैं...पूर्ववत्...जो पारलौकिक रूपसंज्ञा हैं और जो आनिञ्ज्यसंज्ञा (आनिञ्ज्यपद का ध्यान) है—ये सभी संज्ञाएँ जहाँ सर्वथा निरुद्ध हो जाती हैं वह आकिञ्चन्यायतन पद उत्तम है, प्रणीत है'। उसके इस प्रकार उससे सम्पृक्त (प्रतिपन्न)

निरुज्झन्ति एतं सन्तं एतं पणीतं—यदिदं आकिञ्चञ्ञायतनं' [N. 58] ति। तस्स एवंपटिपन्नस्स तब्बहुलविहारिनो आयतने चित्तं पसीदति। सम्पसादे सति एतरहि वा आकिञ्चञ्ञायतनं समापज्जति पञ्ञाय वा अधिमुच्चति कायस्स भेदा परं मरणा। ठानमेतं विज्जति यं तंसंवत्तनिकं विञ्ञाणं अस्स आकिञ्चञ्ञायतनूपगं। अयं, भिक्खवे, पठमा आकिञ्चञ्ञायतनसप्पाया पटिपदा अक्खायति। (१)

५. "पुन च परं, भिक्खवे, अरियसावको अरञ्ञगतो वा रुक्खमूलगतो वा सुञ्ञागारगतो वा इति पटिसञ्चिक्खति—'सुञ्ञमिदं अत्तेन वा अत्तनियेन वा' ति। तस्स एवंपटिपन्नस्स तब्बहुलविहारिनो आयतने चित्तं पसीदति। सम्पसादे सति एतरहि वा आकिञ्चञ्ञायतनं समापज्जति पञ्ञाय वा अधिमुच्चति कायस्स भेदा परं मरणा। ठानमेतं विज्जति यं तंसंवत्तनिकं विञ्ञाणं अस्स आकिञ्चञ्ञायतनूपगं। अयं, भिक्खवे, दुतिया आकिञ्चञ्ञायतनसप्पाया पटिपदा अक्खायति। (२)

६. "पुन च परं, भिक्खवे, अरियसावको इति पटिसञ्चिक्खति—'नाहं क्वचनि कस्सचि किञ्चनतस्मि, न च क्वचनि किस्मिञ्चि [R. 264] किञ्चनं नत्थी' ति। तस्स एवंपटिपन्नस्स तब्बहुलविहारिनो आयतने चित्तं

होने पर, प्रायः उसी की साधना करते हुए उसका चित्त उस आयतन में सम्यक्तया प्रसन्न हो जाता है। यह सम्प्रसाद होने पर उसी समय वह आकिञ्चन्यायतन पद को प्राप्त कर लेता है या प्रज्ञा द्वारा मुक्त हो जाता है। अन्यथा यह भी सम्भव है कि काया छोड़, मरने के बाद, तथासम्पृक्त वह विज्ञान (जीव) आकिञ्चन्यायतन को प्राप्त होवे। भिक्षुओ! आकिञ्चन्यायतन सत्प्राय की यह प्रथम प्रतिपदा (मार्ग, उपाय) है। (१)

५. "फिर, भिक्षुओ! अरण्य में, या वृक्ष के नीचे या एकान्त भवन में बैठा कोई आर्यश्रावक यों सोचता है—'यह समग्र संसार आत्मा या आत्मीय से शून्य है'। उसके यों चिन्तन करते हुए प्रायः दिन-रात उसी की साधना करते हुए, उसका चित्त उस आयतन में प्रसन्न होता है। यों, उसके इस सम्प्रसाद के प्राप्त करने पर या तो वह आज ही आकिञ्चन्यायतन को…। इस प्रकार सम्पृक्त वह विज्ञान आकिञ्चन्यायतन को प्राप्त होता है। यों, भिक्षुओ! यह दूसरी 'आकिञ्चन्यायतन सत्प्राय प्रतिपदा' है। (२)

६. "फिर, भिक्षुओ! कोई आर्यश्रावक यों चिन्तन करता है—'न मैं कहीं किसी का कुछ हूँ, न मेरा कहीं किसी में कुछ है'। उसके इस प्रकार प्रतिपन्न होने

पसीदति। सम्पसादे सति एतरहि वा आकिञ्चञ्ञायतनं समापज्जति पञ्ञाय वा अधिमुच्चति कायस्स भेदा परं मरणा। ठानमेतं विज्जति यं तंसंवत्तनिकं विञ्ञाणं अस्स आकिञ्चञ्ञायतनूपगं। अयं, भिक्खवे, ततिया आकिञ्चञ्ञायतनसप्पाया पटिपदा अक्खायति। (३)

३. नेवसञ्ञानासञ्ञायतनसप्पाया पटिपदा

७. "पुन च परं, भिक्खवे, अरियसावको इति पटिसञ्चिक्खति—'ये च दिट्ठधम्मिका कामा, ये च सम्परायिका कामा; या च दिट्ठधम्मिका कामसञ्ञा, या च सम्परायिका कामसञ्ञा; ये च दिट्ठधम्मिका रूपा, ये च सम्परायिका रूपा; या च दिट्ठधम्मिका रूपसञ्ञा, या च सम्परायिका [N. 59, B. 51] रूपसञ्ञा; या च आनेञ्जसञ्ञा, या च आकिञ्चञ्ञायतनसञ्ञा—सब्बा सञ्ञा। यत्थेता अपरिसेसा निरुज्झति एतं सन्तं एतं पणीतं—यदिदं नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं' ति। तस्स एवंपटिपन्नस्स तब्बहुलविहारिनो आयतने चित्तं पसीदति। सम्पसादे सति एतरहि वा नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं समापज्जति पञ्ञाय वा अधिमुच्चति कायस्स भेदा परं मरणा। ठानमेतं विज्जति यं तंसंवत्तनिकं विञ्ञाणं अस्स नेवसञ्ञानासञ्ञायतनूपगं। अयं, भिक्खवे, नेवसञ्ञानासञ्ञायतनसप्पाया पटिपदा अक्खायती" ति।

४. को भिक्खु परिनिब्बायति ?

८. एवं वुत्ते, आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—"इध, भन्ते,

पर…। यों, भिक्षुओ ! यह तीसरी आकिञ्चन्यायतन सत्प्राय प्रतिपदा' कहलाती है। ३)

२. नैवसंज्ञानासंज्ञायतनसत्पायप्रतिपदा

७. "और फिर, भिक्षुओ ! कोई आर्यश्रावक यों सोचता है—'ये जो ऐहलौकिक कामभोग…पूर्ववत्…जो कुछ आकिञ्चन्यायतन रूपसंज्ञा हैं—ये सभी संज्ञायें जहाँ जाकर निरुद्ध हो जाती हैं, वही नैवसंज्ञानासंज्ञायतन पद शान्त व प्रणीत (सुखद, प्रिय) है'। यों उसके इस नैवसंज्ञानासंज्ञायतन पद से लगाव होने पर, और निरन्तर उसी की साधना करते हुए उसके प्रति प्रीति (सम्प्रसाद) उत्पन्न हो जाता है। यह सम्प्रसाद होने पर, उसी जन्म में वह नैवसंज्ञानासंज्ञायतन को प्राप्त हो जाता है, या फिर सम्भव है कि वह मरणानन्तर देहपात के बाद प्रज्ञा द्वारा अधिमुक्त हो नैवसंज्ञानासंज्ञायतन को प्राप्त हो जाय। भिक्षुओ ! यह नैवसंज्ञायतनसत्पाय प्रतिपदा कहलाती है।"

भिक्खु एवं पटिपन्नो होति—'नो चस्स, नो च मे सिया; न भविस्सति, न मे भविस्सति; यदत्थि, यं भूतं—तं पजहामी' ति। एवं उपेक्खं पटिलभति। परिनिब्बायेय्य नु खो सो, भन्ते, भिक्खु न वा परिनिब्बायेय्या'' ति ?

"अपेत्थेकच्चो, आनन्द, भिक्खु परिनिब्बायेय्य, अपेत्थेकच्चो भिक्खु न परिनिब्बायेय्या" ति।

"को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो येनपेत्थेकच्चो भिक्खु परिनिब्बायेय्य, अपेत्थेकच्चो भिक्खु न परिनिब्बायेय्या" ति ?

"इधानन्द, भिक्खु एवं पटिपन्नो होति—'नो चस्स, नो च मे सिया; न भविस्सति, न मे भविस्सति; यदत्थि, यं भूतं—तं पजहामी' [R. 265] ति। एवं उपेक्खं पटिलभति। सो तं उपेक्खं अभिनन्दति, अभिवदति, अज्झोसाय तिट्ठति। तस्स तं उपेक्खं अभिनन्दतो अभिवदतो अज्झोसाय तिट्ठतो तन्निस्सितं होति विञ्ञाणं तदुपादानं। सउपादानो, आनन्द, भिक्खु न परिनिब्बायती" ति।

---

४. कौन भिक्षु परिनिर्वृत होता है ?

८, (भगवान् द्वारा) ऐसी देशना किये जाने पर आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से यह प्रश्न किया—"भन्ते ! यहाँ कोई भिक्षु यह समझता है—'यहाँ न कुछ होता है, न वह मेरा होता है; न कुछ होगा, न वह मेरा होगा; जो कुछ विद्यमान भी है या हो चुका है उसे मैं त्यागता हूँ'। यों विचारकर वह उपेक्षाभावना की साधना करता है। भन्ते ! ऐसा चिन्तक भिक्षु परिनिर्वृत होगा या नहीं होगा ?"

"आनन्द ! ऐसा विचारक कोई भिक्षु परिनिर्वृत हो भी सकता है, कोई नहीं भी हो सकता।"

"भन्ते ! क्या कारण है, क्या उपाय है कि (उन दोनों के समान विचारधारा वाले होने पर भी) उनमें से कोई परिनिर्वृत हो जाता है और कोई नहीं हो पाता ?"

"आनन्द ! यहाँ जो भिक्षु यों चिन्तन करता है—'यहाँ न कुछ है, न मेरा है; ···उसे छोड़ता हूँ'। यों वह उपेक्षा भावना की साधना करता है। परन्तु वह उस उपेक्षा का अभिनन्दन, अभिवादन करता है, उसमें आसक्त (अध्यस्त) होता है। उसके इस प्रकार उस उपेक्षा का अभिनन्दन करने से उसका विज्ञान (जीव या चित्तप्रवाह) उस उपेक्षा में लिप्त हो जाता है। उसको उपादान (ग्रहण की इच्छा, आसक्ति) करने वाला हो जाता है। आनन्द ! ऐसा वह उस उपेक्षा का उपादान कर लेने वाला भिक्षु परिनिर्वाण प्राप्त नहीं कर सकता।"

"कहं पन सो, भन्ते, भिक्खु उपादियमानो उपादियती" ति ?

"नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं, आनन्दा" ति ।

"उपादानसेट्ठं किर सो, भन्ते, भिक्खु उपादियमानो उपादियती" ति ?

[N. 60] "उपादानसेट्ठं हि सो, आनन्द, भिक्खु उपादियमानो उपादियति । उपादानसेट्ठं हेतं, आनन्द, यदिदं—नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं ।

९. "इधानन्द, भिक्खु एवं पटिपन्नो होति—'नो चस्स, नो च मे सिया; न भविस्सति, न मे भविस्सति; यदत्थि, यं भूतं—तं पजहामी' ति । एवं उपेक्खं पटिलभति । सो तं उपेक्खं नाभिनन्दति, नाभिवदति, न अज्झोसाय तिट्ठति । तस्स तं उपेक्खं अनभिनन्दतो अनभिवदतो अनज्झोसाय तिट्ठतो [B. 52] न तन्निस्सितं होति विञ्ञाणं न तदुपादानं । अनुपादानो, आनन्द, भिक्खु परिनिब्बायती" ति ।

५. अरियो विमोक्खो

१०. "अच्छरियं, भन्ते, अब्भुतं, भन्ते ! निस्साय निस्साय किर नो, भन्ते, भगवता ओघस्स नित्थरणा अक्खाता । कतमो पन, भन्ते, अरियो विमोक्खो" ति ?

"भन्ते ! वह कैसा उपादान करते हुए वह भिक्षु उपादानग्राही हो जाता है ?"

"आनन्द ! नैवसंज्ञानासंज्ञायतन का ।"

"भन्ते ! तब तो वह उपादान करते हुए भी श्रेष्ठ उपादान का तो ग्रहण कर ही रहा है ?"

"हाँ, आनन्द ! वह भिक्षु उपादान का ग्रहण करते हुए नैवसंज्ञानासंज्ञायतन नामक श्रेष्ठ उपादान का ही ग्रहण कर रहा है ।

९. और यहाँ, आनन्द ! कोई भिक्षु यों चिन्तन करता है—'न यहाँ कुछ है, न मेरा है···उसे छोड़ता हूँ' । यों वह उपेक्षाभावना की साधना करता है । यों वह साधना करता हुआ भी उस उपेक्षा का अभिनन्दन, अभिवादन या उसमें आसक्त नहीं होता । इसके इस प्रकार उस उपेक्षाभावना का अभिनन्दन या आसक्ति न करने से उसका विज्ञान उस उपेक्षा में लिप्त नहीं होता । वह उस उपादान को को न ग्रहण करने की इच्छा वाला हो जाता है । आनन्द ! ऐसा वह उस उपेक्षा का उपादान न करने वाला भिक्षु (अन्त में) परिनिर्वाण प्राप्त कर ही लेता है ।"

५. आर्यविमोक्ष

१०. आश्चर्य है, भन्ते ! अद्भुत है, भन्ते ! आपने कारण से कारण दिखा-

"इधानन्द, भिक्खु अरियसावको इति पटिसञ्चिक्खति--'ये च दिट्ठधम्मिका कामा, ये च सम्परायिका कामा; या च दिट्ठधम्मिका कामसञ्ञा, या च सम्परायिका कामसञ्ञा; ये च दिट्ठधम्मिका रूपा, ये च सम्परायिका रूपा; या च दिट्ठधम्मिका रूपसञ्ञा, या च सम्परायिका रूपसञ्ञा; या च आनेञ्जसञ्ञा, या च आकिञ्चञ्ञायतनसञ्ञा, या च नेवसञ्ञानासञ्ञायतनसञ्ञा --एस सक्कायो यावता सक्कायो। एतं अमतं यदिदं अनुपादा चित्तस्स विमोक्खो।

"इति, खो आनन्द, देसिता मया आनेञ्जसप्पाया पटिपदा, देसिता आकिञ्चञ्ञायतनसप्पाया पटिपदा, देसिता नेवसञ्ञानासञ्ञायतनसप्पाया पटिपदा, देसिता निस्साय निस्साय ओघस्स नित्थरणा, देसितो अरियो विमोक्खो। यं खो, आनन्द, सत्थारा करणीयं सावकानं हितेसिना अनुकम्पकेन अनुकम्पं उपादाय, कतं वो तं मया। एतानि, [R. 266] आनन्द, रुक्खमूलानि, एतानि सुञ्ञागारानि। झायथानन्द, मा पमादत्थ, मा पच्छा विप्पटिसारिनो अहुवत्थ। अयं वो अम्हाकं अनुसासनी" ति।

११. इदमवोच भगवा। अत्तमनो आयस्मा आनन्दो भगवतो भासितं अभिनन्दी ति।

●

दिखाकर इस जगत्प्रवाह से निकलने का सरलतम मार्ग (उपाय) बता दिया। भन्ते ! यह आर्यविमोक्ष क्या है ?

यहाँ, आनन्द ! कोई भिक्षु यों चिन्तन करता है—'ये जो ऐहलौकिक कामभोग हैं...पूर्ववत्...यह जो नैवसंज्ञानासंज्ञायतन संज्ञा है—ये सब सत्काय हैं, सब कुछ सत्काय हैं। यही अमृत पद है, यही मोक्ष है कि चित्त कहीं आसक्त न हो।

"यों, आनन्द ! मैंने (क्रमशः) आनिञ्ज्यसत्प्राय, आकिञ्चन्यायतन सत्प्राय, नैवसंज्ञानासंज्ञायतन सत्प्राय मार्ग की देशना कर दी, जगत्प्रवाह से निस्तरण का मार्ग बता दिया, साथ ही आर्यविमोक्ष क्या है ?—यह भी समझा दिया। यों मैंने तुम पर अनुकम्पा करके, शिष्यहितैषी गुरु को जितना कुछ करना चाहिये, वह मैंने तुम्हारे लिये कर दिया। आनन्द ! ये वृक्षों की छाया है, शून्य आगार है। निश्चिन्त होकर (इनके आश्रय में) ध्यानसाधना करो। कोई प्रमाद न करना कि आगे चलकर तुम्हें उसके लिये पछताना पड़े। तुम्हारे लिये मेरी यही शिक्षा (उपदेश) है, यही अनुशासन है।"

भगवान् ने यह कहा। आयुष्मान् आनन्द ने सन्तुष्ट हो, भगवान् के भाषण का अभिनन्दन किया॥

आनिञ्ज्यसप्पायसुत्त समाप्त॥

♣

७. गणकमोग्गल्लानसुत्तं

[N. 61, R. III. 1] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति पुब्बारामे मिगारमातुपासादे। अथ खो गणकमोग्गल्लानो ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं [B. 53] कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो गणकमोग्गल्लानो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच--

१. धम्मविनये अनुपुब्बसिक्खा

"सेय्यथापि, भो गोतम, इमस्स मिगारमातुपासादस्स दिस्सति अनुपुब्बसिक्खा अनुपुब्बकिरिया अनुपुब्बपटिपदा यदिदं--याव पच्छिमसोपान-कळेवरा : इमेसं पि हि, भो गोतम, ब्राह्मणानं दिस्सति अनुपुब्बसिक्खा अनुपुब्बकिरिया अनुपुब्बपटिपदा यदिदं--अज्झेने; इमेसं पि हि, भो गोतम, इस्सासानं दिस्सति अनुपुब्बसिक्खा अनुपुब्बकिरिया अनुपुब्बपटिपदा यदिदं--इस्सत्थे; अम्हाकं पि हि, भो गोतम, गणकानं गणनाजीवानं दिस्सति अनुपुब्बसिक्खा अनुपुब्बकिरिया अनुपुब्बपटिपदा यदिदं--सङ्खाने; मयं हि, भो गोतम, अन्तेवासिं लभित्वा पठमं एवं गणापेम--'एकं एककं, द्वे दुका, तीणि तिका, चत्तारि चतुक्का, पञ्च पञ्चका, छ छक्का, सत्त सत्तका,

---

७. गणकमौद्गल्यायन सूत्र

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्तीस्थित पूर्वाराम के मृगारमातृप्रासाद में साधनाहेतु विराजमान थे। तब एक गणक (गणितज्ञ) मौद्गल्यायन नामक ब्राह्मण जहाँ भगवान् विराजमान थे, वहाँ गया। जाकर भगवान् सम्मोदन (कुशल मङ्गल) कर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे उस गणक मौद्गल्यायन ब्राह्मण ने भगवान् से यों निवेदन किया—

१. धर्मविनय में क्रमिक (आनुपूर्वी) शिक्षा

"जैसे, भो गौतम! इस मृगारमातृप्रासाद की प्रथम सीढ़ी से अन्तिम सीढ़ी तक की बनावट में क्रमिक शिक्षा, क्रमिक क्रिया, क्रमिक प्रतिपदा दिखायी दे रही है; भो गौतम! इन हम ब्राह्मणों के अध्ययन में भी उसी तरह क्रमिक शिक्षा, क्रमिक क्रिया, क्रमिक प्रतिपदा दिखाई देती है; इन धनुर्धरों के धनुःशास्त्र में भी क्रमिक शिक्षा··· दिखायी देती है, हम गणकों, गणना (गणित) से जीविका चलाने वालों के सङ्ख्यासम्बन्धी कार्य में क्रमिक शिक्षा··· दिखायी देती है। भो गौतम! हमलोग अपने किसी विद्यार्थी को पाकर उसे क्रमशः गणित की शिक्षा देना यों प्रारम्भ करते हैं—'एक एकं एक्का, दो एकं दूआ, तीन एकं तीया, चार एकं चोक्का,

अट्ठ अट्ठका, नव नवका, दस दसका' ति; सतं पि मयं, भो गोतम, गणापेम, भिय्यो पि गणापेम। सक्का नु खो, भो गोतम, इमस्मिं पि धम्मविनये एवमेव अनुपुब्बसिक्खा अनुपुब्बकिरिया अनुपुब्बपटिपदा पञ्ञापेतुं" ति ?

२. "सक्का, ब्राह्मण, इमस्मिं पि धम्मविनये अनुपुब्बसिक्खा [R. 2] अनुपुब्बकिरिया अनुपुब्बपटिपदा पञ्ञापेतुं। सेय्यथापि, ब्राह्मण, दक्खो अस्सदमको भद्दं अस्साजानीयं लभित्वा पठमेनेव मुखाधाने [N. 62] कारणं कारेति, अथ उत्तरिं कारणं कारेति; एवमेव खो, ब्राह्मण, तथागतो पुरिसदम्मं लभित्वा पठमं एवं विनेति—'एहि त्वं, भिक्खु, सीलवा होहि, पातिमोक्खसंवरसंवुतो विहराहि आचारगोचरसम्पन्नो अणुमत्तेसु वज्जेसु भयदस्सावी, समादाय सिक्खस्सु सिक्खापदेसू' ति।

"यतो खो, ब्राह्मण, भिक्खु सीलवा होति, पातिमोक्खसंवरसंवुतो विहरति आचारगोचरसम्पन्नो अणुमत्तेसु वज्जेसु भयदस्सावी, समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु, तमेनं तथागतो उत्तरिं विनेति—'एहि त्वं, भिक्खु, इन्द्रियेसु गुत्तद्वारो होहि, चक्खुना रूपं दिस्वा मा निमित्तग्गाही होहि मानुब्यञ्ज-

---

पाँच एकं पाँचा, छ एकं छक्का, सात एकं सत्ता, आठ एकं अट्ठा, नौ एकं नौवा, दस एकं दस्सा'। इतना ही नहीं, भो गौतम ! हम सौ तक या इससे आगे की गिनती भी इसी तरह क्रमपूर्वक सिखाते हैं। क्या, भो गौतम ! आपके इस धर्मविनय में भी इसी तरह की आनुपूर्वी (क्रमिक) शिक्षा, क्रिया या प्रतिपदा (मार्ग, उपाय) बताये जाने के लिये है ?"

२. "हाँ, ब्राह्मण ! हमारे इस धर्मविनय में भी ऐसी क्रमिक शिक्षा सिखाये जाने के लिये है। जैसे ब्राह्मण ! चतुर अश्वारोही उत्तम क्षेत्र (अच्छी नस्ल) के किसी घोड़े को पाकर प्रारम्भ में (सबसे पहले) उसे मुँह में लगाम पकड़ने की क्रिया सिखाता है, फिर आगे की क्रिया सिखाता है; ऐसे ही ब्राह्मण ! तथागत किसी पुरुष को दम्य (अनुशासन योग्य) बनाने के लिये, उसे पाकर, पहले उसे यह शिक्षा देते हैं—आओ, भिक्षु ! तुम पहले शीलवान् (सदाचारी) बनो, प्रातिमोक्षसंवर (भिक्षु नियमों के पालन) के सहारे अपने में संयम लाओ। आचार गोचर (इन्द्रियों की सदाशयता) में सम्पन्न बनो। अपने में अत्यल्प दोष देखकर भी भय मानो, यों मेरे बतलाये शिक्षापदों का पालन करते हुए साधना में निरन्तर लगे रहो।

"ब्राह्मण ! जब वह भिक्षु शीलवान् हो···शिक्षापदों का पालन करने में सतत जागरूक रहने लगता है, तब तथागत उसे आगे की शिक्षा देना प्रारम्भ करते हैं-- 'आओ, भिक्षु ! अब तुम इन्द्रियों में संयम वरतना सीखो; चक्षु से किसी रूप को

नग्गाही। यत्वाधिकरणमेनं चक्खुन्द्रियं असंवुतं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं तस्स संवराय पटिपज्जाहि; रक्खाहि [B. 54] चक्खुन्द्रियं, चक्खुन्द्रिये संवरं आपज्जाहि। सोतेन सद्दं सुत्वा… पे०… घानेन गन्धं घायित्वा…पे०… जिव्हाय रसं सायित्वा…पे०… कायेन फोट्ठब्बं फुसित्वा…पे०… मनसा धम्मं विञ्ञाय मा निमित्तग्गाही होहि मानुब्यञ्जनग्गाही। यत्वाधिकरणमेनं मनिन्द्रियं असंवुतं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं तस्स संवराय पटिपज्जाहि; रक्खाहि मनिन्द्रियं, मनिन्द्रिये संवरं आपज्जाहि' ति।

"यतो खो, ब्राह्मण, भिक्खु इन्द्रियेसु गुत्तद्वारो होति, तमेनं तथागतो उत्तरिं विनेति—'एहि त्वं, भिक्खु भोजने मत्तञ्ञू होहि। पटिसङ्खा योनिसो आहारं आहारेय्यासि—'नेव दवाय न मदाय न मण्डनाय न विभूसनाय, यावदेव इमस्स कायस्स ठितिया यापनाय विहिंसूपरतिया ब्रह्मचरियानुग्गहाय—इति पुराणं च वेदनं पटिहङ्खामि, नवं च वेदनं न उप्पादेस्सामि, यात्रा च मे भविस्सति अनवज्जता च फासुविहारो चा' ति।

[R. 3] "यतो खो, ब्राह्मण, भिक्खु भोजने मत्तञ्ञू होति, तमेनं [N. 63] तथागतो उत्तरिं विनेति—'एहि त्वं, भिक्खु, जागरियं अनुयुत्तो

देखकर उसके निमित्त (आकृति) व अनुव्यञ्जन (चिह्न) में लिप्त न हो। क्योंकि चक्षुरिन्द्रिय को असंयत छोड़कर साधना करने वाले को अभिध्या, दौर्मनस्य आदि अकुशल पापमय धर्म घेर लेते हैं, अतः उन पर संयम रखने में तत्पर हो चक्षरिन्द्रिय की सतत रक्षा करो, उसमें संयम लाओ। श्रोत्र से किसी शब्द को सुनकर… पूर्ववत्[1]… घ्राण से गन्ध को सूँघ कर… जिह्वा से रस को चखकर… काया से स्प्रष्टव्य… मन से धर्मों को जानकर उनके निमित्त व अनुव्यञ्जन में लिप्त न हो। क्योंकि… मन इन्द्रिय पर संयम करो।"

"ब्राह्मण ! जब वह भिक्षु इन्द्रियों में भी संयम करना सीख लेता है तब उसे तथागत आगे की विनय शिक्षा यों देते हैं—'आओ, भिक्षु ! तुम भोजन में मात्रा (परिमाण) का ज्ञान रखने वाले बनो। यों… पूर्ववत्[2]…… तुम्हारी शरीरयात्रा भी ठीक से चलती रहेगी।

"ब्राह्मण ! जब वह साधक भिक्षु भोजन में मात्रा का ज्ञान रखने वाला हो जाता है तब तथागत उसे आगे शिक्षा देते हैं—

---

१. द्र०—३८. तण्हासङ्खयसुत्त, पृ० ५०८।

२. द्र०—३९. महाअस्सपुरसुत्त पृ० ५१७।

विहराहि, दिवसं चङ्कमेन निसज्जाय आवरणीयेहि धम्मेहि चित्तं परिसोधेहि, रत्तिया पठमं यामं चङ्कमेन निसज्जाय आवरणीयेहि धम्मेहि चित्तं परिसोधेहि, रत्तिया मज्झिमं यामं दक्खिणेन पस्सेन सीहसेय्यं कप्पेय्यासि पादे पादं अच्चाधाय सतो सम्पजानो उट्ठानसञ्ञं मनसिकरित्वा, रत्तिया पच्छिमं यामं पच्चुट्ठाय चङ्कमेन निसज्जाय आवरणीयेहि धम्मेहि चित्तं परिसोधेही' ति।

"यतो खो, ब्राह्मण, भिक्खु जागरियं अनुयुत्तो होति, तमेनं तथागतो उत्तरिं विनेति—'एहि त्वं, भिक्खु, सतिसम्पजञ्ञेन समन्नागतो होति, अभिक्कन्ते पटिक्कन्ते सम्पजानकारी, आलोकिते विलोकिते सम्पजानकारी, समिञ्जिते पसारिते सम्पजानकारी, सङ्घाटिपत्तचीवरधारणे सम्पजानकारी, असिते पीते खायिते सायिते सम्पजानकारी, उच्चारपस्सावकम्मे सम्पजानकारी, गते ठिते निसिन्ने सुत्ते जागरिते तुण्हीभावे सम्पजानकारी' ति।

"यतो खो, ब्राह्मण, भिक्खु सतिसम्पजञ्ञेन समन्नागतो होति, तमेनं तथागतो उत्तरि विनेति—'एहि त्वं, भिक्खु, विवित्तं सेनासनं भजाहि अरञ्ञं रुक्खमूलं पब्बतं कन्दरं गिरिगुहं सुसानं वनपत्थं अब्भो- [B. 55] कासं पलालपुजं' ति। सो विवित्तं सेनासनं भजति अरञ्ञं रुक्खमूलं पब्बतं कन्दरं गिरिगुहं सुसानं वनपत्थं अब्भोकासं पलालपुञ्जं। सो पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो निसीदति पल्लङ्कं आभुजित्वा, उजुं कायं पणिधाय, परिमुखं सतिं उपट्ठपेत्वा। सो अभिज्झं लोके पहाय विगताभिज्झेन चेतसा विहरति, अभिज्झाय चित्तं परिसोधेति; ब्यापादपदोसं पहाय अब्यापन्नचित्तो विहरति सब्बपाणभूतहितानुकम्पी, ब्यापादपदोसा चित्तं परिसोधेति; थीनमिद्धं पहाय विगतथीनमिद्धो विहरति आलोकसञ्ञी सतो सम्पजानो,

---

"आओ, भिक्षु! तुम जागरण में तत्पर होकर साधना करो। दिन में चंक्रमण···पूर्ववत्···रात्रि के अन्तिम प्रहर में उठकर चंक्रमण के सहारे आवरणीय धर्मों से चित्त को विमुक्त करो।

"ब्राह्मण! जब वह भिक्षु जागरण में तत्पर होने से साधनासुख जान लेता है, तब तथागत उसे आगे की शिक्षा यों देते हैं—'आओ, भिक्षु! तुम स्मृतिसम्प्रजन्य से युक्त हो जाओ। आते-जाते, ऊपर-नीचे देखते···पूर्ववत्·····चुप रहते स्मृतिसम्प्रजन्य से युक्त रहो।'

"ब्राह्मण! जब वह भिक्षु स्मृतिसम्प्रजन्य से पूर्णतया युक्त हो जाता है, तब तथागत उसे आगे यों क्रमिक शिक्षा की ओर बढ़ाते हैं—'आओ भिक्षु! अब तुम

थीनमिद्धा चित्तं परिसोधेति; उद्धच्चकुक्कुच्चं पहाय अनुद्धतो विहरति अज्झत्तं वूपसन्तचित्तो, उद्धच्चकुक्कुच्चा चित्तं परिसोधेति; विचिकिच्छं पहाय तिण्णविचिकिच्छो विहरति अकथंकथी कुसलेसु धम्मेसु, विचिकिच्छाय चित्तं परिसोधेति।

३. [N. 64, R. 4] "सो इमे पञ्च नीवरणे पहाय चेतसो उपक्किलेसे पञ्ञाय दुब्बलीकरणे विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति। वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं सम्पसादनं···पे०···दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। पीतिया च विरागा···पे०···ततियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सुखस्स च पहाना···पे०···चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति।

"ये खो ते, ब्राह्मण, भिक्खू सेक्खा अपत्तमानसा अनुत्तरं योगक्खेमं पत्थयमाना विहरन्ति तेसु मे अयं एवरूपी अनुसासनी होति। ये पन ते भिक्खू अरहन्तो खीणासवा वुसितवन्तो कतकरणीया ओहितभारा अनुप्पत्तसदत्था परिक्खीणभवसंयोजना सम्मदञ्ञा विमुत्ता तेसं इमे धम्मा दिट्ठधम्मसुखविहाराय चेव संवत्तन्ति, सतिसम्पजञ्ञाय चा" ति।

२. मग्गक्खायी तथागतो

४. एवं वुत्ते, गणकमोग्गल्लानो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—"किं

एकान्तवास के प्रयोग में लगो···पूर्ववत्[1]···कुशल धर्मों के प्रति निःसंशय हो उनसे स्वचित्त का शोधन करते हुए साधना करो।

३. "वह इन पाँच नीवरणों को चित्त से दूर हटाकर, मनोविकारों को प्रज्ञा से दुर्बल कर, कामभोग एवं अकुशल कर्मों से दूर रह, वितर्क-विचारसहित विवेकजन्य प्रीति-सुखमय प्रथम ध्यान···पूर्ववत्···चतुर्थ ध्यान की साधना करता है।

"ब्राह्मण! जो भिक्षु अभी शैक्ष्य (जिन्हें कुछ सीखना बाकी है) हैं, अतः निर्वाण तक नहीं पहुँचे हैं, जो मन की शुद्ध अवस्था को नहीं प्राप्त कर पाये हैं, उनको मेरी यह ऐसी शिक्षा होती है। और जो भिक्षु अर्हत्, क्षीणास्रव (निर्मल-चित्त) हो अपनी ब्रह्मचर्यसाधना पराकाष्ठा तक पहुँचा चुके हैं, तथा कृतकृत्य, भारमुक्त, सदर्थ (निर्वाण) प्राप्त, भवबन्धनविहीन एवं सम्यग्ज्ञान प्राप्त कर मुक्त हो चुके हैं, उनके लिये मेरी ये बातें (शिक्षापद) अपने अवशिष्ट जीवन में सुखपूर्वक साधना के लिये और स्मृतिसम्प्रजन्य में सहायक होती हैं।"

---

१. द्र०—पृ० ५१८, महाअस्सपुरसुत्त ३९।

नु खो भोतो गोतमस्स सावका भोता गोतमेन एवं ओवदियमाना एवं अनुसासियमाना सब्बे अच्चन्तं निट्ठं निब्बानं आराधेन्ति उदाहु एकच्चे नाराधेन्ती" ति ?

"अप्पेकच्चे खो, ब्राह्मण, मम सावका मया एवं ओवदियमाना एवं अनुसासियमाना अच्चन्तं निट्ठं निब्बानं आराधेन्ति, एकच्चे नाराधेन्ती" ति। [B. 56]

"को नु खो, भो गोतम, हेतु को पच्चयो यं तिट्ठतेव निब्बानं, तिट्ठति निब्बानगामी मग्गो, तिट्ठति भवं गोतमो समादपेता; अथ च पन भोतो गोतमस्स सावका भोता गोतमेन एवं ओवदियमाना एवं अनुसासियमाना अप्पेकच्चे अच्चन्तं निट्ठं निब्बानं आराधेन्ति, एकच्चे नाराधेन्ती" ति ?

५. तेन हि, ब्राह्मण, तंयेवेत्थ पटिपुच्छिस्सामि। यथा ते खमेय्य तथा नं ब्याकरेय्यासि। तं किं मञ्ञसि, ब्राह्मण, कुसलो त्वं राजगहगामिस्स मग्गस्सा" ति ? [N. 65] [R. 5]

"एवं, भो, कुसलो अहं राजगहगामिस्स मग्गस्सा" ति।

"तं किं मञ्ञसि, ब्राह्मण, इध पुरिसो आगच्छेय्य राजगहं गन्तुकामो।

---

२. तथागत तो मार्ग बताने वाले हैं

४. ऐसा कहने पर, गणकमोग्गल्लान ने तथागत से यों पूछा—"क्या, श्रमण गौतम ! आपके शिष्य आप से यों शिक्षा (उपदेश), अनुशासन पाकर, सभी अत्यन्त साधनारत हो निर्वाण की आराधना तक पहुँच पाते हैं ? या कोई नहीं भी पहुँच पाता ?"

"हाँ, ब्राह्मण ! मेरे शिष्यों को मेरे द्वारा यों समान शिक्षा दिये जाने पर भी, उनमें से कुछ निर्वाण तक सफलतया पहुँच जाते हैं, कुछ नहीं भी पहुँच पाते।"

"भो गौतम ! इसमें क्या हेतु या क्या प्रत्यय है कि सब भिक्षुओं को आप द्वारा समान शिक्षा दिये जाने पर भी उनमें से कोई निर्वाण प्राप्त कर पाता है और कोई नहीं कर पाता ?"

५. "तो, ब्राह्मण ! मैं यहाँ तुमसे ही पूछता हूँ, जैसा तुम्हें उचित लगे बताओ। क्या मानते हो, ब्राह्मण ! राजगृह जाने वाले मार्ग के तो तुम सही जानकार हो ना ?"

"हाँ, भो ! मैं राजगृह जाने का मार्ग सही रूप से जानता हूँ।"

"तो क्या मानते हो, ब्राह्मण ! राजगृह जाने की इच्छा वाला कोई पुरुष

सो तं उपसङ्कमित्वा एवं वदेय्य—'इच्छामहं, भन्ते, राजगहं गन्तुं; तस्स मे राजगहस्स मग्गं उपदिसा' ति। तमेनं त्वं एवं वदेय्यासि—'एहम्भो पुरिस, अयं मग्गो राजगहं गच्छति। तेन मुहुत्तं गच्छ, तेन मुहुत्तं गन्त्वा दक्खिस्ससि अमुकं नाम गामं, तेन मुहुत्तं गच्छ, तेन मुहुत्तं गन्त्वा दक्खिस्ससि अमुकं नाम निगमं, तेन मुहुत्तं गच्छ, तेन मुहुत्तं गन्त्वा दक्खिस्ससि राजगहस्स आरामरामणेय्यकं वनरामणेय्यकं भूमिरामणेय्यकं पोक्खरणीरामणेय्यकं' ति। सो तया एवं ओवदियमानो एवं अनुसासियमानो उम्मग्गं गहेत्वा पच्छामुखो गच्छेय्य। अथ दुतियो पुरिसो आगच्छेय्य राजगहं गन्तुकामो। सो तं उपसङ्कमित्वा एवं वदेय्य—'इच्छामहं, भन्ते, राजगहं गन्तुं; तस्स मे राजगहस्स मग्गं उपदिसा' ति। तमेनं त्वं एवं वदेय्यासि—'एहम्भो पुरिस, अयं मग्गो राजगहं गच्छति। तेन मुहुत्तं गच्छ, तेन मुहुत्तं गन्त्वा दक्खिस्ससि अमुकं नाम गामं, तेन मुहुत्तं गच्छ; तेन मुहुत्तं गन्त्वा दक्खिस्ससि अमुकं नाम निगमं, तेन मुहुत्तं गच्छ; तेन मुहुत्तं गन्त्वा दक्खिस्ससि राजगहस्स आरामरामणेय्यकं वनरामणेय्यकं भूमिरामणेय्यकं पोक्खरणीरामणेय्यकं' ति। सो तया एवं ओवदियमानो एवं एवं अनुसासियमानो सोत्थिना राजगहं गच्छेय। को नु खो, ब्राह्मण, हेतु [B. 57] को पच्चयो यं तिट्ठतेव राजगहं, तिट्ठति राजगहगामी मग्गो, तिट्ठसि त्वं समादपेता; अथ च पन तया एवं ओवदियमानो एवं अनुसासियमानो एको पुरिसो उम्मग्गं गहेत्वा पच्छामुखो गच्छेय, एको सोत्थिना राजगहं गच्छेय्या" ति ?

तुम्हारे पास आवे, वह तुम्हारे पास आकर तुमसे यों कहे—'भन्ते ! मैं राजगृह जाना चाहता हूँ, कृपया मुझे वहाँ पहुँचने का मार्ग बताइये !' उसको तुम यों बताओ—'अरे भाई ! राजगृह जाने का मार्ग यह है। इस पर तू कुछ क्षण आगे चलेगा तो वहाँ तुम्हें अमुक ग्राम मिलेगा। उससे कुछ दूर आगे चलेगा तो अमुक कस्बा मिलेगा। उससे कुछ क्षण आगे चलेगा तो तुझे राजगृह की बाहरी उद्यान-भूमि, वनभूमि और पोखरे-तालाबों से पटी रमणीय भूमि दिखायी देगी। वह पुरुष तुम्हारे द्वारा यों ठीक-ठीक बताये जाने पर भी विपरीत (उन्मार्ग) मार्ग पकड़ कर पीछे की ओर ही चल दे। फिर कोई दूसरा पुरुष भी तुम्हारे पास राजगृह जाने का मार्ग पूछने आवे। उसे भी तुम···पूर्ववत्···यही रमणीय भूमि दिखायी देगी। वह तुम्हारे द्वारा बताये रास्ते पर सही ढंग से चल कर सरलता से राजगृह पहुँच जाय। अब तुम बताओ, ब्राह्मण ! यहाँ क्या कारण है कि राजगृह भी वही है, राजगृह जाने वाला मार्ग भी वही है, रास्ता बताने वाले तुम भी दोनों के लिये समान ही हो,

"एत्थ क्वाहं, भो गोतम, करोमि ? मग्गक्खायीहं, भो [R. 6] गोतम" ति ।

"एवमेव खो, ब्राह्मण, तिट्ठतेव निब्बानं, तिट्ठति निब्बान- [N. 66] गामी मग्गो, तिट्ठामहं समादपेता; अथ च पन मम सावका मया एवं ओवदियमाना एवं अनुसासियमाना अप्पेकच्चे अच्चन्तं निट्ठं निब्बानं आराधेन्ति, एकच्चे नाराधेन्ति । एत्थ क्याहं, ब्राह्मण, करोमि ? मग्गक्खायीहं, ब्राह्मण, तथागतो" ति ।

३. गणकमोग्गल्लानस्स भगवति पसादो

६. एवं वुत्ते, गणकमोग्गल्लानो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—"येमे, भो गोतम, पुग्गला अस्सद्धा जीविकत्था अगारस्मा अनगारियं पब्बजिता सठा मायाविनो केटुभिनो उद्धता उन्नळा चपला मुखरा विकिण्णवाचा इन्द्रियेसु अगुत्तद्वारा भोजने अमत्तञ्ञुनो जागरियं अननुयुत्ता सामञ्ञे अनपेक्खवन्तो सिक्खाय न तिब्बगारवा बाहुलिका साथलिका ओक्कमने पुब्बङ्गमा पविवेके निक्खित्तधुरा कुसीता हीनविरिया मुट्ठस्सतिनो असम्प-

---

फिर भी तुम्हारे द्वारा उपदिष्ट एक आदमी तो राजगृह सरलता से पहुँच गया, और एक, उलटा रास्ता पकड़ने के कारण, पहुँच ही नहीं पाया" ?

"भो गौतम ! यहाँ मैं क्या कर सकता हूँ । मैं तो मार्ग बताने भर का जिम्मेदार था ।"

"इसी तरह, ब्राह्मण ! निर्वाण भी वही है, निर्वाणगामी मार्ग भी वही है; निर्वाणमार्गोपदेष्टा मैं भी वही हूँ; पर इतने पर भी मेरे द्वारा उपदिष्ट कुछ भिक्षु साधना सम्यक्तया (अत्यन्तनिष्ठा से) पूर्ण करते हुए निर्वाण तक पहुँच जाते हैं, कुछ साधना में कमी के कारण नहीं भी पहुँच पाते । मैं इस विषय में क्या कर सकता हूँ । मैं तो मार्ग बतानेमात्र का उत्तरदायी हूँ ।"

३. गणक मोग्गल्लान की भगवान् में श्रद्धा

६. भगवान् के द्वारा ऐसा कहे जाने पर, वह गणक मोग्गल्लान ब्राह्मण भगवान् से यों बोला—"भो गौतम ! यहाँ जो ये पुद्गल श्रद्धारहित, पेट भरने के लिये काषाय वस्त्र पहन, घर से बेघर हो प्रव्रजित हुए, धूर्त, मायावी, ढोंगी, उद्धत, उन्मार्ग (गलत रास्ता) पर चलने वाले, चपल, वकवादी, असंयत बोलने वाले, असंयतेन्द्रिय, भोजन की मात्रा न जानने वाले, जागरण (कायिक क्रियाओं) में असावधान, श्रामण्यभाव को गम्भीरता से न लेने वाले, शिक्षापदों (भिक्षुनियमों) के प्रति गौरवभाव न रखने वाले, परिग्रही (बाहुलिक) साथलिक अर्थात् कोई

जाना असमाहिता विब्भन्तचित्ता दुप्पञ्ञा एळमूगा, न तेहि भवं गोतमो सद्धिं संवसति।

"ये पन ते कुलपुत्ता सद्धा अगारस्मा अनगारियं पब्बजिता असठा अमायाविनो अकेटुभिनो अनुद्धता अनुन्नळा अचपला अमुखरा अविकिण्णवाचा इन्द्रियेसु गुत्तद्वारा भोजने मत्तञ्ञुनो जागरियं अनुयुत्ता सामञ्ञे अपेक्खवन्तो सिक्खाय तिब्बगारवा नबाहुलिका नसाथलिका ओक्कमने निक्खित्तधुरा पविवेके पुब्बङ्गमा आरद्धविरिया पहितत्ता उपट्ठितस्सतिनो सम्पजाना समाहिता एकग्गचित्ता पञ्ञवन्तो अनेळमूगा, तेहि भवं गोतमो सद्धिं संवसति।

"सेय्यथापि, भो गोतम, ये केचि मूलगन्धा, कालानुसारि तेसं अग्गमक्खायति; ये केचि सारगन्धा, लोहितचन्दनं तेसं अग्गमक्खायति; ये केचि [R. 7] पुप्फगन्धा, वस्सिकं तेसं अग्गमक्खायति; एवमेव भोतो गोतमस्स ओवादो परमज्जधम्मेसु।

[B. 58] "अभिक्कन्तं, भो गोतम, अभिक्कन्तं, भो गोतम! सेय्य-
[N. 67] थापि, भो गोतम, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा

विपत्ति (कठिनाई) पड़ने पर भागने में पहल करने वाले, एकान्त चिन्तन की बात उठने पर जूआ फेंक देने वाले, आलसी, मन्द-उत्साही, नष्ट स्मृति वाले, असम्प्रजान (असावधान), असमाहित, विभ्रान्त चित्त वाले, दुष्प्रज्ञ (मन्दमति) एवं भेड़ जितनी सी समझ रखने वाले हैं। आप गौतम उनके साथ नहीं बैठते (उनकी श्रेणी में नहीं आते)।

("हाँ, पर दूसरी ओर) जो ये कुलीन हैं श्रद्धा के कारण घर से बेघर हो प्रव्रजित हुए हैं, विनयी, सरल, पाखण्ड से रहित, अनुद्धत, अनुन्नळ (अनभिमानी) अचपल, अमुखर, संयतभाषी, इन्द्रियसंयमी, उचित भोजन करने वाले, जागरणशील, श्रामण्य के प्रति गौरवशील, शिक्षापदों के पालन मे उत्साही, अपरिग्रही, आलस्यरहित, अकुशल से दूर रहने में आगे रहने वाले, एकान्तवास के लिये पहल करने वाले, संतत उपयोगी, संयतचित्त, उपस्थितस्मृति, सम्प्रज्ञ, समाहित, एकाग्रचित्त, प्रज्ञावान्, भेड़ आदि की जितनी ही समझ न रखने वाले हैं; आप श्रमण गौतम ऐसे लोगों का साथ करने में सुख मानते हैं।

जैसे, भो गौतम ! मूलगन्ध वाले (जिनकी जड़ें सुगन्धमय होती हैं) द्रव्यों में कालानुसारी (खास) सर्वश्रेष्ठ है; सारगन्ध वाले (जिनकी लकड़ी में सुगन्ध होती है)

विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य–'चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती" ति; एवमेवं भोता गोतमेन अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। ऐसाहं भवन्तं गोतमं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खु-सङ्घं च। उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति।

●

वृक्षों में लालचन्दन श्रेष्ठ कहलाता है; और पुष्पगन्ध लता-वृक्षों में जुही (वस्सिक) का फूल सर्वोत्तम गन्धमय होता है, उसी प्रकार आप गौतम द्वारा उपदिष्ट धर्म-साधना वर्तमान सभी मतवादों में श्रेष्ठ है।

आश्चर्य है भो गौतम···पूर्ववत्···आज से आगे मुझे जीवनपर्यन्त अपना उपासक (सेवक) समझें ।।

गणकमोग्गल्लानसुत्त समाप्त ।।

●

८. गोपकमोग्गल्लानसुत्तं

१. अनुप्पन्नमग्गुप्पादेता भगवा

[N. 68] १. एवं मे सुतं। एकं समयं आयस्मा आनन्दो राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे अचिरपरिनिब्बुते भगवति। तेन खो पन समयेन राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो राजगहं पटिसङ्खारापेति रञ्ञो पज्जोतस्स आसङ्कमानो। अथ खो आयस्मा आनन्दो पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय राजगहं पिण्डाय पाविसि। अथ खो आयस्मतो आनन्दस्स एतदहोसि—"अतिप्पगो खो ताव राजगहे पिण्डाय चरितुं। यन्नूनाहं येन गोपकमोग्गल्लानस्स ब्राह्मणस्स कम्मन्तो, येन गोपकमोग्गल्लानो ब्राह्मणो तेनुपसङ्कमेय्यं" ति।

अथ खो आयस्मा आनन्दो येन गोपकमोग्गल्लानस्स ब्राह्मणस्स कम्मन्तो, येन गोपकमोग्गल्लानो ब्राह्मणो तेनुपसङ्कमि। अद्दसा खो गोपकमोग्गल्लानो ब्राह्मणो आयस्मन्तं आनन्दं दूरतो व आगच्छन्तं। दिस्वान आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच—"एतु खो भवं आनन्दो। स्वागतं भोतो आनन्दस्स। चिरस्सं खो भवं आनन्दो इमं परियायमकासि यदिदं इधा-

---

८. गोपकमौद्गल्यायनसूत्र

१. भगवान् अपूर्व मार्ग के उपदेष्टा हैं

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय आयुष्मान् आनन्द राजगृह के बेणुवनस्थित कलन्दक निवास में ठहरे हुए थे, जब कि भगवान् का महापरिनिर्वाण हुए थोड़ा ही समय बीता था। उस समय मागध राजा अजातशत्रु, राजा प्रद्योत के आसन्न आक्रमण के भय से, राजगृह (के दुर्ग) को अधिक सुरक्षित बनाने में व्यस्त था। तब (किसी दिन) आयुष्मान् आनन्द पात्र-चीवर ले, राजगृह नगर की ओर भिक्षाचर्याहेतु चले। (कुछ दूर चलने पर) आयुष्मान् आनन्द को यह हुआ—"राजगृह में भिक्षाचर्या के लिये अभी समय है; तो क्यों न मैं उतनी देर के लिये, जहाँ गोपक मौद्गल्यायन ब्राह्मण के खेत (कर्मान्त) हैं, जहाँ वह स्वयं भी रहता है, वहीं चलूँ।"

तब आयुष्मान् आनन्द, वहाँ गोपक मोग्गल्लान के खेत थे वहाँ पहुँचे। पहुँचकर जहाँ गोपक मोग्गल्लान ब्राह्मण था, उधर बढ़े। गोपक मोग्गल्लान ने दूर से ही आयुष्मान् आनन्द को आते हुए देख लिया। देखकर वह आयुष्मान् आनन्द से यों बोला—"आओ, भन्ते आनन्द! आयुष्मन् आनन्द! आप का स्वागत है! आप आनन्द ने इधर पधारने का बहुत काल बाद अवसर निकाला!

गमनाय। निसीदतु भवं आनन्दो, इदमासनं पञ्ञत्तं" ति। निसीदि खो आयस्मा आनन्दो पञ्ञत्ते आसने। गोपकमोग्गल्लानो पि खो [R. 8] ब्राह्मणो अञ्ञतरं नीचं आसनं गहेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो गोपकमोग्गल्लानो ब्राह्मणो आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच—"अत्थि नु खो, भो आनन्द, एकभिक्खु पि तेहि धम्मेहि सब्बेन सब्बं सब्ब- [B. 59] था सब्बं समन्नागतो येहि धम्मेहि समन्नागतो सो भवं गोतमो अहोसि अरहं सम्मासम्बुद्धो" ति ?

"नत्थि खो, ब्राह्मण, एकभिक्खु पि तेहि धम्मेहि सब्बेन सब्बं सब्बथा-सब्बं समन्नागतो येहि धम्मेहि समन्नागतो सो भगवा अहोसि अरहं सम्मासम्बुद्धो। सो हि, ब्राह्मण, भगवा अनुप्पन्नस्स मग्गस्स उप्पादेता, असञ्जातस्स मग्गस्स सञ्जनेता, अनक्खातस्स मग्गस्स अक्खाता, [N. 69] मग्गञ्ञू, मग्गविदू, मग्गकोविदो; मग्गानुगा च पन एतरहि सावका विह-रन्ति पच्छा समन्नागता" ति।

अयं च हिदं आयस्मतो आनन्दस्स गोपकमोग्गल्लानेन ब्राह्मणेन सद्धिं अन्त-राकथा विप्पकता अहोसि। अथ खो वस्सकारो ब्राह्मणो मगधमहामत्तो राज-गहे कम्मन्ते अनुसञ्ञायमानो येन गोपकमोग्गल्लानस्स ब्राह्मणस्स कम्मन्तो,

---

आप आनन्द ! विराजें। आसन बिछा है।" आयुष्मान् आनन्द बिछे आसन पर विराजे। गोपक मोग्गल्लान ब्राह्मण भी दूसरे एक छोटे आसन पर बैठ गया। एक ओर बैठे गोपक मोग्गल्लान ब्राह्मण ने आयुष्मान् आनन्द से यों पूछा—'भो आनन्द ! क्या आप के सङ्घ में कोई एक भिक्षु भी ऐसा है जो सब तरह से इन सभी गुणों से युक्त हो जिनसे कि आप के गौतम अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध सम्पृक्त थे ?"

"नहीं, ब्राह्मण ! हममें एक भी भिक्षु उन सभी गुणों से सब तरह से या पूर्णतया युक्त नहीं, जिनसे कि भगवान् समन्वित थे। ब्राह्मण ! हमारे वे भगवान् तो अनुत्पन्न (अपूर्व) मार्ग के अन्वेष्टा (उत्पादक), सामान्य जनों द्वारा न जानने योग्य मार्ग के ज्ञाता, पूर्व में किसी भी दार्शनिक तत्त्ववेत्ता द्वारा अकथित मार्ग के आख्याता (उपदेशक), मार्गज्ञ, मार्गविद्, मार्गकोविद (मार्गविशेषज्ञ) थे। आज हम उनके शिष्य तो उनके बताये मार्ग का अनुसरणमात्र कर रहे हैं।"

"आयुष्मान् आनन्द एवं गोपक मोग्गल्लान ब्राह्मण के बीच यह बातचीत हो रही थी कि इसी अवसर पर, मगध राज्य का महामात्य वर्षकार ब्राह्मण, राजगृह में हो रही सैनिक तय्यारियों के निरीक्षण के प्रसङ्ग में जहाँ गोपक मोग्गल्लान ब्राह्मण

येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता आनन्देन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो वस्सकारो ब्राह्मणो मगधमहामत्तो आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच—"काय नुत्थ, भो आनन्द, एतरहि कथाय सन्निसिन्ना, का च पन वो अन्तराकथा विप्पकता" ति ?

"इध मं, ब्राह्मण, गोपकमोग्गल्लानो ब्राह्मणो एवमाह—'अत्थि नु खो, भो आनन्द, एकभिक्खु पि तेहि धम्मेहि सब्बेन सब्बं सब्बथा सब्बं समन्नागतो येहि धम्मेहि समन्नागतो सो भवं गोतमो अहोसि अरहं सम्मासम्बुद्धो' ति। एवं वुत्ते अहं, ब्राह्मण, गोपकमोग्गल्लानं ब्राह्मणं एतदवोचं—'नत्थि खो, ब्राह्मण, एकभिक्खु पि तेहि धम्मेहि सब्बेन सब्बं सब्बथा सब्बं समन्नागतो येहि धम्मेहि समन्नागतो सो भगवा अहोसि अरहं सम्मासम्बुद्धो। सो हि, ब्राह्मण, भगवा अनुप्पन्नस्स मग्गस्स उप्पादेता, असञ्जातस्स [R. 9] मग्गस्स सञ्जनेता, अनक्खातस्स मग्गस्स अक्खाता, मग्गञ्ञू मग्गविदू, मग्गकोविदो; मग्गानुगा च पन एतरहि सावका विहरन्ति पच्छा समन्नागता' ति। अयं खो नो, ब्राह्मण, गोपकमोग्गल्लानेन ब्राह्मणेन सद्धिं अन्तराकथा विप्पकता। अथ त्वं अनुप्पत्तो" ति।

२. तथागतच्चयेन धम्मो पटिसरणं

२. "अत्थि नु खो, भो आनन्द, एकभिक्खु पि तेन भोता गोतमेन ठपितो—'अयं वो ममच्चयेन पटिसरणं भविस्सती' ति, यं तुम्हे एतरहि [B. 60] पटिपादेय्याथा" ति ?

की खेती-बाड़ी (कर्मान्त) थी, जहाँ कि आयुष्मान् आनन्द पहले से ही विद्यमान थे, उधर आ निकले। उन्होंने आकर आयुष्मान् आनन्द से कुशल-मङ्गल पूछा। कुशल-मङ्गल पूछ वे एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे मगधमहामात्य वर्षकार ब्राह्मण ने आयुष्मान आनन्द से यों पूछा—"भो आनन्द, इस समय क्या (वार्ता-) प्रसङ्ग चल रहा है ? और इससे पहले क्या बात होते-होते बीच में ही रुक गयी ?"

"ब्राह्मण ! यहाँ मेरे आने पर इस गोपक मोग्गल्लान ब्राह्मण ने मुझसे यों पूछा था— "आपके सङ्घ में...पूर्ववत्...अनुसरणमात्र कर रहे हैं।' बस, मेरे और इस गोपक ब्राह्मण के बीच ये ही बातें हो रही थीं कि इसी बीच आप आ पहुँचे।"

२. तथागत के बाद धर्म ही एकमात्र हमारा शरणास्थल है

२. "भो आनन्द ! क्या पूज्य गौतम ने अपनी तरफ से किसी एक भी भिक्षु को अपना स्थानापन्न (उत्तराधिकारी) नियुक्त नहीं किया कि अमुक भिक्षु मेरे

"नत्थि खो, ब्राह्मण, एकभिक्खु पि तेन भगवता जानता [N. 70] पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन ठपितो—'अयं वो ममच्चयेन पटिसरणं भविस्सती' ति, यं मयं एतरहि पटिपादेय्यामा" ति।

"अत्थि पन, भो आनन्द, एकभिक्खु पि सङ्घेन सम्मतो, सम्बहुलेहि थेरेहि भिक्खूहि ठपितो—'अयं नो भगवतो अच्चयेन पटिसरणं भविस्सती' ति, यं तुम्हे एतरहि पटिपादेय्याथा" ति ?

"नत्थि खो, ब्राह्मण, एकभिक्खु पि सङ्घेन सम्मतो, सम्बहुलेहि थेरेहि भिक्खूहि ठपितो—'अयं नो भगवतो अच्चयेन पटिसरणं भविस्सती' ति, यं मयं एतरहि पटिपादेय्यामा" ति।

"एवं अप्पटिसरणे च पन, भो आनन्द, को हेतु सामग्गिया" ति ?

"न खो मयं, ब्राह्मण, अप्पटिसरणा; सप्पटिसरणा मयं, ब्राह्मण; धम्मप्पटिसरणा" ति।

" 'अत्थि नु खो, भो आनन्द, एकभिक्खु पि तेन भोता गोतमेन ठपितो —अयं वो ममच्चयेन पटिसरणं भविस्सती ति, यं तुम्हे एतरहि पटिपादे-

---

बाद तुम्हारी धर्म की गुत्थियों को सुलझाने में समर्थ होगा; जिसका कि आप उस समय अनुसरण कर रहे हो ?"

"नहीं, ब्राह्मण ! भगवान् ने ऐसा कोई भिक्षु अपने स्थानापन्न रूप में नियुक्त नहीं किया, जिसका अनुसरण करने की हमें आज्ञा दी हो।"

"आयुष्मन् आनन्द ! भगवान् ने नियुक्त न किया तो न सही, परन्तु आप के सङ्घ ने तो उनके बाद उनके प्रतिनिधि रूप में किसी भिक्षु को नियत कर ही लिया होगा जो उनके बाद आप के धर्मनिर्णयों में सहायक होने में समर्थ हो !"

"नहीं, ब्राह्मण ! सङ्घ ने भी कोई भिक्षु''' जो हमारे द्वारा लिये जाने वाले धर्मनिर्णयों में सहायक होने में समर्थ हो।"

"भो आनन्द ! फिर इस प्रकार किसी समर्थ सहायक के न होने पर भी सङ्घ में पूर्ववत् एकता (समग्र रहने) की भावना का क्या रहस्य है ?"

"ब्राह्मण ! हम (भगवान् के बाद भी) असहाय (अप्रतिशरण) नहीं हैं; अपितु सप्रतिशरण (सुरक्षित) हैं ! वह भगवदुपदिष्ट धर्म (शिक्षापद) ही हमारा शरणस्थल है।"

"भो आनन्द ! 'क्या किसी एक भिक्षु को भी भगवान् ने अपने स्थान

य्याथा' ति—इति पुट्ठो समानो 'नत्थि खो, ब्राह्मण, एकभिक्खु पि तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन ठपितो--अयं वो ममच्चयेन पटिसरणं भविस्सती ति, यं मयं एतरहि पटिपादेय्यामा' ति वदेसि; 'अत्थि पन, भो आनन्द, एकभिक्खु पि सङ्घेन सम्मतो, सम्बहुलेहि थेरेहि भिक्खूहि ठपितो--अयं नो भगवतो अच्चयेन पटिसरणं भविस्सती ति, यं तुम्हे एतरहि पटिपादेय्याथा' ति--इति पुट्ठो समानो 'नत्थि खो, [R. 10] ब्राह्मण, एकभिक्खु पि सङ्घेन सम्मतो, सम्बहुलेहि थेरेहि भिक्खूहि ठपितो--अयं नो भगवतो अच्चयेन पटिसरणं भविस्सती ति, यं मयं एतरहि पटिपादेय्यामा' ति--वदेसि; 'एवं अप्पटिसरणे च पन, भो आनन्द, को हेतु सामग्गिया' ति इति पुट्ठो समानो 'न खो मयं, ब्राह्मण, अप्पटिसरणा; सप्पटिसरणा मयं, ब्राह्मण; धम्मप्पटिसरणा' ति वदेसि। इमस्स पन, भो आनन्द, भासितस्स कथं अत्थो दट्ठब्बो" ति ?

३. 'अत्थि खो, ब्राह्मण, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन भिक्खूनं सिक्खापदं पञ्ञत्तं, पातिमोक्खं उद्दिट्ठं। ते मयं तदहु- [N· 71] पोसथे यावतिका एकं गामखेत्तं उपनिस्साय विहराम ते सब्बे [B. 61] एकज्झं सन्निपताम; सन्निपतित्वा यस्स तं पवत्तति तं अज्झेसाम। तस्मि चे भञ्ञमाने होति भिक्खुस्स आपत्ति होति वीतिक्कमो तं मयं यथाधम्मं यथानुसिट्ठं कारेमा ति। न किर नो भवन्तो कारेन्ति; धम्मो नो कारेति"।

पर··· ?" ऐसा पूछे जाने पर आप कहते हैं—नहीं···'। 'क्या सङ्घ ने किसी एक भिक्षु को···?' ऐसा पूछे जाने पर भी आप का उत्तर है—'नहीं···।' 'फिर भी कोई समर्थ सहायक न होने पर भी सङ्घ में एकता कैसे बनी हुई है ?'—यह पूछने पर भी आप कहते हैं—'हम असहाय नहीं हैं···धर्म ही हमारा शरणस्थल है।' भो आनन्द ! आप के इस कथन का हम क्या अर्थ समझें ?"

३. भो ब्राह्मण ! उन सर्वज्ञ सर्वद्रष्टा ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध ने शिक्षापदों की देशना की है, प्रातिमोक्षपारायण रहने का उपदेश किया है। अतः प्रत्येक उपोसथ (अमावास्या व पूर्णिमा) के दिन, हम जितने भी भिक्षु एक ग्रामसीमा में साधना हेतु ठहरे हुए होते हैं वे सब, एक स्थान पर एकत्र होते हैं। एकत्र होकर उस का पारायण (अध्ययन) करते हैं। उसका पारायण करते समय, यदि किसी भिक्षु को (इसी पन्द्रह दिन की अवधि के बीच हुआ) कोई स्वकृत प्रमाद (व्यतिक्रम) या आपत्ति ज्ञात हो, उसका हम सब मिलकर धर्मानुसार तथा शिक्षापदों में कथित

"अत्थि नु खो, भो आनन्द, एकभिक्खु पि यं तुम्हे एतरहि सक्करोथ गरुं करोथ मानेथ पूजेथ; सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरथा" ति ?

"नत्थि खो, ब्राह्मण, एकभिक्खु पि यं मयं एतरहि सक्करोम गरुं करोम मानेम पूजेम; सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरामा" ति।

"'अत्थि नु खो, भो आनन्द, एकभिक्खु पि तेन भोता गोतमेन ठपितो —अयं वो ममच्चयेन पटिसरणं भविस्सती ति, यं तुम्हे एतरहि पटिपादेय्याथा' ति—इति पुट्ठो समानो 'नत्थि खो, ब्राह्मण, एकभिक्खु पि तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन ठपितो—अयं वो ममच्चयेन पटिसरणं भविस्सती ति, यं मयं एतरहि पटिपादेय्यामा' ति वदेसि; 'अत्थि पन, भो आनन्द, एकभिक्खु पि सङ्घेन सम्मतो, सम्बहुलेहि थेरेहि भिक्खूहि ठपितो—अयं नो भगवतो अच्चयेन पटिसरणं भविस्सती ति यं तुम्हे एतरहि पटिपादेय्याथा' ति—इति पुट्ठो समानो 'नत्थि खो, ब्राह्मण, एकभिक्खु पि सङ्घेन सम्मतो, सम्बहुलेहि थेरेहि [R. 11] भिक्खूहि ठपितो—अयं नो भगवतो अच्चयेन पटिसरणं भविस्सती ति, यं मयं एतरहि पटिपादेय्यामा' ति वदेसि; 'अत्थि नु खो, भो आनन्द, एकभिक्खु पि यं तुम्हे एतरहि सक्करोथ गरुं करोथ मानेथ पूजेथ; सक्कत्वा कत्वा उपनिस्साय विहरथा' ति—इति पुट्ठो समानो 'नत्थि खो, ब्राह्मण, एकभिक्खु पि यं मयं एतरहि सक्करोम गरुं करोम मानेम पूजेम; सक्कत्वा

अनुशासन के अनुरूप निर्णीत प्रायश्चित्त करा लेते हैं। यह सब (उस भिक्षु से) हम नहीं, धर्म कराता है।"

"भो आनन्द ! है कोई एक भी भिक्षु, जिसे आप लोग आज सङ्घ में प्रथम भिक्षु के रूप में सत्कार, गौरव, मान या पूजा का स्थान देते हो, जिसके अनुशासन से आपकी साधना में सुविधा होती हो ?"

"नहीं भिक्षु ! नहीं है कोई ऐसा एक भी भिक्षु जिसे हम सङ्घ में प्रथम भिक्षु के रूप में...सुविधा होती है।"

'भो आनन्द ! है कोई आपके सङ्घ में ऐसा भिक्षु जिसे पूज्य गौतम ने प्रथम भिक्षु के रूप में प्रतिष्ठापित किया हो...'—ऐसा पूछे जाने पर भी आप कहते हैं—'नहीं है कोई...'।

'भो आनन्द ! है कोई ऐसा भिक्षु जिसे सङ्घ ने स्वयं ही प्रथम भिक्षु के रूप में...?'—ऐसा पूछे जाने पर भी आप कहते हैं—'नहीं...'। 'भो आनन्द ! है कोई ऐसा एक भी भिक्षु जिसे आप लोगों ने व्यक्तिगत रूप से प्रथम भिक्षु के रूप में

गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरामा' ति वदेसि। इमस्स पन, भो आनन्द, भासितस्स कथं अत्थो दट्ठब्बो" ति ?

३. दस पसादनीया धम्मा

[N. 72] ४. "अत्थि खो, ब्राह्मण, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन दस पसादनीया धम्मा अक्खाता। यस्मिं नो इमे धम्मा संविज्जन्ति तं मयं एतरहि सक्करोम गरुं करोम मानेम पूजेम; सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहराम। कतमे दस ?

[B. 62] (१) "इध, ब्राह्मण, भिक्खु सीलवा होति, पातिमोक्ख-संवरसंवुतो विहरति आचारगोचरसम्पन्नो, अणुमत्तेसु वज्जेसु भयदस्सावी, समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु।

(२) "बहुस्सुतो होति सुतधरो सुतसन्निचयो। ये ते धम्मा आदि-कल्याणा, मज्झेकल्याणा, परियोसानकल्याणा, सात्था, सब्यञ्जना, केवल-परिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं अभिवदन्ति तथारूपास्स धम्मा बहुस्सुता होन्ति धता वचसा परिचिता मनसानुपेक्खिता दिट्ठिया सुप्पटिविद्धा।

मान्यता दे रखी हो...?' ऐसा पूछे जाने पर भी आप कहते हैं--'नहीं...'। भो आनन्द ! आपके कथन का क्या तात्पर्य समझा जाय ?"

३. दस प्रसादनीय धर्म

४. "भो ब्राह्मण ! (वास्तविकता यह है कि) उन भगवान् सर्वज्ञ सर्वद्रष्टा अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध ने दस प्रसादनीय (श्रद्धोत्पादक) धर्मों की देशना की है। जिस भिक्षु में भी ये दस धर्म विद्यमान हैं उसका हम सत्कार, गौरव, मान, पूजा करते हैं, और ऐसा करते हुए उसका सहारा लेकर हम अपनी साधना में तत्पर रहते हैं। कौन से दस ?

(१) "यहाँ, ब्राह्मण ! कोई भिक्षु शीलवान् हो, भिक्षु-नियमों (प्रातिमोक्ष) से संयत हो, आचार-गोचर से सम्पन्न हो, छोटे से छोटे दुर्गुणों से भी भय खाता हो, शिक्षापदों को सविधि ग्रहण कर उनके पालन में तत्पर हो।

(२) जो भिक्षु बहुश्रुत, गुरुमुख से सुने हुए को याद रखने वाला, अतएव श्रुतसञ्चयी होता है। जो धर्म आदिकल्याणमय, मध्य में कल्याणमय, व पर्यवसान में भी कल्याणमय हैं, सार्थक हैं, शुद्धपद हैं, जो केवल परिपूर्ण परिशुद्ध साधना की प्रशंसा करते हैं, ऐसे धर्मोपदेश जिसने बहुत से सुने हैं, धारण किये है, वचन से परीक्षित, मन से समीक्षित और दृष्टि (चित्त) से सुविदित किये हुए हैं।

(३) "सन्तुट्ठो होति चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्ज-परिक्खारेहि।

(४) "चतुन्नं झानानं आभिचेतसिकानं दिट्ठधम्मसुखविहारानं निकाम-लाभी होति अकिच्छलाभी अकसिरलाभी।

(५) "अनेकविहितं इद्धिविधं पच्चनुभोति—एको पि हुत्वा बहुधा होति, बहुधा पि हुत्वा एको होति; आविभावं तिरोभावं; तिरोकुट्टं तिरो-पाकारं तिरोपब्बतं असज्जमानो गच्छति, सेय्यथापि आकासे; पठविया पि उम्मुज्जनिमुज्जं करोति, सेय्यथापि उदके; उदके पि अभिज्जमाने गच्छति, सेय्यथापि पठवियं; आकासे पि पल्लङ्केन कमति, सेय्यथापि पक्खी सकुणो; इमे पि चन्दिमसुरिये एवंमहिद्धिके एवंमहानु- [R. 12] भावे पाणिना परिमसति परिमज्जति, याव ब्रह्मलोका पि कायेन वसं वत्तेति।

(६) "दिब्बाय सोतधातुया विसुद्धाय अतिक्कन्तमानु- [N. 73] सिकाय उभो सद्दे सुणाति—दिब्बे च मानुसे च, ये दूरे सन्तिके च।

(७) "परसत्तानं परपुग्गलानं चेतसा चेतो परिच्च पजानाति। सरागं वा चित्तं 'सरागं चित्तं' ति पजानाति, वीतरागं वा चित्तं 'वीतरागं चित्तं' ति पजानाति, सदोसं वा चित्तं 'सदोसं चित्तं' ति पजानाति, वीतदोसं

---

(३) "जो भिक्षु थोड़े से ही वस्त्र-भोजन-शयनासन और रोगी को देय पथ्य औषध से सन्तुष्ट रहने वाला होता है।

(४) "जो चित्तसम्बन्धी (आभिचेतसिक) एवं इसी शरीर में सुखपूर्वक साधना में उपयोगी चारों ध्यानों का पूर्णतया लाभी व बिना कठिनाई के प्राप्त करने वाला होता है।

(५) "जो नाना प्रकार की ऋद्धि-सिद्धियों को अनुभव करता है—एक होकर"' पूर्ववत्[1] "' अनेक हो जाता है, आविर्भाव"' इसी काया से ब्रह्मलोकपर्यन्त सबको वश में करने वाला होता है।

(६) "जो मनुष्यातीत (अमानुष) विशुद्ध दिव्य श्रोत्रेन्द्रिय से उभयविध शब्दों को सुनता है; जैसे—दिव्य शब्द भी, मानव शब्द भी, दूर के भी, और समीप के भी।

(७) "जो दूसरे सत्त्वों (प्राणियों), दूसरे पुरुषों के चित्त को अपने चित्त

---

१. द्र०—पीछे पृ० १२५।

वा चित्तं 'वीतदोसं चित्तं' ति पजानाति, समोहं वा चित्तं 'समोहं चित्तं' ति पजानाति, वीतमोहं वा चित्तं 'वीतमोहं चित्तं' ति पजानाति, सङ्खित्तं वा चित्तं 'सङ्खित्तं चित्तं' ति पजानाति, विक्खित्तं वा चित्तं 'विक्खित्तं चित्तं' ति पजानाति, महग्गतं वा चित्तं 'महग्गतं चित्तं' ति पजानाति, [B. 63] अमहग्गतं वा चित्तं 'अमहग्गतं चित्तं' ति पजानाति, सउत्तरं वा चित्तं 'सउत्तरं चित्तं' ति पजानाति, अनुत्तरं वा चित्तं 'अनुत्तरं चित्तं' ति पजानाति, समाहितं वा चित्तं 'समाहितं चित्तं' ति पजानाति, असमाहितं वा चित्तं 'असमाहितं चित्तं' ति पजानाति, विमुत्तं वा चित्तं 'विमुत्तं चित्तं' ति पजानाति, अविमुत्तं वा चित्तं, 'अविमुत्तं चित्तं' ति पजानाति।

(८) "अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति, सेय्यथीदं—एकं पि जातिं द्वे पि जातियो तिस्सो पि जातियो चतस्सो पि जातियो पञ्च पि जातियो ...दस पि जातियो वीसं पि जातियो तिंसं पि जातियो चत्तारीसं पि जातियो पञ्ञासं पि जातियो जातिसतं पि जातिसहस्सं पि जातिसतसहस्सं पि अनेके पि संवट्टकप्पे अनेके पि विवट्टकप्पे अनेके पि संवट्टविवट्टकप्पे—'अमुत्रासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुखदुक्खप्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो अमुत्र उदपादिं; तत्रापासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुखदुक्खप्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो इधूपपन्नो' ति। इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति।

(९) "दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सति चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे, सुगते दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानाति।

[N. 74] (१०) "आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति।

से देख-जान लेता है...पूर्ववत्[1]...किसी के अविमुक्त चित्त होने पर 'यह अविमुक्त चित्त है'—ऐसा जान लेता है।

(८) "जो अपने-अपने पूर्वनिवासों (पूर्व जन्मों) को जानता है; जैसे एक जन्म को भी...पूर्ववत्...अनेक जन्मों को स्मरण करता रहता है।

(९) "जो मानवातीत विशुद्ध दिव्य दृष्टि से अच्छे-बुरे, सुवर्ण-दुर्वर्ण...पूर्ववत्...प्राणियों को पहचानता है।

(१०) "जो (भिक्षु) आश्रवक्षय से जो चित्त की विमुक्ति प्राप्त होती है,

---

१. द्र०—पीछे पृ० १२५ भयभेरवसुत्त १/४।

"इमे खो, ब्राह्मण, तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन दस पसादनीया धम्मा अक्खाता। यस्मि नो इमे धम्मा संविज्जन्ति तं मयं एतरहि सक्करोम गरुं करोम मानेम पूजेम; सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरामा" ति।

४. तथागतवण्णितं झानं

५. एवं वुत्ते वस्सकारो ब्राह्मणो मगधमहामत्तो उपनन्दं [R. 13] सेनापतिं आमन्तेसि—"तं किं मञ्ञति भवं सेनापति यदिमे भोन्तो सक्कातब्बं सक्करोन्ति, गरुं कातब्बं गरुं करोन्ति, मानेतब्बं मानेन्ति, [B. 64] पूजेतब्बं पूजेन्ति" ?

"तग्घिमे भोन्तो सक्कातब्बं सक्करोन्ति, गरुं कातब्बं गरुं करोन्ति, मानेतब्बं मानेन्ति, पूजेतब्बं पूजेन्ति। इमं च हि ते भोन्तो न सक्करेय्युं न गरुं करेय्युं न मानेय्युं न पूजेय्युं; अथ किं चरहि ते भोन्तो सक्करेय्युं गरुं करेय्युं मानेय्युं पूजेय्युं, सक्कत्वा गरुं कत्वा मानेत्वा पूजेत्वा उपनिस्साय विहरेय्युं" ति।

प्रज्ञा द्वारा चित्त की विमुक्ति प्राप्त होती है, उसे इसी जन्म में स्वयं जान कर, उसका साक्षात्कार कर, उसे प्राप्त कर, साधना करता है।

"ब्राह्मण! ये विनय के प्रति श्रद्धोत्पादक दस धर्म उन सर्वज्ञ सर्वद्रष्टा अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध ने बताये हैं। यों इन दस धर्मों को जो अपने में संजोये हैं, उसी का हम इस समय सत्कार, मान, गौरव व पूजा करते हुए उसके सहारे अपनी साधना में आगे बढ़ते हैं।"

४. तथागतोपदिष्ट ध्यान

५. (आयुष्मान् आनन्द द्वारा) ऐसा कहे जाने पर, मगध महामात्य वर्षकार ब्राह्मण ने उपनन्द सेनापति से पूछा—

"तो आप क्या मानते हैं, सेनापति! ये पूज्य भिक्षु सत्कारयोग्य का ही सत्कार करते हैं? गौरव पाने योग्य को ही गौरव देते हैं, मान पाने योग्य का ही सम्मान करते हैं, या वस्तुतः पूजनीय की ही पूजा करते हैं?"

"अवश्य, महाशय! ये पूज्य भिक्षु...पूजा करते हैं। यदि ये उनका सत्कार, गौरव, मान व पूजा न करें तो अन्य किस का सत्कार...पूजा कर सुखपूर्वक साधना में लगे रह सकते हैं!"

अथ खो वस्सकारो ब्राह्मणो मगधमहामत्तो आयस्मन्तं आनन्दं एतद-वोच—"कहं पन भवं आनन्दो एतरहि विहरती" ति ?

"वेळुवने खोहं, ब्राह्मण, एतरहि विहरामी" ति ।

"कच्चि पन, भो आनन्द, वेळुवनं रमणीयं चेव अप्पसद्दं च अप्पनिग्घोसं च विजनवातं मनुस्सराहस्सेय्यकं पटिसल्लानसारुप्पं" ति ?

"तग्घ, ब्राह्मण, वेळुवनं रमणीयं चेव अप्पसद्दं च अप्पनिग्घोसं च विज-नवातं मनुस्सराहस्सेय्यकं पटिसल्लानसारुप्पं, यथा तं तुम्हादिसेहि रक्खकेहि गोपकेही" ति ।

"तग्घ, भो आनन्द, वेळुवनं रमणीयं चेव अप्पसद्दं च अप्पनिग्घोसं च विजनवातं मनुस्सराहस्सेय्यकं पटिसल्लानसारुप्पं, यथा तं भवन्तेहि झायीहि झानसीलीहि । झायिनो चेव भवन्तो झानसीलिनो च । एकमिदाहं, भो [N. 75] आनन्द, समयं सो भवं गोतमो वेसालियं विहरति महावने कूटागारसालायं । अथ ख्वाहं, भो आनन्द, येन महावनं कूटागारसाला येन सो भवं गोतमो तेनुपसङ्कमिं । तत्र च पन सो भवं गोतमो अनेकपरियायेन झानकथं कथेसि । झायी चेव सो भवं गोतमो अहोसि झानसीली च । सब्बं च पन सो भवं गोतमो झानं वण्णेसी" ति ।

तब मगधमहामात्य वर्षकार ब्राह्मण ने आयुष्मान् आनन्द से पूछा—"आप इस समय साधनाहेतु कहाँ विराजमान हैं ?"

"ब्राह्मण ! मैं तो इस समय वेणुवन में ठहरा हुआ हूँ ।"

"तो क्या, भो आनन्द ! यह वेणुवन मनोरम, लोगों की कम बात-चीत वाला, कम शोर-गुल वाला, आदमियों की भीड़भाड़ से दूर, साधारण मानवों के लिये एकान्त (न जाने योग्य) व ध्यानसाधना में सहायक तो है ?"

"हाँ, ब्राह्मण ! वेणुवन मनोरम···ध्यानसाधना में अत्यन्त सहायक है । फिर आप जैसे संरक्षकों के रहते भिक्षु को क्या परेशानी हो सकती है !"

"अच्छा तो, भो आनन्द ! वेणुवन वस्तुतः ध्यान-साधना के अनुकूल ही है··· तभी तो आप जैसे एकान्तसेवी एवं ध्यानयोग में तत्पर वहाँ रहते हैं । भो आनन्द ! एक समय पूज्य श्रमण गौतम वैशालीस्थित महावन की कूटागारशाला में साधनाहेतु विराजमान थे । तब, भो आनन्द ! मैं महावन की उस कूटागारशाला में गया था, जहाँ पूज्य गौतम विराजमान थे । वहाँ पूज्य गौतम अनेक प्रकार के ध्यान की बातें

६. "न च खो, ब्राह्मण, सो भगवा सब्बं झानं वण्णेसि, न पि सो भगवा सब्बं झानं न वण्णेसी ति। कथंरूपं च, ब्राह्मण, सो भगवा [R. 14] झानं न वण्णेसि? इध, ब्राह्मण, एकच्चो कामरागपरियुट्ठितेन चेतसा विहरति कामरागपरेतेन, उप्पन्नस्स च कामरागस्स निस्सरणं यथाभूतं नप्पजानाति; सो कामरागं येव अन्तरं करित्वा झायति पज्झायति निज्झायति अपज्झायति। ब्यापादपरियुट्ठितेन चेतसा विहरति ब्यापादपरेतेन, उप्पन्नस्स च ब्यापादस्स निस्सरणं यथाभूतं नप्पजानाति; सो ब्यापादं येव अन्तरं करित्वा झायति पज्झायति निज्झायति अपज्झायति। थीनमिद्धपरियुट्ठितेन चेतसा विहरति थीनमिद्धपरेतेन, उप्पन्नस्स च [B. 65] थीनमिद्धस्स निस्सरणं यथाभूतं नप्पजानाति; सो थीनमिद्धं येव अन्तरं करित्वा झायति पज्झायति निज्झायति अपज्झायति। उद्धच्चकुक्कुच्चपरियुट्ठितेन चेतसा विहरति उद्धच्चकुक्कुच्चपरेतेन, उप्पन्नस्स च उद्धच्चकुक्कुच्चस्स निस्सरणं यथाभूतं नप्पजानाति; सो उद्धच्चकुक्कुच्चं येव अन्तरं करित्वा झायति पज्झायति निज्झायति अपज्झायति। विचिकिच्छापरियुट्ठितेन चेतसा विहरति विचिकिच्छापरेतेन, उप्पन्नाय च विचिकिच्छाय निस्सरणं यथाभूतं नप्पजानाति; सो विचिकिच्छं येव अन्तरं करित्वा झायति पज्झायति निज्झायति अपज्झायति। एवरूपं खो, ब्राह्मण, सो भगवा झानं न वण्णेसि।

"कथंरूपं च, ब्राह्मण, सो भगवा झानं वण्णेसि? इध, ब्राह्मण, भिक्खु

कर रहे थे। क्योंकि वे पूज्य गौतम स्वयं ध्यानयोग की पराकाष्ठा तक पहुँचे हुए थे; अतः सब प्रकार से ध्यान की प्रशंसा कर रहे थे।"

६. "नहीं, ब्राह्मण! ऐसी बात नहीं है, न तो भगवान् एकान्ततः सब प्रकार के ध्यानों की प्रशंसा ही करते थे, न वे किसी भी ध्यान की प्रशंसा ही न करें—यह भी नहीं था। ब्राह्मण! कैसे ध्यान की भगवान् प्रशंसा नहीं करते थे? ब्राह्मण! यहाँ कोई पाषण्डी साधक कामरागसम्प्रयुक्त (व्युस्थित) चित्त से साधना करता है, वह उस उत्पन्न कामराग के निःसरण (उत्पत्ति-कारण) को नहीं जानता, यों वह उस कामराग को मन में सँजोये ही सँजोये ध्यान, प्रध्यान, निध्यान या अपध्यान करता रहता है। व्यापादसम्प्रयुक्त चित्त से…स्त्यानमृद्धसम्प्रयुक्त चित्त से… औद्धत्यकौकृत्यसम्प्रयुक्त चित्त से…विचिकित्सासम्प्रयुक्त चित्त से…अपध्यान करता रहता है। भगवान् ने ऐसे ध्यानाभ्यास का कभी प्रशंसामय वर्णन नहीं किया।

"और ब्राह्मण! भगवान् ने कैसे ध्यानाभ्यास का प्रशंसामय वर्णन किया है?

विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति। वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं सम्पसादनं चेतसो एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं समाधिजं पीतिसुखं दुतियं झानं…ततियं झानं…चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज [N. 76] विहरति। एवरूपं खो, ब्राह्मण, सो भगवा झानं वण्णेसी" ति।

"गारय्हं किर, भो आनन्द, सो भवं गोतमो झानं गरहि, पासंसं पसंसि। हन्द, च दानि मयं, भो आनन्द, गच्छाम; बहुकिच्चा मयं बहुकरणीया" ति।

"यस्सदानि त्वं, ब्राह्मण, कालं मञ्ञसी" ति।

[R. 15] अथ खो वस्सकारो ब्राह्मणो मगधमहामत्तो आयस्मतो आनन्दस्स भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा उट्ठायासना पक्कामि।

अथ खो गोपकमोग्गल्लानो ब्राह्मणो अचिरपक्कन्ते वस्सकारे ब्राह्मणे मगधमहामत्ते आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच—"यं नो मयं भवन्तं आनन्दं अपुच्छिम्हा तं नो भवं आनन्दो न व्याकासी" ति।

ब्राह्मण ! यहाँ कोई साधक भिक्षु कामभोगों एवं अकुशल धर्मों से दूर रहकर वितर्क एवं विचार सहित प्रीति-सुखमय प्रथम ध्यान तक पहुँच कर साधना करता है। (तदनन्तर) शनैः शनैः उन वितर्क विचारों के शान्त होने पर, वितर्क-विचाररहित समाधिजन्य प्रीति-सुखमय द्वितीय ध्यान…तृतीय ध्यान…चतुर्थ ध्यान तक पहुँचकर साधना करता है। ऐसे ध्यान का, ब्राह्मण, भगवान् ने प्रशंसामय वर्णन किया है।"

"भो आनन्द ! (मैं अब समझ गया,) पूज्य गौतम निन्दायोग्य ध्यान की निन्दा करते थे, और प्रशंसायोग्य ध्यान की प्रशंसा करते थे। हाँ तो, भो आनन्द ! अब हम चलेंगे; क्योंकि हमें और भी बहुत से कर्तव्य कर्म करने हैं।"

"ब्राह्मण ! जैसा तुम अवसर समझते हो वैसा करो !"

तब वह मगध-महामात्य वर्षकार ब्राह्मण आयुष्मान् आनन्द के कथन का अभिनन्दन-अनुमोदन कर आसन से उठकर चला गया। तब, जब कि मगध-महामात्य वर्षकार ब्राह्मण को गये कुछ ही समय हुआ था, गोपक मोग्गल्लान ब्राह्मण आयुष्मान् आनन्द से फिर पूछने लगा—"भो आनन्द ! हमने आपसे जो प्रश्न किया था, उसका (सन्तोषप्रद) उत्तर अभी तक हमें नहीं मिला ?"

"ननु ते, ब्राह्मण, अवोचुम्हा--'नत्थि खो, ब्राह्मण; एकभिक्खु पि तेहि धम्मेहि सब्बेन सब्बं सब्बथा सब्बं समन्नागतो येहि धम्मेहि समन्नागतो सो भगवा अहोसि अरहं सम्मासम्बुद्धो। सो हि, ब्राह्मण, भगवा अनुप्पन्नस्स मग्गस्स उप्पादेता, असञ्जातस्स मग्गस्स सञ्जनेता, अनक्खातस्स मग्गस्स अक्खाता, मग्गञ्ञू, मग्गविदू, मग्गकोविदो। मग्गानुगा च पन एतरहि सावका विहरन्ति पच्छा समन्नागता" ति। [B. 66]

"ब्राह्मण ! हमने तुमको बता तो दिया—'ब्राह्मण ! नहीं है कोई एक भी भिक्षु··· पूर्ववत्'··· उनका अनुसरण करते हैं, उनके बताये मार्ग पर चलने वाले हैं।"

गोपकमोग्गल्लानसुत्त समाप्त ॥

९. महापुण्णमसुत्तं

१. पञ्चुपादानक्खन्धा

[N. 77] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति पुब्बारामे मिगारमातुपासादे। तेन खो पन समयेन भगवा तदहुपोसथे पन्नरसे पुण्णाय पुण्णमाय रत्तिया भिक्खुसङ्घपरिवुत्तो अब्भोकासे निसिन्नो होति। अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु उट्ठायासना एकंसं चीवरं कत्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा भगवन्तं एतदवोच—

"पुच्छेय्याहं, भन्ते, भगवन्तं किञ्चिदेव देसं, सचे मे भगवा ओकासं करोति पञ्हस्स वेय्याकरणाया" ति।

"तेन हि त्वं, भिक्खु, सके आसने निसीदित्वा पुच्छ यदाकङ्खसी" ति।

अथ खो सो भिक्खु सके आसने निसीदित्वा भगवन्तं एतदवोच—

[R. 16] "इमे नु खो, भन्ते, पञ्चुपादानक्खन्धा, सेय्यथीदं—रूपुपादानक्खन्धो, वेदनुपादानक्खन्धो, सञ्ञुपादानक्खन्धो, सङ्खारुपादानक्खन्धो, विञ्ञाणुपादानक्खन्धो" ति ?

"इमे खो, भिक्खु, पञ्चुपादानक्खन्धा, सेय्यथीदं—रूपुपादानक्खन्धो,

---

९. महापूर्णिमसूत्र

१. पाँच उपादानस्कन्ध

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् बुद्ध श्रावस्तीस्थित पूर्वाराम के मृगारमातृप्रासाद में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय भगवान् उस दिन के उपवसथ की पूर्णिमा की रात्रि में भिक्षुसङ्घ से परिवृत हुए खुले स्थान (अभ्यवकाश) में बैठे हुए थे। तब एक भिक्षु ने आसन से उठ, उत्तरासङ्ग को एक कन्धे पर कर, भगवान् की तरफ करबद्ध हो, उनसे यों सविनय निवेदन प्रारम्भ किया—"भन्ते! भगवान् से मैं कुछ प्रश्न करूँ, यदि भगवान् की ओर से मुझे ऐसा करने की आज्ञा हो।"

"तो, भिक्षु, जो तुम पूछना चाहते हो, उसे अपने आसन पर बैठ कर पूछो।"

तब वह भिक्षु अपने आसन पर बैठ, भगवान् से (पुनः) यह प्रश्न करने लगा—"भन्ते! क्या ये ही पाँच उपादानस्कन्ध हैं; जैसे—१. रूपोपादानस्कन्ध, २. वेदनोपादानस्कन्ध, ३. संज्ञोपादानस्कन्ध, ४. संस्कारोपादानस्कन्ध, एवं ५. विज्ञानोपादानस्कन्ध ?"

"हाँ, भिक्षु ये ही पाँच, उपादानस्कन्ध हैं, जैसे—१. रूपोपादानस्कन्ध··· ५. विज्ञानोपादानस्कन्ध।"

वेदनुपादानक्खन्धो, सञ्ञुपादानक्खन्धो, सङ्खारुपादानक्खन्धो, विञ्ञाणु-पादानक्खन्धो" ति।

"साधु, भन्ते" ति खो सो भिक्खु भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा भगवन्तं उत्तरिं पञ्हं पुच्छि—"इमे पन, भन्ते, पञ्चुपादान-क्खन्धा किंमूलका" ति ?

"इमे खो, भिक्खु, पञ्चुपादानक्खन्धा छन्दमूलका" ति।

"तं येव नु खो, भन्ते, उपादानं ते पञ्चुपादानक्खन्धा, उदाहु अञ्ञत्र पञ्चहुपादानक्खन्धेहि उपादानं" ति ?

"न खो, भिक्खु, तं येव उपादानं ते पञ्चुपादानक्खन्धा, [N. 78] नापि अञ्ञत्र पञ्चहुपादानक्खन्धेहि उपादानं। यो खो, भिक्खु, पञ्चसु उपादानक्खन्धेसु छन्दरागो तं तत्थ उपादानं" ति।

"सिया पन, भन्ते, पञ्चसु उपादानक्खन्धेसु छन्दरागवेमत्तता" ति ?

"सिया भिक्खू", ति भगवा अवोच "इध, भिक्खु, एकच्चस्स एवं होति—'एवंरूपो सियं अनागतमद्धानं, एवंवेदनो सियं अना- [B. 67] गतमद्धानं, एवंवेदनो सियं अनागतमद्धानं, एवंसञ्ञो सियं अनागतमद्धानं,

---

भिक्षु ने "ठीक है, भन्ते !" कह कर भगवान् के भाषण का अभिनन्द-अनु-मोदन कर भगवान् से पुनः आगे प्रश्न किया--"भन्ते ! इन पाँच उपादानस्कन्धों (की उत्पत्ति) का मूल (कारण) क्या है ?"

"भिक्षु ! इन पाँच उपादानस्कन्धों का मूल कारण (जिस कारण ये उत्पन्न होना शुरू होते हैं) है—छन्द (राग)।"

"क्या, भन्ते ! जो 'उपादान' वही पाँच 'उपदानस्कन्ध' हैं, या पाँच उपा-दानस्कन्धों से 'उपादान' पृथक् है ?"

"भिक्षु ! उपादान व पञ्च उपादानस्कन्ध—दोनों एक ही नहीं है, ओर पञ्च उपादानस्कन्ध से उपादान कोई अलग है—ऐसा भी नहीं है। भिक्षु ! यह जो पाँच उपादानस्कन्धों में पुद्गल का छन्दराग है यही वहाँ 'उपादान' है।

"क्या, भन्ते ! इन पाँच उपादान-स्कन्धों में इस छन्दराग का वैमत्य (भिन्न मत होना) भी हो सकता है ?"

भगवान् बोले—"हाँ, भिक्षु ! यह वैमत्य हो सकता है। जैसे यहाँ किसी पुरुष को ऐसा होता है—'भविष्यत्काल में मैं ऐसे रूप वाला होऊँ' '...ऐसी वेदना वाला होऊँ', '...ऐसी संज्ञा वाला होऊँ', '...ऐसे संस्कार वाला होऊँ', '...ऐसे

एवंसङ्खारो सियं अनागतमद्धानं, एवंविञ्ञाणो सियं अनागतमद्धानं' ति। एवं खो, भिक्खु, सिया पञ्चसु उपादानक्खन्धेसु छन्दरागवेमत्तता" ति।

"कित्तावता पन, भन्ते, खन्धानं खन्धाधिवचनं होती" ति ?

"यं किञ्चि, भिक्खु, रूपं—अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळारिकं वा सुखुमं वा, हीनं वा पणीतं वा, यं दूरे सन्तिके वा---अयं [R. 17] रूपक्खन्धो। या काचि वेदना—अतीतानागतपच्चुप्पन्ना अज्झत्तं वा बहिद्धा वा, ओळारिका वा सुखुमा वा, हीना वा पणीता वा, या दूरे सन्तिके वा—अयं वेदनाक्खन्धो। या काचि सञ्ञा—अतीतानागत-पच्चुप्पन्ना···पे०···या दूरे सन्तिके वा—अयं सञ्ञाक्खन्धो। ये केचि सङ्खारा—अतीतानागतपच्चुप्पन्ना अज्झत्तं वा बहिद्धा वा, ओळारिका वा सुखुमा वा, हीना वा पणीता वा, ये दूरे सन्तिके वा—अयं सङ्खारक्खन्धो। यं किञ्चि विञ्ञाणं—अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळा-रिकं वा सुखुमं वा, हीनं वा पणीतं वा, यं दूरे सन्तिके वा—अयं विञ्ञाण-क्खन्धो। एत्तावता खो; भिक्खु, खन्धानं खन्धाधिवचनं होती" ति।

को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो रूपक्खन्धस्स पञ्ञापनाय ? को हेतु को पच्चयो वेदनाक्खन्धस्स पञ्ञापनाय ? को हेतु को पच्चयो सञ्ञाक्ख-न्धस्स पञ्ञापनाय ? को हेतु को पच्चयो सङ्खारक्खन्धस्स पञ्ञापनाय ? को हेतु को पच्चयो विञ्ञाणक्खन्धस्स पञ्ञापनाया" ति ?

"चत्तारो खो, भिक्खु, महाभूता हेतु, चत्तारो महाभूता पच्चयो रूप-

---

विज्ञान वाला होऊँ'। यों, भिक्षु! उन पाँच उपादानस्कन्धों में छन्दरागवैमत्य हो सकता है।"

"भन्ते! कितने तक का '···स्कन्ध' यह नाम माना जाय ?"

'भिक्षु! जो कुछ भी भूत-भविष्यत्-वर्तमान का, शरीर के अन्दर या बाहर का स्थूल या सूक्ष्म, हीन या उत्तम, दूर या समीप का जो रूप है वह सब 'रूप-स्कन्ध' है। जो कुछ भी···वेदना। जो कुछ भी···संज्ञा···। जो कुछ भी··· संस्कार···। जो कुछ भी···विज्ञान है वह सब विज्ञानस्कन्ध (के अन्तर्गत) है। इस तरह इन स्कन्धों का 'कितने तक का'—यह विभाजन किया जा सकता है।"

"भन्ते! रूपस्कन्ध के प्रज्ञापन (बोधन कराने-बतलाने) में क्या हेतु, क्या प्रत्यय है? वेदनास्कन्ध···संज्ञास्कन्ध···संस्कारस्कन्ध···विज्ञानस्कन्ध के प्रज्ञापन में क्या हेतु क्या प्रत्यय है ?"

भिक्षु! रूप के प्रज्ञापन (बोधन) में चार महाभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु)

क्खन्धस्स पञ्ञापनाय। फस्सो हेतु, फस्सो पच्चयो वेदनाक्खन्धस्स पञ्ञापनाय। फस्सो हेतु, फस्सो पच्चयो सञ्ञाक्खन्धस्स पञ्ञा- [N. 79] पनाय। फस्सो हेतु, फस्सो पच्चयो सङ्खारक्खन्धस्स पञ्ञापनाय। नामरूपं खो, भिक्खु, हेतु, नामरूपं पच्चयो विञ्ञाणक्खन्धस्स पञ्ञापनाया" ति।

२. सक्कायदिट्ठि

२. "कथं पन, भन्ते, सक्कायदिट्ठि होती" ति ?

"इध, भिक्खु, अस्सुतवा पुथुज्जनो अरियानं अदस्सावी अरियधम्मस्स अकोविदो अरियधम्मे अविनीतो सप्पुरिसानं अदस्सावी सप्पु- [B. 68] रिसधम्मस्स अकोविदो सप्पुरिसधम्मे अविनीतो रूपं अत्ततो समनुपस्सति रूपवन्तं वा अत्तानं अत्तनि वा रूपं रूपस्मिं वा अत्तानं; वेदनं अत्ततो समनुपस्सति वेदनावन्तं वा अत्तानं अत्तनि वा वेदनं वेदनाय वा अत्तानं; सञ्ञं अत्ततो समनुपस्सति सञ्ञावन्तं वा अत्तानं अत्तनि वा सञ्ञं सञ्ञाय वा अत्तानं; सङ्खारे अत्ततो समनुपस्सति सङ्खारवन्तं वा अत्तानं अत्तनि वा सङ्खारे सङ्खारेसु वा अत्तानं; विञ्ञाणं अत्ततो समनुपस्सति विञ्ञाणवन्तं वा अत्तानं अत्तनि वा विञ्ञाणं विञ्ञाणस्मिं वा अत्तानं। एवं खो, भिक्खु, सक्कायदिट्ठि होती" ति। [R. 18]

"कथं पन, भन्ते, सक्कायदिट्ठि न होती" ति ?

हेतु हैं; चार महाभूतों के कारण (प्रत्यय) रूपस्कन्ध का प्रज्ञापन होता है। वेदनास्कन्ध के प्रज्ञापन के लिये स्पर्श (इन्द्रियविषय का संयोग) हेतु है। स्पर्श ही संज्ञास्कन्ध एवं संस्कारस्कन्ध के प्रज्ञापन के लिये हेतु है। तथा, भिक्षु! विज्ञानस्कन्ध के प्रज्ञापन के लिये नामरूप हेतु हैं, प्रत्यय है।

२. सत्कायदृष्टि

"भन्ते! यह सत्कायदृष्टि (देह में नित्य आत्मा की धारणा) कैसे होती है?"

"भिक्षु! यहाँ कोई अश्रुतवान् (अज्ञ) पृथग्जन (अनाड़ी) आर्यदर्शन से अनभिज्ञ, आर्य धर्म के विषय में अज्ञ, आर्य धर्म में अशिक्षित···पूर्ववत्[1]···रूप को आत्मा से अभिन्न देखता है, या आत्मा को रूपवान् मानता है, आत्मा में रूप या रूप में आत्मा को मानता है; वेदना को···संज्ञा को···संस्कार को···विज्ञान को··· विज्ञान में आत्मा को मानता है। यों, भिक्षु! वह पुद्गल 'सत्कायदृष्टि' कहलाता है।

"और, भन्ते! कोई पुद्गल सत्कायदृष्टि होता कैसे नहीं है?"

---

१. द्र०—पीछे पृ० १७

"इध, भिक्खु, सुतवा अरियसावको अरियानं दस्सावी अरियधम्मस्स कोविदो अरियधम्मे सुविनीतो सप्पुरिसानं दस्सावी सप्पुरिसधम्मस्स कोविदो सप्पुरिसधम्मे सुविनीतो न रूपं अत्ततो समनुपस्सति न रूपवन्तं वा अत्तानं न अत्तनि वा रूपं न रूपस्मिं वा अत्तानं; न वेदनं अत्ततो समनुपस्सति न वेदनावन्तं वा अत्तानं न अत्तनि वा वेदनं न वेदनाय वा अत्तानं; न सञ्ञं अत्ततो समनुपस्सति न सञ्ञावन्तं वा अत्तानं न अत्तनि वा सञ्ञं न सञ्ञाय वा अत्तानं; न सङ्खारे अत्ततो समनुपस्सति न सङ्खारवन्तं वा अत्तानं न अत्तनि वा सङ्खारे न सङ्खारेसु वा अत्तानं; न विञ्ञाणं अत्ततो समनुपस्सति न विञ्ञाणवन्तं वा अत्तानं न अत्तनि वा विञ्ञाणं न विञ्ञाणस्मिं वा अत्तानं। एवं खो, भिक्खु, सक्कायदिट्ठि न होती" ति।

३. अस्सादआदीनवनिस्सरणानि

[N. 80] ३. "को नु खो, भन्ते, रूपे अस्सादो, को आदीनवो, किं निस्सरणं? को वेदनाय अस्सादो, को आदीनवो, किं निस्सरणं? को सञ्ञाय अस्सादो, को आदीनवो, किं निस्सरणं? को सङ्खारेसु अस्सादो, को आदीनवो, किं निस्सरणं? को विञ्ञाणे अस्सादो को आदीनवो, किं निस्सरणं" ति?

"यं खो, भिक्खु, रूपं पटिच्च उप्पज्जति सुखं सोमनस्सं, अयं रूपे अस्सादो। यं रूपं अनिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, अयं रूपे आदीनवो। यो रूपे छन्दरागविनयो छन्दरागप्पहानं, इदं रूपे निस्सरणं। यं खो, [B. 69] भिक्खु, वेदनं पटिच्च... सञ्ञं पटिच्च... सङ्खारे पटिच्च...

"यहाँ भिक्षु कोई श्रुतवान् आर्यश्रावक आर्यों के दर्शन से अभिज्ञ ...पूर्ववत्... सत्पुरुष धर्म में विनीत रूप को आत्मा से नहीं देखता... व विज्ञान में आत्मा को नहीं देखता, भिक्षु! ऐसा आर्यश्रावक 'सत्कायदृष्टि' नहीं हो पाता।"

रूपादि में आस्वाद, आदीनव एवं निःसरण

"भन्ते! रूप में आस्वाद (रसानुभव, मजा) क्या है? आदीवन (दुष्परिणाम) क्या है? और निःसरण (उससे छूटने का उपाय) क्या है? वेदना का... संज्ञा का... संस्कार का... विज्ञान का आस्वाद, आदीनव व निःसरण क्या है।"

"भिक्षु! यह जो पुरुष के चित्त में रूप को लेकर सुख-सौमनस्य उत्पन्न होता है यही रूप में आस्वाद कहलाता है। रूप की अनित्यता, एवं नश्वरशीलता है, यही उसमें दुष्परिणाम है। यह जो रूप में अपना छन्दराग का हटाना या उसका

विञ्ञाणं पटिच्च उप्पज्जति सुखं सोमनस्सं, अयं विञ्ञाणे अस्सादो। यं विञ्ञाणं अनिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, अयं विञ्ञाणे आदीनवो। यो विञ्ञाणे छन्दरागविनयो छन्दरागप्पहानं, इदं विञ्ञाणे निस्सरणं" ति।

४. अहङ्कारममङ्कारप्पहानं

४. "कथं पन, भन्ते, जानतो कथं पस्सतो इमस्मिं च सविञ्ञाणके काये बहिद्धा च सब्बनिमित्तेसु अहङ्कारममङ्कारमानानुसया न होन्ती" ति ?

"यं किञ्चि, भिक्खु, रूपं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा यं दूरे सन्तिके [R. 19] वा सब्बं रूपं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति—एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सति। या काचि वेदना...या काचि सञ्ञा...ये केचि सङ्खारा...यं किञ्चि विञ्ञाणं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा यं दूरे सन्तिके वा—सब्बं विञ्ञाणं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सति। एवं खो, भिक्खु, जानतो एवं पस्सतो इमस्मिं च सविञ्ञाणके काये बहिद्धा च सब्बनिमित्तेसु अहङ्कारममङ्कारमानानुसया न होन्ती" ति।

५. कमत्तानं कम्मानि फुसन्ति ?

५. अथ खो अञ्ञतरस्स भिक्खुनो एवं चेतसो परिवितक्को [N. 81]

प्रहाण ही रूप में निःसरण (का उपाय) है। वेदना को लेकर...संज्ञा को... संस्कार को...विज्ञान को लेकर छन्दरागप्रहाण है वही विज्ञान में निःसरण है।"

४. अहङ्कार एवं ममत्व का प्रहाण

४. "और भन्ते ! कैसे जानते कैसे समझते इस चेतनायुक्त काया में या बाहरी दुनियाँ में सभी लिङ्ग, आकार आदि निमित्तों में अहङ्कार एवं ममत्व का अभिमान या संस्कार (अनुशय) नहीं हो पाता ?"

भिक्षु ! जो कोई भूत-भविष्यत्-वर्तमान का, शरीर के अन्दर या बाहर का, स्थूल या सूक्ष्म, हीन या उत्तम, दूर या समीप का रूप है, वह सब रूप 'न यह मेरा है', 'न यह मैं हूँ' और 'न यह मेरी आत्मा है'—यों उसे सम्यक्तया जानते-समझते...अहङ्कार एवं ममत्व का अभिमान या अनुशय नहीं होता।

५. किस आत्मा का कर्म स्पर्श (संयोग) नहीं करते ?

५. तब एक भिक्षु के मन में यह वितर्क हुआ—"अरे ! इस प्रकार तो रूप

उदपादि—"इति किर, भो, रूपं अनत्ता, वेदना अनत्ता, सञ्ञा अनत्ता, सङ्खारा अनत्ता, विञ्ञाणं अनत्ता; अनत्तकतानि कम्मानि कमत्तानं फुसिस्सती" ति ?

अथ खो भगवा तस्स भिक्खुनो चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय भिक्खू आमन्तेसि—"ठानं खो पनेतं, भिक्खवे, विज्जति यं इधेकच्चो मोघपुरिसो अविद्वा अविज्जागतो तण्हाधिपतेय्येन चेतसा सत्थु सासनं अतिधावितब्बं मञ्ञेय्य—'इति किर, भो, रूपं अनत्ता, वेदना अनत्ता, सञ्ञा अनत्ता, सङ्खारा अनत्ता, विञ्ञाणं अनत्ता; अनत्तकतानि कम्मानि कमत्तानं फुसिस्सन्ती' ति। पटिविनीता खो मे तुम्हे, भिक्खवे, तत्र तत्र धम्मेसु।

"तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, रूपं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति ?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति ?

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता' " ति ?

"नो हेतं, भन्ते"। [B. 70]

अनात्मा है···विज्ञान भी अनात्मा है, फिर अनात्मा द्वारा कृत कर्म किस आत्मा में संयुक्त होंगे ?"

तब भगवान् ने, उस भिक्षु के चित्त के वितर्क को अपने मन से जानकर, भिक्षुओं को सम्बोधित किया—"भिक्षुओ ! यह सम्भव है कि कोई मोघपुरुष (अविवेकी) मूर्ख तृष्णाधीन चित्त होकर शास्ता के शासन (आदेश) का अतिक्रमण कर यह मान बैठे—'अरे ! यह रूप भी अनात्म है, वेदना भी···विज्ञान भी अनात्म है, तो इन अनात्माओं द्वारा कृत कर्म किस आत्मा से संयुक्त होंगे !' भिक्षुओ ! मैंने तुम्हें कारण बता-बताकर उन-उन धर्मों की वास्तविकता बता रखी है। तो क्या मानते हो भिक्षुओ ! रूप नित्य हैं या अनित्य ?"

"अनित्य हैं, भन्ते !"

"जो अनित्य है वह दुःखमय है या सुखमय ?"

"दुःखमय, भन्ते !"

"जो अनित्य, दुःखमय एवं विनाशी (परिवर्तनशील) है क्या उसके विषय में यह समझना उचित होगा—'यह (अनित्य वस्तु) मेरा है' या 'यह मैं हूँ', या 'यह मेरी आत्मा है' ?"

"नहीं, भन्ते !"

"तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, वेदना…सञ्ञा…सङ्खारा…विञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति ?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति ? [R. 20]

"दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता' " ति ?

"नो हेतं, भन्ते"।

"तस्मातिह, भिक्खवे, यं किञ्चि रूपं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा [N 82] यं दूरे सन्तिके वा सब्बं रूपं—'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। या काचि वेदना…या काचि सञ्ञा …ये केचि सङ्खारा…यं किञ्चि विञ्ञाणं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा यं दूरे सन्तिके वा सब्बं विञ्ञाणं—'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको रूपस्मिं पि निब्बिन्दति, वेदनाय पि निब्बिन्दति, सञ्ञाय पि निब्बिन्दति, सङ्खारेसु पि निब्बिन्दति, विञ्ञाणस्मिं पि निब्बिन्दति; निब्बिन्दं विरज्जति, विरागा विमुच्चति। विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाती" ति।

"तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! वेदना…संज्ञा…संस्कार…विज्ञान नित्य है या या अनित्य ?'…'यह मेरी आत्मा है' ?

"नहीं, भन्ते!"

"इस लिये, भिक्षुओ! जो कोई भूत-भविष्यत्-वर्तमान का…वह मेरी आत्मा नहीं है—ऐसा प्रज्ञा द्वारा ठीक से समझना चाहिये। …यों समझता हुआ कोई भी आर्यश्रावक रूप में; वेदना, संज्ञा, संस्कार एवं विज्ञान में निर्वेद (ग्लानि) को प्राप्त होता है; निर्वेद से वैराग्य को व वैराग्य से मोक्ष को प्राप्त होता है। मोक्ष प्राप्त होने पर 'मैं विमुक्त हूँ'—उसे ऐसा भान हो जाता है। तब वह 'मेरा जन्मप्रवाह क्षीण हो गया, ब्रह्मचर्यसाधना पूर्ण हो चुकी, मुझे जो करना था वह मैं कर चुका, मेरा अब यहाँ कुछ भी कर्तव्य शेष नहीं है'—ऐसा भी जान लेता है।"

६. इदमवोच भगवा। अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति।

इमस्मिं च पन वेय्याकरणस्मिं भञ्ञमाने सट्ठिमत्तानं भिक्खूनं अनुपादाय आसवेहि चित्तानि विमुच्चिंसू ति।

●

---

६. भगवान् ने, यों उपदेश किया। आत्तमना उन भिक्षुओं ने भगवान् के भाषण का अभिनन्दन किया।

भगवान् द्वारा किये गये इस उपदेश के समय साठ भिक्षुओं का चित्त आश्रवों (चित्तमलों) से उपादान(परिग्रह)रहित हो विमुक्त हो गया॥

महापुण्णमसुत्त समाप्त॥

●

१०. चूलपुण्णमसुत्तं

१. असप्पुरिसपटिपत्ति

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति [N. 83] पुब्बारामे मिगारमातुपासादे। तेन खो पन समयेन भगवा तदहुपोसथे पन्नरसे पुण्णाय पुण्णमाय रत्तिया भिक्खुसङ्घपरिवुतो अब्भोकासे [R. 21] निसिन्नो होति। अथ खो भगवा तुण्हीभूतं तुण्हीभूतं भिक्खुसङ्घं अनुविलोकेत्वा भिक्खू आमन्तेसि—"जानेय्य नु खो, भिक्खवे, असप्पुरिसो असप्पुरिसं—'असप्पुरिसो अयं भवं' "ति ?

"नो हेतं, भन्ते"।

"साधु, भिक्खवे; अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं असप्पु- [B. 71] रिसो असप्पुरिसं जानेय्य—'असप्पुरिसो अयं भवं' ति। जानेय्य पन, भिक्खवे, असप्पुरिसो सप्पुरिसं—'सप्पुरिसो अयं भवं' " ति ?

"नो हेतं, भन्ते"।

"साधु, भिक्खवे; एतं पि खो, भिक्खवे, अट्ठानं अनवकासो यं असप्पुरिसो सप्पुरिसं जानेय्य—'सप्पुरिसो अयं भवं' ति। असप्पुरिसो, भिक्खवे, अस-

---

१०. क्षुद्रपूर्णिमसूत्र

१. असत्पुरुषप्रतिपत्ति वर्णन

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती नगरी स्थित पूर्वाराम के मृगारमातृप्रासाद में उपोसथ की पूर्णिमा की रात्रि के प्रथम प्रहर में खुले आकास के नीचे भिक्षुसङ्घ से परिवृत हो विराजमान थे। तब भगवान् ने भिक्षुसङ्घ को चुपचाप बैठे देख भिक्षुओं को सम्बोधित किया—"भिक्षुओ ! क्या कोई असत्पुरुष (दुर्जन) दूसरे असत्पुरुष को जान सकता है—'यह असत्पुरुष है ?'

"नहीं, भन्ते !"

"सही बात है, भिक्षुओ ! यह सम्भव ही नहीं है कि कोई असत्पुरुष असत्पुरुष को जान सके कि यह असत्पुरुष है ! पर, भिक्षुओ ! क्या असत्पुरुष किसी सत्पुरुष को भी जान सकता है कि यह सत्पुरुष है ?"

"ऐसा भी नहीं है, भन्ते !"

"यह भी ठीक है, भिक्षुओ ! क्योंकि इसकी भी सम्भावना नहीं है, भिक्षुओ ! ...यह सत्पुरुष है।"

"क्योंकि, भिक्षुओ ! यह असत्पुरुष असद्धर्मों से युक्त, असत्पुरुषों का सेवक,

द्धम्मसमन्नागतो होति, असप्पुरिसभत्ति होति, असप्पुरिसचिन्ती होति, असप्पुरिसमन्ती होति, असप्पुरिसवाचो होति, असप्पुरिसकम्मन्तो होति, असप्पुरिसदिट्ठि होति; असप्पुरिसदानं देति ।

"कथं च, भिक्खवे, असप्पुरिसो असद्धम्मसमन्नागतो होति ? इध, भिक्खवे, असप्पुरिसो अस्सद्धो होति, अहिरिको होति, अनोत्तप्पी होति, अप्पस्सुतो होति, कुसीतो होति, मुट्ठस्सति होति, दुप्पञ्ञो होति । एवं खो, भिक्खवे, असप्पुरिसो असद्धम्मसमन्नागतो होति । (१)

"कथं च, भिक्खवे, असप्पुरिसो असप्पुरिसभत्ति होति ? इध, भिक्खवे, [N. 84] असप्पुरिसस्स ये ते समणब्राह्मणा अस्सद्धा अहिरिका अनोत्तप्पिनो अप्पस्सुता कुसीता मुट्ठस्सतिनो दुप्पञ्ञा त्यास्स मित्ता होन्ति ते सहाया । एवं खो, भिक्खवे, असप्पुरिसो असप्पुरिसभत्ति होति । (२)

"कथं च, भिक्खवे, असप्पुरिसो असप्पुरिसचिन्ती होति ? इध, भिक्खवे, असप्पुरिसो अत्तब्याबाधाय पि चेतेति, परब्याबाधाय पि चेतेति, उभयब्याबाधाय पि चेतेति । एवं खो, भिक्खवे, असप्पुरिसो असप्पुरिसचिन्ती होति । (३)

"कथं च, भिक्खवे, असप्पुरिसो असप्पुरिसमन्ती होति ? इध, भिक्खवे, असप्पुरिसो अत्तब्याबाधाय पि मन्तेति, परब्याबाधाय पि मन्तेति, उभय-

---

असत्पुरुषों के ही बारे में सतत चिन्तन करने वाला, उन्हीं के साथ मन्त्रणा करने वाला, उन्हीं के साथ सम्भाषण करने वाला, उन्हीं की क्रियाओं वाला, और उन्हीं के जैसे विचारों वाला होता है तथा उन्हीं के साथ लेन-देन भी करता रहता है ।"

कैसे, भिक्षुओ ! वह असद्धर्मों से युक्त होता है ? भिक्षुओ ! वह यहाँ अश्रद्धालु होता है, निर्लज्ज, व संकोचरहित, अल्पश्रुत (अज्ञ), आलसी, नष्टस्मृति एवं दुष्प्रज्ञ होता है । भिक्षुओ ! इस प्रकार वह असत्पुरुष 'असद्धर्मयुक्त' होता है । (१)

"कैसे, भिक्षुओ ! वह असत्पुरुषों का सेवा (भक्ति) वाला होता है ?" भिक्षुओ ! यहाँ किसी असत्पुरुष के ऐसे श्रमण-ब्राह्मण मित्र, साथी या सहायक हों जो कि अश्रद्धालु···दुष्प्रज्ञ हों वह 'असत्पुरुषभक्ति' होता है । (२)

"कैसे, भिक्षुओ ! वह असत्पुरुष असत्पुरुषों के विषय में चिन्तक होता है ? भिक्षुओ ! यहाँ कोई असत्पुरुष आत्मपीड़ा का भी चिन्तन करता है, परपीड़ा··· उभयपीड़ा का भी चिन्तन करता है ? ऐसा पुरुष 'असत्पुरुषचिन्ती' कहलाता है ।

ब्याबाधाय पि मन्तेति। एवं खो, भिक्खवे, असप्पुरिसो [R. 22] असप्पुरिसमन्ती होति। (४)

"कथं च, भिक्खवे, असप्पुरिसो असप्पुरिसवाचो होति ? इध, भिक्खवे, असप्पुरिसो मुसावादी होति, पिसुणवाचो होति, फरुसवाचो होति, सम्फप्पलापी होति। एवं खो, भिक्खवे, असप्पुरिसो असप्पुरिसवाचो [B. 72] होति। (५)

"कथं च, भिक्खवे, असप्पुरिसो असप्पुरिसकम्मन्तो होति ? इध, भिक्खवे, असप्पुरिसो पाणातिपाती होति, अदिन्नादायी होति, कामेसुमिच्छाचारी होति। एवं खो, भिक्खवे, असप्पुरिसो असप्पुरिसकम्मन्तो होति। (६)

"कथं च, भिक्खवे, असप्पुरिसो असप्पुरिसदिट्ठि होति ? इध, भिक्खवे, असप्पुरिसो एवंदिट्ठि होति—'नत्थि दिन्नं, नत्थि यिट्ठं, नत्थि हुतं, नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको, नत्थि अयं लोको, नत्थि परो लोको, नत्थि माता, नत्थि पिता, नत्थि सत्ता ओपपातिका, नत्थि लोके समणब्राह्मणा सम्मग्गता सम्मापटिपन्ना, ये इमं च लोकं परं च लोकं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेन्ती' ति। एवं खो, भिक्खवे, असप्पुरिसो असप्पुरिसदिट्ठि होति। (७)

"कैसे, भिक्षुओ! कोई असत्पुरुषमन्त्री होता है? यहाँ कोई असत्पुरुष आत्मपीड़ा...'असत्पुरुषमन्त्री' होता है। (४)

"और, भिक्षुओ! कोई 'असत्पुरुषवाक्' होता है? यहाँ कोई असत्पुरुष मृषावादी, चुगलखोर, कर्कशवाक् व बकवादी होता है; ऐसा पुरुष 'असत्पुरुषवाक्' कहलाता है। (५)

"कैसे भिक्षुओ! कोई पुरुष 'असत्पुरुषकर्मान्त' कहलाता है? यहाँ भिक्षुओ! कोई प्राणातिपाती होता है, अदत्तादायी एवं कामभोगों में मिथ्याचारी है, भिक्षुओ! ऐसा असत्पुरुष 'असत्पुरुषकर्मान्त' कहलाता है। (६)

"कैसे, भिक्षुओ! कोई असत्पुरुष 'असत्पुरुषदृष्टि' कहलाता है? भिक्षुओ! यहाँ कोई असत्पुरुष ऐसी धारणा वाला होता है—न कोई दान है, न कोई यज्ञ है, न हवन है, न कोई कर्मफल का विपाक है, न यह लोक है न परलोक, न कोई माता है न पिता, न देव है न श्रमण-ब्राह्मण जो सन्मार्ग के अनुयायी हों या जो स्वयं किसी धर्म का साक्षात्कार कर उसे जनता को बताते हों; भिक्षुओ! ऐसा व्यक्ति 'असत्पुरुषदृष्टि' होता है। (७)

[N. 85] "कथं च, भिक्खवे, असप्पुरिसो असप्पुरिसदानं देति? इध, भिक्खवे, असप्पुरिसो असक्कच्चं दानं देति, असहत्था दानं देति, अचित्तीकत्वा दानं देति, अपविट्ठं दानं देति अनागमनदिट्ठिको दानं देति। एवं खो, भिक्खवे, असप्पुरिसो असप्पुरिसदानं देति। (८)

"सो, भिक्खवे, असप्पुरिसो एवं असद्धम्मसमन्नागतो, एवं असप्पुरिसभत्ति, एवं असप्पुरिसचिन्ती, एवं असप्पुरिसमन्ती, एवं असप्पुरिसवाचो, एवं असप्पुरिसकम्मन्तो, एवं असप्पुरिसदिट्ठि; एवं असप्पुरिसदानं दत्वा कायस्स भेदा परं मरणा या असप्पुरिसानं गति तत्थ उपपज्जति।

का च, भिक्खवे, असप्पुरिसानं गति? निरयो वा तिरच्छानयोनि वा!

२. सप्पुरिसपटिपत्ति

२. "जानेय्य नु खो, भिक्खवे, सप्पुरिसो सप्पुरिसं—'सप्पुरिसो अयं भवं' " ति? "एवं, भन्ते"। [R. 23]

"साधु, भिक्खवे; ठानमेतं, भिक्खवे, विज्जति यं सप्पुरिसो सप्पुरिसं जानेय्य—'सप्पुरिसो अयं भवं' ति। जानेय्य पन, भिक्खवे, सप्पुरिसो असप्पुरिसं—'असप्पुरिसो अयं भवं' " ति! "एवं, भन्ते"।

"कैसे, भिक्षुओ! कोई असत्पुरुष-दानदाता होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई असत्पुरुष किसी को असत्कारपूर्वक दान करता है, अपने हाथ से दान नहीं देता, व्यक्ति की विना परवाह किये... निकृष्ट दान देता है; उस दान का फल न लौट कर आने की दृष्टि से उपेक्षापूर्वक दान देता है—यों, भिक्षुओ! वह असत्पुरुषवत् दानदाता कहलाता है।

भिक्षुओ! वह पुरुष असद्धर्मसमन्वित हो... असत्पुरुषवत् दान देता हुआ देहपात के बाद, मरणानन्तर असत्पुरुषों की गति (योनि) को प्राप्त होता है। भिक्षुओ! यह असत्पुरुषों की गति क्या है? नरक या पशु-पक्षी की योनियों में गिरना।

२, सत्पुरुषप्रतिपत्ति

२. "क्या कोई सत्पुरुष किसी दूसरे सत्पुरुष को जान सकता है कि यह सत्पुरुष है?"

"हाँ, भन्ते!"

"ठीक है, भिक्षुओ! यह सम्भव है कि कोई सत्पुरुष... सत्पुरुष है। पर क्या कोई सत्पुरुष किसी असत्पुरुष को जान सकता है कि यह असत्पुरुष है?"

"हाँ, भन्ते!"

"साधु, भिक्खवे; एतं पि खो, भिक्खवे, ठानं विज्जति यं सप्पुरिसो असप्पुरिसं जानेय्य—'असप्पुरिसो अयं भवं' ति। सप्पुरिसो, भिक्खवे, सद्धम्मसमन्नागतो होति, सप्पुरिसभत्ति होति, सप्पुरिसचिन्ती [B. 73] होति, सप्पुरिसमन्ती होति, सप्पुरिसवाचो होति, सप्पुरिसकम्मन्तो होति, सप्पुरिसदिट्ठि होति; सप्पुरिसदानं देति।

"कथं च, भिक्खवे, सप्पुरिसो सद्धम्मसमन्नागतो होति? इध, भिक्खवे, सप्पुरिसो सद्धो होति, हिरिमा होति, ओत्तप्पी होति, बहुस्सुतो होति, आरद्धविरियो होति, उपट्ठितस्सति होति, पञ्ञवा होति। एवं खो, भिक्खवे, सप्पुरिसो सद्धम्मसमन्नागतो होति। (१)

"कथं च, भिक्खवे, सप्पुरिसो सप्पुरिसभत्ति होति? इध, [N. 86] भिक्खवे, सप्पुरिसस्स ये ते समणब्राह्मणा सद्धा हिरिमन्तो ओत्तप्पिनो बहुस्सुता आरद्धविरिया उपट्ठितस्सतिनो पञ्ञवन्तो त्यास्स मित्ता होन्ति, ते सहाया। एवं खो, भिक्खवे, सप्पुरिसो सप्पुरिसभत्ति होति। (२)

"कथं च, भिक्खवे, सप्पुरिसो सप्पुरिसचिन्ती होति? इध, भिक्खवे, सप्पुरिसो नेवत्तब्याबाधाय चेतेति, न परब्याबाधाय चेतेति, न उभयब्याबाधाय चेतेति। एवं खो, भिक्खवे, सप्पुरिसो सप्पुरिसचिन्ती होति।

"कथं च, भिक्खवे, सप्पुरिसो सप्पुरिसमन्ती होति? इध, भिक्खवे, सप्पुरिसो नेवत्तब्याबाधाय मन्तेति, न परब्याबाधाय मन्तेति, न उभय-

---

"यही ठीक है, भिक्षुओ! क्योंकि यह भी सम्भव है कि कोई सत्पुरुष असत्पुरुष को पहचान ले। भिक्षुओ सत्पुरुष सद्धर्मसमन्वित होता है, सत्पुरुषभक्ति होता है, सत्पुरुषचिन्ती होता है, सत्पुरुषमन्त्री होता है, सत्पुरुषवाक् होता है, सत्पुरुषकर्मान्त होता है, सत्पुरुषदृष्टि होता है और सत्पुरुष को ही दान देता है।

"कैसे, भिक्षुओ! वह पुरुष सद्धर्मसमन्वित होता है? यहाँ भिक्षुओ! कोई पुरुष श्रद्धावान्, लज्जालु···प्रज्ञावान् होता है, भिक्षुओ! ऐसा पुरुष 'सद्धर्मसमन्वित' होता है। (१)

"कैसे···सत्पुरुष भक्ति होता है? उसके मित्र या साथी-सहायक वे ही होते हैं जो श्रद्धालु हों लज्जालु हों, संकोची हों, उद्योगी हों, बहुश्रुत हों, उपस्थितस्मृति हों, प्रज्ञावान् हों; अतः वह 'सत्पुरुषभक्ति' कहलाता है। (२)

"कैसे···सत्पुरुषचिन्ती होता है? जो सत्पुरुष आत्मपीड़ा का···न परपीड़ा का···न उभयपीड़ा का चिन्तन करता है वह 'सत्पुरुषचिन्ती' कहलाता है। (३)

ब्याबाधाय मन्तेति। एवं खो, भिक्खवे, सप्पुरिसो सप्पुरिन्नमन्ती होति।

"कथं च, भिक्खवे, सप्पुरिसो सप्पुरिस वाचो होति? इध, भिक्खवे, सप्पुरिसो मुसावादा पटिविरतो होति, पिसुणाय वाचाय पटिविरतो होति, फरुसाय वाचाय पटिविरतो होति, सम्फप्पलापा पटिविरतो होति। एवं खो, भिक्खवे, सप्पुरिसो सप्पुरिसवाचो होति। (५)

"कथं च, भिक्खवे, सप्पुरिसो सप्पुरिसकम्मन्तो होति? इध, भिक्खवे, सप्पुरिसो पाणातिपाता पटिविरतो होति, अदिन्नादाना पटि-[R. 24] विरतो होति, कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो होति? एवं खो, भिक्खवे, सप्पुरिसो सप्पुरिसकम्मन्तो होति। (६)

[B. 74] "कथं च भिक्खवे, सप्पुरिसो सप्पुरिसदिट्ठि होति? इध, भिक्खवे, सप्पुरिसो एवंदिट्ठि होति—'अत्थि दिन्नं, अत्थि यिट्ठं, अत्थि हुतं, अत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको, अत्थि अयं लोको, अत्थि परो लोको, अत्थि माता, अत्थि पिता, अत्थि सत्ता ओपपातिका, अत्थि लोके समणब्राह्मणा सम्मग्गता सम्मापटिपन्ना ये इमं च लोकं परं च लोकं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेन्ती' ति। एवं खो, भिक्खवे, सप्पुरिसो सप्पुरिसदिट्ठि होति। (७)

[N. 87] "कथं च, भिक्खवे, सप्पुरिसो सप्पुरिसदानं देति? इध, भिक्खवे, सप्पुरिसो सक्कच्चं दानं देति, सहत्था दानं देति, चित्तीकत्वा

"कैसे…'सत्पुरुषमन्त्री' होता है?…वह न आत्मपीड़ा…न उभयपीड़ा…वह 'सत्पुरुषमन्त्री' होता है। (४)

"कैसे…'सत्पुरुषवाक्' होता है?…मृषावाद, चुगलखोरी, कठोरवाक् से विरत रहता है ऐसा पुरुष 'सत्पुरुषवाक्' होता है। (५)

"कैसे…सत्पुरुषकर्मान्त होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई सत्पुरुष प्राणातिपात…अदत्तादान…कामभोगों में मिथ्याचार से दूर रहता है वह 'सत्पुरुषकर्मान्त' कहलाता है। (६)

"कैसे…'सत्पुरुषदृष्टि' होता है? यहाँ भिक्षुओ! कोई सत्पुरुष इस धारणा वाला हो—दान है, यज्ञ है, हवन है, सुकृत-दुष्कृत कर्मों का फल होता है, यह लोक एवं परलोक है, माता-पिता हैं, देव और श्रमण-ब्राह्मण हैं जो धर्म का स्वयं साक्षात्कार कर उसका दूसरों को उपदेश करते हैं, भिक्षुओ! ऐसी दृष्टि वाला पुरुष सत्पुरुषदृष्टि होता है। (७)

"कैसे…'सत्पुरुषदानी' कहलाता है? यहाँ…सत्कारपूर्वक, अपने हाथ से,

दानं देति, अनपविद्धं दानं देति, आगमनदिट्ठिको दानं देति। एवं खो, भिक्खवे, सप्पुरिसो सप्पुरिसदानं देति। (८)

"सो, भिक्खवे, सप्पुरिसो एवं सद्धम्मसमन्नागतो, एवं सप्पुरिसभत्ति, एवं सप्पुरिसचिन्ती, एवं सप्पुरिसमन्ती, एवं सप्पुरिसवाचो, एवं सप्पुरिसकम्मन्तो, एवं सप्पुरिसदिट्ठि; एवं सप्पुरिसदानं दत्वा कायस्स भेदा परं मरणा या सप्पुरिसानं गति तत्थ उपपज्जति। का, भिक्खवे, सप्पुरिसानं गति? देवमहत्तता वा मनुस्समहत्तता वा" ति।

३. इदमवोच भगवा। अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति।

देवदहवग्गो निट्ठितो पठमो।

तस्सुद्दानं

देवदहं पञ्चत्तयं, किन्ति–साम–सुनक्खत्तं।
सप्पायगणकगोपक-महापुण्ण-चूळपुण्णं चा ति॥

⊙

व्यक्ति-व्यक्ति का ध्यान रखकर उत्कृष्ट दान देता है वह, भिक्षुओ! सत्पुरुषदानी कहलाता है। (८)

"भिक्षुओ! वह सत्पुरुष यों सद्धर्मसमन्वित, सत्पुरुषभक्ति'''सत्पुरुषों को दान करता हुआ, इस देहपात के बाद मरणानन्तर सत्पुरुषों की योनि में उत्पन्न होता है। भिक्षुओ! सत्पुरुषों की गति कौन सी होती है? बड़े से बड़े देवताओं या उच्च से उच्च मनुष्यकुल में पैदा होना।"

भगवान् ने यों उपदेश किया। प्रसन्नमन भिक्षुओं ने भगवान् के उपदेश का अभिनन्दन किया॥

चूळपुण्णमसुत्त समाप्त॥
प्रथम देवदहवर्ग समाप्त॥

उदान

इस देवदहवर्ग में इन अधोगणित १० सूत्रों का संग्रह है—१. देवदह, २. पञ्चत्रय, ३. किन्ति, ४. सामगाम, ५. सुनक्षत्र, ६. आनिञ्जसप्पाय, ७. गणक, मोग्गल्लान, ८. गोपक मोग्गल्लान ९. महापूर्णिम एवं १०. क्षुद्रपूर्णिम सूत्र॥

११. अनुपदसुत्तं

१. सब्बसमापत्तिलाभी सारिपुत्तो

१. एवं मे सुतं । एकं समयं भगवा साव- [N. 88, B. 75, R. 25] त्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे । तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"भिक्खवो" ति । "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं । भगवा एतदवोच—

"पण्डितो, भिक्खवे, सारिपुत्तो; महापञ्ञो, भिक्खवे, सारिपुत्तो; पुथुपञ्ञो, भिक्खवे, सारिपुत्तो; हासपञ्ञो, भिक्खवे, सारिपुत्तो; जवन-पञ्ञो, भिक्खवे, सारिपुत्तो; तिक्खपञ्ञो, भिक्खवे, सारिपुत्तो; निब्बेधिक-पञ्ञो, भिक्खवे, सारिपुत्तो । सारिपुत्तो, भिक्खवे, अड्ढमासं अनुपदधम्म-विपस्सनं विपस्सति ।

२. "तत्रिदं, भिक्खवे, सारिपुत्तस्स अनुपदधम्मविपस्सनाय होति—'इध, भिक्खवे, सारिपुत्तो विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति । ये च पठमे झाने धम्मा वितक्को च विचारो च पीति च सुखं च चित्तेकग्गता

---

११. अनुपदसूत्र

१. आयुष्मान् सारिपुत्र सभी योग्यताओं से सम्पन्न हैं

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती के जेतवन में स्थित अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित आराम में साधनाहेतु विराज-मान थे । वहाँ भगवान् ने किसी समय "भिक्षुओ" कह कर भिक्षुसङ्घ को अपने सम्मुख बुलाया । वे भिक्षु भी "भन्ते !" कहते हुए भगवान् के सम्मुख उपस्थित हुए । भगवान् यों बोले—

"भिक्षुओ ! सारिपुत्र पण्डित है, महाप्राज्ञ है, विशालबुद्धि है, भास्वर (प्रखर)-प्रज्ञ है, प्रत्युत्पन्नमति (=जवनप्रज्ञ) है, तीक्ष्णप्रज्ञ है, निर्वेधिकप्रज्ञ (अन्तस्तल तक थाह लगाने की बुद्धि वाला) है । भिक्षुओ ! सारिपुत्र आधे मास (एक पक्ष) तक प्रत्येक पद की विपश्यना (साक्षात्करण) करता रहता है ।

२. "वहाँ, भिक्षुओ ! सारिपुत्र द्वारा प्रत्येक पद की विपश्यना यों की जाती है—'यहाँ, भिक्षुओ ! सारिपुत्र कामभोगों एवं अकुशल धर्मों से दूर रहते हुए वितर्क (चित्त की सूक्ष्मावस्था) एवं विचार (चित्त की स्थूलावस्था) सहित प्रीति-सुखमय प्रथम ध्यान को प्राप्त हो साधना करता है । इस प्रथम ध्यान में जो ध्येय धर्म हैं; जैसे—वितर्क, विचार, प्रीति, सुख, चित्त की एकाग्रता; स्पर्श, वेदना, संज्ञा,

च, फस्सो वेदना सञ्ञा चेतना चित्तं छन्दो अधिमोक्खो विरियं सति उपेक्खा मनसिकारो—त्यास्स धम्मा अनुपदववत्थिता होन्ति। त्यास्स धम्मा विदिता उप्पज्जन्ति, विदिता उपट्ठहन्ति, विदिता अब्भत्थं गच्छन्ति। सो एवं पजानाति—'एवं किरमे धम्मा अहुत्वा सम्भोन्ति, हुत्वा पटिवेन्ती' ति। सो तेसु धम्मेसु अनुपायो अनपायो अनिस्सितो अप्पटिबद्धो विप्पमुत्तो विसंयुत्तो विमरियादीकतेन चेतसा विहरति। सो 'अत्थि उत्तरि निस्सरणं' ति पजानाति। तब्हुलीकारा अत्थि त्वेवस्स होति।

"पुन च परं, भिक्खवे, सारिपुत्तो वितक्कविचारानं वूपसमा [N. 89] अज्झत्तं सम्पसादनं चेतसो एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं [R. 26] समाधिजं पीतिसुखं दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। ये च दुतिये झाने धम्मा—अज्झत्तं सम्पसादो च पीति च सुखं च चित्तेकग्गता च, फस्सो वेदना सञ्ञा चेतना चित्तं छन्दो अधिमोक्खो विरियं सति [B. 76] उपेक्खा मनसिकारो—त्यास्स धम्मा अनुपदववत्थिता होन्ति। त्यास्स धम्मा विदिता उप्पज्जन्ति, विदिता उपट्ठहन्ति, विदिता अब्भत्थं गच्छन्ति। सो एवं पजानाति--'एवं किरमे धम्मा अहुत्वा सम्भोन्ति, हुत्वा पटिवेन्तो' ति। सो तेसु धम्मेसु अनुपायो अनपायो अनिस्सितो अप्पटिबद्धो विप्पमुत्तो विसंयुत्तो विमरियादीकतेन चेतसा विहरति। सो 'अत्थि उत्तरि निस्सरणं' ति पजानाति। तब्बहुलीकारा अत्थि त्वेवस्स होति।

चेतना, चित्त, छन्द, अधिमोक्ष, वीर्य, स्मृति, उपेक्षा, मनस्कार—इसके ये सभी धर्म व्यवस्थित होते हैं—वे धर्म इसको विदित हो उत्पन्न होते हैं, विदित होते हुए स्थित होते हैं, एवं विदित होते हुए ही अस्त होते हैं। वह ऐसा जानता है—'इस प्रकार पहले अनुद्भूत धर्म उत्पन्न होते हैं, होकर अनुभवगम्य होते हैं'। वह उन धर्मों के उद्भव व विनाश का कोई प्रयास न करता हुआ उनसे असम्पृक्त (दूर) रहता हुआ, उनमें प्रतिबद्ध न होता हुआ, उनसे सर्वथा मुक्त एवं असंयुक्त रहता हुआ असीमित चित्त से साधना करता है। वह 'इससे आगे भी निःसरण का उपाय है'-- ऐसा जानता है। उस निःसरणोपाय का अभ्यास बढ़ाने से उसे 'है'--ऐसा निश्चय होता है।

"फिर, भिक्षुओ ! यह सारिपुत्र वितर्क-विचारों के उपशान्त हो जाने से, आध्यात्मिक सम्प्रसाद (प्रीति), चित्त की एकाग्रता, वितर्क-विचाररहित समाधिजन्य प्रीति-सुखमय द्वितीय ध्यानावस्था में पहुँच कर साधना करता है। इस द्वितीय ध्यान में जो ध्येय धर्म होते हैं, जैसे--आध्यात्मिक सम्प्रसाद, प्रीति, सुख, चित्त की एकाग्रता, स्पर्श, वेदना, संज्ञा, चेतना, चित्त (मन), छन्द, अधिमोक्ष (झुकाव),

"पुन च परं, भिक्खवे, सारिपुत्तो पीतिया च विरागा उपेक्खको च विहरति सतो च सम्पजानो, सुखं च कायेन पटिसंवेदेति। यं तं अरिया आचिक्खन्ति--'उपेक्खको सतिमा सुखविहारी' ति ततियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। ये च ततिये झाने धम्मा--सुखं च सति च सम्पजञ्ञं च चित्तेकग्गता च, फस्सो वेदना सञ्ञा चेतना चित्तं छन्दो अधिमोक्खो विरियं सति उपेक्खा मनसिकारो--त्यास्स धम्मा अनुपदववत्थिता होन्ति, त्यास्स धम्मा विदिता उप्पज्जन्ति, विदिता उपट्ठहन्ति, विदिता अब्भत्थं गच्छन्ति। सो एवं पजानाति--'एवं किरमे धम्मा अहुत्वा सम्भोन्ति, हुत्वा पटिवेन्ती' ति। सो तेसु धम्मेसु अनुपायो अनपायो अनिस्सितो अप्पटिबद्धो विप्पमुत्तो विमरियादीकतेन चेतसा विहरति। सो 'अत्थि उत्तरि निस्सरणं ति पजानाति। तब्बहुलीकारा अत्थि त्वेवस्स होति।

"पुन च परं, भिक्खवे, सारिपुत्तो सुखस्स च पहाना दुक्खस्स च पहाना पुब्बेव सोमनस्सदोमनस्सानं अत्थङ्गमा अदुक्खमसुखं उपेक्खासतिपारिसुद्धिं चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। ये च चतुत्थे झाने धम्मा—उपेक्खा अदुक्खमसुखा वेदना पस्सद्धत्ता चेतसो अनाभोगो सतिपारिसुद्धि [N. 90] चित्तेकग्गता च, फस्सो वेदना सञ्ञा चेतना चित्तं छन्दो अधिमोक्खो विरियं सति उपेक्खा मनसिकारो--त्यास्स धम्मा अनुपदववत्थिता होन्ति। त्यास्स धम्मा विदिता उप्पज्जन्ति, विदिता उपट्ठहन्ति, [R. 27] विदिता अब्भत्थं गच्छन्ति। सो एवं पजानाति--'एवं किरमे

वीर्य (उद्योग), स्मृति, उपेक्षा एवं मनस्कार--इसके ये सभी धर्म व्यवस्थित होते हैं, विदित होते हुए स्थित...पूर्ववत्...'है' ऐसा निश्चय होता है।

"और फिर, भिक्षुओ! यह सारिपुत्र प्रीति और वैराग्य धर्मों के प्रति भी उपेक्षाभाव रखता हुआ समझता-बूझता साधना में अग्रसर होता है। उस समय उसे अपनी काया में सरलता का बोध होता है। और जिस ध्यान के लिये आर्यजन 'उपेक्षा एवं स्मृति से सम्पन्न हो साधना कर रहा है'—ऐसा कहते हैं, वह ऐसी तृतीय ध्यान की साधना में तत्पर हो जाता है। इस तृतीय ध्यान में जो ध्येय धर्म हैं वे सभी इसके व्यवस्थित होते हैं...पूर्ववत्...।

और फिर, भिक्षुओ! यह सारिपुत्र सुख-दुःख के प्रहाण से, सौमनस्य एवं एवं दौर्मनस्य के पहले ही अस्त हो जाने से, अदुःख-असुखमय उपेक्षा-स्मृतिजन्य परिशुद्धियुक्त चतुर्थ ध्यान की अवस्था में पहुँचकर साधना तत्पर होता है। इस चतुर्थ ध्यान की अवस्था में जो ध्येय धर्म हैं; जैसे—उपेक्षा, अदुःख-असुखमय वेदना

धम्मा अहुत्वा सम्भोन्ति, हुत्वा पटिवेन्ती' ति। सो तेसु धम्मेसु अनुपायो अनपायो अनिस्सितो अप्पटिबद्धो विप्पमुत्तो विसंयुत्तो विमरियादीकतेन चेतसा विहरति। सो 'अत्थि उत्तरिं निस्सरणं' ति पजानाति। तब्बहुलीकारा अत्थि त्वेवस्स होति।

३. "पुन च परं, भिक्खवे, सारिपुत्तो सब्बसो रूपसञ्ञानं [B. 77] समतिक्कमा पटिघसञ्ञानं अत्थङ्गमा नानत्तसञ्ञानं अमनसिकारा 'अनन्तो आकासो' ति आकासानञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति। ये च आकासानञ्चायतने धम्मा--आकासानञ्चायतनसञ्ञा च चित्तेकग्गता च, फस्सो वेदना सञ्ञा चेतना चित्तं छन्दो अधिमोक्खो विरियं सति उपेक्खा मनसिकारो--त्यास्स धम्मा अनुपदववत्थिता होन्ति। त्यास्स धम्मा विदिता उप्पज्जन्ति, विदिता उपट्ठहन्ति, विदिता अब्भत्थं गच्छन्ति। सो एवं पजानाति--'एवं किरमे धम्मा अहुत्वा सम्भोन्ति, हुत्वा पटिवेन्ती' ति। सो तेसु धम्मेसु अनुपायो अनपायो अनिस्सितो अप्पटिबद्धो विप्पमुत्तो विसंयुत्तो विमरियादीकतेन चेतसा विहरति। सो अत्थि उत्तरि निस्सरणं' ति पजानाति। तब्बहुलीकारा अत्थि त्वेवस्स होति।

"पुन च परं, भिक्खवे, सारिपुत्तो सब्बसो आकासानञ्चायतनं समतिक्कम्म 'अनन्तं विञ्ञाणं' ति विञ्ञाणञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति। ये च विञ्ञाणञ्चायतने धम्मा—विञ्ञाणञ्चायतनसञ्ञा च चित्तेकग्गता च, फस्सो वेदना सञ्ञा चेतना चित्तं छन्दो अधिमोक्खो विरियं सति उपेक्खा मनसिकारो—त्यास्स धम्मा अनुपदववत्थिता होन्ति। त्यास्स धम्मा विदिता उप्पज्जन्ति, विदिता उपट्ठहन्ति, विदिता अब्भत्थं गच्छन्ति।

…पूर्ववत्…इसे 'है'—ऐसा निश्चय होता है।

३. "फिर, भिक्षुओ! यह सारिपुत्र रूपसंज्ञाओं के सर्वथा पीछे छूट जाने से, प्रतिघसंज्ञाओं के अस्त हो जाने से, नानात्मसंज्ञाओं की ओर से चित्त के हट जाने से 'यह आकाश अनन्त है'—ऐसी आकाशानन्त्यायतन साधना की ओर बढ़कर इस साधना में तत्पर होता है। इस आकाशानन्त्यायन-साधना में ध्येय धर्म; जैसे—आकाशानन्त्यायतनसंज्ञा, चित्त की एकाग्रता, स्पर्श…उपरिवत्…अभ्यास बढ़ाने से इसे 'है'—ऐसा निश्चय होता है।

"फिर, भिक्षुओ! यह सारिपुत्र इस आकाशानन्त्यायन की साधनाभूमि को भी सर्वथा अतिक्रान्त कर, 'यह विज्ञान अनन्त है'—ऐसी विज्ञानानन्त्यायतन की अवस्था तक पहुँच कर उसकी साधना में तत्पर हो जाता है। उस साधनावस्था में

सो एवं पजानाति— एवं किरमे धम्मा अहुत्वा सम्भोन्ति, हुत्वा पटिवेन्ती' ति। सो तेसु धम्मेसु अनुपायो अनपायो अनिस्सितो अप्पटिबद्धो विप्पमुत्तो [N. 91] विसंयुत्तो विमरियादीकतेन चेतसा विहरति। सो 'अत्थि उत्तरि निस्सरणं' ति पजानाति। तब्बहुलीकारा अत्थि त्वेवस्स होति।

[R. 28] "पुन च परं, भिक्खवे, सारिपुत्तो सब्बसो विञ्ञाणञ्चायतनं समतिक्कम्म 'नत्थि किञ्ची' ति आकिञ्चञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहरति। ये च आकिञ्चञ्ञायतने धम्मा—आकिञ्चञ्ञायतनसञ्ञा च चित्तेकग्गता च, फस्सो वेदना सञ्ञा चेतना चित्तं छन्दो अधिमोक्खो विरियं सति उपेक्खा मनसिकारो—त्यास्स धम्मा अनुपदववत्थिता होन्ति। त्यास्स धम्मा विदिता उप्पज्जन्ति, विदिता उपट्ठहन्ति, विदिता अब्भत्थं गच्छन्ति। सो एवं पजानाति—'एवं किरमे धम्मा अहुत्वा सम्भोन्ति, हुत्वा पटिवेन्ती' ति। सो तेसु धम्मेसु अनुपायो अनपायो अनिस्सितो अप्पटिबद्धो [B. 78] विप्पमुत्तो विसंयुत्तो विमरियादीकतेन चेतसा विहरति। सो 'अत्थि उत्तरि निस्सरणं' ति पजानाति। तब्बहुलीकारा अत्थि त्वेवस्स होति।

"पुन च परं, भिक्खवे, सारिपुत्तो सब्बसो आकिञ्चञ्ञायतनं समतिक्कम्म नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहरति। सो ताय समापत्तिया सतो वुट्ठहति। सो ताय समापत्तिया सतो वुट्ठहित्वा ये धम्मा अतीता निरुद्धा विपरिणता ते धम्मे समनुपस्सति—'एवं किरमे धम्मा अहुत्वा सम्भोन्ति, हुत्वा पटिवेन्ती' ति। सो तेसु धम्मेसु अनुपायो अनपायो अनि-

---

जो ध्येय धर्म हैं; जैसे—विज्ञानानन्त्यायतनसंज्ञा, चित्त की एकाग्रता, स्पर्श...उपरिवत्...अभ्यास बढ़ाने से इसे 'है'—ऐसा निश्चय होता है।

"फिर, भिक्षुओ! सारिपुत्र इस विज्ञानानन्त्यायतन की साधनाभूमि को भी समतिक्रान्त कर 'कुछ भी नहीं है' इस प्रकार आकिञ्चन्यायतन की साधनाभूमि में पहुँचकर साधना करता है। तब आकिञ्चन्यायतन में जो ध्येय धर्म हैं; जैसे—आकिञ्चन्यायतनसंज्ञा, चित्तैकाग्रता, स्पर्श, वेदना...मनस्कार—ये धर्म उसके व्यवस्थित होते हैं।...उपरिवत्...साधनाभ्यास बढ़ाने से इसे 'है' यह निश्चय हो जाता है।

"फिर, भिक्षुओ! यह सारिपुत्र आकिञ्चन्यायतन अवस्था को भी सर्वथा अतिक्रान्त कर नैवसंज्ञानासंज्ञायतन साधनावस्था में पहुँचकर भावना करता है। वह उस समाधि (समापत्ति) के अभ्यास से स्मृति की प्रखरता में आधिक्य ले आता है। वह उस स्मृति-समाधि के बल से, जो धर्म अतीत, निरुद्ध एवं विनष्ट हो चुके

स्सितो अप्पटिबद्धो विप्पमुत्तो विसंयुत्तो विमरियादीकतेन चेतसा विहरति। सो 'अत्थि उत्तरि निस्सणं' ति पजानाति। तब्बहुलीकारा अत्थि त्वेवस्स होति।

४. "पुन च परं भिक्खवे, सारिपुत्तो सब्बसो नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं समतिक्कम्म सञ्ञावेदयितनिरोधं उपसम्पज्ज विहरति। पञ्ञाय चस्स दिस्वा आसवा परिक्खीणा होन्ति। सो ताय समापत्तिया सतो वुट्ठहति। सो ताय समापत्तिया सतो वुट्ठहित्वा ये धम्मा अतीता निरुद्धा विपरिणता ते धम्मे समनुपस्सति—'एवं किरमे धम्मा अहुत्वा सम्भोन्ति, हुत्वा पटिवेन्ती' ति। सो तेसु धम्मेसु अनुपायो अनपायो अनिस्सितो अप्पटिबद्धो विप्पमुत्तो विसंयुत्तो विमरियादीकतेन चेतसा विहरति। सो 'नत्थि उत्तरि निस्सरणं' ति पजानाति। तब्बहुलीकारा नत्थि त्वेवस्स होति।

२. वसिप्पत्तो पारमिप्पत्तो सारिपुत्तो

५. "यं खो तं, भिक्खवे, सम्मा वदमानो वदेय्य—'वसि- [N. 92]
प्पत्तो पारमिप्पत्तो अरियस्मिं सीलस्मिं, वसिप्पत्तो पारमि- [R. 29]
प्पत्तो अरियस्मिं समाधिस्मिं, वसिप्पत्तो पारमिप्पत्तो अरियाय पञ्ञाय, वसिप्पत्तो पारमिप्पत्तो अरियाय विमुत्तिया पि,' सारिपुत्तमेव तं सम्मा वदमानो वदेय्य—'वसिप्पत्तो पारमिप्पत्तो अरियस्मिं सीलस्मिं, वसिप्पत्तो

हैं, उनके विषय में जान लेता है—'इस प्रकार से मुझे ये धर्म पहले न हुए उत्पन्न होते हैं, होकर प्रतिवेदित होते हैं। वह उन धर्मों में अनुपाय, अनपाय, अनासक्त··· उपरिवत्···यह निश्चय हो जाता है।

४. फिर, भिक्षुओ! यह सारिपुत्र नैवसंज्ञानासंज्ञायतन अवस्था को सर्वथाः अतिक्रान्त कर संज्ञावेदितनिरोध समाधि अवस्था में ध्यानमग्न हो साधना करता है। तब प्रज्ञा के द्वारा उसके आश्रव क्षीण हो जाते हैं वह उस समाधिबल से···उपरिवत्··· यह निश्चय हो जाता है।

२. सारिपुत्र अधिकारप्राप्त एवं पारङ्गत है

५. "भिक्षुओ! यदि कोई किसी की ठीक से समीक्षा करते हुए उसके विषय में कुछ कहना चाहे कि—'यह आर्यशील में अधिकारप्राप्त एवं पारङ्गत है, आर्यसमाधि में···आर्यविमुक्ति में अधिकृत एवं पारङ्गत है।' तो वह (समीक्षक) इस सारिपुत्र के विषय में ही यह कहेगा—'यह सारिपुत्र आर्यशील में···आर्यसमाधि में···आर्यविमुक्ति में अधिकारप्राप्त एवं पारङ्गत है।'

पारमिप्पत्तो अरियस्मिं समाधिस्मिं, वसिप्पत्तो पारमिप्पत्तो अरियाय पञ्ञाय, वसिप्पत्तो पारमिप्पत्तो अरियाय विमुत्तिया' ति। यं खो तं, [B. 79] भिक्खवे, सम्मा वदमानो वदेय्य—'भगवतो पुत्तो ओरसो मुखतो जातो धम्मजो धम्मनिम्मितो धम्मदायादो, नो आमिसदायादो' ति, सारिपुत्तमेत्र तं सम्मा वदमानो वदेय्य—'भगवतो पुत्तो ओरसो मुखतो जातो धम्मजो धम्मनिम्मितो धम्मदायादो, नो आमिसदायादो' ति। सारिपुत्तो, भिक्खवे, तथागतेन अनुत्तरं धम्मचक्कं पवत्तितं सम्मदेव अनुप्पवत्तेती" ति।

६. इदमवोच भगवा। अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति।

●

"भिक्षुओ ! यदि किसी (समीक्षक) को किसी की समीक्षा करते हुए ठीक से कहना होता है तो वह कहता है—'यह धर्म से उत्पन्न, धर्मनिर्मित, धर्म का उत्तराधिकारी है, धन का उत्तराधिकारी नहीं है' तो वह सारिपुत्र के विषय में ही यह कहता है—'यह भगवान् का औरस (मानस) पुत्र है—मुख से उत्पन्न, धर्म से उत्पन्न, धर्मनिर्मित, धर्म का उत्तराधिकारी है, धन का उत्तराधिकारी नहीं।' भिक्षुओ ! यह सारिपुत्र तथागत द्वारा प्रवर्तित धर्मचक्र को सही ढंग से अनुप्रवर्तित कर रहा है"।

भगवान् ने यह कहा। इससे सन्तुष्ट उन भिक्षुओं ने भगवान् के भाषण का अभिनन्दन किया॥

अनुपदसुत्त समाप्त॥

●

१२. छब्बिसोधनसुत्तं

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति [N. 93] जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि---"भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं।

भगवा एतदवोच---

१. चतूसु वोहारेसु विमुत्तो

"इध, भिक्खवे, भिक्खु अञ्ञं ब्याकरोति---'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया ति पजानामी' ति। तस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो भासितं नेव अभिनन्दितब्बं नप्पटिक्कोसितब्बं। अनभिनन्दित्वा अप्पटिक्कोसित्वा पञ्हो पुच्छितब्बो---'चत्तारोमे, आवुसो, वोहारा तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन सम्मदक्खाता। कतमे चत्तारो? दिट्ठे दिट्ठवादिता, सुते सुतवादिता, मुते मुतवादिता, विञ्ञाते विञ्ञातवादिता---इमे खो, आवुसो, चत्तारो [R. 30] वोहारा तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन सम्मदक्खाता। कथं जानतो पनायस्मतो कथं पस्सतो इमेसु चतूसु वोहारेसु अनुपादाय आसवेहि चित्तं विमुत्तं' ति? खीणासवस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो वुसितवतो

---

१२. षड्विशोधनसूत्र

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती के जेतवनस्थित अनाथपिण्डक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित आराम में साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ (किसी प्रसङ्ग में) भगवान् ने सभी भिक्षुओं को "भिक्षुओ" सम्बोधन कर अपने सम्मुख बुलाया। सभी भिक्षु "हाँ, भन्ते!" कहकर भगवान् के सम्मुख उपस्थित हुए। भगवान् यों बोले—

१. चार व्यवहारों से मुक्त

"भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु अपनी ज्ञा (अर्हत्पदप्राप्ति) की यों घोषणा करे—'मेरा जन्म क्षीण हो गया, मैंने धर्मसाधना पूरी कर ली, करना था सो कर लिया, अब मेरा कुछ (कर्तव्य) शेष नहीं है—ऐसा मैं जानता हूँ।' भिक्षुओ! उस भिक्षु की उस घोषणा का न तो तत्काल अभिनन्दन करना चाहिये, न तिरस्कार। ऐसा करते हुए उससे (पहले) यह प्रश्न करना चाहिये—'आयुष्मन्! उन सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा, अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध ने चार व्यवहार सही ढंग से बतलाये हैं। कौन से चार? (१) देखे हुए के विषय में 'देखा हुआ' कहना, (२) सुने हुए के विषय में ही 'सुना हुआ' कहना, (३) स्मृत (याद किये हुए) के विषय में ही 'स्मृत है' कहना, एवं (४) विज्ञात (जाने हुए) के ही विषय में 'विज्ञात है' ऐसा कहना।

कतकरणीयस्स ओहितभारस्स अनुप्पत्तसदत्थस्स परिक्खीणभवसंयोजनस्स सम्मदञ्ञाविमुत्तस्स अयमनुधम्मो होति वेय्याकरणाय---'दिट्ठे खो अहं, आवुसो, अनुपायो अनपायो अनिस्सितो अप्पटिबद्धो विप्पमुत्तो विसंयुत्तो [B. 80] विमरियादीकतेन चेतसा विहरामि। सुते खो अहं, आवुसो··· पे०···मुते खो अहं, आवुसो···पे०···विञ्ञाते खो अहं, आवुसो, अनुपायो अनपायो अनिस्सितो अप्पटिबद्धो विप्पमुत्तो विसंयुत्तो विमरियादीकतेन चेतसा विहरामि। एवं खो मे, आवुसो, जानतो एवं पस्सतो इमेसु चतूसु वोहारेसु अनुपादाय आसवेहि चित्तं विमुत्तं' ति।

२. पञ्चसु उपादानक्खन्धेसु विमुत्तो

] N. 94] २. "तस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो 'साधू' ति भासितं अभिनन्दितब्बं अनुमोदितब्बं। 'साधू' ति भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा उत्तरिं पञ्हो पुच्छितब्बो---

'पञ्चिमे, आवुसो, उपादानक्खन्धा तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन सम्मदक्खाता। कतमे पञ्च? सेय्यथीदं----रूपु-

---

आयुष्मन्! ये चार व्यवहार उन···ने सही ढंग से बताये हैं। इन चार व्यवहारों में कैसे जानते, कैसे देखते आप आयुष्मान् का चित्त आश्रवों से विमुक्त गया?" भिक्षुओ! क्षीणास्रव भिक्षु का, जो कि साधनामुक्त, कृतकरणीय, अवहितभार, अनुप्राप्तसदर्थ, परिक्षीणभवसंयोजन, सम्यक्प्रज्ञा द्वारा विमुक्त हो चुका है, उत्तर देते समय, यह अनुधर्म (स्वभाव) होता है (अर्थात् स्वभावतः वह यह कह बैठता है)— 'आयुष्मानो! मैं देखे हुए विषय में अनुपाय, अनपाय, अनासक्त, अप्रतिबद्ध, विप्रमुक्त, असंयुक्त हो अमर्यादित चित्त से साधनारत रहता हूँ; सुने हुए के विषय में ···स्मृत के विषय में···विज्ञान के विषय में···साधनारत रहता हूँ। यों आयुष्मानो! जानते-देखते मेरा चित्त इन (उपर्युक्त) चार व्यवहारों में, अनुपादान के सहारे से, विमुक्त हो गया।

२. पाँच उपादान-स्कन्धों से मुक्त

२. भिक्षुओ! उस भिक्षु का यह उत्तर "ठीक है" कहकर अभिनन्दित, अनुमोदित करना चाहिये। यों, अभिनन्दित-अनुमोदित कर उससे पुनः यह प्रश्न करना चाहिये—

"आयुष्मन्! उस सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध ने पाँच उपादानस्कन्ध बताये हैं। कौन से पाँच? (१) रूपोपादानस्कन्ध, (२) वेदनोपादानस्कन्ध,

पादानक्खन्धो, वेदनुपादानक्खन्धो, सञ्ञुपादानक्खन्धो, सङ्खारुपादानक्खन्धो विञ्ञाणुपादानक्खन्धो---इमे खो, आवुसो, पञ्चुपादानक्खन्धा तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन सम्मदक्खाता। कथं जानतो पनायस्मतो, कथं पस्सतो इमेसु पञ्चसु उपादानक्खन्धेसु अनुपादाय आसवेहि चित्तं विमुत्तं' ति ? खीणासवस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो वुसितवतो कतकरणीयस्स ओहितभारस्स अनुप्पत्तसदत्थस्स परिक्खीणभवसंयोजनस्स सम्मदञ्ञाविमुत्तस्स अयमनुधम्मो होति वेय्याकरणाय---'रूपं खो अहं, आवुसो, अबलं विरागं अनस्सासिकं ति विदित्वा ये रूपे उपायूपादाना चेतसो अधिट्ठानाभिनिवेसानुसया तेसं खया विरागा [R. 31] निरोधा चागा पटिनिस्सग्गा विमुत्तं मे चित्तं ति पजानामि। वेदनं खो अहं, आवुसो…पे०…सञ्ञं खो अहं, आवुसो…सङ्खारे खो अहं, आवुसो… विञ्ञाणं खो अहं, आवुसो, अबलं विरागं अनस्सासिकं ति विदित्वा ये विञ्ञाणे उपायूपादाना चेतसो अधिट्ठानाभिनिवेसानुसया तेसं खया विरागा निरोधा चागा पटिनिस्सगा विमुत्तं मे चित्तं ति पजानामि। एवं खो मे, आवुसो, जानतो एवं पस्सतो इमेसु पञ्चसु उपादानक्खन्धेसु अनुपादाय आसवेहि चित्तं विमुत्तं' ति।

३. छसु धातूसु विमुत्तो

३. "तस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो 'साधू' ति भासितं अभिनन्दितब्बं,

---

(३) संज्ञोपादानस्कन्ध, (४) संस्कारोपादानस्कन्ध, एवं (५) विज्ञानोपादानस्कन्ध।-आयुष्मन्! उस…पाँच उपादानस्कन्ध बताये हैं। कैसे जानते-समझते आपका चित्त, इन उपादानस्कन्धों का ग्रहण न करते हुए, आस्रवों से विमुक्त हो गया ?' भिक्षुओ! क्षीणास्रव भिक्षु का, जो कि उपरिवत्…यह अनुधर्म होता है— 'आयुष्मन्! मैं रूप को निर्बल, राग के अयोग्य, और आश्वासन न देने योग्य जानकर रूप के सम्बन्ध में जो उपाय, उपादान, चित्त के अधिष्ठान, अभिनिवेश (ममता), अनुशय (आसक्ति), तथा क्षय, विराग, निरोध, त्याग (प्रतिनिसर्ग) हैं उनसे मेरा चित्त विमुक्त हुआ—यह जानता हूँ। आयुष्मन् मैं वेदना…संज्ञा…संस्कार… विज्ञान को निर्बल, राग के अयोग्य…मेरा चित्त विमुक्त हुआ—यह जानता हूँ। यों, आयुष्मानो! जानते-समझते मेरा चित्त इन पाँच उपादानस्कन्धों से सम्बद्ध उपादानों का ग्रहण न करते हुए, आस्रवों से विमुक्त हो गया।"

३. छह धातुओं से मुक्त

३. "भिक्षुओ! उस भिक्षु का यह उत्तर…उपरिवत्…उससे पुनः यह प्रश्न करना चाहिये—

अनुमोदितब्बं। 'साधू' ति भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा उत्तरिं पञ्हो पुच्छितब्बो---

[B. 81] 'छयिमा, आवुसो, धातुयो तेन भगवता जानता पस्सता [N. 95] अरहता सम्मासम्बुद्धेन सम्मदक्खाता। कतमा छ ? पथवीधातु, आपोधातु, तेजोधातु, वायोधातु, आकासधातु, विञ्ञाणधातु—इमा खो, छ धातुयो तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन सम्मदक्खाता। कथं जानतो पनायस्मतो, कथं पस्सतो इमासु छसु धातूसु अनुपादाय आसवेहि चित्तं विमुत्तं' ति ? खीणासवस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो वुसितवतो कतकरणीयस्स ओहितभारस्स अनुप्पत्तसदत्थस्स परिक्खीणभवसंयोजनस्स सम्मदञ्ञाविमुत्तस्स अयमनुधम्मो होति वेय्याकरणाय— 'पथवीधातुं खो अहं, आवुसो, अनत्ततो उपगच्छिं, न च पथवीधातुनिस्सितं अत्तानं। ये च पथवीधातुनिस्सिता उपायूपादाना चेतसो अधिट्ठानाभिनिवेसानुसया तेसं खया विरागा निरोधा चागा पटिनिस्सग्गा विमुत्तं मे चित्तं ति पजानामि। आपोधातुं खो अहं, आवुसो···पे०···तेजोधातुं खो अहं, आवुसो···वायोधातुं खो अहं, आवुसो···आकासधातुं खो अहं, आवुसो··· विञ्ञाणधातुं खो अहं, आवुसो अनत्ततो उपगच्छिं, न च विञ्ञाणधातुनिस्सितं अत्तानं। ये च विञ्ञाणधातुनिस्सिता उपायूपादाना चेतसो अधिट्ठानाभिनिवेसानुसया तेसं खया विरागा निरोधा चागा पटिनिस्सग्गा विमुत्तं मे चित्तं ति पजानामि। एवं खो मे, आवुसो, जानतो एवं पस्सतो इमासु छसु धातुसु अनुपादाय आसवेहि चित्तं विमुत्तं' ति।

४. अज्झत्तिकबाहिरायतनेसु विमुत्तो

[R. 32] ४. "तस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो 'साधू' ति भासितं अभि-

'आयुष्मन्! उन सर्वज्ञ···ने ये छह धातु बतायी है। कौन सी छह? (१) पृथ्वीधातु, (२) आपोधातु, (३) तेजोधातु, (४) वायुधातु, (५) आकाशधातु, एवं (६) विज्ञानधातु—ये छह धातुएँ, आयुष्मन्! उन सर्वज्ञ···ने बतायी हैं। आप ने कैसे जानते, कैसे समझते इन छह धातुओं का उपादान करते हुए आस्रवों से आपका चित्त विमुक्त हो गया ?' भिक्षुओ! क्षीणास्रव भिक्षु का···यह अनुधर्म होता है—'आयुष्मन्! पृथ्वीधातु को न मैंने आत्मा के रूप में ग्रहण किया, न आत्मा को पृथ्व्याश्रित ही ग्रहण किया। पृथ्वी धातु के आश्रित जो उपाय···प्रतिनिसर्ग से मेरा चित्त विमुक्त हुआ—यह मैं जानता हूँ। आयुष्मन्! आपोधातु ··· तेजोधातु ··· वायोधातु ··· आकाशधातु···विज्ञानधातु··· आस्रवों से मेरा चित्त विमुक्त हुआ।'

नन्दितब्बं, अनुमोदितब्बं। 'साधू' ति भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा उत्तरिं पञ्हो पुच्छितब्बो।

'छ खो पनिमानि, आवुसो, अज्झत्तिकबाहिरानि आयतनानि तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन सम्मदक्खातानि। कतमानि छ? चक्खु चेव रूपा च, सोतं च सद्दा च, घानं च गन्धा च, जिव्हा च रसा च, कायो च फोट्ठब्बा च, मनो च धम्मा च—इमानि खो, आवुसो, छ अज्झत्तिकबाहिरानि आयतनानि तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन सम्मदक्खातानि। कथं जानतो पनायस्मतो, कथं पस्सतो इमेसु छसु अज्झत्तिकबाहिरेसु आयतनेसु अनुपादाय [N. 96, B. 82] आसवेहि चित्तं विमुत्तं ति? खीणासवस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो वुसितवतो कतकरणीयस्स ओहितभारस्स अनुप्पत्तसदत्थस्स परिक्खीणभवसंयोजनस्स सम्मदञ्ञाविमुत्तस्स अयमनुधम्मो होति वेय्याकरणाय—'चक्खुस्मिं, आवुसो, रूपे चक्खुविञ्ञाणे चक्खुविञ्ञाणविञ्ञातब्बेसु धम्मेसु यो छन्दो यो रागो या नन्दी या तण्हा ये च उपायूपादाना चेतसो अधिट्ठानाभिनिवेसानुसया तेसं खया विरागा निरोधा चागा पटिनिस्सग्गा विमुत्तं मे चित्तं ति पजानामि। सोतस्मिं, आवुसो, सद्दे सोतविञ्ञाणे···पे०···घाणस्मिं, आवुसो, गन्धे घाणविञ्ञाणे···जिव्हाय, आवुसो, रसे जिव्हाविञ्ञाणे···कायस्मिं, आवुसो, फोट्ठब्बे कायविञ्ञाणे···मनस्मिं, आवुसो, धम्मे मनोविञ्ञाणे मनोविञ्ञाण-

---

४. आध्यात्मिक एवं बाह्य आयतनों से मुक्त

४. "भिक्षुओ! उस भिक्षु के इस उत्तर को···पुनः प्रश्न करना चाहिये—

'आयुष्मन्! उन सर्वज्ञ···ने इन छह आध्यात्मिक एवं बाह्य आयतनों का सम्यग्व्याख्यान किया है। कौन से छह? (१) चक्षु और रूप, (२) श्रोत्र और शब्द, (३) घ्राण और गन्ध, (४) जिह्वा और रस, (५) काय और स्प्रष्टव्य, (६) मन और धर्म। आयुष्मन्! ये छह आयतन उन सर्वज्ञ···ने सम्यग्व्याख्यात किये हैं। आपने कैसे जानते कैसे समझते इन छह आयतनों से स्वचित्त को अलग हटाकर उसे उनसे विमुक्त किया है? भिक्षुओ! उन क्षीणास्रव···भिक्षु का उत्तर देने के लिये यह अनुधर्म होता है—'आयुष्मानो! चक्षु में, रूप में, चक्षु द्वारा मिलने वाले ज्ञान में और इस ज्ञान द्वारा विज्ञेय धर्मों में जो मेरा छन्दराग, तृष्णा, उपाय···अनुशय थे उनके क्षय से···मेरा चित्त विमुक्त हुआ—यह जानता हूँ। श्रोत्र, शब्द, श्रोत्रविज्ञान···घ्राण, गन्ध, घ्राणविज्ञान···जिह्वा, रस व जिह्वाविज्ञान ···काय, स्प्रष्टव्य एवं कायविज्ञान ···मन, मनोधर्म एवं मनोविज्ञान में जो छन्द,

विञ्ञातब्बेसु धम्मेसु यो छन्दो यो रागो या नन्दी या तण्हा ये च उपायूपादाना चेतसो अधिट्ठानाभिनिवेसानुसया तेसं खया विरागा निरोधा चागा पटिनिस्सग्गा विमुत्तं मे चित्तं ति पजानामि। एवं खो मे, आवुसो, जानतो एवं पस्सतो इमेसु अज्झत्तिकबाहिरेसु अनुपादाय आसवेहि चित्तं विमुत्तं' ति।

५. सब्बनिमित्तेसु समूहतअहङ्कारो

५. "तस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो 'साधू' ति भासितं अभिनन्दितब्बं अनुमोदितब्बं। साधू' ति भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा उत्तरिं पञ्हो पुच्छितब्बो—

'कथं जानतो पनायस्मतो कथं पस्सतो इमस्मिं च सविञ्ञाणके काये बहिद्धा च सब्बनिमित्तेसु अहङ्कारममङ्कारमानानुसया समूहता' ति? [R. 33] खीणासवस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो वुसितवतो कतकरणीयस्स ओहितभारस्स अनुप्पत्तसदत्थस्स परिक्खीणभवसंयोजनस्स सम्मदञ्ञाविमुत्तस्स अयमनुधम्मो होति वेय्याकरणाय—'पुब्बे खो अहं, आवुसो, अगारियभूतो समानो अविद्दसु अहोसिं। तस्स मे तथागतो वा तथागतसावको वा धम्मं देसेसि। ताहं धम्मं सुत्वा तथागते सद्धं पटिलभिं। सो तेन सद्धापटि-[N. 97] लाभेन समन्नागतो इति पटिसञ्चिक्खिं—सम्बाधो घरावासो, अब्भोकासो पब्बज्जा। नयिदं सुकरं अगारं अज्झावसता एकन्तपरिपुण्णं एकन्तपरिसुद्धं सङ्खलिखितं ब्रह्मचरियं चरितुं। यन्नूनाहं केसमस्सुं ओहारेत्वा [B. 83] कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजेय्यं ति। सो खो अहं, आवुसो, अपरेन समयेन अप्पं वा भोगक्खन्धं पहाय

राग, नन्दी, तृष्णा…अनुशय थे, उनके क्षय विराग त्याग प्रतिनिसर्ग से मेरा चित्त विमुक्त है—ऐसा मैं जानता हूँ। यों, मेरे जानते-समझते, इन छह आध्यात्मिक एवं बाह्य आयतनों में उपादान न करने से मेरा चित्त आस्रवों से मुक्त हो चुका है।"

५. सभी निमित्तों के प्रति ममत्व का विनाश

५. "भिक्षुओ! उस भिक्षु के इस उत्तर का…पुनः उससे यह प्रश्न करना चाहिये—

'आयुष्मन्! कैसे जानते, कैसे समझते आपके इस जीवित (सविज्ञानक) काय में और बाह्यस्थ आकृति आदि सब निमित्तों में अहङ्कार, ममत्व, मान, अनुशय भली प्रकार नष्ट हुए?' तब…अनुधर्म होता है—'आयुष्मानो! पहले मैं गृहस्थ

महन्तं वा भोगक्खन्धं पहाय, अप्पं वा ञातिपरिवट्टं पहाय महन्तं वा ञातिपरिवट्टं पहाय केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजिं। सो एवं पब्बजितो समानो भिक्खूनं सिक्खासाजीवसमापन्नो पाणातिपातं पहाय पाणातिपाता पटिविरतो अहोसिं निहितदण्डो निहितसत्थो, लज्जी दयापन्नो सब्बपाणभूतहितानुकम्पी विहासिं। अदिन्नादानं पहाय अदिन्नादाना पटिविरतो अहोसिं दिन्नादायी दिन्नपाटिकङ्खी, अथेनेन सुचिभूतेन अत्तना विहासिं। अब्रह्मचरियं पहाय ब्रह्मचारी अहोसिं आराचारी विरतो मेथुना गामधम्मा। मुसावादं पहाय मुसावादा पटिविरतो अहोसिं सच्चवादी सच्चसन्धो थेतो पच्चयिको अविसंवादको लोकस्स। पिसुणं वाचं पहाय पिसुणाय वाचाय पटिविरतो अहोसिं—इतो सुत्वा न अमुत्र अक्खाता इमेसं भेदाय, अमुत्र वा सुत्वा न इमेसं अक्खाता अमूसं भेदाय इति; भिन्नानं वा सन्धाता सहितानं वा अनुप्पदाता समग्गारामो समग्गरतो समग्गनन्दी समग्गकरणिं वाचं भासिता अहोसिं। फरुसं वाचं पहाय फरुसाय पटिविरतो अहोसिं; या सा वाचा नेला कण्णसुखा पेमनीया हदयङ्गमा पोरी बहुजनकन्ता बहुजनमनापा तथारूपिं [R. 34] वाचं भासिता अहोसिं। सम्फप्पलापं पहाय सम्फप्पलापा पटिविरतो अहोसिं; कालवादी भूतवादी अत्थवादी धम्मवादी विनयवादी निधानवतिं वाचं भासिता अहोसिं कालेन सापदेसं परियन्तवतिं अत्थसंहितं।

'सो बीजगामभूतगामसमारम्भा पटिविरतो अहोसिं, एकभत्तिको अहोसिं रत्तूपरतो विरतो विकालभोजना। नच्चगीतवादितविसूकदस्सना पटिविरतो अहोसिं। मालागन्धविलेपनधारणमण्डनविभूसनट्ठाना पटिविरतो अहोसिं। उच्चासयनमहासयना पटिविरतो अहोसिं। जातरूपरजतपटिग्गहणा पटिविरतो अहोसिं, आमकधञ्ञपटिग्गहणा पटिविरतो [N. 98] अहोसिं, आमकमंसपटिग्गहणा पटिविरतो अहोसिं; इत्थिकुमारिकपटिग्गहणा पटिविरतो अहोसिं, दासिदासपटिग्गहणा पटिविरतो अहोसिं, अजेळक-

---

धर्म में रहता हुआ जड़मति था। उस समय (मुझ पर अनुकम्पा कर) तथागत या तथागतश्रावक ने मुझ को धर्मोपदेश किया। उस उपदेश को सुन कर तथागत में मेरी श्रद्धा हुई। उस श्रद्धा का लाभ होते ही मुझे ध्यान में आया कि 'अरे! यह गृहस्थ धर्म तो जञ्जाल है, इसमें रहते यह सुगम नहीं है कि मैं···पूर्ववत्[1]···जो समय आने पर सबके लिये हितकर हो।'

---

१. द्र०—पीछे पृ० ५०६,५०७ (महातण्हासङ्खयसुत्त)।

[B. 84] पटिग्गहणा पटिविरतो अहोसिं, कुक्कुटसूकरपटिग्गहणा पटि-विरतो अहोसिं, हत्थिगवस्सवळवपटिग्गहणा पटिविरतो अहोसिं, खेत्तवत्थु-पटिग्गहणा पटिविरतो अहोसिं। दूतेय्यपहिणगमनानुयोगा पटिविरतो अहोसिं, कयविक्कया पटिविरतो अहोसिं, तुलाकूटकंसकूटमानकूटा पटिविरतो अहोसिं, उक्कोटनवञ्चननिकतिसाचियोगा पटिविरतो अहोसिं, छेदनवध-बन्धनविपरामोसआलोपसहसाकारा पटिविरतो अहोसिं।

'सो सन्तुट्ठो अहोसिं कायपरिहारिकेन चीवरेन, कुच्छिपरिहारिकेन पिण्डपातेन। सो येन येनेव पक्कमिं समादायेव पक्कमिं। सेय्यथापि नाम पक्खी सकुणो येन येनेव डेति सपत्तभारो व डेति; एवमेव खो अहं, आवुसो सन्तुट्ठो अहोसि कायपरिहारिकेन चीवरेन, कुच्छिपरिहारिकेन पिण्डपातेन। सो येन येनेव पक्कमिं समादायेव पक्कमिं। सो इमिना अरियेन सीलक्खन्धेन समन्नागतो अज्झत्तं अनवज्जसुखं पटिसंवेदेसिं।

६. 'सो चक्खुना रूपं दिस्वा न निमित्तग्गाही अहोसिं नानुब्यञ्जनग्गाही; यत्वाधिकरणमेनं चक्खुन्द्रियं असंवुतं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं, तस्स संवराय पटिपज्जिं; रक्खिं चक्खुन्द्रियं, [R. 35] चक्खुन्द्रिये संवरं आपज्जिं। सोतेन सद्दं सुत्वा…पे०…घानेन गन्धं घायित्वा…पे०…जिव्हाय रसं सायित्वा…पे०…कायेन फोट्ठब्बं फुसित्वा…पे०…मनसा धम्मं विञ्ञाय न निमित्तग्गाही अहोसिं नानुब्यञ्ज-नग्गाही; यत्वाधिकरणमेनं मनिन्द्रियं असंवुतं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं, तस्स संवराय पटिपज्जिं; रक्खिं मनिन्द्रियं, मनिन्द्रिये संवरं आपज्जिं। सो इमिना अरियेन इन्द्रियसंवरेन समन्नागतो अज्झत्तं अब्यासेकसुखं पटिसंवेदेसिं।

'सो अभिक्कन्ते पटिक्कन्ते सम्पजानकारी अहोसिं, आलो- [N. 99] किते विलोकिते सम्पजानकारी अहोसिं, समिञ्जिते पसारिते सम्पजानकारी

'वह मैं वृक्ष एवं प्राणियों का नाश करने से दूर रहता हूँ…पूर्ववत्[1]…डाका डालने से दूर रहता हूँ।

'वह मैं शरीर ढकनेमात्र के वस्त्र एवं पेट भरनेमात्र के भोजन से सन्तुष्ट रहता हूँ…पूर्ववत्…सुखदायी साधना में लगा रहता हूँ।'

६. 'वह मैं चक्षुरिन्द्रिय से रूप (आकार=विषय) देखकर…पूर्ववत्…आध्या-त्मिक उपेक्षा सुख का अनुभव करता हूँ।

१. द्र०—पीछे पृ० ५०७-५०८ (तण्हासङ्खयसुत्त)।

अहोसिं· सङ्घाटिपत्तचीवरधारणे सम्पजानकारी अहोसिं, असिते पीते खायिते सायिते सम्मजानकारी अहोसिं, उच्चारपस्सावकम्मे सम्पजानकारी अहोसिं, गते ठिते निसिन्ने सुत्ते जागरिते भासिते तुण्हीभावे सम्पजानकारी अहोसिं।

'सो इमिना च अरियेन सीलक्खन्धेन समन्नागतो, इमाय च [B. 85] अरियाय सन्तुट्ठिया समन्नागतो, इमिना च अरियेन इन्द्रियसंवरेन समन्नागतो, इमिना च अरियेन सतिसम्पजञ्ञेन समन्नागतो विवित्तं सेनासनं भजिं अरञ्ञं रुक्खमूलं पब्बतं कन्दरं गिरिगुहं सुसानं वनपत्थं अब्भोकासं पलालपुञ्जं। सो पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो निसीदिं पल्लङ्कं आभुजित्वा उजुं कायं पणिधाय परिमुखं सतिं उपट्ठपेत्वा। सो अभिज्झं लोके पहाय विगताभिज्झेन चेतसा विहासिं, अभिज्झाय चित्तं परिसोधेसिं। व्यापादपदोसं पहाय अब्यापन्नचित्तो विहासिं सब्बपाणभूतहितानुकम्पी, व्यापादपदोसा चित्तं परिसोधेसिं। थीनमिद्धं पहाय विगतथीनमिद्धो विहासिं आलोकसञ्ञी सतो सम्पजानो, थीनमिद्धा चित्तं परिसोधेसिं। उद्धच्चकुक्कुच्चं पहाय अनुद्धतो विहासिं अज्झत्तं, वूपसन्तचित्तो, उद्धच्चकुक्कुच्चा चित्तं परिसोधेसिं। विचिकिच्छं पहाय तिण्णविचिकिच्छो विहासिं अकथङ्कथी कुसलेसु धम्मेसु, विचिकिच्छाय चित्तं परिसोधेसिं।

७. 'सो इमे पञ्च नीवरणे पहाय चेतसो उपक्किलेसे [R. 36] पञ्ञाय दुब्बलीकरणे विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहासिं। वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं सम्पसादनं चेतसो एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं समाधिजं पीतिसुखं दुतियं झानं···पे०···ततियं झानं···पे०··· चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहासिं।

'सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते आसवानं खयञाणाय चित्तं अभि-

---

'वह मैं आने-जाने की क्रियाओं में सर्वदा स्मृतियुक्त···पूर्ववत्[1]···स्मृतिसम्प्रजन्य युक्त रहता हूँ।

'ऐसे मैंने इस आर्यजनोचित शील, सदाचार, सन्तोष और···पूर्ववत्[1]···उनमें लगे चित्त को संशयरहित कर लिया।

७. वह मैं पाँच नीवरणों का प्रहाण कर···पूर्ववत्[1]···चतुर्थध्यान की साधना में लग गया।

'सो मैं इस प्रकार चित्त के एकाग्र, परिशुद्ध, पर्यवदात, अङ्गण (विकार)

---

१. द्र०—पीछे पृ० ५०९-५१० (तण्हासङ्खयसुत्त)।

[N. 100] निन्नामेसिं। सो इदं दुक्खं ति यथाभूतं अब्भञ्ञासिं, अयं दुक्खसमुदयो ति यथाभूतं अब्भञ्ञासिं, अयं दुक्खनिरोधो ति यथाभूतं अब्भञ्ञासिं, अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा ति यथाभूतं अब्भञ्ञासिं; इमे आसवा ति यथाभूतं अब्भञ्ञासिं, अयं आसवसमुदयो ति यथाभूतं अब्भञ्ञासिं, अयं आसवनिरोधो ति यथाभूतं अब्भञ्ञासिं, अयं आसवनिरोधगामिनी पटिपदा ति यथाभूतं अब्भञ्ञासिं। तस्स मे एवं जानतो [B. 86] एवं पस्सतो कामासवा पि चित्तं विमुच्चित्थ, भवासवा पि चित्तं विमुच्चित्थ, अविज्जासवा पि चित्तं विमुच्चित्थ; विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं अहोसि। खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया ति अब्भञ्ञासिं। एवं खो मे, आवुसो, जानतो एवं पस्सतो इमस्मिं च सविञ्ञाणके काये बहिद्धा च सब्बनिमित्तेसु अहङ्कारममङ्कारमानानुसया समूहता' ति !

"तस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो 'साधू' ति भासितं अभिनन्दितब्बं अनुमोदितब्बं। 'साधू' ति भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा एवमस्स वचनीयो— [R. 37] 'लाभा नो, आवुसो, सुलद्धं नो, आवुसो, ये मयं आयस्मन्तं तादिसं सब्रह्मचारिं समनुपस्सामा" ति।

८. इदमवोच भगवा ! अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति।

रहित, आक्रोशरहित, मृदु, कर्मोपयोगी, स्थिर, निश्चलता प्राप्त और समाधियुक्त हो जाने पर आस्रवक्षय ज्ञान के लिये मैंने चित्त को झुकाया। तब मैंने 'यह दुःख है' इसका अभ्यास किया।...पूर्ववत्[1]...अब यहाँ करने के लिये कुछ शेष नहीं है—यह जान लिया। आयुष्मानो ! यों जानते-समझते इस जीवित काय में और सभी बाह्य निमित्तों में मेरे अहङ्कार, ममत्व व अनुशय विनष्ट हो गये।'

"भिक्षुओ ! उस भिक्षु के इस उत्तर का 'बहुत ठीक कहा'—कहकर अभिनन्दन-अनुमोदन करना चाहिये। और अभिनन्दन-अनुमोदन कर यों कहना चाहिये— 'हमारा बहुत लाभ हुआ, हमें बहुत लाभ मिला कि हम आप जैसे सुयोग्य सब्रह्मचारी को अपने साथ देख पा रहे हैं'।"

८. भगवान् ने यह कहा। अत्तमना भिक्षुओं ने भगवान् के भाषण का अभिनन्दन किया॥

छब्बिसोधनसुत्त समाप्त॥

---

१. द्र०—पीछे पृ० ४८ (भयभेरवसुत्त)।

१३. सप्पुरिससुत्तं

१. सप्पुरिसधम्मा असप्पुरिसधम्मा च

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति [N. 101] जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—"सप्पुरिसधम्मं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि असप्पुरिसधम्मं च। तं सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; भासिस्सामी" ति। "एवं, भन्ते" ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

(१) उच्चाकुला पब्बजितो

२. "कतमो च, भिक्खवे, असप्पुरिसधम्मो? इध, भिक्खवे, असप्पुरिसो उच्चाकुला पब्बजितो होति। सो इति पटिसञ्चिक्खति—'अहं खोम्हि उच्चाकुला पब्बजितो, इमे पनञ्ञे भिक्खू न उच्चाकुला पब्बजिता' ति। सो ताय उच्चाकुलीनताय अत्तानुक्कंसेति, परं वम्भेति। अयं भिक्खवे, असप्पुरिसधम्मो।

"सप्पुरिसो च खो, भिक्खवे, इति पटिसञ्चिक्खति—'न खो उच्चाकुलीनताय लोभधम्मा वा परिक्खयं गच्छन्ति, दोसधम्मा वा [B. 87]

---

१३. सत्पुरुषसूत्र

१. सत्पुरुष एवं असत्पुरुष के लक्षण

१. ऐसा मैने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती के अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवनराम में साधनाहेतु विराजमान थे।...पूर्ववत्... भगवान् बोले—

"भिक्षुओ! आज मैं तुम्हें सज्जन (सत्पुरुष) एवं असज्जन (असत्पुरुष) के पृथक्-पृथक् लक्षण बताऊँगा। उन्हें ध्यानपूर्वक मन लगाकर सुनो, बताता हूँ।"

"अच्छा भन्ते" कहकर भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

(१) उच्चकुल से प्रव्रजित हुआ

२. "भिक्षुओ असज्जन के लक्षण क्या है? भिक्षुओ! यहाँ कोई असज्जन उच्चकुल से घरबार छोड़, वह यों सोचे—'मैं ही उच्चकुल में प्रव्रजित हुआ हूँ, बाकी ये सब भिक्षु हीनकुल से आये हैं'। ऐसे सोच के कारण वह अपनी उच्चकुलीनता झूठा बखान करे और उसके कारण दूसरे भिक्षुओं को अपमानित करे। भिक्षुओ! यह असत्पुरुष-धर्म है।

"भिक्षुओ! परन्तु कोई सज्जन उच्चकुल से, प्रव्रजित होकर भी यों सोचे-उच्च-

परिक्खयं गच्छन्ति, मोहधम्मा वा परिक्खयं गच्छन्ति। नो चे पि उच्चा-
[R. 38] कुला पब्बजितो होति; सो च होति धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो सामी-
चिप्पटिपन्नो अनुधम्मचारी, सो तत्थ पुज्जो, सो तत्थ पासंसो' ति। सो
पटिपदं येव अन्तरं करित्वा ताय उच्चाकुलीनताय नेवत्तानुक्कंसेति, न परं
वम्भेति। अयं, भिक्खवे, सप्पुरिसधम्मो।

"पुन च परं, भिक्खवे, असप्पुरिसो महाकुला पब्बजितो होति...पे०...
महाभोगकुला पब्बजितो होति...पे०...उळारभोगकुला पब्बजितो होति।
सो इति पटिसञ्चिक्खति—'अहं खोम्हि उळारभोगकुला पब्बिजितो, इमे
[N. 102] पनञ्ञे भिक्खू न उळारभोगकुला पब्बजिता' ति। सो ताय
उळारभोगताय अत्तानुक्कंसेति, परं वम्भेति। अयं पि, भिक्खवे, असप्पु-
रिसधम्मो।

"सप्पुरिसो च खो, भिक्खवे, इति पटिसञ्चिक्खति—'न खो उळारभोग-
ताय लोभधम्मा वा परिक्खयं गच्छन्ति, दोषधम्मा वा परिक्खयं
गच्छन्ति, मोहधम्मा वा परिक्खयं गच्छन्ति। नो चे पि उळारभोगकुला
पब्बजितो होति; सो च होति धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो सामीचिप्पटिपन्नो
अनुधम्मचारी, सो तत्थ पुज्जो, सो तत्थ पासंसो' ति। सो पटिपदं येव
अन्तरं करित्वा ताय उळारभोगताय नेवत्तानुक्कंसेति, न परं वम्भेति।
अयं पि, भिक्खवे, सप्पुरिसधम्मो।

कुल में उत्पन्न होने मात्र से मनुष्य के लोभ, द्वेष एवं मोह धर्म नष्ट नहीं हुआ करते। विपरीत इसके, यदि कोई उच्चकुल से प्रव्रजित न भी हुआ हो, पर वह धर्म-मार्ग व सत्य-मार्ग पर चलने वाला हो, धर्मानुसार आचरण करने वाला हो तो वही पूज्य है, प्रशंसनीय है'। वह धर्मप्राप्ति (प्रतिपदा) के विषय में यों चिन्तन करते हुए न तो कहीं अपनी उच्चकुलीनता का झूठा बखान करता है, न दूसरे भिक्षुओं को अपमानित करता है। भिक्षुओ! यह 'सत्पुरुष' कहलाता है।

"और फिर, भिक्षुओ! कोई असज्जन बड़े खानदान को, महाधनिक कुल को, अच्छे खाते-पीते कुल को छोड़ प्रव्रजित हुआ हो, वह अपने बारे में यों चिन्तन करने लगे—'मैं ही...दूसरे भिक्षुओं को नीचा दिखाता है, भिक्षुओ! वह 'असत्पुरुष' कहलाता है।

"भिक्षुओ! उधर सत्पुरुष सोचता है—बड़े खानदान में...पैदा हो जाने भर से लोभ द्वेष एवं मोह धर्म क्षीण नहीं हुआ करते। नीच खानदान में...पैदा होकर भी...उपरिवत्...न अपमानित करता है। भिक्षुओ! वह 'सत्पुरुष कहलाता है।

(२) ञातो होति

३. "पुन च परं, भिक्खवे, असप्पुरिसो ञातो होति यसस्सी। सो इति पटिसञ्चिक्खति—'अहं खोम्हि ञातो यसस्सी, इमे पनञ्ञे भिक्खू अप्पञ्ञाता अप्पेसक्खा' ति। सो तेन ञातत्तेन अत्तानुक्कंसेति, परं वम्भेति। अयं पि, भिक्खवे, असप्पुरिसधम्मो।

"सप्पुरिसो च खो, भिक्खवे, इति पटिसञ्चिक्खति—'न खो ञातत्तेन लोभधम्मा वा परिक्खयं गच्छन्ति, दोसधम्मा वा परिक्खयं गच्छन्ति, मोहधम्मा वा परिक्खयं गच्छन्ति। नो चे पि ञातो होति यसस्सी; सो च होति धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो सामीचिप्पटिपन्नो अनुधम्मचारी, सो तत्थ पुज्जो, सो तत्थ पासंसो' ति। सो पटिपदं येव अन्तरं करित्वा तेन ञातत्तेन नेवत्तानुक्कंसेति, न परं वम्भेति। अयं पि, भिक्खवे, सप्पुरिसधम्मो।

(३) लाभी होति

४. "पुन च परं, भिक्खवे, असप्पुरिसो लाभी होति चीवर- [R. 39] पिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारानं। सो इति पटिसञ्चिक्खति—'अहं खोम्हि लाभी चीवरपिण्डपातसेनासनगिलान- [B. 88] प्पच्चयभेसज्जपरिक्खारानं, इमे पनञ्ञे भिक्खू न लाभिनो चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारानं' ति। सो तेन लाभेन अत्तानुक्कंसेति, परं वम्भेति। अयं पि, भिक्खवे, असप्पुरिसधम्मो।

---

(२) प्रसिद्धिप्राप्त होना

३. "फिर भिक्षुओ! कोई असत्पुरुष लोक में प्रसिद्ध एवं यशस्वी होकर घर छोड़ बेघर हो प्रव्रजित हो जाय, तब वह यह सोचे—"मै तो लोक में पहले से ही प्रसिद्ध हूँ और मेरा यश भी समाज में पहले से फैला हुआ है। ये अन्य भिक्षु जिन्हें कोई जानता भी नहीं, मुझसे हीन हैं।" वह अपनी इस विज्ञानता (प्रसिद्धि) के कारण अभिमान करता है, दूसरे भिक्षुओं को अपमानित करता रहता है। भिक्षुओं! यह 'असत्पुरुष' कहलाता है।

"इसके विपरीत सत्पुरुष अपनी इस प्रसिद्धि के कारण···न दूसरे भिक्षुओं को नीचा दिखाता है। भिक्षुओ! यह 'सत्पुरुष' कहलाता है।

(३) चीवर आदि का लाभी होना

४. "फिर, भिक्षुओ! कोई असज्जन लोक में चीवर-पिण्डपात आदि, अन्य भिक्षुओं की अपेक्षा, अधिक पा लेता है। (तब इस अधिक प्राप्ति के अभिमानवश) वह अपनी···। यह 'असत्पुरुष'···।

[N. 103] "सप्पुरिसो च खो, भिक्खवे, इति पटिसञ्चिक्खति—'न खो लाभेन लोभधम्मा वा परिक्खयं गच्छन्ति, दोसधम्मा वा परिक्खयं गच्छन्ति, मोहधम्मा वा परिक्खयं गच्छन्ति। नो चे पि लाभी होति चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारानं; सो च होति धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो सामीचिप्पटिपन्नो अनुधम्मचारी, सो तत्थ पुज्जो, सो तत्थ पासंसो' ति। सो पटिपदं येव अन्तरं करित्वा तेन लाभेन नेवत्तानुक्कंसेति, न परं वम्भेति। अयं पि, भिक्खवे, सप्पुरिसधम्मो।

(४) बहुस्सुतो होति

५. "पुन च परं, भिक्खवे, असप्पुरिसो बहुस्सुतो होति। सो इति पटिसञ्चिक्खति—'अहं खोम्हि बहुस्सुतो, इमे पनञ्ञे भिक्खू न बहुस्सुता' ति। सो तेन बाहुसच्चेन अत्तानुक्कंसेति, परं वम्भेति। अयं पि, भिक्खवे, असप्पुरिसधम्मो।

"सप्पुरिसो च खो, भिक्खवे, इति पटिसञ्चिक्खति—'न खो बाहुसच्चेन लोभधम्मा वा परिक्खयं गच्छन्ति, दोसधम्मा वा परिक्खयं गच्छन्ति, मोहधम्मा वा परिक्खयं गच्छन्ति। नो चे पि बहुस्सुतो होति; सो च होति धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो सामीचिप्पटिपन्नो अनुधम्मचारी, सो तत्थ पुज्जो, सो तत्थ पासंसो' ति। सो पटिपदं येव अन्तरं करित्वा तेन बाहुसच्चेन नेवत्तानुक्कंसेति, न परं वम्भेति। अयं पि, भिक्खवे, सप्पुरिसधम्मो।

(५) विनयधरो होति

६. "पुन च परं, भिक्खवे, असप्पुरिसो विनयधरो होति। सो इति पटिसञ्चिक्खति—'अहं खोम्हि विनयधरो, इमे पनञ्ञे भिक्खू न विनयधरा' ति। सो तेन विनयधरत्तेन अत्तानुक्कंसेति, परं वम्भेति। अयं पि, भिक्खवे, असप्पुरिसधम्मो।

"भिक्षुओ) जो सज्जन...दूसरे भिक्षुओं का अपमान भी नहीं करता। अतः वह 'सत्पुरुष' कहलाता है।

(४) बहुश्रुत होना

५. "फिर, भिक्षुओ ! कोई असज्जन बहुश्रुत (गुरुमुख से अधिक शास्त्रों का श्रोता) हो...दूसरों को हीन दृष्टि से देखता है...।

"भिक्षुओ ! जो सज्जन...दूसरों को हीन दृष्टि से भी नहीं देखता...।

(५) विनयधर होना

६. "फिर, भिक्षुओ ! कोई असज्जन अन्यों की अपेक्षा विनय (भगवदुपदिष्ट

"सप्पुरिसो च खो, भिक्खवे, इति पटिसञ्चिक्खति—'न खो विनय-धरत्तेन लोभधम्मा वा परिक्खयं गच्छन्ति, दोसधम्मा वा परि- [R. 40] क्खयं गच्छन्ति, मोहधम्मा वा परिक्खयं गच्छन्ति। नो चे पि विनयधरो होति; सो च होति धम्मानुधम्मटिप्पन्नो सामीचिप्पटिपन्नो अनुधम्मचारी, सो तत्थ पुज्जो, सो तत्थ पासंसो' ति। सो पटिपदं येव अन्तरं करित्वा तेन विनयधरत्तेन नेवत्तानुक्कंसेति, न परं वम्भेति। अयं पि भिक्खवे, सप्पुरिसधम्मो।

(६) धम्मकथिको होति

७. "पुन च परं, भिक्खवे, असप्पुरिसो धम्म- [N. 104, B. 89] कथिको होति। सो इति पटिसञ्चिक्खति—'अहं खोम्हि धम्मकथिको, इमे पनञ्ञे भिक्खू न धम्मकथिका' ति। सो तेन धम्मकथिकत्तेन अत्तानुक्कंसेति, परं वम्भेत्ति। अयं पि, भिक्खवे, असप्पुरिसधम्मो।

"सप्पुरिसो च खो, भिक्खवे, इति पटिसञ्चिक्खति—'न खो धम्मकथिकत्तेन लोभधम्मा वा परिक्खयं गच्छन्ति, दोसधम्मा वा परिक्खयं गच्छन्ति, मोहधम्मा वा परिक्खयं गच्छन्ति। नो चे पि धम्मकथिको होति; सो न होति धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो सामीचिप्पटिपन्नो अनुधम्मचारी, सो तत्थ पुज्जो, सो तत्थ पासंसो' ति। सो पटिपदं येव अन्तरं करित्वा तेन धम्मकथिकत्तेन नेवत्तानुक्कंसेति, न परं वम्भेति। अयं पि, भिक्खवे, सप्पुरिसधम्मो।

(७) धुतङ्गधरो होति

८. "पुन च परं, भिक्खवे, असप्पुरिसो आरञ्ञको होति। सो इति पटिसञ्चिक्खति—'अहं खोम्हि आरञ्ञको, इमे पनञ्ञे भिक्खू न आर-

---

शिक्षापदों) का अधिक जानकार होता है। तब वह यह सोचता है—'मैं ही इनकी अपेक्षा अधिक विनयधर···।

"परन्तु कोई सज्जन अधिक विनयधर होते हुए भी···दूसरों को हीन दृष्टि से नहीं देखता···।

(६) धर्मकथिक होना

७. "फिर, भिक्षुओ ! कोई असज्जन अन्यों की अपेक्षा धर्म का अच्छा व्याख्याता (धर्मकथिक) हो, उसे यह···।

"दूसरी तरफ, भिक्षुओ ! कोई सज्जन अच्छा धर्मकथिक होते हुए भी···दूसरों को हीन दृष्टि से नहीं देखता···।

ञ्ञका' ति। सो तेन आरञ्ञकत्तेन अत्तानुक्कंसेति, परं वम्भेति। अयं पि, भिक्खवे, असप्पुरिसधम्मो।

"सप्पुरिसो च खो, भिक्खवे, इति पटिसञ्चिक्खति—'न खो, आरञ्ञकत्तेन लोभधम्मा वा परिक्खयं गच्छन्ति, दोसधम्मा वा परिक्खयं गच्छन्ति, मोहधम्मा वा परिक्खयं गच्छन्ति। नो चे पि आरञ्ञको होति; सो च होति धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो सामीचिप्पटिपन्नो अनुधम्मचारी, सो तत्थ पुज्जो, सो तत्थ पासंसो' ति। सो पटिपदं येव अन्तरं करित्वा तेन आरञ्ञकत्तेन नेवत्तानुक्कंसेति, न परं वम्भेति। अयं पि, भिक्खवे, सप्पुरिसधम्मो।

९. "पुन च परं, भिक्खवे, असप्पुरिसो पंसुकूलिको होति। सो इति [R. 41] पटिसञ्चिक्खति—'अहं खोम्हि पंसुकूलिको, इमे पनञ्ञे भिक्खू न पंसुकूलिका' ति। सो तेन पंसुकूलिकत्तेन अत्तानुक्कंसेति, परं वम्भेति। अयं पि, भिक्खवे, असप्पुरिसधम्मो।

"सप्पुरिसो च खो भिक्खवे, इति पटिसञ्चिक्खति—'न खो पंसुकूलिकत्तेन लोभधम्मा वा परिक्खयं गच्छन्ति, दोसधम्मा वा परिक्खयं गच्छन्ति, [N. 105] मोहधम्मा वा परिक्खयं गच्छन्ति। नो चे पि पंसुकूलिको होति; सो च होति धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो सामीचिप्पटिपन्नो अनुधम्मचारी, सो तत्थ पुज्जो, सो तत्थ पासंसो' ति। सो पटिपदं येव अन्तरं करित्वा तेन पंसुकूलिकत्तेन नेवत्तानुक्कंसेति, न परं वम्भेति। अयं पि, भिक्खवे सप्पुरिसधम्मो।

[B. 90] १०. "पुन च परं, भिक्खवे, असप्पुरिसो पिण्डपातिको होति। सो इति पटिसञ्चिक्खति--'अहं खोम्हि पिण्डपातिको, इमे,

---

(७) धुताङ्गधर होना

८. "फिर भिक्षुओ ! कोई असत्पुरुष अन्यों की अपेक्षा अधिक आरण्यकधुताङ्ग धारण किये हो उसे वह···।

"दूसरी तरफ कोई सत्पुरुष अच्छा आरण्यक धुताङ्ग होते हुए भी···।

९. "फिर, भिक्षुओ ! कोई असत्पुरुष अन्यों की अपेक्षा अधिक पांसुकूलिक धुताङ्ग···।

"दूसरी तरफ कोई सत्पुरुष पांसुकूलिकधुताङ्ग···।

१०. "फिर, भिक्षुओ ! कोई असज्जन अन्यों की अपेक्षा अधिक पिण्डपातिक धुताङ्ग··· ।

पनञ्ञे भिक्खू न पिण्डपातिका' ति। सो तेन पिण्डपातिकत्तेन अत्तानुक्कंसेति, परं वम्भेति। अय पि, भिक्खवे, असप्पुरिसधम्मो।

"सप्पुरिसो च खो, भिक्खवे, इति पटिसञ्चक्खति—'न खो पिण्डपातिकत्तेन लोभधम्मा वा परिक्खयं गच्छन्ति, दोसधम्मा वा परिक्खयं गच्छन्ति, मोहधम्मा वा परिक्खयं गच्छन्ति। नो चे पि पिण्डपातिको होति; सो च होति धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो सामीचिप्पटिपन्नो अनुधम्मचारी, सो तत्थ पुज्जो, सो तत्थ पासंसो' ति। सो पटिपदं येव अन्तरं करित्वा तेन पिण्डपातिकत्तेन नेवत्तानुक्कंसेति, न परं वम्भेति। अयं पि, भिक्खवे, सप्पुरिसधम्मो।

११. "पुन च परं, भिक्खवे, असप्पुरिसो रुक्खमूलिको होति। सो इति पटिसञ्चिक्खति—'अहं खोम्हि रुक्खमूलिको, इमे पनञ्ञे भिक्खू न रुक्खमूलिका' ति। सो तेन रुक्खमूलिकत्तेन अत्तानुक्कंसेति, परं वम्भेति। अयं पि, भिक्खवे, असप्पुरिसधम्मो।

"सप्पुरिसो च खो, भिक्खवे, इति पटिसञ्चिक्खति—'न खो रुक्खमूलिकत्तेन लोभधम्मा वा परिक्खयं गच्छन्ति, दोसधम्मा वा परिक्खयं गच्छन्ति, मोहधम्मा वा परिक्खयं गच्छन्ति। नो चे पि रुक्खमूलिको होति; सो च होति धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो सामीचिप्पटिपन्नो अनुधम्मचारी, सो तत्थ पुज्जो, सो तत्थ पासंसो' ति। सो पटिपदं येव अन्तरं करित्वा [R. 42] तेन रुक्खमूलिकत्तेन नेवत्तानुक्कंसेति, न परं वम्भेति। अयं पि, भिक्खवे, सप्पुरिसधम्मो।

"पुन च परं, भिक्खवे, असप्पुरिसो सोसानिको होति…पे०…अब्भोकासिको होति…पे०…नेसज्जिको होति…पे०…यथासन्थतिको होति…पे० …एकासनिको होति। सो इति पटिसञ्चिक्खति—'अहं खोम्हि एका-

---

"दूसरी तरफ कोई सज्जन अन्यों की अपेक्षा…।

११. "फिर, भिक्षुओ! कोई असज्जन अन्यों की अपेक्षा अधिक वृक्षमूलिक धुताङ्ग…।

"दूसरी तरफ कोई सज्जन अन्यापेक्षया…।

"और फिर भिक्षुओ! कोई असज्जन अन्यों की अपेक्षा अधिक श्माशानिक धुताङ्ग…आभ्यवकाशिक धुताङ्ग…नैषद्यिक धुताङ्ग…यथासंस्थितक धुताङ्ग…ऐकासनिक धुताङ्ग…।

[N. 106] सनिको, इमे पनञ्ञे भिक्खू न एकासनिका' ति। सो तेन एकासनिकत्तेन अत्तानुक्कंसेति, परं वम्भेति। अयं पि, भिक्खवे, असप्पुरिसधम्मो।

"सप्पुरिसो च खो, भिक्खवे, इति पटिसञ्चिक्खति—'न खो एकासनिकत्तेन लोभधम्मा वा परिक्खयं गच्छन्ति, दोसधम्मा वा परिक्खयं गच्छन्ति, मोहधम्मा वा परिक्खयं गच्छन्ति। नो चे पि एकासनिको होति; सो च होति धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो सामीचिप्पटिपन्नो अनुधम्मचारी, सो तत्थ पुज्जो, सो तत्थ पासंसो' ति। सो पटिपदं येव अन्तरं करित्वा तेन एका-
[B. 91] सनिकत्तेन नेवत्तानुक्कंसेति न परं वम्भेति। अयं पि, भिक्खवे, सप्पुरिसधम्मो।

(८) झानलाभी होति

१२. "पुन च परं, भिक्खवे, असप्पुरिसो विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सो इति पटिसञ्चिक्खति—'अहं खोम्हि पठमज्झानसमापत्तिया लाभी, इमे पनञ्ञे भिक्खू पठमज्झानसमापत्तिया न लाभिनो' ति। सो ताय पठमज्झानसमापत्तिया अत्तानुक्कंसेति, परं वम्भेति। अयं पि, भिक्खवे, असप्पुरिसधम्मो।

"सप्पुरिसो च खो, भिक्खवे, इति पटिसञ्चिक्खति—पठमज्झानसमापत्तिया पि खो अतम्मयता वुत्ता भगवता। येन येन हिं मञ्ञन्ति ततो तं
[R. 43] होति अञ्ञथा' ति। सो अतम्मयतञ्ञेव अन्तरं करित्वा ताय पठमज्झानसमापत्तिया नेवत्तानुक्कंसेति, न परं वम्भेति। अयं पि, भिक्खवे, सप्पुरिसधम्मो।

"दूसरी तरफ कोई सज्जन···भिक्षुओ! यह सत्पुरुष धर्म है।

(८) ध्यानलाभी होना

१२. "फिर भिक्षुओ! कोई असत्पुरुष कामभोगों से रहित···प्रथम ध्यान की अवस्था में अन्यों से अधिक पहुँच कर···। उधर कोई दूसरा सत्पुरुष···साधना करता है। पर वहाँ वह सोचता है—'प्रथम ध्यान की प्राप्ति के बाद भी भगवान् ने अतन्मयता की बात कही है। जो जो हम सोचते हैं उससे वह अन्यथा (उलटा) ही होता है।' वह उस अतन्मयता का ध्यान कर, प्रथम ध्यान की प्राप्ति से न अपने में अभिमान करता है, न इस कारण दूसरों को हीन दृष्टि से देखता है। भिक्षुओं यह है सत्पुरुष धर्म।

"पुन च परं, भिक्खवे, असप्पुरिसो वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं सम्पसादनं चेतसो एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं समाधिजं पीतिसुखं दुतियं झानं…पे०…ततियं झानं…चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सो इति पटिसञ्चिक्खति -'अहं खोम्हि चतुत्थज्झानसमापत्तिया लाभी, इमे पनञ्ञे भिक्खू चतुत्थज्झानसमापत्तिया न लाभिनो' ति। सो ताय चतुत्थ-ज्झानसमापत्तिया अत्तानुक्कंसेति, परं वम्भेति। अयं पि, भिक्खवे, असप्पु-रिसधम्मो।

"सप्पुरिसो च खो, भिक्खवे, इति पटिसञ्चिक्खति—'चतुत्थज्झानसमा-पत्तिया पि खो अतम्मयता वुत्ता भगवता। येन येन हि [N. 107] मञ्ञन्ति ततो तं होति अञ्ञथा' ति। सो अतम्मयतञ्ञेव अन्तरं करित्वा ताय चतुत्थज्झानसमापत्तिया नेवत्तानुक्कंसेति, न परं वम्भेति। अयं पि, भिक्खवे, सप्पुरिसधम्मो।

"पुन च परं, भिक्खवे, असप्पुरिसो सब्बसो रूपसञ्ञानं समतिक्कमा पटिघसञ्ञानं अत्थङ्गमा नानत्तसञ्ञानं अमनसिकारा 'अनन्तो आकासो' ति आकासानञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति। सो इति पटिसञ्चिक्खति—'अहं खोम्हि आकासानञ्चायतनसमापत्तिया लाभी, इमे पनञ्ञे भिक्खू आकासानञ्चायतनसमापत्तिया न लाभिनो' ति। सो ताय आकासा-नञ्चायतनसमापत्तिया अत्तानुक्कंसेति, परं वम्भेति। अयं पि, भिक्खवे, असप्पुरिसधम्मो।

"सप्पुरिसो च खो, भिक्खवे, इति पटिसञ्चिक्खति—'आका- [B. 92] सानञ्चायतनसमापत्तिया पि खो अतम्मयता वुत्ता भगवता। येन येन हि मञ्ञन्ति ततो तं होति अञ्ञथा' ति। सो अतम्मयतञ्ञेव अन्तरं करित्वा ताय आकासानञ्चायतनसमापत्तिया नेवत्तानुक्कंसेति, न परं वम्भेति। अयं पि, भिक्खवे, सप्पुरिसधम्मो।

"पुन च परं, भिक्खवे, असप्पुरिसो सब्बसो आकासानञ्चायतनं समति-

"फिर कोई असत्पुरुष वितर्क-विचारों के शान्त होने से…द्वितीय ध्यान की अवस्था में…।

"दूसरी तरफ कोई सत्पुरुष…।

"फिर कोई असत्पुरुष… तृतीयध्यान…।

"और कोई सत्पुरुष…पूर्ववत्…।

"कोई असत्पुरुष…? चतुर्थध्यान…।

और कोई सत्पुरुष…पूर्ववत्…।

क्कम्म 'अनन्तं विञ्ञाणं' ति विञ्ञाणञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति। सो इति पटिसञ्चिक्खति—'अहं खोम्हि विञ्ञाणञ्चायतनसमापत्तिया लाभी, इमे पनञ्ञे भिक्खू विञ्ञाणञ्चायतनसमापत्तिया न [R. 44] लाभिनो' ति। सो ताय विञ्ञाणञ्चायतनसमापत्तिया अत्तानुक्कंसेति, परं वम्भेति। अयं पि, भिक्खवे, असप्पुरिसधम्मो।

"सप्पुरिसो च खो, भिक्खवे, इति पटिसञ्चिक्खति—'विञ्ञाणञ्चायतनसमापत्तिया पि खो अतम्मयता वुत्ता भगवता। येन येन हि मञ्ञन्ति ततो तं होति अञ्ञथा' ति। सो अतम्मयतञ्ञेव अन्तरं करित्वा ताय विञ्ञाणञ्चायतनसमापत्तिया नेवत्तानुक्कंसेति, न परं वम्भेति। अयं पि, भिक्खवे, सप्पुरिसधम्मो।

"पुन च परं, भिक्खवे, असप्पुरिसो सब्बसो विञ्ञाणञ्चायतनं समतिक्कम्म 'नत्थि किञ्ची' ति आकिञ्चञ्ञायातनं उपसम्पज्ज विहरति। सो इति पटिसञ्चिक्खति—'अहं खोम्हि आकिञ्चञ्ञायतनसमापत्तिया [N. 108] लाभी, इमे पनञ्ञे भिक्खू आकिञ्चञ्ञायतनसमापत्तिया न लाभिनो' ति। सो ताय आकिञ्चञ्ञायतनसमापत्तिया अत्तानुक्कंसेति, परं वम्भेति। अयं पि, भिक्खवे, असप्पुरिसधम्मो।

"सप्पुरिसो च खो, भिक्खवे, इति पटिसञ्चिक्खति—'आकिञ्चञ्ञायतनसमापत्तिया पि खो अतम्मयता वुत्ता भगवता। येन येन हि मञ्ञन्ति ततो तं होति अञ्ञथा' ति। सो अतम्मयतञ्ञेव अन्तरं करित्वा ताय आकिञ्चञ्ञायतनसमापत्तिया नेवत्तानुक्कंसेति, न परं वम्भेति। अयं पि भिक्खवे, सप्पुरिसधम्मो।

"पुन च परं, भिक्खवे, असप्पुरिसो सब्बसो आकिञ्चञ्ञायतनं समतिक्कम्म नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहरति। सो इति पटिसञ्चि-

---

"फिर भिक्षुओ! कोई असत्पुरुष रूपसंज्ञा का सर्वथा परित्याग कर···आकाशानन्त्यायतन को भी सर्वथा अतिक्रान्त कर 'विज्ञान अनन्त है' यह समझ कर विज्ञानान्त्यायतन का···।

"और कोई सत्पुरुष···पूर्ववत्···।

"और भिक्षुओ! कोई असत्पुरुष विज्ञानानन्त्यायतन को भी सर्वथा अतिक्रान्त कर 'कुछ भी नहीं है' ऐसा मानता हुआ आकिञ्चन्यायतन की अवस्था तक··· पूर्ववत्···।

"और कोई सत्पुरुष···पूर्ववत्···।

क्खति—'अहं खोम्हि नेवसञ्ञानासञ्ञायतनसमापत्तिया लाभी, इमे पनञ्ञे भिक्खू नेवसञ्ञानासञ्ञायतनसमापत्तिया न लाभिनो' ति। सो ताय नेवसञ्ञानासञ्ञायतनसमापत्तिया अत्तानुक्कंसेति, परं [B. 93] वम्भेति। अयं पि, भिक्खवे, असप्पुरिसधम्मो।

"सप्पुरिसो च खो, भिक्खवे, इति पटिसञ्चिक्खति—'नेवसञ्ञानासञ्ञायतनसमापत्तिया पि खो अतम्मयता वुत्ता भगवता। येन येन हि मञ्ञन्ति ततो तं होति अञ्ञथा' ति। सो अतम्मयतञ्ञेव अन्तरं करित्वा ताय नेवसञ्ञानासञ्ञायतनसमापत्तिया नेवत्तानुक्कंसेति, न परं वम्भेति। अयं पि, भिक्खवे, सप्पुरिसधम्मो।

२. खीणासवो भिक्खु

१३. "पुन च परं, भिक्खवे, सप्पुरिसो सब्बसो नेवसञ्ञा- [R. 45] नासञ्ञायतनं समतिक्कम्म सञ्ञावेदयितनिरोधं उपसम्पज्ज विहरति। पञ्ञाय चस्स दिस्वा आसवा परिक्खीणा होन्ति। अयं, भिक्खवे, भिक्खु न किञ्चि मञ्ञति, न कुहिञ्चि मञ्ञति, न केनचि मञ्ञती" ति।

१४. इदमवोच भगवा। अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति॥

⊙

"और फिर, भिक्षुओ! कोई असत्पुरुष इस आकिञ्चन्यायतन को भी समतिक्रान्त कर नैवसंज्ञानासंज्ञायतन की अवस्था...पूर्ववत्...।

"और कोई सत्पुरुष...पूर्ववत्...यह 'सत्पुरुष' कहलाता है।

१३. "और फिर, भिक्षुओ! वह सत्पुरुष नैवसंज्ञानासंज्ञायतन को भी समतिक्रान्त कर संज्ञावेदयितनिरोध समाधि की अवस्था में पहुँचकर साधना करता है। तब प्रज्ञा से उसे देख उसके कितने ही (बाकी बचे) आस्रव (चित्तमल) क्षीण हो जाते हैं। भिक्षुओ! (इस अवस्था में पहुँच कर) वह भिक्षु न कहीं कुछ मान करता है, न कहीं किसी के साथ मान करता है।"

१४. भगवान् ने यह कहा। उन भिक्षुओं ने सन्तुष्ट हो भगवान् के भाषण का अभिनन्दन किया॥

सप्पुरिससुत्त समाप्त॥

○

१४. सेवितब्बासेवितब्बसुत्तं

[N. 109] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तत्र खो भगवा भिक्खु आमन्तेसि— "भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच---

१. भगवता सङ्खित्तेन भासितं

"सेवितब्बासेवितब्बं वो, भिक्खवे, धम्मपरियायं देसेस्सामि। तं सुणाथ, साधुकं मनसिकरोथ; भासिस्सामी" ति। "एवं, भन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं।

भगवा एतदवोच—"कायसमाचारं पाहं, भिक्खवे, दुविधेन वदामि— सेवितब्ब पि, असेवितब्बं पि; त च अञ्ञमञ्ञं कायसमाचारं। वची-समाचारं पाहं, भिक्खवे, दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि, असेवितब्बं पि; तं च अञ्ञमञ्ञं वचीसमाचारं। मनोसमाचारं पाहं, भिक्खवे, दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि, असेवितब्बं पि; तं च अञ्ञमञ्ञं मनोसमाचारं। चित्तुप्पादं पाहं, भिक्खवे, दुविधेन वदामि--सेवितब्बं पि, असेवितब्बं पि;
[R. 46] तं च अञ्ञमञ्ञं चित्तुप्पादं। सञ्ञापटिलाभं पाहं, भिक्खवे,
[B. 94] दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि, असेवितब्बं पि; तं च अञ्ञ-

---

१४. सेवितव्यासवितव्यसूत्र

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित, श्रावस्ती नगरी स्थित जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ भगवान् ने... भिक्षु एकत्र हुए। भगवान् (उन से) यों बोले—"भिक्षुओ ! मैं तुम्हें आज सेवितव्य (व्यवहार्य) एवं असेवितव्य (अव्यवहार्य) बातों का उपदेश करूँगा, उसे ध्यानपूर्वक सुनो, मैं बता रहा हूँ। "अच्छा भन्ते !" कह कर भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

१. भगवान् द्वारा संक्षिप्त उपदेश

भगवान् बोले—"भिक्षुओ ! (१) मैं कायकर्मों को दो भागों में विभक्त कर उपदेश करता हूँ। उन में से कुछ सेवनीय (व्यवहार में लाने योग्य) हैं, कुछ असेवनीय (व्यवहार में न लाने योग्य)। ये दोनों ही कायकर्म एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। (इनका एक दूसरे से कोई मेल नहीं है)। (२) वाक्कर्म को भी दो... (३) मनःकर्म को भी दो भागों में...। भिक्षुओ ! मैं (४) चित्तोत्पाद (विचारों की उत्पत्ति) को भी सेवनीय-असेवनीय भेद से दो भागों में...(५) संज्ञा-

मञ्ञं सञ्ञापटिलाभं। दिट्ठिपटिलाभं पाहं, भिक्खवे, दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि, असेवितब्बं पि; तं च अञ्ञमञ्ञं दिट्ठिपटिलाभं। अत्तभावपटिलाभं पाहं, भिक्खवे, दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि, असेवितब्बं पि; तं च अञ्ञमञ्ञं अत्तभावपटिलाभं" ति।

२. सारिपुत्तेन अत्थो वित्थारितो

२. एवं वुत्ते, आयस्मा सारिपुत्तो भगवन्तं एतदवोच--"इमस्स खो अहं, भन्ते, भगवता सङ्खित्तेन भासितस्स, वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स, एवं वित्थारेन अत्थं आजानामि--

३. "'कायसमाचारं पाहं, भिक्खवे, दुविधेन वदामि--सेवितब्बं पि, असेवितब्बं पि; तं च अञ्ञमञ्ञं कायसमाचारं' ति इति [N. 110] खो पनेतं वुत्तं भगवता। किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं? यथारूपं, भन्ते कायसमाचारं सेवतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ति, एवरूपो कायसमाचारो न सेवितब्बो; यथारूपं च खो, भन्ते, कायसमाचारं सेवतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, एवरूपो कायसमाचारो सेवितब्बो।

४. "कथंरूपं, भन्ते, कायसमाचारं सेवतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति,

---

प्रतिलाभ को... दृष्टिधारणप्रतिलाभ को... आत्मभावप्रतिलाभ (शरीरलाभ) को भी मैं सेवनीय-असेवनीय भेद से दो भागों में विभक्त कर बताता हूं। ये एक दूसरे से सर्वथा भिन्न (अन्योन्य) हैं।"

२. सारिपुत्र द्वारा भगवत्कृत संक्षिप्त उपदेश का विस्तार

२. (भगवान् द्वारा) ऐसा कहे जाने पर, आयुष्मान् सारिपुत्र ने भगवान् से यों निवेदन किया—"भन्ते! मैं आपके इस कथन का, जो कि आपने संक्षेप (थोड़े) में ही कह दिया, विस्तार से नहीं कहा—विस्तृत अर्थ यों जानता हूँ।

३. "'भिक्षुओ! मैं कायकर्मों को दो भागों में विभक्त कर उपदेश करता हूँ, उन में कुछ सेवनीय होते हैं, कुछ असेवनीय। इन द्विधा विभक्त कर्मों का परस्पर कोई मेल नहीं है'—आपने यह जो कहा, किस हेतु से कहा? जिस कायकर्म के सेवन (आचरण) से अकुशल धर्म बढते हों, और कुशल धर्म क्षीण होते हों, ऐसे कायकर्मों का आचरण नहीं करना चाहिये। जिन कायकर्मों के आचरण से कुशल धर्म बढ़ते हों और अकुशल धर्मों का क्षय होता हो वैसे कायकर्मों का आचरण करना चाहिये।

कुसला धम्मा परिहायन्ति ? इध, भन्ते, एकच्चो पाणातिपाती होति लुद्दो लोहितपाणि हतपहते निविट्ठो अदयापन्नो पाणभूतेसु; अदिन्नादायी खो पन होति, यं तं परस्स परवित्तूपकरणं गामगतं वा अरञ्ञगतं वा तं अदिन्नं थेय्यसङ्खातं अदाता होति; कामेसुमिच्छाचारी खो पन होति, या ता मातुरक्खिता पितुरक्खिता मातापितुरक्खिता भातुरक्खिता भगिनिरक्खिता ञातिरक्खिता गोत्तरक्खिता धम्मरक्खिता सस्सामिका सपरिदण्डा अन्तमसो मालागुळपरिक्खित्ता पि तथारूपासु चारित्तं आपज्जिता होति—एवरूपं, [R. 47] भन्ते, कायसमाचारं सेवतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ति ।

"कथंरूपं, भन्ते, कायसमाचारं सेवतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति ? इध, भन्ते, एकच्चो पाणातिपातं पहाय पाणातिपाता पटिविरतो होति निहितदण्डो निहितसत्थो, लज्जी दयापन्नो सब्बपाणभूतहितानुकम्पी विहरति; अदिन्नादानं पहाय अदिन्नादाना पटिविरतो [B. 95] होति, यं तं परस्स परवित्तूपकरणं गामगतं वा अरञ्ञगतं वा तं नादिन्नं थेय्यसङ्खातं अदाता होति; कामेसुमिच्छाचारं पहाय कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो होति, या ता मातुरक्खिता पितुरक्खिता मातापितुरक्खिता भातुरक्खिता भगिनिरक्खिता ञातिरक्खिता गोत्तरक्खिता धम्मरक्खिता सस्सामिका सपरिदण्डा अन्तमसो मालागुळपरिक्खित्ता पि [N. 111] तथारूपासु न चारित्तं आपज्जिता होति--एवरूपं, भन्ते, कायसमाचारं सेवतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति । 'कायसमाचारं पाहं, भिक्खवे, दुविधेन वदामि--सेवितब्ब पि,

---

४. "भन्ते ! कैसे कर्मों का आचरण करने वाले के अकुशल धर्म बढ़ते है, और कुशल धर्म क्षीण होते हैं ? यहाँ, भन्ते ! कोई हिंसक पुरुष, क्रूर (रौद्र) हो, रक्तरञ्जित हाथों वाला, दिन-रात मार-काट में लगा हुआ, प्राणियों के प्रति निर्दय हो, चोर हो, किसी दूसरे की ग्राम या अरण्य में रखी सम्पत्ति को बलात् हस्तगत कर लेता हो; कामभोगों (व्यभिचार) में निरन्तर रत रहता हो, जो मातृरक्षित, पितृरक्षित, मातृ-पितृरक्षित, भगिनीरक्षित, जाति वालों द्वारा रक्षित, गोत्रवालों द्वारा रक्षित, धर्म-रक्षित पति वाली, दण्डयुक्त, यहाँ तक विवाह के लिये माला डाली गयी स्त्री से से भी व्यभिचार करने में भी संकोच न करता हो; इस प्रकार, भिक्षुओ ! यह कायिक अधर्माचरण तीन प्रकार का होता है । यों भगवान् ने जो कहा है--'भिक्षुओ ! मैं कायकर्मों को दो दो भागों में···' का यह विस्तृत अर्थ है ।

असेवितब्बं पि; तं च अञ्ञमञ्ञं कायसमाचारं' ति--इति यं तं वुत्तं भगवता इदमेतं पटिच्च वुत्तं ।

" 'वचीसमाचारं पाहं, भिक्खवे, दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि, असेवितब्बं पि; त च अञ्ञमञ्ञं वचीसमाचारं' ति—इति खो पनेतं वुत्तं भगवता । किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं ? यथारूपं, भन्ते, वचीसमाचारं सेवतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ति, एवरूपो वचीसमाचारो न सेवितब्बो; यथारूपं च खो, भन्ते, वचीसमाचारं सेवतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, एवरूपो वचीसमाचारो सेवितब्बो ।

५. "कथंरूपं, भन्ते, वचीसमाचारं सेवतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ति ? इध, भन्ते, एकच्चो मुसावादी होति, सभागतो वा परिसागतो वा ञातिमज्झगतो वा पूगमज्झगतो वा राज- [R. 48] कुलमज्झगतो वा अभिनीतो सक्खिपुट्ठो—'एहम्भो पुरिस, यं जानाति तं वदेही' ति सो अजानं वा आह—'जानामी' ति, जानं वा आह—'न जानामी' ति; अपस्सं वा आह—'पस्सामी' ति, पस्सं वा आह—'न पस्सामी' ति—इति अत्तहेतु वा परहेतु वा आमिसकिञ्चिक्खहेतु वा सम्पजानमुसा भासिता होति; पिसुणवाचो खो पन होति, इतो सुत्वा अमुत्र अक्खाता इमेसं भेदाय, अमुत्र वा सुत्वा इमेसं अक्खाता अमूसं भेदाय—इति समग्गानं वा भेत्ता, भिन्नानं वा अनुप्पदाता, वग्गारामो, वग्गरतो, वग्गनन्दी, वग्ग-

---

" 'वाक्कर्म को भी, भिक्षुओ ! मैं दो भागों में विभक्त करता हूँ...' आपने जो कहा है वह किस हेतु से कहा है ? भन्ते ! जिन वाक्कर्मों के सेवन से अकुशल धर्म बढ़ते हों, कुशल धर्म क्षीण होते हों, ऐसे वाक्कर्मों का आचरण नहीं करना चाहिये । और जिन वाक्कर्मों के सेवन से कुशल धर्म बढ़ते हों, और अकुशल धर्म क्षीण होते हों, उनका सतत आचरण करना चाहिए ।

५. "कैसे वाक्कर्मों के सेवन से अकुशल धर्म बढ़ते हैं और कुशल धर्म क्षीण होते हैं ? यहाँ, भन्ते ! कोई मृषावादी हो, जिससे सभा में, परिषद् में, नाते-रिश्तेदारों में, समूह में, राजकुल में, या साक्षी के लिए बुलाकर पूछा जाय—'अरे भाई ! इस विषय में जो तुम जानते हो वह कहो ?' तो वह बिना जानते हुए भी कह दे--'जानता हूँ', बिना देखे ही कह दे—'देखा है' । यों जो अपने लिये या दूसरों के लिए या धन के लोभ में जानबूझ कर झूठ बोलने वाला हो; चुगलखोर हो; आपस में फूट डालने के लिये यहाँ की सुनकर वहाँ कहने वाला, या वहाँ की

करणिं वाचं भासिता होति; फरुसवाचो खो पन होति. या सा [B. 96] वाचा कण्डका कक्कसा फरुसा परकटुका पराभिसज्जनी कोधसामन्ता असमाधिसंवत्तनिका, तथारूपिं वाचं भासिता होति; सम्फप्पलापी खो पन होति अकालवादी अभूतवादी अनत्थवादी अधम्मवादी अविनयवादी अनि- [N. 112] धानवतिं वाचं भासिता होति अकालेन अनपदेसं अपरियन्त-वतिं अनत्थसंहितं—एवरूपं, भन्ते, वचीसमाचारं सेवतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ति।

"कथंरूपं, भन्ते, वचीसमाचारं सेवतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति ? इध, भन्ते, एकच्चो मुसावादं पहाय मुसावादा पटिविरतो होति सभागतो वा परिसागतो वा ञातिमज्झगतो वा पूगमज्झ-गतो वा राजकुलमज्झगतो वा अभिनीतो सक्खिपुट्ठो—'एहम्भो पुरिस, यं जानाति तं वदेही' ति सो अजानं वा आह—'न जानामी' ति, जानं वा आह—'जानामी' ति, अपस्सं वा आह—'न पस्सामी' ति, पस्सं [R. 49] वा आह—'पस्सामी' ति—इति अत्तहेतु वा परहेतु वा आमिसकिञ्चिक्ख-हेतु वा न सम्पजानमुसा भासिता होति; पिसुणं वाचं पहाय पिसुणाय वाचाय पटिविरतो होति, इतो सुत्वा न अमुत्र अक्खाता इमेसं भेदाय, अमुत्र वा सुत्वा न इमेसं अक्खाता अमूसं भेदाय—इति भिन्नानं वा सन्धाता सहितानं वा अनुप्पदाता समग्गारामो समग्गरतो समग्गनन्दी समग्गकरणिं वाचं भासिता होति; फरुसं वाचं पहाय फरुसाय वाचाय पटिविरतो होति, या सा वाचा नेला कण्णसुखा पेमनिया हदयङ्गमा पोरी बहुजनकन्ता बहु-जनमनापा तथारूपिं वाचं भासिता होति; सम्फप्पलापं पहाय सम्फप्पलापा

सुनकर यहाँ कहने वाला हो, इकट्ठे हुओं में फूट डालने वाला हो, एक ही वर्ग को सुखदायक, एक ही वर्ग को प्रसन्न करने वाली, वर्गभेद फैलाने वाली बाणी बोलता हो; ऐसी कठोर बाणी बोलता हो जो काँटे की तरह चुभने वाली हो, कर्कश, दूसरों को दुःखदायी, द्वेषवर्धक, क्रोधवर्धक व चित्त को विक्षिप्त करने वाली हो; बकवादी हो; असमय की, न हुई, असत्य, अनर्थकारी एवं उद्दण्डता फैलाती हो; जो बेसिर पैर की (अफवाह) हो—ऐसी वाणी बोलता हो—ऐसे वाक्कर्म से, भन्ते ! अकुशल धर्म बढ़ते हैं और कुशल धर्म क्षीण होते हैं।

"और कैसे वाक्कर्म से, भन्ते ! अकुशल धर्म क्षीण होते हैं और कुशल धर्म बढ़ते हैं ? भन्ते ! यहाँ कोई मृषावाद को छोड़, मृषावाद से दूर रहता हुआ सभा में, परिषद् में···जानते हो, वह कहो ! तो वह बिना जाने को 'नहीं जानता हूँ',

पटिविरतो होति कालवादी भूतवादी अत्थवादी धम्मवादी विनयवादी, निधानवतिं वाचं भासिता होति कालेन सापदेसं परियन्तवतिं अत्थसंहितं—एवरूपं, भन्ते, वचीसमाचारं सेवतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति। 'वचीसमाचारं पाहं, भिक्खवे, दुविधेन वदामि--सेवितब्बं पि, असेवितब्ब पि; त च अञ्ञमञ्ञं वचीसमाचारं ति—इति यं तं वुत्तं भगवता, इदमेतं पटिच्च वुत्तं।

६. " 'मनोसमाचारं पाहं, भिक्खवे, दुविधेन वदामि--सेवितब्बं पि, असेवितब्बं पि; तं च अञ्ञमञ्ञं मनोसमाचारं' ति--इति खो पनेतं वुत्तं भगवता। किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं ? यथारूपं, भन्ते, मनोसमाचारं सेवतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ति—एव- [B. 97] रूपो मनोसमाचारो न सेवितब्बो; यथारूपं च खो, भन्ते, मनोसमाचारं सेवतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति [N. 113] एवरूपो मनोसमाचारो सेवितब्बो।

"कथंरूपं, भन्ते, मनोसमाचारं सेवतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ति ? इध, भन्ते, एकच्चो अभिज्झालु होति, यं तं परस्स परवित्तूपकरणं तं अभिज्झाता होति--'अहो वत यं परस्स तं ममस्सा' ति; ब्यापन्नचित्तो खो पन होति पदुट्ठमनसङ्कप्पो--'इमे सत्ता हञ्ञन्तु वा वज्झन्तु वा उच्छिज्जन्तु वा विनस्सन्तु वा मा वा [R. 50]

बिना देखे को 'नहीं देखा है'—यों अपने लिये···जानबूझ कर झूठ नहीं बोलता। चुगलखोरी···कटुवाणी···बकवाद नहीं करता···सारयुक्त सार्थक वाणी ही बोलता है। भन्ते ! ऐसे वाक्कर्म से अकुशल धर्म क्षीण होते हैं और कुशल धर्म बढ़ते हैं···।

६. " 'भिक्षुओ ! मैं मनःकर्म को दो प्रकार का बताता हूँ···'यह जो भगवान् ने कहा, किस कारण से कहा ? जैसे मनःकर्म के आचरण से अकुशलधर्म बढ़ते हों, कुशल धर्म क्षीण होते हों—उस मनःकर्म का आचरण नहीं करना चाहिये और जिस मनःकर्म के कारण कुशल धर्म बढ़ते हों उस मनःकर्म का आचरण करना चाहिये।

"किस प्रकार के मानसिक कर्म के आचरण से अकुशल धर्म बढ़ते हैं···? यहाँ, भन्ते ! कोई लोभी पुरुष हो, जो दूसरों के धन को देख कर यह सोचे—'अहो ! यह जो धन इन दूसरों के पास है वह मुझे क्यों न मिल जाय !' यों ईर्ष्यालुचित्त हो, अपने मानसिक सङ्कल्पों को दूषित कर—'इन दूसरों को मैं मार दूँ, बाँध लूँ, उखाड़ दूँ, नष्ट कर दूँ या ऐसा कुछ कर दूँ कि ये रह ही न जाँय'—यह सोचने

अहेसुं' ति—एवरूपं, भन्ते, मनोसमाचारं सेवतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ति।

"कथंरूपं, भन्ते, मनोसमाचारं सेवतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति ? इध, भन्ते, एकच्चो अनभिज्झालु होति, यं तं परस्स परवित्तूपकरणं तं नाभिज्झाता होति—'अहो वत यं परस्स तं ममस्सा' ति; अब्यापन्नचित्तो खो पन होति अप्पदुट्ठमनसङ्कप्पो--'इमे सत्ता अवेरा अब्याबज्झा अनीघा सुखी अत्तानं परिहरन्तू' ति--एवरूपं, भन्ते, मनोसमाचारं सेवतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति। 'मनोसमाचारं पाहं, भिक्खवे, दुविधेन वदामि--सेवितब्बं पि, असेवितब्बं पि; तं च अञ्ञमञ्ञं मनोसमाचारं' ति—इति य तं वुत्तं भगवता, इदमेतं पटिच्च वुत्तं।

७. " 'चित्तुप्पादं पाहं, दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि, असेवितब्बं पि; तं च अञ्ञमञ्ञं चित्तुप्पादं' ति—इति खो पनेतं वुत्तं भगवता। किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं ? यथारूपं, भन्ते, चित्तुप्पादं सेवतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ति एवरूपो चित्तुप्पादो न सेवितब्बो; यथारूपं च खो, भन्ते, चित्तुप्पादं सेवतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति एवरूपो चित्तुप्पादो सेवितब्बो।

"कथंरूपं, भन्ते, चित्तुप्पादं सेवतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला [N. 114] धम्मा परिहायन्ति ? इध, भन्ते, एकच्चो अभिज्झालु होति, [B. 98] अभिज्झासहगतेन चेतसा विहरति; ब्यापादवा होति, ब्यापादसह-

---

लगे तो, भन्ते ! उसका ऐसा मनःसङ्कल्प ही उसके अकुशल धर्मों को बढ़ाता है, कुशल धर्मों को क्षीण करता है।

"और, भन्ते ! कैसा मनःसङ्कल्प करने से अकुशल धर्म क्षीण होते हैं और कुशल धर्म बढ़ते हैं ? भन्ते ! यहाँ कोई पुरुष लोभी न हो, वह दूसरों के धन को देखकर यह न सोचे···पूर्ववत्···कुशलधर्मों को बढ़ाता है···।

७. "भिक्षुओ ! चित्तोत्पाद (विचारों की उत्पत्ति) को भी मैं द्विधा विभक्त कर···? भन्ते ! जैसे-जैसे विचारों की उत्पत्ति से अकुशल धर्म बढ़ते हों··· कुशल धर्म बढ़ते हों ऐसे चित्तोत्पाद को बढ़ावा देना चाहिये।

"और, भन्ते ! कैसे चित्तोत्पाद से अकुशल धर्म बढ़ते और कुशल धर्म क्षीण होते हैं ? यहाँ, भन्ते ! कोई पुरुष लोभी होता है, लोभ-सहगत चित्त से जीवन-

गतेन चेतसा विहरति; विहेसवा होति, विहेसासहगतेन चेतसा विहरति—एवरूपं, भन्ते चित्तुप्पादं सेवतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ति।

"कथंरूपं, भन्ते, चित्तुप्पादं सेवतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति? इध, भन्ते, एकच्चो अनभिज्झालु होति, [R. 51] अनभिज्झासहगतेन चेतसा विहरति; अब्यापादवा होति, अब्यापादसहगतेन चेतसा विहरति; अविहेसवा होति, अविहेसासहगतेन चेतसा विहरति—एवरूपं, भन्ते, चित्तुप्पादं सेवतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति। 'चित्तुप्पादं पाहं, भिक्खवे, दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि, असेवितब्बं पि; तं च अञ्ञमञ्ञं चित्तुप्पादं' ति—इति यं तं वुत्त भगवता इदमेतं पटिच्च वुत्तं।

८. " 'सञ्ञापटिलाभं पाहं, भिक्खवे, दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि, असेवितब्बं पि; तं च अञ्ञमञ्ञं सञ्ञापटिलाभं' ति--इति खो पनेतं वुत्तं भगवता। किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं? यथारूपं, भन्ते, सञ्ञापटिलाभं सेवतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ति एवरूपो सञ्ञापटिलाभो न सेवितब्बो; यथारूपं च खो, भन्ते, सञ्ञापटिलाभं सेवतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति एवरूपो सञ्ञापटिलाभो सेवितब्बो।

"कथंरूपं, भन्ते, सञ्ञापटिलाभं सेवतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ति? इध, भन्ते, एकच्चो अभिज्झालु होति, अभिज्झा-

---

यापन करता है, हिंसायुक्त रहता है, हिंसायुक्त चित्त से जीवन-यापन करता है, दूसरों की बुराई करता है···ऐसे चित्तोत्पाद से अकुशल धर्म बढ़ते है, कुशल धर्म क्षीण होते हैं।

"और, भन्ते! कैसे चित्तोत्पाद से कुशल धर्म बढ़ते हैं, अकुशल धर्म क्षीण होते हैं? यहाँ भन्ते! कोई पुरुष लोभरहित होता है, लोभरहित चित्त से···हिंसारहित चित्त से···दूसरों की बुराई रहित चित्त से अपना जीवन चलता है, ऐसे चित्त से उसके कुशल धर्म बढ़ते हैं, और अकुशल धर्म क्षीण होते हैं···।

८. " 'संज्ञाप्रतिलाभ को, भिक्षुओ! मैं द्विधा विभक्त करके···' यह जो कहा, किस कारण कहा? भन्ते! जैसे संज्ञाप्रतिलाभ के आचरण से अकुशल धर्म बढ़ते हों···कुशल धर्म बढ़ते हों—ऐसे संज्ञाप्रतिलाभ को बढ़ावा देना चाहिये।

"भन्ते! कैसे संज्ञाप्रतिलाभ के सेवन से अकुशल धर्म बढ़ते हैं···? यहाँ भन्ते! कोई पुरुष लोभी हो, लोभसहगत संज्ञा के आचरण से युक्त हो, हिंसासहगत

सहगताय सञ्ञाय विहरति; ब्यापादवा होति, ब्यापादसहगताय सञ्ञाय विहरति; विहेसवा होति, विहेसासहगताय सञ्ञाय विहरति--एवरूपं, भन्ते, सञ्ञापटिलाभं सेवतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ति।

"कथंरूपं, भन्ते, सञ्ञापटिलाभं सेवतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति, [N. 115] कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति? इध, भन्ते, एकच्चो अनभिज्झालु होति, अनभिज्झासहगताय सञ्ञाय विहरति; अब्यापादवा होति, अब्यापादसहगताय सञ्ञाय विहरति; अविहेसवा होति, अविहेसासहगताय सञ्ञाय विहरति--एवरूपं, भन्ते, सञ्ञापटिलाभं सेवतो अकुसला धम्मा [B. 99] परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति। 'सञ्ञापटिलाभं पाहं भिक्खवे, दुविधेन वदामि--सेवितब्बं पि, असेवितब्बं पि; तं च अञ्ञमञ्ञं सञ्ञापटिलाभं' ति—इति यं तं वुत्तं भगवता इदमेतं पटिच्च वुत्तं।

[R. 52] ९. "'दिट्ठिपटिलाभं पाहं, भिक्खवे, दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि, असेवितब्बं पि; तं च अञ्ञमञ्ञं दिट्ठिपटिलाभं' ति—इति खो पनेतं वुत्तं भगवता। किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं? यथारूपं, भन्ते, दिट्ठिपटिलाभं सेवतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ति एवरूपो दिट्ठिपटिलाभो न सेवितब्बो; यथारूपं च खो, भन्ते, दिट्ठिपटिलाभं सेवतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति—एवरूपो दिट्ठिपटिलाभो सेवितब्बो।

"कथंरूपं, भन्ते, दिट्ठिपटिलाभं सेवतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ति? इध, भन्ते, एकच्चो एवंदिट्ठिको होति—'नत्थि

संज्ञा के आचरण से युक्त हो, हिंसा···दूसरों की बुराई से सहगत अवस्था से युक्त हो, ऐसे संज्ञाप्रतिलाभ से अकुशल धर्म बढ़ते हैं, कुशल धर्म क्षीण होते हैं।

"और, भन्ते! कैसे संज्ञाप्रतिलाभ के सेवन से अकुशल धर्म क्षीण होते हैं···? यहाँ, भन्ते! कोई पुरुष लोभरहित···संज्ञासहगत चित्त से आचरण करता हो, ऐसे संज्ञाप्रतिलाभ से अकुशल धर्म क्षीण होते हैं।······।

९. "'दृष्टि (धारणा) प्रतिलाभ को भी, भिक्षुओ, मैं द्विधा विभक्त कर के उपदेश···।' यह किस कारण कहा? भन्ते! जैसी धारणाओं के आचरण से अकुशल धर्म बढ़ते हैं कुशल धर्म क्षीण होते हैं, ऐसी धारणाओं को मन में नहीं लाना चाहिये। और जिन धारणाओं के मन में रखने से कुशल धर्म बढ़ते हों, अकुशल धर्म क्षीण होते हों, ऐसी धारणाओं का निरन्तर चिन्तन करना चाहिये।

"भन्ते! कैसी धारणाओं के मन में रखने से अकुशल धर्म बढ़ते हैं? यहाँ कोई पुरुष यदि यह धारणा मन में बना ले—'दान, यज्ञ, हवन, सुकृत-दुष्कृत कर्मों

दिन्नं, नत्थि यिट्ठं, नत्थि हुतं, नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको, नत्थि अयं लोको, नत्थि परो लोको, नत्थि माता, नत्थि पिता, नत्थि सत्ता ओपपातिका, नत्थि लोके समणब्राह्मणा सम्मग्गता सम्मापटिपन्ना ये इमं च लोकं परं च लोकं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेन्ती' ति—एवरूपं, भन्ते, दिट्ठिपटिलाभं सेवतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ति।

"कथंरूपं, भन्ते, दिट्ठिपटिलाभं सेवतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति? इध, भन्ते, एकच्चो एवंदिट्ठिको होति—'अत्थि दिन्नं, अत्थि यिट्ठं, अत्थि हुतं, अत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको, अत्थि अयं लोको, अत्थि परो लोको, अत्थि माता, अत्थि पिता, अत्थि सत्ता ओपपातिका, अत्थि लोके समणब्राह्मणा सम्मग्गता [N. 116] सम्मापटिपन्ना ये इमं च लोकं परं च लोकं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेन्ती' ति—एवरूपं, भन्ते, दिट्ठिपटिलाभं सेवतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति। 'दिट्ठिपटिलाभं पाहं, भिक्खवे, दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि, असेवितब्बं पि; तं च अञ्ञमञ्ञं दिट्ठिपटिलाभं' ति—इति य तं वुत्तं भगवता इदमेतं पटिच्च वुत्तं।

१०. अत्तभावपटिलाभं पाहं, भिक्खवे, दुविधेन वदामि— [B. 100] सेवितब्बं पि, असेवितब्बं पि; तं च अञ्ञमञ्ञं अत्तभावपटिलाभं' ति—इति खो पनेतं वुत्तं भगवता। किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं? यथारूपं, भन्ते, अत्तभावपटिलाभं सेवतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला [R. 53]

का कोई फल नहीं होता, न यह लोक है न परलोक, न माता है न पिता, न देवता है न सिद्ध पुरुष (जिन की सेवा-सत्कार का कोई लाभ हो), न इस लोक में ऐसे श्रमण-ब्राह्मण हैं जो सम्यक्साधना करते हुए धर्म का स्वयं साक्षात्कार कर दूसरों को उपदेश करते हों'—ऐसी मिथ्या धारणा रखने वालों के अकुशल धर्म बढ़ते हैं और कुशल धर्म क्षीण होते हैं।

"और, भन्ते! कैसी धारणा रखने वालों के कुशल धर्म बढ़ते हैं और अकुशल धर्म क्षीण होते हैं? यहाँ कोई पुरुष मन में ऐसी धारणा बना ले—दान, यज्ञ, हवन...ऐसे श्रमणब्राह्मण भी हैं जो...उपदेश करते हैं'—ऐसी सम्यग्धारणा रखने वाले पुरुष के अकुशल धर्म क्षीण हो जाते हैं और कुशल धर्म बढ़ने लगते हैं...।

१०. "आत्मभाव-प्रतिलाभ का भी, भिक्षुओ! मैं द्विधा...' यह जो आपने कहा है, इसमें क्या कारण है? भन्ते! जैसे आत्मभाव से अकुशल धर्म बढ़ते हों और...उसका सेवन नहीं करना चाहिए। और जैसे आत्मभाव से कुशलधर्म

धम्मा परिहायन्ति—एवरूपो अत्तभावपटिलाभो न सेवितब्बो; यथारूपं च खो, भन्ते, अत्तभावपटिलाभं सेवतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति—एवरूपो अत्तभावपटिलाभो सेवितब्बो।

"कथंरूपं, भन्ते, अत्तभावपटिलाभं सेवतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ति? सब्याबज्झं, भन्ते, अत्तभावपटिलाभं अभिनिब्बत्तयतो अपरिनिट्ठितभावाय अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ति; अब्याबज्झं, भन्ते, अत्तभावपटिलाभं अभिनिब्बत्तयतो परिनिट्ठितभावाय अकुसला धम्मा परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति। 'अत्तभावपटिलाभं पाहं, भिक्खवे, दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि, असेवितब्बं पि; तं च अञ्ञमञ्ञं अत्तभावपटिलाभं' ति—इति यं तं वुत्तं भगवता इदमेतं पटिच्च वुत्तं।

"इमस्स खो अहं, भन्ते, भगवता सङ्खित्तेन भासितस्स, वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स, एवं वित्थारेन अत्थं आजानामी" ति।

"साधु साधु, सारिपुत्त! साधु खो त्वं, सारिपुत्त, इमस्स मया सङ्खित्तेन [N. 117] भासितस्स, वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स, एवं वित्थारेन अत्थं आजानासि।

११. " 'कायसमाचारं पाहं, भिक्खवे, दुविधेन वदामि—सेवितब्ब पि, असेवितब्बं पि; तं च अञ्ञमञ्ञं कायसमाचारं' ति—इति खो पनेतं वुत्तं मया। किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं? यथारूपं सारिपुत्त, कायसमाचारं सेवतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ति, एवरूपो कायसमाचारो न सेवितब्बो; यथारूपं च खो, सारिपुत्त, कायसमाचारं सेवतो

बढ़ते हों, अकुशल धर्म क्षीण होते हों उसका सेवन करना चाहिये।

"भन्ते! कैसे आत्मभाव के सेवन से अकुशलधर्म बढ़ते हैं…? व्यापाद (हिंसा-द्वेष) युक्त आत्मभाव से उसमें पूर्णता प्राप्त करने के लिए अकुशल धर्म बढ़ते हैं। व्यापादरहित से कुशल धर्म बढ़ते हैं।…।

"यों, भन्ते! मैं आपके इस समग्र परन्तु संक्षिप्त उपदेश का यह विस्तृत अर्थ जानता हूँ।"

"ठीक है, सारिपुत्र! ठीक है! तुम मेरे इस संक्षिप्त कथन, जिस का कि मैंने विस्तार नहीं किया था—का यह विस्तृत अर्थ ठीक ही जानते हो।

११. "भिक्षुओ! मैं कायकर्म का, सेवितव्य-असेवितव्य भेद से द्विधा विभक्त करके उपदेश करता हूँ।…पूर्ववत्…ऐसे कायकर्म का आचरण करना चाहिए।

अकुसला धम्मा परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति—एवरूपो काय-समाचारो सेवितब्बो।

"कथंरूपं, सारिपुत्त, कायसमाचारं सेवतो अकुसला धम्मा [R. 54] अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ति ? इध, सारिपुत्त, एकच्चो पाणाति-पाती होति लुद्दो लोहितपाणि हतप्पहते निविट्ठो अदयापन्नो [B. 101] पाणभूतेसु; अदिन्नादायी खो पन होति, यं तं परस्स परवित्तूपकरणं गाम-गतं वा अरञ्ञगतं वा तं अदिन्नं थेय्यसङ्खातं आदाता होति; कामेसुमिच्छा-चारी खो पन होति, या ता मातुरक्खिता पितुरक्खिता मातापितुरक्खिता भातुरक्खिता भगिनिरक्खिता ञातिरक्खिता गोत्तरक्खिता धम्मरक्खिता सस्सामिका सपरिदण्डा अन्तमसो मालागुळपरिक्खित्ता पि, तथारूपासु चारित्तं आपज्जिता होति—एवरूपं, सारिपुत्त, कायसमाचारं सेवतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ति।

"कथंरूपं, सारिपुत्त, कायसमाचारं सेवतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति ? इध, सारिपुत्त, एकच्चो पाणातिपातं पहाय पाणातिपाता पटिविरतो होति निहितदण्डो निहितसत्थो, लज्जी दयापन्नो सब्बपाणभूतहितानुकम्पी विहरति; अदिन्नादानं पहाय अदिन्नादाना पटि-विरतो होति, यं तं परस्स परवित्तूपकरणं गामगतं वा अरञ्ञगतं वा तं नादिन्नं थेय्यसङ्खातं आदाता होति; कामेसुमिच्छाचारं पहाय कामेसुमिच्छा-चारा पटिविरतो होति, या ता मातुरक्खिता पितुरक्खिता मातापितुरक्खिता भातुरक्खिता भगिनिरक्खिता ञातिरक्खिता गोत्तरक्खिता धम्मरक्खिता सस्सामिका सपरिदण्डा अन्तमसो मालागुळपरिक्खिता पि, [N. 118] तथारूपासु न चारित्तं आपज्जिता होति—एवरूपं सारिपुत्त, कायसमाचारं सेवतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति। 'काय-समाचारं पाहं, भिक्खवे, दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि, असेवितब्बं पि; तं च अञ्ञमञ्ञं कायसमाचारं' ति—इति यं तं वुत्तं मया इदमेतं पटिच्च वुत्तं।

१२. " 'वचीसमाचारं पाहं, भिक्खवे, दुविधेन वदामि··· [R. 55] पे०···मनोसमाचारं पाहं, भिक्खवे, दुविधेन वदामि···पे०···चित्तुप्पादं

"सारिपुत्र ! कैसे कायकर्म के सेवन से ··· पूर्ववत्[1] ···।

---

१. द्र०—इसी सूत्र का पैरा सं० ४। (केवल सम्बोधन पद 'भन्ते' के स्थान पर 'सारिपुत्र' बदल लें।)

पाहं, भिक्खवे, दुविधेन वदामि…पे०…सञ्ञापटिलाभं पाहं भिक्खवे, दुविधेन वदामि…पे०…दिट्ठिपटिलाभं पाहं, भिक्खवे, दुविधेन वदामि…पे०…अत्तभावपटिलाभं पाहं, भिक्खवे, दुविधेन वदामि--सेवितब्बं पि, असेवितब्बं पि; तं च अञ्ञमञ्ञं अत्तभावपटिलाभं' ति—इति खो पनेतं [B. 102] वुत्तं मया। किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं? यथारूपं, सारिपुत्त, अत्तभावपटिलाभं सेवतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ति एवरूपो अत्तभावपटिलाभो न सेवितब्बो; यथारूपं च खो, सारिपुत्त, अत्तभावपटिलाभं सेवतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति—एवरूपो अत्तभावपटिलाभो सेवितब्बो।

"कथंरूपं, सारिपुत्त, अत्तभावपटिलाभं सेवतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ति? सब्याबज्झं, सारिपुत्त, अत्तभावपटिलाभं अभिनिब्बत्तयतो अपरिनिट्ठितभावाय अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ति; अब्याबज्झं, सारिपुत्त, अत्तभावपटिलाभं अभिनिब्बतयतो परिनिट्ठितभावाय अकुसला धम्मा परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति। 'अत्तभावपटिलाभं पाहं, भिक्खवे, दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि, असेवितब्बं पि; तं च अञ्ञमञ्ञं अत्तभावपटिलाभं' ति—इति यं तं वुत्तं मया इदमेतं पटिच्च वुत्तं। इमस्स खो, सारिपुत्त, मया सङ्खित्तेन भासितस्स एवं वित्थारेन अत्थो दट्ठब्बो।

१३. "चक्खुविञ्ञेय्यं रूपं पाहं, सारिपुत्त, दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि, असेवितब्बं पि; सोतविञ्ञेय्यं सद्दं पाहं, सारिपुत्त, दुविधेन [N. 119] वदामि—सेवितब्बं असेवितब्बं पि; घानविञ्ञेय्यं गन्धं पाहं, सारिपुत्त, दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि, असेवितब्बं पि; जिव्हाविञ्ञेय्यं रसं पाहं, सारिपुत्त, दुविधेन वदामि--सेवितब्बं पि, असेवितब्बं पि; कायविञ्ञेय्यं फोट्ठब्बं पाहं, सारिपुत्त, दुविधेन वदामि--सेवितब्बं पि, असेवितब्बं पि; मनोविञ्ञेय्यं धम्मं पाहं, सारिपुत्त, दुविधेन वदामि---सेवितब्बं पि, असेवितब्बं पी" ति।

---

१२. "भिक्षुओ! मैं वाक्कर्म का सेवितव्य-असेवितव्य… पूर्ववत्[1]… मेरे कथन का विस्तृत अर्थ समझना चाहिए।

१३. "सारिपुत्र! मैं चक्षुर्विज्ञेय रूप को…श्रोत्रविज्ञेय शब्द को…घ्राणविज्ञेय गन्ध को…जिह्वाविज्ञेय रस को…कायविज्ञेय स्प्रष्टव्य को…मनोविज्ञेय धर्मों को सेवितव्य-असेवितव्य भेद से द्विधा विभक्त करके उपदेश करता हूँ।"

---

१. द्र०—इसी सूत्र का पैरा सं० ५।

एवं वुत्ते, आयस्मा सारिपुत्तो भगवन्तं एतदवोच----"इमस्स खो अहं, भन्ते, भगवता सङ्खित्तेन भासितस्स, वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स, एवं वित्थारेन अत्थं आजानामि। 'चक्खुविञ्ञेय्यं रूपं पाहं, सारिपुत्त, दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि, असेवितब्बं पी' ति—इति खो पनेतं [R. 56] वुत्तं भगवता। किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं? यथारूपं, भन्ते, चक्खुविञ्ञेय्यं रूपं सेवतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ति एवरूपं चक्खुविञ्ञेय्यं रूपं न सेवितब्बं; यथारूपं च खो, भन्ते, चक्खुविञ्ञेय्यं रूपं सेवतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति एवरूपं चक्खुविञ्ञेय्यं रूपं सेवितब्बं। 'चक्खुविञ्ञेय्यं रूपं पाहं, [B. 103] सारिपुत्त, दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि, असेवितब्बं पी' ति—इति यं तं वुत्तं भगवता इदमेतं पटिच्च वुत्तं।

"सोतविञ्ञेय्यं सद्दं पाहं, सारिपुत्त···पे०···एवरूपो सोतविञ्ञेय्यो सद्दो न सेवितब्बो···एवरूपो सोतविञ्ञेय्यो सद्दो सेवितब्बो···एवरूपो घानविञ्ञेय्यो गन्धो न सेवितब्बो···एवरूपो घानविञ्ञेय्यो [R. 57] गन्धो सेवितब्बो···एवरूपो जिव्हाविञ्ञेय्यो रसो न सेवितब्बो···एवरूपो जिव्हाविञ्ञेय्यो रसो सेवितब्बो···कायविञ्ञेय्यं फोट्ठब्बं पाहं, सारिपुत्त··· पे०···एवरूपो कायविञ्ञेय्यो फोट्ठब्बो न सेवितब्बो···एवरूपो कायविञ्ञेय्यो फोट्ठब्बो सेवितब्बो।

"'मनोविञ्ञेय्यं धम्मं पाहं, सारिपुत्त, दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि, असेवितब्बं पी' ति—इति खो पनेतं वुत्तं भगवता। किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं? यथारूपं, भन्ते, मनोविञ्ञेय्यं धम्मं सेवतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ति एवरूपो मनोविञ्ञेय्यो [R. 58]

(भगवान् द्वारा) ऐसा कहे जाने पर, सारिपुत्र भगवान् से यों बोले—"भन्ते! भगवान् द्वारा संक्षेप से उपदिष्ट, परन्तु जिसका विस्तार नहीं किया, भाषण का विस्तृत अर्थ मैं यों जानता हूँ।

"'चक्षुर्विज्ञेय रूप को मैं, सेवनीय-असेवनीय भेद से द्विधा विभक्त कर उपदेश करता हूँ'—यह जो आपने कहा, यह क्यों कहा? जैसे चक्षुर्विज्ञेय रूप के सेवन (भोग) से अकुशल धर्म बढ़ते हों···कुशल धर्म बढ़ते हों, ऐसा चक्षुर्विज्ञेय रूप सेवनीय है।···।

"'श्रोत्रविज्ञेय शब्द को···घ्राणविज्ञेय गन्ध को···जिह्वाविज्ञेय रस को···काय-विज्ञेय स्पष्टव्य को···कायविज्ञेय स्प्रष्टव्य सेवनीय है।

"'मनोविज्ञेय मनोधर्मों को भी मैं···पूर्ववत्···विस्तृत अर्थ जानता हूँ।"

धम्मो न सेवितब्बो; यथारूपं च खो, भन्ते, मनोविञ्ञेय्यं धम्मं सेवतो [N. 120] अकुसला धम्मा परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति एवरूपो मनोविञ्ञेय्यो धम्मो सेवितब्बो। 'मनोविञ्ञेय्यं धम्मं पाहं, सारिपुत्त, दुविधेन वदामि--सेवितब्बं पि, असेवितब्बं पी' ति—इति यं तं वुत्तं भगवता इदमेतं पटिच्च वुत्तं। इमस्स खो अहं, भन्ते, भगवता सङ्खित्तेन भासितस्स, वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स, एवं वित्थारेन अत्थं आजानामी" ति।

"साधु साधु, सारिपुत्त! साधु खो त्वं, सारिपुत्त, इमस्स मया सङ्खित्तेन भासितस्स, वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स, एवं वित्थारेन अत्थं आजानासि। 'चक्खुविञ्ञेय्यं रूपं पाहं, सारिपुत्त, दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि, असेवितब्बं पी' ति—इति खो पनेतं वुत्तं मया। किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं? यथारूपं, सारिपुत्त, चक्खुविञ्ञेय्यं रूपं सेवतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ति एवरूपं चक्खुविञ्ञेय्यं रूपं न सेवितब्बं; यथारूपं च खो, सारिपुत्त, चक्खुविञ्ञेय्यं रूपं सेवतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति एवरूपं चक्खुविञ्ञेय्यं रूपं सेवितब्बं। 'चक्खुविञ्ञेय्यं रूपं पाहं, सारिपुत्त, दुविधेन वदामि—सेवितब्बं पि, असेवितब्बं पी' ति--इति यं तं वुत्तं मया इदमेतं पटिच्च वुत्तं।

[B. 104] "सोतविञ्ञेय्यं सद्दं पाहं, सारिपुत्त···पे०···एवरूपो सोतविञ्ञेय्यो सद्दो न सेवितब्बो···एवरूपो सोतविञ्ञेय्यो सद्दो सेवितब्बो ···एवरूपो घानविञ्ञेय्यो गन्धो न सेवितब्बो···एवरूपो घानविञ्ञेय्यो गन्धो सेवितब्बो···एवरूपो जिव्हाविञ्ञेय्यो रसो न सेवितब्बो···एवरूपो जिव्हाविञ्ञेय्यो रसो सेवितब्बो···एवरूपो कायविञ्ञेय्यो फोट्ठब्बो न सेवितब्बो···एवरूपो कायविञ्ञेय्यो फोट्ठब्बो सेवितब्बो।

"मनोविञ्ञेय्यं धम्मं पाहं, सारिपुत्त···पे०···एवरूपो मनोविञ्ञेय्यो धम्मो न सेवितब्बो···एवरूपो मनोविञ्ञेय्यो धम्मो सेवितब्बो। 'मनो-

---

"साधु साधु, सारिपुत्र! तुम बहुत ठीक कह रहे हो, तुम मेरे द्वारा किये संक्षिप्त उपदेश का विस्तार ठीक ही जानते हो। चक्षुर्विज्ञेय रूप को···पूर्ववत्[1]···जो कहा है, इस कारण कहा है।

"श्रोत्रविज्ञेय शब्द को···कायविज्ञेय स्प्रष्टव्य को सेवनीय मानना चाहिये।

"मनोविज्ञेय मनोधर्मों को···विस्तृत अर्थ समझना चाहिये।

---

१. द्र०—पीछे इसी सूत्र की पेरा संख्या १३।

विञ्ञेय्यं धम्मं पाहं, सारिपुत्त, दुविधेन वदामि--सेवितब्बं पि, असेवितब्बं पी' ति—इति यं तं वुत्तं मया इदमेतं पटिच्च वुत्तं। इमस्स खो, सारिपुत्त, मया सङ्खित्तेन भासितस्स एवं वित्थारेन अत्थो दट्ठब्बो।

१४. "चीवरं पाहं, सारिपुत्त, दुविधेन वदामि--सेवितब्बं पि, असेवितब्बं पि···पे०···पिण्डपातं पाहं. सारिपुत्त···सेनासनं पाहं, [N. 121] सारिपुत्त···गामं पाहं, सारिपुत्त···निगमं पाहं, सारिपुत्त···नगरं पाहं, सारिपुत्त···जनपदं पाहं, सारिपुत्त···पुग्गलं पाहं, सारिपुत्त, दुविधेन वदामि---सेवितब्बं पि, असेवितब्बं पी" ति।

एवं वुत्ते, आयस्मा सारिपुत्तो भगवन्तं एतदवोच—"इमस्स [R. 59] खो अहं, भन्ते, भगवता सङ्खित्तेन भासितस्स, वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स एवं वित्थारेन अत्थं आजानामि। 'चीवरं पाहं, सारिपुत्त, दुविधेन वदामि--सेवितब्बं पि, असेवितब्बं पी' ति---इति खो पनेतं वुत्तं भगवता। किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं? यथारूपं, भन्ते, चीवरं सेवतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ति एवरूपं चीवरं न सेवितब्बं; यथारूपं च खो, भन्ते, चीवरं सेवतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति एवरूपं चीवरं सेवितब्बं। 'चीवरं पाहं, सारिपुत्त, दुविधेन वदामि---सेवितब्बं पि, असेवितब्बं पी' ति---इति यं तं वुत्तं भगवता इदमेतं पटिच्च वुत्तं।

"पिण्डपातं पाहं, सारिपुत्त···पे०···एवरूपो पिण्डपातो न सेवितब्बो··· एवरूपो पिण्डपातो सेवितब्बो···सेनासनं पाहं, सारिपुत्त···पे०···एवरूपं

---

१४. "चीवर के विषय में भी मैं द्विधा विभक्त कर उपदेश करता हूँ कि वह सेवनीय भी है, असेवनीय भी; पिण्डपात को भी···ग्राम को भी···निगम को भी··· नगर को भी···जनपद (जिला) को भी···पुद्गल को भी मैं द्विधा विभक्त कर उपदेश करता हूँ कि वह सेवनीय (उपभोग्य) भी है असेवनीय (अनुपभोग्य) भी।"

(भगवान् द्वारा) ऐसा कहे जाने पर सारिपुत्र ने भगवान् से यों कहा— 'भन्ते ! मैं भगवान् के इस कथन का···विस्तार से अर्थ सम्यक्तया जानता हूँ। यह जो आपने कहा—'चीवर को भी···'—यह किस कारण कहा ? भन्ते ! जैसे चीवर के उपयोग से अकुशल धर्म बढ़ते हों, कुशल धर्म क्षीण होते हों वह असेवनीय है और जैसे चीवर के सेवन से कुशल धर्म बढ़ते हों···यह इस कारण कहा है।

'पिण्डपात को, सारिपुत्र !···पूर्ववत्···ऐसे जनपद का (वासहेतु) उपयोग करना चाहिये।

सेनासनं न सेवितब्बं···एवरूपं सेनासनं सेवितब्बं···गामं पाहं, सारिपुत्त···
[B. 105] पे०···एवरूपो गामो न सेवितब्बो···एवरूपो गामो सेवितब्बो···
एवरूपो निगमो न सेवितब्बो···एवरूपो निगमो सेवितब्बो···एवरूपं नगरं
न सेवितब्बं···एवरूपं नगरं सेवितब्बं···एवरूपो जनपदो न सेवितब्बो···
एवरूपो जनपदो सेवितब्बो।

" 'पुग्गलं पाहं, सारिपुत्त, दुविधेन वदामि----सेवितब्बं पि, असेवितब्बं पी' ति---इति खो पनेतं वुत्तं भगवता। किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं? यथारूपं, भन्ते, पुग्गलं सेवतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ति एवरूपो पुग्गलो न सेवितब्बो; यथारूपं च खो, भन्ते, पुग्गलं सेवतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति एवरूपो पुग्गलो सेवितब्बो। 'पुग्गलं पाहं, सारिपुत्त, दुविधेन वदामि----सेवितब्बं पि असेवितब्बं पी' ति —इति यं तं वुत्तं भगवता इदमेतं पटिच्च वुत्तं ति। इमस्स खो अहं, भन्ते,
[N. 122] भगवता सङ्खित्तेन भासितस्स, वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स एवं वित्थारेन अत्थं आजानामी" ति।

३. भगवतो अनुमोदना

१५. "साधु साधु, सारिपुत्त! साधु खो त्वं, सारिपुत्त, इमस्स मया सङ्खित्तेन भासितस्स, वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स एवं वित्थारेन अत्थं आजानासि। 'चीवरं पाहं, सारिपुत्त, दुविधेन वदामि----सेवितब्बं पि,
[R. 60] असेवितब्बं पी' ति----इति खो पनेतं वुत्तं मया। किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं? यथारूपं, सारिपुत्त, चीवरं सेवतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ति एवरूपं चीवरं न सेवितब्बं; यथारूपं च खो, सारिपुत्त, चीवरं सेवतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति एवरूपं चीवरं सेवितब्बं। 'चीवरं पाहं, सारिपुत्त, दुविधेन वदामि----सेवितब्बं पि, असेवितब्बं पी' ति--इति यं तं वुत्तं मया इदमेतं पटिच्च वुत्तं। (यथा पठमं तथा वित्थारेतब्बं) एवरूपो पिण्डपातो···

" 'पुद्गल को भी, मैं सारिपुत्र!···जैसे पुद्गल का संग करने से अकुशल धर्म···पूर्ववत्···विस्तार से अर्थ जानता हूँ।

३. भगवान् द्वारा सारिपुत्र के कथन का अनुमोदन

१५. "ठीक है, सारिपुत्र! ठीक है! मेरे द्वारा संक्षिप्त रूप से उपदिष्ट कथन का विस्तार तुम ठीक ही जानते हो। 'चीवर को···(जैसा पहले लिखा जा चुका है, उसी तरह यहाँ भी विस्तार कर लेना चाहिये)। पिण्डपात···शयनाशन··· ग्राम···निगम···नगर···जनपद का वासहेतु उपयोग करना चाहिये।

एवरूपं सेनासनं…एवरूपो गामो…एवरूपो निगमो…एवरूपं नगरं…एवरूपो जनपदो।

"'पुग्गलं पाहं, सारिपुत्त, दुविधेन वदामि--सेवितब्बं पि, असेवितब्बं पी' ति--इति खो पनेतं वुत्तं मया। किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं? यथारूपं, सारिपुत्त, पुग्गलं सेवतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ति एवरूपो पुग्गलो न सेवितब्बो; यथारूपं च खो, सारिपुत्त, पुग्गलं सेवतो अकुसला धम्मा परिहायन्ति, कुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति [B. 106] एवरूपो पुग्गलो सेवितब्बो। 'पुग्गलं पाहं, सारिपुत्त, दुविधेन वदामि--सेवितब्बं पि, असेवितब्बं पी' ति--इति यं तं वुत्तं मया इदमेतं पटिच्च वुत्तं। इमस्स खो, सारिपुत्त, मया सङ्खित्तेन भासितस्स एवं वित्थारेन अत्थो दट्ठब्बो।

१६. "सब्बे पि चे, सारिपुत्त, खत्तिया इमस्स मया सङ्खित्तेन भासितस्स एवं वित्थारेन अत्थं आजानेय्युं, सब्बेसानं पिस्स खत्तियानं दीघरत्तं हिताय सुखाय। सब्बे पि चे, सारिपुत्त, ब्राह्मणा…पे०…सब्बे पि चे, सारिपुत्त, वेस्सा…सब्बे पि चे, सारिपुत्त, सुद्दा इमस्स मया सङ्खित्तेन भासितस्स एवं वित्थारेन अत्थं आजानेय्युं, सब्बेसानं पिस्स सुद्दानं दीघरत्तं हिताय सुखाय। सदेवको पि चे, सारिपुत्त, लोको समारको सब्रह्मको [N. 123] सस्समणब्राह्मणी पजा सदेवमनुस्सा इमस्स मया सङ्खित्तेन भासितस्स एवं वित्थारेन अत्थं आजानेय्य, सदेवकस्स पिस्स लोको समारकस्स सब्रह्मकस्स सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय दीघरत्तं हिताय सुखाया" ति।

१७. इदमवोच भगवा। अत्तमनो आयस्मा सारिपुत्तो [R. 61] भगवतो भासितं अभिनन्दी ति।

"'पुद्गल को भी मैं सारिपुत्र!…पूर्ववत्…विस्तृत अर्थ समझना चाहिये।

१६. "सारिपुत्र! यदि क्षत्रिय मेरे इस संक्षिप्त कथन (उपदेश) का इसी प्रकार (तुम्हारी तरह) विस्तृत अर्थ जान ले तो यह ज्ञान उन सभी क्षत्रियों के लिये सुदीर्घकाल तक सुखकर एवं हितकर होगा। सभी ब्राह्मण…सभी वैश्य…सभी शूद्र…देव-मार-ब्रह्मा सहित समग्र लोक एवं देव-मानुष-ब्राह्मण सहित समग्र प्रजा (जनता) मेरे इस संक्षिप्त कथन का यह विस्तृत अर्थ जान ले तो यह (ज्ञान) उसके लिये सुदीर्घ (चिर) काल तक हितकर व सुखकर ही होगा।"

१७. भगवान् ने यह कहा। सन्तुष्ट हो आयुष्मान् सारिपुत्र ने भगवान् के कथन का अभिनन्दन किया॥

सेवितब्बासेवितब्बसुत्त समाप्त॥

१५. बहुधातुकसुत्तं

१. पण्डितेन वीमंसकेन भवितब्बं

[N. 124] १. एवं मे सुत्तं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि--"भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच--

"यानि कानिचि, भिक्खवे, भयानि उप्पज्जन्ति सब्बानि तानि बालतो उप्पज्जन्ति, नो पण्डिततो; ये केचि उपद्दवा उप्पज्जन्ति सब्बे ते बालतो उप्पज्जन्ति, नो पण्डिततो; ये केचि उपसग्गा उप्पज्जन्ति सब्बे ते बालतो उप्पज्जन्ति, नो पण्डिततो। सेय्यथापि, भिक्खवे, नळागारा वा तिणागारा [B. 107] वा अग्गि मुत्तो कूटागारानि पि दहति उल्लित्तावलित्तानि निवातानि फुसितग्गळानि पिहितवातपानानि; एवमेव खो, भिक्खवे, यानि कानिचि भयानि उप्पज्जन्ति सब्बानि तानि बालतो उप्पज्जन्ति, नो पण्डिततो; ये केचि उपद्दवा उप्पज्जन्ति सब्बे ते बालतो उप्पज्जन्ति, नो पण्डिततो; ये केचि उपसग्गा उप्पज्जन्ति सब्बे ते बालतो उप्पज्जन्ति, नो पण्डिततो। इति खो, भिक्खवे, सप्पटिभयो बालो, अप्पटिभयो पण्डितो; सउपद्दवो बालो, अनुपद्दवो पण्डितो; सउपसग्गो बालो, अनुपसग्गो पण्डितो। नत्थि, भिक्खवे, पण्डिततो भयं, नत्थि पण्डिततो उपद्दवो, नत्थि पण्डिततो

---

१५. बहुधातुकसूत्र

१. बुद्धिमान् को मीमांसक (विचारक) होना चाहिये

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) अनाथपिण्डक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित, श्रावस्तीस्थित जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को "पूर्ववत्"'। भगवान् यों बोले—

भिक्षुओ! लोक में जो भी भय उत्पन्न होते है वे सब बाल (बचपना) से ही होते हैं, पण्डित (बुद्धिमत्ता) से नहीं; जो कुछ भी उपद्रव"'; जो कुछ भी उपसर्ग (कठिनाइयाँ) उत्पन्न होते हैं वे सभी बाल से ही होते हैं, पण्डित से नहीं। जैसे भिक्षुओं! घास फूस (तृण) या नरकट से बने घर से निकली आग भलीभाँति लिपे-पुते, हवादार, खिड़की-किवाड़ वाले ऊँचे-ऊँचे महलों को भी अपनी लपेट में ले लेती है (जला देती है); इसी तरह, भिक्षुओ! लोक में जितने भी भय, उपद्रव या उपसर्ग उत्पन्न होते हैं वे सब बाल से ही उत्पन्न होते हैं, पण्डित से नहीं। यों, भिक्षुओ! बाल भय, उपद्रव एव उपसर्ग से युक्त है और पण्डित निर्भय, निरुपद्रव एव निरुपसर्ग है। भिक्षुओ! पण्डित से न किसी भय की शङ्का है, न उपद्रव या

उपसग्गो। तस्मातिह, भिक्खवे, 'पण्डिता भविस्साम वीमंसका' ति—एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं" ति।

एवं वुत्ते, आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—"कित्ता- [R. 62] वता नु खो, भन्ते, पण्डितो भिक्खु 'वीमंसको' ति अलं वचनाया" ति ?

"यतो खो, आनन्द, भिक्खु धातुकुसलो च होति, आयतनकुसलो च होति, पटिच्चसमुप्पादकुसलो च होति, ठानाठानकुसलो च [N. 125] होति—एत्तावता खो, आनन्द, पण्डितो भिक्खु 'वीमंसको' ति अलं वचनाया" ति।

२. कित्तावता धातुकुसलो होति ?

२. "कित्तावता पन, भन्ते, 'धातुकुसलो भिक्खू' ति अलं वचनाया" ति ?

"अट्ठारस खो इमा, आनन्द, धातुयो—चक्खुधातु, रूपधातु, चक्खुविञ्ञाणधातु; सोतधातु, सद्दधातु, सोतविञ्ञाणधातु; घानधातु, गन्धधातु, घानविञ्ञाणधातु; जिव्हाधातु, रसधातु, जिव्हाविञ्ञाणधातु; कायधातु, फोट्ठब्बधातु, कायविञ्ञाणधातु; मनोधातु, धम्मधातु, मनोविञ्ञाणधातु।

उपसर्ग की। इसलिये भिक्षुओ! तुम्हें 'हम पण्डित होंगे, हम मीमांसक (=चिन्तक, विचारक) होंगे' ऐसा सीखना चाहिये।

(भगवान् द्वारा) ऐसा कहे जाने पर, आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से यों निवेदन किया—"भन्ते! पण्डित द्वारा कितना सा किये जाने से उसे 'मीमांसक' कोटि में माना जाय"?

"जब, आनन्द! यदि कोई भिक्षु धातु के विषय में कुशल (ठीक से जानने-वाला) होता है आयतन के विषय में कुशल होता है, प्रतीत्यसमुत्पाद (कार्य-कारणभाव) के विषय में कुशल होता है, स्थान (उचित) अस्थान (अनुचित) के विषय में कुशल होता है तो इतने से उस पण्डित भिक्षु को 'मीमांसक' कोटि में माना जा सकता है।"

२. कोई कितने से धातुकुशल होता है ?

२. "भन्ते! कितने से कोई भिक्षु 'धातुकुशल' कहलाता है?"

"आनन्द! ये अठारह धातु हैं—(१) चक्षुर्धातु, (२) रूपधातु, (३) चक्षुर्विज्ञानधातु; (४) श्रोत्रधातु, (५) शब्दधातु, (६) श्रोत्रविज्ञानधातु, (७) घ्राणधातु, (८) गन्धधातु, (९) घ्राणविज्ञानधातु; (१०) जिह्वाधातु, (११) रसधातु, (१२) जिह्वाविज्ञानधातु; (१३) कायधातु, (१४) स्प्रष्टव्यधातु, (१५) काय विज्ञानधातु, (१६) मनोधातु, (१७) धर्मधातु एवं (१८) मनोविज्ञानधातु।

इमा खो, आनन्द अट्ठारस धातुयो यतो जानाति पस्सति—एत्तावता पि खो, आनन्द, 'धातुकुसलो भिक्खू' ति अलं वचनाया" ति। (१)

"सिया पन, भन्ते, अञ्ञो पि परियायो, यथा 'धातुकुसलो भिक्खू' ति अलं वचनाया" ति ?

"सिया, आनन्द। छयिमा, आनन्द, धातुयो—पठवीधातु, आपोधातु, तेजोधातु; वायोधातु, आकासधातु, विञ्ञाणधातु। इमा खो, आनन्द, छ धातुयो यतो जानाति पस्सति—एत्तावता पि खो, आनन्द, [B. 108] 'धातुकुसलो भिक्खू' ति अलं वचनाया" ति। (२)

"सिया पन, भन्ते, अञ्ञो पि परियायो, यथा 'धातुकुसलो भिक्खू' ति अलं वचनाया" ति ?

"सिया, आनन्द। छयिमा, आनन्द, धातुयो—सुखधातु, दुक्खधातु, सोमनस्सधातु, दोमनस्सधातु, उपेक्खाधातु, अविज्जाधातु। इमा खो, आनन्द, छ धातुयो यतो जानाति पस्सति—एत्तावता पि खो, आनन्द, 'धातुकुसलो भिक्खू' ति अलं वचनाया" ति। (३)

"सिया पन, भन्ते, अञ्ञो पि परियायो, यथा 'धातुकुसलो भिक्खू' ति अलं वचनाया" ति ?

"सिया, आनन्द। छयिमा, आनन्द, धातुयो—कामधातु, नेक्खम्मधातु,

आनन्द ! इन अट्ठारह को जो जानता है, समझता है—इतने से वह 'धातुकुशल' कहा जा सकता है।" (१)

"क्या भन्ते ! और भी कोई विकल्प (पर्याय) है, जिससे किसी को 'धातुकुशल कहा जा सके ?"

"हो सकता है, आनन्द ! दूसरा विकल्प भी, जिससे किसी को 'धातुकुशल' कहा जा सके। (दूसरी गणनाविधि से) धातु छह प्रकार की होती हैं—१. पृथ्वीधतु, २. आपोधातु, ३. तेजोधातु, ४. वायुधातु, ५. आकाशधातु एवं ६. विज्ञानधातु। आनन्द ! इन छह धातुओं का जो सम्यग्ज्ञाता हो उसे भी 'धातुकुशल' कहा जा सकता है।" (२)

"क्या, भन्ते ! और भी कोई विकल्प··· ?"

हो सकता है, आनन्द ! दूसरा विकल्प भी,···। धातु छह प्रकार की होती हैं—(१) सुखधातु, (२) दुःखधातु, (३) सौमनस्यधातु, (४) दौर्मनस्यधातु, (५) उपेक्षा-धातु एवं (६) अविद्याधातु।···कहा जा सकता है।" (३)

"क्या, भन्ते ! और भी कोई विकल्प··· ?"

"हो सकता है, आनन्द !···धातु···इस तरह से भी छह धातुओं की गणना की जा

[N. 126, R. 63] व्यापादधातु, अव्यापादधातु, विहिंसाधातु, अविहिंसाधातु। इमा खो, आनन्द, छ धातुयो यतो जानाति पस्सति—एत्तावता पि खो, आनन्द, 'धातुकुसलो भिक्खू' ति अलं वचनाया" ति। (४)

"सिया पन, भन्ते, अञ्ञो पि परियायो, यथा 'धातुकुसलो भिक्खू' ति अलं वचनाया" ति ?

"सिया, आनन्द। तिस्सो इमा, आनन्द, धातुयो—कामधातु, रूपधातु, अरूपधातु। इमा खो, आनन्द, तिस्सो धातुयो यतो जानाति पस्सति—एत्तावता पि खो, आनन्द, 'धातुकुसलो भिक्खू' ति अलं वचनाया" ति। (५)

"सिया पन, भन्ते, अञ्ञो पि परियायो, यथा 'धातुकुसलो भिक्खू' ति अलं वचनाया" ति ?

"सिया, आनन्द। द्वे इमा, आनन्द, धातुयो—सङ्खता धातु, असङ्खता धातु। इमा खो, आनन्द, द्वे धातुयो यतो जानाति पस्सति—एत्तावता पि खो, आनन्द, धातुकुसलो भिक्खू' ति अलं वचनाया" ति। (६)

३. कित्तावता आयतनकुसलो होति ?

३. "कित्तावता पन, भन्ते, 'आयतनकुसलो भिक्खू' ति अलं वचनाया" ति ?

"छ खो पनिमानि, आनन्द, अज्झत्तिकबाहिरानि आयतनानि—चक्खु चेव रूपा च सोतं सद्दा च घानं च गन्धा च जिव्हा च रसा च कायो च फोट्ठब्बा च मनो च धम्मा च। इमानि खो, आनन्द, छ अज्झत्तिकबाहिरानि

सकती है—(१) कामधातु, (२) नैष्कर्म्यधातु, (३) व्यापादधातु, (४) अव्यापादधातु, (५) विहिंसाधातु एवं (६) अविहिंसाधातु।...।" (४)

"भन्ते ! क्या कोई दूसरा विकल्प...?"

"हो सकता है...। आनन्द ! ये तीन धातुएँ भी होती हैं—(१) कामधातु, (२) रूपधातु, एवं (३) अरूपधातु।...। (५)

"भन्ते ! (इनके अतिरिक्त) कोई और विकल्प भी...?"

"हाँ, आनन्द ! धातु दो प्रकार की भी होती हैं—(१) संस्कृत धातु एवं (२) असंस्कृत धातु।...'मीमांसक' कहा जा सकता है। (६)

३. कितने से 'आयतनकुशल' कहलाता है ?

३. "भन्ते ! कितने से कोई भिक्षु 'आयतनकुशल' कहलाता है ?"

"आनन्द ! ये छह आध्यात्मिक एवं बाह्यरूप से आयतन कहलाते हैं; जैसे—(१) चक्षुरायतन एवं रूपायतन, (२) श्रोत्रायतन एवं शब्दायतन, (३) घ्राणायतन एवं गन्धायतन, (४) जिह्वायतन एवं रसायतन, (५) कायायतन एवं स्प्रष्टव्यायतन

आयतनानि यतो जानाति पस्सति—एत्तावता खो, आनन्द, 'आयतनकुसलो भिक्खू' ति अलं वचनाया" ति।

४. कित्तावता पटिच्चसमुप्पादकुसलो होति ?

[B. 109] ४. "कित्तावता पन, भन्ते, 'पटिच्चसमुप्पादकुसलो भिक्खू' ति अलं वचनाया" ति ?

"इधानन्द, भिक्खु एवं पजानाति – 'इमस्मिं सति इदं होति, इमस्सुप्पादा इदं उप्पज्जति, इमस्मिं असति इदं न होति, इमस्स निरोधा इदं [N. 127] निरुज्झति, यदिदं—अविज्जापच्चया सङ्खारा, सङ्खारा पच्चया विञ्ञाणं, विञ्ञाणपच्चया नामरूपं, नामरूपपच्चया सळायतनं, सळायनतपच्चया फस्सो, फस्सपच्चया वेदना, वेदनापच्चया तण्हा, तण्हा-[R. 64] पच्चया उपादानं, उपादानपच्चया भवो, भवपच्चया जाति जातिपच्चया जरामरणं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सूपायसा सम्भवन्ति। एवमेतस्स केवलस्य दुक्खक्खन्धस्स समुदयो होति।

"अविज्जाय त्वेव असेसविरागनिरोधा सङ्खारनिरोधो, सङ्खारनिरोधा विञ्ञाणनिरोधो, विञ्ञाणनिरोधा नामरूपनिरोधो, नामरूपनिरोधा सळायतननिरोधो, सळायतननिरोधा फस्सनिरोधो, फस्सनिरोधा वेदना-निरोधो, वेदनानिरोधा तण्हानिरोधो, तण्हानिरोधा उपादाननिरोधो, उपादाननिरोधा भवनिरोधो, भवनिरोधा जातिनिरोधो, जातिनिरोधा

एवं (६) मन आयतन एवं धर्मायतन। आनन्द ! ये छह आध्यात्मिक एवं बाह्य आयतन जो···उसे 'आयतनकुशल' कहा जा सकता है।

४. कैसे प्रतीत्यसमुत्पादकुशल कहलाता है ?

४· कैसे, भन्ते ! कोई भिक्षु 'प्रतीत्यसमुत्पादकुशल' कहलाता है ?

"आनन्द ! यहाँ कोई भिक्षु ऐसा जानता है—'इसके होने पर यह होता है, इसके उत्पन्न होने पर यह उत्पन्न होता है; इसके न होने पर वह नहीं होता, इसके निरोध (नाश) से यह निरुद्ध हो जाता है। जैसे—(क) अविद्या के प्रत्यय (कारण) से संस्कार, संस्कार के कारण से विज्ञान, विज्ञान के कारण से नाम-रूप, नाम-रूप के कारण से षड़ायतन, षड़ायतन के कारण से स्पर्श, स्पर्श से वेदना, वेदना से तृष्णा, तृष्णा से उपादान (ग्रहण), उपादान से भव, भव से जाति, जाति के कारण जरामरण, रोना-कलपना, दुःख-दौर्मनस्य, हैरानी-परेशानी उत्पन्न होती है। यों, इस केवल दुःखस्कन्ध की उत्पत्ति होती है। (ख) (इसी तरह) अविद्या के अशेष विराग एवं निरोध से ही संस्कार का निरोध, संस्कार के निरोध से विज्ञान का, विज्ञान-

जरामरणं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सूपायासा निरुज्झन्ति। एवमेतस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स निरोधो होति'। एत्तावता खो, आनन्द, 'पटिच्चसमुप्पादकुसलो भिक्खू' ति अलं वचनाया" ति।

५. कित्तावता ठानाठानकुसलो होति ?

५. "कित्तावता पन, भन्ते, 'ठानाठानकुसलो भिक्खू' ति अलं वचनाया" ति ?

"इधानन्द, भिक्खु 'अट्ठानमेतं अनवकासो यं दिट्ठिसम्पन्नो पुग्गलो कञ्चि सङ्खारं निच्चतो उपगच्छेय्य, नेतं ठानं विज्जती' ति पजानाति; 'ठानं च खो एतं विज्जति यं पुथुज्जनो कञ्चि सङ्खारं निच्चतो उपगच्छेय्य, ठानमेतं विज्जती' ति पजानाति; 'अट्ठानमेतं अनवकासो यं दिट्ठिसम्पन्नो पुग्गलो कञ्चि सङ्खारं सुखतो उपगच्छेय्य, नेतं ठानं विज्जती' ति पजानाति; 'ठानं च खो एतं विज्जति यं पुथुज्जनो कञ्चि सङ्खारं सुखतो उपगच्छेय्य, ठानमेतं विज्जती' ति पजानाति। 'अट्ठानमेतं अनवकासो यं दिट्ठिसम्पन्नो पुग्गलो कञ्चि धम्मं अत्ततो उपगच्छेय्य, नेतं ठानं विज्जती' ति पजानाति; 'ठानं च

निरोध से नाम-रूप का, नाम-रूप-निरोध से षडायतन का, षड़ायतन-निरोध से स्पर्श का, स्पर्श-निरोध से वेदना का, वेदना-निरोध से तृष्णा का, तृष्णा-निरोध से उपादान का, उपादान-निरोध से भव का, भव-निरोध से जाति का, जाति-निरोध से जरा-मरण शोक-परिदेव, दुःख-दौर्मनस्य, उपायास का निरोध होता है। यों, इस केवल (समग्र) दुःखस्कन्ध (संसार में आवागमन) का निरोध होता है। इतने से, आनन्द! किसी भी भिक्षु (साधक) को 'प्रतीत्यसमुत्पादकुशल' कहा जा सकता है।"

५. कितने से स्थानकुशल एवं अस्थानकुशल कहलाता है ?

५. "किस तरह करने से, भन्ते! कोई भिक्षु (साधक) 'स्थानकुशल' एवं 'अस्थानकुशल' कहला सकता है ?"

"यहाँ, आनन्द! कोई भिक्षु—'इसका स्थान ही नहीं, इसके लिये कोई अवकाश ही नहीं कि कोई सम्यग्दृष्टि पुरुष किसी संस्कार को नित्य समझे, क्योंकि यह सम्भव ही नहीं'—ऐसा जानता-समझता है, '''इसका स्थान है, इसका अवकाश है कि कोई पृथग्जन किसी संस्कार को नित्य समझे; क्योंकि यह सम्भव है'—ऐसा जानता-समझता है। '''पूर्ववत्'''कोई सम्यग्दृष्टि किसी संस्कार को सुखमय समझेक'''योंकि ऐसा सम्भव है; '''कोई सम्यग्दृष्टि पुरुष किसी धर्म को आत्मा के रूप में ग्रहण करे''', '''कोई पृथग्जन किसी धर्म को अपने आत्मा के रूप में ग्रहण करे, क्योंकि यह सम्भव है'—ऐसा जानता-समझता है।

खो एतं विज्जति यं पुथुज्जनो कञ्चि धम्मं अत्ततो उपगच्छेय्य, ठानमेतं विज्जती' ति पजानाति।

[B. 110] ६. " 'अट्ठानमेतं अनवकासो यं 'दिट्ठिसम्पन्नो पुग्गलो मातरं [N. 128] जीविता वोरोपेय्य, नेतं ठानं विज्जती' ति पजानाति, 'ठानं च खो एतं विज्जति यं पुथुज्जनो मातरं जीविता वोरोपेय्य, ठानमेतं [R. 65] विज्जती' ति पजानाति। 'अट्ठानमेतं अनवकासो यं दिट्ठिसम्पन्नो पुग्गलो पितरं जीविता वोरोपेय्य...पे०...अरहन्तं जीविता वोरोपेय्य, ठानमेतं विज्जती' ति पजानाति।

" 'अट्ठानमेतं अनवकासो यं दिट्ठिसम्पन्नो पुग्गलो दुट्ठचित्तो तथागतस्स लोहितं उप्पादेय्य, नेतं ठानं विज्जती' ति पजानाति, 'ठानं च खो एतं विज्जति यं पुथुज्जनो दुट्ठचित्तो तथागतस्स लोहितं उप्पादेय्य, ठानमेतं विज्जती' ति पजानाति। 'अट्ठानमेतं अनवकासो यं दिट्ठिसम्पन्नो पुग्गलो सङ्घं भिन्देय्य, नेतं ठानं विज्जती' ति पजानाति, 'ठानं च खो एतं विज्जति यं पुथुज्जनो सङ्घं भिन्देय्य, ठानमेतं विज्जती' ति पजानाति। अट्ठानमेतं अनवकासो यं दिट्ठिसम्पन्नो पुग्गलो अञ्ञं सत्थारं उद्दिसेय्य, नेतं ठानं विज्जती' ति पजानाति, 'ठानं च खो एतं विज्जति यं पुथुज्जनो अञ्ञं सत्थारं उद्दिसेय्य, ठानमेतं विज्जती' ति पजानाति।

७. " 'अट्ठानमेतं अनवकासो यं एकिस्सा लोकधातुया द्वे अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा अपुब्ब अचरिमं उप्पज्जेय्युं, नेतं ठानं विज्जती' ति पजानाति,

---

६. "इसकी सम्भावना नहीं, इसके लिये कोई अवकाश नहीं कि कोई सम्यग्दृष्टि पुरुष माता की हत्या करे...', 'इसकी सम्भावना है...कोई पृथग्जन माता की हत्या करे...', '...कोई सम्यग्दृष्टि पुरुष पिता की हत्या करे...' 'कोई पृथग्जन पिता की हत्या करे...अरहत् की हत्या करे--यह सम्भव है'...।

"यह सम्भव नहीं है कि कोई दृष्टिसम्पन्न पुरुष प्रदुष्टमन हो तथागत के शरीर से रक्त निकाले...और यह सम्भव है कि कोई पृथग्जन तथागत के शरीर से...। यह भी सम्भव नहीं कि कोई दृष्टिसम्पन्न पुरुष सङ्घ में फूट डाले...और यह सम्भव है कि कोई पृथग्जन सङ्घ में फूट डाले...। यह भी सम्भव नहीं कि कोई सम्यग्दृष्टि पुरुष तथागत के अतिरिक्त किसी अन्य को अपना शास्ता बनावे...यह सम्भव है कि कोई पृथग्जन तथागत के अतिरिक्त किसी अन्य को अपना शास्ता बनावे—यह सम्भव है'—ऐसा वह भलीभाँति जानता है।

७. " 'यह सम्भव नहीं है कि एक ही लोकधातु में दो अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध एक साथ एक ही समय अवतार लें; हाँ, यह सम्भव है कि एक लोकधातु में एक समय

'ठानं च खो एतं विज्जति यं एकिस्सा लोकधातुया एको अरहं सम्मासम्बुद्धो उप्पज्जेय्य, ठानमेतं विज्जती' ति पजानाति। 'अट्ठानमेतं अनवकासो यं एकिस्सा लोकधातुया द्वे राजानो चक्कवत्तिनो अपुब्बं अचरिमं उप्पज्जेय्युं, नेतं ठानं विज्जती' ति पजानाति, 'ठानं च खो एतं विज्जति यं एकिस्सा लोकधातुया एको राजा चक्कवत्ती उप्पज्जेय्य, ठानमेतं विज्जती' ति पजानाति।

८. " 'अट्ठानमेतं अनवकासो यं इत्थी अरहं अस्स सम्मासम्बुद्धो, नेतं ठानं विज्जती' ति पजानाति, 'ठानं च खो एतं विज्जति यं पुरिसो अरहं अस्स सम्मासम्बुद्धो, ठानमेतं विज्जती' ति पजानाति। 'अट्ठानमेतं अनवकासो यं इत्थी राजा अस्स चक्कवत्ती, नेतं ठानं विज्जती' ति पजानाति, 'ठानं च खो एतं विज्जति यं पुरिसो राजा अस्स चक्कवत्ती, ठानमेतं विज्जती' ति पजानाति। अट्ठानमेतं अनवकासो यं इत्थी सक्कत्तं करेय्य...मारत्तं [R. 66] करेय्य...ब्रह्मत्तं करेय्य, नेतं ठानं विज्जती' ति पजानाति, ठानं [N. 129] च खो एतं विज्जति यं पुरिसो सक्कत्तं करेय्य...मारत्तं करेय्य...ब्रह्मत्तं करेय्य, ठानमेतं विज्जती' ति पजानाति। [B. 111]

९. " 'अट्ठानमेतं अनवकासो यं कायदुच्चरितस्स इट्ठो कन्तो मनापो विपाको निब्बत्तेय्य, नेतं ठानं विज्जती' ति पजानाति, 'ठानं च खो एतं विज्जति यं कायदुच्चरितस्स अनिट्ठो अकन्तो अमनापो विपाको निब्बत्तेय्य, ठानमेतं विज्जती' ति पजानाति। 'अट्ठानमेतं अनवकासो यं वचीदुच्चरि-

---

एक ही अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध अवतार ले...यह भी सम्भव नहीं है कि एक ही लोकधातु में एक ही समय एक साथ दो चक्रवर्ती राजा हों; यही सम्भव है कि एक लोकधातु में एक समय एक ही चक्रवर्ती राजा हो'...।

८. "यह तो सम्भव नहीं है कि कोई स्त्री अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध बन सके...हाँ, यह सम्भव है कि कोई पुरुष ही अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध बन जाय। यह भी सम्भव नहीं है कि कोई स्त्री चक्रवर्ती राजा बन सके, हाँ, यही सम्भव है कि कोई पुरुष चक्रवर्ती राजा बन जाय। यह भी सम्भव नहीं है कि कोई स्त्री इन्द्रपद प्राप्त कर ले...मारपद...ब्रह्मपद प्राप्त कर ले। हाँ, यही सम्भव है कि कोई पुरुष ही इन्द्रपद...मारपद...ब्रह्मपद प्राप्त कर पाये। ऐसा वह जानता है।

९. "यह सम्भव नहीं है...कि किसी कायिक दुराचार का इष्ट, कान्त या प्रिय कर्मफलविपाक हो; वहाँ तो यही सम्भव है कि ऐसे दुराचार का अनिष्ट अकान्त व अप्रिय कर्मफलविपाक हो। यह भी सम्भव नहीं कि कि किसी वाचिक दुराचार

तस्स···पे०···यं मनोदुच्चरितस्स इट्ठो कन्तो मनापो विपाको निब्बत्तेय्य, नेतं ठानमेतं विज्जती' ति पजानाति 'ठानं च खो···पजानाति'।

"अट्ठानमेतं अनवकासो यं कायसुचरितस्स अनिट्ठो अकन्तो अमनापो विपाको निब्बत्तेय्य, नेतं ठानं विज्जती' ति पजानाति, 'ठानं च खो एतं विज्जति यं कायसुचरितस्स इट्ठो कन्तो मनापो विपाको निब्बत्तेय्य, ठानमेतं विज्जती' ति पजानाति। 'अट्ठानमेतं अनवकासो यं वचीसुचरितस्स...पे०... यं मनोसुचरितस्स अनिट्ठो अकन्तो अमनापो विपाको निब्बत्तेय्य, नेतं ठानं विज्जती' ति पजानाति, 'ठानं च खो एतं विज्जति यं वचीसुचरितस्स···पे०···यं मनोसुचरितस्स इट्ठो कन्तो मनापो विपाको निब्बत्तेय्य, ठानमेतं बिज्जती' ति पजानाति।

" 'अट्ठानमेतं अनवकासो यं कायदुच्चरितसमङ्गी तन्निदाना तप्पच्चया कायस्य भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जेय्य, नेतं ठानं विज्जती' ति पजानाति, ठानं च खो एतं विज्जति यं कायदुच्चरितसमङ्गी तन्निदाना [R. 67] तप्पच्चया कायस्य भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जेय्य, ठानमेतं विज्जती' ति पजानाति। 'अट्ठानमेतं अनवकासो यं वचीदुच्चरितसमङ्गी···पे०···यं मनोदुच्चरितसमङ्गी तन्निदाना तप्पच्चया कायस्य भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जेय्य, नेतं ठानं विज्जती' ति पजानाति, 'ठानं च खो एतं विज्जति यं वचीदुच्चरितसमङ्गी···पे०··· यं मनोदुच्चरितसमङ्गी तन्निदाना तप्पच्चया कायस्य भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जेय्य, ठानमेतं विज्जती' ति [N. 130] पजानाति।

का···अप्रिय कर्मफलविपाक हो। यह भी सम्भव नहीं कि किसी मानसिक दुराचार का···प्रिय विपाक हो···।

" 'और यह भी सम्भव नहीं है···किसी कायिक सदाचार का अनिष्ट अकान्त या अप्रिय फलविपाक हो; यही सम्भव है कि कायिक समाचार का इष्ट कान्त या प्रिय फलविपाक हो।···किसी बाचसिक सदाचार का···मानसिक सदाचार का···प्रिय ही फलविपाक हो'—ऐसा जानता है।

(क) "यह सम्भव नहीं है···कि कोई पुरुष कायिक दुराचार से समन्वित हो और उसे इस देहपात के बाद मरणानन्तर सुगति या स्वर्गलोक मिले, हाँ, यह सम्भव है···कि ऐसे कायिक दुराचारी को मरणानन्तर देहपात के बाद अपाय, दुर्गति या नरक ही मिले। (ख) यह सम्भव नहीं है···कि कोई वाग्दुराचार से समन्वित हो, उसे···। (ग) यह सम्भव नहीं है कि मनोदुराचारसमन्वित पुरुष को

" 'अट्ठानमेतं अनवकासो यं कायसुचरितसमङ्गी तन्निदाना तप्पच्चया कायस्य भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं [B. 112] उपपज्जेय्य, नेतं ठानं विज्जती' ति पजानाति, 'ठानं च खो एतं विज्जति यं कायसुचरितसमङ्गी तन्निदाना तप्पच्चया कायस्य भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जेय्य, ठानमेतं विज्जती' ति पजानाति। 'अट्ठानमेतं अनवकासो यं वचीसुचरितसमङ्गी…पे०…यं मनोसुचरितसमङ्गी तन्निदाना तप्पच्चया कायस्य भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जेय, नेतं ठानं विज्जती' ति पजानाति, 'ठानं च खो एतं विज्जति यं वचीसुचरितसमङ्गी…पे०…यं मनोसुचरितसमङ्गी तन्निदाना तप्पच्चया कायस्य भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जेय, ठानमेतं विज्जती' ति पजानाति। एत्तावता खो, आनन्द, 'ठानाठानकुसलो भिक्खू' ति अलं वचनाया" ति।

६. एतस्स धम्मपरियायस्स नामानि

१०. एवं वुत्ते, आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—"अच्छरियं, भन्ते, अब्भुतं, भन्ते! कोनामो अयं, भन्ते, धम्मपरियायो" ति?

"तस्मातिह त्वं, आनन्द, इमं धम्मपरियायं 'बहुधातुको' ति पि नं धारेहि, 'चतुपरिवट्टो' ति पि नं धारेहि, 'धम्मादासो' ति पि नं धारेहि,

---

इस देहपात के बाद…स्वर्ग मिले। यह सम्भव है कि ऐसे पुरुष को…नरक ही मिले।

(क) "यह सम्भव नहीं है कि किसी कायिक सदाचारी पुरुष को…नरक मिले, यही सम्भव है कि ऐसे पुरुष को स्वर्ग मिले। (ख) यह सम्भव नहीं है कि किसी वाचिक सदाचारी को…नरक मिले, अपितु यही सम्भव है कि ऐसे पुरुष को स्वर्ग ही मिले। (ग) यह सम्भव नहीं है कि किसी मानसिक सदाचारी को नरक मिले…ऐसे पुरुष को स्वर्ग ही मिले'। ऐसा जो जानता है उस भिक्षु को, आनन्द! 'स्थानास्थानकुशल' कहा जा सकता है।

६. इस धर्मपर्याय (सूत्र) का नामकरण

१०. भगवान् द्वारा ऐसा कहे जाने पर, आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से यों निवेदन किया—"भन्ते! आप ने यह आश्चर्यमय उपदेश किया, अद्भुत उपदेश किया! भन्ते! इस सूत्र (धर्मपर्याय) को किस नाम से जाना जाय?"

"तो आनन्द! तुम इस सूत्र को 'बहुधातुक'—इस नाम से भी जान सकते

'अमतदुन्दुभी' ति पि नं धारेहि, 'अनुत्तरो सङ्गामविजयो' ति पि नं धारेही" ति।

११. इदमवोच भगवा। अत्तमनो आयस्मा आनन्दो भगवतो भासितं अभिनन्दी ति।

हो, 'चतुःपरिवर्त' नाम से भी जान सकते हो; 'धर्मादर्श' नाम से भी जान सकते हो, 'अमृतदुन्दुभि' या 'अनुत्तरसंग्रामविजय' नाम से भी धारण कर सकते हो।"

११. भगवान् ने यह कहा। आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् के भाषण का अभिनन्दन किया॥

बहुधातुकसुत्त समाप्त॥

१६. इसिगिलिसुत्तं

१. अञ्ञपञ्ञत्तिका राजगहपब्बता

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विह- [N. 131, R. 68] रति इसिगिलिस्मिं पब्बते। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

"पस्सथ नो तुम्हे, भिक्खवे, एतं वेभारं पब्बतं" ति ?

"एवं, भन्ते"।

"एतस्स पि खो, भिक्खवे, वेभारस्स पब्बतस्स अञ्ञा व समञ्ञा अहोसि, अञ्ञा पञ्ञत्ति। पस्सथ नो तुम्हे, भिक्खवे, एतं [B. 113] पण्डवं पब्बतं" ति ?

"एवं, भन्ते"।

"एतस्स पि खो, भिक्खवे, पण्डवस्स पब्बतस्स अञ्ञा व समञ्ञा अहोसि, अञ्ञा पञ्ञत्ति। पस्सथ नो तुम्हे, भिक्खवे, एतं वेपुल्लं पब्बतं" ति ?

"एवं, भन्ते"।

"एतस्स पि खो, भिक्खवे, वेपुल्लस्स पब्बतस्स अञ्ञा व समञ्ञा अहोसि, अञ्ञा पञ्ञत्ति। पस्सथ नो तुम्हे, भिक्खवे, एतं गिज्झकूटं पब्बतं" ति ?

---

१६. ऋषिगिलिसूत्र

१. राजगृह के दूसरे-दूसरे नाम वाले पर्वत

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) राजगृह में ऋषिगिलि पर्वत पर साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ...पूर्ववत्...।

भगवान् बोले—"भिक्षुओ ! तुम इस वैभारपर्वत को देख रहे हो ?"

"हाँ भन्ते।"

"भिक्षुओ ! इस वैभार पर्वत का पहले दूसरा ही नाम (समज्ञा) था, दूसरी ही प्रज्ञप्ति (संज्ञा) थी। और तुम इस पाण्डव पर्वत को भी देख रहे हो न !"

"हाँ, भन्ते !"

"भिक्षुओ ! इस पाण्डव पर्वत का भी पहले दूसरा ही नाम था, दूसरी ही प्रज्ञप्ति थी। और तुम इस वैपुल्य पर्वत को भी देख रहे हो न !"

"हाँ, भन्ते !"

"भिक्षुओ ! इस वैपुल्य पर्वत का भी पहले दूसरा नाम...। इस गृध्रकूट पर्वत को भी देख रहे हो न !"

"एवं, भन्ते"।

"एतस्स पि खो, भिक्खवे, गिज्झकूटस्स पब्बतस्स अञ्ञा व समञ्ञा अहोसि, अञ्ञा पञ्ञत्ति।

२. कथं इसिगिलि समञ्ञा उदपादि ?

२. "पस्सथ नो तुम्हे, भिक्खवे, इमं इसिगिलिं पब्बतं" ति ?

"एवं, भन्ते"।

"इमस्स खो पन, भिक्खवे, इसिगिलिस्स पब्बतस्स एसा व समञ्ञा अहोसि, एसा पञ्ञत्ति।

[N. 132] "भूतपुब्बं, भिक्खवे, पञ्च पच्चेकबुद्धसतानि इमस्मिं इसिगिलिस्मिं पब्बते चिरनिवासिनो अहेसुं। ते इमं पब्बतं पविसन्ता दिस्सन्ति, पविट्ठा न दिस्सन्ति। तमेनं मनुस्सा दिस्वा एवमाहंसु—'अयं पब्बतो इमे इसी गिलती' ति; 'इसिगिलि इसिगिली' त्वेव समञ्ञा उदपादि। आचिक्खिस्सामि, भिक्खवे, पच्चेकबुद्धानं नामानि; कित्तयिस्सामि, भिक्खवे, पच्चेकबुद्धानं नामानि; देसेस्सामि, भिक्खवे, पच्चेकबुद्धानं नामानि। तं [R. 69] सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; भासिस्सामी" ति। "एवं, भन्ते" ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

"हाँ, भन्ते !"

"भिक्षुओ ! इस गृध्रकूट पर्वत का भी पहले···।

२. ऋषिगिलि यह नाम कैसे पड़ा ?

२. "भिक्षुओ ! तुम यह ऋषिगिलि पर्वत (भी) देख रहे हो न !"

"हाँ, भन्ते !"

"भिक्षुओ ! इस ऋषिगिलि पर्वत की (पहले भी) यही संज्ञा थी, यही नाम (प्रज्ञप्ति) था।

"भिक्षुओ ! पहले कभी इस ऋषिगिलि पर्वत पर पाँच सौ प्रत्येकबुद्ध (त्रिविध ज्ञानियों में से एकविध) बहुत समय से रहते थे। वे इस पर्वत-प्रदेश में प्रविष्ट होते तो दिखायी देते थे, पर प्रविष्ट होने के बाद नहीं दिखायी पड़ते थे। तब यह (घटना) देखकर वहाँ के पास-पड़ोस के रहने वालों ने कहना प्रारम्भ कर दिया कि 'यह पर्वत इन ऋषियों को निगल गया।' यों इस (पर्वत) की 'ऋषिगिलि' यह संज्ञा (नाम) ही पड़ गयी। भिक्षुओ ! (अब) मैं तुमको उन (में से कुछ) का नाम बताऊँगा, उनमें से कुछ का कीर्तन (प्रशंसा) करूँगा, भिक्षुओ ! उन प्रत्येकबुद्धों के नामों की देशना (पृथक्-पृथक् वर्णन) करूँगा। तुम ध्यान लगाकर सुनो, बताता हूँ।" "ठीक है, भन्ते !" कहकर भिक्षुओं ने भगवान् को उत्तर दिया।

३. इसिगिलिनिवासी पच्चेकबुद्धा

३. "**अरिट्ठो** नाम, भिक्खवे, पच्चेकसम्बुद्धो इमस्मिं इसिगिलिस्मिं पब्बते चिरनिवासी अहोसि; **उपरिट्ठो** नाम, भिक्खवे, पच्चेकसम्बुद्धो इमस्मिं इसिगिलिस्मिं पब्बते चिरनिवासी अहोसि; **तगरसिखी** नाम, भिक्खवे, पच्चेकसम्बुद्धो इमस्मिं इसिगिलिस्मिं पब्बते चिरनिवासी अहोसि; **यसस्सी** नाम, भिक्खवे, पच्चेकसम्बुद्धो इमस्मिं इसिगिलिस्मिं पब्बते चिरनिवासी अहोसि; **सुदस्सनो** नाम, भिक्खवे, पच्चेकसम्बुद्धो इमस्मिं इसिगिलिस्मिं पब्बते चिरनिवासी अहोसि; **पियदस्सी** नाम, भिक्खवे, पच्चेकसम्बुद्धो इमस्मिं इसिगिलिस्मिं पब्बते चिरनिवासी अहोसि; [B. 114] **गन्धारो** नाम, भिक्खवे, पच्चेकसम्बुद्धो इमस्मिं इसिगिलिस्मिं पब्बते चिरनिवासी अहोसि; **पिण्डोलो** नाम, भिक्खवे, पच्चेकसम्बुद्धो इमस्मिं इसिगिलिस्मिं पब्बते चिरनिवासी अहोसि; **उपासभो** नाम, भिक्खवे, पच्चेकसम्बुद्धो इमस्मिं इसिगिलिस्मिं पब्बते चिरनिवासी अहोसि; **नीतो** नाम, भिक्खवे, पच्चेकसम्बुद्धो इमस्मिं इसिगिलिस्मिं पब्बते चिरनिवासी अहोसि; **तथो** नाम, भिक्खवे, पच्चेकसम्बुद्धो इमस्मिं इसिगिलिस्मिं पब्बते चिरनिवासी अहोसि; **सुतवा** नाम, भिक्खवे पच्चेकसम्बुद्धो इमस्मिं इसिगिलिस्मिं पब्बते चिरनिवासी अहोसि; **भावितत्तो** नाम, भिक्खवे पच्चेकसम्बुद्धो इमस्मिं इसिगिलिस्मिं पब्बते चिरनिवासी अहोसि।

४. "ये सत्तसारा अनीघा निरासा, पच्चेकमेवज्झगमंसु बोधिं। [N. 133]
तेसं विसल्लान नरुत्तमानं, नामानि मे कित्तयतो सुणाथ ॥ १ ॥
"अरिट्ठो उपरिट्ठो तगरसिखी यसस्सी, सुदस्सनो पियदस्सी च सुसम्बुद्धो।
गन्धारो पिण्डोलो उपासभो च, नीतो तथो सुतवा भावितत्तो ॥ २ ॥

---

३. ऋषिगिलिनिवासी प्रत्येकबुद्ध

३. भगवान् बोले—"भिक्षुओ ! एक अरिष्ट नामक प्रत्येकबुद्ध इस ऋषिगिलि पर्वत पर बहुत काल तक रहा। ...उपारिष्ट...। ...तगरशिखी...। ...यशस्वी...। ...सुदर्शन...। ...प्रियदर्शी...। ...गन्धार...। ...पिण्डोल...। ...उपार्षभ...। ...नीत...। ...तथ...। ...श्रुतवान्...। ...भावितात्मा नामक प्रत्येकबुद्ध इस ऋषिगिलि पर्वत पर बहुत काल तक रहा।

४. जो प्राणियों में उत्कृष्ट, निष्पाप, एवं सभी आशाओं से रहित, प्रत्येकबोधि को प्राप्त हुए, उन ध्यानी पुरुष-श्रेष्ठ प्रत्येकबुद्धों का नाम बता रहा हूँ, तुम ध्यान से सुनो ॥ १ ॥

अरिष्ट, उपारिष्ट, तगरशिखी, यशस्वी, सुदर्शन, प्रियदर्शी सुसम्बुद्ध, गान्धार, पिण्डोल, उपार्षभ, नीत, तथा, श्रुतवान् एवं भावितात्मा ॥ २ ॥

[R. 70] "सुम्भो सुभो मतुलो अट्ठमो च, अथस्सुमेघो अनीघो सुदाठो।
पच्चेकबुद्धा भवनेत्तिखीणा, हिङ्गू च हिङ्गो च महानुभावा॥ ३॥
"द्वे जालिनो मुनिनो अट्ठको च, अथ कोसल्लो बुद्धो अथो सुबाहु।
उपनेमिसो नेमिसो सन्तचित्तो, सच्चो तथो विरजो पण्डितो च॥ ४॥
[B.115] "काळूपकाळा विजितो जितो च, अङ्गो च पङ्गो च गुत्तिजितो च।
पस्सि जहि उपधिदुक्खमूलं, अपराजितो मारबलं अजेसि॥ ५॥
"सत्था पवत्ता सरभङ्गो लोमहंसो, उच्चङ्गमा यो असितो अनासवो।
मनोमयो मानच्छिदो च बन्धुमा, तदाधिमुत्तो विमलो च केतुमा॥ ६॥
[N. 134] "केतुम्भरागो च मातङ्गो अरियो, अथच्चुतो अच्चुतगामब्यामको।
सुमङ्गलो दब्बिलो सुपतिट्ठितो, असय्हो खेमाभिरतो च सोरतो॥ ७॥
"दुरन्नयो सङ्घो अथो पि उज्जयो, अपरो मुनि सय्हो अनोमनिक्कमो।
आनन्दो नन्दो उपनन्दो द्वादस, भारद्वाजो अन्तिमदेहधारी॥ ८॥
"बोधि महानामो अथो पि उत्तरो, केसी सिखी सुन्दरो द्वारभाजो[1]।
तिस्सूपतिस्सा भवबन्धनच्छिदा, उपसिखि तण्हच्छिदो च सिखरि॥ ९॥

"शुम्भ, शुभ, मतुल, अष्टम, सुमेघ, अनीघ, सुदाठ—ये प्रत्येकबुद्ध (इस पर्वत पर साधना कर) भवबन्धन से मुक्त हुए। (इन्हीं में) हिंगु तथा हिङ्ग नाम के दो महानुभाव भी थे॥ ३॥

"दो जाली मुनि, अष्टक, फिर कौशल्य, बुद्ध, फिर सुबाहु, उपनैमिष, नैमिष, शान्तचित्त, सत्य, तथ, विरज और पण्डित॥ ४॥

"काल, उपकाल, विजित, और जित, अङ्ग, वङ्ग (या प्राङ्ग), गुत्तिजित् एवं पश्यी ने लोभ-(उपधि)मूल का त्याग कर दिया। और अपराजित (प्रत्येक-बुद्ध) ने मारसेना को जीता॥ ५॥

"शास्ता, प्रवक्ता, शरभङ्ग, लोमहर्ष, उच्चङ्गम, असित, अनाश्रव, मनोमय, मानच्छिद्, बन्धुमान् और अधिमुक्त, विमल एवं केतुमान्॥ ६॥

"केतुम्भराग, मातङ्ग, आर्य, फिर अच्युत, अच्युतग्राम, व्यामक, सुमङ्गल, दर्बिल, सुप्रतिष्ठित, असह्य, क्षेमाभिरत एवं सौरत॥ ७॥

"दुरन्वय, सङ्घ और उज्जय, दूसरे मुनि सह्य, अनोमनिष्क्रम, आनन्द, नन्द, उपनन्द—ये बारह और अन्तिम देहधारी भारद्वाज॥ ८॥

"बोधि, महानाम और ऐसे ही उत्तर, केशी, शिखी, सुन्दर, द्वारभाज[1], भवबन्धनच्छेदक तिष्य, उपतिष्य, उपशिखी और तृष्णाच्छेदक शिखरी॥ ९॥

---

१. सी० स्या० रो० संस्करणों के आधार पर श्री राहुल जी ने 'भारद्वाज' अर्थ किया है, परन्तु 'भारद्वाज' नाम तो ऊपर आ चुका है, फिर पुनरावृत्ति क्यों!

"बुद्धो अहु मङ्गलो वीतरागो, उसभच्छिदा जालिनिं दुक्खमूलं।
सन्तं पदं अज्झगमोपनीतो, उपोसथो सुन्दरो सच्चमानो ॥ १० ॥
"जेतो जयन्तो पदुमो उप्पलो च, पदुमुत्तरो रक्खितो पब्बतो च। [R. 71]
मानत्थद्धो सोभितो वीतरागो, कण्हो च बुद्धो सुविमुत्तचित्तो ॥ ११ ॥
"एते च अञ्ञे च महानुभावा, पच्चेकबुद्धा भवनेत्तिखीणा। [B. 116]
ते सब्बसङ्गातिगते महेसी, परिनिब्बुते वन्दथ अप्पमेय्ये" ति ॥ १२ ॥

"वीतराग मङ्गलबुद्ध, दुःख की मूलभूत जालिनी (तृष्णा) को छिन्न-भिन्न करने वाले ऋषभ, शान्त पद को प्राप्त उपनीत, उपोसथ, सुन्दर एवं सत्यमान ॥ १० ॥

"जैत्र, जयन्त, पद्म, उत्पल, पद्मोत्तर, रक्षित, पर्वत, मानस्तब्ध एवं वीतराग शोभित और सुविमुक्तचित्त कृष्ण बुद्ध ॥ ११ ॥

ये और ऐसे ही दूसरे महानुभाव, भवबन्धनमुक्त प्रत्येकबुद्ध (यहाँ हुए)। उन सभी सर्वसंसर्गत्यागी, परिनिर्वाण को प्राप्त, असङ्ख्य महर्षियों की वन्दना करो ॥ १२ ॥

इसिगिलिसुत्त समाप्त ॥

१७. महाचत्तारीसकसुत्तं

१. वीसति कुसलपक्खा

[N. 135] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—"अरियं वो, भिक्खवे, सम्मासमाधिं देसेस्सामि सउपनिसं सपरिक्खारं। तं सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; भासिस्सामी" ति। "एवं, भन्ते" ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

"कतमो च, भिक्खवे, अरियो सम्मासमाधि सउपनिसो सपरिक्खारो? सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि, सम्मासङ्कप्पो, सम्मावाचा, सम्माकम्मन्तो, सम्माआजीवो, सम्मावायामो, सम्मासति; या खो, भिक्खवे, इमेहि सत्तहङ्गेहि चित्तस्स एकग्गता परिक्खता–अयं वुच्चति, भिक्खवे, अरियो सम्मासमाधि सउपनिसो इति पि, सपरिक्खारो इति पि। तत्र, भिक्खवे, सम्मादिट्ठि पुब्बङ्गमा होति। कथं च, भिक्खवे, सम्मादिट्ठि पुब्बङ्गमा होति? मिच्छादिट्ठिं 'मिच्छादिट्ठी' ति पजानाति, सम्मादिट्ठिं 'सम्मादिट्ठी' ति पजानाति–सास्स होति सम्मादिट्ठि।

"कतमा च, भिक्खवे, मिच्छादिट्ठि? 'नत्थि दिन्नं, नत्थि यिट्ठं, नत्थि

---

१७. महाचत्वारिंशत्क सूत्र

१. बीस (२०) अकुशलपक्षीय धर्म

१. ऐसा मैने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्तीस्थित… पूर्ववत्…। भगवान् ने यह कहा—"भिक्षुओ! मैं तुम्हें उपनिषद् (रहस्य) एवं परिष्कार सहित आर्य सम्यक्सम्बोधि की देशना करूँगा। उसे तुम ध्यानपूर्वक मन लगाकर सुनो। मैं बता रहा हूँ।" "ठीक है, भन्ते!' कह कर भिक्षुओं ने भगवान् के आदेश को स्वीकार किया। भगवान् यों बोले—

"भिक्षुओ! यह उपनिषद् (रहस्य) एवं परिष्कार (सहायक सामग्री) सहित आर्य सम्यक्सम्बोधि क्या है? जैसे—सम्यग्दृष्टि, सम्यक्सङ्कल्प, सम्यग्वाक्, सम्यक्कर्मान्त, सम्यगाजीव, सम्यग्व्यायाम एवं सम्यक्स्मृति—भिक्षुओ! इन सात अङ्गों से परिष्कृत चित्त की एकाग्रता ही 'सम्यक्समाधि' कहलाती है। वही उपनिषत्सहित व परिष्कारसहित है। भिक्षुओ! यह दृष्टि पूर्वगामी होती है। कैसे, भिक्षुओ! यह दृष्टि पूर्वगामी होती है? जो साधक मिथ्यादृष्टि को 'मिथ्यादृष्टि' के रूप में और और सम्यग्दृष्टि को सम्यग्दृष्टि के रूप में जान लेता है वही उसकी सम्यग्दृष्टि है।

"और भिक्षुओ! यह 'मिथ्यादृष्टि' क्या है! 'न दान है न यज्ञ, न हवन

हुतं, नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको, नत्थि अयं लोको, नत्थि परो लोको, नत्थि माता, नत्थि पिता, नत्थि सत्ता ओपपातिका, नत्थि लोके समणब्राह्मणा सम्मग्गता सम्मापटिपन्ना ये इमं च लोकं परं [R. 72] च लोकं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेन्ती' ति—अयं, भिक्खवे, मिच्छादिट्ठि ।

"कतमा च, भिक्खवे, सम्मादिट्ठि ? सम्मादिट्ठिं [N. 136, B. 117] पहं, भिक्खवे, द्वायं वदामि—अत्थि, भिक्खवे, सम्मादिट्ठि सासवा पुञ्ञभागिया उपधिवेपक्का; अत्थि, भिक्खवे, सम्मादिट्ठि अरिया अनासवा लोकुत्तरा मग्गङ्गा । कतमा च, भिक्खवे, सम्मादिट्ठि सासवा पुञ्ञभागिया उपधिवेपक्का ? 'अत्थि दिन्नं, अत्थि यिट्ठं, अत्थि हुतं, अत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको, अत्थि अयं लोको, अत्थि परो लोको, अत्थि माता, अत्थि पिता, अत्थि सत्ता ओपपातिका, अत्थि लोके समणब्राह्मणा सम्मग्गता सम्मापटिपन्ना ये इम च लोकं परं च लोकं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेन्ती' ति—अयं, भिक्खवे, सम्मादिट्ठि सासवा पुञ्ञभागिया उपधिवेपक्का

"कतमा च, भिक्खवे, सम्मादिट्ठि अरिया अनासवा लोकुत्तरा मग्गङ्गा ? या खो, भिक्खवे, अरियचित्तस्स अनासवचित्तस्स अरियमग्गसमङ्गिनो

(हुत) है न सुकृत-दुष्कृत कर्मों का कोई फलविपाक (परिणाम), न यह लोक है न परलोक, न माता है न पिता, न कोई औपपातिक (अयोनिज) सत्त्व है, न ऐसे कोई श्रमण-ब्राह्मण जो किसी धर्म को स्वयं साक्षात् कर उसका दूसरों को उपदेश करते हों'—भिक्षुओ ! यह है मिथ्यादृष्टि (गलत धारणा) ।

"और, भिक्षुओ ! 'सम्यग्दृष्टि' क्या होती है ? भिक्षुओ ! इस सम्यग्दृष्टि की देशना मैं द्विधा विभाजन करके करता हूँ— इनमें १. एक सम्यग्दृष्टि सास्रव (मल-सहित) 'उपधि' नामक विपाक (फल) को देनेवाली एवं पुण्यभागीय होती है । और भिक्षुओ ! २. दूसरी सम्यग्दृष्टि आर्य (श्रेष्ठ) अनास्रव (मलरहित), लोकोत्तर (अलौकिक) मार्ग का अङ्ग होती है ।

(क) "भिक्षुओ ! यह सास्रव···पुण्यभागीय सम्यग्दृष्टि क्या है ? 'दान भी है और यज्ञ भी,···पूर्ववत्···उपदेश करते हों'—भिक्षुओ ! यह हुई पहली सम्यग्दृष्टि ।

(ख) "और भिक्षुओ ! वह दूसरी अनास्रव लोकोत्तर मार्ग की अङ्गभूत आर्य 'सम्यग्दृष्टि' क्या है ? भिक्षुओ ! यह जो आर्य एवं अनास्रवचित्त व आर्यमार्ग से सम्बद्ध, आर्यमार्ग की भावना करने वाले साधक की प्रज्ञा, प्रज्ञेन्द्रिय, प्रज्ञाबल,

अरियमग्गं भावयतो पञ्ञा पञ्ञिन्द्रियं पञ्ञाबलं धम्मविचयसम्बोज्झङ्गो सम्मादिट्ठि मग्गङ्गं—अयं वुच्चति, भिक्खवे, सम्मादिट्ठि अरिया अनासवा लोकुत्तरा मग्गङ्गा। सो मिच्छादिट्ठिया पहानाय वायमति, सम्मादिट्ठिया उपसम्पदाय, स्वास्स होति सम्मावायामो। सो सतो मिच्छादिट्ठि पजहति, सतो सम्मादिट्ठिं उपसम्पज्ज विहरति, सास्स होति सम्मासति। इतियेमे तयो धम्मा सम्मादिट्ठिं अनुपरिधावन्ति अनुपरिवत्तन्ति, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि, सम्मावायामो, सम्मासति।

२. "तत्र, भिक्खवे, समादिट्ठि पुब्बङ्गमा होति। कथं च, भिक्खवे, सम्मादिट्ठि, पुब्बङ्गमा होति? मिच्छासङ्कप्पं 'मिच्छासङ्कप्पो' ति पजानाति, सम्मासङ्कप्पं 'सम्मासङ्कप्पो' ति पजानाति, सास्स होति सम्मादिट्ठि। [R. 73] कतमो च, भिक्खवे, मिच्छासङ्कप्पो? कामसङ्कप्पो, ब्यापादसङ्कप्पो, विहिंसासङ्कप्पो—अयं, भिक्खवे, मिच्छासङ्कप्पो।

"कतमो च, भिक्खवे, सम्मासङ्कप्पो? सम्मासङ्कप्पं पहं, भिक्खवे, द्वायं वदामि—अत्थि, भिक्खवे, सम्मासङ्कप्पो सासवो पुञ्ञ- [N. 137] भागियो उपधिवेपक्को; अत्थि, भिक्खवे, सम्मासङ्कप्पो अरियो अनासवो

तथा धर्मविचयसम्बोध्यङ्ग, सम्यग्दृष्टिमार्गाङ्ग हैं वही, भिक्षुओ ! आर्य, अनास्रव··· 'सम्यग्दृष्टि' कहलाती है। ऐसा सम्यग्दृष्टिसाधक मिथ्यादृष्टियों के प्रहाण का तथा सम्यग्दृष्टि के उत्पाद का जो प्रयत्न करता है वह उसका 'सम्यग्व्यायाम' कहलाता है। और जो वह भली भाँति स्मरण करते हुए मिथ्यादृष्टि को त्यागता है, स्मरण करते हुए सम्यग्दृष्टि का ग्रहण करता है वही उसकी 'सम्यक्स्मृति' है। यों ये तीनों धर्म—सम्यग्दृष्टि, सम्यग्व्यायाम एवं सम्यक्स्मृति—सम्यग्दृष्टि का ही अनुगमन करते हैं, उसके पीछे-पीछे चलते रहते हैं।

२. "भिक्षुओ ! यों हमने सम्यग्दृष्टि के 'पूर्वङ्गम' होने की (संक्षेप में) चर्चा की; परन्तु, भिक्षुओ ! इस सम्यग्दृष्टि का यह पूर्वङ्गमत्व क्या है ?—(इसे हम स्पष्टतः बता दें। वह यह है—) जो साधक मिथ्यासङ्कल्प को 'मिथ्यासङ्कल्प' एवं सम्यक्सङ्कल्प को 'सम्यक्सङ्कल्प' के रूप में जान लेता है वही इसकी 'सम्यग्दृष्टि' है। भिक्षुओ ! यह 'मिथ्यासङ्कल्प' क्या है ? यह जो काम, व्यापाद एवं बिहिंसा का सङ्कल्प है वही यहाँ 'मिथ्यासङ्कल्प' कहलाता है।

"तो फिर, भिक्षुओ ! 'सम्यक्सङ्कल्प' क्या है ? भिक्षुओ ! इस सम्यक्सङ्कल्प को भी मैं द्विधा विभाजित कर बताता हूँ। (क) भिक्षुओ ! एक सम्यक्सङ्कल्प सास्रव पुण्यभागीय एवं उपधिविपाक को देने वाला होता है और भिक्षुओ ! दूसरा (ख) सम्यक्सङ्कल्प आर्य, अनास्रव एवं लोकोत्तर मार्ग का अङ्ग होता है।

लोकुत्तरो मग्गङ्गो। कतमो च, भिक्खवे, सम्मासङ्कप्पो सासवो पुञ्ञभागियो उपधिवेपक्को? नेक्खम्मसङ्कप्पो, अब्यापादसङ्कप्पो, [B. 118] अविहिंसासङ्कप्पो—'अयं, भिक्खवे, सम्मासङ्कप्पो सासवो पुञ्ञभागियो उपधिवेपक्को।

"कतमो च, भिक्खवे, सम्मासङ्कप्पो अरियो अनासवो लोकुत्तरो मग्गङ्गो? यो खो, भिक्खवे, अरियचित्तस्स अनासवचित्तस्स अरियमग्गसमङ्गिनो अरियमग्गं भावयतो तक्को वितक्को सङ्कप्पो अप्पना ब्यप्पना चेतसो अभिनिरोपना वचीसङ्खारो–अयं, भिक्खवे, सम्मासङ्कप्पो अरियो अनासवो लोकुत्तरो मग्गङ्गो। सो मिच्छासङ्कप्पस्स पहानाय वायमति, सम्मासङ्कप्पस्स उपसम्पदाय, स्वास्स होति सम्मावायामो। सो सतो मिच्छासङ्कप्पं पजहति, सतो सम्मासङ्कप्पं उपसम्पज्ज विहरति; सास्स होति सम्मासति। इतियिमे तयो धम्मा सम्मासङ्कप्पं अनुपरिधावन्ति अनुपरिवत्तन्ति, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि, सम्मावायामो, सम्मासति।

३. "तत्र, भिक्खवे, सम्मादिट्ठि, पुब्बङ्गमा होति। कथं च, भिक्खवे, सम्मादिट्ठि पुब्बङ्गमा होति? मिच्छावाचं 'मिच्छावाचा' ति पजानाति, सम्मावाचं 'सम्मावाचा' ति पजानाति; सास्स होति सम्मादिट्ठि। कतमा

"भिक्षुओ! (क) इनमें पहला सास्रव पुण्यभागीय एवं उपधिविपाक को देने वाला सम्यक्सङ्कल्प क्या है? ये जो नैष्कर्म्य, अव्यापाद एवं अविहिंसा के संकल्प हैं—यही उक्त पहला सम्यक्सङ्कल्प है।

(ख) "और भिक्षुओ! दूसरा कौन सा सम्यक्सङ्कल्प आर्य, अनास्रव एवं लोकोत्तर मार्ग का अङ्ग है? भिक्षुओ! यह जो आर्यमार्गसम्बद्ध आर्य अनास्रव चित्त के द्वारा आर्यमार्ग की भावना करते साधक के तर्क-वितर्क, सङ्कल्प, अर्पणा, व्यर्पणा (तन्मयता) या चित्त का अभिनिरोपण, एवं वाचिक संस्कार हैं--भिक्षुओ! यही सम्यक्सङ्कल्प आर्य, अनास्रव लोकोत्तर मार्गाङ्ग है। वह साधक मिथ्यासङ्कल्प के प्रहाण और सम्यक्सङ्कल्प की प्राप्ति (उपसम्पदा) के लिये उद्योग करता है, वही उसका 'सम्यग्व्यायाम' कहलाता है। वह साधक स्मरण रखता हुआ मिथ्यासङ्कल्पों के त्याग व सम्यक्सङ्कल्प की प्राप्ति के लिये जो भावना करता है वही उसकी 'सम्यक्स्मृति' है। यों ये तीन धर्म जैसे—सम्यग्दृष्टि, सम्यग्व्यायाम एवं सम्यक्स्मृति उक्त सम्यक्सङ्कल्प का अनुगमन करते हैं, पीछे-पीछे चलते हैं।

३. "भिक्षुओ! वहाँ (उन तीनों में) भी सम्यग्दृष्टि ही पूर्वगामिनी (आगे-आगे चलने वाली) होती है। कैसे, भिक्षुओ! सम्यग्दृष्टि पूर्वगामिनी होती है? वह साधक जब मिथ्या वाणी को मिथ्यावाक् के रूप में और सम्यग्वाक् को सम्यग्वाक् के रूप में जान लेता है—यही उसकी 'सम्यग्दृष्टि' है। (क) भिक्षुओ! यहाँ यह 'मिथ्यावाक्

च, भिक्खवे, मिच्छावाचा ? मुसावादो, पिसुणा वाचा, फरुसा वाचा, सम्फप्पलापो—अयं, भिक्खवे, मिच्छावाचा। कतमा च, भिक्खवे, सम्मा-वाचा ? सम्मावाचं पहं, भिक्खवे, द्वायं वदामि—अत्थि, भिक्खवे, सम्मा-[R. 74] वाचा सासवा पुञ्ञभागिया उपधिवेपक्का; अत्थि, भिक्खवे, सम्मावाचा अरिया अनासवा लोकुत्तरा मग्गङ्गा। कतमा च, भिक्खवे, सम्मावाचा सासवा पुञ्ञभागिया उपधिवेपक्का ? मुसावादा वेरमणी, पिसुणाय वाचाय वेरमणी, फरुसाय वाचाय वेरमणी, सम्फप्पलापा वेरमणी—अयं, भिक्खवे, सम्मावाचा सासवा पुञ्ञभागिया उपधिवेपक्का। कतमा [N. 138] च, भिक्खवे, सम्मावाचा अरिया अनासवा लोकुत्तरा मग्गङ्गा ? या खो, भिक्खवे, अरियचित्तस्स अनासवचित्तस्स अरियमग्ग-समङ्गिनो अरियमग्गं भावयतो चतूहि वचीदुच्चरितेहि आरति विरति पटि-विरति वेरमणी—अयं, भिक्खवे, सम्मावाचा अरिया अनासवा लोकुत्तरा मग्गङ्गा। सो मिच्छावाचाय पहानाय वायमति, सम्मावाचाय उपसम्पदाय; स्वास्स होति सम्मावायामो। सो सतो मिच्छावाचं पजहति, सतो सम्मा-[B. 119] वाचं उपसम्पज्ज विहरति; सास्स होति सम्मासति। इति-यिमे तयो धम्मा सम्मावाचं अनुपरिधावन्ति अनुपरिवत्तन्ति, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि, सम्मावायामो, सम्मासति।

क्या है ? यह जो असत्य वचन, चुगली, कठोर वाणी, सम्प्रलाप है यही 'मिथ्यावाक्' कहलाता है। और (ख) भिक्षुओ ! इस 'सम्यग्वाक्' का मैं द्विधा विभाजन करके व्याख्यान करता हूँ—भिक्षुओ ! यहाँ पहली सम्यग्वाक् वह है जो सास्रव पुण्य-भागीय तथा उपधिविपाक की फलदात्री हो; और दूसरी सम्यग्वाक् वह है जो आर्य अनास्रव लोकोत्तर मार्ग का अङ्ग हो। इनमें भिक्षुओ ! (१) पहली सम्यग्वाक् क्या है ? असत्यवचन, चुगली...सम्प्रलाप से विराम (राहित्य)—यही पहली सम्यग्वाक् है। और भिक्षुओ ! (२) दूसरी सम्यग्वाक् क्या है ? भिक्षुओ ! यह जो आर्यमार्ग के अङ्गभूत आर्य अनास्रव चित्त की भावना करते हुए चार वाग्दुश्चरितों से दूर रहने का प्रयत्न है, अरति है, प्रतिविरति है विरमण है—यही है भिक्षुओ ! दूसरी आर्य अनास्रव लोकोत्तर सम्यग्वाक् मार्गाङ्ग। वह मार्गाङ्गसमारूढ साधक का मिथ्यावाक् के प्रहाण के लिये, सम्यग्वाक् की प्राप्ति के लिये जो प्रयत्न है वही 'सम्यग्व्यायाम' है। जो मिथ्यावाक् को त्याग देता है और सम्यग्वाक् की साधना करता है वही इसकी 'सम्यक्स्मृति' है। यों ये तीनों धर्म जैसे—१. सम्यग्दृष्टि, २. सम्यग्व्यायाम और ३. सम्यग्व्यायाम—ये सभी सम्यग्वाक् का अनुगमन करते हैं, इसके पीछे-पीछे चलते हैं।

४. "तत्र, भिक्खवे, सम्मादिट्ठि पुब्बङ्गमा होति। कथं, च भिक्खवे, सम्मादिट्ठि पुब्बङ्गमा होति? मिच्छाकम्मन्तं 'मिच्छाकम्मन्तो' ति पजानाति, सम्माकम्मन्तं 'सम्माकम्मन्तो' ति पजानाति; सास्स होति सम्मादिट्ठि। कतमो च, भिक्खवे, मिच्छाकम्मन्तो? पाणातिपातो, अदिन्नादानं, कामेसुमिच्छाचारो—अयं, भिक्खवे, मिच्छाकम्मन्तो। कतमो च, भिक्खवे, सम्माकम्मन्तो? सम्माकम्मन्तं पहं, भिक्खवे, द्वाय वदामि—अत्थि, भिक्खवे, सम्माकम्मन्तो सासवो पुञ्ञभागियो उपधिवेपक्को; अत्थि, भिक्खवे, सम्माकम्मन्तो अरियो अनासवो लोकुत्तरो मग्गङ्गो। कतमो च, भिक्खवे, सम्माकम्मन्तो सासवो पुञ्ञभागियो उपधिवेपक्को? अत्थि, भिक्खवे, पाणातिपाता वेरमणी, अदिन्नादाना वेरमणी, कामेसुमिच्छाचारा वेरमणी—अयं, भिक्खवे, सम्माकम्मन्तो सासवो पुञ्ञभागियो उपधिवेपक्को। कतमो च, भिक्खवे, सम्माकम्मन्तो अरियो अनासवो लोकुत्तरो मग्गङ्गो? या खो, भिक्खवे, अरियचित्तस्स अनासवचित्तस्स अरियमग्गसमङ्गिनो अरियमग्गं भावयतो तीहि कायदुच्चरितेहि आरति विरति पटिविरति वेरमणी—अयं, भिक्खवे, सम्माकम्मन्तो, अरियो [R. 75] अनासवो लोकुत्तरो मग्गङ्गो। सो मिच्छाकम्मन्तस्स पहानाय वायमति, सम्माकम्मन्तस्स उपसम्पदाय; स्वास्स होति सम्मावायामो। सो सतो मिच्छाकम्मन्तं पजहति, सतो सम्माकम्मन्तं उपसम्पज्ज विहरति; सास्स होति सम्मासति। इतियिमे तयो धम्मा सम्माकम्मन्तं अनुपरिधावन्ति

---

४. "वहाँ भिक्षुओ! हमने बताया—सम्यग्दृष्टि इनकी पूर्वगामिनी होती है। कैसे, भिक्षुओ! यह सम्यग्दृष्टि पूर्वगामिनी होती है? जो साधक जिसके सहारे मिथ्या कर्म को मिथ्या कर्म के रूप में जान लेता है और सम्यक्कर्म को सम्यक्कर्म के रूप में, वही इसकी सम्यग्दृष्टि कहलाती है। यहाँ यह मिथ्याकर्म क्या है? प्राणातिपात, अदत्तादान, एवं कामभोगों में मिथ्याचार—भिक्षुओ! ये मिथ्याकर्म कहलाते हैं। और, भिक्षुओ! सम्यक्कर्म क्या है? भिक्षुओ! इस सम्यक्कर्म का भी मैं द्विधाविभाजित करके व्याख्यान करता हूँ। भिक्षुओ!...पूर्ववत्...। भिक्षुओ! यहाँ प्राणातिपात, अदत्तादान एवं कामभोगों में मिथ्याचार से दूर रहना पहला सम्यक्कर्मान्त है। और भिक्षुओ! दूसरा लोकोत्तर मार्गाङ्ग है—उस आर्यचित्त की तीन कायदुश्चरितों से अरति विरति प्रतिविरति व विरमणि। वह मिथ्याकर्मों के प्रहाण एवं सम्यक्कर्मों की उपसम्पदा (प्राप्ति) के लिये प्रयत्न करता है—यह उसका सम्यग्व्यायाम है। वह स्मरण रखते हुए मिथ्याकर्मों का त्याग एव सम्यक्कर्मों के उत्पाद की साधना करता है—यही उसकी सम्यक्स्मृति है। ये हैं तीन

[N. 139] अनुपरिवत्तन्ति, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि, सम्मावायामो, सम्मासति।

५. "तत्र, भिक्खवे, सम्मादिट्ठि पुब्बङ्गमा होति। कथं च, भिक्खवे, सम्मादिट्ठि पुब्बङ्गमा होति ? मिच्छाआजीवं 'मिच्छाआजीवो' ति पजानाति, सम्माआजीवं 'सम्माआजीवो' ति पजानाति; सास्स होति सम्मादिट्ठि। कतमो च, भिक्खवे, मिच्छाआजीवो ? कुहना, लपना, नेमित्तिकता, निप्पेसिकता, लाभेन लाभं निजिगिंसनता—अयं, भिक्खवे, मिच्छाआजीवो। कतमो च, भिक्खवे, सम्माआजीवो ? सम्माआजीवं पहं, भिक्खवे, द्वायं [B. 120] वदामि—अत्थि, भिक्खवे, सम्माआजीवो सासवो पुञ्ञभागियो उपधिवेपक्को; अत्थि, भिक्खवे, सम्माआजीवो अरियो अनासवो लोकुत्तरो मग्गङ्गो। कतमो च, भिक्खवे, सम्माआजीवो सासवो पुञ्ञभागियो उपधिवेपक्को ? इध, भिक्खवे, अरियसावको मिच्छाआजीवं पहाय सम्माआजीवेन जीविकं कप्पेति—अयं, भिक्खवे, सम्माआजीवो सासवो पुञ्ञभागियो उपधिवेपक्को। कतमो च, भिक्खवे, सम्माआजीवो अरियो अनासवो लोकुत्तरो मग्गङ्गो ? या खो, भिक्खवे, अरियचित्तस्स अनासवचित्तस्स अरियमग्गसमङ्गिनो अरियमग्गं भावयतो मिच्छाआजीवा आरति विरति पटिविरति वेरमणी—अयं, भिक्खवे, सम्माआजीवो अरियो अनासवो लोकुत्तरो मग्गङ्गो। सो मिच्छाआजीवस्स पहानाय वायमति, सम्माआजीवस्स उपसम्पदाय; स्वास्स होति सम्मावायामो। सो सतो मिच्छाआजीवं पजहति, सतो सम्माआजीवं उपसम्पज्ज विहरति; सास्स

धर्म-सम्यग्दृष्टि, सम्यग्व्यायाम एवं सम्यक्स्मृति—जो सम्यक्कर्मान्त का अनुगमन करते हैं, उसके पीछे-पीछे चलते हैं।

५. "वहाँ, भिक्षुओ ! सम्यग्दृष्टि ही पूर्वानुगामिनी (आगे-आगे चलने वाली) होती है। कैसे, भिक्षुओ ! सम्यग्दृष्टि पूर्वानुगामिनी होती है ? जब यह चित्त (या साधक) मिथ्या आजीविका को मिथ्या आजीविका के रूप में और सम्यक् आजीविका को सम्यग् आजीविका के रूप में पहचान लेता है तब यह उसकी 'सम्यग्दृष्टि' कहलाती है। यहाँ, भिक्षुओ ! यह 'मिथ्या आजीविका' क्या है ? कुहना (पाषण्ड द्वारा दूसरों को ठगना), लपना (बढ़ा-चढ़ा कर बातें करना), नैमित्तिकता (ज्यौतिषी बन कर लोगों को उनका भविष्य बताना) या निष्पेषिकता (जादूगरी-इन्द्रजाल), छोटे लाभ से बड़ा लाभ खोजते रहना—भिक्षुओ ! वे सब कर्म 'मिथ्या आजीविका' कहलाते हैं। और भिक्षुओ ! 'सम्यग् आजीविका' क्या है ?··· पूर्ववत्···। इस प्रकार ये तीन धर्म—सम्यग्दृष्टि, सम्यग्व्यायाम एवं सम्यक्स्मृति

होति सम्मासति। इतियिमे तयो धम्मा सम्माआजीवं अनुपरिधावन्ति अनुपरिवत्तन्ति, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि, सम्मावायामो, सम्मासति।

६. "तत्र, भिक्खवे, सम्मादिट्ठि पुब्बङ्गमा होति। कथं च, भिक्खवे, सम्मादिट्ठि पुब्बङ्गमा होति? सम्मादिट्ठिस्स, भिक्खवे, सम्मा- [R. 76] सङ्कप्पो पहोति, सम्मासङ्कप्पस्स सम्मावाचा पहोति, सम्मावाचस्स सम्मा-कम्मन्तो पहोति, सम्माकम्मन्तस्स सम्माआजीवो होति, सम्माआजीवस्स सम्मावायामो पहोति, सम्मावायामस्स सम्मासति पहोति, सम्मासतिस्स सम्मासमाधि पहोति, सम्मासमाधिस्स सम्माञाणं पहोति, [N. 140] सम्माञाणस्स सम्माविमुत्ति पहोति। इति खो, भिक्खवे, अट्ठङ्गसमन्नागतो सेक्खो, दसङ्गसमन्नागतो अरहा होति।

२. वीसति अकुसलपक्खा

७. "तत्र, भिक्खवे, सम्मादिट्ठि पुब्बङ्गमा होति। कथं च, भिक्खवे, सम्मादिट्ठि पुब्बङ्गमा होति? सम्मादिट्ठिस्स, भिक्खवे, मिच्छादिट्ठि निज्जिण्णा होति। ये च मिच्छादिट्ठिपच्चया अनेके पापका अकुसला धम्मा

सम्यगाजीव के पीछे-पीछे चलते हैं, उसका अनुगमन करते हैं, उसके पीछे दौड़ते हैं।

६. "वहाँ भिक्षुओ! सम्यग्दृष्टि पूर्वगामिनी होती है। कैसे, भिक्षुओ! सम्यग्दृष्टि पूर्वगामिनी होती है? भिक्षुओं! सम्यग्दृष्टि से (चित्त में) सम्यक्सङ्कल्प का प्रादुर्भाव होता है, सम्यक्सङ्कल्प से सम्यग्वाक् का, सम्यग्वाक् से सम्यक्कर्मान्त का, सम्यक्कर्म से सम्यगाजीव का, सम्यगाजीव से सम्यग्व्यायाम का, सम्यग्व्यायाम से सम्यक्स्मृति का, एवं सम्यक्स्मृति से सम्यक्समाधि का प्रादुर्भाव होता है। यों, सम्यक्समाधि से सम्यग्ज्ञान का और सम्यग्ज्ञान से सम्यग्विमुक्ति (निर्वाण) का प्रादुर्भाव होता है। यों, भिक्षुओ! आठ अङ्गों से युक्त होने पर, साधक शैक्ष्य (निर्वाण पद का प्रत्याशी) बन जाता है और दश अङ्गों से युक्त होने पर अर्हत् बन जाता है। [[1]वहाँ, भिक्षुओ! ज्ञान से बहुत से अकुशल धर्म नष्ट हो जाते हैं और भावना (साधना) भी परिपूर्णता की ओर बढ़ती है। यहाँ सम्यग्दृष्टि पूर्वगामिनी होती है[1]।]

२. बीस अकुशलपक्षीय-धर्म

७. "वहाँ, भिक्षुओ! सम्यग्दृष्टि पूर्वगामिनी होती है। कैसे, भिक्षुओ! सम्यग्दृष्टि पूर्वगामिनी होती है? भिक्षुओ! सम्यग्दृष्टि (साधक) की मिथ्यादृष्टि नष्ट

१-१. इस अंश का मूल पालिपाठ नालन्दा-संस्करण में उपलब्ध नहीं हुआ।—स०

[B. 121] सम्भवन्ति ते चस्स निज्जिण्णा होन्ति। सम्मादिट्ठिपच्चया अनेके कुसला धम्मा भावनापारिपूरिं गच्छन्ति। सम्मासङ्कप्पस्स, भिक्खवे, मिच्छासङ्कप्पो निज्जिण्णो होति···पे०···सम्मावाचस्स, भिक्खवे, मिच्छावाचा निज्जिण्णा होति···सम्माकम्मन्तस्स, भिक्खवे, मिच्छाकम्मन्तो [R. 77] निज्जिण्णो होति···सम्माआजीवस्स, भिक्खवे, मिच्छाआजीवो निज्जिण्णो होति···सम्मावायामस्स, भिक्खवे, मिच्छावायामो निज्जिण्णो होति···सम्मासतिस्स, भिक्खवे, मिच्छासति निज्जिण्णा होति···सम्मासमाधिस्स, भिक्खवे, मिच्छासमाधि निज्जिण्णो होति···सम्माञाणस्स, भिक्खवे, मिच्छाञाणं निज्जिण्णं होति···सम्माविमुत्तस्स, भिक्खवे, मिच्छाविमुत्ति निज्जिण्णा होति। ये च मिच्छाविमुत्तिपच्चया अनेके पापका अकुसला धम्मा सम्भवन्ति ते चस्स निज्जिण्णा होन्ति। सम्माविमुत्तिपच्चया च अनेके कुसला धम्मा भावनापारिपूरिं गच्छति।

"इति खो, भिक्खवे, वीसति कुसलपक्खा, वीसति अकुसलपक्खा— महाचत्तारीसको धम्मपरियायो पवत्तितो अप्पटिवत्तियो समणेन वा ब्राह्मणेन वा देवेन वा मारेन वा ब्रह्मुना वा केनचि वा लोकस्मिं।

८. "यो हि कोचि, भिक्खवे, समणो वा ब्राह्मणो वा इमं महाचत्ता-

(निर्जीर्ण) हो जाती है। और जो उस मिथ्यादृष्टि के कारण सम्भूत होने वाले अनेक अकुशल धर्म हैं वे भी नष्ट हो जाते हैं। (इसके विपरीत) अनेक कुशल धर्म उस साधक की साधना को आगे बढ़ाने में सहायक होते हैं। भिक्षुओ! वहाँ (निरन्तर) सम्यक्सङ्कल्प से मिथ्यासङ्कल्प नष्ट हो जाता है···सम्यग्वाक् से मिथ्यावाक् (गलत धारणाएँ)···। सम्यक्कर्म से मिथ्याकर्म···। सम्यगाजीव से मिथ्याआजीव···। सम्यग्व्यायाम से मिथ्याव्यायाम···। सम्यक्स्मृति से मिथ्यास्मृति···। सम्यक्समाधि से (तीर्थिकों द्वारा निर्दिष्ट) मिथ्यासमाधि···। सम्यग्ज्ञान से मिथ्याज्ञान···। एवं सम्यग्विमुक्ति से मिथ्याविमुक्ति नष्ट हो जाती है। और उस मिथ्याविमुक्ति के कारण जो अनेक पापमय अकुशल धर्म उत्पन्न हुए हों वे भी नष्ट हो जाते हैं। तथा इस सम्यग्विमुक्ति के कारण अनेक कुशल धर्म उत्पन्न होकर उस साधक की भावना (साधना) की पूर्ति में सहायक बन जाते हैं।

"भिक्षुओ! यों इन बीस कुशलपक्षीय और बीस अकुशलपक्षीय—दोनों मिला कर चालीस धर्मों का बोधक यह महाचत्वारिंशत्क धर्मपर्याय (सूत्र) हमने प्रवर्तित (उपदिष्ट) किया है, जो कि लोक में किसी भी श्रमण या ब्राह्मण द्वारा, देवता, मार, या ब्रह्मा द्वारा अप्रतिवर्त्त्य (न बदला—न मोड़ा जा सकने योग्य) है।

८. "भिक्षुओ! जो कोई श्रमण या ब्राह्मण इस महाचत्वारिंशत्क धर्मपर्याय

रीसकं धम्मपरियायं गरहितब्बं पटिक्कोसितब्बं मञ्ञेय्य, तस्स दिट्ठेव धम्मे दस सहधम्मिका वादानुवादा गारय्हं ठानं आगच्छन्ति—सम्मादिट्ठिं चे भवं गरहति, ये च मिच्छादिट्ठी समणब्राह्मणा ते भोतो पुज्जा, [N. I41] ते भोतो पासंसा; सम्मासङ्कप्पं चे भवं गरहति ये च मिच्छासङ्कप्पा [R. 78] समणब्राह्मणा ते भोतो पुज्जा, ते भोतो पासंसा; सम्मावाचं चे भवं गरहति…पे०…सम्माकम्मन्तं चे भवं गरहति…सम्माआजीवं चे भवं गरहति…सम्मावायामं चे भवं गरहति…सम्मासतिं चे भवं गरहति…सम्मासमाधिं चे भवं गरहति…सम्माञाणं चे भवं गरहति…सम्माविमुत्तिं चे भवं गरहति, ये च मिच्छाविमुत्ती समणब्राह्मणा ते भोतो पुज्जा, ते भोतो पासंसा। यो कोचि, भिक्खवे, समणो वा ब्राह्मणो वा इमं महाचत्तारीसकं धम्मपरियायं गरहितब्बं पटिक्कोसितब्बं मञ्ञेय्य, तस्स दिट्ठेव धम्मे इमे दस सहधम्मिका वादानुवादा गारय्हं ठानं आगच्छन्ति। ये पि ते, भिक्खवे, अहेसुं ओक्कला[1] वयभिञ्ञा अहेतुवादा अकिरियवादा नत्थिकवादा ते पि

को निन्दनीय (गर्हणीय) या प्रतिक्रोश्य (=बुरा-भला कहने योग्य) समझेगा वह स्वयं इसी जन्म में इन दश धर्मानुसारी बातों से लोक में निन्दा का पात्र बन जायगा। कैसे ? (१) यदि आप इन धर्मों में से सम्यग्दृष्टि को निन्दनीय समझते हैं तो आप के मिथ्यादृष्टि ब्राह्मण द्वारा ही पूजनीय व प्रशंसनीय हो सकते हैं (२) यदि आप सम्यक्सङ्कल्प को निन्द्य समझते हैं जो मिथ्यासङ्कल्प वाले समण-ब्राह्मण हैं वही…। (३) यदि आप सम्यग्वाक्…सम्यक्कर्म…सम्यगाजीव…सम्यग्व्यायाम…सम्यस्मृति…सम्यक्समाधि…सम्यग्ज्ञान…(१०) सम्यग्विमुक्ति को यदि आप निन्द्य समझते हैं तो ये जो मिथ्याविमुक्ति वाले श्रमण ब्राह्मण हैं उन्हीं के लिए आप पूज्य व प्रशंसनीय हो सकते हैं। भिक्षुओ ! जो कोई भी श्रमण ब्राह्मण इस महाचत्वारिंशत्क धर्मपर्याय को निन्द्य व अप्रशस्य समझेगा वह इसी जन्म में इन उपर्युक्त धर्मानुसारी दश धर्मों से (च्युत होने के कारण) स्वयं समाज में निन्दास्पद बनेगा। भिक्षुओ ! (सचाई तो यह है कि आज से) पूर्व में जो उत्कल[1] (चञ्चल चित्त के कारण विकलेन्द्रिय), नष्ट अभिज्ञा वाले, अहेतुवादी, अक्रियवादी, नास्तिकवादी हुए हैं वे भी इस महाचत्वारिंशत्क धर्मपर्याय को निन्दनीय नहीं घोषित कर पाये। वह किस लिये ? वह इस लिये कि कहीं (इस धर्मपर्याय की निन्दा के कारण) उनकी ही लोक में निन्दा न होने लगे, उनके प्रति

---

१. आदरणीय श्रीराहुल जी ने यहाँ 'उक्कला' का अर्थ 'उत्कल-निवासी' किया है। इसका मर्म विद्वान् लोग ही जाने।—स०

[B. 122] महाचत्तारीसकं धम्मपरियायं न गरहितब्बं न पटिक्कोसितब्बं मञ्ञेय्युं। तं किस्स हेतु? निन्दा-ब्यारोस-उपारम्भभया" ति।

९. इदमवोच भगवा। अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति।

●

ही समाज में रोष न फैल जाय या लोग उन्हें ही उपालम्भ न देने लगें—इस भय से"।

९. भगवान् ने यह कहा। उन आप्तमना भिक्षुओं ने भगवान् की इस देशना का अभिनन्दन किया॥

महाचत्तारीसकसुत्त समाप्त॥

●

१८. आनापानस्सतिसुत्तं

१. पुब्बारामे भिक्खूनं धम्मदेसना

१. एव मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति [N. 142] पुब्बारामे मिगारमातुपासादे सम्बहुलेहि अभिञ्ञातेहि अभिञ्ञातेहि थेरेहि सावकेहि सद्धिं—आयस्मता च सारिपुत्तेन आयस्मता च महामोग्गल्लानेन आयस्मता च महाकस्सपेन आयस्मता च महाकच्चायनेन आयस्मता च महाकोट्ठितेन आयस्मता च महाकप्पिनेन आयस्मता च महाचुन्देन आयस्मता अनुरुद्धेन आयस्मता च रेवतेन आयस्मता च आनन्देन, अञ्ञेहि [R. 79] च अभिञ्ञातेहि अभिञ्ञातेहि थेरेहि सावकेहि सद्धिं।

तेन खो पन समयेन थेरा भिक्खू नवे भिक्खू ओवदन्ति अनुसासन्ति। अप्पेकच्चे थेरा भिक्खू दस पि भिक्खू ओवदन्ति अनुसासन्ति, अप्पेकच्चे थेरा भिक्खू वीसं पि भिक्खू ओवदन्ति अनुसासन्ति, अप्पेकच्चे थेरा भिक्खू तिंसं पि भिक्खू ओवदन्ति अनुसासन्ति, अप्पेकच्चे थेरा भिक्खू चत्तारीसं पि भिक्खू ओवदन्ति अनुसासन्ति। ते च नवा भिक्खू थेरेहि भिक्खूहि ओवदियमाना अनुसासियमाना उळारं पुब्बेनापरं विसेसं जानन्ति।

२. तेन खो पन समयेन भगवा तदहुपोसथे पन्नरसे पवारणाय पुण्णाय पुण्णमाय रत्तिया भिक्खुसङ्घपरिवुतो अब्भोकासे निसिन्नो होति। अथ खो

---

१८. आनापानस्मृतिसूत्र

१. पूर्वाराम में भिक्षुओं को धर्मदेशना

१. ऐसा मैने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्तीस्थित पूर्वाराम के मृगारमातृप्रासाद में अनेक प्रसिद्ध भिक्षुओं सहित साधनाहेतु विराजमान थे। उन प्रसिद्ध भिक्षुओं में कुछ के नाम ये थे—आयुष्मान् सारिपुत्र, आयुष्मान् महामौद्गल्यायन, आयुष्मान् महाकाश्यप, आयुष्मान् महाकप्पिन, आयुष्मान् महाचुन्द, आयुष्मान् अनुरुद्ध, आयुष्मान् रेवत और आयुष्मान् आनन्द। यहाँ इन्हीं की तरह के अन्य प्रसिद्ध-प्रसिद्ध स्थविर भिक्षु भी अपने श्रावकों (शिष्यों) के साथ थे।

उस समय स्थविर (वृद्ध) भिक्षु नये (तरुण) भिक्षुओं को उपदेश व अनुशासन करते रहते थे। कोई कोई स्थविर भिक्षु दस-दस (नये) भिक्षुओं को ...कोई बीस भिक्षुओं को...कोई तीस भिक्षुओं को...कोई चालीस भिक्षुओं को भी उपदेश व अनुशासन...करते थे। वे नये भिक्षु यों उन स्थविर भिक्षुओं से उपदेश-अनुशासन पाते हुए सरलता से विषय (प्रकरण) के आदि-अन्त को भली भाँति समझ लेते थे।

२. उस समय भगवान् उपोसथ की पन्द्रहवीं तिथि प्रवारणा की पूर्णिमा (बौद्धों

भगवा तुण्हीभूतं तुण्हीभूतं भिक्खुसङ्घं अनुविलोकेत्वा भिक्खू आमन्तेसि—"आरद्धोस्मि, भिक्खवे, इमाय पटिपदाय; आरद्धचित्तोस्मि, भिक्खवे, इमाय पटिपदाय। तस्मातिह, भिक्खवे, भिय्यो सोमत्ताय विरियं आरभथ अप्पत्तस्स [N. 143] पत्तिया, अनधिगतस्स अधिगमाय, असच्छिकतस्स सच्छिकिरि- [B. 123] याय। इधेवाहं सावत्थियं कोमुदिं चातुमासिनिं आगमेस्सामी" ति।

अस्सोसुं खो जानपदा भिक्खू—"भगवा किर तत्थेव सावत्थियं कोमुदिं चातुमासिनिं आगमेस्सती" ति। ते जानपदा भिक्खू सावत्थियं ओसरन्ति भगवन्तं दस्सनाय। ते च खो थेरा भिक्खू भिय्यो सोमत्ताय नवे भिक्खू ओवदन्ति अनुसासन्ति, अप्पेकच्चे थेरा भिक्खू दस पि भिक्खू ओवदन्ति अनुसासन्ति, अप्पेकच्चे थेरा भिक्खू वीसं पि भिक्खू ओवदन्ति अनुसासन्ति, अप्पेकच्चे थेरा भिक्खू तिंसं पि भिक्खू ओवदन्ति अनुसासन्ति, अप्पेकच्चे थेरा भिक्खू चत्तारीसं पि भिक्खू ओवदन्ति अनुसासन्ति। ते च नवा भिक्खू थेरेहि भिक्खूहि ओवदियमाना अनुसासियमाना उळारं पुब्बेनापरं विसेसं [R. 80] जानन्ति।

३. तेन खो पन समयेन भगवा तदहुपोसथे पन्नरसे कोमुदिया चातु-

के चातुर्मास्य व्रत का समापनदिवस) की चाँदनी रात में भिक्षु सङ्घ से घिरे हुए, खुले आकाश के नीचे, विराजमान थे। तब भगवान् ने चुपचाप शान्त बैठे अपने भिक्षुसङ्घ को देख देख कर (प्रसन्न होते हुए) भिक्षुओं को सम्बोधित किया—"भिक्षुओ! मैंने इस (आर्य अष्टाङ्गिक) मार्ग (प्रतिपद्) की साधनाहेतु उद्योग किया है। इस मार्ग के लिये मैं उद्योगयुक्त चित्तवाला रहा हूँ। इसलिये, भिक्षुओ! (तुम भी) सन्तुष्ट (सौमत) हो, अप्राप्त की प्राप्ति, अनधिगत की अधिगति तथा असाक्षात्कृत के साक्षात्कार हेतु और अधिक उद्योग करो। भिक्षुओ! मैं इस चातुर्मास्य व्रत की समाप्ति वाली चाँदनीयुक्त पूर्णिमा तक यहाँ श्रावस्ती में ही समय बिताऊँगा।"

उक्त जनपद में रह कर आराधना करने वाले भिक्षुओं ने जब भगवान् का यह निर्णय सुना तो वे बहुत प्रसन्न हुए कि 'भगवान् यह चातुर्मास्य व्रत का समापन-दिवस (पूर्णिमा) यहाँ श्रावस्ती में ही बितायेंगे।' यों जनपदवासी भिक्षु भगवान् के दर्शन के लिये श्रावस्ती में पहुँचने लगे। तब वे स्थविर भिक्षु नव भिक्षुओं को, और भी अधिक सन्तुष्ट हो, उपदेश व धर्मानुशासन करने लगे। कोई कोई स्थविर दस नये भिक्षुओं को भी...कोई बीस...कोई तीस...कोई चालीस नये भिक्षुओं को भी...आदि-अन्त भली भाँति समझ लेते थे।

३. किसी समय उस उपोसथ की पूर्णिमा वाली चाँदनी रात में भगवान् खुले

मासिनिया पुण्णाय पुण्णमाय रत्तिया भिक्खूसङ्घपरिवुतो अब्भोकासे निसिन्नो होति। अथ खो भगवा तुण्हीभूतं तुण्हीभूतं भिक्खूसङ्घं अनुविलोकेत्वा भिक्खू आमन्तेसि—"अपलापायं, भिक्खवे, परिसा; निप्पलापायं, भिक्खवे, परिसा; सुद्धा सारे पतिट्ठिता। तथारूपो अयं, भिक्खवे, भिक्खुसङ्घो; तथारूपा अयं, भिक्खवे, परिसा यथारूपा परिसा आहुनेय्या पाहुनेय्या दक्खिणेय्या अञ्जलिकरणीया अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्स। तथारूपो अयं, भिक्खवे, भिक्खुसङ्घो; तथारूपा अयं भिक्खवे; परिसा यथारूपाय परिसाय अप्पं दिन्नं बहु होति, बहु दिन्नं बहुतरं। तथारूपो अयं, भिक्खवे, भिक्खुसङ्घो; तथारूपा अयं, भिक्खवे, परिसा यथारूपा परिसा दुल्लभा दस्सनाय लोकस्स। तथारूपो अयं, भिक्खवे, भिक्खुसङ्घो; तथारूपा अयं, भिक्खवे, परिसा यथारूपं परिसं अलं योजनगणनानि दस्सनाय गन्तुं पुटोसेना पि।

४. "सन्ति, भिक्खवे, भिक्खू इमस्मिं भिक्खुसङ्घे अरहन्तो खीणासवा वुसितवन्तो कतकरणीया ओहितभारा अनुप्पत्तसदत्था परिक्खीणभवसंयोजना सम्मदञ्ञाविमुत्ता—एवरूपा पि, भिक्खवे, सन्ति [B. 124] भिक्खू इमस्मिं भिक्खुसङ्घे। सन्ति, भिक्खवे, भिक्खू इमस्मिं भिक्खुसङ्घे पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओपपातिका [N. 144]

आकाश के नीचे भिक्षुसङ्घ से घिरे बैठे थे। उस समय उन्होंने भिक्षुसङ्घ को चुपचाप शान्त बैठे देख कर भिक्षुओं को सम्बोधित किया—"भिक्षुओ! आप लोगों की यह मण्डली (परिषद्) बहुत शान्त (बिना कोई बातचीत करते हुए) बैठी है, कुछ भी कोलाहल नहीं हो रहा है। तुम्हारी यह मण्डली शुद्ध है, सार में प्रतिष्ठित (तत्त्वचिन्तन में लगी हुई) है। भिक्षुओ! सन्तों की ऐसी ही मण्डली होती है जो समाज में आह्वानीय, प्राह्वाणीय (अतिथिसत्कारहेतु बुलाने योग्य) दाक्षिणेय (दान देने योग्य) अञ्जलिकरणीय (हाथ जोड़ने योग्य) संसार में लोकोत्तर पुण्य (के बीजवपन) के लिये क्षेत्रभूत है। भिक्षुओ! तुम लोगों का यह सङ्घ, यह मण्डली, वैसी ही है जहाँ थोड़ा भी दिया हुआ अधिक महत्त्वशाली होता है, बहुत दिया तो बहुत फलदायी होगा ही! भिक्षुओ! तुम लोगों की यह मण्डली वैसी ही है जैसी कि लोक में दिखायी देना दुर्लभ मानी गयी है। भिक्षुओ! तुम लोगों की यह मण्डली वैसी ही है जिसके दर्शन की उत्सुकता में लोग कोसों दूर से भी पाथेय (मार्ग का भोजन) की पोटली साथ में लेकर विघ्न-बाधा की परवाह किये विना चल देते हैं।

४. "भिक्षुओ! इस भिक्षुसङ्घ में ऐसे भी भिक्षु हैं जो अपना ब्रह्मचर्यवास पूर्ण कर चुके हैं, कृतकृत्य एवं भारमुक्त हो चुके हैं, निर्वाण तक पहुँच चुके हैं, भवबन्धन से मुक्त हो सम्यग्ज्ञान के सहारे विमुक्त हो चुके हैं।...ऐसे भी भिक्षु हैं

तत्थ परिनिब्बायिनो अनावत्तिधम्मा तस्मा लोका—एवरूपा पि, भिक्खवे, सन्ति भिक्खू इमस्मिं भिक्खुसङ्घे। सन्ति, भिक्खवे, भिक्खू इमस्मिं भिक्खु-[R. 81] सङ्घे तिण्णं संयोजनानं परिक्खया रागदोसमोहानं तनुत्ता सकदागामिनो सकिदेव इमं लोकं आगन्त्वा दुक्खस्सन्तं करिस्सन्ति—एवरूपा पि, भिक्खवे, सन्ति भिक्खू इमस्मिं भिक्खुसङ्घे। सन्ति, भिक्खवे, भिक्खू इमस्मिं भिक्खुसङ्घे तिण्णं संयोजनानं परिक्खया सोतापन्ना अविनिपातधम्मा नियता सम्बोधिपरायना—एवरूपा पि, भिक्खवे, सन्ति भिक्खू इमस्मिं भिक्खुसङ्घे।

"सन्ति, भिक्खवे, भिक्खू इमस्मिं भिक्खुसङ्घे चतुन्नं सतिपट्ठानानं भावनानुयोगमनुयुत्ता विहरन्ति—एवरूपा पि, भिक्खवे, सन्ति भिक्खू इमस्मिं भिक्खुसङ्घे। सन्ति, भिक्खवे, भिक्खू इमस्मिं भिक्खुसङ्घे चतुन्नं सम्मप्पधानानं भावनानुयोगमनुयुत्ता विहरन्ति…पे०…चतुन्नं इद्धिपादानं… पञ्चन्नं इन्द्रियानं…पञ्चन्नं बलानं…सत्तन्नं बोज्झङ्गानं…अरियस्स अट्ठङ्गिकस्स मग्गस्स भावनानुयोगमनुयुत्ता विहरन्ति—एवरूपा पि, भिक्खवे, सन्ति भिक्खू इमस्मिं भिक्खुसङ्घे। सन्ति, भिक्खवे, भिक्खू इमस्मिं भिक्खुसङ्घे मेत्ताभावनानुयोगमनुयुत्ता विहरन्ति…करुणाभावनानु-[R. 82] योगमनुयुत्ता विहरन्ति…मुदिताभावनानुयोगमनुयत्ता विहरन्ति…उपेक्खाभावनानुयोगमनुयुत्ता विहरन्ति…असुभभावनानुयोगमनुयुत्ता विहरन्ति…अनिच्चसञ्ञाभावनानुयोगमनुयुत्ता विहरन्ति—एवरूपा पि, भिक्खवे, सन्ति भिक्खू इमस्मिं भिक्खुसङ्घे। सन्ति, भिक्खवे, भिक्खू इमस्मिं भिक्खुसङ्घे आनापानस्सतिभावनानुयोगमनुयुत्ता विहरन्ति।

जो पाँच अवरभागीय संयोजनों के क्षय से औपपातिक (अयोनिज) देव होकर वहीं निर्वाण प्राप्त करने वाले पुनः उस लोक से इस लोक में न आने वाले (अनागामी) हैं।…ऐसे भिक्षु भी हैं जो तीन संयोजनों के क्षय के कारण राग-द्वेष-मोह के निर्बल हो जाने के कारण सकृदागामी हो एक (अन्तिम) बार इस लोक में आकर अपने दुःख का क्षय करने वाले हैं।…ऐसे भी भिक्षु हैं जो तीन संयोजनों के क्षय से स्रोतआपन्न हो मार्ग से च्युत न होने वाले, नियत (निश्चित चर्या बिताने वाले), परम ज्ञान के लिये प्रयत्नशील (सम्बोधिपरायण) हैं।…जो चार सम्यक्प्रधानों की भावना में रत हैं…चार ऋद्धिपादों…चार इन्द्रियों…पाँच बलों…सात बोध्यङ्गों…आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग…मैत्रीभावना…करुणाभावना…मुदिता भावना…उपेक्षाभावना…अशुभभावना…अनित्यसंज्ञा…आनापानस्मृति (प्राणायाम) साधना की प्राप्ति में तत्पर हैं।

२. आनापानस्सति सतिपट्ठाने परिपूरेति

५. "आनापानस्सति, भिक्खवे, भाविता बहुलीकता महप्फला होति महानिसंसा। आनापानस्सति, भिक्खवे, भाविता बहुलीकता चत्तारो सतिपट्ठाने परिपूरेति। चत्तारो सतिपट्ठाना भाविता बहुलीकता सत्त बोज्झङ्गे परिपूरेन्ति। सत्त बोज्झङ्गा भाविता बहुलीकता विज्जाविमुत्तिं परिपूरेन्ति।

"कथं भाविता च, भिक्खवे, आनापानस्सति कथं बहुली- [N. 145] कता महप्फला होति महानिसंसा? इध, भिक्खवे, भिक्खु अरञ्ञगतो वा रुक्खमूलगतो वा सुञ्ञागारगतो वा निसीदति पल्लङ्कं आभुजित्वा उजुं कायं पणिधाय परिमुखं सतिं उपट्ठपेत्वा। सो सतो व [B. 125] अस्ससति सतो व पस्ससति।

"दीघं वा अस्ससन्तो 'दीघं अस्ससामी' ति पजानाति, दीघं वा पस्ससन्तो 'दीघं पस्ससामी' ति पजानाति; रस्सं वा अस्ससन्तो 'रस्सं अस्ससामी' ति पजानाति, रस्सं वा पस्ससन्तो 'रस्सं पस्ससामी' ति पजानाति; 'सब्बकायपटिसंवेदी अस्ससिस्सामी' ति सिक्खति, 'सब्बकायपटिसंवेदी पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; 'पस्सम्भयं कायसङ्खारं अस्ससिस्समी' ति सिक्खति, 'पस्सम्भयं कायसङ्खारं पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति।

---

२. आनापानस्मृति द्वारा स्मृतिप्रस्थानों की पूर्णता

५. "भिक्षुओ! इस आनापानस्मृति की भावना, अधिकता से किये जाने पर, अधिक फलदायक होती है। चारों स्मृतिप्रस्थान भी भावित किये जाने पर सात बोध्यङ्गों को पूर्ण करते हैं। और ये सात बोध्यङ्ग सम्यक्तया भावित होने पर विद्या और विमुक्ति को पूर्ण करते हैं।

"भिक्षुओ! कैसे इस आनापानस्मृति की भावना अधिकता से किये जाने पर वह अधिक फलदात्री होती है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु किसी जंगल में या किसी वृक्ष के नीचे या किसी एकान्त शून्यागार में, आसन (पल्लङ्क—पर्यङ्क) लगाकर शरीर को सीधा-हल्का कर, स्मृति को सन्मुख (उपस्थित) रख कर बैठे। वह स्मरण करता हुआ आश्वास (श्वास) लेता है और स्मरण करता हुआ ही प्रश्वास (श्वास छोड़ना) करता है।

"वह दीर्घ श्वास लेता हुआ "मैं दीर्घ श्वास ले रहा हूँ'—ऐसा जानता है; दीर्घ श्वास छोड़ता हुआ 'मैं दीर्घ श्वास छोड़ रहा हूँ—ऐसा जानता है। वह छोटा श्वास लेता हुआ 'छोटा श्वास ले रहा हूँ'—ऐसा जानता है; छोटा श्वास छोड़ता हुआ 'छोटा श्वास छोड़ रहा हूँ'—ऐसा जानता है। वह 'समग्र काया की स्थिति को अनुभव करते हुए श्वास लूंगा'—ऐसा सीखता है...'श्वास छोड़ूंगा—ऐसा

" 'पीतिपटिसंवेदी अस्ससिस्सामी' ति सिक्खति, पीतिपटिसंवेदी पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; 'सुखपटिसंवेदी अस्ससिस्सामी' ति सिक्खति, [R. 83] 'सुखपटिसंवेदी पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; "चित्तसङ्खारपटिसंवेदी अस्ससिस्सामी' ति सिक्खति, 'चित्तसङ्खारपटिसंवेदी पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; 'पस्सम्भयं चित्तसङ्खारं अस्ससिस्सामी' ति सिक्खति, 'पस्सम्भयं चित्तसङ्खारं पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति।

" 'चित्तपटिसंवेदी अस्ससिस्सामी' ति सिक्खति, चित्तपटिसंवेदी पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; 'अभिप्पमोदयं चित्तं अस्ससिस्सामी' ति सिक्खति, 'अभिप्पमोदयं चित्तं पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; 'समादहं चित्तं अस्ससिस्सामी' ति सिक्खति, 'समादहं चित्तं पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; 'विमोचयं चित्तं अस्ससिस्सामी' ति सिक्खति, 'विमोचयं चित्तं पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति।

" 'अनिच्चानुपस्सी अस्ससिस्सामी' ति सिक्खति, अनिच्चानुपस्सी पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; 'विरागानुपस्सी अस्ससिस्सामी' ति सिक्खति, 'विरागानुपस्सी पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; 'निरोधानुपस्सी अस्ससिस्सामी' ति सिक्खति, 'निरोधानुपस्सी पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; 'पटिनिस्सग्गानुपस्सी अस्ससिस्सामी ति सिक्खति, 'पटिनिस्सग्गानुपस्सी पस्स- [N. 146] सिस्सामी' ति सिक्खति। एवं भाविता खो, भिक्खवे, आनापानस्सति एवं बहुलीकता महप्फला होति महानिसंसा।

सीखता है। वह 'कायिक संस्कारों (क्रियाओं) को रोकते हुए श्वास लूंगा'—ऐसा सीखता है...श्वास छोड़ूंगा—ऐसा सीखता है।

"वह 'प्रीति का अनुभव (प्रतिसंवेदन) करते हुए श्वास लूंगा'...श्वास छोड़ूंगा—ऐसा सीखता है। 'सुख का अनुभव करते हुए श्वास...प्रश्वास छोड़ूंगा—ऐसा सीखता है। वह 'चित्तसंस्कारों का अनुभव करते हुए श्वास...प्रश्वास छोड़ूंगा' ऐसा सीखता है। चित्तसंस्कारों को रोकते हुए श्वास...प्रश्वास छोड़ूंगा—ऐसा सीखता है।

"चित्त को अनुभव करते हुए...। चित्त को प्रमुदित करते हुए...।...चित्त को समाहित करते हुए...। चित्त को विमुक्त करते हुए श्वास...छोड़ूंगा—ऐसा सीखता है।

"सभी पदार्थों की अनित्यता का ध्यान रखते हुए...। विराग का ध्यान रखते हुए...। निरोध का ध्यान रखते हुए...। प्रतिनिसर्ग (त्याग) का ध्यान रखते हुए श्वास...प्रश्वास छोड़ूंगा—ऐसा सीखता है। भिक्षुओ ! यों यह आनापानस्मृति

६. "कथं भाविता च, भिक्खवे, अनापानस्सति कथं बहुली- [B. 126] कता चत्तारो सतिपट्ठाने परिपूरेति ? यस्मिं समये, भिक्खवे, भिक्खु दीघं वा अस्ससन्तो 'दीघं अस्ससामी' ति पजानाति, दीघं वा पस्ससन्तो 'दीघं पस्ससामी' ति पजानाति; रस्सं वा अस्ससन्तो 'रस्सं अस्ससामी' ति पजानाति, रस्सं वा पस्ससन्तो 'रस्सं पस्ससामी' ति पजानाति; 'सब्बकायपटिसंवेदी अस्ससिस्सामी' ति सिक्खति, 'सब्बकायपटिसंवेदी पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; पस्सम्भयं कायसङ्खारं अस्ससिस्सामी' ति सिक्खति, 'पस्सम्भयं कायसङ्खारं पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; काये कायानुपस्सी, भिक्खवे, तस्मिं समये भिक्खु विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं । कायेसु कायञ्ञतराहं, भिक्खवे, एवं वदामि यदिदं—अस्सासपस्सासा । तस्मातिह, भिक्खवे, काये कायानुपस्सी तस्मिं समये भिक्खु विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं । (१)

"यस्मिं समये, भिक्खवे, भिक्खु 'पीतिपटिसंवेदी अस्ससिस्सामी' [R. 84] ति सिक्खति, 'पीतिपटिसंवेदी पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; 'सुखपटिसंवेदी अस्ससिस्सामी' ति सिक्खति, 'सुखपटिसंवेदी पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; 'चित्तसङ्खारपटिसंवेदी अस्ससिस्सामी' ति सिक्खति, 'चित्तसङ्खारपटिसंवेदी पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; 'पस्सम्भयं चित्तसङ्खारं अस्ससिस्सामी' ति

आधिक्येन भावित किये जाने पर, अत्यधिक फलदात्री एवं अतीव माहात्म्यसम्पन्न होती है ।

६. "भिक्षुओ ! कैसे यह आनापानस्मृति, अधिकता से भावित की जाने पर, चारों स्मृतिप्रस्थानों को परिपूर्ण करती है ? भिक्षुओ ! जिस समय कोई भिक्षु लम्बे श्वास लेता हुआ 'लम्बा श्वास लेता हूँ'—ऐसा जानता है; लम्बा श्वास छोड़ता हुआ 'लम्बा श्वास छोड़ रहा हूँ'—ऐसा जानता है, छोटा श्वास...छोटा प्रश्वास...काया की समग्र स्थिति को अनुभव करते हुए...कायिक संस्कारों को रोकते हुए श्वास...छोड़ूँगा ऐसा सीखता है; भिक्षुओ ! उस समय वह भिक्षु लोक में अभिध्या (लोक) और दौर्मनस्य को हटाकर स्मृतिसम्प्रजन्यपूर्वक स्मृतिमान् हो, काया में कायानुपश्यनापूर्वक (काया को काया के रूप में ही देखता हुआ) साधना करता है । भिक्षुओ ! इस आश्वास-प्रश्वास क्रिया को मैं काया में दूसरी काया मानता हूँ। इसलिये, भिक्षुओ ! भिक्षु उस समय कायानुपश्यी होकर लोक में अभिध्या...साधना करता है । (१)

"भिक्षुओ ! जिस समय कोई भिक्षु प्रीति का अनुभव करते हुए...सुख का अनुभव करते हुए...चित्त के संस्कारों (क्रियाओं) का अनुभव करते हुए...चित्त संस्कारों को रोकते हुए...। उस समय, भिक्षुओ ! वह लोक में अभिध्या-दौर्मनस्य को

सिक्खति, 'पस्सम्भयं चित्तसङ्खारं पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; वेदनासु वेदनानुपस्सी, भिक्खवे तस्मिं समये भिक्खु विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं। वेदनासु वेदनञ्ञतराहं, भिक्खवे, एवं वदामि यदिदं—अस्सासपस्सासानं साधुकं मनसिकारं। तस्मातिह, भिक्खवे, वेदनासु वेदनानुपस्सी तस्मिं समये भिक्खु विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं। (२)

"यस्मिं समये, भिक्खवे, भिक्खु 'चित्तपटिसंवेदी अस्ससिस्सामी' ति सिक्खति, 'चित्तपटिसंवेदी पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; 'अभिप्पमोदयं [N. 147] चित्तं अस्ससिस्सामी' ति सिक्खति, 'अभिप्पमोदयं चित्तं पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; 'समादहं चित्तं अस्ससिस्सामी' ति सिक्खति, 'समादहं चित्तं पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; 'विमोचयं चित्तं अस्ससि- [B. 127] स्सामी' ति सिक्खति, 'विमोचयं चित्तं पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; चित्ते चित्तानुपस्सी, भिक्खवे, तस्मिं समये भिक्खु विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं। नाहं, भिक्खवे, मुट्ठस्सतिस्स असम्पजानस्स आनापानस्सतिं वदामि। तस्मातिह, भिक्खवे, चित्ते चित्तानुपस्सी तस्मिं समये भिक्खु विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं। (३)।

"यस्मिं समये, भिक्खवे, भिक्खु 'अनिच्चानुपस्सी अस्ससिस्सामी' ति सिक्खति, 'अनिच्चानुपस्सी पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; 'विरागानुपस्सी

हटाकर स्मृतिसम्प्रजन्यपूर्वक स्मृतिमान् हो, वेदनाओं में वेदनानुपश्यी होकर साधना करता है। भिक्षुओ! आश्वास-प्रश्वास को इस तरह भलीभाँति मन में करने को मैं वेदनाओं में एक वेदना कहता हूँ। इसलिये, भिक्षुओ! भिक्षु वेदनानुपश्यना-पूर्वक साधना करता है॥ (२)

"जिस समय भिक्षुओ! कोई भिक्षु चित्त को अनुभव करते हुए... चित्त को प्रमुदित करते हुए... चित्त को समाहित करते हुए... चित्त को विमुक्त करते हुए... चित्त में चित्तानुश्यना करता हुआ साधना करता है उस समय वह भिक्षु लोक में अभिध्या-दौर्मनस्य को हटाकर स्मृतिसम्प्रजन्यपूर्वक स्मृतिमान् हो साधना करता है। भिक्षुओ! मैं नष्टस्मृति साधक के लिये इस आनापानस्मृति की साधना का कोई महत्त्व नहीं समझता। इसलिये, भिक्षुओ! भिक्षु चित्त में चित्तानुपश्यनापूर्वक साधना करता है। (३)

"जिस समय, भिक्षुओ! कोई भिक्षु अनित्य पदार्थों में अनित्यता का ध्यान रखते हुए... विराग का... निरोध का... प्रतिनिसर्ग का ध्यान करते हुए...। उस

अस्ससिस्सामी' ति सिक्खति, 'विरागानुपस्सी पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति, 'निरोधानुपस्सी अस्ससिस्सामी' ति सिक्खति, 'निरोधानुपस्सी पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; 'पटिनिस्सग्गानुपस्सी अस्ससिस्सामी' ति सिक्खति, 'पटिनिस्सग्गानुपस्सी पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; धम्मेसु धम्मानुपस्सी, भिक्खवे, तस्मिं समये भिक्खु विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं। सो यं तं अभिज्झादोमनस्सानं पहानं तं पञ्ञाय दिस्वा साधुकं अज्झुपेक्खिता होति। तस्मातिह, भिक्खवे, धम्मेसु [R. 85] धम्मानुपस्सी तस्मिं समये भिक्खु विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं।

"एवं भाविता खो, भिक्खवे, अनापानस्सति एवं बहुलीकता चत्तारो सतिपट्ठाने परिपूरेति।

३. सतिपट्ठाना बोज्झङ्गे परिपूरेन्ति

७. "कथं भाविता च, भिक्खवे, चत्तारो सतिपट्ठाना कथं बहुलीकता सत्त बोज्झङ्गे परिपूरेन्ति? यस्मिं समये, भिक्खवे, भिक्खु काये कायानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं, उपट्ठितास्स तस्मिं समये सति होति असम्मुट्ठा। यस्मिं समये, भिक्खवे, भिक्खुनो उपट्ठिता सति होति असम्मुट्ठा, सतिसम्बोज्झङ्गो [N. 148] तस्मिं समये भिक्खुनो आरद्धो होति। सतिसम्बोज्झङ्गं तस्मिं समये भिक्खु

समय, भिक्षुओ! वह भिक्षु धर्मों में धर्मानुपश्यना करता हुआ लोक में अभिध्या, दौर्मनस्य को हटा कर···साधना करता है। इस तरह वह इन अभिध्या-दौर्मनस्य के प्रहाण को प्रज्ञा से भलीभाँति समझकर उनके प्रति अच्छी तरह उपेक्षा करता है। अतः, भिक्षुओ! धर्मों में धर्मानुपश्यी होकर साधना करने वाला भिक्षु लोक में··· साधना करता है। (४)

"भिक्षुओ! यों यह इस भिक्षु द्वारा भावित की गयी, बढायी गयी आनापानस्मृति उसके चारों स्मृतिप्रस्थानों को परिपूर्ण करती है।

३. स्मृतिप्रस्थान बोध्यङ्गों को परिपूर्ण करते हैं?

७. "भिक्षुओ! कैसे ये चारों स्मृतिप्रस्थान किसी भिक्षु द्वारा भावित एवं बहुलीकृत होने पर सात बोध्यङ्गों को परिपूर्ण करते हैं? (१) जिस समय, भिक्षुओ! कोई भिक्षु लोकविषयक अभिध्या दौर्मनस्य को स्वचित्त से हटाकर स्मृतिसम्प्रजन्यपूर्वक स्मृतिमान् हो साधना करता है, उस समय इसकी स्मृति—असम्मुष्ट स्मृति—उपस्थित रहती है। जिस समय, भिक्षुओ! उस भिक्षु की स्मृति

भावेति, **सतिसम्बोज्झङ्गो** तस्मिं समये भिक्खुनो भावनापारिपूरिं गच्छति। (१)

"सो तथासतो विहरन्तो तं धम्मं पञ्ञाय पविचिनति पविचयति परिवीमंसं आपज्जति। यस्मिं समये, भिक्खवे, भिक्खु तथासतो विहरन्तो तं [B. 128] धम्मं पञ्ञाय पविचिनति पविचयति परिवीमंसं आपज्जति, धम्मविचयसम्बोज्झङ्गो तस्मिं समये भिक्खुनोआरद्धो होति, धम्मविचयसम्बोज्झङ्गं तस्मिं समये भिक्खु भावेति, **धम्मविचयसम्बोज्झङ्गो** तस्मिं समये भिक्खुनो भावनापारिपूरिं गच्छति। (२)

"तस्स तं धम्मं पञ्ञाय पविचिनतो पविचयतो परिवीमंसं आपज्जतो आरद्धं होति विरियं असल्लीनं। यस्मिं समये, भिक्खवे, भिक्खुनो तं धम्मं पञ्ञाय पविचिनतो पविचयतो परिवीमंसं आपज्जतो आरद्धं होति विरियं असल्लीनं, विरियसम्बोज्झङ्गो तस्मिं समये भिक्खुनो आरद्धो होति, विरियसम्बोज्झङ्गं तस्मिं समये भिक्खु भावेति, **विरियसम्बोज्झङ्गो** तस्मिं भिक्खुनो भावनापारिपूरिं गच्छति। (३)

"आरद्धविरियस्स उप्पज्जति पीति निरामिसा। यस्मिं समये, भिक्खवे, [R. 86] भिक्खुनो आरद्धविरियस्स उपज्जति पीति निरामिसा, पीतिसम्बोज्झङ्गो तस्मिं समये भिक्खुनो आरद्धो होति, पीतिसम्बोज्झङ्गं तस्मिं समये भिक्खु भावेति, **पीतिसम्बोज्झङ्गो** तस्मिं समये भिक्खुनो भावनापारिपूरिं गच्छति (४)

उपस्थित रहती है। उस समय वह भिक्षु स्मृतिसम्बोध्यङ्ग में लीन रहता है, उसकी भावना करता है। यों, भावना द्वारा उसका वह स्मृतिसम्बोध्यङ्ग परिपूर्ण होता है। (२) वह वहाँ-वहाँ विहार करता हुआ, उस धर्म की प्रज्ञा से विवेचना (छानबीन) करता हुआ धर्मविचयसम्बोध्यङ्ग में लीन रहता है, उसकी भावना करता है। उस भावना द्वारा उसका धर्मविचयसम्बोध्यङ्ग परिपूर्ण होता है। (३) उस धर्म की प्रज्ञा से विवेचना, मीमांसा करते-करते उस भिक्षु द्वारा तदर्थ उद्योग (वीर्य) आरम्भ किया जाता रहता है। अतः उस समय वह भिक्षु वीर्यसम्बोध्यङ्ग की भावना करता हुआ माना जाता है। उस समय उस भावना द्वारा उस भिक्षु का वीर्यसम्बोध्यङ्ग परिपूर्ण होता है। (४) उस आरब्धवीर्य (उद्योगी) साधक को निरामिष प्रीति उत्पन्न होती है; क्योंकि उस समय वह भिक्षु साधक प्रीतिसम्बोध्यङ्ग प्रारम्भ किये रहता है। और उसकी भावना करता है।...उस समय उस भिक्षु का भावना द्वारा प्रीतिसम्बोध्यङ्ग परिपूर्ण होने लगता है।

"पीतिमनस्स कायो पि पस्सम्भति, चित्तं पि पस्सम्भति। यस्मिं समये, भिक्खवे, भिक्खुनो पीतिमनस्स कायो पि पस्सम्भति, चित्तं पि पस्सम्भति, पस्सद्धिसम्बोज्झङ्गो तस्मिं समये भिक्खुनो आरद्धो होति, पस्सद्धिसम्बोज्झङ्गं तस्मिं समये भिक्खु भावेति, **पस्सद्धिसम्बोज्झङ्गो** तस्मिं समये भिक्खुनो भावनापारिपूरिं गच्छति। (५)

"पस्सद्धकायस्स सुखिनो चित्तं समाधियति। यस्मिं समये, भिक्खवे, भिक्खुनो पस्सद्धकायस्स सुखिनो चित्तं समाधियति, समाधिसम्बोज्झङ्गो तस्मिं समये भिक्खुनो आरद्धो होति, समाधिसम्बोज्झङ्गं तस्मिं समये भिक्खु भावेति, **समाधिसम्बोज्झङ्गो** तस्मिं समये भिक्खुनो [N. 149] भावनापारिपूरिं गच्छति। (६)

"सो तथासमाहितं चित्तं साधुकं अज्झुपेक्खिता होति। यस्मिं समये, भिक्खवे, भिक्खु तथासमाहितं साधुकं अज्झुपेक्खिता होति, उपेक्खासम्बोज्झङ्गो तस्मिं समये भिक्खुनो आरद्धो होति, उपेक्खासम्बोज्झङ्गं तस्मिं समये भिक्खु भावेति, **उपेक्खासम्बोज्झङ्गो** तस्मिं समये भिक्खुनो भावनापारिपूरिं गच्छति। (७)

८. "यस्मिं समये, भिक्खवे, भिक्खु वेदनासु...पे०...चित्ते [B. 129] ...पे०...धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं, उपट्ठितास्स तस्मिं समये सति होति असम्मुट्ठा। यस्मिं समये, भिक्खवे, भिक्खुनो उपट्ठिता सति होति असम्मुट्ठा, सतिसम्बोज्झङ्गो तस्मिं समये भिक्खुनो आरद्धो होति, सतिसम्बोज्झङ्गं तस्मिं समये भिक्खु भावेति, सतिसम्बोज्झङ्गो तस्मिं समये भिक्खुनो भावनापारिपूरिं गच्छति।

"सो तथासतो विहरन्तो तं धम्मं पञ्ञाय पविचिनति पविचयति परिवीमंसं आपज्जति। यस्मिं समये, भिक्खवे, भिक्खु तथासतो विहरन्तो

---

(५) उस प्रीतिमान् साधक भिक्षु के काया व चित्त भी प्रश्रब्ध (शान्त) हो जाते हैं...पूर्ववत्...प्रश्रब्धिसम्बोध्यङ्ग पूर्ण होने लगता है। (६) उस प्रश्रब्धकाय और सुखी साधक का चित्त समाहित (एकाग्र) हो जाता है...पूर्ववत्...समाधिसम्बोध्यङ्ग परिपूर्ण होने लगता है॥ (७)

[यहाँ तक कायानुपश्यना के माध्यम से भावित सात सम्बोध्यङ्गों की परिपूर्णता की चर्चा हुई। अब आगे वेदनानुपश्यना, चित्तानुपश्यना एवं धर्मानुपश्यना के माध्यम से भी इन सातों सम्बोध्यङ्गों की परिपूर्णता इसी प्रकार बतायेंगे। अतः आगे पूर्वोक्त पाठ की आवृत्तिमात्र है, यत्किञ्चित् भी विशेष नहीं है।]

तं धम्मं पञ्ञाय पविचिनति पविचयति परिवीमंसं आपज्जति, धम्मविचय-सम्बोज्झङ्गो तस्मिं समये भिक्खुनो आरद्धो होति, धम्मविचयसम्बोज्झङ्गं [R. 87] तस्मिं समये भिक्खु भावेति, धम्मविचयसम्बोज्झङ्गो तस्मिं समये भिक्खुनो भावनापारिपूरिं गच्छति।

"तस्स तं धम्मं पञ्ञाय पविचिनतो पविचयतो परिवीमंसं आपज्जतो आरद्धं होति विरियं असल्लीनं। यस्मिं समये, भिक्खवे, भिक्खुनो तं धम्मं पञ्ञाय पविचिनतो पविचयतो परिवीमंसं आपज्जतो आरद्धं होति विरियं असल्लीनं, विरियसम्बोज्झङ्गो तस्मिं समये भिक्खुनो आरद्धो होति, विरियसम्बोज्झङ्गं तस्मिं समये भिक्खु भावेति, विरियसम्बोज्झङ्गो तस्मिं समये भिक्खुनो भावनापारिपूरिं गच्छति।

"आरद्धविरियस्स उप्पज्जति पीति निरामिसा। यस्मिं समये, भिक्खवे, भिक्खुनो आरद्धविरियस्स उप्पज्जति पीति निरामिसा, पीतिसम्बोज्झङ्गो तस्मिं समये भिक्खुनो आरद्धो होति, पीतिसम्बोज्झङ्गं तस्मिं समये भिक्खु [N. 150] भावेति, पीतिसम्बोज्झङ्गो तस्मिं समये भिक्खुनो भावना-पारिपूरिं गच्छति।

"पीतिमनस्स कायो पि पस्सम्भति, चित्तं पि पस्सम्भति। यस्मिं समये, भिक्खवे, भिक्खुनो पीतिमनस्स कायो पि पस्सम्भति, चित्तं पि पस्सम्भति, पस्सद्धिसम्बोज्झङ्गो तस्मिं समये भिक्खुनो आरद्धो होति, पस्सद्धि-सम्बोज्झङ्गं तस्मिं समये भिक्खु भावेति, पस्सद्धिसम्बोज्झङ्गो तस्मिं समये भिक्खुनो भावनापारिपूरिं गच्छति।

[B. 130] पस्सद्धकायस्स सुखिनो चित्तं समाधियति। यस्मिं समये, भिक्खवे, भिक्खुनो पस्सद्धकायस्स सुखिनो चित्तं समाधियति, समाधि-सम्बोज्झङ्गो तस्मिं समये भिक्खुनो आरद्धो होति, समाधिसम्बोज्झङ्गं तस्मिं समये भिक्खु भावेति, समाधिसम्बोज्झङ्गो तस्मिं समये भिक्खुनो भावनापारिपूरिं गच्छति।

"सो तथा समाहितं चित्तं साधुकं अज्झुपेक्खिता होति। यस्मिं समये, भिक्खवे, भिक्खु तथासमाहितं चित्तं साधुकं अज्झुपेक्खिता होति, उपेक्खा-सम्बोज्झङ्गो तस्मिं समये भिक्खुनो आरद्धो होति, उपेक्खासम्बोज्झङ्गं तस्मिं समये भिक्खु भावेति, उपेक्खासम्बोज्झङ्गो तस्मिं समये भिक्खुनो भावना-पारिपूरिं गच्छति। एवं भाविता खो, भिक्खवे, चत्तारो सतिपट्ठाना एवं बहुलीकता सत्त सम्बोज्झङ्गे परिपूरेन्ति।

८, 'भिक्षुओ ! जैसे कोई भिक्षु वेदनाओं में···पूर्ववत्···चित्त में···पूर्ववत्··· धर्मों में धर्मानुपश्यना करता हुआ···पूर्ववत्···सातो सम्बोध्यङ्ग परिपूर्ण होते हैं।

९. "कथं भाविता च, भिक्खवे, सत्त बोज्झङ्गा कथं बहु- [R. 88] लीकता विज्जाविमुत्तिं परिपूरेन्ति ? इध, भिक्खवे, भिक्खु सतिसम्बोज्झङ्गं भावेति विवेकनिस्सितं विरागनिस्सितं निरोधनिस्सितं वोस्सग्गपरिणामिं; धम्मविचयसम्बोज्झङ्गं भावेति···पे०···विरियसम्बोज्झङ्गं भावेति···पीति-सम्बोज्झङ्गं भावेति···पस्सद्धिसम्बोज्झङ्गं भावेति···समाधिसम्बोज्झङ्गं भावेति···उपेक्खासम्बोज्झङ्गं भावेति विवेकनिस्सितं विरागनिस्सितं निरोधनिस्सितं वोस्सग्गपरिणामिं। एवं भाविता खो, भिक्खवे, सत्त बोज्झङ्गा एवं बहुलीकता विज्जाविमुत्तिं परिपूरेन्ती" ति।

१०. इदमवोच भगवा। अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति।

---

९. "और भिक्षुओ ! कैसे किसी भिक्षुसाधक द्वारा भावित एवं वृद्धिङ्गत ये सातों सम्बोध्यङ्ग विद्या एवं विमुक्ति को परिपूर्ण करते हैं ? यहाँ भिक्षुओ ! कोई भिक्षु विवेक, विराग एवं निरोध पर अवलम्बित तथा त्याग-(व्यवसर्ग-) परिणाम वाले स्मृतिसम्बोध्यङ्ग की भावना (अभ्यास-साधना) करता है···धर्मविचय··· वीर्य···प्रीति ··· प्रश्रब्धि ··· समाधि ··· उपेक्षा सम्बोध्यङ्ग की भावना करता है। भिक्षुओ ! इस प्रकार भावित व बहुलीकृत होने पर ये सात सम्बोध्यङ्ग विद्या और विमुक्ति को परिपूर्ण करते हैं।"

१०. भगवान् ने यह देशना की। आत्तमना (सन्तुष्ट) भिक्षुओं ने भगवान् के इस भाषण (देशना) का अभिनन्दन किया॥

१९. कायगतासतिसुत्तं

१. कायानुपस्सना

१. [N. 151] एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो सम्बहुलानं भिक्खूनं पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तानं उपट्ठानसालायं सन्निसिन्नानं सन्निपतितानं अयमन्तरा- [B. 131] कथा उदपादि—"अच्छरियं, आवुसो, अब्भुतं, आवुसो! यावञ्चिदं तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन कायगतासति भाविता बहुलीकता महप्फला वुत्ता महानिसंसा" ति। अयं च हिदं तेसं भिक्खूनं अन्तराकथा विप्पकता होति, अथ खो भगवा सायन्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो येन उपट्ठानसाला तेनुपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। निसज्ज खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"काय नुत्थ, भिक्खवे, एतरहि कथाय सन्निसिन्ना, का च पन वो अन्तराकथा विप्पकता" ति?

[R. 89] "इध, भन्ते, अम्हाकं पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तानं उपट्ठानसालायं सन्निसिन्नानं सन्निपतितानं अयमन्तराकथा उदपादि—'अच्छरियं, आवुसो, अब्भुतं, आवुसो! यावञ्चिदं तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन कायगतासति भाविता बहुलीकता महप्फला वुत्ता महानिसंसा' ति। अयं खो नो, भन्ते, अन्तराकथा विप्पकता, अथ भगवा अनुप्पत्तो" ति।

---

१९. कायगतास्मृतिसूत्र

१. कायानुपश्यना

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्तीस्थित अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। तब भिक्षाचर्या के बाद, उपस्थानशाला में एकत्र बैठे बहुत से भिक्षुओं में परस्पर यह चर्चा प्रारम्भ हुई—"अत्यन्त आश्चर्य है, आयुष्मानो, अत्यन्त अद्भुत है कि उन सर्वज्ञ सर्वद्रष्टा अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध ने यह कहा कि कायगता स्मृति भावित वृद्धिङ्गत किये जाने पर अत्यन्त फलप्रद एवं माहात्म्यशालिनी होती है।" उन भिक्षुओं में यह धर्मचर्चा हो ही रही थी कि उसी समय भगवान् सायङ्काल ध्यान-भावना से उठकर उपस्थानशाला में, जहाँ भिक्षुसङ्घ एकत्र था वहाँ, पधारे, और बिछे आसन पर विराजमान हुए। विराज कर भिक्षुओं से पूछा—"भिक्षुओ! इस समय तुम किस बात पर चर्चा कर रहे थे? तुम परस्पर क्या बात कर रहे थे?"

"यहाँ, भन्ते! भिक्षाचर्या से निवृत्त हुए हमलोग इस उपस्थानशाला में एकत्र होकर यही बात कर रहे थे—'कितने आश्चर्य की बात है कि उस सर्वज्ञ··· माहात्म्यशालिनी होती है' कि आप का यहाँ शुभागमन हो गया।

(१) आनापानस्सति

२. "कथं भाविता च, भिक्खवे, कायगतासति कथं बहुलीकता महप्फला होति महानिसंसा ? इध, भिक्खवे, भिक्खु अरञ्ञगतो वा रुक्खमूलगतो वा सुञ्ञागारगतो वा निसीदति पल्लङ्कं आभुजित्वा उजुं कायं पणिधाय परिमुखं सतिं उपट्ठपेत्वा। सो सतो व अस्ससति सतो व पस्ससति : 'दीघं वा अस्ससन्तो 'दीघं अस्ससामी' ति पजानाति, दीघं वा पस्स- [N. 152] सन्तो 'दीघं पस्ससामी' ति पजानाति; रस्सं वा अस्ससन्तो 'रस्सं अस्ससामी' ति पजानाति, रस्सं वा पस्ससन्तो 'रस्सं पस्ससिस्सामी' ति पजानाति; 'सब्ब-कायपटिसंवेदी अस्ससिस्सामी' ति सिक्खति, 'सब्बकायपटिसंवेदी पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति; 'पस्सम्भयं कायसङ्खारं अस्ससिस्सामी' ति सिक्खति, पस्सम्भयं कायसङ्खारं पस्ससिस्सामी' ति सिक्खति। तस्स एवं अप्पमत्तस्स आतापिनो पहितत्तस्स विहरतो ये गेहसिता सरसङ्कप्पा ते पहीयन्ति। तेसं पहाना अज्झत्तमेव चित्तं सन्तिट्ठति सन्निसीदति एकोदि होति समाधियति। एवं, भिक्खवे, भिक्खु कायगतासतिं भावेति।

(२) इरियापथस्सति

३. "पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु गच्छन्तो वा 'गच्छामी' [B. 132] ति पजानाति ठितो वा 'ठितोम्ही' ति पजानाति, निसिन्नो वा 'निसिन्नोम्ही' ति पजानाति, सयानो वा 'सयानोम्ही' ति पजानाति। यथा यथा वा

---

(१) आनापानस्मृति

२, "भिक्षुओ ! यह आनापानस्मृति कैसे भावित वृद्धिङ्गत होकर महाफलदायी तथा माहात्म्यशाली होती है ? यहाँ भिक्षुओ ! कोई भिक्षु एकान्त जंगल में या किसी वृक्ष के नीचे या किसी शून्यागार में आसन लगाकर शरीर को सरल व सीधा कर स्मृति को सम्मुख रखकर बैठता है। वह...पूर्ववत्[1]...श्वास छोड़ूंगा—सीखता है। यों, अप्रमादरहित, तत्पर एवं संयत हो साधनाकर्ता के जो लोभमूलक स्मरसङ्कल्प चित्त में घर कर गये थे, वे नष्ट हो जाते हैं। उनके नष्ट हो जाने पर, उसका चित्त स्वस्थान पर स्थित हो जाता है, ठहर जाता है, एकाग्र हो जाता है, समाहित हो जाता है। यों, भिक्षुओ ! वह साधक भिक्षु कायगता स्मृति की भावना करता है।

(२) ईर्यापथस्मृति

३. "और फिर, भिक्षुओ ! वह भिक्षु कहीं जाता हुआ 'जाता हूँ'—यह जानता है...पूर्ववत्[2]...वैसे-वैसे ही जानता है। इस प्रकार प्रमादरहित...समा-

---

१. द्र०—पीछे पृ० ११७; १२४९ आनापानस्सतिसुत्त।
२. द्र०—पीछे पृ० ११८।

धनस्स कायो पणिहितो तथा तथा नं पजानाति। तस्स एवं अप्पमत्तस्स आतापिनो पहितत्तस्स विहरतो ये गेहसिता सरसङ्कप्पा ते पहीयन्ति। तेसं पहाना अज्झत्तमेव चित्तं सन्तिट्ठति सन्निसीदति एकोदि होति समाधियति। एवं पि, भिक्खवे, भिक्खु कायागतासतिं भावेति।

[R. 90] "पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु अभिक्कन्ते पटिक्कन्ते सम्पजानकारी होति, आलोकिते विलोकिते सम्पजानकारी होति, समिञ्जिते पसारिते सम्पजानकारी होति, सङ्घाटिपत्तचीवधारणे सम्पजानकारी होति, असिते पीते खायिते सायिते सम्पजानकारी होति, उच्चारपस्सावकम्मे सम्पजानकारी होति, गते ठिते निसिन्ने सुत्ते जागरिते भासिते तुण्हीभावे सम्पजानकारी होति। तस्स एवं अप्पमत्तस्स आतापिनो पहितत्तस्स विहरतो ये गेहसिता सरसङ्कप्पा ते पहीयन्ति। तेसं पहाना अज्झत्तमेव चित्तं सन्तिट्ठति सन्निसीदति एकोदि होति समाधियति। एवं पि, भिक्खवे, भिक्खु कायगतासतिं भावेति।

(३) द्वत्तिंसाकारस्सति

[N. 153] ४. "पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु इममेव कायं उद्धं पादतला अधो केसमत्थका तचपरियन्तं पूरं नानप्पकारस्स असुचिनो पच्चवेक्खति—'अत्थि इमस्मिं काये केसा लोमा नखा दन्ता तचो मंसं न्हारु अट्ठि अट्ठिमिञ्जं वक्कं हदयं यकनं किलोमकं पिहकं पप्फासं अन्तं अन्तगुणं उदरियं करीसं पित्तं सेम्हं पुब्बो लोहितं सेदो मेदो अस्सु वसा खेळो सिङ्घाणिका लसिका मुत्तं' ति।

हित होता है। भिक्षुओ! इस प्रकार भी वह भिक्षु कायगता स्मृति की भावना करता है।

"और भिक्षुओ! वह भिक्षु अपने गमन-आगमन में सम्प्रज्ञानकारी होता है, देखने-सुनने में...पूर्ववत्[1]...जागने,बोलने, चुप रहने में सम्प्रज्ञानकारी होता है। यों उस अप्रमत्त, उद्योगी, प्रयत्नशील के साधनारत रहते हुए सभी लोभमूलक स्मरसङ्कल्प प्रहीण हो जाते हैं। उस प्रहाण से...कायगता स्मृति की भावना करता है।

(३) द्वित्रिंशदाकार स्मृति

"और फिर भिक्षुओ! वह भिक्षु अपनी इस काया के पैरों से ऊपर और केश-मस्तक से नीचे त्वचा पर्यन्त सभी अङ्गों में नाना प्रकार की अशुचि का प्रत्यवेक्षण करे—'इस काया में केश...मूत्र हैं'।

---

१. द्र०—पीछे पृ० ११९ सतिपट्ठानसुत्त।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, उभतोमुखा पुतोळि पूरा नानाविहितस्स धञ्ञस्स, सेय्यथीदं—सालीनं वीहीनं मुग्गानं मासानं तिलानं तण्डुलानं, तमेनं चक्खुमा पुरिसो मुञ्चित्वा पच्चवेक्खेय्य—'इमे साली इमे वीही इमे मुग्गा इमे मासा इमे तिला इमे तण्डुला ति; एवमेव खो, भिक्खवे, भिक्खु इममेव कायं उद्धं पादतला अधो केसमत्थका तचपरियन्तं पूरं नानप्पकारस्स असुचिनो पच्चवेक्खति—'अत्थि इमस्मिं काये केसा [B. 133] लोमा नखा दन्ता तचो मंसं न्हारु अट्ठि अट्ठिमिञ्जं वक्कं हदयं यकनं किलोमकं पिहकं पप्फासं अन्तं अन्तगुणं उदरियं करीसं पित्तं सेम्हं पुब्बो लोहितं सेदो मेदो अस्सु वसा खेळो सिङ्घाणिका लसिका मुत्तं' ति। तस्स एवं अप्पमत्तस्स आतापिनो पहितत्तस्स विहरतो ये गेहसिता सरसङ्कप्पा ते पहीयन्ति। तेसं पहाना अज्झत्तमेव चित्तं सन्तिट्ठति सन्निसीदति एकोदि होति समाधियति। एवं पि, भिक्खवे, भिक्खु कायगतासतिं भावेति।

(४) धातुमनसिकारो

५. "पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु इममेव कायं यथाठितं [R. 91] यथापणिहितं धातुसो पच्चवेक्खति—'अत्थि इमस्मिं काये पथवीधातु आपोधातु तेजोधातु वायोधातू' ति।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, दक्खो गोघातको वा गोघातकन्तेवासी वा गाविं वधित्वा चतुमहापथे बिलसो विभजित्वा निसिन्नो अस्स; एवमेव खो, भिक्खवे, भिक्खु इममेव कायं यथाठितं यथापणिहितं धातुसो [N. 154]

"भिक्षुओ ! जैसे दोनों ओर मुँह वाली पुतोलि (थैली=बोरी) नानाविध धान्यों से भरी हो, जैसे—शालि, व्रीहि, मूँग, उडद, तिल, तण्डुल। कोई बुद्धिमान् पुरुष उसे खोलकर देखे और समझे कि ये शालि हैं, ये व्रीहि हैं,...ये तण्डुल हैं; इसी तरह भिक्षुओ ! वह भिक्षु अपनी इस काया को...मूत्र है। यों उस अप्रमत्त (सावधान) उद्योगी साधक के स्मरसङ्कल्प प्रहीण हो जाते हैं। उनके प्रहाण से उसका आध्यात्मिक चित्त एक जगह स्थिर हो जाता है, ठहर जाता है। एकाग्र एवं समाहित हो जाता है। यों भी, भिक्षुओ ! उस भिक्षु द्वारा कायगता स्मृति की साधना की जा सकती है।

(४) धातुमनस्कार

५. फिर, भिक्षुओ ! वह भिक्षु अपनी इस काया के अन्दर विद्यमान धातुओं के विषय में भलीभाँति प्रत्यवेक्षण करता है—इस काया में (इतना अंश) पृथ्वी-धातु का है, इतना जलधातु का...इतना वायुधातु का।

"भिक्षुओ ! जैसे कोई चतुर कसाई (गोघातक) या उस कसाई का कोई

पच्चवेक्खति—'अत्थि इमस्मिं काये पथवीधातु आपोधातु तेजोधातु वायोधातू' ति । तस्स एवं अप्पमत्तस्स आतापिनो पहितत्तस्स विहरतो ये गेहसिता सरसङ्कप्पा ते पहीयन्ति । तेसं पहाना अज्झत्तमेव चित्तं सन्तिट्ठति सन्निसीदति एकोदि होति समाधियति । एवं पि, भिक्खवे, भिक्खु काय-गतासतिं भावेति ।

(५) असुभानुस्सति

६. "पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु सेय्यथापि पस्सेय्य सरीरं सिवथिकाय छड्डितं एकाहमतं वा द्वीहमतं वा तीहमतं वा उद्धमातकं विनीलकं विपुब्बकजातं । सो इममेव कायं उपसंहरति—'अयं पि खो कायो एवंधम्मो एवंभावी एवंअनतीतो ति । तस्स एवं अप्पमत्तस्स आतापिनो पहितत्तस्स विहरतो ये गेहसिता सरसङ्कप्पा ते पहीयन्ति । तेसं पहाना अज्झत्तमेव चित्तं सन्तिट्ठति सन्निसीदति एकोदि होति समाधियति । एवं पि, भिक्खवे, भिक्खु कायगतासतिं भावेति ।

"पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु सेय्यथापि पस्सेय्य सरीरं [B. 134] सिवथिकाय छड्डितं काकेहि वा खज्जमानं कुललेहि वा खज्जमानं गिज्झेहि वा खज्जमानं कङ्केहि वा खज्जमानं सुनखेहि वा खज्जमानं ब्यग्घेहि वा खज्जमानं दीपीहि वा खज्जमानं सिङ्गालेहि वा खज्जमानं विविधेहि वा पाणकजातेहि खज्जमानं । सो इममेव कायं उपसंहरति—'अयं पि खो कायो एवंधम्मो एवंभावी एवंअनतीतो' ति । तस्स एवं अप्पमत्तस्स···पे०··· । एवं पि, भिक्खवे, भिक्खु कायगतासतिं भावेति ।

साथी पशु को मारकर चौराहे पर···पूर्ववत्[1]···; इसी तरह भिक्षुओ !···कायगता स्मृति की साधना करता है ।

(५) अशुभानुस्मृति

"और फिर, भिक्षुओ ! कोई भिक्षु जैसे एक दिन···पूर्व किसी मृत शरीर को···पर्ववत्[2]···देखे और उसका अपने शरीर से साम्य लाता हुआ सोचे कि यह शरीर भी एक दिन ऐसा ही हो जायगा। यों विमृश्यकारी उस साधक भिक्षु का चित्त··· कायगता स्मृति की साधना होती है ।

"और फिर, भिक्षुओ ! कोई भिक्षु जैसे कोई कौओं द्वारा खादित···पूर्ववत्[3]··· यों भी कायगता स्मृति की साधना होती है ।

---

१. द्र०—पीछे पृ० १२१ ।

२. द्र०—पीछे पृ० १२१ ।

३. द्र०—पीछे पृ० २२२ ।

"पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु सेय्यथापि पस्सेय्य सरीरं सिवथिकाय छड्डितं अट्ठिकसङ्खलिकं समंसलोहितं न्हारुसम्बन्धं···पे०···अट्ठिकसङ्खलिकं निम्मंसलोहितमक्खितं न्हारुसम्बन्धं···पे०···अट्ठिकसङ्खलिकं अपगतमंसलोहितं न्हारुसम्बन्धं···पे०···अट्ठिकानि अपगतसम्बन्धानि दिसाविदिसाविक्खित्तानि—अञ्ञेन हत्थट्ठिकं अञ्ञेन पादट्ठिकं अञ्ञेन गोप्फकट्ठिकं अञ्ञेन जङ्घट्ठिकं अञ्ञेन ऊरुट्ठिकं अञ्ञेन कटिट्ठिकं अञ्ञेन [N. 155] फासुकट्ठिकं अञ्ञेन पिट्ठिकण्टकं अञ्ञेन खन्धट्ठिकं अञ्ञेन गीवट्ठिकं अञ्ञेन हनुकट्ठिकं अञ्ञेन दन्तट्ठिकं अञ्ञेन सीसकटाहं। सो इममेव कायं उपसंहरति—'अयं पि खो कायो एवंधम्मो एवंभावी एवंअनतीतो' ति। तस्स एवं अप्पमत्तस्स···पे०···। एवं पि, भिक्खवे, भिक्खु कायगतासतिं भावेति।

"पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु सेय्यथापि पस्सेय्य सरीरं सिवथिकाय छड्डितं—अट्ठिकानि सेतानि सङ्खवण्णपटिभागानि···पे०···अट्ठिकानि पुञ्जकितानि तेरोवस्सिकानि···पे०···अट्ठिकानि पूतीनि चुण्णकजातानि। सो इममेव कायं उपसंहरति—'अयं पि खो कायो एवंधम्मो एवंभावी एवंअनतीतो' ति। तस्स एवं अप्पमत्तस्स···पे०···। एवं पि, भिक्खवे, भिक्खु कायगतासतिं भावेति।

२. झानसमापत्तियो

७. "पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु विविच्चेव कामेहि···पे०···पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सो इममेव कायं विवेकजेन पीतिसुखेन अभिसन्देति परिसन्देति परिप्फरेति परिप्फरति, नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स विवेकजेन पीतिसुखेन अप्फुटं होति। सेय्यथापि, भिक्खवे, दक्खो न्हापको [B. 135]

"···अस्थिकङ्काल को इधर-उधर मांस से लिपटी हड्डियों सहित···पूर्ववत्[1]··· यों भी कायगता स्मृति की साधना होती है।

"···पुराने अस्थिकङ्काल की इधर-उधर बिखरी हुई हड्डियों को···पूर्ववत्[2]··· यों भी कायगता स्मृति की साधना होती है।

२. ध्यानसमापत्ति

७. और फिर, भिक्षुओ! कोई भिक्षु कामभोगों से पृथक् रह कर···पूर्ववत्··· प्रथम ध्यान को प्राप्त हो साधना करता है। वह अपनी इस काया को ही विवेकजन्य प्रीतिसुख से···पूर्ववत्···। जैसे भिक्षुओ! कोई चतुर नाई (नहापक=स्नापक, स्नान

१. द्र०—पीछे पृ० १२२।
२. द्र०—पीछे पृ० १२२।

वा न्हापकन्तेवासी वा कंसथाले न्हानीयचुण्णानि आकिरित्वा उदकेन परिप्फोसकं परिप्फोसकं सन्नेय्य, सास्स न्हानीयपिण्डि स्नेहानुगता स्नेहपरेता सन्तरबाहिरा फुटा स्नेहेन न च पग्घरिणी; एवमेव खो, भिक्खवे, भिक्खु, इममेव कायं विवेकजेन पीतिसुखेन अभिसन्देति परिसन्देति परिपूरेति परिप्फरति; नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स विवेकजेन पीतिसुखेन अप्फुटं [R. 93] होति। तस्स एवं अप्पमत्तस्स···पे०···। एवं पि, भिक्खवे, भिक्खु कायगतासतिं भावेति।

[N. 156] "पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु वितक्कविचारानं वूपसमा ···पे०···दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सो इममेव कायं समाधिजेन पीतिसुखेन अभिसन्देति परिसन्देति परिपूरेति परिप्फरति; नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स समाधिजेन पीतिसुखेन अप्फुटं होति। सेय्यथापि, भिक्खवे, उदकरहदो गम्भीरो उब्भिदोदको। तस्स नेवस्स पुरत्थिमाय दिसाय उदकस्स आयमुखं, न पच्छिमाय दिसाय उदकस्स आयमुखं, न उत्तराय दिसाय उदकस्स आयमुखं, न दक्खिणाय दिसाय उदकस्स आयमुखं; देवो च न कालेन कालं सम्मा धारं अनुप्पवेच्छेय्य; अथ खो तम्हा व उदकरहदा सीता वारिधारा उब्भिज्जित्वा तमेव उदकरहदं सीतेन वारिना अभिसन्देय्य परिसन्देय्य परिपूरेय्य परिप्फरेय्य, नास्स किञ्चि सब्बावतो उदकरहदस्स सीतेन वारिना अप्फुटं अस्स; एवमेव खो, भिक्खवे, भिक्खु इममेव कायं समाधिजेन पीतिसुखेन अभिसन्देति परिसन्देति परिपूरेति परिप्फरति, नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स समाधिजेन पीतिसुखेन अप्फुटं होति। तस्स एवं अप्पमत्तस्स···पे०···एवं पि, भिक्खवे, भिक्खु कायगतासतिं भावेति।

कराने वाला) या उसका सहायक काँसे की थाली में स्नानचूर्ण (उबटन) डाल कर उसे पानी से गीला करे, यों वह चूर्ण ऐसा पिण्ड बन जाय कि वह बिखरने या पिघलने न पाये; इसी प्रकार, भिक्षुओ! वह भिक्षु अपनी काया को···कायगता स्मृति की भावना करता है।

"फिर, भिक्षुओ! कोई भिक्षु वितर्क-विचारों के व्युपशम होने से···पूर्ववत्··· द्वितीय ध्यान को प्राप्त कर साधना करता है। वह अपनी काया समाधिजन्य प्रीतिसुख से···। भिक्षुओ! जैसे कोई जल से परिपूर्ण गहरा तालाब (उदकहृद) हो। उसमें जल की निकासी का स्रोत न पूर्व न पश्चिम न उत्तर न दक्षिण--किसी भी दिशा (तरफ) से न हो, वहाँ वृष्टि भी बराबर न होती रहे। तब उसी तालाब से उठी हुई जलबिन्दु उसे नन्हीं-नन्हीं फुहारों से यों अभिस्यन्दित करती रहें कि उसका कोई भी भाग उन फुहारों से बाकी न बचे; इसी तरह, भिक्षुओ! वह भिक्षु··· कायगतास्मृति का भावना करता है।

"पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु पीतिया च विरागा···पे०···ततियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सो इममेव कायं निप्पीतिकेन सुखेन अभिसन्देति परिसन्देति परिपूरेति परिप्फरति, नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स निप्पीतिकेन सुखेन अप्फुटं होति। सेय्यथापि, भिक्खवे, उप्पलिनियं वा पदुमिनियं वा पुण्डरीकिनियं वा अप्पेकच्चानि उप्पलानि वा पदुमानि वा [B. 136] पुण्डरीकानि वा उदके जातानि उदके संवड्ढानि उदकानुग्गतानि [R. 94] अन्तोनिमुग्गपोसीनि, तानि याव चग्गा याव च मूला सीतेन वारिना अभिसन्नानि परिसन्नानि परिपूरानि परिप्फुटानि, नास्स किञ्चि सब्बावतं उप्पलानं वा पदुमानं वा पुण्डरीकानं वा सीतेन वारिना अप्फुटं अस्स; एवमेव खो, भिक्खवे, भिक्खु इममेव कायं निप्पीतिकेन सुखेन अभिसन्देति परिसन्देति परिपूरेति परिप्फरति, नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स निप्पीतिकेन सुखेन अप्फुटं होति। तस्स एवं अप्पमत्तस्स···पे०···। एवं [N. 157] पि, भिक्खवे, भिक्खु कायगतासतिं भावेति।

"पुन च परं, भिक्खवे भिक्खु सुखस्स च पहाना···पे०··· चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सो इममेव कायं परिसुद्धेन चेतसा परियोदातेन फरित्वा निसिन्नो होति; नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स परिसुद्धेन चेतसा परियोदातेन अप्फुटं होति। सेय्यथापि, भिक्खवे, पुरिसो ओदातेन वत्थेन ससीसं पारुपित्वा निसिन्नो अस्स, नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स ओदातेन

"फिर भिक्षुओ! कोई भिक्षु उस प्रीति से भी वैराग्य होने के कारण···पूर्ववत्··· तृतीय ध्यान को प्राप्त कर साधना करता है। वह अपनी काया को प्रीतिरहित सुख से···व्याप्त करता है।···कोई भी भाग प्रीति-रहित सुख से अव्याप्त नहीं रहता। जैसे, भिक्षुओ! कोई नील कमल या रक्त कमल व श्वेत कमल के समूह में कोई कोई उत्पल, पद्म या पुण्डरीक उदक में उत्पन्न, उसी में बढकर बाहर न निकल कर उसी उदक में डूबते हुए ही पुष्ट होते रहते हैं। वे जड़ से चोटी तक शीतल जल से···व्याप्त रहते हैं। उनकी समग्र काया में से कोई भी अङ्ग उदक से अव्याप्त नहीं रहता; इसी तरह, भिक्षुओ! वह साधक भिक्षु अपनी इसी काया को प्रीतिरहित सुख से···परिपूर्ण व व्याप्त रखता है। इस प्रकार उस अप्रमत्त (सावधान) साधक का···। यों वह कायगता स्मृति की भावना करता है।

"और फिर, भिक्षुओ! कोई भिक्षु सुख और दुःख के परित्याग से···पूर्ववत्··· चतुर्थ ध्यान को प्राप्त हो साधना करता है। वह अपनी इसी काया को परिशुद्ध पर्यवेक्षित चित्त से व्याप्त कर साधना करता है। इसका कोई भी भाग (हिस्सा) परिशुद्ध···चित्त से अव्याप्त नहीं रहता। जैसे, भिक्षुओ! कोई पुरुष श्वेत

वत्थेन अप्फुटं अस्स; एवमेव खो, भिक्खवे, भिक्खु इममेव कायं परिसुद्धेन चेतसा परियोदातेन फरित्वा निसिन्नो होति, नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स परिसुद्धेन चेतसा परियोदातेन अप्फुटं होति। तस्स एवं अप्पमत्तस्स आतापिनो पहितत्तस्स विहरतो ये गेहसिता सरसङ्कप्पा ते पहीयन्ति। तेसं पहाना अज्झत्तमेव चित्तं सन्तिट्ठति, सन्निसीदति एकोदि होति समाधियति। एवं पि, भिक्खवे, भिक्खु कायगतासतिं भावेति।

३. तस्स मारो ओतारं न लभति

८. "यस्स कस्सचिं, भिक्खवे, कायगतासति भाविता बहुलीकता, अन्तोगधावास्स कुसला धम्मा ये केचि विज्जाभागिया। सेय्यथापि, भिक्खवे, यस्स कस्सचि महासमुद्दो चेतसा फुटो, अन्तोगधावास्स कुन्नदियो या काचि समुद्दङ्गमा; एवमेव खो, भिक्खवे, यस्स कस्सचि कायगतासति भाविता बहुलीकता, अन्तोगधावास्स कुसला धम्मा ये केचि विज्जाभागिया।

"यस्स कस्सचि, भिक्खवे, कायगतासति अभाविता अबहुलीकता, लभति तस्स मारो ओतारं, लभति तस्स मारो आरम्मणं। सेय्यथापि, भिक्खवे, [B. 137] पुरिसो गरुकं सिलागुळं अल्लमत्तिकापुञ्जे पक्खिपेय्य। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, अपि नु तं गरुकं सिलागुळं अल्लमत्तिकापुञ्जे लभेथ ओतारं" ति? "एवं, भन्ते"।

(अवदात) वस्त्र से अपने (शरीर) को शिर से पैर तक ढक कर बैठा हो···कोई भी भाग उस श्वेत वस्त्र से अनाच्छादित न हो, वैसे ही, भिक्षुओ! भिक्षु इसी काया को परिशुद्ध···चित्त से व्याप्त कर बैठता है। इस प्रकार प्रमादरहित का···। यों वह कायगता स्मृति की साधना करता है।

३. मार ऐसे साधक को साधनाच्युत नहीं कर सकता

८. "भिक्षुओ! जिस (साधक) ने कायगता स्मृति की साधना परिपुष्ट कर ली है, अन्तर्गूढ कर ली हैं, उसने मानो सभी विद्याभागीय कुशल धर्म आत्मसात् कर लिये हैं। जैसे महासमुद्र सभी छोटी नदियों को आत्मसात् कर लेता है, वैसे ही कायगता स्मृति का साधक सभी विद्याभागीय कुशल धर्मों को आत्मसात् कर लेता है।

"परन्तु भिक्षुओ! जिसने कायगता स्मृति की ठीक से साधना नहीं की है, उसमें किसी प्रकार की वृद्धि नहीं की है, ऐसे साधक को मार साधनाच्युत करने का अवसर पा जाता है, वैसा साधक उसे आलम्बन मिल जाता है। भिक्षुओ! जैसे कोई पुरुष किसी भारी शिलाखण्ड को गीली मिट्टी पर फेंके, तो क्या मानते हो, भिक्षुओ, वह भारी शिलाखण्ड उस गीली मिट्टी में नहीं चला जायगा?"

"एवमेव खो, भिक्खवे, यस्स कस्सचि कायगतासति अभा- [R. 95] विता अबहुलीकता, लभति तस्स मारो ओतारं, लभति तस्स मारो आरम्मणं।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, सुक्खं कट्ठं कोळापं; अथ पुरिसो आग- [N. 158] च्छेय्य उत्तरारणिं आदाय—'अग्गिं अभिनिब्बत्तेस्सामि, तेजो पातुकरिस्सामी' ति। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, अपि नु सो पुरिसो अमुं सुक्खं कट्ठं कोळापं उत्तरारणिं आदाय अभिमन्थेन्तो अग्गिं अभिनिब्बत्तेय्य, तेजो पातुकरेय्या" ति? "एवं, भन्ते"।

"एवमेव खो, भिक्खवे, यस्स कस्सचि कायगतासति अभाविता अबहुलीकता, लभति तस्स मारो आतारं, लभति तस्स मारो आरम्मणं।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, उदकमणिको रित्तो तुच्छो आधारे ठपितो; अथ पुरिसो आगच्छेय्य उदकभारं आदाय। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, अपि नु सो पुरिसो लभेथ उदकस्स निक्खेपनं" ति? "एवं, भन्ते"।

"एवमेव खो, भिक्खवे, यस्स कस्सचि कायगतासति अभाविता अबहुलीकता, लभति तस्स मारो ओतारं, लभति तस्स मारो आरम्मणं। (१)

६. यस्स कस्सचि, भिक्खवे, कायगतासति भाविता बहुलीकता, न तस्स लभति मारो ओतारं; न तस्स लभति मारो आरम्मणं।

"हाँ भन्ते! अवश्य चला जायगा।"

"इसी तरह, भिक्षुओ! जिस किसी भिक्षु की कायगता स्मृति ठीक ढंग से भावित नहीं है, वृद्ध नहीं है उसको साधनाच्युत करने के लिये मार अवसर पा ही जाता है, उसे अपना आलम्बन बना ही लेता है।

"भिक्षुओ! जैसे कोई पानी से दूर फेंकी गयी (कोळाप) सूखी लकड़ी हो, वहाँ कोई पुरुष आवे और उत्तरारणि (अग्नि पैदा करने वाली लकड़ी) लेकर यह कहे—'मैं इस सूखी लकड़ी में अग्नि पैदा करूँगा, तेज पैदा करूँगा'। तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! उस जल से दूर फेंकी हुई सुखी लकड़ी को जला सकता है?"

"हाँ, भन्ते! अवश्य जला सकता है।"

"ऐसे ही, भिक्षुओ! कोई जल का मटका (उदकमणिका=घड़ा) खाली हो, रीता हो और घडौंची (आधार) पर रखा हो, वहाँ कोई पुरुष जल लेकर उस खाली घड़े में भरने के लिये आवे, तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! वह पुरुष उस घड़े में जल भर पायगा?"

"हाँ, भन्ते! अवश्य भर पायगा।"

"उसी तरह, भिक्षुओ! जिस किसी भिक्षु ने कायगता···बना ही लेता है।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, पुरिसो लहुकं सुत्तगुळं सब्बसारमये अग्गळफलके पक्खिपेय्य। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, अपि नु सो पुरिसो तं लहुकं सुत्तगुळं सब्बसारमये अग्गळफलके लभेथ ओतारं" ति ? "नो हेतं, भन्ते"।

"एवमेव खो, भिक्खवे, यस्स कस्सचि कायगतासति भाविता बहुलीकता, न तस्स लभति मारो ओतारं, न तस्स लभति मारो आरम्मणं।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, अल्लं कट्ठं सस्नेहं; अथ पुरिसो आगच्छेय्य उत्तरारणिं आदाय—'अग्गिं अभिनिब्बत्तेस्सामि, तेजो पातुकरिस्सामी' ति। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, अपि नु सो पुरिसो अमुं अल्लं कट्ठं [R. 96] सस्नेहं उत्तरारणिं आदाय अभिमन्थेन्तो अग्गिं अभिनिब्बत्तेय्य, तेजो पातु- [N. 159] करेय्या" ति ? "नो हेतं, भन्ते"।

"एवमेव खो, भिक्खवे, यस्स कस्सचि कायगतासति [B. 138] भाविता बहुलीकता, न तस्स लभति मारो ओतारं, न तस्स लभति मारो आरम्मणं। सेय्यथापि, भिक्खवे, उदकमणिको पूरो उदकस्स समतित्तिको

---

९. और उधर, भिक्षुओ ! जिसने कायगता स्मृति की ठीक से साधना कर ली है, उसे वृद्धिङ्गत कर लिया है, उसको साधनाच्युत करने में मार को कोई अवकाश नहीं मिलता, उसे वह (अकुशल कर्मों के लिये) अपना आलंबन नहीं बना पाता।

"जैसे, भिक्षुओ ! कोई पुरुष थोड़ा और कमजोर सा सूत किसी दृढ अर्गला (दरवाजे के किवाड़ों के पीछे लगाया जाने वाला डण्डा) के दण्ड पर फैंककर उसे हटाना चाहे तो क्या वह उस अर्गला-दण्ड को हटा पायगा ?"

"नहीं, भन्ते ! वह ऐसा नहीं कर पायगा।"

"इसी तरह, भिक्षुओ ! जिसकी कायगता स्मृति सुभाषित है, वृद्धिङ्गत है, उसे साधनाच्युत करने का मार को कोई भी तो अवसर नहीं मिल पाता, अपितु उसे अकुशल कर्म करने को बाध्य करने का आलंबन भी नहीं बना सकता।

"भिक्षुओ ! जैसे कोई गीली हरी लकड़ी जल पर फैंकी हुई हो, तब कोई पुरुष वहाँ अग्नि व प्रकाश पैदा करने के लिये उत्तरारणि लेकर आवे। तो क्या मानते हो, भिक्षुओ ! क्या वह उस गीली लकड़ी को उत्तरारणि से रगड़ कर अग्नि पैदा कर सकेगा ?"

"नहीं, भन्ते ! वह वैसा नहीं कर सकेगा।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओ ! जिसने कायगता स्मृति की ठीक से…।

"भिक्षुओ ! जैसे कोई जल से भरा घड़ा…मार उसे अपना आलम्बन नहीं बना सकता।

काकपेय्यो आधारे ठपितो; अथ पुरिसो आगच्छेय्य उदकभारं आदाय। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, अपि नु सो पुरिसो लभेथ उदकस्स निक्खेपनं'' ति ?

"नो हेतं, भन्ते"।

"एवमेव खो, भिक्खवे, यस्स कस्सचि कायगतासति भाविता बहुलीकता, न तस्स लभति मारो ओतारं, न तस्स लभति मारो आरम्मणं।

४. अभिञ्ञासच्छिकिरिया

१०. "यस्स कस्सचि, भिक्खवे, कायगतासति भाविता बहुलीकता, सो यस्स यस्स अभिञ्ञासच्छिकरणीयस्स धम्मस्स चित्तं अभिनिन्नामेति अभिञ्ञासच्छिकिरियाय, तत्र तत्रेव सक्खिभब्बतं पापुणाति सति सतिआयतने। सेय्यथापि, भिक्खवे, उदकमणिको पूरो उदकस्स समतित्तिको काकपेय्यो आधारे ठपितो। तमेनं बलवा पुरिसो यतो यतो आविञ्छेय्य, आगच्छेय्य उदकं'' ति ? "एवं, भन्ते"।

"एवमेव खो, भिक्खवे, यस्स कस्सचि कायगतासति भाविता बहुलीकता सो यस्स यस्स अभिञ्ञासच्छिकरणीयस्स धम्मस्स चित्तं अभिनिन्नामेति अभिञ्ञासच्छिकिरियाय, तत्र तत्रेव सक्खिभब्बतं पापुणाति सति सति-आयतने। सेय्यथापि, भिक्खवे, समे भूमिभागे चतुरस्सा पोक्खरणि अस्स

"जैसे, भिक्षुओ ! कोई ऐसा जलपूर्ण घट, जिसमें कौआ भी अपनी चोंच डालकर जल पी सके, घडौंची पर रखा हो; वहाँ कोई''' पूर्ववत्''' मार उसे आलम्बन नहीं बना सकता।

४. अभिज्ञासाक्षात्कार

१०. "भिक्षुओ ! जिस साधक को कायागता स्मृति ठीक से भावित व वृद्धिङ्गत हो चुकी है वह अभिज्ञा से साक्षात्कारणीय जिस-जिस धर्म में अभिज्ञा से साक्षात्करणहेतु चित्त को झुकाता है अस्मृत्यायतन (स्थान या अवसर) होने पर उसे साक्षात्कार कर ही लेता है।

"जैसे, भिक्षुओ ! कोई जल का घड़ा जल से ऐसा भरा हो कि कौआ भी उससे जल पी सके, यदि कोई आदमी उसे जिस किसी तरफ से घुमा कर टेढा करे तो उसमें से जल गिरेगा कि नहीं ?"

"हाँ, भन्ते ! अवश्य गिरेगा।"

"इसी तरह भिक्षुओ ! जिसने कायगतास्मृति ठीक से''' उसे साक्षात्कार कर लेता है। "जैसे, भिक्षुओ ! समतल भूमिप्रदेश में कोई चारों ओर बाँध बँधी चतुष्कोण पुष्करिणी जल से किनारों तक ऐसी भरी हो कि कौए भी उसका जल पी सकें,

आळिबन्धा पूरा उदकस्स समतित्तिका काकपेय्या। तमेनं बलवा पुरिसो [R. 97] यतो यतो आळिं मुञ्चेय्य आगच्छेय्य उदकं" ति ? "एवं, भन्ते"।

[N. 160] "एवमेव खो, भिक्खवे, यस्स कस्सचि कायगतासति भाविता बहुलीकता, सो यस्स यस्स अभिञ्ञासच्छिकरणीयस्स धम्मस्स चित्तं अभिनिन्नामेति अभिञ्ञासच्छिकिरियाय, तत्र तत्रेव सक्खिभब्बतं पापुणाति सति सतिआयतने। सेय्यथापि, भिक्खवे, सुभूमियं चतुमहापथे आजञ्ञरथो युत्तो अस्स ठितो ओधस्तपतोदो; तमेनं दक्खो योग्गाचरियो [B. 139] अस्सदम्मसारथि अभिरुहित्वा वामेन हत्थेन रस्मियो गहेत्वा दक्खिणेन हत्थेन पतोदं गहेत्वा येनिच्छकं यदिच्छकं सारेय्या पि पच्चासारेय्या पि; एवमेव खो, भिक्खवे, यस्स कस्सचि कायगतासति भाविता भाविता बहुलीकता, सो यस्स यस्स अभिञ्ञासच्छिरणीयस्स धम्मस्स चित्तं अभिनिन्नामेति अभिञ्ञासच्छिकिरियाय, तत्र तत्रेव सक्खिभब्बतं पापुणाति सति सतिआयतने।

५. कायगताय सतिया दसानिसंसा

११. "कायगताय, भिक्खवे, सतिया आसेविताय भाविताय बहुलीकताय यानीकताय वत्थुकताय अनुट्ठिताय परिचिताय सुसमारद्धाय दसानिसंसा पाटिकङ्खा।

उसका कोई भी बलवान् पुरुष, किधर जिधर से भी किनारा तोड़कर जल निकालना चाहे तो निकाल पायगा कि नहीं ?"

"हाँ, भन्ते ! अवश्य निकाल पायगा।"

"इसी तरह, भिक्षुओ ! जिसने कायगता स्मृति ठीक से…उसे साक्षात्कार कर ही लेता है।

"जैसे, भिक्षुओ ! किसी समतल भूमि (सुभूमि) वाले चौराहे पर अच्छी जाति के घोड़ों से जुता कोई रथ खड़ा हो, जिस पर चाबुक टँगे हों; तब कोई चतुर, अश्वचालन में निपुण, युग्याचार्य, सारथी (कोचवान) उस पर चढकर बाँये हाथ से घोड़ों की रस्सियाँ (लगाम) पकड़ कर और दाँये हाथ में चाबुक (प्रतोद) लेकर जिधर चाहे, जैसा चाहे उस रथ को घुमाये, फिराये; इसी तरह, भिक्षुओ ! जिस किसी योगाचार ने कायगतास्मृति भावित व वृद्धिङ्गत…उसे साक्षात् कर ही लेता है।

५. कायगता स्मृति के दस गुण

११. भिक्षुओ ! जिस साधक ने अपनी कायगता स्मृति स्मृति से भावित, वृद्धिङ्गत, यानीकृत (इसकी तरफ काफी दूर तक पहुँचा हुआ), वस्तूकृत (अधीन-

"अरतिरतिसहो होति, न च तं अरति सहति, उप्पन्नं अरतिं अभिभुय्य विहरति। (१)

"भयभेरवसहो होति, न च तं भयभेरवं सहति, उप्पन्नं भयभेरवं अभिभुय्य विहरति। (२)

"खमो होति सीतस्स उण्हस्स जिघच्छाय पिपासाय डंसमकसवातातप-सरीसपसम्फस्सानं दुरुत्तानं दुरागतानं वचनपथानं, उप्पन्नानं सारीरिकानं वेदनानं दुक्खानं तिब्बानं खरानं कटुकानं असातानं अमनापानं पाणहरानं अधिवासकजातिको होति। (३)

"चतुन्नं झानानं आभिचेतसिकानं दिट्ठधम्मसुखविहारानं [R. 98] निकामलाभी होति अकिच्छलाभी अकसिरलाभी। (४)

"सो अनेकविहितं इद्धिविधं पच्चनुभोति। एको पि हुत्वा [N. 161] बहुधा होति, बहुधा पि हुत्वा एको होति, आविभावं···पे०···याव ब्रह्मलोका पि कायेन वसं वत्तेति। (५)

"दिब्बाय सोतधातुया विसुद्धाय अतिक्कन्तमानुसिकाय उभो सद्दे सुणाति—दिब्बे च मानुसे च, ये दूरे सन्तिके च···पे०···। (६)

अनुष्ठित, परिचित व सुसमारब्ध कर लिया है उसको दश लाभ होते हैं, उसकी ये दश मनचाही बातें पूर्ण हो जाती हैं—

१. "वह उदासी को सहन करने वाला (अरतिरतिसह) होता है, उसे उदासी (-अरति) परास्त नहीं कर पाती और वह उत्पन्न अरति को निगृहीत कर साधना में तत्पर रहता है।

२. "वह अत्यधिक भय को भी सहन करनेवाला होता है, कैसा भी भय उसे परास्त नहीं कर पाता। और उत्पन्न (उपस्थित) भीषण भय को निगृहीत कर अपनी साधना में ही लगा रहता है।

३. वह सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, मच्छर-मक्खी, आँधी-लू, साँप-बिच्छू आदि के के स्पर्श (आघात), दुरुक्त (कटु) एवं दुरागत (मिथ्याप्रयुक्त वचन, एवं ऐसी ही उत्पन्न दुःखमय, तीव्र, कटु अनुभव वाली, अतएव अप्रिय प्राणहर शारीरिक वेदनाओं को सहन करने की क्षमता वाला हो जाता है।

४. "वह इसी जन्म में, सुखमय साधना के अनुकूल चारों चैतसिक ध्यानों का विना किसी कठिनाई के पूर्णतया प्राप्त करने वाला हो जाता है।

५. "वह अनेक प्रकार की ऋद्धियों का अनुभव करता है—एक होकर बहुत होता है···पूर्ववत्···।

६. "वह दिव्य श्रोत्र···पूर्ववत्···।

"परसत्तानं परपुग्गलानं चेतसा चेतो परिच्च पजानाति। सरागं चित्तं 'सरागं चित्तं' ति पजानाति, वीतरागं वा चित्तं…पे०…सदोसं वा चित्तं …वीतदोसं वा चित्तं…समोहं वा चित्तं…वीतमोहं वा चित्तं…सङ्खित्तं वा चित्तं…विक्खित्तं वा चित्तं…महग्गतं वा चित्तं…अमहग्गतं वा चित्तं…स-उत्तरं वा चित्तं…अनुत्तरं वा चित्त…समाहितं वा चित्तं…असमाहितं वा चित्तं…विमुत्तं वा चित्तं…अविमुत्तं वा चित्तं 'अविमुत्तं चित्तं' ति पजानाति। (७)

"सो अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति, सेय्यथीदं—एकं पि जातिं द्वे पि जातियो…पे०…इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं [R. 99] पुब्बेनिवासं अनुस्सरति। (८)

"दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सति [B. 140] चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे, सुगते दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानाति। (९)

"आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति। (१०)

"कायगताय, भिक्खवे, सतिया आसेविताय भाविताय बहुलीकताय यानीकताय वत्थुकताय अनुट्ठिताय परिचिताय सुसमारद्धाय इमे दसानिसंसा पाटिकङ्खा" ति।

१२. इदमवोच भगवा। अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति।

●

---

७. "वह दूसरे प्राणियों तथा मनुष्यों के चित्त को स्वचित्त से जान लेता है…पूर्ववत्…।

८. "वह अपने अनेक प्रकार के पूर्वजन्मों का स्मरण करता है…पूर्ववत्…।

९. "वह दिव्यचक्षु…पूर्ववत्…।

१०. "वह आस्रवों के क्षय द्वारा अनास्रवा चेतोविमुक्ति…पूर्ववत्…।

"भिक्षुओ! जिस साधक ने अपनी कायगता स्मृति को स्मृति से भावित…दश मनचाही बातें पूर्ण हो जाती हैं।"

१२- भगवान् ने यह उपदेश किया। (इस उपदेश से) सन्तुष्ट होकर भिक्षुओं भगवान् के उपदेश (भाषित) का अभिनन्दन किया॥

कायगतासतिसुत्त समाप्त॥

●

२०. सङ्खारुपपत्तिसुत्तं

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति [N. 162] जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि— "भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—"सङ्खारुपपत्तिं वो, भिक्खवे, देसेस्सामि, तं सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; भासिस्सामी" ति। "एवं, भन्ते" ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

१. सङ्खारुपपत्तिया मग्गो

२. "इध, भिक्खवे, भिक्खु सद्धाय समन्नागतो होति, सीलेन समन्नागतो होति, सुतेन समन्नागतो होति, चागेन समन्नागतो होति, पञ्ञाय समन्नागतो होति। तस्स एवं होति—'अहो वताहं कायस्स भेदा परं मरणा खत्तियमहासालानं सहब्यतं उपपज्जेय्यं' ति। सो तं चित्तं दहति, [R. 100] तं चित्तं अधिट्ठाति, तं चित्तं भावेति। तस्स ते सङ्खारा च [B. 141] विहारा च एवं भाविता एवं बहुलीकता तत्रुपपत्तिया संवत्तन्ति। अयं, भिक्खवे, मग्गो अयं पटिपदा तत्रुपपत्तिया संवत्तति।

---

२०. संस्कारोपपत्तिसूत्र

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्तीस्थत, अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ, भगवान् ने भिक्षुओं को (देशनाहेतु) "भिक्षुओ" सम्बोधन कर अपने पास बुलाया और कहा—"भिक्षुओ! मैं तुम्हें आज संस्कारोत्पत्ति के विषय में कुछ बताऊँगा, तुम उसे ध्यानपूर्वक सुनो, और अपने मन में बैठा लो, मैं बताता हूँ।" "ठीक है भन्ते!"—कह कर भिक्षुओं ने भगवान् को प्रत्युत्तर दिया। भगवान् बोले—

पुण्यसंस्कारों का विपाक

२. "यहाँ, भिक्षुओ! कोई साधक भिक्षु श्रद्धा से युक्त (समन्वागत) हो, शील···श्रुत···त्याग···प्रज्ञा से युक्त हो और उसके चित्त में यह सङ्कल्प हो—"अरे! क्यों न मैं अपने इस देहपात के बाद, मरणानन्तर, किसी क्षत्रिय महासार के (उच्च) कुल में उत्पन्न होऊँ!" वह उस चित्त (–सङ्कल्प) को दृढ़ करता है, उस चित्त का अधिष्ठान करता है, उस चित्त की भावना करता है। उसके वे संस्कार, वे साधनाएँ इस तरह भावित व बहुलीकृत हों जैसी कि उस लोकान्तर में उत्पत्ति के लिये आवश्यक होती हैं। भिक्षुओ! यह मार्ग है, यह उपाय है उस लोकान्तर में उपपत्ति के लिये।

३. "पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु सद्धाय समन्नागतो होति, सीलेन समन्नागतो होति, सुतेन समन्नागतो होति, चागेन समन्नागतो होति, पञ्ञाय समन्नागतो होति। तस्स एवं होति—'अहो वताहं कायस्स भेदा परं मरणा ब्राह्मणमहासालानं...पे०...गहपतिमहासालानं सहब्यतं उपपज्जेय्यं' ति। सो तं चित्तं दहति, तं चित्तं अधिट्ठाति, तं चित्तं भावेति। तस्स ते सङ्खारा च विहारा च एवं भाविता एवं बहुलीकता तत्रुपपत्तिया संवत्तन्ति। अयं, भिक्खवे, मग्गो अयं पटिपदा तत्रुपपत्तिया संवत्तति।

४. "पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु सद्धाय समन्नागतो होति, सीलेन समन्नागतो होति, सुतेन समन्नागतो होति, चागेन समन्नागतो होति, [N. 163] पञ्ञाय समन्नागतो होति। तस्स सुतं होति--'चातुमहाराजिका देवा दीघायुका वण्णवन्तो सुखबहुला' ति। तस्स एवं होति—'अहो वताहं कायस्स भेदा परं मरणा चातुमहाराजिकानं देवानं सहब्यतं उपपज्जेय्यं' ति। सो तं चित्तं दहति, तं चित्तं अधिट्ठाति, तं चित्तं भावेति। तस्स ते सङ्खारा च विहारा च एवं भाविता एवं बहुलीकता तत्रुपपत्तिया संवत्तन्ति। अयं, भिक्खवे, मग्गो अयं पटिपदा तत्रुपपत्तिया संवत्तति।

५. "पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु सद्धाय समन्नागतो होति, सीलेन समन्नागतो होति, सुतेन समन्नागतो होति, चागेन समन्नागतो होति, पञ्ञाय समन्नागतो होति। तस्स सुतं होति—'तावतिंसा देवा...पे०...यामा देवा...तुसिता देवा...निम्मानरती देवा...परनिम्मितवसवत्ती देवा दीघायुका वण्णवन्तो सुखबहुला' ति। तस्स एवं होति—'अहो वताहं कायस्स भेदा परं मरणा परनिम्मितवसवत्तीनं देवानं सहब्यतं उपपज्जेय्यं' ति सो तं चित्तं [B. 142] दहति, तं चित्तं अधिट्ठाति, तं चित्तं भावेति। तस्स ते सङ्खारा

---

३. "फिर, भिक्षुओ ! कोई भिक्षु श्रद्धा से युक्त...उसे यह सङ्कल्प हो—"अरे ! क्यों न मैं अपने इस देहपात के बाद ब्राह्मण महासार...गृहपति महासार के कुल में उत्पन्न होऊँ !' वह अपने इस चित्त-संकल्प को...। यह उपाय है उस लोकान्तर में उपपत्ति के लिये।

४. "फिर, भिक्षुओ ! कोई भिक्षु श्रद्धा से युक्त...प्रज्ञा से युक्त होता है। उसने परम्परया सुन रखा होता है कि चातुर्महाराजिक देव दीर्घायु, सुन्दर व अत्यधिक सुखसम्पन्न होते हैं। तब कभी उसके चित्त में यह सङ्कल्प हो कि क्यों न मैं चातुर्महाराजिक देवों में...।

५. ...त्रायस्त्रिंश देवों में...। याम नामक देवों में...तुषित देवों में...निर्माणरति देवों में...परनिर्मितवशवर्ती देवों में...। ...।

च विहारा च एवं भाविता एवं बहुलीकता तत्रुपपत्तिया संवत्तन्ति। अयं, भिक्खवे, मग्गो अयं पटिपदा तत्रुपपत्तिया संवत्तति।

६. "पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु सद्धाय समन्नागतो होति, [R. 101] सीलेन समन्नागतो होति, सुतेन समन्नागतो होति, चागेन समन्नागतो होति, पञ्ञाय समन्नागतो होति। तस्स सुतं होति—'सहस्सी ब्रह्मा दीघायुको वण्णवा सुखबहुलो' ति। सहस्सी, भिक्खवे, ब्रह्मा सहस्सिलोकधातुं फरित्वा अधिमुच्चित्वा विहरति। ये पि तत्थ सत्ता उपपन्ना ते पि फरित्वा अधिमुच्चित्वा विहरति। सेय्यथापि, भिक्खवे, चक्खुमा पुरिसो एकं आमण्डं हत्थे करित्वा पच्चवेक्खेय्य; एवमेव खो, भिक्खवे, सहस्सी ब्रह्मा सहस्सिलोकधातुं फरित्वा अधिमुच्चित्वा विहरति। ये पि तत्थ सत्ता उपपन्ना ते पि फरित्वा अधिमुच्चित्वा विहरति। तस्स एवं होति—'अहो वताहं कायस्स भेदा परं मरणा सहस्सस्स ब्रह्मुनो सहब्यतं उपपज्जेय्यं' ति सो तं चित्तं दहति, तं चित्तं अधिट्ठाति, तं चित्तं भावेति। तस्स ते सङ्खारा च विहारा च एवं भाविता एवं बहुलीकता तत्रुपपत्तिया संवत्तन्ति। अयं, भिक्खवे, मग्गो [N. 164] अयं पटिपदा तत्रुपपत्तिया संवत्तति।

७. "पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु सद्धाय समन्नागतो होति, सीलेन समन्नागतो होति, सुतेन…चागेन…पञ्ञाय समन्नागतो होति। तस्स सुतं होति—'द्विसहस्सी ब्रह्मा…पे०…तिसहस्सी ब्रह्मा…चतुसहस्सी ब्रह्मा…पञ्चसहस्सी ब्रह्मा दीघायुको वण्णवा सुखबहुलो' ति। पञ्चसहस्सी, भिक्खवे, ब्रह्मा पञ्चसहस्सिलोकधातुं फरित्वा अधिमुच्चित्वा विहरति। ये पि तत्थ सत्ता उपपन्ना ते पि फरित्वा अधिमुच्चित्वा विहरति। सेय्यथापि, भिक्खवे, चक्खुमा पुरिसो पञ्च आमण्डानि हत्थे करित्वा पच्चवेक्खेय्य; एवमेव खो,

---

६. …साहस्र ब्रह्मा दीर्घायु सुन्दर व अत्यन्त सुखसम्पन्न होते हैं। भिक्षुओ! यह साहस्र ब्रह्मा साहस्री लोकधातु (एक हजार ब्रह्माण्ड) को स्फरण (व्याप्त) कर परिग्रहण कर उसमें निवास करता है। और अन्य प्राणी भी, जो उस साहस्र लोकधातु में उत्पन्न होते हैं वे भी, उस ब्रह्मा की तरह ही, वहाँ सुखपूर्वक निवास करते हैं। भिक्षुओ! जैसे कोई सही नजर वाला व्यक्ति किसी आँवला (आमण्ड—आमलक) फल को अपनी हथेली पर रख कर उसका चारों ओर से प्रत्यवेक्षण कर सकता है, उसी प्रकार वह साहस्री ब्रह्मा तथा उस साहस्री लोकधातु में उत्पन्न अन्य प्राणी चतुर्मुख प्रत्यवेक्षण करते हुए वहाँ निवास करते हैं। अतः साधक को यह सङ्कल्प 'क्यों न मैं इस देहपात के बाद साहस्री ब्रह्मा के लोक में उत्पन्न होऊँ!'…यह उपाय है उस लोकान्तर में उपपत्ति के लिये।

भिक्खवे, पञ्चसहस्सी ब्रह्मा पञ्चसहस्सिलोकधातुं फरित्वा अधिमुच्चित्वा विहरति। ये पि तत्थ सत्ता उपपन्ना ते पि फरित्वा अधिमुच्चित्वा विहरति। तस्स एवं होति—'अहो वताहं कायस्स भेदा परं मरणा पञ्चसहस्सस्स ब्रह्मुनो सहब्यतं उपपज्जेय्यं' ति। सो तं चित्तं दहति, तं चित्तं अधिट्ठाति, [B. 143] तं चित्तं भावेति। तस्स ते सङ्खारा च विहारा च एवं भाविता एवं बहुलीकता तत्रुपपत्तिया संवत्तन्ति। अयं, भिक्खवे, मग्गो अयं पटिपदा तत्रुपपत्तिया संवत्तति।

८. "पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु सद्धाय समन्नागतो होति, सीलेन समन्नागतो होति, सुतेन...चागेन...पञ्ञाय समन्नागतो होति। तस्स सुतं होति—'दससहस्सी ब्रह्मा दीघायुको वण्णवा सुखबहुलो' ति। दससहस्सी, [R. 102] भिक्खवे, ब्रह्मा दससहस्सिलोकधातुं फरित्वा अधिमुच्चित्वा विहरति। ये पि तत्थ सत्ता उपपन्ना ते पि फरित्वा अधिमुच्चित्वा विहरति। सेय्यथापि, भिक्खवे, मणि वेळुरियो सुभो जातिमा अट्ठंसो सुपरिकम्मकतो पण्डुकम्बले निक्खित्तो भासते च तपते च विरोचति च; एवमेव खो, भिक्खवे, दससहस्सी ब्रह्मा दससहस्सिलोकधातुं फरित्वा अधिमुच्चित्वा विहरति। ये पि तत्थ सत्ता उपपन्ना ते पि फरित्वा अधिमुच्चित्वा विहरति। तस्स एवं होति—'अहो वताहं कायस्स भेदा परं मरणा दससहस्सस्स ब्रह्मुनो सहब्यतं [N. 165] उपपज्जेय्यं' ति। सो तं चित्तं दहति, तं चित्तं अधिट्ठाति, तं चित्तं भावेति। तस्स ते सङ्खारा च विहारा च एवं भाविता एवं बहुलीकता तत्रुपपत्तिया संवत्तन्ति। अयं, भिक्खवे, मग्गो अयं पटिपदा तत्रुपपत्तिया संवत्तति।

९. "पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु सद्धाय समन्नागतो होति, सीलेन... सुतेन...चागेन...पञ्ञाय समन्नागतो होति। तस्स सुतं होति—'सतसहस्सी ब्रह्मा दीघायुको वण्णवा सुखबहुलो' ति। सतसहस्सी, भिक्खवे, ब्रह्मा सतसह-

---

७. फिर, भिक्षुओ! ...द्विसाहस्र ब्रह्मा...त्रिसाहस्र ब्रह्मा...चतुःसाहस्र ब्रह्मा... पञ्च साहस्र ब्रह्मा...यह उपाय है...।"

८. "फिर, भिक्षुओ!...दश साहस्र ब्रह्मा...। जैसे, भिक्षुओ! अच्छी जाति वाली शुभफलप्रदात्री, अठकोणी, पीले कौषेय वस्त्र से ढकी हुई कोई वैदूर्य मणि (हीरा) प्रभासित होती है, चमकती है, चारों ओर अपनी आभा बिखेरती है; इसी प्रकार वह दश साहस्री ब्रह्मा...उसमें उत्पन्न हुए प्राणी...।

९. "फिर, भिक्षुओ!...शतसाहस्र ब्रह्मा...। जैसे भिक्षुओ! कसौटी पर कसा हुआ शुद्ध सोना (जम्बूनद) किसी चतुर सुनार द्वारा भट्ठी (उल्कामुख) में

स्सिलोकधातुं फरित्वा अधिमुच्चित्वा विहरति। ये पि तत्थ सत्ता उपपन्ना ते पि फरित्वा अधिमुच्चित्वा विहरति। सेय्यथापि, भिक्खवे, निक्खं जम्बोनदं दक्खकम्मारपुत्तउक्कामुखसुकुसलसम्पहट्ठं पण्डुकम्बले निक्खित्तं भासते च तपते च विरोचति च; एवमेव खो, भिक्खवे, सतसहस्सी ब्रह्मा सतसहस्सिलोकधातुं फरित्वा अधिमुच्चित्वा विहरति। ये पि तत्थ सत्ता उपपन्ना ते पि फरित्वा अधिमुच्चित्वा विहरति। तस्स एवं होति—'अहो वताहं कायस्स भेदा परं मरणा सतसहस्सस्स ब्रह्मुनो सहब्यतं [B. 144] उपपज्जेय्यं' ति। सो तं चित्तं दहति, तं चित्तं अधिट्ठाति, तं चित्तं भावेति। तस्स ते सङ्खारा च विहारा च एवं भाविता एवं बहुलीकता तत्रुपपत्तिया संवत्तन्ति। अयं, भिक्खवे, मग्गो अयं पटिपदा तत्रुपपत्तिया संवत्तति।

१०. "पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु सद्धाय समन्नागतो होति, सीलेन··· सुतेन···चागेन···पञ्ञाय समन्नागतो होति। तस्स सुतं होति—'आभा देवा···पे०···परित्ताभा देवा···अप्पमाणाभा देवा···आभस्सरा देवा दीघायुका वण्णवन्तो सुखबहुला' ति। तस्स एवं होति—'अहो वताहं कायस्स भेदा परं मरणा आभस्सरानं देवानं सहब्यतं उपपज्जेय्यं' ति। सो तं चित्तं दहति, तं चित्तं अधिट्ठाति, तं चित्तं भावेति। तस्स ते सङ्खारा च विहारा च एवं भाविता एवं बहुलीकता तत्रुपपत्तिया संवत्तन्ति। अयं, भिक्खवे, मग्गो अयं पटिपदा तत्रुपपत्तिया संवत्तति।

११. "पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु सद्धाय समन्नागतो होति, सीलेन···सुतेन···चागेन···पञ्ञाय समन्नागतो होति। तस्स सुतं होति—'परित्तसुभा देवा···पे०···अप्पमाणसुभा देवा···सुभकिण्हा देवा दीघायुका वण्णवन्तो सुखबहुला' ति। तस्स एवं होति—'अहो वताहं [N. 166] कायस्स भेदा परं मरणा सुभकिण्हानं देवानं सहब्यतं उपपज्जेय्यं' ति। सो तं चित्तं दहति, तं चित्तं अधिट्ठाति, तं चित्तं भावेति। तस्स ते सङ्खारा च विहारा च एवं भाविता एवं बहुलीकता तत्रुपपत्तिया संवत्तन्ति। अयं, भिक्खवे, मग्गो अयं पटिपदा तत्रुपपत्तिया संवत्तति।

भली प्रकार तपा कर लाल कौषेय वस्त्र में रखा हुआ प्रभासित होता है, चमकता है, चारों ओर अपनी आभा बिखेरता है; वैसे ही वह शतसाहस्र ब्रह्मा···उसमें उत्पन्न हुए प्राणी···।

१०. फिर, भिक्षुओ !···आभदेव···परित्राभ देव···अप्रमाणाभ देव···आभास्वर देव···।

११. परित्रशुभ देव··· अप्रमाणशुभ देव···शुभकृत्स्न देव··· ।

१२. "पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु सद्धाय समन्नागतो होति, सीलेन··· [R. 103] सुतेन···चागेन···पञ्ञाय समन्नागतो होति—'वेहप्फला देवा... पे०···अविहा देवा···अतप्पा देवा···सुदस्सा देवा···सुदस्सी देवा···अकनिट्ठा देवा दीघायुका वण्णवन्तो सुखबहुला' ति। तस्स एवं होति—'अहो वताहं कायस्स भेदा परं मरणा अकनिट्ठानं देवानं सहब्यतं उपपज्जेयं' ति। सो तं चित्तं दहति, तं चित्तं अधिट्ठाति, तं चित्तं भावेति। तस्स ते सङ्खारा च [B. 145] विहारा च एवं भाविता एवं बहुलीकता तत्रुपपत्तिया संवत्तन्ति। अयं, भिक्खवे, मग्गो अयं पटिपदा तत्रुपपत्तिया संवत्तति।

१३. "पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु सद्धाय समन्नागतो होति, सीलेन··· सुतेन···चागेन···पञ्ञाय समन्नागतो होति। तस्स सुतं होति—'आकासानञ्चायतनूपगा देवा दीघायुका चिरट्ठितिका सुखबहुला' ति। तस्स एवं होति—'अहो वताहं कायस्स भेदा परं मरणा आकासानञ्चायतनूपगानं देवानं सहब्यतं उपपज्जेयं' ति। सो तं चित्तं दहति, तं चित्तं अधिट्ठाति, तं चित्तं भावेति। तस्स ते सङ्खारा च विहारा च एवं भाविता एवं बहुलीकता तत्रुपपत्तिया संवत्तन्ति। अयं, भिक्खवे, मग्गो अयं पटिपदा तत्रुपपत्तिया संवत्तति।

१४. "पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु सद्धाय समन्नागतो होति, सीलेन··· सुतेन···चागेन···पञ्ञाय समन्नागतो होति। तस्स सुतं होति—'विञ्ञाणञ्चायतनूपगा देवा दीघायुका चिरट्ठितिका सुखबहुला' ति। तस्स एवं होति—'अहो वताहं कायस्स भेदा परं मरणा विञ्ञाणञ्चायतनूपगानं देवानं सहब्यतं उपपज्जेय्यं' ति। सो तं चित्तं दहति, तं चित्तं अधिट्ठाति, तं चित्तं भावेति। तस्स ते सङ्खारा च विहारा च एवं भाविता एवं बहुलीकता तत्रुपपत्तिया संवत्तन्ति। अयं, भिक्खवे, मग्गो अयं पटिपदा तत्रुपपत्तिया संवत्तति।

[N. 167] १५. "पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु सद्धाय समन्नागतो होति, सीलेन···सुतेन···चागेन···पञ्ञाय समन्नागतो होति। तस्स सुतं होति—'आकिञ्चञ्ञायतनूपगा देवा···पे०···नेवसञ्ञानासञ्ञायतनूपगा देवा दीघायुका चिरट्ठितिका सुखबहुला' ति। तस्स एवं होति—'अहो वताहं

---

१२. ···बृहत्फल देव···अविह देव···अतप्प देव···सुदर्श देव···सुदर्शी देव अकनिष्ठ देव···।

१३. फिर, भिक्षुओ !···आकाशानन्त्यायतन-प्राप्त देव···।

१४. ··· ··· ···विज्ञानानन्त्यायन-प्राप्त देव···।

कायस्स भेदा परं मरणा नेवसञ्ञानासञ्ञायतनूपगानं देवानं सहब्यतं उपपज्जेय्यं' ति। सो तं चित्तं दहति, तं चित्तं अधिट्ठाति, तं चित्तं भावेति। तस्स ते सङ्खारा च विहारा च एवं भाविता एवं बहुलीकता तत्रुपपत्तिया संवत्तन्ति। अयं, भिक्खवे, मग्गो अयं पटिपदा तत्रुपपत्तिया संवत्तति।

१६. "पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु सद्धाय समन्नागतो होति, सीलेन··· सुतेन···चागेन···पञ्ञाय समन्नागतो होति। तस्स एवं होति – [B. 146] 'अहो वताहं आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरेय्यं' ति। सो आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति। अयं, भिक्खवे, भिक्खु न कत्थचि उपपज्जती" ति।

१७. इदमवोच भगवा अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति॥

अनुपदवग्गो निट्ठितो दुतियो॥

तस्सुद्दानं

अनुपद-सोधन-पोरिसधम्मो, सेवितब्ब-बहुधातु-विभत्ति।
बुद्धस्स कित्तिनाम चत्तारीसेन, आनापानो कायगतो उपपत्ति॥

---

१५. "···आकिञ्चन्यायतन प्राप्त देव···नैवसंज्ञानासंज्ञायतन प्राप्त देव···।

१६. "और फिर, भिक्षुओ! कोई भिक्षु श्रद्धा से युक्त होता है, शील से··· त्याग से···प्रज्ञा से युक्त होता है। उसके मन में यह सङ्कल्प हो—'मैं इसी जन्म में आश्रवों के क्षय से अनाश्रवचेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को स्वयं जानकर, साक्षात् कर, उपसम्पन्न हो अपनी साधना बढाऊँ। ऐसे सङ्कल्प वाला भिक्षु, भिक्षुओ! कहीं जन्मता या मरता नहीं है। (वह इसी जन्म में उसका अन्तिम फल (निर्वाण) पा लेता है")॥

१७. भगवान् ने यह कहा। (सुनकर) सन्तुष्ट हुए भिक्षुओं ने भगवान् के कहे का अभिनन्दन किया॥

सङ्खारुप्पतिसुत्त समाप्त॥

अनुपदवग्ग समाप्त॥

उसका उदान

इस (अनुपदवर्ग) में इन दस सूत्रों का व्याख्यान है—१. अनुपद, २. छह विशोधन, ३. सत्पुरुष, ४. सेवितव्यासेवितव्य, ५. बहुधातुक, ६. ऋषिगिलि, ७. महाचत्वारिंशत्क, ८. आनापानस्मृति, ९. कायागतास्मृति एवं १०. संस्कारोत्पत्तिसूत्र॥

२१. चूलसुञ्ञतसुत्तं

१. भगवा सुञ्ञताविहारेन विहरति

१. [N. 168, B. 147, R. 104] एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति पुब्बारामे मिगारमातुपासादे। अथ खो आयस्मा आनन्दो सायण्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—"एकमिदं, भन्ते, समयं भगवा सक्केसु विहरति नगरकं नाम सक्यानं निगमो। तत्थ मे, भन्ते, भगवतो सम्मुखा सुतं, सम्मुख पटिग्गहितं—'सुञ्ञताविहारेनाहं, आनन्द, एतरहि बहुलं विहरामी' ति। कच्चि मेतं, भन्ते, सुस्सुतं सुग्गहितं सुमनसिकतं सूपधारितं" ति ?

२. अविपल्लत्था सुञ्ञतावक्कन्ति

"तग्घ ते एतं, आनन्द, सुस्सुतं सुग्गहितं सुमनसिकतं सूपधारितं। पुब्बे पाहं, आनन्द, एतरहि पि सुञ्ञताविहारेन बहुलं विहरामि। सेय्यथापि, आनन्द, अयं मिगारमातुपासादो सुञ्ञो हत्थिगवस्सवळवेन, सुञ्ञो जातरूपरजतेन, सुञ्ञो इत्थिपुरिससन्निपातेन, अत्थि चेविदं असुञ्ञतं यदिदं—भिक्खुसङ्घं पटिच्च एकत्तं; एवमेव खो, आनन्द, भिक्खु अमनसिकरित्वा

---

२१. क्षुद्रशून्यतासूत्र

१. भगवान् शून्यता विहार से साधना करते हैं

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्तीस्थित पूर्वाराम के मृगारमातृप्रासाद में साधनाहेतु विराजमान थे। तब कभी आयुष्मान् आनन्द किसी दिन सायङ्काल ध्यानभावना से उठ कर जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचे। पहुँच कर, भगवान् को प्रणाम कर वे एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से यों निवेदन किया—"एक समय भगवान् शाक्य जनपद के 'नगरक' नामक कस्बे में विचरण कर रहे थे। वहाँ मैंने भगवान् के श्रीमुख से ही यह सुना था, और मन में बैठाया था कि 'भगवान् आजकल अधिकतया शून्यताविहार के सहारे साधना में लीन रहते हैं'। क्या भन्ते ! मैंने यह ठीक सुना था, ठीक से ग्रहण कर मन में बैठाया था या ठीक से धारण किया था ?"

२. शून्यताविहार में अविपर्यस्त (परिशुद्ध) प्रवेश

२. "हाँ, आनन्द ! तुमने यह ठीक ही सुना था···धारणा किया था। पहले की तो बात ही क्या, आज भी मैं प्रायः शून्यताविहार से ही साधना करता हूँ। आनन्द ! जैसे यह मृगारमातृप्रासाद हाथी-गौ-घोड़ा-घोड़ी से शून्य है, सोना-चान्दी से रहित है, स्त्रियों व पुरुषों के सम्मर्द (भीड़) से दूर है, किन्तु यह भिक्षुसङ्घ

गामसञ्ञं, अमनसिकरित्वा मनुस्ससञ्ञं, अरञ्ञसञ्ञं पटिच्च मनसि करोति एकत्तं। तस्स अरञ्ञसञ्ञाय चित्तं पक्खन्दति पसीदति सन्तिट्ठति अधिमुच्चति। सो एवं पजानाति—'ये अस्सु दरथा गामसञ्ञं पटिच्च तेध न सन्ति, ये अस्सु दरथा मनुस्ससञ्ञं पटिच्च तेध न सन्ति, अत्थि चेवायं दरथमत्ता यदिदं—अरञ्ञसञ्ञं एकत्तं' ति। सो 'सुञ्ञमिदं सञ्ञागतं गामसञ्ञाया' ति पजानाति, 'सुञ्ञमिदं सञ्ञागतं मनुस्स- [N. 169] सञ्ञाया' ति पजानाति, 'अत्थि चेविदं असुञ्ञतं यदिदं—अरञ्ञसञ्ञं पटिच्च एकत्तं' ति। इति यं हि खो तत्थ न होति तेन तं सुञ्ञं समनुपस्सति, यं पन तत्थ अवसिट्ठं होति तं 'सन्तमिदं अत्थी' ति पजानाति। [R.105] एवं पिस्स एसा, आनन्द, यथाभुच्चा अविपल्लत्था परिसुद्धा सुञ्ञतावक्कन्ति भवति।

३. "पुन च परं, आनन्द, भिक्खु अमनसिकरित्वा मनुस्ससञ्ञं, अमनसिकरित्वा अरञ्ञसञ्ञं, पथवीसञ्ञं पटिच्च मनसि करोति एकत्तं। तस्स पथवीसञ्ञाय चित्तं पक्खन्दति पसीदति सन्तिट्ठति [B. 148] अधिमुच्चति। सेय्यथापि, आनन्द, आसभचम्मं सङ्कुसतेन सुविहतं विगत-वलिकं; एवमेव खो, आनन्द, भिक्खु यं इमिस्सा पथविया उक्कूलविक्कूलं

से रहित नहीं है; उसी तरह, आनन्द! कोई भिक्षु ग्रामवास एवं मनुष्यों की भीड़ के विचार अपने मन में न लाकर एकमात्र अरण्य (की शून्यता) को ही अपने मन में रखे, धारण करे तो उसका चित्त इस अरण्यशून्यता के विचार (चिन्तन) से प्रसादगुणयुक्त एवं स्थिर हो जाता है, समाधि में लगने लगता है, वासनाओं से मुक्त हो जाता है। वह यह जान लेता है कि 'ग्रामसंज्ञा के कारण या मनुष्यसंज्ञा के कारण उसके चित्त में जो दरथ (खेद) थे, वे अब यहाँ नहीं हैं। यदि हैं तो केवल अरण्यसंज्ञा के कारण होने वाले दरथ।' यह भी जान लेता है कि 'यह स्थान ग्राम के कारण, मनुष्यों की भीड़भाड़ के कारण उठने वाले सङ्कल्प-विकल्पों से बहुत दूर है, बस यहाँ अरण्यशून्यतामात्र है।' इस प्रकार वह यहाँ जो नहीं होता उससे रहित देखता है, और वहाँ जो अवशिष्ट है उसको 'यह है'—ऐसा जान लेता है। आनन्द! यों भी वह भिक्षु यथार्थ (यथाभुक्त), अविपर्यस्त (अनुकूल) परिशुद्ध शून्यताविहार में प्रवेश करता है। (१)

३. "और फिर, आनन्द! कोई भिक्षु मनुष्यसंज्ञा या अरण्यसंज्ञा को मन में न लेकर एकमात्र पृथ्वीसंज्ञा का मन में चिन्तन करे तो इससे भी उसका चित्त प्रसादगुणयुक्त···वासनाओं से मुक्त हो जाता है। आनन्द! जैसे (मृत) बैल का चर्म सौ कीलियों (शंकु) से टंका हुआ, विना झुर्रियों का, ठीक कमाया हुआ

नदीविदुग्गं खाणुकण्टकट्ठानं पब्बतविसमं तं सब्बं अमनसिकरित्वा पथवी-सञ्ञं पटिच्च मनसि करोति एकत्तं। सो एवं पजानाति—'ये अस्सु दरथा मनुस्ससञ्ञं पटिच्च तेध न सन्ति, ये अस्सु दरथा अरञ्ञसञ्ञं पटिच्च तेध न सन्ति, अत्थि चेवायं दरथमत्ता यदिदं—पथवीसञ्ञं पटिच्च एकत्तं' ति। सो 'सुञ्ञमिदं सञ्ञागतं मनुस्ससञ्ञाया' ति पजानाति, 'सुञ्ञमिदं सञ्ञागतं अरञ्ञसञ्ञाया' ति पजानाति, 'अत्थि चेविदं असुञ्ञतं यदिदं—पथवीसञ्ञं पटिच्च एकत्तं' ति। इति यं हि खो तत्थ न होति तेन तं सुञ्ञं समनुपस्सति, यं पन तत्थ अवसिट्ठं होति तं 'सन्तमिदं अत्थी' ति पजानाति। एवं पिस्स एसा, आनन्द, यथाभुच्चा अविपल्लत्था परिसुद्धा सुञ्ञतावक्कन्ति भवति।

४. "पुन च परं, आनन्द, भिक्खु अमनसिकरित्वा अरञ्ञसञ्ञं, अमनसिकरित्वा पथवीसञ्ञं, आकासानञ्चायतनसञ्ञं पटिच्च मनसि करोति एकत्तं। तस्स आकासानञ्चायतनसञ्ञाय चित्तं पक्खन्दति पसीदति सन्ति-[N. 170] ट्ठति अधिमुच्चति। सो एवं पजानाति—'ये अस्सु दरथा अरञ्ञसञ्ञं पटिच्च तेध न सन्ति, ये अस्सु दरथा पथवीसञ्ञं पटिच्च तेध [R. 106] न सन्ति, अत्थि चेवायं दरथमत्ता यदिदं—आकासानञ्चायतनसञ्ञं पटिच्च एकत्तं' ति। सो 'सुञ्ञमिदं सञ्ञागतं अरञ्ञसञ्ञाया' ति

(सुविहित) दिखायी पड़ता है; इसी तरह, आनन्द! वह भिक्षु इस पृथ्वी का जो कुछ अंश जैसे—इसके ऊँचे-नीचे तट, नदियों के घाट, खड्ड, कँटीले स्थान या छोटे-बड़े पर्वत दिखायी देते हैं उन सबको ध्यान में न लाकर एकमात्र पृथ्वीसंज्ञा को ही मन में लाता है। यों उस पृथ्वीसंज्ञा को ही मन में करने से उसका चित्त सम्प्रसादयुक्त···वासनाओं से मुक्त हो जाता है। तब वह समझ लेता है—'मेरे चित्त में मनुष्यसंज्ञा या अरण्यसंज्ञा का ध्यान रखने के कारण जो खेद होता था वह यहाँ नहीं है, यहाँ कोई खेद बाकी है तो केवल पृथ्वीसंज्ञा को मन में करने के कारण'। यों, वह 'यह स्थान मनुष्यसंज्ञा या अरण्यसंज्ञा को मन में करने के कारण जो दरथ (खेद) था, उससे रहित है; यहाँ यदि किसी का राहित्य (शून्यता) नहीं है तो केवल पृथ्वीसंज्ञा का'—यह जान लेता है। इस तरह जो वहाँ नहीं है, उससे उसको शून्य ही समझता है; और जो अवशिष्ट है उसको 'यह है'—ऐसा समझता रहता है। आनन्द! यों भी···प्रवेश करता है। (२)

४. फिर, आनन्द! कोई भिक्षु अरण्यसंज्ञा या पृथ्वीसंज्ञा को भी मन में न लाकर आकाशानन्त्यायतनसंज्ञा मात्र की ओर ध्यान करता है तो उस आकाशा-नन्त्यायतन संज्ञा के सहारे उसका चित्त विकारों से धुल जाता है, प्रसादगुणयुक्त···

पजानाति, 'सुञ्ञमिदं सञ्ञागतं पथवीसञ्ञाया' ति पजानाति, 'अत्थि चेविदं असुञ्ञतं यदिदं—आकासानञ्चायतनसञ्ञं पटिच्च एकत्तं' ति। इति यं हि खो तत्थ न होति तेन तं सुञ्ञं समनुपस्सति, यं पन तत्थ अवसिट्ठं होति तं 'सन्तमिदं अत्थी' ति पजानाति। एवं पिस्स एसा, आनन्द, यथाभुच्चा अविपल्लत्था परिसुद्धा सुञ्ञतावक्कन्ति भवति।

५. "पुन च परं, आनन्द, भिक्खु अमनसिकरित्वा पथवीसञ्ञं, अमनसिकरित्वा आकासानञ्चायतनसञ्ञं, विञ्ञाणञ्चायतनसञ्ञं पटिच्च मनसि करोति एकत्तं। तस्स विञ्ञाणञ्चायतनसञ्ञाय चित्तं पक्खन्दति पसीदति सन्तिट्ठति अधिमुच्चति। सो एवं पजानाति—'ये [B. 149] अस्सु दरथा पथवीसञ्ञं पटिच्च तेध न सन्ति, ये अस्सु दरथा आकासानञ्चायतनसञ्ञं पटिच्च तेध न सन्ति, अत्थि चेवायं दरथमत्ता यदिदं—विञ्ञाणञ्चायतनसञ्ञं पटिच्च एकत्तं' ति। सो 'सुञ्ञमिदं सञ्ञागतं पथवीसञ्ञाया' ति पजानाति, सुञ्ञमिदं सञ्ञागतं आकासानञ्चायतनसञ्ञाया' ति पजानाति, 'अत्थि चेविदं असुञ्ञतं यदिदं—विञ्ञाणञ्चायतनसञ्ञं पटिच्च एकत्तं' ति। इति यं हि खो तत्थ न होति तेन तं सुञ्ञं समनुपस्सति, यं पन तत्थ अवसिट्ठं होति तं 'सन्तमिदं अत्थी' ति पजानाति। एवं पिस्स एसा, आनन्द, यथाभुच्चा अविपल्लत्था परिसुद्धा सुञ्ञतावक्कन्ति भवति।

६. "पुन च परं, आनन्द, भिक्खु अमनसिकरित्वा आकासानञ्चायतनसञ्ञं, अमनसिकरित्वा विञ्ञाणञ्चायतनसञ्ञं, आकिञ्चञ्ञायतनसञ्ञं पटिच्च मनसि करोति एकत्तं। तस्स आकिञ्चञ्ञायतनसञ्ञाय चित्तं पक्खन्दति पसीदति सन्तिट्ठति अधिमुच्चति। सो एवं पजानाति—'ये अस्सु दरथा आकासानञ्चायतनसञ्ञं पटिच्च तेध न सन्ति, ये अस्सु दरथा विञ्ञाणञ्चायतनसञ्ञं पटिच्च तेध न सन्ति, अत्थि चेवायं दरथमत्ता यदिदं—आकिञ्चञ्ञायतनसञ्ञं पटिच्च एकत्तं' ति। सो 'सुञ्ञमिदं

पूर्ववत्… (पृथ्वीसंज्ञा की जगह आकाशानन्त्यायतन जोड़कर) परिशुद्ध शून्यता में प्रवेश करता है। (३)

५. फिर, आनन्द ! वह भिक्षु पृथ्वीसंज्ञा या आकाशानन्त्यायतनसंज्ञा को भी मन में न लाकर केवल विज्ञानन्त्यायतनसंज्ञा का ही ध्यान करता है तो उस विज्ञानानन्त्यायतनसंज्ञा से उसका चित्त…पूर्ववत् (विज्ञानानन्त्यायतन संज्ञा जोड़कर)… परिशुद्ध शून्यता में प्रवेश कर जाता है। (४)

६. फिर, आनन्द ! वह भिक्षु आकाशानन्त्यायतन एवं विज्ञानन्त्यायतन संज्ञा को भी मन में न लाकर केवल आकिञ्चन्यायतनसंज्ञा को ही ध्यान में लाता है तो

सञ्ञागतं आकासानञ्चायतनसञ्ञाया' ति पजानाति, सुञ्ञमिदं सञ्ञागतं [N. 171, R. 107] विञ्ञाणञ्चायतनसञ्ञाया' ति पजानाति, 'अत्थि चेविदं असुञ्ञतं यदिदं—आकिञ्चाञ्ञायतनसञ्ञं पटिच्च एकत्तं' ति। इति यं हि खो तत्थ न होति तेन तं सुञ्ञं समनुपस्सति, यं पन तत्थ अवसिट्ठं होति तं 'सन्तमिदं अत्थी' ति पजानाति। एवं पिस्स एसा, आनन्द, यथाभुच्चा अविपल्लत्था परिसुद्धा सुञ्ञतावक्कन्ति भवति।

७. "पुन च परं, आनन्द भिक्खु अमनसिकरित्वा विञ्ञाणञ्चायतनसञ्ञं, अमनसिकरित्वा आकिञ्चञ्ञायतनसञ्ञं, नेवसञ्ञानासञ्ञायतनसञ्ञं पटिच्च मनसि करोति एकत्तं। तस्स नेवसञ्ञानासञ्ञायतनसञ्ञाय चित्तं पक्खन्दति पसीदति सन्तिट्ठति अधिमुच्चति। सो एवं पजानाति—'ये अस्सु दरथा विञ्ञाणञ्चायतनसञ्ञं पटिच्च तेध न सन्ति, ये अस्सु दरथा आकिञ्चञ्ञायतनसञ्ञं पटिच्च तेध न सन्ति, अत्थि चेवायं दरथमत्ता यदिदं—नेवसञ्ञानासञ्ञायतनसञ्ञं पटिच्च एकत्तं' ति। सो 'सुञ्ञमिदं सञ्ञागतं विञ्ञाणञ्चायतनसञ्ञाया' ति पजानाति, 'सुञ्ञमिदं [B. 150] सञ्ञागतं आकिञ्चञ्ञायतनसञ्ञाया' ति पजानाति, 'अत्थि चेविदं असुञ्ञतं यदिदं—नेवसञ्ञानासञ्ञायतनसञ्ञं पटिच्च एकत्तं' ति। इति यं हि खो तत्थ न होति तेन तं सुञ्ञं समनुपस्सति, यं पन तत्थ अवसिट्ठं होति तं 'सन्तमिदं अत्थी' ति पजानाति। एवं पिस्स एसा, आनन्द, यथाभुच्चा अविपल्लत्था परिसुद्धा सुञ्ञतावक्कन्ति भवति।

८. "पुन च परं, आनन्द, भिक्खु अमनसिकरित्वा आकिञ्चञ्ञायतनसञ्ञं, अमनसिकरित्वा नेवसञ्ञानासञ्ञायतनसञ्ञं, अनिमित्तं चेतोसमाधिं पटिच्च मनसि करोति एकत्तं। तस्स अनिमित्ते चेतोसमाधिम्हि

उस आकिञ्चन्यायतनसंज्ञा को ध्यान में रखने के कारण उसका चित्त प्रसादगुणयुक्त... पूर्ववत् (आकिञ्चन्यायतनसंज्ञा जोड़कर)...परिशुद्ध शून्यता में प्रवेश कर जाता है। (५)

७. फिर, आनन्द! वह भिक्षु विज्ञानानन्त्यायतन एवं आकिञ्चन्यायतन को भी मन में न लाकर केवल नैवसंज्ञानासंज्ञायतन संज्ञा को ही ध्यान में रखता है। इस नैवसंज्ञानासंज्ञायतनसंज्ञा को निरन्तर ध्यान में रखने से उसका चित्त...पूर्ववत् (नैवसंज्ञानासंज्ञायतन संज्ञा जोड़ कर)...परिशुद्ध शून्यता में प्रवेश करता है। (६)

८. फिर, आनन्द! कोई भिक्षु आकिञ्चन्यायतन संज्ञा एवं नैवसंज्ञायतन संज्ञा को भी मनमें न कर, केवल अनिमित्त चेतःसमाधि को ध्यान में रखने का अभ्यास करता है तो उसका चित्त इस अनिमित्त चेतःसमाधि में प्रसादगुण... विमुक्त होता

चित्तं पक्खन्दति पसीदति सन्तिट्ठति अधिमुच्चति। सो एवं पजानाति-'ये अस्सु दरथा आकिञ्चञ्ञायतनसञ्ञं पटिच्च तेध न सन्ति, ये अस्सु दरथा नेवसञ्ञानासञ्ञायतनसञ्ञं पटिच्च तेध न सन्ति, अत्थि चेवायं दरथमत्ता यदिदं-इममेव कायं पटिच्च सळायतनिकं जीवितपच्चया' ति। सो [R. 108] 'सुञ्ञमिदं सञ्ञागतं आकिञ्चञ्ञायतनसञ्ञाया' ति पजानाति, 'सुञ्ञमिदं सञ्ञागतं नेवसञ्ञानासञ्ञायतनसञ्ञाया' ति पजानाति, अत्थि चेविदं असुञ्ञतं यदिदं—इममेव कायं पटिच्च सळायतनिकं जीवितपच्चया' ति। इति यं हि खो तत्थ न होति तेन तं सुञ्ञं समनुपस्सति, यं पन तत्थ अवसिट्ठं होति तं 'सन्तमिदं अत्थी' ति पजानाति। एवं पिस्स [N. 172] एसा, आनन्द, यथाभुच्चा अविपल्लत्था परिसुद्धा सुञ्ञतावक्कन्ति भवति।

९. "पुन च परं, आनन्द, भिक्खु अमनसिकरित्वा आकिञ्चञ्ञायतनसञ्ञं, अमनसिकरित्वा नेवसञ्ञानासञ्ञायतनसञ्ञं, अनिमित्तं चेतोसमाधिं पटिच्च मनसि करोति एकत्तं। तस्स अनिमित्ते चेतोसमाधिम्हि चित्तं पक्खन्दति पसीदति सन्तिट्ठति अधिमुच्चति। सो एवं पजानाति-'अयं पि खो अनिमित्तो चेतोसमाधि अभिसङ्खतो अभिसञ्चेतयिको'। 'यं खो पन किञ्चि अभिसङ्खतं अभिसञ्चेतयिकं तदनिच्चं निरोधधम्मं' ति पजानाति। तस्स एवं जानतो एवं पस्सतो कामासवा पि चित्तं विमुच्चति, भवासवा पि चित्तं विमुच्चति, अविज्जासवा पि चित्तं विमुच्चति। विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं

है। वह यह जान लेता है कि जो दरथ आकिञ्चन्यायतनसंज्ञा एवं नैवसंज्ञानासंज्ञायतनसंज्ञा में थे वे इस (अनिमित्तचेतःसमाधि) में नहीं है। यदि यहाँ कोई दरथ है तो वह यह है कि यहाँ इस षडायतन देह के जीवन के प्रति कुछ आसक्ति रह जाती है। वह यह भी जान लेता है कि यह अवस्था आकिञ्चन्यायतनसंज्ञा एवं नैवसंज्ञानासंज्ञायतनसंज्ञा से रहित (शून्य) है; यदि कुछ अशून्यता है तो वह केवल यह है कि इस अवस्था में केवल इस षडायतनिक देह के प्रति कुछ दरथ अवशिष्ट है। इस प्रकार जो वहाँ नहीं होता... शून्यता में प्रवेश हो जाता है। (७)

९. फिर, आनन्द! कोई भिक्षु आकिञ्चन्यायतनसंज्ञा या नैवसंज्ञायतनसंज्ञा को मन में न कर एकमात्र अनिमित्त चेतःसमाधि पर ध्यान रखे तो उस अनिमित्त चेतःसमाधि में उसका चित्त प्रसाद...विमुक्त हो जाता है। इस समाधि का अभ्यास करते-करते एक समय वह जान जाता है कि यह अनिमित्त चेतःसमाधि भी अभिसंस्कृत (कृत्रिम) है, क्यों कि चिन्तन करने से यह भी नाशवान् सिद्ध हो जाती है। और जो भी (इस संसार में) अभिसंस्कृत या अभिसञ्चेतनिक है वह सब

करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाति। सो एवं पजानाति—'ये अस्सु दरथा कामासवं पटिच्च तेध न सन्ति, ये अस्सु दरथा भवासवं पटिच्च तेध न सन्ति, ये अस्सु दरथा अविज्जासवं पटिच्च तेध न सन्ति, अत्थि चेवायं [B. 151] दरथमत्ता यदिदं--इममेव कायं पटिच्च सळायतनिकं जीवित-पच्चया' ति। सो 'सुञ्ञमिदं सञ्ञागतं कामासवेना' ति पजानाति, 'सुञ्ञमिदं सञ्ञागतं अविज्जासवेना' ति पजानाति, 'अत्थि चेविदं असुञ्ञतं यदिदं—इममेव कायं पटिच्च सळायतनिकं जीवितपच्चया' ति। इति यं हि खो तत्थ न होति तेन तं सुञ्ञं समनुपस्सति, यं पन तत्थ अवसिट्ठं होति तं 'सन्तमिदं अत्थी' ति पजानाति। एवं पिस्स एसा, आनन्द, यथा-[R. 109] भुच्चा अविपल्लत्था परिसुद्धा परमानुत्तरा सुञ्ञता-वक्कन्ति भवति।

१०. "ये पि हि केचि, आनन्द, अतीतमद्धानं समणा वा ब्राह्मणा वा परिसुद्धं परमानुत्तरं सुञ्ञतं उपसम्पज्ज विहरिंसु, सब्बे ते इमं येव परिसुद्धं परमानुत्तर सुञ्ञतं उपसम्पज्ज विहरिंसु। ये पि हि केचि, आनन्द, अनागतमद्धानं समणा वा ब्राह्मणा वा परिसुद्धं परमानुत्तरं सुञ्ञतं उपसम्पज्ज [N. 173] विहरिस्सन्ति…। ये पि हि केचि, आनन्द, एतरहि समणा वा

अनित्य व निरोधधर्मा (नाशवान्) है। उसके ऐसा जान व समझ लेने पर उसका चित्त कामभोगसम्बन्धी आस्रवों (चित्तमलों) से, भवास्रव (जन्मान्तर प्राप्ति की लालसा) से और अविद्या (अज्ञान)-आस्रव से विमुक्त हो जाता है। विमुक्त होने पर उसे 'मैं विमुक्त हूँ'—यह ज्ञान हो जाता है। वह समझ लेता है कि 'मेरी जाति (जन्मपरम्परा) क्षीण हो चुकी, मेरी धर्मसाधना का लक्ष्य पूरा हो चुका, मेरे कर्तव्य भी पूर्ण हो गये, अब कुछ भी कर्तव्य-शेष नहीं है।' वह यह भी समझ जाता है कि 'कामास्रव, भवास्रव एवं अविद्यास्रव के कारण जो खिन्नताएँ चित्त में उत्पन्न होती थीं, वे भी इस अनिमित्त चेतःसमाधि के कारण नहीं उत्पन्न हैं। किन्तु जीवन के कारण इस षडायतनिक काया को लेकर कुछ दरथ तो है ही'। वह यह भी जानता है कि 'यह अनिमित्त चेतःसमाधि कामास्रव, भवास्रव एवं अविद्यास्रव से रहित है। यदि कुछ लेश है तो इस जीवन के कारण षड़ायतनिक देह के प्रति है। यों वह यहाँ जो नहीं है…लोकोत्तर शून्यता में प्रवेश हो जाता है। (८)

१०. "आनन्द ! भूतकाल में जिन किन्हीं श्रमण-ब्राह्मणों ने इस परिशुद्ध लोकोत्तर शून्यतासमाधि की भावना की है वे इस ऐसी शून्यतासमाधि के सहारे परम पद को प्राप्त कर चुके हैं। इसी तरह, आनन्द ! भविष्य में भी…वर्तमान में…इसी

ब्राह्मणा वा परिसुद्धं परमानुत्तरं सुञ्ञतं उपसम्पज्ज विहरन्ति, सब्बे ते इमं येव परिसुद्धं परमानुत्तरं सुञ्ञतं उपसम्पज्ज विहरन्ति । तस्मातिह, आनन्द, 'परिसुद्धं परमानुत्तरं सुञ्ञतं उपसम्पज्ज विहरिस्सामा' ति--एवं हि वो, आनन्द, सिक्खितब्बं" ति ।

११. इदमवोच भगवा। अत्तमनो आयस्मा आनन्दो भगवतो भासितं अभिनन्दी ति ।

⊙

शून्यता के सहारे साधना करते हैं। इसलिये, आनन्द ! 'मैं परिशुद्ध परम अद्वितीय शून्यता को प्राप्त हो साधना करूँगा'—ऐसा तुम्हें भी सीखना चाहिये।"

११. भगवान् ने यह कहा। आप्तमना भिक्षुओं ने भगवान् की इस देशना का अभिनन्दन किया ॥

चूळसुञ्ञतसुत्त समाप्त ॥

२२. महासुञ्ञतसुत्तं

१. सङ्गणिकारामे आदीनवो वूपकट्ठे आनिसंसो च

[N. 174] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सक्केसु विहरति कपिलवत्थुस्मिं निग्रोधारामे। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय कपिलवत्थुं पिण्डाय पाविसि। कपिलवत्थुस्मिं पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो येन काळखेमकस्स सक्कस्स विहारो तेनुपसङ्कमि दिवाविहाराय। तेन खो पन समयेन काळखेमकस्स सक्कस्स [B. 152] विहारे सम्बहुलानि सेनासनानि पञ्ञत्तानि होन्ति। अद्दसा खो [R. 110] भगवा काळखेमकस्स सक्कस्स विहारे सम्बहुलानि सेनासनानि पञ्ञत्तानि। दिस्वान भगवतो एतदहोसि—"सम्बहुलानि खो काळखेमकस्स सक्कस्स विहारे सेनासनानि पञ्ञत्तानि। सम्बहुला नु खो इध भिक्खू विहरन्ती" ति।

२. तेन खो पन समयेन आयस्मा आनन्दो सम्बहुलेहि भिक्खूहि सद्धिं घटायसक्कस्स विहारे चीवरकम्मं करोति। अथ खो भगवा सायन्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो येन घटायसक्कस्स विहारो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। निसज्ज खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—"सम्बहुलानि खो, आनन्द, काळखेमकस्स सक्कस्स विहारे सेनासनानि पञ्ञत्तानि। सम्बहुला नु खो एत्थ भिक्खू विहरन्ती" ति ?

---

२२. महाशून्यतासूत्र

१. समूह में रहना दोषप्रद एवं एकान्तसेवन माहात्म्यशाली है

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) शाक्य प्रदेश के कपिलवस्तुनगरीस्थित न्यग्रोधाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय कभी भगवान् पूर्वाह्ण काल में साधनादि कार्यों से निवृत्त हो, पात्रचीवर ले, कपिलवस्तु में भिक्षाहेतु प्रविष्ट हुए। कपिलवस्तु में भिक्षा कर, भोजनकार्य से निवृत्त हो, जहाँ कालक्षेमक शाक्य का विहार था, जहाँ बहुत से लोगों के शयनासन (बिस्तर) लगे हुए थे, वहाँ पहुँचे। भगवान् ने वहाँ इतने बिस्तर लगे हुए देखे। देखकर भगवान् के मन में यह हुआ—'इस कालक्षेमक शाक्य के विहार में बहुत से शयनासन लगे हुए हैं, हो सकता है, यहाँ बहुत अधिक भिक्षु ठहरे हुए हो"।

२. उस समय आयुष्मान् आनन्द बहुत से भिक्षुओं के साथ घटायशाक्य के विहार में चीवरकर्म (भिक्षुओं के लिये वस्त्रसीवन कर्म) कर रहे थे। तब भगवान् सायङ्काल ध्यानक्रिया से उठ, जहाँ घटायशाक्य का विहार था, वहाँ पहुँचे। पहुँच कर बिछे आसन पर विराजमान हुए। आसन पर विराजमान हो भगवान् आयु-

"सम्बहुलानि, भन्ते, काळखेमकस्स सक्कस्स विहारे सेनासनानि पञ्ञत्तानि। सम्बहुला भिक्खू एत्थ विहरन्ति। चीवरकारसमयो नो, भन्ते, वत्तती" ति।

"न खो, आनन्द, भिक्खु सोभति सङ्गणिकारामो सङ्गणिकारतो सङ्गणिकारामतं अनुयुत्तो गणारामो गणरतो गणसम्मुदितो। सो वतानन्द, भिक्खु सङ्गणिकारतो सङ्गणिकारामतं अनुयुत्तो गणारामो [N. 175] गणरतो गणसम्मुदितो यं तं नेक्खम्मसुखं पविवेकसुखं उपसमसुखं सम्बोधिसुखं तस्स सुखस्स निकामलाभी भविस्सति अकिच्छलाभी अकसिरलाभी ति—नेतं ठानं विज्जति। यो च खो सो, आनन्द, भिक्खु एको गणस्मा वूपकट्ठो विहरति तस्सेतं भिक्खुनो पाटिकङ्ख यं तं नेक्खम्मसुखं पविवेकसुखं उपसमसुखं सम्बोधिसुखं तस्स सुखस्स निकामलाभी भविस्सति अकिच्छलाभी अकसिरलाभी ति—ठानमेतं विज्जति।

"सो वतानन्द, भिक्खु सङ्गणिकारामो सङ्गणिकारतो सङ्गणिकारामतं अनुयुत्तो गणारामो गणरतो गणसम्मुदितो सामायिकं वा कन्तं चेतोविमुत्तिं उपसम्पज्ज विहरिस्सति, असामायिकं वा अकुप्पं ति--नेतं ठानं विज्जति। यो च खो सो, आनन्द, भिक्खु एको गणस्मा वूपकट्ठो विहरति तस्सेतं

ष्मान् आनन्द से पूछने लगे—'आनन्द, कालक्षेमक शाक्य के विहार में'''बहुत से भिक्षु ठहरे हुए हैं!"

"हाँ, भन्ते! कालक्षेमक'''चीवर कर्म का समय है।"

"आनन्द! भिक्षु को यह शोभा नहीं देता कि वह समूह में रहने का सुख भोगे, उसमें रति मानता हुआ उससे जुड़ा रहे और उससे होने वाले आराम रति और सम्मोद सुख का अनुभव करे! ऐसे समूहवास के सुखानुभव में व्यस्त भिक्षु के लिये यह सम्भव नहीं है कि वह नैष्कर्म्य (निष्कामता) सुख, उपशम से प्राप्त सुख, एकान्तवास का सुख या सम्बोधि की प्राप्ति का सुख इच्छानुसार बिना किसी आभास के प्राप्त कर सके। हाँ, जो भिक्षु एकाकी, समूह से दूर रहता हुआ साधनारत रहता है उसके लिये आशा रखनी चाहिये कि वह एक न एक दिन निष्कामता-सुख, एकान्तसुख, उपशमसुख या सम्बोधिसुख को अनायास ही बहुलतया पा सकेगा—यह सम्भव है।

"आनन्द! वैसा समूहवास में ही सुख मानने वाला भिक्षु उस तात्कालिक चेतोविमुक्ति को प्राप्त कर सार्वकालिक (स्थायी) चेतोविमुक्ति का सुख प्राप्त कर सकेगा—यह सम्भव नहीं। हाँ, जो भिक्षु समूहवाससुख से दूर रहता हुआ एकाकी विचरण करता है, ऐसे भिक्षु के विषय में आशा रखनी चाहिये कि वह

[B. 153] भिक्खुनो पाटिकङ्खं सामायिकं वा कन्तं चेतोविमुत्तिं उपस-
[R. 111] म्पज्ज विहरिस्सति, असामायिकं वा अकुप्पं ति--ठानमेतं
विज्जति।

"नाहं, आनन्द, एकं रूपं पि समनुपस्सामि यत्थ रत्तस्स यथाभिरतस्स रूपस्स विपरिणामञ्ञथाभावा न उप्पज्जेय्युं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सूपायासा।

२. कथं तत्थ सम्पजानो होति ?

३. "अयं खो पनानन्द, विहारो तथागतेन अभिसम्बुद्धो यदिदं--सब्बनिमित्तानं अमनसिकारा अज्झत्तं सुञ्ञतं उपसम्पज्ज विहरितुं। तत्र चे, आनन्द, तथागतं इमिना विहारेन विहरन्तं भवन्ति उपसङ्कमितारो भिक्खू भिक्खुनियो उपासका उपासिकायो राजानो राजमहामत्ता तित्थिया तित्थियसावका। तत्रानन्द, तथागतो विवेकनिन्नेनेव चित्तेन विवेकपोणेन विवेकपब्भारेन वूपकट्ठेन नेक्खम्माभिरतेन ब्यन्तीभूतेन सब्बसो आसवट्ठानीयेहि धम्मेहि अञ्ञदत्थु उय्योजनिकपटिसंयुत्तं येव कथं कत्ता होति। तस्मातिहानन्द, भिक्खु चे पि आकङ्खेय्य --'अज्झत्तं सुञ्ञतं उपसम्पज्ज

तात्कालिक (अस्थायी) चेतोविमुक्ति को पाकर एक दिन स्थायी चेतोविमुक्ति को प्राप्त कर लेगा। यही सम्भव भी है।

"आनन्द ! मैं इस संसार में एक भी पदार्थ ऐसा नहीं देखता जिसमें अनुरक्त आसक्त को, उस पदार्थ के विनष्ट (विपरिणत) हो जाने पर शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य उपायास आदि न सताते हों।

२. वहाँ वास्तविक ज्ञान कैसे होता है ?

३. "आनन्द ! तथागत ने उस ज्ञान की एक पद्धति यह समझी (अभिसम्बुद्ध की) है कि लिङ्ग आकृति आदि सभी निमित्तों को मन में न लाकर आध्यात्मिक शून्यता प्राप्त कर उसी की साधना करे। आनन्द ! ऐसी साधना करते हुए तथागत के पास इस साधना के विषय में अधिक जानने (पूछताछ) के लिये भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिकायें, राजा लोग, उनके महामात्य, अन्य तीर्थक या उनके शिष्य समय-समय पर आते रहते हैं। तब तथागत उन्हें, स्वयं एकाग्रता की ओर झुके, आकृष्ट हुए स्वचित्त से, जो कि एकान्तसेवी निष्कामताप्रवण समग्र आस्रवस्थानीय धर्मों (चित्त मलों) से दूर हो चुका है, उक्त ध्यानपद्धति में ही लगने को उत्साहित करते हैं, प्रेरित करते हैं। इसलिये आनन्द ! जो भिक्षु यह चाहे कि 'मैं आध्यात्मिक शून्यता को प्राप्त कर साधना करूँ' तो आनन्द ! उस

विहरेय्यं' ति, तेनानन्द, भिक्खुना अज्झत्तमेव चित्तं सण्ठपेतब्बं [N. 176] एकोदि कातब्बं समादहातब्बं ।

४. "कथञ्चानन्द, भिक्खु अज्झत्तमेव चित्तं सण्ठपेति सन्निसादेति एकोदिं करोति समादहति ? इधानन्द, भिक्खु विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि...पे०...पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति...पे०...दुतियं झानं...ततियं झानं...चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। एवं खो, आनन्द, भिक्खु अज्झत्तमेव चित्तं सण्ठपेति सन्निसादेति एकोदिं करोति समादहति। सो अज्झत्तं सुञ्ञतं मनसि करोति। तस्स अज्झत्तं सुञ्ञतं मनसिकरोतो सुञ्ञताय चित्तं न पक्खन्दति नप्पसीदति न सन्तिट्ठति न विमुच्चति। एवं सन्तमेतं, आनन्द, भिक्खु एवं पजानाति—'अज्झत्तं सुञ्ञतं खो मे मनसिकरोतो अज्झत्तं सुञ्ञताय चित्तं न पक्खन्दति नप्पसीदति न सन्तिट्ठति न विमुच्चती' ति। इतिह तत्थ सम्पजानो होति। सो बहिद्धा सुञ्ञतं मनसि करोति...पे०...सो अज्झत्तबहिद्धा सुञ्ञतं मनसि करोति... पे०...सो आनेञ्जं मनसि करोति। तस्स आनेञ्जं मनसिकरोतो [B. 154] आनेञ्जाय चित्तं न पक्खन्दति नप्पसीदति न सन्तिट्ठति न विमुच्चति। एवं

भिक्षु को अपना चित्त अध्यात्म में ही स्थापित करना चाहिये, लगाना चाहिये, समाहित करना चाहिये।

४. "आनन्द ! कैसे यह भिक्षु स्वचित्त को एकान्ततः अध्यात्म में स्थापित या समाहित कर सकता है या लगा सकता है ? यहाँ आनन्द ! कोई भिक्षु काम-भोग एवं अकुशल धर्मों से...पूर्ववत्...प्रथम ध्यान को...द्वितीय ध्यान को...तृतीय-ध्यान को...चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर साधनारत रहता है। इससे आनन्द ! उसका चित्त अध्यात्म में एकान्ततः स्थित, समाहित हो जाता है, लग जाता है। वह ऐसी स्थिति में आध्यात्मिक शून्यता को मन में धारण करता है। यों उसके इस आध्यात्मिक शून्यता को मन में धारण करते हुए (एक समय ऐसा आता है कि) उसका चित्त उस आध्यात्मिक शून्यता तक ही स्थिर नहीं रह पाता, उसमें प्रीति-सुख का अनुभव नहीं करता, न वहाँ ठहर ही पाता है। ऐसा होने पर, आनन्द ! वह भिक्षु जान जाता है कि आध्यात्मिक शून्यता की साधना करते हुए भी उसका चित्त उधर नहीं झुकता, न वहाँ प्रीतिसुख ही अनुभव करता है और न वहाँ अधिक देर ठहर ही पाता है। ऐसा वह समझ लेता है। तब वह बाह्य शून्यता को मन में धारण करने का प्रयास करता है...वह आध्यात्मिक-बाह्य शून्यता को...आनेञ्ज्य (चित्त की स्थिरता) को मन में धारण का प्रयास करता है। उसके यों, इस आनेञ्ज्य को मन में धारण करते हुए इस आनेञ्ज्य के लिये उसका

सन्तमेतं, आनन्द, भिक्खु एवं पजानाति--'आनेञ्जं खो मे मनसिकरोतो आनेञ्जाय चित्तं न पक्खन्दति नप्पसीदति न सन्तिट्ठति न विमुच्चती' ति। इतिह तत्थ सम्पजानो होति।

"तेनानन्द, भिक्खुना तस्मिं येव पुरिमस्मिं समाधिनिमित्ते अज्झत्तमेव चित्तं सण्ठपेतब्बं एकोदि कातब्बं समादहातब्बं। सो अज्झत्तं सुञ्ञतं मनसि करोति। तस्स अज्झत्तं सुञ्ञतं मनसिकरोतो अज्झत्तं सुञ्ञताय चित्तं पक्खन्दति पसीदति सन्तिट्ठति विमुच्चति। एवं सन्तमेतं, आनन्द, भिक्खु एवं पजानाति--'अज्झत्तं सुञ्ञतं खो मे मनसिकरोतो अज्झत्तं सुञ्ञताय चित्तं पक्खन्दति पसीदति सन्तिट्ठति विमुच्चती' ति। इतिह तत्थ सम्पजानो होति। सो बहिद्धा सुञ्ञतं मनसि करोति...पे०...सो अज्झत्तबहिद्धा [N. 177] सुञ्ञतं मनसि करोति...पे०...सो आनेञ्जं मनसि करोति। तस्स आनेञ्जं मनसिकरोतो आनेञ्जाय चित्तं पक्खन्दति पसीदति सन्तिट्ठति विमुच्चति। एवं सन्तमेतं, आनन्द, भिक्खु एवं पजानाति-'आनेञ्जं खो मे मनसिकरोतो आनेञ्जाय चित्तं पक्खन्दति पसीदति सन्तिट्ठति विमुच्चती' ति। इतिह तत्थ सम्पजानो होति।

५. "तस्स चे, आनन्द भिक्खुनो इमिना विहारेन विहरतो चङ्कमाय चित्तं नमति, सो चङ्कमति-'एवं मं चङ्कमन्तं नाभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सविस्सन्ती' ति। इतिह तत्थ सम्पजानो होति।

"तस्स चे, आनन्द, भिक्खुनो इमिना विहारेन विहरतो ठानाय चित्तं

चित्त न झुकता है, न उसमें प्रीति-सुख का अनुभव करता है, न उससे मुक्त ही होता है। आनन्द! ऐसा होने पर वह भिक्षु समझ जाता है कि उसका चित्त आनेञ्ज्य की ओर [illegible] है...।

'तब आनन्द उस भिक्षु को उसी पूर्व समाधिनिमित्त के सहारे अपने चित्त को अध्यात्म-शून्यता में स्थापित करना चाहिये...समाहित करना चाहिये। यों वह जब अध्यात्म-शून्यता की ओर स्वचित्त को झुका लेता है...पूर्ववत्...न झुक पा रहा है...।

५. "आनन्द! उस तत्त्वजिज्ञासु भिक्षु का चित्त, इस साधना का अभ्यास करते हुए, यदि चंक्रमण में लगना चाहता है तो वह चंक्रमण करता हुआ यह समझने वाला हो जाता है कि इस प्रकार चंक्रमण करते हुए मेरे चित्त को अभिध्या-दौर्मनस्य आदि पापमय अकुशल धर्म नहीं छू पायेंगे।

"यदि उसका चित्त किसी एक स्थान पर स्थित रहने के लिये होता है तो

नमति, सो तिट्ठति--'एवं मं ठितं नाभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सविस्सन्ती' ति। इतिह तत्थ सम्पजानो होति। [R. 113]

"तस्स चे, आनन्द, भिक्खुनो इमिना विहारेन विहरतो निसज्जाय चित्तं नमति, सो निसीदति--'एवं मं निसिन्नं नाभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सविस्सन्ती' ति। इतिह तत्थ सम्पजानो होति।

"तस्स चे, आनन्द, भिक्खुनो इमिना विहारेन विहरतो सयनाय चित्तं नमति, सो सयति--'एवं मं सयन्तं नाभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सविस्सन्ती' ति। इतिह तत्थ सम्पजानो होति।

"तस्स चे, आनन्द, भिक्खुनो इमिना विहारेन विहरतो [B. 155] कथाय चित्तं नमति, सो—'यायं कथा हीना गम्मा पोथुज्जनिका अनरिया अनत्थसंहिता न निब्बिदाय न विरागाय न निरोधाय न उपसमाय न अभिञ्ञाय न सम्बोधाय न निब्बानाय संवत्तति, सेय्यथीदं—राजकथा चोरकथा महामत्तकथा सेनाकथा भयकथा युद्धकथा अन्नकथा पानकथा वत्थकथा सयनकथा मालाकथा गन्धकथा ञातिकथा यानकथा गामकथा निगमकथा नगरकथा जनपदकथा इत्थिकथा सुराकथा विसिखाकथा कुम्भट्ठानकथा पुब्बपेतकथा नानत्तकथा लोकक्खायिका समुद्दक्खायिका इतिभवाभवकथा इति वा इति—एवरूपिं कथं न कथेस्सामी' ति। इतिह

स्थित रहता हुआ वह भिक्षु समझ लेता है कि इस प्रकार स्थित रहते हुए... नहीं छू पायेंगे...।

"यदि उसका चित्त कहीं लेटने को होता है तो लेटा हुआ वह भिक्षु... नहीं छू पायेंगे...।

"यदि उस भिक्षु का चित्त कहीं सोने के लिये होता है तो सोता हुआ वह भिक्षु... नहीं छू पायेंगे। ऐसा उसे भलीभाँति ज्ञान होता है।

"यदि, आनन्द! उस भिक्षु का चित्त किसी से संवाद (कथा=बातचीत) करने की सोचे तो वह निश्चय कर लेता है कि मैं किसी से भी ऐसा संवाद जो हीन, ग्राम्य, अज्ञों अनार्यों के योग्य हो, अनर्थयुक्त हो, संसार के प्रति निर्वेद, वैराग्य एवं चित्तनिरोध के लिये अनुपयोगी हो या उपशम अभिज्ञा सम्बोधि या निर्वाण की ओर अभिमुख करने वाला न हो, जैसे कि राजकथा... पूर्ववत्[1]... नहीं करूँगा। संवाद के विषय में भी वह ऐसी समझ रखता है। हाँ, ऐसे संवादों के प्रति वह अवश्य उत्सुक रहे कि जो मनःशुद्धि एवं चित्तदोषों को दूर करने वाले हों;

---

१. द्र०—पीछे पृ० ९५८ (सन्दकसुत्त)।

[N. 178] तत्थ सम्पजानो होति। या च खो अयं, आनन्द, कथा अभिसल्लेखिका चेतोविनीवरणसप्पाया एकन्तनिब्बिदाय विरागाय निरोधाय उपसमाय अभिञ्ञाय सम्बोधाय निब्बानाय संवत्तति, सेय्यथीदं--अप्पिच्छकथा सन्तुट्ठिकथा पविवेककथा असंसग्गकथा विरियारम्भकथा सीलकथा समाधिकथा पञ्ञाकथा विमुत्तिकथा विमुत्तिञाणदस्सनकथा इति--'एवरूपिं कथं कथेस्सामी' ति। इतिह तत्थ सम्पजानो होति।

"तस्स चे, आनन्द, भिक्खुनो इमिना विहारेन विहरतो वितक्काय [R. II4] चित्तं नमति, सो--'ये ते वितक्का हीना गम्मा पोथुज्जनिका अनरिया अनत्थसंहिता न निब्बिदाय न विरागाय न निरोधाय न उपसमाय न अभिञ्ञाय न सम्बोधाय न निब्बानाय संवत्तन्ति, सेय्यथीदं--कामवितक्को ब्यापादवितक्को विहिंसावितक्को, इति एवरूपे वितक्के न वितक्केस्सामी' ति। इतिह तत्थ सम्पजानो होति। ये च खो इमे, आनन्द, वितक्का अरिया निय्यानिका निय्यन्ति तक्करस्स सम्मादुक्खक्खयाय, सेय्यथीदं--नेक्खम्मवितक्को अब्यापादवितक्को अविहिंसावितक्को--इति 'एवरूपे वितक्के वितक्केस्सामी' ति। इतिह तत्थ सम्पजानो होति।

६. "पञ्च खो इमे, आनन्द, कामगुणा। कतमे पञ्च? चक्खुविञ्ञेय्या रूपा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया, सोतविञ्ञेय्या

एकान्ततः निर्वेद, वैराग्य चित्तनिरोध, उपशम, अभिज्ञा, सम्बोधि एवं निर्वाण की तरफ अभिमुख करने वाले हों; जैसे—अल्पेच्छता (निर्लोभ), सन्तोष, एकान्तसुख, असंसर्ग, उद्योग, शील, समाधि, प्रज्ञा, विमुक्ति एवं विमुक्तिज्ञानदर्शन का प्रसङ्ग—उन्हें अवश्य करूँगा। वह इस विषय में सावधान रहता है।

"आनन्द! यदि उस भिक्षु का चित्त वितर्क करने को चाहे तो उसे निश्चय कर लेना चाहिये कि मैं किसी से ऐसे कोई तर्क वितर्क नहीं करूँगा जो हीन ग्राम्य··· निर्वाण की ओर अभिमुख करने वाले न हों; जैसे—कामवितर्क, व्यापादवितर्क, विहिंसावितर्क। हाँ, आनन्द! जो वितर्क आर्य या नैर्याणिक एवं दुःखक्षय की तरफ ले जाने वाले हों, जैसे—नैष्कर्म्यवितर्क, अव्यापादवितर्क, अविहिंसावितर्क। ऐसे ही वितर्कों की तरफ अपने चित्त को प्रवृत्त करूँगा। वह इस विषय में सावधान रहता है।

६. "आनन्द! यहाँ ये पाँच कामगुण हैं। कौन से पाँच? चक्षुर्विज्ञेय रूप··· पूर्ववत्[1]···श्रोत्रविज्ञेय शब्द···घ्राणविज्ञेय गन्ध···जिह्वाविज्ञेय रस···कायविज्ञेय

---

१. द्र०—पीछे पृ० १९२ (चूलदुक्खक्खन्धसुत्त)।

रजनीया, सोतविञ्ञेय्या सद्दा… घानविञ्ञेय्या गन्धा… [B. 156] जिव्हाविञ्ञेय्या रसा…कायविञ्ञेय्या फोट्ठब्बा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया—इमे खो, आनन्द, पञ्च कामगुणा यत्थ भिक्खुना अभिक्खणं सकं चित्तं पच्चवेक्खितब्बं--'अत्थि नु खो मे इमेसु पञ्चसु कामगुणेसु अञ्ञतरस्मिं वा अञ्ञतरस्मिं वा आयतने उप्पज्जति चेतसो समुदाचारो' ति ? सचे, आनन्द, भिक्खु पच्चवेक्खमानो एवं पजानाति– 'अत्थि खो मे इमेसु पञ्चसु कामगुणेसु अञ्ञतरस्मिं वा अञ्ञतरस्मिं वा आयतने उप्पज्जति चेतसो समुदाचारो' ति, एवं सन्तमेतं, आनन्द, भिक्खु एवं पजानाति, यो--खो इमेसु पञ्चसु कामगुणेसु छन्दरागो सो मे नप्पहीनो' ति, इतिह तत्थ [N. 179] सम्पजानो होति। सचे पनानन्द, भिक्खु पच्चवेक्खमानो एवं पजानाति– 'नत्थि खो मे इमेसु पञ्चसु कामगुणेसु अञ्ञतरस्मिं वा अञ्ञतरस्मिं वा आयतने उप्पज्जति चेतसो समुदाचारो' ति, एवं सन्तमेतं, आनन्द, भिक्खु एवं पजानाति---'यो खो इमेसु पञ्चसु कामगुणेसु छन्दरागो सो मे पहीनो' ति। इतिह तत्थ सम्पजानो होति।

७. पञ्च खो इमे, आनन्द, उपादानक्खन्धा यत्थ भिक्खुना उदयब्बयानुपस्सिना विहातब्बं—'इति रूपं इति रूपस्स समुदयो इति रूपस्स अत्थङ्गमो, इति वेदना…इति सञ्ञा…इति सङ्खारा…इति [R. 115] विञ्ञाणं इति विञ्ञाणस्स समुदयो इति विञ्ञाणस्स अत्थङ्गमो' ति।

स्प्रष्टव्य विषय। आनन्द ! ये पाँच कामगुण हैं। जिनमें भिक्षु को निरन्तर स्वचित्त से यह प्रत्यवेक्षण करना चाहिये-'क्या इन पाँच गुणों में से किसी एक आयतन में मेरे चित्त का सम्पर्क (समुदाचार) उत्पन्न होता है ? यदि वह भिक्षु प्रत्यवेक्षण करते हुए ऐसा जाने—'हाँ, इन पाँच कामगुणों में या किसी न किसी आयतन में मेरे चित्त का सम्पर्क है'। तब वह भिक्षु यह भी जानता है—'इन पाँच कामगुणों में मेरा जो छन्दराग है वह प्रहीण नहीं हुआ है'। इस अर्थ में वह सावधान है। और यदि आनन्द ! वह भिक्षु प्रत्यवेक्षण करता हुआ यह समझे—'इन पाँच कामगुणों में या किसी भी एक आयतन में मेरा चित्त सम्पृक्त नहीं है' तो वह यह भी जान पाता है—'इन पाँच कामगुणों में (पहले) मेरा जो छन्दराग था वह प्रहीण हो चुका है'। तो समझना चाहिये कि वह इस विषय में सावधान है।

७. "आनन्द ! ये जो पाँच उपादानस्कन्ध (बताये गये) हैं, इनके उत्पत्ति-विनाश की तरफ निरन्तर ध्यान रखना चाहिये—'ऐसा रूप होता है, ऐसे रूप की उत्पत्ति होती है, ऐसे रूप का विनाश होता है; ऐसे वेदना होती हैं…ऐसे संज्ञायें…

तस्स इमेसु पञ्चसु उपादानक्खन्धेसु उदयब्बयानुपस्सिनो विहरतो यो पञ्चसु उपादानक्खन्धेसु अस्मिमानो सो पहीयति । एवं सन्तमेतं, आनन्द, भिक्खु एवं पजानाति—'यो खो इमेसु पञ्चसु उपादानक्खन्धेसु अस्मिमानो सो मे पहीनो' ति । इतिह तत्थ सम्पजानो होति । इमे खो ते, आनन्द, धम्मा एकन्तकुसला कुसलायातिका अरिया लोकुत्तरा अनवक्कन्ता पापिमता । तं किं मञ्ञसि, आनन्द, कं अत्थवसं सम्पस्समानो अरहति सावको सत्थारं अनुबन्धितुं अपि पणुज्जमानो" ति ?

[B. 157] "भगवम्मूलका नो, भन्ते धम्मा भगवन्नेत्तिका भगवम्पटिसरणा । साधु वत, भन्ते, भगवन्तं येव पटिभातु एतस्स भासितस्स अत्थो । भगवतो सुत्वा भिक्खू धारेस्सन्ती" ति ।

३. आचरियन्तेवासिब्रह्मचारूपद्दवा

८. "न खो, आनन्द, अरहति सावको सत्थारं अनुबन्धितुं, यदिदं सुत्तं गेय्यं वेय्याकरणं तस्स हेतु । तं किस्स हेतु ? दीघरत्तस्स हि ते, आनन्द, धम्मा सुता धता वचसा परिचिता मनसानुपेक्खिता दिट्ठिया सुप्पटिविद्धा । या च खो अयं, आनन्द, कथा अभिसल्लेखिका चेतोविनीवरणसप्पाया [N. 180] एकन्तनिब्बिदाय विरागाय निरोधाय उपसमाय अभिञ्ञाय

ऐसे संस्कार...ऐसे विज्ञान...विज्ञान का नाश होता है ।' यों इन पाँच उपादानस्कन्धों के उत्पत्ति-विनाश का ध्यान रखते हुए उस भिक्षु का जो इन पाँच उपादानस्कन्धों में अस्मिमान (ममत्व) है वह प्रहीण हो जाता है । वह भिक्षु उस क्रिया को सातत्येन जानता है । आनन्द ! वे धर्म जो एकान्ततः कुशल हैं या कुशल से आयात (प्राप्त) हुए हैं; आर्य एवं लोकोत्तर हैं, जिनका कि पापियों द्वारा प्राप्त किया जाना सर्वथा असम्भव है । तो क्या मानते हो, आनन्द ! कोई श्रावक किस लोभ के वशीभूत हो, बार-बार भगाये जाने पर भी, क्यों उनके पीछे-पीछे लगा रहता है ?"

"भन्ते ! हमारे धर्मविषयक निर्णायक तो आप ही हैं, आप ही हमारे पथ-प्रदर्शक हैं, धर्मनिर्णय के विषय में आप ही हमारे आलम्बन हैं । आप ही इस बात की वास्तविकता बतावें ।"

३. आचार्यों, शिष्यों एवं सब्रह्मचारियों में उत्पद्यमान दोष

८. "आनन्द ! किसी भी जिज्ञासु श्रावक को अपने शास्ता (गुरु) के पीछे इसलिये नहीं लगना चाहिये कि वह उनसे व्यावहारिक सूत्र, गेय या व्याख्यान ग्रन्थों का अध्ययन कर सके । वह क्यों ? वह इसलिये, आनन्द ! कि इसी में उसका दैर्घकालिक हित है । ये धर्म (सूत्रादि) तो श्रवण या धारण कर ही किये जाते हैं, वचनों से परिचित, मन से विचारित, दृष्टि से सुप्रतिविद्ध (अन्तस्तल तक ज्ञात)

सम्बोधाय निब्बानाय संवत्तति, सेय्यथीदं—अप्पिच्छकथा सन्तुट्ठिकथा पविवेककथा असंसग्गकथा विरियारम्भकथा सीलकथा समाधिकथा पञ्ञा-कथा विमुत्तिकथा विमुत्तिञाणदस्सनकथा—एवरूपिया खो, आनन्द, कथाय हेतु अरहति सावको सत्थारं अनुबन्धितुं अपि पणुज्जमानो।

"एवं सन्ते खो, आनन्द, आचरियूपद्दवो होति, एवं सन्ते अन्तेवासूपद्दवो होति, एवं सन्ते ब्रह्मचारूपद्दवो होति।

९. "कथं चानन्द, आचरियूपद्दवो होति? इधानन्द, एकच्चो सत्था विवित्तं सेनासनं भजति अरञ्ञं रुक्खमूलं पब्बतं कन्दरं गिरिगुहं सुसानं वनपत्थं अब्भोकासं पलालपुञ्जं। तस्स तथावूपकट्ठस्स विहरतो [R. 116] अन्वावत्तन्ति ब्राह्मणगहपतिका नेगमा चेव जानपदा च। सो अन्वावत्तन्तेसु ब्राह्मणगहपतिकेसु नेगमेसु चेव जानपदेसु च मुच्छं निकामयति, गेधं आप-ज्जति, आवत्तति बाहुल्लाय। अयं वुच्चतानन्द, उपद्दवो आचरियो। आचरियू-

---

हो ही जाते हैं। परन्तु, आनन्द! यह जो हृदय तक प्रभाव डालने वाली चित्त-विकारों को नष्ट करने वाली, ऐकान्तिक निर्वेद, वैराग्य निरोध उपशम, अभिज्ञा सम्बोधि एवं निर्वाण तक पहुँचने वाली बात (गुण) है, जैसे अल्पेच्छता, सन्तुष्टि, प्रविवेक, असंसर्ग (अनासक्ति), वीर्य (उद्योग), आरम्भ, शील, समाधि, प्रज्ञा, विमुक्ति एवं विमुक्तिज्ञानदर्शन आदि। आनन्द! ऐसे सद्गुणों की प्राप्तिहेतु ही जिज्ञासु श्रावक को गुरु का पीछा (अनुबन्धन) करना ही चाहिये, भले ही उसको गुरु कितना ही दूर क्यों न भगावे।

[प्रसङ्गवश आचार्य, अन्तेवासी एवं ब्रह्मचारियों में इस एकान्तवास से दुर्गुण (कमियाँ=दोष) क्यों आ जाते हैं?—भगवान् यह बताने जा रहे हैं—]

"आनन्द! ऐसा होने पर अर्थात् एकान्तवास से आनन्द! आचार्यों में दोष (उपद्रव=कमियाँ) आ जाते हैं, अन्तेवासियों में दोष आ जाते हैं, ब्रह्मचारियों में दोष आ जाते हैं।

६. "कैसे आनन्द! आचार्यों में दोष आ जाते हैं? आनन्द! यहाँ कोई शास्ता (आचार्य) अरण्य, वृक्षों की छाया, पर्वतकन्दरा, गिरिगुहा, श्मसान, वनप्रस्थ, खुले मैदान, या घास का ढेर—ऐसे एकान्त शयनासन का उपयोग करता है। ऐसे एकान्त में साधना करते हुए उसके दर्शनहेतु आस-पास के कस्बों या नगरों में रहने वाले गृहस्थ लोग उसे घेरे रहते हैं। इस तरह वह उन गृहस्थों से घिरा रह कर उनसे प्रश्न (बातचीत) का इच्छुक होता है, उनसे कुछ प्राप्ति के लोभ में पड़ जाता है, यों वह धीरे-धीरे परिग्रही होता जाता है। आनन्द! यह है उस आचार्य में आने वाला दोष। यों वह आचार्य, इन दोषों के कारण, सांक्ले-

पद्दवेन अवधिसु नं पापका अकुसला धम्मा सङ्किलेसिका पोनोब्भविका सदरा दुक्खविपाका आयतिं जातिजरामरणिया। एवं खो, आनन्द, आचरियूपद्दवो होति। (१)

१०. "कथ चानन्द, अन्तेवासूपद्दवो होति? तस्सेव खो पनानन्द, सत्थु सावको तस्स सत्थु विवेकमनुब्रूहयमानो विवित्तं सेनासनं भजति अरञ्ञं [B. 158] रुक्खमूलं पब्बतं कन्दरं गिरिगुहं सुसानं वनपत्थं अब्भोकासं पलालपुञ्जं। तस्स तथावूपकट्ठस्स विहरतो अन्वावत्तन्ति ब्राह्मणगहपतिका नेगमा चेव जानपदा च। सो अन्वावत्तन्तेसु ब्राह्मणगहपतिकेसु नेगमेसु चेव जानपदेसु च मुच्छं निकामयति, गेधं आपज्जति, आवत्तति बाहुल्लाय। अयं वुच्चतानन्द, उपद्दवो अन्तेवासी। अन्तेवासूपद्दवेन अवधिसु नं पापका अकुसला धम्मा सङ्किलेसिका पोनोब्भविका सदरा दुक्खविपाका आयतिं जातिजरामरणिया। एवं खो, आनन्द, अन्तेवासूपद्दवो होति। (२)

[N. 181] ११. "कथञ्चानन्द, ब्रह्मचारूपद्दवो होति? इधानन्द, तथागतो लोके उप्पज्जति अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा। सो विवित्तं सेनासनं भजति अरञ्ञं रुक्खमूलं पब्बतं कन्दरं गिरिगुहं सुसानं वनपत्थं अब्भोकासं पलालपुञ्जं। तस्स तथावूपकट्ठस्स विहरतो अन्वावत्तन्ति ब्राह्मणगहपतिका नेगमा चेव जानपदा च। सो अन्वावत्तन्तेसु [R. 117] ब्राह्मणगहपतिकेसु नेगमेसु चेव जानपदेसु च न मुच्छं निकामयति,

---

शिक (दुःखदायी), पौनर्भविक (आवागमन में फँसाने वाले), भयावह, दुःखपरिणामदायी. भविष्य में जन्म-जरा-मृत्यु की ओर ले जाने वाले, पापमय अकुशल धर्मों के आचरण से एक न एक दिन विनाश के गर्त में ढकेल दिया जाता है। उसकी आध्यात्मिक हत्या कर दी जाती है। यों यह 'आचार्योपद्रव' कहलाता है।

१०. "अन्तेवासियों में दोष कैसे आते हैं? आनन्द! वैसे ही किसी शास्ता का कोई शिष्य अपने शास्ता के विवेक (पूर्वोक्त एकान्तचिन्तन) का अनुगमन करते हुए अरण्य…पूर्ववत्…उपयोग करता है। ऐसे एकान्त में…यह 'अन्तेवासिदोष' कहलाता है।

११. "आनन्द! ब्रह्मचारियों में दोष कैसे आते हैं? आनन्द! यहाँ लोक में तथागत अर्हत्, सम्यक्सम्बुद्ध…भगवान् बुद्ध अवतरित होते हैं। वे अरण्य आदि एकान्त में शयनासन लगा ध्यानरत रहते हैं। उनके यों ध्यानरत रहते उनकी इस तपःक्रिया से प्रभावित हो, आस-पास के ग्राम-नगर के वासी उनके दर्शनार्थ उनके पास आ आ कर उन्हें घेरे रहते हैं। परन्तु इस जनसम्मर्द के कारण

न गेधं आपज्जति, न आवत्तति बाहुल्लाय। तस्सेव खो पनानन्द, सत्थु सावको तस्स सत्थु विवेकमनुब्रूहयमानो विवित्तं सेनासनं भजति अरञ्ञं रुक्खमूलं पब्बतं कन्दरं गिरिगुहं सुसानं वनपत्थं अब्भोकासं पलालपुञ्जं। तस्स तथावूपकट्ठस्स विहरतो अन्वावत्तन्ति ब्राह्मणगहपतिका नेगमा चेव जानपदा च। सो अन्वावत्तन्तेसु ब्राह्मणगहपतिकेसु नेगमेसु चेव जानपदेसु च मुच्छं निकामयति, गेधं आपज्जति, आवत्तति बाहुल्लाय। अयं वुच्चतानन्द, उपद्दवो ब्रह्मचारी। ब्रह्मचारूपद्दवेन अवधिंसु नं पापका अकुसला धम्मा सङ्किलेसिका पोनोब्भविका सदरा दुक्खविपाका आयतिं जातिजरामरणिया। एवं खो, आनन्द, ब्रह्मचारूपद्दवो होति। (३)

"तत्रानन्द, यो चेवायं आचरियूपद्दवो, यो च अन्तेवासूपद्दवो अयं तेहि ब्रह्मचारूपद्दवो दुक्खविपाकतरो चेव कटुकविपाकतरो च, अपि च विनिपाताय संवत्तति।

४. कथं सत्थारं समुदाचरितब्बं?

१२. "तस्मातिह मं, आनन्द, मित्तवताय समुदाचरथ, मा सपत्तवताय। तं वो भविस्सति दीघरत्तं हिताय सुखाय।

"कथं चानन्द, सत्थारं सावका सपत्तवताय समुदाचरन्ति, [B. 159] नो मित्तताय? इधानन्द, सत्था सावकानं धम्मं देसेति अनुकम्पको हितेसी

तथागत के चित्त में न तो कोई हलचल होती है, न उनकी उनसे कोई बातचीत या प्राप्ति की इच्छा ही होती है। आनन्द! तथागत की इस एकान्तध्यानाभ्यास की क्रिया से प्रभावित हो उनका कोई श्रावक भी अरण्य आदि एकान्त स्थान में वास करे। वहाँ आस-पास के रहने वाले ग्रामीण या नागरिक उनके एकान्तवास से प्रभावित हो, दर्शनहेतु आने लगें। वह उनसे वार्तालाप...परिग्रही हो जाय। आनन्द! यह कहलाता है—ब्रह्मचारी का दोष। यों इन सांक्लेशिक पौनर्भविक... वह ब्रह्मचारी विनाश के गर्त में ढकेल दिया जाता है। आनन्द! यह होता है—ब्रह्मचारी का (साधना-)दोष।

"आनन्द! ऊपर जो हमने आचार्य. शिष्य एवं ब्रह्मचारी के दोष गिनाये हैं, उनमें ब्रह्मचारी के दोष अपेक्षाकृत अधिक दुःखदायी, अधिक कटु विपाक वाले हैं, अन्त में पतन की तरफ ही ढकेलने वाले हैं।

४. शास्ता के साथ कैसे व्यवहार करें?

१२. "इस लिये, आनन्द! तुम मुझे अपना मित्र ही बनाओ, समझो, शत्रु (सपत्न) नहीं। यही तुम्हारे लिये दीर्घकाल तक हितकर एवं सुखकर होगा।

"आनन्द! कैसे कोई श्रावक शास्ता को शत्रुवत् बना बैठते हैं? मित्रवत्

अनुकम्पं उपादाय—'इदं वो हिताय, इदं वो सुखाया' ति। तस्स सावका न सुस्सूसन्ति, न सोतं ओदहन्ति, न अञ्ञा चित्तं उपट्ठपेन्ति, वोक्कम्म च सत्थुसासना वत्तन्ति। एवं खो, आनन्द, सत्थारं सावका सपत्तवताय समुदाचरन्ति, नो मित्तवताय।

[N. 182] "कथं चानन्द, सत्थारं सावका मित्तवताय समुदाचरन्ति, [N. 182] नो सपत्तवताय? इधानन्द, सत्था सावकानं धम्मं देसेति अनुकम्पको हितेसी अनुकम्पं उपादाय—'इदं वो हिताय, इदं वो सुखाया' ति। तस्स सावका सुस्सूसन्ति, सोतं ओदहन्ति, अञ्ञा चित्तं उपट्ठपेन्ति, न च वोक्कम सत्थुसासना वत्तन्ति। एवं खो, आनन्द, सत्थारं सावका मित्तवताय समुदाचरन्ति, नो सपत्तवताय।

[R. 118] "तस्मातिह मं, आनन्द, मित्तवताय समुदाचरथ, मा सपत्तवताय। तं वो भविस्सति दीघरत्तं हिताय सुखाय। न वो अहं, आनन्द, तथा परक्कमिस्सामि यथा कुम्भकारो आमके आमकमत्ते। निग्गय्ह निग्गय्हाहं, आनन्द, वक्खामि; पवय्ह पवय्ह, आनन्द, वक्खामि। यो सारो सो ठस्सती" ति।

नहीं? आनन्द! यहाँ शास्ता जब स्रावकों पर अनुकम्पा कर उनकी हितकामना से उन्हें उपदेश देते हैं—'यह तुम्हारे हित में है या यह तुम्हारे लिये सुखकर होगा'। परन्तु वे स्रावक उस उपदेश को न सुनना चाहते हैं, न उनकी ओर ध्यान ही देते हैं। न उसे समझ कर उस पर अपना चित्त ही स्थिर करते हैं, उल्टे, शास्ता के उस उपदेश के विरुद्ध ही आचरण करते रहते हैं। यों, आनन्द! वे शास्ता को अपना शत्रु बना बैठते हैं, मित्र नहीं।

"और कैसे, आनन्द! कोई श्रावक शास्ता को अपना मित्रवत् मान बैठते हैं, शत्रुवत् नहीं? यहाँ, आनन्द! शास्ता जब श्रावकों पर अनुकम्पा कर···सुखकर होगा' तब वे स्रावक उस उपदेश को सुनना भी चाहते हैं, उस पर ध्यान भी देते हैं, उसे समझकर उस पर अपना मन भी स्थिर करते हैं, यहाँ तक कि उस उपदेश के विरुद्ध कोई भी गलत आचरण नहीं करते। यों, आनन्द, ऐसे स्रावक शास्ता को अपना मित्र बना लेते हैं, शत्रु नहीं।

"इस लिये आनन्द! तुम शास्ता को मित्र की तरह बनाने की आचरण करो। यही तुम्हारे लिये हितकर व सुखकर होगा। आनन्द! मैं वैसा व्यर्थ प्रयास नहीं करता जैसा कोई (अज्ञ) कुम्हार कच्चे घड़ों पर या कच्चे बर्तनों पर ही कर बैठता है। मैं तो श्रावक को सब तरफ से निग्रहीत या प्रग्रहीत करके ही उपदेश करता हूँ। इसका परिणाम यह होता है कि जो इस शासन में अधिकारी (श्रामण्य का इच्छुक)

१३. इदमवोच भगवा। अत्तमनो आयस्मा आनन्दो भगवतो भासितं अभिनन्दी ति।

होगा वही ठहर पायेगा। (मेरे इस शासन में अनधिकारी के लिये कोई स्थान नहीं है"।)

१३. भगवान् यों बोले। आत्तमना आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् के कथन का अभिनन्दन किया॥

महासुञ्ञतासुत्त समाप्त॥

२३. अच्छरियअब्भुतसुत्तं

१. तथागतस्स अतीतबुद्धञानं

[N. 183] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो सम्बहुलानं भिक्खूनं पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तानं उपट्ठानसालायं सन्निसिन्नानं सन्निपतितानं अयमन्तराकथा उदपादि—"अच्छरियं, आवुसो, अब्भुतं, आवुसो, तथागतस्स [B. 160] महिद्धिकता महानुभावता, यत्र हि नाम तथागतो अतीते बुद्धे परिनिब्बुते छिन्नपपञ्चे छिन्नवटुमे परियादिन्नवट्टे सब्बदुक्खवीतिवत्ते जानिस्सति—'एवंजच्चा ते भगवन्तो अहेसुं' इति पि, 'एवंनामा ते भगवन्तो अहेसुं' इति पि, 'एवंगोत्ता ते भगवन्तो अहेसुं' इति पि, 'एवंसीला ते भगवन्तो अहेसुं' इति पि, 'एवंधम्मा ते भगवन्तो अहेसुं' इति पि, 'एवंपञ्ञा ते भगवन्तो अहेसुं' इति पि, 'एवंविहारी ते भगवन्तो अहेसुं' इति पि, 'एवंविमुत्ता ते भगवन्तो अहेसुं' इति पी" ति ! एवं वुत्ते, आयस्मा आनन्दो ते भिक्खू एतदवोच—"अच्छरिया चेव, आवुसो, तथागता अच्छरियधम्मसमन्नागता च; अब्भुता चेव, आवुसो, तथागता अब्भुतधम्मसमन्नागता चा" [R. 119] ति। अयं च हिदं तेसं भिक्खूनं अन्तराकथा विप्पकता होति।

---

२३. आश्चर्यअद्भुतधर्मसूत्र

१. तथागत का पूर्व बुद्धों के प्रति ध्यान

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्तीनगरीस्थित जेतनाराम में अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित विहार में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय, भिक्षाचर्या के बाद भोजनकर्म से निवृत्त हो, उपस्थानशाला में एक जगह बैठे भिक्षुओं में तथागत के विषय में यह बात चल पड़ी—"आयुष्मानो ! तथागत की महर्धिकता (चमत्कार) व महानुभावता (दूरदृष्टि) आश्चर्यमयी एवं अद्भुत है कि तथागत उन पूर्व बुद्धों के विषय में भी सब कुछ जानते हैं जो सांसारिक मायाजाल से छूट चुके हैं, जिनका संसार में आवागमन रुक चुका है, जो भवबन्धन से मुक्त हो चुके हैं, सभी दुःखों से दूर हो चुके हैं और निर्वाण प्राप्त कर चुके हैं; जैसे—वे इस जाति के थे, इस नाम के थे, इस गोत्र के थे, उनका ऐसा शील था, ऐसा धर्माचरण था, उनकी ऐसी प्रज्ञा थी, उनकी ऐसी साधना थी।" उन भिक्षुओं में ऐसी बातें चल ही रही थी कि आयुष्मान् आनन्द ने उनसे कहा—"आयुष्मानो ! तथागत के सभी क्रियाकलाप आश्चर्यमय हैं, आश्चर्यमय धर्मों से युक्त हैं; अद्भुत हैं, अद्भुत धर्मों से सम्पृक्त हैं।" उन भिक्षुओं में ऐसी या ऐसी ही कोई दूसरी बातें चल रही थीं।

अथ खो भगवा सायन्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो येनुपट्ठानसाला तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। निसज्ज खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"काय नुत्थ, भिक्खवे, एतरहि कथाय सन्निसिन्ना, का च पन वो अन्तराकथा विप्पकता" ति ?

"इध, भन्ते, अम्हाकं पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तानं उपट्ठानसालायं सन्निसिन्नानं सन्निपतितानं अयमन्तराकथा उदपादि—'अच्छरियं, आवुसो, अब्भुतं आवुसो, तथागतस्स महिद्धिकता महानुभावता, यत्र हि नाम तथागतो अतीते बुद्धे परिनिब्बुते छिन्नपपञ्चे छिन्नवटुमे परियादिन्नवट्टे [N. 184] सब्बदुक्खवीतिवत्ते जानिस्सति—एवंजच्चा ते भगवन्तो अहेसुं इति पि, एवंनामा... एवंगोत्ता... एवंसीला...एवंधम्मा ... एवंपञ्ञा ... एवंविहारी... एवंविमुत्ता ते भगवन्तो अहेसुं इति पी' ति ! एवं वुत्ते, भन्ते, आयस्मा आनन्दो अम्हे एतदवोच—'अच्छरिया चेव, आवुसो, तथागता अच्छरियधम्मसमन्नागता च, अब्भुता चेव, आवुसो, तथागता अब्भुतधम्मसमन्नागता चा' ति। अयं खो नो, भन्ते, अन्तराकथा विप्पकता; अथ भगवा अनुप्पत्तो" ति।

२. तथागतस्स अब्भुतधम्मा

२. अथ खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—'तस्मातिह तं, आनन्द, भिय्योसोमत्ताय पटिभन्तु तथागतस्स अच्छरिया अब्भुतधम्मा" ति।

"सम्मुखा मेतं, भन्ते, भगवतो सुतं, सम्मुखा पटिग्गहितं—[B. 161]

तदनन्तर, भगवान् सायङ्काल ध्यानसाधना से उठकर जहाँ उपस्थानशाला थी, वहाँ पधारे...और भिक्षुओं से पूछा—"भिक्षुओ ! तुम इस समय किस विषय पर चर्चा कर रहे थे ?"

"भन्ते ! यहाँ भोजन के बाद उपस्थानशाला में एकत्र हुए हम लोगों में इसी विषय पर बात चल रही थी कि—'आयुष्मानो ! तथागत की महर्धिकता...अद्भुत धर्मों से सम्पृक्त हैं'। भन्ते ! यह चर्चा चल ही रही थी कि उसी बीच भगवान् यहाँ पधार गये।"

२. तथागत के अद्भुत क्रियाकलाप

२. तब भगवान् ने आनन्द को अभिमुख कर कहा—

"तो, आनन्द ! तू और भी आनन्दपूर्वक मेरे द्वारा कथित तथागत के इन आश्चर्यमय एवं अद्भुत धर्मों को जान ले"।

"भन्ते ! मैंने भगवान् से श्रीमुख से सुना, और इसे ग्रहण किया कि—

'सतो सम्पजानो, आनन्द, बोधिसत्तो तुसितं कायं उपपज्जी' ति। यं पि, भन्ते, सतो सम्पजानो बोधिसत्तो तुसितं कायं उपपज्जि, इदं पाहं, भन्ते, भगवतो अच्छरियं अब्भुतधम्मं धारेमि।

"सम्मुखा मेतं, भन्ते, भगवतो सुतं, सम्मुखा पटिग्गहितं—'सतो सम्पजानो, आनन्द, बोधिसत्तो तुसिते काये अट्ठासी' ति। यं पि, भन्ते, सतो सम्पजानो बोधिसत्तो तुसिते काये अट्ठासि, इदं पाहं, भन्ते, भगवतो अच्छरियं अब्भुतधम्मं धारेमि।

३. "सम्मुखा मेतं, भन्ते, भगवतो सुतं, सम्मुखा पटिग्गहितं—'यावतायुकं आनन्द, बोधिसत्तो तुसिते काये अट्ठासी' ति। यं पि, भन्ते, यावतायुकं बोधिसत्तो तुसिते काये अट्ठासि, इदं पाहं, भन्ते, भगवतो अच्छरियं अब्भुतधम्मं धारेमि।

"सम्मुखा मेतं, भन्ते, भगवतो सुतं, सम्मुखा पटिग्गहितं—'सतो सम्पजानो, आनन्द, बोधिसत्तो तुसिता, काया चवित्वा मातुकुच्छिं ओक्कमी' [R. 120] ति। यं पि, भन्ते, सतो सम्पजानो बोधिसत्तो तुसिता काया चवित्वा मातुकुच्छिं ओक्कमि, इदं पाहं, भन्ते, भगवतो अच्छरियं अब्भुतधम्मं धारेमि।

[N. 185] ४. "सम्मुखा मेतं, भन्ते भगवतो सुतं, सम्मुखा पटिग्गहितं—'यदा, आनन्द, बोधिसत्तो तुसिता काया चवित्वा मातुकुच्छिं

'आनन्द ! बोधिसत्व स्मृति-सम्प्रजन्ययुक्त हो तुषित लोक में उत्पन्न होते हैं।' जो ये बोधिसत्त्व स्मृति-सम्प्रजन्ययुक्त हो तुषित लोक में उत्पन्न होते हैं—यह भी भगवान् का आश्चर्यमय एवं अद्भुत धर्म है—ऐसा समझता हूँ।

"भन्ते ! मैंने भगवान् के श्रीमुख से···बोधिसत्त्व स्मृतिसम्प्रजन्ययुक्त हो कर तुषित काय में ठहरे···अद्भुत धर्म है—ऐसा समझता हूँ।

३. "भन्ते ! मैंने भगवान् के ही श्रीमुख से···बोधिसत्त्व अपनी पूर्ण आयु तक तुषित काय (लोक) में ठहरे। भन्ते ! बोधिसत्त्व का यह जीवनपर्यन्त (पूर्ण आयु तक) तुषित लोक में ठहरना भी अद्भुत आश्चर्यमय धर्म समझता हूँ।

"भन्ते ! मैंने भगवान् के श्रीमुख से ही सुना···'आनन्द ! स्मृति-सम्प्रजन्ययुक्त बोधिसत्त्व उस तुषित लोक से च्युत हो मातृकुक्षि (माता के गर्भ) में अवक्रान्त हुए।' भन्ते ! स्मृतिसम्प्रजन्ययुक्त बोधिसत्त्व का यह तुषित लोक से च्युत हो मातृगर्भ में अवक्रान्त होना भी भगवान् का अद्भुत···धर्म समझता हूँ।

४. "भन्ते ! मैंने भगवान् के श्रीमुख से···'आनन्द ! जब बोधिसत्त्व तुषित काय से च्युत हो, मातृगर्भ में अवतरित होते हैं, तब देव-मार-ब्रह्मा सहित समग्र

ओक्कमि, अथ सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय अप्पमाणो उळारो ओभासो लोके पातुभवति अतिक्कम्मेव देवानं देवानुभावं। या पि ता लोकन्तरिका अघा असंवुता अन्धकारा अन्धकारतिमिसा, यत्थ पिमे चन्दिमसुरिया एवंमहिद्धिका एवंमहानुभावा आभाय नानुभोन्ति, तत्थ पि अप्पमाणो उळारो ओभासो लोके पातुभवति अतिक्कम्मेव देवानं देवानुभावं। ये पि तत्थ सत्ता उपपन्ना ते पि तेनोभासेन अञ्ञमञ्ञं सञ्जानन्ति—अञ्ञे पि किर, भो, सन्ति सत्ता इधूपपन्ना ति। अयं च दससहस्सी लोकधातु सङ्कम्पति सम्पकम्पति सम्पवेधति, अप्पमाणो च उळारो ओभासो लोके पातुभवति अतिक्कम्मेव देवानं [B. 162] देवानुभावं' ति। यं पि, भन्ते···पे०···इदं पाहं, भन्ते, भगवतो अच्छरियं अब्भुतधम्मं धारेमि।

५. "सम्मुखा मेतं, भन्ते, भगवतो सुतं, सम्मुखा पटिग्गहितं—'यदा, आनन्द, बोधिसत्तो मातुकुच्छिं ओक्कन्तो होति, चत्तारो देवपुत्ता चतुद्दिसं आरक्खाय उपगच्छन्ति—मा नं बोधिसत्तं वा बोधिसत्तमातरं वा मनुस्सो वा अमनुस्सो वा कोचि वा विहेठेसी' ति। यं पि, भन्ते···पे०···इदं पाहं, भन्ते, भगवतो अच्छरियं अब्भुतधम्मं धारेमि।

६. "सम्मुखा मेतं भन्ते, भगवतो सुतं, सम्मुखा पटिग्गहितं—'यदा,

लोकों में, श्रमण-ब्राह्मण-देव-मनुष्य सहित सम्पूर्ण प्रजा में, देवताओं के तेज (अवभास) को भी अतिक्रान्त कर देने वाला अपरिमित महान् प्रकाश लोक में प्रादुर्भूत होता है। जो वे घने अन्धकार से पूर्ण तमसावृत दूसरे लोक हैं, जहाँ इतने तेजस्वी इतने महानुभाव ये सूर्य-चन्द्रमा भी प्रकाश नहीं पहुँचा सकते वहाँ भी··· अपरिमित उदार प्रकाश फैल जाता है। उस समय वहाँ जो अन्य प्राणी उत्पन्न होते हैं वे भी उस प्रकाश के सहारे से एक दूसरे को पहचान लेते हैं कि यहाँ अन्य प्राणी भी उत्पन्न हुए हैं। और उस दिव्य प्रकाश से यह दशसहस्री लोकधातु (ब्रह्माण्ड) कम्पित प्रकम्पित सम्प्रवेधित हो उठती है।' भन्ते! यह भी···अद्भुत आश्चर्यमय धर्म है—ऐसा मैं समझता हूँ।

५. "भन्ते! मैंने भगवान् के श्रीमुख से ही···'आनन्द! जब बोधिसत्त्व मातृगर्भ में अवतरित होते हैं उस समय चार देवपुत्र चारों दिशाओं से उस बोधिसत्त्व की रक्षा के लिये पहुँच जाते हैं कि कोई देवता या मनुष्य इस बोधिसत्त्व को या बोधिसत्त्व की माता को किसी तरह की हानि न पहुँचा दे।' भन्ते! ···इसे भी मैं भगवान् का अद्भुत धर्म मानता हूँ।

६. "भन्ते! मैंने भगवान् के श्रीमुख से···"आनन्द! जब बोधिसत्त्व माता

आनन्द, बोधिसत्तो मातुकुच्छिं ओक्कन्तो होति, पकतिया सीलवती बोधिसत्तमाता होति विरता पाणातिपाता विरता अदिन्नादाना विरता कामेसुमिच्छाचारा विरता मुसावादा विरता सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना' ति। यं पि, भन्ते…पे०…इदं पाहं, भन्ते, भगवतो अच्छरियं अब्भुतधम्मं धारेमि।

"सम्मुखा मेतं, भन्ते, भगवतो सुतं, सम्मुखा पटिग्गहितं—'यदा, आनन्द, बोधिसत्तो मातुकुच्छिं ओक्कन्तो होति, न बोधिसत्तमातु [R. 121, N. 186] पुरिसेसु मानसं उप्पज्जति कामगुणूपसहितं, अनतिक्कमनीया च बोधिसत्तमाता होति केनचि पुरिसेन रत्तचित्तेना' ति। यं पि, भन्ते…पे०…इदं पाहं, भन्ते, भगवतो अच्छरियं अब्भुतधम्मं धारेमि।

"सम्मुखा मेतं, भन्ते, भगवतो सुतं, सम्मुखा पटिग्गहितं—'यदा, आनन्द, बोधिसत्तो मातुकुच्छिं ओक्कन्तो होति, लाभिनी बोधिसत्तमाता होति पञ्चन्नं कामगुणानं। सा पञ्चहि कामगुणेहि समप्पिता समङ्गीभूता परिचारेती' ति। यं पि, भन्ते…पे०…इदं पाहं, भन्ते, भगवतो अच्छरियं अब्भुतधम्मं धारेमि।

७. "सम्मुखा मेतं, भन्ते, भगवतो सुतं, सम्मुखा पटिग्गहितं—'यदा आनन्द, बोधिसत्तो मातुकुच्छिं ओक्कन्तो होति, न बोधिसत्तमातु कोचिदेव आबाधो उप्पज्जति; सुखिनी बोधिसत्तमाता होति अकिलन्तकाया;

की कोंख में अवतरित होते हैं उस समय बोधिसत्त्व की माता स्वभाव से उतनी शीलसम्पन्न हो जाती है कि वह हिंसा, चोरी, व्यभिचार, असत्यभाषण एवं मद्यपान आदि दुर्गुणों से पूर्णतः विरत रहती है।' भन्ते !…मैं यह भी भगवान् का अद्भुत धर्म ही समझता हूँ।

"भन्ते ! मैंने भगवान् के श्रीमुख से…'आनन्द ! जिस दिन बोधिसत्त्व माता के गर्भ में अवक्रान्त होते हैं, उसी दिन से बोधिसत्त्व की माता के मन में किसी भी पुरुष के प्रति कामोत्पाद नहीं होता, न कोई पुरुष उनकी ओर कामरागचित्त से आँख उठा कर देखने का साहस ही करता है।' भन्ते ! …यह भी भगवान् का अद्भुत धर्म ही है—ऐसा मैं समझता हूँ।

"भन्ते ! …श्रीमुख से…'आनन्द ! जब बोधिसत्त्व की माता की कुक्षि में आते हैं तभी से बोधिसत्त्वमाता पञ्चविध कामगुणों से तृप्त रहती है, उसे उनकी कोई कमी नहीं रहती।' भन्ते ! यह…अद्भुत धर्म ही है—ऐसा मैं समझता हूँ।

७. "भन्ते !…श्रीमुख से…'आनन्द ! जिस दिन बोधिसत्त्व माता की कोंख में आते हैं उसी दिन से उस माताश्री को किसी प्रकार का रोग (आबाध)

बोधिसत्तं च बोधिसत्तमाता तिरोकुच्छिगतं पस्सति सब्बङ्ग- [B. 163] पच्चङ्गं अहीनिन्द्रियं। सेय्यथापि, आनन्द, मणि वेळुरियो सुभो जातिमा अट्ठंसो सुपरिकम्मकतो। तत्रास्स सुत्तं आवुतं नीलं वा पीतं वा लोहितं वा ओदातं वा पण्डुसुत्तं वा। तमेनं चक्खुमा पुरिसो हत्थे करित्वा पच्चवेक्खेय्य— 'अयं खो मणि वेळुरियो सुभो जातिमा अट्ठंसो सुपरिकम्मकतो, तत्रिदं सुत्तं आवुतं नीलं वा पीतं वा लोहितं वा ओदातं वा पण्डुसुत्तं वा' ति। एवमेव खो, आनन्द, यदा बोधिसत्तो मातुकुच्छि ओक्कन्तो होति, न बोधिसत्तमातु कोचिदेव आबाधो उप्पज्जति; सुखिनी बोधिसत्तमाता होति अकिलन्तकाया; बोधिसत्तं च बोधिसत्तमाता तिरोकुच्छिगतं पस्सति सब्बङ्गपच्चङ्गं अहीनिन्द्रियं' ति। यं पि, भन्ते…पे०…इदं पाहं, भन्ते, भगवतो अच्छरियं अब्भुतधम्मं धारेमि।

८ "सम्मुखा मेतं, भन्ते, भगवतो सुतं, सम्मुखा पटिग्गहितं [R. 122] —'सत्ताहजाते, आनन्द, बोधिसत्ते बोधिसत्तमाता कालं करोति, तुसितं कायं उप्पज्जती' ति। यं पि, भन्ते…पे०…इदं पाहं, भन्ते, भगवतो अच्छरियं अब्भुतधम्मं धारेमि।

"सम्मुखा मेतं, भन्ते, भगवतो सुतं, सम्मुखा पटिग्गहितं—'यथा खो पनानन्द, अञ्ञा इत्थिका नव वा दस वा मासे गब्भं कुच्छिना [N. 187] परिहरित्वा विजायन्ति, न हेवं बोधिसत्तं बोधिसत्तमाता विजायति। दसेव

नहीं होता, उसके शरीर में कोई पीड़ा नहीं होती, वह सब तरह से स्वस्थ सुखी रहती है। और वह गर्भगत बोधिसत्त्व को सभी अङ्ग-प्रत्यङ्गों के साथ सभी स्वस्थ इन्द्रियों के साथ बढते हुए देखती रहती है। आनन्द! जैसे शुभ्र, उत्तम जाति की, अठकोणी, भलीभाँति चमकायी गयी वैदूर्यमणि हो, उसमें नीला, पीला, लाल, श्वेत, नारङ्गी (पीत या पाण्डु) रंग का सूत पिरोया गया हो; उसे हाथ में लेकर कोई आँखों वाला देखे—'यह…वैदूर्यमणि है इसमें नीला…सूत पिरोया है; इसी प्रकार आनन्द! बोधिसत्त्व गर्भ में…बढते हुए देखती रहती है।' भन्ते! यह भी…धर्म है—ऐसा समझता हूँ।

८. "भन्ते! मैंने भगवान् के श्रीमुख से…'आनन्द! बोधिसत्त्व के माता की कोंख से बाहर आने के सप्ताह भर बाद, जब बोधिसत्त्व की माता यहाँ प्राणत्याग करती है तो वह सीधे तुषित देवलोक में उत्पन्न होती है।' भन्ते! यह भी… धर्म है—ऐसा समझता हूँ।

"भन्ते! मैंने भगवान् के श्रीमुख से…'आनन्द! जैसे अन्य साधारण स्त्री को नवें या दसवें मास में बालक गर्भ से प्रसूत होता है वैसे बोधिसत्त्व माता बोधि-

मासानि बोधिसत्तं बोधिसत्तमाता कुच्छिना परिहरित्वा विजायती' ति। यं पि, भन्ते…पे०…इदं पाहं, भन्ते, भगवतो अच्छरियं अब्भुतधम्मं धारेमि।

"सम्मुखा मेतं, भन्ते, भगवतो सुतं, सम्मुखा पटिग्गहितं—'यथा खो पनानन्द, अञ्ञा इत्थिका निसिन्ना वा निपन्ना वा विजायन्ति, न हेवं बोधिसत्तं बोधिसत्तमाता विजायति। ठिता व बोधिसत्तं बोधिसत्तमाता विजायती' ति। यं पि, भन्ते…पे०…इदं पाहं, भन्ते, भगवतो अच्छरियं अब्भुतधम्मं धारेमि।

"सम्मुखा मेतं, भन्ते, भगवतो सुतं, सम्मुखा पटिग्गहितं—'यदा, आनन्द, बोधिसत्तो मातुकुच्छिम्हा निक्खमति, देवा नं पठमं पटिग्गण्हन्ति पच्छा मनुस्सा' ति। यं पि, भन्ते…पे०…इदं पाहं, भन्ते, भगवतो अच्छरियं अब्भुतधम्मं धारेमि।

[B. 164] ९. "सम्मुखा मेतं, भन्ते, भगवतो सुतं, सम्मुखा पटिग्गहितं--'यदा आनन्द, बोधिसत्तो मातुकुच्छिम्हा निक्खमति, अप्पत्तो व बोधिसत्तो पथविं होति, चत्तारो नं देवपुत्ता पटिग्गहेत्वा मातु पुरतो ठपेन्ति—अत्तमना, देवि, होहि; महेसक्खो ते पुत्तो उप्पन्नो' ति। यं पि, भन्ते…पे०…इदं पाहं, भन्ते, भगवतो अच्छरियं अब्भुतधम्मं धारेमि।

"सम्मुखा मेतं, भन्ते, भगवतो सुतं, सम्मुखा पटिग्गहितं--'यं वा, आनन्द,

---

सत्त्व का प्रसव नहीं करतीं। वे दस मास पूर्ण होने पर ही प्रसूता होती हैं।' भन्ते! यह भी…धर्म है—ऐसा मैं समझता हूँ।

"भन्ते! मैंने भगवान् के श्रीमुख से ही सुना है—'आनन्द! जैसे अन्य स्त्रियाँ बैठकर या लेटकर प्रसव करती हैं, वैसे बोधिसत्त्व की माता नहीं करती। वह तो स्थित रहती हुई ही प्रसव करती हैं।' भन्ते! यह भी…धर्म है—ऐसा मैं समझता हूँ।

"भन्ते! मैंने भगवान् के श्रीमुख से ही…'आनन्द! जब बोधिसत्त्व माता की कोख से बाहर आते हैं तो पहले उन्हें देवता अपने हाथों में लेते हैं, फिर मनुष्य।' भन्ते! यह भी…धर्म है—ऐसा मैं समझता हूँ।

९. "भन्ते! मैंने भगवान् के श्रीमुख से ही सुना है कि 'आनन्द! जब बोधिसत्त्व गर्भ से बाहर आते हैं तो उस समय पृथ्वी का स्पर्श होने से पूर्व ही चार देवपुत्र उन्हें अपने पवित्र हाथों में लेकर माता के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं—देवी! आप प्रसन्न हों, आप को महाप्रतापी (महेसक्ख) पुत्र हुआ है।' भन्ते! यह भी…धर्म है—ऐसा मैं समझता हूँ।

"भन्ते! यह मैंने आप के श्रीमुख से ही…'आनन्द! जब बोधिसत्त्व अपनी

बोधिसत्तो मातुकुच्छिम्हा निक्खमति, विसदो व निक्खमति अमक्खितो उदेन अमक्खितो सेम्हेन अमक्खितो रुहिरेन अमक्खितो केनचि असुचिना सुद्धो विसदो। सेय्यथापि, आनन्द, मणिरतनं कासिके वत्थे [R. 123] निक्खित्तं नेव मणिरतनं कासिकं वत्थं मक्खेति, नापि कासिकं वत्थं मणि-रतनं मक्खेति। तं किस्स हेतु? उभिन्नं सुद्धत्ता। एवमेव खो, आनन्द, यदा बोधिसत्तो मातुकुच्छिम्हा निक्खमति, विसदो व निक्खमति अमक्खितो उदेन अमक्खितो सेम्हेन अमक्खितो रुहिरेन अमक्खितो केनचि असुचिना सुद्धो विसदो' ति। यं पि, भन्ते…पे०…इदं पाहं, भन्ते, [N. 188] भगवतो अच्छरियं अब्भुतधम्मं धारेमि।

"सम्मुखा मेतं भन्ते, भगवतो सुतं, सम्मुखा पटिग्गहितं--'यदा आनन्द, बोधिसत्तो मातुकुच्छिम्हा निक्खमति, द्वे उदकस्स धारा अन्तलिक्खा पातुभवन्ति--एका सीतस्स, एका उण्हस्स; येन बोधिसत्तस्स उदककिच्चं करोन्ति मातु चा' ति। यं पि, भन्ते…पे०…इदं पाहं, भन्ते, भगवतो अच्छ-रियं अब्भुतधम्मं धारेमि।

१० "सम्मुखा मेतं, भन्ते, भगवतो सुतं, सम्मुखा पटिग्गहितं--सम्प-तिजातो, आनन्द, बोधिसत्तो समेहि पादेहि पथवियं पतिट्ठहित्वा उत्तरा-भिमुखो सत्तपदवीतिहारेन गच्छति, सेतम्हि छत्ते अनुधारियमाने, सब्बा च

माता की कोंख से बाहर आते हैं तब वे साफ-सुथरे से ही निकलते हैं, वे अन्य साधारण बालकों की तरह मैले, गर्भोदक से या रक्त व श्लेष्मा से लिपटे नहीं रहते, अपितु शुद्ध विशद (साफ) ही निकलते हैं।' आनन्द! जैसे कोई मणिरत्न काशी के बने कौषेय वस्त्र में लिपटा न उस वस्त्र में चिपकता है, न वह वस्त्र ही उस मणिरत्न से चिपकता है; क्योंकि वे दोनों ही सुविशुद्ध हैं; उसी तरह आनन्द! जब बोधिसत्त्व अपनी माता की कोंख से…शुद्ध विशद ही निकलते हैं।' भन्ते! यह भी…धर्म है—ऐसा मैं समझता हूँ।

"भन्ते! मैंने आप के ही श्रीमुख से…'आनन्द! जब बोधिसत्त्व माता की कोंख से बाहर आते हैं, उसी समय आकाश से जल की दो धाराएँ गिरने लगती हैं—एक ठण्डे जल की और दूसरी गरम जल की, उनसे बोधिसत्त्व की स्नानक्रिया या प्रक्षालनक्रिया सम्पन्न होती है।' भन्ते! यह भी…धर्म है—ऐसा मैं सम-झता हूँ।

१०. "भन्ते! मैंने भगवान् के श्रीमुख से…'आनन्द! सद्यः उत्पन्न बोधि-सत्त्व अपने श्रीचरणों को पृथिवी पर समतल रख कर उत्तर दिशा की ओर मुख कर, सात पदक्रम (कदम) चलते हैं, (देवताओं द्वारा) श्वेत छत्र धारण कर सब दिशाएँ

दिसा विलोकेति, आसभिं च वाचं भासति--अग्गोहमस्मि लोकस्स, जेट्ठो-हमस्मि लोकस्स, सेट्ठोहमस्मि लोकस्स। अयमन्तिमा जाति, नत्थि दानि पुनब्भवो' ति। यं पि, भन्ते…पे०…इदं पाहं, भन्ते, भगवतो अच्छरियं अब्भुतधम्मं धारेमि।

[B. 165] "सम्मुखा मेतं, भन्ते, भगवतो सुतं, सम्मुखा पटिग्गहितं --'यदा, आनन्द, बोधिसत्तो मातुकुच्छिम्हा निक्खमति, अथ सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय अप्पमाणो उळारो ओभासो लोके पातुभवति अतिक्कम्मेव देवानं देवानुभावं। या पि ता लोकन्तरिका अघा असंवुता अन्धकारा अन्धकारतिमिसा, यत्थ पिमे चन्दिमसुरिया एवंमहिद्धिका एवंमहानुभावा आभाय नानुभोन्ति तत्थ पि अप्पमाणो [R. 124] उळारो ओभासो लोके पातुभवति अतिक्कम्मेव देवानं देवानुभावं। ये पि तत्थ सत्ता उपपन्ना ते पि तेनोभासेन अञ्ञमञ्ञं सञ्जानन्ति —अञ्ञे पि किर, भो, सन्ति सत्ता इधूपपन्ना ति। अयं च दससहस्सी लोकधातु सङ्कम्पति सम्पकम्पति सम्पवेधति, अप्पमाणो च उळारो ओभासो लोके पातुभवति अतिक्कम्मेव देवानं देवानुभावं' ति। यं पि, भन्ते…पे०… इदं पाहं, भन्ते, भगवतो अच्छरियं अब्भुतधम्मं धारेमी" ति।

३. अयं पि तथागतस्स अब्भुतधम्मो

[N. 189] ११. "तस्मातिह त्वं, आनन्द, इदं पि तथागतस्स अच्छरियं अब्भुतधम्मं धारेहि। इधानन्द, तथागतस्स विदिता वेदना उप्पज्जन्ति, विदिता उपट्ठहन्ति, विदिता अब्भत्थं गच्छन्ति; विदिता सञ्ञा उप्पज्जन्ति…पे०…विदिता वितक्का उप्पज्जन्ति, विदिता उपट्ठहन्ति, विदिता

देखते हुए यह गम्भीर (आर्षभी) वाणी बोलते हैं—'मैं इस लोक में अग्र (प्रथम गणनीय) हूँ, श्रेष्ठ (उच्चतम) हूँ, ज्येष्ठ (प्रमुखतम) हूँ। मेरा संसार में यह अन्तिम आगमन (जन्म) है। अब यहाँ मेरा पुनर्जन्म नहीं होगा।'

"भन्ते! मैंने आप के श्रीमुख से ही सुना है—'आनन्द! जब बोधिसत्त्व माता की कोख से बाहर आते हैं तब देवमार-ब्रह्मा सहित…पूर्ववत्…सम्प्रवेधित हो उठती हैं।' भन्ते! यह भी…धर्म है—ऐसा मैं समझता हूँ"।

३. यह भी तथागत का अद्भुत धर्म है

११. "इसी तरह, आनन्द! तुम तथागत के इस अद्भुत आश्चर्यमय धर्म को भी अपने मन में बैठा लो। आनन्द! यहाँ तथागत को सभी वेदनाएँ (अनुभव) पहले से विदित होती हुई ही उत्पन्न होती हैं…स्थित होती हैं, …अस्त होती हैं;

अब्भत्थं गच्छन्ति । इदं पि खो, त्वं, आनन्द, तथागतस्स अच्छरियं अब्भुत-धम्मं धारेही" ति ।

"यं पि, भन्ते, भगवतो विदिता वेदना उप्पज्जन्ति, विदिता उपट्ठहन्ति, विदिता अब्भत्थं गच्छन्ति; विदिता सञ्ञा···विदिता वितक्का उप्पज्जन्ति, विदिता उपट्ठहन्ति, विदिता अब्भत्थं गच्छन्ति, इदं पाहं, भन्ते, भगवतो अच्छरियं अब्भुतधम्मं धारेमी" ति ।

१२. इदमवोच आयस्मा आनन्दो । समनुञ्ञो सत्था अहोसि; अत्तमना च ते भिक्खू आयस्मतो आनन्दस्स भासितं अभिनन्दुं ति ।

इसी प्रकार सभी संज्ञाएँ··सभी वितर्क···विदित होते हुए ही अस्त होते हैं।' आनन्द ! यह भी···धर्म है—ऐसा तुम समझ लो।"

"भन्ते ! भगवान् को ये जो सभी वेदनाएँ···सभी संज्ञाएँ···सभी वितर्क··· विदित होते हुए ही अस्त होते हैं यह भी···धर्म है—ऐसा मैंने समझ लिया है।"

१२. आयुष्मान् आनन्द ने यह कहा। शास्ता ने आनन्द (की इस बात) का समर्थन किया। सामने बैठे सभी भिक्षुओं ने आयुष्मान् आनन्द के इस भाषण का अभिनन्दन किया।

अच्छरियअब्भुतसुत्त समाप्त ॥

२४. बाकुलसुत्तं

१. आयस्मतो बाकुलस्स अच्छरियधम्मा

[N. 190, B. 166] १. एवं मे सुतं। एकं समयं आयस्मा बाकुलो राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। अथ खो अचेलकस्सपो आयस्मतो [R. 125] बाकुलस्स पुराणगिहिसहायो येनायस्मा बाकुलो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता बाकुलेन सद्धिं सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो अचेलकस्सपो आयस्मन्तं बाकुलं एतदवोच—

"कीवचिरं पब्बजितोसि, आवुसो बाकुला" ति ?

"असीति मे, आवुसो, वस्सानि पब्बजितस्सा" ति।

"इमेहि पन ते, आवुसो बाकुल, असीतिया वस्सेहि कतिक्खत्तुं मेथुनो धम्मो पटिसेवितो" ति ?

"न खो मं, आवुसो कस्सप, एवं पुच्छितब्बं—'इमेहि पन ते, आवुसो बाकुल, असीतिया वस्सेहि कतिक्खत्तुं मेथुनो धम्मो पटिसेवितो' ति। एवं च खो मं, आवुसो कस्सप, पुच्छितब्बं—'इमेहि पन ते, आवुसो बाकुल, असीतिया वस्सेहि कतिक्खत्तुं कामसञ्ञा उप्पन्नपुब्बा' ति ? असीति मे, आवुसो, वस्सानि पब्बजितस्स नाभिजानामि कामसञ्ञं उप्पन्नपुब्बं"।

---

२४. बाकुलसूत्र

१. आयुष्मान् बाकुल के आश्चर्यमय धर्म

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय आयुष्मान् बाकुल राजगृह के वेणुवन-स्थित कलन्दकनिवाप में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। उस समय अचेलकाश्यप नामक नग्न परिव्राजक, जो कि उस आयुष्मान् बाकुल का गृहस्थधर्म के समय का पुराना साथी था, जहाँ आयुष्मान् बाकुल विराजमान थे, वहाँ पहुँचा। पहुँच कर उसने आयुष्मान् बाकुल से कुशल-मङ्गल व स्वास्थ्य का समाचार पूछा। समाचार पूछ कर वह एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस अचेलकाश्यप ने आयुष्मान् बाकुल से वह प्रश्न किया—

"आयुष्मान् बाकुल ! आप को प्रव्रजित हुए कितना समय हो गया ?"

"आयुष्मन् ! मुझे प्रव्रजित हुए अस्सी वर्ष हो गये।"

"आयुष्मन् बाकुल ! इन अस्सी वर्षों में कितनी बार मैथुनधर्म (स्त्रीप्रसङ्ग) का सेवन किया है ?"

"आयुष्मन् काश्यप ! तुम्हें मुझसे यह नहीं पूछना चाहिये था कि तुमने इन अस्सी वर्षों में कितनी बार मैथुनधर्म का प्रतिसेवन किया है, अपितु यही बात यों पूछनी चाहिये थी कि—'आपको, आयुष्मन् बाकुल ! इन अस्सी वर्षों में कितनी बार कामसंज्ञा (कामविकार) उत्पन्न हुई है ?' आयुष्मन् ! मुझे तो यह स्मरण

"यं पायस्मा बाकुलो असीतिया वस्सेहि नाभिजानाति कामसञ्ञं उप्पन्नपुब्बं इदं पि मयं आयस्मतो बाकुलस्स अच्छरियं अब्भुतधम्मं धारेम"।

"असीति मे, आवुसो, वस्सानि पब्बजितस्स नाभिजानामि [N. 191] ब्यापादसञ्ञं···पे०···विहिंसासञ्ञं उप्पन्नपुब्बं"।

"यं पायस्मा बाकुलो असीतिया वस्सेहि नाभिजानाति विहिंसासञ्ञं उप्पन्नपुब्बं, इदं पि मयं आयस्मतो बाकुलस्स अच्छरियं अब्भुतधम्मं धारेम"।

"असीति मे, आवुसो, वस्सानि पब्बजितस्स नाभिजानामि कामवितक्कं उप्पन्नपुब्बं"।

"यं पायस्मा बाकुलो असीतिया वस्सेहि नाभिजानाति कामवितक्कं उप्पन्नपुब्बं, इदं पि मयं आयस्मतो बाकुलस्स अच्छरियं अब्भुतधम्मं धारेम"।

"असीति मे, आवुसो, वस्सानि पब्बजितस्स नाभिजानामि ब्यापादवितक्कं···पे०···विहिंसावितक्कं उप्पन्नपुब्बं"।

"यं पायस्मा बाकुलो असीतिया वस्सेहि नाभिजानाति [B. 167] विहिंसावितक्कं उप्पन्नपुब्बं, इदं पि मयं आयस्मतो बाकुलस्स अच्छरियं अब्भुतधम्मं धारेम"।

ही नहीं आता कि इन अस्सी वर्षों में कभी मुझे एक बार भी कामसंज्ञा उत्पन्न हुई हो !"

"आयुष्मन् बाकुल ! इन बीते हुए अस्सी वर्षों में आप को एक बार भी कामसंज्ञा उत्पन्न नहीं हुई—इस बात को हम आपके विषय में अद्भुत धर्म स्वीकार करते हैं।"

"आयुष्मन् ! इतना ही नहीं, इन पिछले अस्सी वर्षों में मेरे चित्त में किसी के प्रति व्यापादसंज्ञा (द्वेषभाव) या अहिंसाभाव उत्पन्न हुआ हो—ऐसा भी मुझे स्मरण नहीं है।"

"आयुष्मन्···व्यापादसंज्ञा···यह भी आप में अद्भुत धर्म ही है—ऐसा मैं मान लेता हूँ।"

"आयुष्मन् ! बीते अस्सी वर्षों में कभी मेरे चित्त में कामवितर्क भी उत्पन्न नहीं हुआ।"

"यह भी मैं आपका अद्भुत धर्म मान लेता हूँ।"

"आयुष्मन् !···कभी मुझे व्यापादवितर्क, विहिंसावितर्क नहीं हुआ।"

"···यह भी मैं आपका अद्भुतधर्म···"।

[R. 126] २. "असीति मे, आवुसो, वस्सानि पब्बजितस्स नाभिजानामि गहपतिचीवरं सादिता"।

"यं पायस्मा बाकुलो असीतिया वस्सेहि नाभिजानाति गहपतिचीवरं सादिता, इदं पि मयं आयस्मतो बाकुलस्स अच्छरियं अब्भुतधम्मं धारेम"।

"असीति मे, आवुसो, वस्सानि पब्बजितस्स नाभिजानामि सत्थेन चीवरं छिन्दिता"।

"यं पायस्मा बाकुलो असीतिया वस्सेहि नाभिजानाति सत्थेन चीवरं छिन्दिता…पे०…धारेम"।

असीति मे, आवुसो, वस्सानि पब्बजितस्स नाभिजानामि सूचिया चीवरं सिब्बिता…पे०…नाभिजानामि रजनेन चीवरं रजिता…नाभिजानामि कठिने चीवरं सिब्बिता…नाभिजानामि सब्रह्मचारीनं चीवरकम्मे [N. 192] विचारिता…नाभिजानामि निमन्तनं सादिता…नाभिजानामि एवरूपं चित्तं उप्पन्नपुब्बं—'अहो वत मं कोचि निमन्तेय्या' ति… नाभिजानामि अन्तरघरे निसीदिता…नाभिजानामि अन्तरघरे भुञ्जिता… नाभिजानामि मातुगामस्स अनुब्यञ्जनसो निमित्तं गहेता…नाभिजानामि मातुगामस्स धम्मं देसिता अन्तमसो चतुप्पदं पि गाथं…नाभिजानामि भिक्खुनुपस्सयं उपसङ्कमिता…नाभिजानामि भिक्खुनिया धम्मं देसिता… नाभिजानामि सिक्खमानाय धम्मं देसिता…नाभिजानामि सामणेरिया धम्मं

---

२. "आयुष्मन् ! मुझे याद नहीं पड़ता कि मैंने पिछले अस्सी वर्षों में किसी गृहस्थ का दिया नया वस्त्र पहना हो।"

"…यह भी आप में अद्भुत धर्म ही है…।"

"आयुष्मन् ! मुझे स्मरण नहीं आता कि इन वर्षों में मैंने कभी शस्त्र (कैंची) से कटा वस्त्र पहना हो।"

"…यह भी आप में आश्चर्यजनक धर्म ही है…।"

"आयुष्मन् ! मुझे याद नहीं आता कि मैंने इस बीते समय में सूई से सिला वस्त्र कभी पहना हो। …रंगा हुआ वस्त्र…'कठिन' में मिला हुआ वस्त्र सूई से सिला हो…सब्रह्मचारियों के चीवर…किसी का निमन्त्रण स्वीकार किया हो…न मुझे यही याद आता है कि मैंने सोचा हो कि कोई मुझे निमन्त्रण देकर भोजन के लिये बुलाये…न यही कि किसी गृहस्थ के घर में किसी कार्य से जाकर बैठा होऊँ… या किसी गृहस्थ के घर में बैठ कर भोजन किया हो…किसी स्त्री की आकृति को ध्यानपूर्वक देखा हो…किसी स्त्री को थोड़ा भी धर्मोपदेश किया हो यहाँ तक किसी गाथा की चार पंक्ति भी…किसी भिक्षुणी-आवास में गया होऊँ…किसी भिक्षुणी को

देसिता…नाभिजानामि पब्बाजेता…नाभिजानामि उपसम्पादेता…नाभिजानामि निस्सयं दाता…नाभिजानामि सामणेरं उपट्ठापेता…नाभिजानामि जन्ताघरे न्हायिता…नाभिजानामि चुण्णेन न्हायिता…नाभिजानामि सब्रह्मचारी गत्तपरिकम्मे विचारिता…नाभिजानामि आबाधं [R. 127] उप्पन्नपुब्बं, अन्तमसो गद्दूहनमत्तं पि…नाभिजानामि भेसज्ज उपहरिता, अन्तमसो हरीतकीखण्डं पि…नाभिजानामि अपस्सेनकं अपस्सयिता…नाभिजानामि सेय्यं कप्पेता।

"यं पायस्मा…पे०…धारेम"।

"असीति मे, आवुसो, वस्सानि पब्बजितस्स नाभिजानामि गामन्तसेनासने वस्सं उपगन्ता"।

"यं पायस्मा बाकुलो असीतिया वस्सेहि नाभिजानाति [B. 168] गामन्तसेनासने वस्सं उपगन्ता, इदं पि मयं आयस्मतो बाकुलस्स अच्छरियं अब्भुतधम्मं धारेम"।

"सत्ताहमेव खो अहं, आवुसो, सरणो रट्ठपिण्डं भुञ्जि; अथ अट्ठमियं अञ्ञा उदपादि"।

"यं पायस्मा बाकुलो सत्ताहमेव सरणो रट्ठपिण्डं भुञ्जि; अथ अट्ठमियं

धर्मोपदेश किया हो…शिक्षमाणा (भिक्षुणी-उपसम्पदा के लिये प्रतीक्षारत उपासिका) को…श्रामणेरी को धर्मोपदेश…प्रव्रज्या…उपसम्पदा…निःश्रय (गुरु बनने का आश्वासन) दिया हो…श्रामणेर से सेवा ली हो…स्नानगृह (जन्ताघर) में स्नान किया हो…उबटन लगाया हो…सब्रह्मचारियों से देह मलवाया हो…कभी मुझे कोई रोग हुआ हो, यहाँ तक की साधारण दाद-खुजली भी…कभी ओषधि का प्रयोग किया हो यहाँ तक कि हर्रे का एक टुकड़ा भी…अपने लिये खाट बिछायी हो…खाट पर सोया होऊँ।"

"…यह भी मैं…आप का अद्भुत धर्म मान लेता हूँ।"

"आयुष्मन्! इन अस्सी वर्षों में मुझे यह भी याद नहीं आता कि कभी मैंने वर्षाऋतु में ग्राम में निवास किया हो।"

"…यह भी आयुष्मान् का आश्चर्योत्पादक धर्म है।"

"आयुष्मन्! इन अस्सी वर्षों में मैंने प्रारम्भ के सात दिन ही सरण (चित्तमलयुक्त—अर्हत् बिना हुए) रह कर जनता (राष्ट्र) का भोजन किया है। आठवें दिन तो मुझे ज्ञान (आ-ज्ञा) प्राप्त हो गया।"

"…यह भी…आश्चर्योत्पादक धर्म मानता हूँ।"

अञ्ञा उदपादि इदं पि मयं आयस्मतो बाकुलस्स अच्छरियं अब्भुतधम्म धारेम"।

[N. 193] ३. "लभेय्याहं, आवुसो बाकुल, इमस्मिं धम्मविनये पब्बज्जं, लभेय्यं उपसम्पदं" ति।

२. अचेलकस्सपस्स पब्बज्जा

४. अलत्थ खो अचेलकस्सपो इमस्मिं धम्मविनये पब्बज्जं, अलत्थ उपसम्पदं। अचिरूपसम्पन्नो पनायस्मा कस्सपो एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो नचिरस्सेव—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं—ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहासि। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति अब्भञ्ञासि। अञ्ञतरो खो पनायस्मा कस्सपो अरहतं अहोसि।

अथ खो आयस्मा बाकुलो अपरेन समयेन अवापुरणं आदाय विहारेन विहारं उपसङ्कमित्वा एवमाह—"अभिक्कमथायस्मन्तो, अभिक्कमथायस्मन्तो। अज्ज मे परिनिब्बानं भविस्सती" ति।

"यं पायस्मा बाकुलो अवापुरणं आदाय विहारेन विहारं उपसङ्कमित्वा एवमाह—'अभिक्कमथायस्मन्तो, अभिक्कमथायस्मन्तो; अज्ज मे परिनिब्बानं भविस्सती' ति, इदं पि मयं आयस्मतो बाकुलस्स अच्छरियं अब्भुतधम्मं धारेम"।

---

३. "आयुष्मन् बाकुल ! क्या ही अच्छा हो, मैं भी आपके इस धर्मविनय में प्रव्रज्या व उपसम्पदा प्राप्त कर लूँ।"

२. अचेलकाश्यप की प्रव्रज्या

४. अचेलकाश्यप ने इस (सौगत) धर्मविनय में प्रव्रज्या प्राप्त कर ली, उपसम्पदा प्राप्त कर ली। उपसम्पदा पाये कुछ ही समय बीतने के बाद आयुष्मान् काश्यप ने एकाकी···पूर्ववत्···और कुछ यहाँ करने को शेष नहीं रहा'—वह जान लिया। ये आयुष्मान् काश्यप गण्य, मान्य अर्हतों में एक हो गये।

तब आयुष्मान् बाकुल पीछे कुछ समय बाद कुञ्जी (अपापुरण) लेकर इस विहार से उस विहार में जाकर यों कहने लगे—"निकलो, आयुष्मानो ! अपनी कुटिया से बाहर निकलो; आज मेरा परिनिर्वाण होगा।"

"यह जो आयुष्मान् बाकुल ने विहार से विहार में जाकर समय से पहले ही अपनी मृत्यु की सूचना दी--यह भी उनका आश्चर्योत्पादक धर्म ही था।"

अथ खो आयस्मा बाकुलो मज्झे भिक्खुसङ्घस्स निसिन्नको [R. 128] व परिनिब्बायि। "यं पायस्मा बाकुलो मज्झे भिक्खुसङ्घस्स निसिन्नको व परिनिब्बायि, इदं पि मयं आयस्मतो बाकुलस्स अच्छरियं अब्भुतधम्मं धारेमा" ति।

इसके बाद आयुष्मान् बाकुल ने भिक्षुसङ्घ के बीच में ही बैठे बेठे परिनिर्वाण पा लिया--यह भी उन आयुष्मान् बाकुल का आश्चर्योत्पादक धर्म ही था, ऐसा हम मानते हैं।

बाकुलसुत्त समाप्त ।।

२५. दन्तभूमिसुत्तं

१. जयसेनराजकुमारवत्थु

[N. 194, B. 169] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। तेन खो पन समयेन अचिरवतो समणुद्देसो अरञ्ञकुटिकायं विहरति। अथ खो जयसेनो राजकुमारो जङ्घाविहारं अनुचङ्कममानो अनुविचरमानो येन अचिरवतो समणुद्देसो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा अचिरवतेन समणुद्देसेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो जयसेनो राजकुमारो अचिरवतं समणुद्देसं एतदवोच—

"सुतं मेतं, भो अग्गिवेस्सन—'इध भिक्खु अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो फुसेय्य चित्तस्स एकग्गतं'" ति।

"एवमेतं, राजकुमार, एवमेतं, राजकुमार। इध भिक्खु अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो फुसेय्य चित्तस्स एकग्गतं" ति।

"साधु मे भवं अग्गिवेस्सनो यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं देसेतू" ति।

"न खो ते अहं, राजकुमार, सक्कोमि यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं देसेतुं। अहं च हि ते, राजकुमार, यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं देसेय्यं, त्वं

---

२५. दन्तभूमिसूत्र

१. जयसेन राजकुमार से अचिरवत श्रामणेर का संवाद

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) राजगृह के वेणुवनस्थित कलन्दकनिवाप में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय अचिरवत नामक श्रामणेर (समणुद्देस) अरण्य में बनी किसी कुटिया में साधना कर रहे थे। तभी जयसेन राजकुमार पैदल ही चलकर इधर-उधर भ्रमण करता हुआ, जहाँ अचिरवत श्रामणेर थे, वहाँ पहुँचा। पहुँचकर अचिरवत श्रामणेर के साथ कुशल-मङ्गल पूछने लगा। कुशल-मङ्गल पूछ कर वह एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे जयसेन राजकुमार ने श्रामणेर से पूछा—"भो अग्निवेश (-गोत्रधारिन्)! भिक्षु प्रमादरहित हो, उद्योग एवं संयम के सहारे चित्त की एकाग्रता (निरोध) प्राप्त कर सकता है?"

"हाँ, राजकुमार! यह बात ऐसी ही है। कोई भी भिक्षु...प्राप्त कर सकता है।"

"अच्छा हो कि आप अपने सुने-समझे के अनुसार मुझे भी इस धर्म का उपदेश करें।"

"नहीं, राजकुमार! मैं तुम्हें अपने सुने-समझे के अनुसार इस धर्म का उपदेश नहीं कर सकूँगा; क्योंकि मेरे द्वारा उपदिष्ट इस धर्म-उपदेश को तुम भली-

च मे भासितस्स अत्थं न आजानेय्यासि; सो ममस्स किलमथो, सा ममस्स विहेसा" ति।

"देसेतु मे भवं अग्गिवेस्सनो यथासुतं यथापरियत्त धम्मं। [R. 129] अप्पेव नामाहं भोतो अग्गिवेस्सनस्स भासितस्स अत्थं आजानेय्यं" ति!

"देसेय्यं खो ते अहं, राजकुमार, यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं। सचे मे त्वं भासितस्स अत्थं आजानेय्यासि—इच्चेतं कुसलं; नो चे मे त्वं भासितस्स अत्थं आजानेय्यासि, यथासके तिट्ठेय्यासि; न मं तत्थ उत्तरिं [N. 195] पटिपुच्छेय्यासी" ति।

"देसेतु मे भवं अग्गिवेस्सनो यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं। सचे अहं भोतो अग्गिवेस्सनस्स भासितस्स अत्थं आजानिस्सामि—इच्चेतं कुसलं; नो चे अहं भोतो अग्गिवेस्सनस्स भासितस्स अत्थं आजानिस्सामि, यथासके तिट्ठिस्सामि; नाहं तत्थ भवन्तं अग्गिवेस्सनं उत्तरिं पटिपुच्छिस्सामी" ति।

२. अथ खो अचिरवतो समणुद्देसो जयसेनस्स राजकुमारस्स [B. 170] यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं देसेसि। एवं वुत्ते, जयसेनो राजकुमारो अचिरवतं समणुद्देसं एतदवोच—"अट्ठानमेतं, भो अग्गिवेस्सन, अनवकासो यं भिक्खु अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो फुसेय्य चित्तस्स एकग्गतं" ति। अथ खो जयसेनो राजकुमारो अचिरवतस्स समणुद्देसस्स अट्ठानतं च अनवकासतं च पवेदेत्वा उट्ठायासना पक्कामि।

भाँति न समझ पाये तो वह मेरे लिये हैरानी, निन्दा व पीड़ा दायक स्थिति बन जायगी।

"भो अग्निवेश! आप अपने सुने-समझे धर्म का मुझे उपदेश करें तो! क्या पता मैं आपके उस उपदेश का अर्थ भली भाँति समझ ही लूँ!"

"तो ठीक है, राजकुमार! मैं अपने सुने-समझे धर्म का तुम्हें उपदेश करूँगा। उसका तुम सम्यक्तया तात्पर्य समझ लो तो ठीक; अन्यथा तुम यदि समझ न पाओ तो अपने ही मत पर स्थिर रहना। वहाँ फिर मुझसे आगे की बात न पूछना।"

"ठीक है, अग्निवेश! आप मुझे अपने धर्म का उपदेश करें, यदि मैं समझ पाऊँगा तो ठीक है; अन्यथा मैं अपने मत पर स्थिर रहूँगा, आपको पुनः पुनः अवान्तर प्रश्न करके कष्ट न दूँगा।"

२. तब अचिरवत श्रामणेर ने अपने (गुरु से) यथाश्रुत एवं यथास्मृत धर्म का जयसेन राजकुमार को उपदेश किया। धर्मोपदेश सुनने के बाद जयसेन राजकुमार ने अचिरवत श्रामणेर से कहा—"भो अग्निवेश! यह सम्भव नहीं है, न इसके लिये कोई अवकाश (औचित्य) ही है कि कोई भिक्षु अप्रमत्त एवं उद्योगरत हो साधना करता हुआ समाधि के सहारे स्वचित्त को एकाग्र कर सके।" यह कह कर

अथ खो अचिरवतो समणुद्देसो अचिरपक्कन्ते जयसेने राजकुमारे येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो अचिरवतो समणुद्देसो यावतको अहोसि जयसेनेन कथासल्लापो तं सब्बं भगवतो आरोचेसि।

एवं वुत्ते, भगवा अचिरवतं समणुद्देसं एतदवोच—"तं कुतेत्थ, अग्गिवेस्सन, लब्भा। यं तं नेक्खम्मेन ञातब्बं नेक्खम्मेन दट्ठब्बं नेक्खम्मेन पत्तब्बं नेक्खम्मेन सच्छिकातब्बं तं वत जयसेनो राजकुमारो काममज्झे वसन्तो कामे परिभुञ्जन्तो कामवितक्केहि खज्जमानो कामपरिळाहेन परिडय्हमानो [R. 130] कामपरियेसनाय उस्सुको ञस्सति वा दक्खति वा सच्छि वा करिस्सती ति—नेतं ठानं विज्जति।

अदन्तपसूपमो राजकुमारो

३. "सेय्यथापिस्सु, अग्गिवेस्सन, द्वे हत्थिदम्मा वा अस्सदम्मा वा गोदम्मा वा सुदन्ता सुविनीता, द्वे हत्थिदम्मा वा अस्सदम्मा वा गोदम्मा वा [N. 196] अदन्ता अविनीता। त किं मञ्ञसि, अग्गिवेस्सन, ये ते

जयसेन राजकुमार अचिरवत श्रामणेर के कथन की पूर्ति में असम्भावना एवं अनवकाश दिखाता हुआ आसन से उठ कर चल दिया।

तब वह अचिरवत श्रामणेर राजकुमार जयसेन के जाने के कुछ ही समय बाद, जहाँ भगवान् विराजमान थे, वहाँ पहुँचा। पहुँच कर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस श्रामणेर ने उसका राजकुमार जयसेन के साथ जो कुछ भी संवाद हुआ था वह सब कुछ भगवान् से कह सुनाया।

ऐसा कहे जाने पर, भगवान् अचिरवत श्रामणेर को यों समझाने लगे-"अग्निवेश! वह (ज्ञान) उसे यहाँ कैसे अधिगत हो सकता था, जो निष्कामता से ही जाना जा सकता है, नैष्कर्म्य से जिसका समीक्षण किया जा सकता है या पाया जा सकता है या जिसका साक्षात्कार किया जा सकता है! उस (दुर्लभ ज्ञान) को जयसेन राजकुमार जैसा कामभोगों में लिप्त प्राणी व कामसंकल्पों से जर्जर तथा दिन-रात कामविषयों की प्राप्ति में ही लगा हुआ व्यक्ति देख सके, पा सके, उसका साक्षात्कार कर सके-यह सम्भव ही नहीं है!

राजकुमार की अशिक्षित पशु से तुलना

३. "अग्निवेश! जैसे दो सुशिक्षित (सुदान्त) सुविनीत हाथी…घोड़े या…बैल सवारी आदि में भलीभाँति काम आने योग्य (=दम्य) हों और दूसरी तरफ वैसे ही दो अशिक्षित अविनीत दो हाथी…घोड़े या…बैल हों। तो क्या मानते हो, अग्निवेश! वे जो दो सुशिक्षित व सुविनीत हाथी घोड़े या बैल शिक्षित

द्वे हत्थिदम्मा वा अस्सदम्मा वा गोदम्मा वा सुदन्ता सुविनीता, अपि नु ते दन्ता व दन्तकारणं गच्छेय्युं, दन्ता व दन्तभूमिं सम्पापुण्येय्युं'' ति ?

"एवं, भन्ते"।

"ये पन ते द्वे हत्थिदम्मा वा अस्सदम्मा वा गोदम्मा वा अदन्ता अविनीता, अपि नु ते अदन्ता व दन्तकारणं गच्छेयुं, अदन्ता व दन्तभूमिं सम्पापुणेय्युं, सेय्यथापि ते द्वे हत्थिदम्मा वा अस्सदम्मा वा गोदम्मा वा सुदन्ता सुविनीता" ति ? "नो हेतं, भन्ते"।

"एवमेव खो, अग्गिवेस्सन, यं तं नेक्खम्मेन ञातब्बं नेक्खम्मेन दट्ठब्बं नेक्खम्मेन पत्तब्बं नेक्खम्मेन सच्छिकातब्बं तं वत जयसेनो राजकुमारो काममज्झे वसन्तो कामे परिभुञ्जन्तो कामवितक्केहि खज्जमानो [B. 171] कामपरिळाहेन परिडय्हमानो कामपरियेसनाय उस्सुको ञस्सति वा दक्खति वा सच्छि वा करिस्सती ति—नेतं ठानं विज्जति।

पब्बतपादट्ठितपुरिसूपमो राजकुमारो

४. "सेय्यथापि, अग्गिवेस्सन, गामस्स वा निगमस्स वा अविदूरे महापब्बतो। तमेनं द्वे सहायका तम्हा गामा वा निगमा वा निक्खमित्वा हत्थविलङ्घकेन येन सो पब्बतो तेनुपसङ्कमेय्युं; उपसङ्कमित्वा एको सहायको हेट्ठा पब्बतपादे तिट्ठेय्य, एको सहायको उपरिपब्बतं आरोहेय्य। तमेनं हेट्ठा पब्बतपादे ठितो सहायको उपरिपब्बते ठितं सहायकं एवं वदेय्य–'यं, सम्म,

---

होते हुए महावत व सारथि द्वारा प्रदत्त गमनक्रिया-संकेतों को समझ सकेंगे और उनका तदनुकूल क्रियान्वयन कर सकेंगे ? "हाँ, भन्ते !"

"और वे जो दो अशिक्षित अविनीत हाथी...क्रियान्वयन कर सकेंगे ?"

"नहीं, भन्ते।"

"इसी तरह, अग्निवेश ! यह जो (दुर्लभ) ज्ञान नैष्कर्म्य से ही जाना जा सकता है...यह सम्भव ही नहीं है।"

राजकुमार की पर्वत पर चढे पुरुष से तुलना

४. अग्निवेश ! जैसे किसी ग्राम या निगम के पास कोई ऊँचा पर्वत हो। वहाँ कोई दो साथी उस ग्राम या निगम से निकल कर हाथ हिलाते-डुलाते उस पर्वत के पास पहुँच जाँय, पहुँच कर उनमें एक साथी पर्वत के नीचे ही खड़ा रह जाय, और दूसरा उस पर्वत पर चढ़ जाय। उस पर्वत पर चढे हुए से नीचे खड़ा हुआ साथी यों पूछे—"सौम्य ! पर्वत पर चढने के बाद तुम्हें क्या दिखायी दे रहा है ?' वह उत्तर में कहे—"सौम्य ! मुझे इस पर्वत पर चढ़ जाने के बाद सुन्दर-सुन्दर बाग-

किं त्वं पस्ससि उपरिपब्बते ठितो' ति ? सो एवं वदेय्य—'पस्सामि खो अहं, सम्म, उपरिपब्बते ठितो आरामरामणेय्यकं वनरामणेय्यकं भूमिरामणेय्यकं पोक्खरणीरामणेय्यकं' ति

[R. 131] "सो एवं वदेय्य—'अट्ठानं खो एतं, सम्म, अनवकासो यं त्वं उपरिपब्बते ठितो पस्सेय्यासि आरामरामणेय्यकं, वनरामणेय्यकं भूमिरामणेय्यकं, पोक्खरणीरामणेय्यकं' ति। तमेनं उपरिपब्बते ठितो [N. 197] सहायको हेट्ठिमपब्बतपादं ओरोहित्वा तं सहायकं बाहायं गहेत्वा उपरिपब्बतं आरोपेत्वा मुहुत्तं अस्सासेत्वा एवं वदेय्य—'यं, सम्म, किं त्वं पस्ससि उपरिपब्बते ठितो' ति ? सो एवं वदेय्य—'पस्सामि खो अहं, सम्म, उपरिपब्बते ठितो आरामरामणेय्यकं वनरामणेय्यकं भूमिरामणेय्यकं पोक्खरणीरामणेय्यकं' ति।

"सो एवं वदेय्य—'इदानेव खो ते, सम्म, भासितं—मयं एवं आजानाम—अट्ठानं खो एतं सम्म अनवकासो यं त्वं उपरिपब्बते ठितो पस्सेय्यासि आरामरामणेय्यकं वनरामणेय्यकं भूमिरामणेय्यकं पोक्खरणीरामणेय्यकं' ति। इदानेव च पन ते भासितं मयं एवं आजानाम—'पस्सामि खो अहं, सम्म, उपरिपब्बते ठितो आरामरामणेय्यक...' ति। सो एवं वदेय्य—'तथा हि पनाहं, सम्म, इमिना महता पब्बतेन आवुतो दट्ठेय्यं नाद्दसं' ति !

बगीचे, सुन्दर सुन्दर बन, हरी-भरी भूमि, जल से भरे सुन्दर तालाब—सभी कुछ तो दिखायी दे रहा है।"

("तब) नीचे खड़ा वह साथी यह कहे—'यह सम्भव नहीं है कि पर्वत पर (इतना ऊँचा) चढ जाने के बाद भी सुन्दर बाग-बगीचे, वन, हरित भूमि एवं जल से भरे तालाब दिखायी दें'। तब उस नीचे खड़े साथी को पर्वत पर चढा हुआ साथी नीचे उतर, हाँथ पकड़ कर, पर्वत पर ले जाकर उससे ही पूछे—"सौम्य ! अब तुम बताओ ! पर्वत पर चढ़ने के बाद तुम भी ये सुन्दर बाग...तालाब नहीं देख पा रहे हो ?' वह उत्तर में दे—'हाँ सौम्य ! मैं भी तो ये सब-बाग-बगीचे, बन भूमि, तालाब आदि देख ही पा रहा हूँ !'

"तब वह (पर्वत पर पहले चढ़ने वाला साथी) उससे कहे-'क्यों सौम्य ! अभी तो कुछ देर पहले (पर्वत के नीचे खड़े-खड़े) यह कह रहे थे—'यह सम्भव नहीं है...दिखायी दें।' परन्तु अभी जो तुमने कहा, उससे तो यही ज्ञात होता है कि तुम्हें भी अब (इस स्थिति में आने पर) वह सब कुछ दिखायी दे रहा है, जो मुझे दिखायी दे रहा था !" तब वह नीचे वाला साथी अपनी भूल मानता

"अतो महन्ततरेन, अग्गिवेस्सन, अविज्जाखन्धेन जयसेनो राजकुमारो आवुतो निवुतो ओफुटो परियोनद्धो। सो वत यं तं नेक्खम्मेन [B. 172] ञातब्बं नेक्खम्मेन दट्ठब्बं नेक्खम्मेन पत्तब्बं नेक्खम्मेन सच्छिकातब्बं तं वत जयसेनो राजकुमारो काममज्झे वसन्तो कामे परिभुञ्जन्तो कामवितक्केहि खज्जमानो कामपरिळाहेन परिडय्हमानो कामपरियेसनाय उस्सुको ञस्सति वा दक्खति वा सच्छि वा करिस्सती ति—नेतं ठानं विज्जति। सचे खो तं अग्गिवेस्सन, जयसेनस्स राजकुमारस्स इमा द्वे उपमा पटिभायेय्युं, अनच्छरियं ते जयसेनो राजकुमारो पसीदेय्य, पसन्नो च ते पसन्नाकारं करेय्या" ति।

"कुतो पन मं, भन्ते, जयसेनस्स राजकुमारस्स इमा द्वे उपमा पटिभायिस्सन्ति अनच्छरिया पुब्बे अस्सुतपुब्बा, सेय्यथापि भगवन्तं" ति!

२. दन्तो नागो राजारहो

५. "सेय्यथापि, अग्गिवेस्सन, राजा खत्तियो [N. 128, R. 132] मुद्धावसित्तो नागवनिकं आमन्तेति—'एहि त्वं, सम्म नागवनिक, रञ्ञो नागं अभिरुहित्वा नागवनं पविसित्वा आरञ्ञकं नागं अतिपस्सित्वा रञ्ञो नागस्स गीवायं उपनिबन्धाही' ति। 'एवं, देवा' ति खो, अग्गिवेस्सन,

---

हुआ कहे—'सौम्य ! जब मैं नीचे खड़ा था, तब इस महान् पर्वत से ढका (आवृत) रहने के कारण यह सब मनोरम दृश्य मुझे दिखायी नहीं दे रहा था।'

"अतः अग्निवेश ! यह राजकुमार जयसेन महान् अविद्यास्कन्ध से आवृत है, आच्छादित है, अवस्फुट है, पर्यवनद्ध है। वह यह जो नैष्कर्म्य से ज्ञातव्य है··· उसे यह राजकुमार जयसेन, जो कि कामभोगों में लिप्त है···कामभोगों की खोज में निरन्तर लिप्त रहता है···कैसे साक्षात् कर लेगा! यह सम्भव नहीं। हाँ! अग्निवेश ! यदि उसे ये दो उपमाएँ (दृष्टान्त) समझ में आयी रहतीं तो वह तुम पर प्रसन्न होता और प्रसन्न होने के बाद की क्रियाएँ भी करता !"

"भन्ते ! जयसेन राजकुमार को ये दो उपमाएँ क्या समझ में आ पातीं, मैंने तो स्वयं ही पहले कभी इन्हें नहीं सुना है। इन्हें तो आप ने जब मुझे सुनाया है तभी मैं समझ पाया हूँ !"

२. राजा के योग्य शिक्षित हाथी

५. "जैसे, अग्निवेश ! कोई मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा हो, वह किसी नागवनिक (हाथियों के रहने वाले जङ्गलों के रक्षक) को बुलावे और कहे—"जाओ, सौम्य नागवनिक ! तुम राजकीय हाथी पर सवार हो, हाथियों के जङ्गल में प्रविष्ट हो, जङ्गली हाथी को देखकर उसको राजकीय हाथी की गर्दन से बांध कर ले आओ।"

नागवनिको रञ्ञो खत्तियस्स मुद्धावसित्तस्स पटिस्सुत्वा रञ्ञो नागं अभिरुहित्वा नागवनं पविसित्वा आरञ्ञकं नागं अतिपस्सित्वा रञ्ञो नागस्स गीवायं उपनिबन्धति। तमेनं रञ्ञो नागो अब्भोकासं नीहरति। एत्तावता खो, अग्गिवेस्सन, आरञ्ञको नागो अब्भोकासं गतो होति। एत्थगेधा हि, अग्गिवेस्सन, आरञ्ञका नागा यदिदं—नागवनं। तमेनं नागवनिको रञ्ञो खत्तियस्स मुद्धावसित्तस्स आरोचेसि—'अब्भोकासगतो खो, देव, आरञ्ञको नागो' ति। अथ खो, अग्गिवेस्सन, तमेनं राजा खत्तियो मुद्धावसित्तो हत्थिदमकं आमन्तेसि—'एहि त्वं, सम्म हत्थिदमक, आरञ्ञकं नागं दमयाहि आरञ्ञकानं चेव सीलानं अभिनिम्मदनाय आरञ्ञकानं चेव सरसङ्कप्पानं अभिनिम्मदनाय आरञ्ञकानं चेव दरथकिलमथपरिळाहानं अभिनिम्मदनाय गामन्ते अभिरमापनाय मनुस्सकन्तेसु सीलेसु समादपनाया' ति।

[B. 173] "एवं, देवा' ति खो, अग्गिवेस्सन, हत्थिदमको रञ्ञो खत्तियस्स मुद्धावसित्तस्स पटिस्सुत्वा महन्तं थम्भं पथवियं निखणित्वा आरञ्ञकस्स नागस्स गीवायं उपनिबन्धति आरञ्ञकानं चेव सीलानं अभिनिम्मदनाय आरञ्ञकानं चेव सरसङ्कपानं अभिनिम्मदनाय आरञ्ञकानं चेव दरथकिलमथपरिळाहानं अभिनिम्मदनाय गामन्ते अभिरमापनाय

"ठीक है, देव !" कह कर, अग्निवेश ! वह नागवनिक उस मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा को उत्तर देकर, राजकीय हाथी पर चढ़ कर हाथियों के जङ्गल में प्रविष्ट हो, वहाँ जङ्गली हाथी को देख, उसे राजकीय हाथी के गले में बाँध दे। फिर उसे वह राजकीय हाथी खुले स्थान पर ले आवे। उस खुले स्थान को देख कर उस जङ्गली हाथी को यह व्यामोह (=गेधा) हो जाय कि यह भी नागवन है; क्योंकि खुले स्थान के कारण वहाँ उसे कुछ सुखानुभूति होती है। ऐसी स्थिति में वह नागवनिक राजा से जाकर निवेदन करता है कि—'देव ! एक जङ्गली हाथी खुले स्थान पर पहुँचा दिया गया है।' तब अग्निवेश ! वह राजा अपने हस्तिदमक (महावत) को बुलाकर कहे—'जाओ ! सौम्य हस्तिदमक ! तुम उस जङ्गली हाथी को शिक्षित करो। उसके जङ्गली स्वभाव (आदत) का, उसकी जङ्गली बोली का, तथा उसकी जङ्गली हैरानी-परेशानियों का दमन करो। तथा उसके बदले में उसका ग्राम में रहने एवं मनुष्यों के बीच रहने का स्वभाव बनाओ।"

"अग्निवेश ! 'ठीक है देव !' यों राजा से कह कर वह महावत पृथ्वी पर एक गहरा खूँटा गड़वा कर, उससे उस जङ्गली हाथी की गर्दन बाँध कर उसके जङ्गली स्वभाव, जङ्गली बोली, जङ्गली हैरानी-परेशानियों को दूर करता है; उसके बदले में उसका ग्राम में व मनुष्यों के बीच रहने का स्वभाव बनाना प्रारम्भ करता है। तब

मनुस्सकन्तेसु सीलेसु समादपनाय। तमेनं हत्थिदमको या सा वाचा नेला कण्णसुखा पेमनीया हृदयङ्गमा पोरी बहुजनकन्ता बहुजनमनापा तथारूपाहि वाचाहि समुदाचरति। यतो खो, अग्गिवेस्सन, आरञ्ञको नागो हत्थिदमकस्स या सा वाचा नेला कण्णसुखा पेमनीया हृदयङ्गमा [N. 199] पोरी बहुजनकन्ता बहुजनमनापा तथारूपाहि वाचाहि समुदाच- [R. 133] रियमानो सुस्सूसति, सोतं ओदहति, अञ्ञा चित्तं उपट्ठापेति; तमेनं हत्थिदमको उत्तरि तिणघासोदकं अनुप्पवेच्छति।

"यतो खो, अग्गिवेस्सन, आरञ्ञको नागो हत्थिदमकस्स तिणघासोदकं पटिग्गण्हाति, तत्र हत्थिदमकस्स एवं होति—'जीविस्सति खा दानि आरञ्ञको नागो' ति। तमेनं हत्थिदमको उत्तरि कारणं कारेति—'आदिय, भो, निक्खिप, भो' ति। यतो खो, अग्गिवेस्सन, आरञ्ञको नागो हत्थिदमकस्स आदाननिक्खेपवचनकारी होति ओवादप्पटिकरो, तमेनं हत्थिदमको उत्तरि कारणं कारेति—'अभिक्कम, भो, पटिक्कम, भो' ति। यतो खो, अग्गिवेस्सन, आरञ्ञको नागा हत्थिदमकस्स अभिक्कमपटिक्कमवचनकरो होति ओवादप्पटिकरो, तमेन हत्थिदमको उत्तरि कारणं करोति—'उट्ठह, भो, निसीद, भो' ति। यतो खो, अग्गिवेस्सन, आरञ्ञको नागो हत्थिदमकस्स

वह उसे सर्वप्रथम ऐसी बोली बोलना सिखाता है जो दूसरों को कर्णप्रिय लगे, मनोहर लगे, प्रीत्युत्पादक हो, बहुजनप्रिय हो। अग्निवेश, धीरे-धीरे वह आरण्यक हाथी महावत की उस बोली से प्रेरित हो उसे सुनने की इच्छा करता है, उसे सुनने के लिये कान दिये रहता है, जानबूझ कर उसको सुनने में अपना कान लगाता है। तब वह महावत उसे प्रिय लगने वाले तृण, घास व ठण्डा जल खाने-पीने को देता है।

"जब वह आरण्यक हाथी महावत द्वारा दिये तृण-घास, जल को प्रेम से ग्रहण करने लगता है तब उस महावत को उसकी ये क्रियाएँ देखकर यह होता है—'अब यह जङ्गली हाथी जी जायगा।' तब वह महावत उस पर उससे आगे की शिक्षाएँ प्रारम्भ करता है, जैसे—किसी वस्तु की ओर सङ्केत कर उसे पकड़ने की या उसे छोड़ने की। जब वह हाथी उन वस्तुओं का ग्रहण या निक्षेप सीख लेता है, और महावत की अन्य आज्ञाओं का पालन करने लगता है, तब वह महावत उसे उससे भी आगे की, जैसे—आगे चलना, या पीछे लौटना—आदि शिक्षाएँ देता है। जब अग्निवेश! वह हाथी उसकी इन आगे चलना पीछे लौटना आदि शिक्षाओं को भी भलीभाँति सीख लेता है तब वह महावत उसे इससे आगे की शिक्षाएँ देना प्रारम्भ करता है—'अरे उठो!' 'अरे बैठो'। यों, अग्निवेश! जब वह आरण्यक हाथी महावत की इन उठने-बैठने की आज्ञाओं का पालन करने वाला हो जाता है तो वह

उट्ठाननिसज्जाय वचनकरो होति ओवादप्पटिकरो, तमेनं हत्थिदमको उत्तरि आनेञ्जं नाम कारणं कारेति, महन्तस्स फलकं सोण्डाय उपनिबन्धति, तोमरहत्थो च पुरिसो उपरिगीवाय निसिन्नो होति, समन्ततो च तोमरहत्था पुरिसा परिवारेत्वा ठिता होन्ति, हत्थिदमको च दीघतोमरयट्ठिं गहेत्वा पुरतो ठितो होति। सो आनेञ्जं कारणं कारियमानो नेव पुरिमे पादे चोपेति न पच्छिमे पादे चोपेति, न पुरिमकायं चोपेति, न पच्छिमकायं चोपेति, न [B. 174] सीसं चोपेति, न कण्णे चोपेति, न दन्ते चोपेति, न नङ्गुट्ठं चोपेति, न सोण्डं चोपेति। सो होति आरञ्ञको नागो खमो सत्तिप्पहारानं असिप्पहारानं उसुप्पहारानं सरपत्तप्पहारानं भेरि-पणव-वंस-सङ्ख-डिण्डिमनिन्नादसद्दानं सब्बवङ्कदोसनिहितनिन्नीतकसावो राजारहो राजभोग्गो रञ्ञो अङ्गं तेव सङ्खं गच्छति।

३. हत्थिदमकूपमो तथागतो

[N. 200, R. 134] ६. "एवमेव खो, अग्गिवेस्सन, इध तथागतो लोके उप्पज्जति अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा। सो इमं लोकं

महावत उस हाथी को आगे शिक्षा देने लगता है, जैसे—(विकट से विकट स्थिति में भी) स्थित रहने (आनेञ्ज) की। वह उसकी सूँड़ में बड़ी ढाल (फलक) बाँध दे; भाला (तोमर) हाथ में लिये एक आदमी को उसकी गर्दन पर बैठा दे, भाला लिये कुछ आदमी उसको घेर कर खड़े हो जाँय, और महावत भी हाथ में भाला लेकर उसके सामने खड़ा रहे। उस समय वह हाथी इस स्थिरता की शिक्षा को ग्रहण कराया जाता हुआ न अगले पैरों को उठावे, न पिछले पैरों को, न शरीर के अगले भाग को, न पिछले भाग को उठावे; न शिर को, न कानों को, न दाँतों को, न पूँछ को, न सूण्ड को हिलावे। यों धीरे-धीरे वह एक समय का आरण्यक हाथी भाले, तलवार, बाण एवं शरपत्रों के प्रहारों को सहन करने में समर्थ व निपुण हो जाता है। साथ ही वह भेरी, दमामा, नौबत, शङ्ख, ढोल, आदि की तीखी आवाजों को सुनने का भी अभ्यस्त हो जाता है। और धीरे-धीरे एक समय ऐसा आ जाता है जब वह जङ्गल की सभी कुटिलताओं, दोषों व बुराइयों से दूर होकर राजयोग्य, राजभोग्य एवं राजा की सेना में प्रविष्ट होने योग्य हो जाता है।

३. तथागत उक्त महावत के समान हैं

६. "इसी तरह, अग्निवेश ! यहाँ लोक में तथागत अवतरित होते हैं··· पूर्ववत्[1]···। वे आदि मध्य और अन्त में सर्वथा कल्याणकारक उस धर्म का जो

---

१. द्र०—पीछे पृ० ६५४।

सदेवकं समारकं सब्रह्मकं सस्समणब्राह्मणिं पजं सदेवमनुस्सं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेति। सो धम्मं देसेति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेति। तं धम्मं सुणाति गहपति वा गहपतिपुत्तो वा अञ्ञतरस्मिं वा कुले पच्चाजातो। सो तं धम्मं सुत्वा तथागते सद्धं पटिलभति। सो तेन सद्धापटिलभेन समन्नागतो इति पटिसञ्चिक्खति—'सम्बाधो घरावासो रजापथो, अब्भोकासो पब्बज्जा। नयिदं सुकरं अगारं अज्झावसता एकन्तपरिपुण्णं एकन्तपरिसुद्धं सङ्खलिखितं ब्रह्मचरियं चरितुं। यन्नूनाहं केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजेय्यं' ति।

"सो अपरेन समयेन अप्पं वा भोगक्खन्धं पहाय महन्तं वा भोगक्खन्धं पहाय, अप्पं वा ञातिपरिवट्टं पहाय महन्तं वा ञातिपरिवट्टं पहाय, केसमस्सुं ओहारेत्वा, कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा, अगारस्मा अनगारियं पब्बजति। एत्तावता खो, अग्गिवेस्सन, अरियसावको अब्भोकासगतो होति। एत्थगेधा हि, अग्गिवेस्सन, देवमनुस्सा यदिदं—पञ्च कामगुणा। तमेनं तथागतो उत्तरिं विनेति—'एहि त्वं, भिक्खु, सीलवा होहि, पातिमोक्ख-

कि...[1] उपदेश करते हैं। उस धर्म को यदि किसी भी जाति या कुल में उत्पन्न कोई गृहपति या उसका पुत्र सुनता है तो उसे, उस धर्म को सुन कर, तथागत में श्रद्धा उत्पन्न होती है। तथागत में ऐसे श्रद्धोत्पाद से समन्वागत हो वह चिन्तन करने लगता है--'यह गृहावास (गृहस्थ धर्म) कण्टकाकीर्ण तथा संसार की पापमय धूल से भरा पड़ा है। ऐसे गृहस्थ में रहते हुए मनुष्य के लिये इस एकान्ततः परिशुद्ध परिपूर्ण शङ्खवत् धवल (निष्कलङ्क) धर्म का पालन करना सरल नहीं। (अतः) क्यों न मैं दाढी-मूँछ मुँडवा कर, काषाय वस्त्र धारण कर, घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाऊँ।'

"वह दूसरे समय, सामने उपस्थित थोड़े या अधिक कामभागों का त्याग कर, छोटे या बड़े नाते-रिश्तेदारों की भीड़ को छोड़ कर, दाढी-मूँछ मुँडवाकर...प्रव्रजित हो जाता है। इतने से, अग्निवेश! वह आर्यश्रावक स्वयं को खुले आकाश में बैठा हुआ (बन्धनमुक्त) सा अनुभव करता है। जब कि अग्निवेश! इस सृष्टि में जन्मे सभी देवता या मनुष्य इन पाँच इन्द्रियों के कामभोगों की अधिक से अधिक प्राप्ति के ही लोभ में पड़े रहते हैं। तब उस आर्यश्रावक को तथागत आगे शिक्षा देते हैं--'आओ! भिक्षु! तुम शीलवान् बनो, प्रातिमोक्ष नियमों से अपने

१. द्र०- पीछे पृ० ३५४।

संवरसंवुतो विहराहि आचारगोचरसम्पन्नो, अणुमत्तेसु वज्जेसु भयदस्सावी, समादाय सिक्खस्सु सिक्खापदेसू' ति।

"यतो खो, अग्गिवेस्सन, अरियसावको सीलवा होति, पातिमोक्ख-संवरसंवुतो विहरति आचारगोचरसम्पन्नो अणुमत्तेसु वज्जेसु भयदस्सावी, [B. 175] समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु, तमेनं तथागतो उत्तरिं विनेति—'एहि त्वं, भिक्खु, इन्द्रियेसु गुत्तद्वारो होहि, चक्खुना रूपं दिस्वा [R. 135-136] मा निमित्तग्गाही···पे०···।

[यथा एकादसे गणकमोग्गल्लानसुत्तन्ते एवं वित्थारेतब्बानि]

[N. 201] ७. "सो इमे पञ्च नीवरणे पहाय चेतसो उपक्किलेसे पञ्ञाय दुब्बलीकरणे काये कायानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं। वेदनासु···पे०···चित्ते···धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा विनेय्य लोके अभिज्झा-दोमनस्सं। सेय्यथापि, अग्गिवेस्सन, हत्थिदमको महन्तं थम्भं पथवियं निखणित्वा आरञ्ञकस्स नागस्स गीवायं उपनिबन्धति आरञ्ञकानं चेव सीलानं अभिनिम्मदनाय आरञ्ञकानं चेव सरसङ्कप्पानं अभिनिम्मदनाय आरञ्ञकानं चेव दरथकिलमथपरिळाहानं अभिनिम्मदनाय गामन्ते अभिर-मापनाय मनुस्सकन्तेसु सीलेसु समादपनाय; एवमेव खो, अग्गिवेस्सन, अरिय-

---

को बँधा हुआ समझ कर साधना प्रारम्भ करो, आचार-गोचर से सम्पन्न हो छोटे से छोटे पापकर्मों से भी भय मानो, स्वीकृत शिक्षापदों का अभ्यास करो'।

"अग्निवेश! जब वह आर्यश्रावक शीलवान् रहता हुआ···शिक्षापदों का अभ्यास पूर्ण कर लेता है, तब तथागत उसको आगे की शिक्षा देते हैं—'आओ, भिक्षु! अब तुम अपनी इन्द्रियों पर संयम का अभ्यास करो। चक्षुरिन्द्रिय से उसका विषय (रूप) देखकर उसके बाह्य कृत्रिम आकार में न फँसना···पूर्ववत्'···।

[यहाँ पूर्वोक्त ११वें गणकमोग्गल्लान सूत्र में आये पाठ का यथावत् विस्तार कर लें।]

७. "वह इन पाँच नीवरणों का ग्रहण कर चित्त में विकारों को दुर्बल कर काया में कायानुपश्यी हो···वेदना में वेदनानुपश्यी हो···चित्त में चित्तानुपश्यी हो···धर्म में धर्मानुपश्यी हो···पूर्ववत्···। अग्निवेश! जैसे महावत एक बड़े खूटे को पृथ्वी में गाड़ कर, उससे उस जंगली हाथी को बाँध देता है, और उसके जंगली स्वभाव को, जंगली बोली को, जंगली रहन-सहन को विनष्ट करने के लिये और उसके स्थान पर ग्रामवासियों एवं नागरिकों को उसकी जो आदतें अच्छी लगें उन्हें सिखाने के लिये प्रयत्न करता है; उसी तरह, अग्निवेश! आर्यश्रावक के लिये ये चार

सावकस्स इमे चत्तारो सतिपट्ठाना चेतसो उपनिबन्धना होन्ति गेहसितानं चेव सीलानं अभिनिम्मदनाय गेहसितानं चेव सरसङ्कप्पानं अभिनिम्मदनाय गेहसितानं चेव दरथकिलमथपरिळाहानं अभिनिम्मदनाय ञायस्स अधिगमाय निब्बानस्स सच्छिकिरियाय।

८. "तमेनं तथागतो उत्तरिं विनेति—'एहि त्वं, भिक्खु, काये कायानुपस्सी विहराहि, मा च कामूपसंहितं वितक्कं वितक्केसि। वेदनासु··· चित्ते···धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहराहि, मा च कामूपसंहितं वितक्कं वितक्केसी' ति।

सो वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं सम्पसादनं चेतसो, एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं समाधिजं पीतिसुखं दुतियं झानं···ततियं झानं···चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनीये ठिते आनेञ्जप्पत्ते पुब्बेनिवासं अनुस्सरति, सेय्यथीदं—एकं पि जातिं, द्वे पि जातियो···पे०···इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति।

९. "सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे [B. 176] विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते सत्तानं चुतूपपातञाणाय चित्तं अभिनिन्नामेति। सो दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन [N. 202]

स्मृतिप्रस्थान जो चित्त के बन्धन होते हैं, उन्हें तथा लोभ की ओर प्रवर्तक आचारों को हटाने···स्वरसङ्कल्पों को···दरथ-क्लमथ को हटाने के लिये ज्ञेय की प्राप्ति व निर्वाण के साक्षात्कार के लिये आवश्यक हैं।

८. "तब तथागत उस आर्यश्रावक को आगे की शिक्षा देते हैं—'आओ! भिक्षु! तुम काया में कायानुपश्यी हो···वेदना में वेदनानुपश्यी हो···चित्त में चित्तानुपश्यी हो···धर्म में धर्मानुपश्यी हो साधना करो और कामोपसंहृत वितर्कों की वितर्कणा न करो।'

"वह वितर्क-विचारों के शान्त हो जाने पर···पूर्ववत्···द्वितीय ध्यान···तृतीय ध्यान···चतुर्थ ध्यान···। वह इस प्रकार चित्त के एकाग्र हो जाने पर···अपने पूर्वजन्मों के स्मृतिज्ञान के लिये चित्त को झुकाता है।···पूर्वजन्मों का अनुस्मरण करता है।

९. "यों, वह चित्त के एकाग्र हो जाने पर···अन्य प्राणियों की च्युति-उत्पत्ति के विषय में ज्ञानहेतु चित्त को झुकाता है। वह दिव्य चक्षु से···यथाकर्मोपग प्राणियों को पहचानता है।

अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सति चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे सुगते दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानाति ।

"सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते आसवानं खयञाणाय चित्तं अभिनिन्नामेति । 'सो इदं दुक्खं' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खसमुदयो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खनिरोधो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति; 'इमे आसवा' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं आसवसमुदयो' ति यथाभूतं पजानाति, अयं 'आसवनिरोधो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं आसवनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति। तस्स एवं जानतो एवं पस्सतो कामासवा पि चित्तं विमुच्चति, भवासवा पि चित्तं विमुच्चति, अविज्जासवा पि चित्तं विमुच्चति । विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाति ।

"सो होति भिक्खु खमो सीतस्स उण्हस्स जिघच्छाय पिपासाय डंस- [R. 137] मकसवातातपसरीसपसम्फस्सानं दुरुत्तानं दुरागतानं वचनपथानं, उप्पन्नानं सारीरिकानं वेदनानं दुक्खानं तिब्बानं खरानं कटुकानं असातानं अमनापानं पाणहरानं अधिवासकजातिको होति सब्बरागदोसमोहनिहितनिन्नीतकसावो आहुनेय्यो पाहुनेय्यो दक्खिणेय्यो अञ्जलिकरणीयो अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्स ।

"यों, फिर वह चित्त के एकाग्र हो जाने पर…आश्रवों के क्षयज्ञान के लिये चित्त को झुकाता है । उसके 'यह दुःख है', 'यह दुःखसमुदय है', 'यह दुःखनिरोध है', 'यह दुःखनिरोधगामी मार्ग है'; 'ये आश्रव हैं'…'ये आश्रवनिरोधगामी मार्ग हैं'—ऐसा भलीभाँति जान लेने पर, उसका चित्त कामाश्रव, भवाश्रव एवं अविद्याश्रव से विमुक्त हो जाता है । विमुक्त होने पर उसे 'मेरा यह चित्त अब विमुक्त है'—ऐसा ज्ञान हो जाता है । और तब वह अपने बारे में यह भी भलीभाँति समझ चुका होता है कि 'मेरी जन्मपरम्परा क्षीण हो चुकी है, मेरी धर्मसाधना पूर्ण हो चुकी है, मेरा कर्तव्य पूरा हो चुका है, अब मेरा यहाँ कोई कर्तव्य शेष नहीं है ।'

"उस स्थिति में वह साधक भिक्षु सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, दंश, मच्छर-मक्खी, आंधी-तूफान, साँप-बिच्छू से होने वाले कष्टों को, लोगों की कटूक्तियों को, लोगों द्वारा प्रदत्त वेदनाओं को सहन करने का अपना स्वभाव बना लेता है । यों, वह सब प्रकार के राग-द्वेष, लोभ-मोह आदि चित्तविकारों से दूर रहता हुआ लोक के लिये स्वागतयोग्य एवं सम्मानार्ह और पुण्यप्रद हो जाता है ।

४. अदन्त-दन्तमरणानि

१०. महल्लको चे पि, अग्गिवेस्सन, रञ्ञो नागो अदन्तो अविनीतो कालं करोति, 'अदन्तमरणं महल्लको रञ्ञो नागो कालङ्कतो' त्वेव सङ्खं गच्छति; मज्झिमो चे पि, अग्गिवेस्सन, रञ्ञो नागो...दहरो चे पि, अग्गिवेस्सन, रञ्ञो नागो अदन्तो अविनीतो कालं करोति, 'अदन्त- [B. 177] मरणं दहरो रञ्ञो नागो कालङ्कतो' त्वेव सङ्खं गच्छति; एवमेव खो, अग्गिवेस्सन, थेरो चे पि भिक्खु अखीणासवो कालं करोति, 'अदन्तमरणं थेरो भिक्खु कालङ्कतो' त्वेव सङ्खं गच्छति; मज्झिमो चे पि, [N. 203] अग्गिवेस्सन, भिक्खु...नवो चे पि, अग्गिवेस्सन, भिक्खु अखीणासवो कालं करोति, 'अदन्तमरणं नवो भिक्खु कालङ्कतो' त्वेव सङ्खं गच्छति।

"महल्लको चे पि, अग्गिवेस्सन, रञ्ञो नागो सुदन्तो सुविनीतो कालं करोति, 'दन्तमरणं महल्लको रञ्ञो नागो कालङ्कतो' त्वेव सङ्खं गच्छति; मज्झिमो चे पि, अग्गिवेस्सन, रञ्ञो नागो...दहरो चे पि, अग्गिवेस्सन, रञ्ञो नागो सुदन्तो सुविनीतो कालं करोति, 'दन्तमरणं दहरो रञ्ञो नागो कालङ्कतो' त्वेव सङ्खं गच्छति; एवमेव खो, अग्गिवेस्सन, थेरो चे पि भिक्खु खीणासवो कालं करोति, 'दन्तमरणं थेरो भिक्खु कालङ्कतो' त्वेव

---

४. अशिक्षित तथा शिक्षित के देहपात का अन्तर

१०. "अग्निवेश ! राजा का कोई बड़ा (बूढ़ा) हाथी यदि अशिक्षित रहता हुआ ही मृत्यु को प्राप्त हो जाय तो उसके बारे में लोगों का यही कहना होगा कि 'राजा का यह हाथी बूढा तो था ही, और जीवनभर अशिक्षित भी रहा और उसी तरह मर भी गया'। या मध्यम आयुवाला...या छोटी ही आयु वाला कोई राजा का हाथी मर जाय तो उसके विषय में लोग यह तो कहेंगे ही कि 'यह राजा के यहाँ रह कर भी यह कुछ सीख नहीं पाया, और वैसे ही मर गया'। इसी तरह, अग्निवेश ! यदि किसी स्थविर भिक्षु का क्षीणास्रव (अर्हत्) हुए विना ही देहपात हो जाय तो उसके विषय में जनता यही कहेगी कि 'यह भिक्षु देहपात के समय स्थविर अवश्य थे, परन्तु क्षीणास्रव नहीं हो पाये, अतः ये मृत्युपर्यन्त अशिक्षित ही रह गये'। मध्यम आयुवाला...या तरुण भिक्षु का भी, अग्निवेश, क्षीणास्रव हुए विना ही... अशिक्षित ही रह गये।

"अग्निवेश ! दूसरी तरफ राजा के किसी सुशिक्षित वृद्ध हाथी का देहपात हो जाय, मध्यमायुक...तरुण सुशिक्षित हाथी का देहपात हो जाय तो लोग उसके विषय में यही कहेंगे कि 'राजा का यह हाथी तरुण था तो क्या हुआ, परन्तु अच्छा सुशिक्षित था', इसी तरह कोई स्थविर भिक्षु आस्रवों के क्षीण हुए विना ही मरण को प्राप्त हो

सङ्खं गच्छति; मज्झिमो चे पि, अग्गिवेस्सन, भिक्खु······नवो चे पि, अग्गिवेस्सन, भिक्खु खीणासवो कालं करोति, 'दन्तमरणं नवो भिक्खु कालङ्कतो' त्वेव सङ्खं गच्छती" ति।

●

जाय तो यह 'यह भिक्षु अपनी इन्द्रियों को बिना दमन किये ही मर गया'—यही कहलायगा। इसी तरह, अग्निवेश! कोई मध्यम भिक्षु···कोई तरुण भिक्षु आस्रवों के क्षीण हुए विना ही···यही कहलायगा"।

११. भगवान् ने यों उपदेश किया। आसमना अचिरवत श्रमणोद्देश ने भगवान् के इस उपदेश का अभिनन्दन किया।

दन्तभूमिसुत्त समाप्त॥

●

२६. भूमिजसुत्तं

१. भूमिजभिक्खु-जयसेनराजकुमारवत्थु

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे [N. 204, R. 138] विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। अथ खो आयस्मा भूमिजो पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन जयसेनस्स राजकुमारस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। अथ खो जयसेनो राजकुमारो येनायस्मा भूमिजो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता भूमिजेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो जयसेनो राजकुमारो आयस्मन्तं भूमिजं एतदवोच—"सन्ति, भो भूमिज, एके समणब्राह्मणा एवंवादिनो [B. 178] एवंदिट्ठिनो—'आसं चे पि करित्वा ब्रह्मचरियं चरन्ति, अभब्बा फलस्स अधिगमाय; अनासं चे पि करित्वा ब्रह्मचरियं चरन्ति, अभब्बा फलस्स अधिगमाय; आसं च अनासं चे पि करित्वा ब्रह्मचरियं चरन्ति, अभब्बा फलस्स अधिगमाय; नेवासं नानासं चे पि करित्वा ब्रह्मचरियं चरन्ति, अभब्बा फलस्स अधिगमाया' ति। इध भोतो भूमिजस्स सत्था किंवादी किमक्खायी" ति ?

"न खो मेतं, राजकुमार, भगवतो सम्मुखा सुतं सम्मुखा पटिग्गहितं।

---

२६. भूमिजसूत्र

१. भिक्षु भूमिज एवं राजकुमार जयसेन का संवाद

१. ऐसा मैने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) राजगृह के वेणुवन स्थित कलन्दकनिवाप में साधना हेतु विराजमान थे। तब कभी भूमिज भिक्षु पूर्वाह्न के समय दैनिक साधना से निवृत्त हो, पात्रचीवर ले, जहाँ राजकुमार जयसेन (भूमिज भिक्षु के मामा) का वासस्थान था, वहाँ पहुँचे। पहुँच कर बिछे हुए आसन पर बैठ गये। तब जयसेन राजकुमार आयुष्मान् भूमिज के पास गये। जाकर उन्होंने भूमिज भिक्षु से कुशल-क्षेम पूछा। पूछकर वे एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे राजकुमार जयसेन ने आ० भूमिज भिक्षु से यों पूछा--"भो भूमिज ! यहाँ कुछ श्रमण-ब्राह्मण ऐसे मत या ऐसी विचारधारा वाले हैं—'जो कोई विशेष आशा रखकर धर्मसाधना करते हैं उन्हें उसका कोई फल नहीं मिलता', 'जो कोई आशा न रख कर•••फल नहीं मिलता', 'जो कोई आशा या निराशा—दोनों के बीच में रह कर धर्म-साधना•••उसका भी फल नहीं मिलता' और 'जो कोई न आशा न निराशा रखता हुआ धर्मसाधना•••फल नहीं मिल पाता' तो आप भूमिज के शास्ता इन चारों मतों में से किस मत को मानते हैं ? उसके विषय में क्या कहते हैं ?"

"राजकुमार ! मैने इस विषय में भगवान् को अपने श्रीमुख से कुछ कहते नहीं सुना

ठानं च खो एतं विज्जति यं भगवा एवं ब्याकरेय्य—'आसं चे पि करित्वा आयोनिसो ब्रह्मचरियं चरन्ति, अभब्बा फलस्स अधिगमाय; अनासं चे पि करित्वा अयोनिसो ब्रह्मचरियं चरन्ति अभब्बा फलस्स अधिगमाय; आसं च अनासं चे पि करित्वा अयोनिसो ब्रह्मचरियं चरन्ति, अभब्बा फलस्स अधिगमाय; नेवासं नानासं चे पि करित्वा अयोनिसो ब्रह्मचरियं चरन्ति, अभब्बा फलस्स अधिगमाय। आसं चे पि करित्वा योनिसो ब्रह्मचरियं [N. 205] चरन्ति, भब्बा फलस्स अधिगमाय; अनासं चे पि करित्वा [R 139] योनिसो ब्रह्मचरियं चरन्ति, भब्बा फलस्स अधिगमाय; आसं च अनासं चे पि करित्वा योनिसो ब्रह्मचरियं चरन्ति, भब्बा फलस्स अधिगमाय; नेवासं नानासं चे पि करित्वा योनिसो ब्रह्मचरियं चरन्ति, भब्बा फलस्स अधिगमाया' ति। न खो मेतं, राजकुमार, भगवतो सम्मुखा सुतं, सम्मुखा पटिग्गहितं। ठानं च खो एतं विज्जति यं भगवा एवं ब्याकरेय्या" ति।

"सच्चे खो भोतो भूमिजस्स सत्था एवंवादी एवमक्खायी, अद्धा भोतो

है, न मैने साक्षात् उन से कुछ ग्रहण ही किया है; फिर भी मैं ऐसा समझता हूँ कि यदि भगवान् के सामने यह प्रश्न रखा जाय तो वे सम्भवतः इसका यों उत्तर दें—१. 'आशा करके यदि कोई अयोनिशः (कार्य-कारण का मन में ध्यान न रख कर) धर्मसाधना (ब्रह्मचर्यवास) करते है, तो वे फल-प्राप्ति के अयोग्य हैं, या फिर २. जो कोई आशा न रख कर अयोनिशः धर्मसाधना करते हैं वे भी फलप्राप्ति के अयोग्य ही होते हैं; या फिर ३. जो आशा-निराशा दोनों को ही ध्यान में न रख कर अयोनिशः धर्मसाधना करते हैं वे भी उसका फल पाने में अयोग्य ही हैं और ४. जो कोई न आशा, न निराशा को ध्यान में रखकर अयोनिशः…अयोग्य ही हैं। उधर कोई साधक (१) आशा रखते हुए योनिशः (कार्य-कारण का मन में ध्यान रखकर) धर्मसाधना करते हैं वे फल-प्राप्ति के योग्य हैं; (२) आशा न रखते हुए योनिशः…; (३) आशा-निराशा-दोनों को ही ध्यान में न रखते हुए योनिशः…; (४) अथवा जो कोई न आशा न निराशा—दोनों को ही ध्यान में रखते हुए योनिशः… धर्मसाधना करते हैं वे फलप्राप्ति के योग्य ही हैं'। राजकुमार! यद्यपि मैंने भगवान् से इस प्रसङ्ग में कहते हुए न कुछ सुना है, न कुछ ग्रहण ही किया है, फिर भी मैं समझता हूँ कि वे भी इस बात को तुम्हें इसी तरह समझाते; क्यों कि इसका यही उचित उत्तर सम्भव है।"

"आप भूमिज के शास्ता (गुरु) यदि ऐसा ही मानते हैं और ऐसा ही दूसरों को

भूमिजस्स सत्था सब्बेसं येव पुथुसमणब्राह्मणानं मुद्धानं मञ्ञे आहच्च तिट्ठती" ति।

अथ खो जयसेनो राजकुमारो आयस्मन्तं भूमिजं सकेनेव थालिपाकेन परिविसि।

२. तथागत-अनुमोदना

२. अथ खो आयस्मा भूमिजो पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा भूमिजो भगवन्तं एतदवोच--"इधाहं, भन्ते, पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन जयसेनस्स राजकुमारस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदिं। अथ खो, भन्ते, जयसेनो राजकुमारो येनाहं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा [B. 179] मया सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो, भन्ते, जयसेनो राजकुमारो मं एतदवोच--'सन्ति, भो भूमिज, एके समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो--आसं चे पि करित्वा ब्रह्मचरियं चरन्ति अभब्बा फलस्स अधिगमाय; अनासं चे पि करित्वा...पे०...आसं च अनासं चे पि करित्वा ब्रह्मचरियं चरन्ति, अभब्बा फलस्य अधिगमाय; नेवासं नानासं चे पि करित्वा ब्रह्मचरियं चरन्ति, अभब्बा फलस्स अधिगमाया ति। इध भोतो भूमिजस्स सत्था किंवादी किमक्खायी' ति? एवं वुत्ते अहं, भन्ते, जयसेनं राजकुमारं एतदवोचं—'न खो मेतं, राजकुमार, भगवतो सम्मुखा सुतं, [N, 206] सम्मुखा पटिग्गहितं। ठानं च खो एतं विज्जति यं भगवा एवं ब्याकरेय्य–आसं

उपदेश करते हैं तो निश्चय ही आपके वे गुरु सभी साधारण श्रमण-ब्राह्मणों को विचार-सरणि में नीचे छोड़ते हुए उनसे ऊपर (मूर्धन्य) होकर स्थित हैं।"

यों कहकर जयसेन राजकुमार ने आयुष्मान् भूमिज भिक्षु को अपने ही लिये बनाये गये भोजन में से भिक्षा दी।

२. तथागत द्वारा समर्थन

२. इसके बाद आयुष्मान् भूमिज भिक्षा कर, भोजनकर्म से निवृत्त हो, जहाँ भगवान् विराजमान थे, वहाँ पहुँचे। पहुँच कर, भगवान् को प्रणाम कर एक तरफ आसन पर बैठ गये। एक तरफ बैठे आयुष्मान् भूमिज ने भगवान् से यों निवेदन किया—"भन्ते! आज मैं प्रातःकाल, वस्त्र पहन, पात्रचीवर ले, जयसेन राजकुमार के वासस्थान पर गया। जाकर प्रशस्त आसन पर बैठ गया। भन्ते! तब जयसेन राजकुमार ने मेरे पास आकर कुशल-मङ्गल प्रश्न के बाद मुझसे यों पूछा—'भो भूमिज! यहाँ

चे पि करित्वा अयोनिसो ब्रह्मचरियं चरन्ति, अभब्बा फलस्स अधिगमाय; अनासं चे पि करित्वा अयोनिसो ब्रह्मचरियं चरन्ति, अभब्बा फलस्स अधिगमाय; आसं च अनासं चे पि करित्वा अयोनिसो ब्रह्मचरियं चरन्ति, अभब्बा फलस्स अधिगमाय, नेवासं नानासं चे पि करित्वा अयोनिसो ब्रह्मचरियं चरन्ति, अभब्बा फलस्स अधिगमाय। आसं चे पि करित्वा योनिसो ब्रह्मचरियं चरन्ति, भब्बा फलस्स अधिगमाय; अनासं चे पि करित्वा…पे०…आसं च अनासं चे पि करित्वा…पे०…नेवासं नानासं चे पि करित्वा योनिसो ब्रह्मचरियं चरन्ति, भब्बा फलस्स अधिगमाया ति। न खो मेतं, राजकुमार, भगवतो सम्मुखा सुतं, सम्मुखा पटिग्गहितं। ठानं च खो एतं विज्जति यं भगवा एवं ब्याकरेय्या' ति।

'सचे भोतो भूमिजस्स सत्था एवंवादी एवमक्खायी, अद्धा भोतो भूमिजस्स सत्था सब्बेसं येव पुथुसमणब्राह्मणानं मुद्धानं मञ्ञे आहच्च तिट्ठती' ति।

"कच्चाहं, भन्ते, एवं पुट्ठो एवं ब्याकरमानो वुत्तवादी चेव भगवतो होमि, न च भगवन्तं अभूतेन अब्भाचिक्खामि, धम्मस्स चानुधम्मं ब्याकरोमि, न च कोचि सहधम्मिको वादानुवादो गारय्हं ठानं आगच्छती" ति ?

[R. 140] "तग्घ त्वं, भूमिज, एवं पुट्ठो एवं ब्याकरमानो वुत्तवादी चेव मे होसि, न च मं अभूतेन अब्भाचिक्खसि, धम्मस चानुधम्मं ब्याकरोसि, न च कोचि सहधम्मिको वादानुवादो गारय्हं ठानं आगच्छति। ये हि केचि,

---

कुछ श्रमण-ब्राह्मण ऐसे मत या ऐसी विचारधारा वाले हैं…पूर्ववत्…इस पर आपके शास्ता का क्या विचार (मत) है ?' भन्ते ! उसके द्वारा ऐसा पूछे जाने पर, मैंने उसको यों उत्तर दिया—'राजकुमार ! मैंने भगवान् के श्रीमुख से तो साक्षात् न कभी इसका उत्तर सुना है, न ग्रहण किया है, परन्तु सम्भव है भगवान् इन का यह उत्तर दें—'आशा करके जो साधक…पूर्ववत्…। इसका यही उत्तर सम्भव है, यही उचित है।'

"आप भूमिज के शास्ता यदि ऐसा ही मानते हैं…(मूर्धन्य) होकर स्थित हैं।"

"भन्ते ! क्या मैंने ऐसा उत्तर देते हुए, ऐसा व्याख्यान करते हुए भगवान् के अभिप्राय को ही स्पष्ट नहीं किया है ? इससे आप पर अकथनीय का आरोप तो नहीं लग गया ! धर्म का धर्मानुसार ही व्याख्यान किया है ना ? मेरे इस कथन से कोई धर्मानुसार वाद (निर्णय) तो निन्दित नहीं होता !"

"हाँ भूमिज ! ऐसा उत्तर देकर तूँने मेरे अनुकूल ही कहा है। तूँने ऐसा कहकर मुझ पर कोई अकथनीय का आरोप नहीं लगाया, न कोई धर्मानुसारी वाद

भूमिज, समणा वा ब्राह्मणा वा मिच्छादिट्ठिनो मिच्छासङ्कप्पा मिच्छावाचा मिच्छाकम्मन्ता मिच्छाआजीवा मिच्छावायामा मिच्छासती [B. 180] मिच्छासमाधिनो ते आसं चे पि करित्वा ब्रह्मचरियं चरन्ति, अभब्बा फलस्स अधिगमाय; अनासं चे पि करित्वा ब्रह्मचरियं चरन्ति, अभब्बा फलस्स अधिगमाय; आसं च अनासं चे पि करित्वा ब्रह्मचरियं चरन्ति, अभब्बा फलस्स अधिगमाय; नेवासं नानासं चे पि करित्वा ब्रह्मचरियं [N. 207] चरन्ति, अभब्बा फलस्स अधिगमाय। तं किस्स हेतु ? अयोनि हेसा, भूमिज, फलस्स अधिगमाय।

तेलत्थिकूपमा

३. "सेय्यथापि, भूमिज, पुरिसो तेलत्थिको तेलगवेसी तेलपरियेसनं चरमानो वालिकं दोणिया आकिरित्वा उदकेन परिप्फोसकं परिप्फोसकं पीळेय्य; आसं चे पि करित्वा वालिकं दोणिया आकिरित्वा उदकेन परिप्फोसकं परिप्फोसकं पीळेय्य, अभब्बो तेलस्स अधिगमाय:; अनासं चे पि करित्वा वालिकं दोणिया आकिरित्वा उदकेन परिप्फोसकं परिप्फोसकं पीळेय्य, अभब्बो तेलस्स अधिगमाय; आसं च अनासं चे पि करित्वा वालिकं दोणिया आकिरित्वा उदकेन परिप्फोसकं परिप्फोसकं पीळेय्य, अभब्बो तेलस्स अधिगमाय; नेवासं नानासं चे पि वालिकं दोणिया आकिरित्वा उदकेन परिप्फोसकं परिप्फोसकं पीळेय्य, अभब्बो तेलस्स अधिगमाय। तं किस्स हेतु ? अयोनि हेसा, भूमिज, तेलस्स अधिगमाय। एवमेव खो, भूमिज, ये हि केचि समणा वा ब्राह्मणा वा मिच्छादिट्ठिनो मिच्छासङ्कप्पा

ही निन्दित होता है। भूमिज ! यहाँ कुछ मिथ्यादृष्टि, मिथ्यासङ्कल्प, मिथ्यावाक, मिथ्याकर्मान्त, मिथ्याआजीव, मिथ्याव्यायाम, मिथ्यास्मृति, मिथ्यासमाधि वाले श्रमणब्राह्मण हैं, उन्हीं का यह कथन है कि—'आशा करके…निराशा करके…आशा-निराशा करके…न आशा न निराशा करके जो ब्रह्मचर्यसाधना करते हैं वे फलप्राप्ति के योग्य नहीं है'। इसका क्या कारण है ? कारण यही है भूमिज ! कि उनका यह समग्र प्रयत्न अयोनिशः (विना कार्य-कारण का विचार किये) किया गया है।

तैलार्थी का दृष्टान्त

३. "भूमिज ! जैसे कोई तैल को चाहने वाला, तैल की खोज करने वाला, तैल की खोज में निकला पुरुष द्रोणी में बालू बिखेर कर उस में जल का छींटा देकर उसे पेरे (पीड़ित करे)। यदि वह आशा करके द्रोणी में…यदि आशा न करके भी…यदि आशा निराशा करके भी…यदि न आशा न निराशा करके भी…उसे पेरे तो भी वह उससे तैल नहीं पा सकता; इसमें कारण यह है कि उसका वह तैल पाने

मिच्छावाचा मिच्छाकम्मन्ता मिच्छाआजीवा मिच्छावायामा मिच्छासती मिच्छासमाधिनो ते आसं चे पि करित्वा ब्रह्मचरियं चरन्ति, अभब्बा फलस्स अधिगमाय; अनासं चे पि करित्वा ब्रह्मचरियं चरन्ति, अभब्बा फलस्स अधिगमाय; आसं च अनासं चे पि करित्वा ब्रह्मचरियं चरन्ति, अभब्बा फलस्स अधिगमाय; नेवासं नानासं चे पि करित्वा ब्रह्मचरियं [R. 141] चरन्ति, अभब्बा फलस्स अधिगमाय। तं किस्स हेतु? अयोनि हेसा, भूमिज, फलस्स अधिगमाय।

खीरत्थिकूपमा

४. "सेय्यथापि, भूमिज, पुरिसो खीरत्थिको खीरगवेसी खीरपरियेसनं चरमानो गाविं तरुणवच्छं विसाणतो आविञ्छेय्य; आसं चे पि करित्वा गाविं [N. 208] तरुणवच्छं विसाणतो आविञ्छेय्य, अभब्बो खीरस्स अधिगमाय; अनासं चे पि करित्वा···पे०···आसं च अनासं चे पि करित्वा···पे०··· [B. 181] नेवासं नानासं चे पि करित्वा गाविं तरुणवच्छं विसाणतो आविञ्छेय्य, अभब्बो खीरस्स अधिगमाय। तं किस्स हेतु? अयोनि हेसा भूमिज, खीरस्स अधिगमाय। एवमेव खो, भूमिज, ये हि केचि समणा वा ब्राह्मणा वा मिच्छादिट्ठिनो···पे०···मिच्छासमाधिनो ते आसं चे पि करित्वा ब्रह्मचरियं चरन्ति, अभब्बा फलस्स अधिगमाय; अनासं चे पि करित्वा··· पे०···आसं च अनासं चे पि करित्वा···पे०···नेवासं नानासं चे पि करित्वा ब्रह्मचरियं चरन्ति, अभब्बा फलस्स अधिगमाय। तं किस्स हेतु? अयोनि हेसा, भूमिज, फलस्स अधिगमाय।

का प्रयत्न अयोनिशः है। इसी तरह, भूमिज! जो श्रमण-ब्राह्मण मिथ्यादृष्टि···मिथ्या-समाधि वाले हैं, वे आशा करके···निराशा करके···आशा निराशा करके···यदि ब्रह्मचर्यसाधना करें भी तो वे उसकी फलप्राप्ति के अयोग्य ही हैं; क्यों कि उनका वह फलप्राप्ति का प्रयत्न विना विचारे (अयोनिशः) किया गया है।

क्षीरार्थी का दृष्टान्त

४. "भूमिज! जैसे कोई दूध का प्रयोजन रखने वाला, दूध की खोज करने करने वाला, दूध की खोज में निकले, नये बछड़े वाली गाय के सींग पकड़ कर उनसे दूध दुहने की इच्छा करे तो वह आशा करके भी ··न आशा न निराशा कर के उससे दूध नहीं पा सकेगा; कारण कि उसका वह प्रयत्न विना विचारे किया गया है। इसी तरह, भूमिज! जो श्रमण-ब्राह्मण···वह फलप्राप्ति का प्रयत्न विना विचारे किया गया है।

नवनीतत्थिकूपमा

५. "सेय्यथापि, भूमिज, पुरिसो नवनीतत्थिको नवनीतगवेसी नवनीतपरियेसनं चरमानो उदकं कलसे आसिञ्चित्वा मत्थेन आविञ्छेय्य; आसं चे पि करित्वा उदकं कलसे आसिञ्चित्वा मत्थेन आविञ्छेय्य, अभब्बो नवनीतस्स अधिगमाय; अनासं चे पि करित्वा···पे०···आसं च अनासं चे पि करित्वा···पे०···नेवासं नानासं चे पि करित्वा उदकं कलसे आसिञ्चित्वा मत्थेन आविञ्छेय्य, अभब्बो नवनीतस्स अधिगमाय। तं किस्स हेतु? अयोनि हेसा, भूमिज, नवनीतस्स अधिगमाय। एवमेव खो, भूमिज, ये हि केचि समणा वा ब्राह्मणा वा मिच्छादिट्ठिनो···पे०···मिच्छासमाधिनो ते आसं चे पि करित्वा ब्रह्मचरियं चरन्ति, अभब्बा फलस्स अधिगमाय; अनासं चे पि करित्वा···पे०···आसं च अनासं चे पि करित्वा···पे०···नेवासं नानासं चे पि करित्वा ब्रह्मचरियं चरन्ति, अभब्बा फलस्स अधिगमाय। तं किस्स हेतु? अयोनि हेसा, भूमिज, फलस्स अधिगमाय।

अग्गित्थिकूपमा

६. "सेय्यथापि, भूमिज, पुरिसो अग्गित्थिको अग्गिगवेसी अग्गिपरियेसनं चरमानो अल्लं कट्ठं सस्नेहं उत्तरारणिं आदाय अभि- [R. 142] मन्थेय्य। आसं चे पि करित्वा अल्लं कट्ठं सस्नेहं उत्तरारणिं [N. 209] आदाय अभिमन्थेय्य, अभब्बो अग्गिस्स अधिगमाय; अनासं चे पि करित्वा···पे०···आसं च अनासं चे पि करित्वा···पे०···नेवासं नानासं चे पि करित्वा अल्लं कट्ठं सस्नेहं उत्तरारणिं आदाय अभिमन्थेय्य, अभब्बो अग्गिस्स अधिगमाय। तं किस्स हेतु? अयोनि हेसा, भूमिज, अग्गिस्स अधिगमाय। एवमेव खो, भूमिज, ये हि केचि समणा वा ब्राह्मणा वा [B. 182] मिच्छादिट्ठिनो···पे०···मिच्छासमाधिनो ते आसं चे पि करित्वा ब्रह्मचरियं

नवनीत (मक्खन) चाहने वाले का दृष्टान्त

५. "भूमिज ! जैसे कोई पुरुष नवनीत के प्रयोजन वाला, नवनीत की खोज करने वाला, नवनीत की खोज करते-करते पात्र में जल भर कर मन्थनदण्ड से बिलोवे, तब वह आशा करके या···न निराशा कर के भी फल प्राप्त नहीं कर सकता; कारण कि उसका वह प्रयत्न अविचारित (अयोनिशः) है। इसी तरह यहाँ कुछ श्रमण ब्राह्मण···उनका वह प्रयत्न बिना विचारे किया गया है।

अग्नि से प्रयोजन वाले का दृष्टान्त

६. "भूमिज ! जैसे कोई अग्नि से प्रयोजन वाला, अग्नि की खोज करने वाला, अग्नि को खोजते-खोजते गीले (आर्द्र) जल से भींगी लकड़ियों को उत्तरारणि लेकर

चरन्ति, अभब्बा फलस्स अधिगमाय; अनासं चे पि करित्वा…पे०…आसं च अनासं चे पि करित्वा…पे०…नेवासं नानासं चे पि करित्वा ब्रह्मचरियं चरन्ति, अभब्बा फलस्स अधिगमाय। तं किस्स हेतु? अयोनि हेसा, भूमिज, फलस्स अधिगमाय। ये हि केचि, भूमिज, समणा वा ब्राह्मणा वा सम्मादिट्ठिनो सम्मासङ्कप्पा सम्मावाचा सम्माकम्मन्ता सम्माआजीवा सम्मावायामा सम्मासती सम्मासमाधिनो ते आसं चे पि करित्वा ब्रह्मचरियं चरन्ति, भब्बा फलस्स अधिगमाय; अनासं चे पि करित्वा ब्रह्मचरियं चरन्ति, भब्बा फलस्स अधिगमाय; आसं च अनासं चे पि करित्वा ब्रह्मचरियं चरन्ति, भब्बा फलस्स अधिगमाय; नेवासं नानासं चे पि करित्वा ब्रह्मचरियं चरन्ति, भब्बा फलस्स अधिगमाय। तं किस्स हेतु? योनि हेसा, भूमिज, फलस्स अधिगमाय।

तेलत्थिकूपमा

७. "सेय्यथापि, भूमिज, पुरिसो तेलत्थिको तेलगवेसी तेलपरियेसनं चरमानो तिलपिट्ठं दोणिया आकिरित्वा उदकेन परिप्फोसकं परिप्फोसकं पीळेय्य; आसं चे पि करित्वा तिलपिट्ठं दोणिया आकिरित्वा उदकेन परिप्फोसकं परिप्फोसकं पीळेय्य, भब्बो तेलस्स अधिगमाय; अनासं चे पि करित्वा…पे०…आसं च अनासं चे पि करित्वा…पे०…नेवासं नानासं चे पि करित्वा तिलपिट्ठं दोणिया आकिरित्वा उदकेन परिप्फोसकं परिप्फोसकं पीळेय्य, भब्बो तेलस्स अधिगमाय। तं किस्स हेतु? योनि हेसा, भूमिज, तेलस्स अधिगमाय। एवमेव खो, भूमिज, ये हि केचि समणा वा ब्राह्मणा [N. 210] वा सम्मादिट्ठिनो…पे…सम्मासमाधिनो ते आसं चे पि करित्वा [R. 143] ब्रह्मचरियं चरन्ति, भब्बा फलस्स अधिगमाय; अनासं चे पि करित्वा…पे०…आसं च अनासं चे पि करित्वा…पे०…नेवासं नानासं चे पि करित्वा ब्रह्मचरियं चरन्ति, भब्बा फलस्स अधिगमाय। तं किस्स हेतु? योनि हेसा, भूमिज, फलस्स अधिगमाय।

मन्थन करे। आशा करके भी…पूर्ववत्…उनका वह प्रयत्न विना विचारे किया गया है।

उचित प्रयत्न करने वाले तैलार्थी का दृष्टान्त

७. "भूमिज! इसके विपरीत, यदि कोई तैलार्थी, तैलगवेषी, तैल को खोजते-खोजते तिलपिष्टि को द्रोणी (ऊखल=उदूखल) में डालकर पानी का छींटा देकर पेरे, तो वह तैल पाने के योग्य है। इसी तरह सम्यग्दृष्टि…सम्यक्समाधि कुछ श्रमण ब्राह्मण आशा करके भी…न निराशा करके भी ब्रह्मचर्य साधना करते हैं तो वे उसका फल पाने योग्य हैं; क्यों कि उनका वह प्रयत्न सूक्ष्मतया विचार करके किया गया है।

खीरत्थिकूपमा

८. "सेय्यथापि, भूमिज, पुरिसो खीरत्थिको खीरगवेसी खीरपरियेसनं चरमानो गाविं तरुणवच्छं थनतो आविञ्छेय्य; आसं चे पि करित्वा गाविं तरुणवच्छं थनतो आविञ्छेय्य, भब्बो खीरस्स अधिगमाय; अनासं चे पि करित्वा…पे०…आसं च अनासं चे पि करित्वा…पे०…नेवासं नानासं चे पि करित्वा गाविं तरुणवच्छं थनतो आविञ्छेय्य, भब्बो खीरस्स अधिगमाय। तं किस्स हेतु ? योनि हेसा, भूमिज, खीरस्स अधिगमाय। [B. 183] एवमेव खो, भूमिज, ये हि केचि समणा वा ब्राह्मणा वा सम्मादिट्ठिनो पे०…सम्मासमाधिनो ते आसं चो पि करित्वा…पे०…अनासं चो पि करित्वा…पे०…आसं च अनासं चो पि करित्वा…पे०…नेवासं नानासं चो पि करित्वा ब्रह्मचरियं चरन्ति, भब्बा फलस्स अधिगमाय। तं किस्स हेतु ? योनि हेसा, भूमिज, फलस्स अधिगमाय।

नवनीतत्थिकूपमा

९. "सेय्यथापि, भूमिज, पुरिसो नवनीतत्थिको नवनीतगवेसी नवनीतपरियेसनं चरमानो दधिं कलसे आसिञ्चित्वा मत्थेन आविञ्छेय्य; आसं चो पि करित्वा दधिं कलसे आसिञ्चित्वा मत्थेन आविञ्छेय्य, भब्बो नवनीतस्स अधिगमाय; अनासं चो पि करित्वा…आसं च अनासं चो पि करित्वा…नेवासं नानासं चो पि करित्वा दधिं कलसे आसिञ्चित्वा मत्थेन आविञ्छेय्य, भब्बो नवनीतस्स अधिगमाय। तं किस्स हेतु ? योनि हेसा, भूमिज, नवनीतस्स अधिगमाय। एवमेव खो, भूमिज, ये हि केचि समणा वा ब्राह्मणा वा सम्मादिट्ठिनो…पे०…सम्मासमाधिनो ते आसं चो पि करित्वा ब्रह्मचरियं

उचित प्रयत्न वाले क्षीरार्थी की उपमा

८. "भूमिज ! जैसे कोई दूध चाहने वाला, दूध की खोज करने वाला किसी तरुणवत्सा गौ के स्तनों से दूध निकाले तो उसे दूध मिल ही जायेगा—यह निश्चित है। कारण कि उसका यह प्रयत्न सूक्ष्मतया उचित विचार के बाद प्रारम्भ हुआ है। इसी तरह कुछ सम्यग्दृष्टि…सम्यक्समाधि श्रमणब्राह्मण…आशा करके भी…न निराशा करके भी ब्रह्मचर्यसाधना में लगते हैं उनको उसका फल अवश्य मिलता है; कारण कि उनका वह प्रयत्न उचित विचार के बाद प्रारम्भ हुआ है।

उचित प्रयत्न वाले नवनीतार्थी का दृष्टान्त

९. "भूमिज ! जैसे कोई नवनीत चाहने वाला पात्र में दही डाल कर उसे मन्थनदण्ड से बिलोवे; आशा करके भी…न निराशा करके भी…वह प्रयत्न उचित विचार के बाद प्रारम्भ हुआ है।

[N. 211] चरन्ति, भब्बा फलस्स अधिगमाय; अनासं चे पि करित्वा…आसं च अनासं चे पि करित्वा…नेवासं नानासं चे पि करित्वा ब्रह्मचरियं चरन्ति, भब्बा फलस्स अधिगमाय। तं किस्स हेतु ? योनि हेसा, भूमिज, फलस्स अधिगमाय।

अग्गित्थिकूपमा

१०. "सेय्यथापि, भूमिज, पुरिसो अग्गित्थिको अग्गिगवेसी अग्गिपरियेसनं चरमानो सुक्खं कट्ठं कोळापं उत्तरारणिं आदाय अभिमन्थेय्य; आसं चे पि करित्वा…पे०…नेवासं नानासं चे पि करित्वा सुक्खं कट्ठं कोळापं उत्तरारणिं [R. 144] आदाय अभिमन्थेय्य, भब्बो अग्गिस्स अधिगमाय। तं किस्स हेतु ? योनि हेसा, भूमिज अग्गिस्स अधिगमाय। एवमेव खो, भूमिज, ये हि केचि समणा वा ब्राह्मणा वा सम्मादिट्ठिनो…पे०…सम्मासमाधिनो ते आसं चे पि करित्वा ब्रह्मचरियं चरन्ति, भब्बा फलस्स अधिगमाय; अनासं चे पि करित्वा ब्रह्मचरियं चरन्ति, भब्बा फलस्स अधिगमाय; आसं च अनासं चे पि करित्वा ब्रह्मचरियं चरन्ति, भब्बा फलस्स अधिगमाय; नेवासं नानासं चे पि करित्वा ब्रह्मचरियं चरन्ति, भब्बा फलस्स अधिगमाय। तं किस्स हेतु ? योनि हेसा, भूमिज फलस्स अधिगमाय।

[B. 184] "सचे खो तं, भूमिज, जयसेनस्स राजकुमारस्स इमा चतस्सो उपमा पटिभायेय्यु अनच्छरियं ते जयसेनो राजकुमारो पसीदेय्य, पसन्नो च ते पसन्नाकारं करेय्या" ति।

"कुतो पन मं, भन्ते, जयसेनस्स राजकुमारस्स इमा चतस्सो उपमा पटिभायिस्सन्ति अनच्छरियं पुब्बे अस्सुतपुब्बा, सेय्यथापि भगवन्तं" ति !

उचित प्रयत्न से अग्नि-प्राप्ति का दृष्टान्त

१०. भूमिज ! जैसे किसी पुरुष को अग्नि से प्रयोजन हो…वह अग्नि की खोज में निकले। खोजते-खोजते उसे कहीं सूखी लकड़ी मिल जाँय, उन्हें उत्तराराणि से मँथ कर अग्नि जलाना चाहे तो निश्चित है कि उसका प्रयत्न सफल हो जायगा। कारण…कोई श्रमण-ब्राह्मण सम्यग्दृष्टि…उनका वह प्रयत्न उचित विचारपूर्वक प्रारम्भ हुआ है। अतः वे सफल होंगे ही।

"भूमिज ! यदि तूँ जयसेन राजकुमार को ये तैलार्थी आदि की चार उपमायें बतला देता तो वह राजकुमार तुम पर प्रसन्न होता और प्रसन्न होने पर जो कार्य उसे तुम्हारे लिये करने चाहिये, वह उन्हें भी करता।"

"मैं, भन्ते ! अश्रुतपूर्व ये उपमाएँ उस राजकुमार को कहाँ से बताता, जैसी कि भगवान् ने अभी मुझे बतायी हैं !"

११. इदमवोच भगवा। अत्तमनो आयस्मा भूमिजो भगवतो भासितं अभिनन्दी ति।

---

११. भगवान् ने यह उपदेश किया, आत्तमना आयुष्मान् भूमिज ने भगवान् के भाषण का अभिनन्दन किया।।

भूमिजसुत्त समाप्त।।

२७. अनुरुद्धसुत्तं

पञ्चकङ्गेन निमन्तितो आयस्मा अनुरुद्धो

[N. 212] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो पञ्चकङ्गो थपति अञ्ञतरं पुरिसं आमन्तेसि—"एहि त्वं, अम्भो पुरिस, येनायस्मा अनुरुद्धो तेनुपसङ्कम; [R. 145] उपसङ्कमित्वा मम वचनेन आयस्मतो अनुरुद्धस्स पादे सिरसा वन्दाहि—'पञ्चकङ्गो, भन्ते, थपति आयस्मतो अनुरुद्धस्स पादे सिरसा वन्दती' ति; एवं च वदेहि--'अधिवासेतु किर, भन्ते, आयस्मा अनुरुद्धो पञ्चकङ्गस्स थपतिस्स स्वातनाय अत्तचतुत्थो भत्तं; येन च किर, भन्ते, आयस्मा अनुरुद्धो पगेवतरं आगच्छेय्य; पञ्चकङ्गो, भन्ते, थपति बहुकिच्चो बहुकरणीयो राजकरणीयेना' " ति। "एवं, भन्ते" ति खो सो पुरिसो पञ्चकङ्गस्स थपतिस्स पटिस्सुत्वा येनायस्मा अनुरुद्धो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं अनुरुद्धं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसिन्नो खो सो पुरिसो आयस्मन्तं अनुरुद्धं एतदवोच--"पञ्चकङ्गो, भन्ते, थपति आयस्मतो अनुरुद्धस्स पादे सिरसा वन्दति, एवं च वदेति--'अधिवासेतु किर, भन्ते, आयस्मा अनुरुद्धो पञ्चकङ्गस्स थपतिस्स स्वातनाय अत्तचतुत्थो भत्तं; येन च किर, भन्ते, आयस्मा अनुरुद्धो पगेवतरं आगच्छेय्य; पञ्चकङ्गो, भन्ते, थपति बहुकिच्चो बहुकरणीयो राजकरणीयेना' " ति। अधिवासेसि खो आयस्मा अनुरुद्धो तुण्हीभावेन।

---

२७. अनुरुद्धसूत्र

१. आयुष्मान् अनुरुद्ध पञ्चकाङ्ग स्थपति द्वारा निमन्त्रित

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती के अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय किसी पुरुष को पञ्चकाङ्ग स्थपति ने अपने पास बुलाया, और कहा—"जाओ पुरुष! तुम आयुष्मान् अनुरुद्ध के पास पहुँचो। पहुँच कर उन्हें मेरी तरफ से कहना—'पञ्चकाङ्ग स्थपति आपके श्रीचरणों में मस्तक से वन्दना करता है और उसने कहा है कि कल आप मेरे यहाँ अपने सहित चार भिक्षुओं का भोजन स्वीकार करें। और अच्छा हो कि आयुष्मान् अनुरुद्ध भिक्षाकाल से कुछ पहले ही मेरे घर पधारें; क्योंकि मैं (पञ्चकाङ्ग स्थपति) गृहस्थ के कार्यभार से और राज्य-सेवा से अत्यधिक दबा हुआ हूँ।'" "ठीक है श्रीमन्!"--पञ्चकाङ्ग स्थपति को यों कहकर वह पुरुष जहाँ आयुष्मान् अनुरुद्ध विराजमान थे, वहाँ पहुँचा। पहुँच कर आयुष्मान् अनुरुद्ध को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस पुरुष ने आयुष्मान् अनुरुद्ध से यों निवेदन किया--"पञ्चकाङ्ग स्थपति...राज्यकार्य में

२. अथ खो आयस्मा अनुरुद्धो तस्सा रत्तिया अच्चयेन [B. 185] पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन पञ्चकङ्गस्स थपतिस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। अथ खो पञ्चकङ्गो थपति आयस्मन्तं अनुरुद्धं पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेसि सम्पवारेसि। अथ खो पञ्चकङ्गो थपति आयस्मन्तं [N. 213] अनुरुद्धं भुत्ताविं ओनीतपत्तपाणिं अञ्ञतरं नीचं आसनं गहेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो पञ्चकङ्गो थपति आयस्मन्तं अनुरुद्धं एतदवोच—

२. चेतोविमुत्ति-अप्पमाणा च महग्गता च

३. "इध मं, भन्ते, थेरा भिक्खू उपसङ्कमित्वा एवमाहंसु—'अप्पमाणं, गहपति, चेतोविमुत्तिं भावेही' ति। एकच्चे थेरा एवमाहंसु—'महग्गतं, गहपति, चेतोविमुत्तिं भावेही' ति। या चायं, भन्ते, अप्पमाणा चेतोविमुत्ति या च महग्गता चेतोविमुत्ति—इमे धम्मा नानत्था चेव नानाब्यञ्जना च, उदाहु एकत्था ब्यञ्जनमेव नानं" ति? [R. 146]

"तेन हि, गहपति, तं येवेत्थ पटिभातु। अपण्णकं ते इतो भविस्सती" ति।

अत्यधिक व्यासक्त है।" आयुष्मान् अनुरुद्ध ने मौन भाव से यह आमन्त्रण स्वीकार किया।

२. इसके बाद आयुष्मान् अनुरुद्ध उस रात्रि के बीत जाने पर, प्रातःकाल होने पर पात्रचीवर ले, जहाँ पञ्चकाङ्ग स्थपति का निवास था, वहाँ पहुँचे। पहुँचकर एक ओर आसन पर विराजमान हुए। तब पञ्चकाङ्ग स्थपति ने आयुष्मान् अनुरुद्ध को सुन्दर सुन्दर सुगन्धि रुचिकर खाद्य भोज्य पदार्थ अपने हाथ से परोस कर सन्तृप्त एवं सन्तुष्ट किया। तदनन्तर पञ्चकाङ्ग स्थपति ने आयुष्मान् अनुरुद्ध को भोजनपात्र से हाथ खींचा हुआ देखकर, भोजन समाप्त किया समझ, एक नीचा आसन ग्रहण किया और उनसे यों पूछा—

२. अप्रमाण और महद्गत चेतोविमुक्ति

३. "भन्ते! कुछ स्थविर भिक्षुओं ने मुझको आकर कभी यह उपदेश किया—'गृहपति! अप्रमाणा चेतोविमुक्ति की साधना करनी चाहिये' और कुछ भिक्षुओं ने कभी यह बताया कि 'महद्गता (महती) चेतोविमुक्ति की भावना करनी चाहिये'। भन्ते! ये जो दोनों चेतोविमुक्तियाँ हैं उनका भिन्न अर्थ व नाम भी भिन्न है या दोनों का नाम (व्यञ्जन) एक है अर्थ ही भिन्न है?"

"तो गृहपति! इस विषय में तुम ही बताओ। तुम्हारा कथन भी सन्देह नाश में सहायक (अपर्णक) ही होगा!"

"मय्हं खो, भन्ते, एवं होति—'या चायं अप्पमाणा चेतोविमुत्ति या च महग्गता चेतोविमुत्ति—इमे धम्मा एकत्था ब्यञ्जनमेव नानं" ति ।

"या चायं, गहपति, अप्पमाणा चेतोविमुत्ति या च महग्गता चेतोविमुत्ति—इमे धम्मा नानत्था चेव नानाब्यञ्जना च । तदमिनापेतं, गहपति, परियायेन वेदितब्बं यथा इमे धम्मा नानत्था चेव नानाब्यञ्जना च ।

"कतमा च, गहपति, अप्पमाणा चेतोविमुत्ति ? इध, गहपति, भिक्खु मेत्तासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरति, तथा दुतियं तथा ततियं तथा चतुत्थं; इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोकं मेत्तासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्याबज्झेन फरित्वा विहरति । करुणासहगतेन चेतसा ··मुदितासहगतेन चेतसा···उपेक्खासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरति, तथा दुतियं तथा ततियं [N.214] तथा चतुत्थं; इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोक उपेक्खासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्याबज्झेन फरित्वा विहरति । अयं वुच्चति, गहपति, अप्पमाणा चेतोविमुत्ति ।

[B. 186] ४. "कतमा च, गहपति, महग्गता चेतोविमुत्ति ? इध, गहपति, भिक्खु यावता एकं रुक्खमूलं महग्गतं ति फरित्वा अधिमुच्चित्वा विहरति । अयं वुच्चति, गहपति, महग्गता चेतोविमुत्ति । इध पन, गहपति, भिक्खु यावता द्वे वा तीणि वा रुक्खमूलानि महग्गतं ति फरित्वा अधिमुच्चित्वा विहरति । अयं पि वुच्चति, गहपति, महग्गता चेतोविमुत्ति । इध पन, गहपति, भिक्खु यावता एकं गामक्खेत्तं महग्गतं ति फरित्वा अधि-
[R. 147] मुच्चित्वा विहरति । अयं पि वुच्चति, गहपति, महग्गता

"भन्ते ! मुझे तो ऐसा लगता है कि अप्रमाणा एवं महद्गता चेतोविमुक्ति—दोनों का अर्थ तो एक है केवल शब्द ही नाना हैं ।"

"नहीं, गृहपति ! ऐसी बात नहीं है ! इन दोनों शब्दों के नाम तो भिन्न हैं ही, अर्थ भी भिन्न ही हैं । इस विषय में तुम्हारे लिये यही समझना उचित होगा ।

"गृहपति ! अप्रमाणा चेतोविमुक्ति क्या है ? गृहपति ! यहाँ कोई भिक्षु मैत्रीभावयुक्त चित्त से··· पूर्ववत्···समस्त लोक को पूर्ण कर करुणासहगत चित्त से··· मुदितासहगत चित्त से···उपेक्षासहगत चित्त से···गृहपति ! इसे कहते हैं—अप्रमाणा चेतोविमुक्ति ।

४. "क्या है, गृहपति ! महद्गता चेतोविमुक्ति ? यहाँ गृहपति ! कोई भिक्षु एक वृक्ष की छाया के बराबर महद्गत चित्त को व्याप्त = अधिमुक्त कर साधना

चेतोविमुत्ति। इध पन, गहपति, भिक्खु यावता द्वे वा तीणि वा गाम-क्खेत्तानि महग्गतं ति फरित्वा अधिमुच्चित्वा विहरति। अयं पि वुच्चति, गहपति, महग्गता चेतोविमुत्ति। इध पन, गहपति, भिक्खु यावता एकं महारज्जं महग्गतं ति फरित्वा अधिमुच्चित्वा विहरति। अयं पि वुच्चति, गहपति, महग्गता चेतोविमुत्ति। इध पन, गहपति, भिक्खु यावता द्वे वा तीणि वा महारज्जानि महग्गतं ति फरित्वा अधिमुच्चित्वा विहरति। अयं पि वुच्चति, गहपति, महग्गता चेतोविमुत्ति। इध पन, गहपति, भिक्खु यावता समुद्दपरियन्तं पथविं महग्गतं ति फरित्वा अधिमुच्चित्वा विहरति। अयं पि वुच्चति, गहपति, महग्गता चेतोविमुत्ति। इमिना खो एतं, गहपति, परियायेन वेदितब्बं यथा इमे धम्मा नानत्था चेव नानाब्यञ्जना च।

३. चतस्सो भवूपपत्तियो

५. "चतस्सो खो इमा, गहपति, भवूपपत्तियो। कतमा चतस्सो? इध, गहपति, एकच्चो 'परित्ताभा' ति फरित्वा अधिमुच्चित्वा विहरति। सो कायस्स भेदा परं मरणा परित्ताभानं देवानं सहब्यतं उपपज्जति। इध पन, गहपति, एकच्चो 'अप्पमाणाभा' ति फरित्वा अधिमुच्चित्वा [N. 215] विहरति। सो कायस्स भेदा परं मरणा अप्पमाणाभानं देवानं सहब्यतं उपपज्जति। इध पन, गहपति, एकच्चो 'सङ्किलिट्ठाभा' ति फरित्वा अधि-मुच्चित्वा विहरति। सो कायस्स भेदा परं मरणा सङ्किलिट्ठाभानं देवानं सहब्यतं उपपज्जति। इध पन, गहपति, एकच्चो 'परिसुद्धाभा' ति फरित्वा

करता है—यह कही जाती है महद्गता चेतोविमुक्ति। और यहाँ गृहपति! यहाँ कोई भिक्षु दो या तीन वृक्षों की छाया के बराबर...यह भी महद्गता चेतोविमुक्ति ही कही जाती है।...एक ग्रामक्षेत्र दो या तीन ग्रामक्षेत्र...एक महाराज्य...दो या तीन महाराज्य...समुद्रपर्यन्त पृथ्वी के बराबर महद्गत चित्त को व्याप्त कर साधना करता है, गृहपति! इस विचार से भी ये दोनों शब्द नानार्थक एवं नाना नाम वाले समझे जाने चाहिये।

३. चार भवोपपत्तियाँ

५. "गृहपति! भव (लोक) में उपपत्ति चार कहलाती हैं। कौन सी चार? यहाँ गृहपति! कोई साधक परित्ताभ (पर्याप्त=सीमित, आभा=प्रकाश) को व्याप्त कर साधना करता है तो वह उस देहपात के बाद परित्ताभ देवों के साथ (=सहव्यता) उत्पन्न होता है। और गृहपति! कोई साधक अप्रमाणाभ को व्याप्त कर साधना करता है...संक्लिष्टाभ को व्याप्त कर...परिशुद्धाभ को व्याप्त कर साधना करता है तो वह देहपात के बाद परिशुद्धाभ देवों के लोक में उत्पन्न होता है। यों, गृहपति!

अधिमुच्चित्वा विहरति। सो कायस्स भेदा परं मरणा परिसुद्धाभानं देवानं सहब्यतं उपपज्जति। इमा खो, गहपति, चतस्सो भवूपपत्तियो।

"होति खो सो, गहपति, समयो या ता देवता एकज्झं सन्निपतन्ति, तासं एकज्झं सन्निपतितानं वण्णनानत्तं हि खो पञ्ञायति नो च आभानानत्तं। [B. 187] सेय्यथापि, गहपति, पुरिसो सम्बहुलानि तेलप्पदीपानि एकं घरं पवेसेय्य, तेसं एकं घरं पवेसितानं अच्चिनानत्तं हि खो पञ्ञायेथ, नो च आभानानत्तं; एवमेव खो गहपति, होति खो सो समयो, या ता देवता [R. 148] एकज्झं सन्निपतन्ति तासं एकज्झं सन्निपतितानं वण्णनानत्तं हि खो पञ्ञायति, नो च आभानानत्तं।

"होति खो सो, गहपति, समयो, या ता देवता ततो विपक्कमन्ति, तासं ततो विपक्कमन्तीनं वण्णनानत्तं चेव पञ्ञायति आभानानत्तं च। सेय्यथापि, गहपति, पुरिसो तानि सम्बहुलानि तेलप्पदीपानि तम्हा घरा नीहरेय्य, तेसं ततो नीहतानं अच्चिनानत्तं चेव पञ्ञायेथ आभानानत्तं च; एवमेव खो, गहपति, होति खो सो समयो, या ता देवता ततो विपक्कमन्ति, तासं ततो विपक्कमन्तीनं वण्णनानत्तं चेव पञ्ञायति आभानानत्तं च।

ये चार (परित्ताभ, अप्रमाणाभ, संक्लिष्टाभ एवं परिशुद्धाभ) भवोपपत्तियाँ लोक में प्रसिद्ध हैं।

"गृहपति ! एक समय होता है जब ये सभी देवता एक जगह एकत्र होते हैं। उनके एक जगह एकत्र होते समय उनके वर्णों का नानात्व (अनेकत्व) तो समझ में आता है, परन्तु उनके प्रकाश का नानात्व पृथक् पृथक् दिखायी नहीं देता। जैसे गृहपति ! कोई पुरुष बहुत से जलते तैलदीप किसी घर में एक साथ ले जाकर रखने लगे, इस समय उन तैलदीपों का अनेकविधत्व तो दिखायी देता है, परन्तु उनके प्रकाश (=अर्चिष्) का नानात्व स्पष्ट ज्ञात नहीं होता; इसी तरह गृहपति ! उन देवताओं का, एकत्र होने पर, शरीर तो पृथक् पृथक् दिखायी देता है, परन्तु उनके प्रकाश के नानात्व का ज्ञान स्पष्टतया नहीं होता।

"और गृहपति ! एक समय कभी वे सभी देवता उस स्थान से उठ कर अलग-अलग जाते हैं उस समय उनके शरीर एवं प्रकाश—दोनों ही पृथक् पृथक् दिखायी देते हैं। जैसे कोई पुरुष जलते हुए तैलदीपों को घर से बाहर निकाल कर रखे, उस समय उन तैलदीपों का और उनके प्रकाश का नानात्व स्पष्ट दिखायी देता है। उसी तरह उस समय उन देवताओं के वर्ण और प्रकाश का नानात्व स्पष्ट दिखायी देता है।

"न खो, गहपति, तासं देवतानं एवं होति--'इदं अम्हाकं निच्चं ति वा धुवं ति वा सस्सतं' ति वा, अपि च यत्थ यत्थेव ता देवता अभिनिविसन्ति तत्थ तत्थेव ता देवता अभिरमन्ति। सेय्यथापि, गहपति, मक्खिकानं काजेन वा पिटकेन वा हरीयमानानं न एवं होति—'इदं अम्हाकं निच्चं ति वा धुवं ति वा सस्सतं' ति वा, अपि च यत्थ यत्थेव ता मक्खिका अभिनिविसन्ति तत्थ तत्थेव ता मक्खिका अभिरमन्ति; एवमेव खो, गहपति, [N. 216] तासं देवतानं न एवं होति—'इदं अम्हाकं निच्चं ति वा धुवं ति वा सस्सतं ति वा, अपि च यत्थ यत्थेव ता देवता अभिनिविसन्ति तत्थ तत्थेव ता देवता अभिरमन्ती" ति।

४. परित्ताभा च अप्पमाणाभा च देवता

६. एवं वुत्ते, आयस्मा सभियो कच्चानो आयस्मन्तं अनुरुद्धं एतदवोच—"साधु, भन्ते अनुरुद्ध ! अत्थि च मे एत्थ उत्तरि पटिपुच्छितब्बं। या ता, भन्ते, देवता आभा सब्बा ता परित्ताभा ? उदाहु सन्तेत्थ एकच्चा देवता अप्पमाणाभा" ति ?

"तदङ्गेन खो, आवुसो कच्चान, सन्तेत्थ एकच्चा देवता परित्ताभा, सन्ति पनेत्थ एकच्चा देवता अप्पमाणाभा" ति।

"को नु खो, भन्ते अनुरुद्ध, हेतु, को पच्चयो येन तासं देवतानं एकं

"गृहपति ! उस समय उन देवताओं को यह विचार नहीं होता—'हमलोगों का यह रूप नित्य, ध्रुव या शाश्वत है; अपितु जहाँ जहाँ वे देवता अभिनिवेश (चाह) करते हैं वहाँ वहाँ ही वे अभिरमण करते हैं। जैसे, गृहपति ! बहँगी (काँवर) या टोकरी में ले जाई जाती मक्खियों को यह नहीं होता—'यह हमारा गमन नित्य ध्रुव एवं शाश्वत है', अपितु वे मक्खियाँ जहाँ जहाँ चाहकर जाती हैं वहीं वहीं अभिरमण करती रहती हैं। इसी प्रकार, गृहपति ! उन देवताओं को ऐसा विचार नहीं होता—"'पूर्ववत्'"।

४. परित्ताभ और अप्रमाणाभ देव

६. ऐसा कहे जाने पर आयुष्मान् सभ्य कात्यायन ने आयुष्मान् अनुरुद्ध से यों कहा—"ठीक है, भन्ते अनुरुद्ध ! परन्तु यहाँ मुझे एक बात और पूछनी है। जो प्रकाशवान् देव हैं वे क्या सभी परित्ताभ (पर्याप्ताभ=सीमितप्रकाश) ही हैं या उनमें से एक कुछ अप्रमाणाभ (=असीमित प्रकाश वाले) देवता भी होते हैं ?"

"आभा की दृष्टि से, आयुष्मन् कात्यायन ! कुछ देवता परित्ताभ होते हैं और कुछ अप्रमाणाभ।"

[B. 188, R. 149] देवनिकायं उपपन्नानं सन्तेत्थ एकच्चा देवता परित्ताभा, सन्ति पनेत्थ एकच्चा देवता अप्पमाणाभा'' ति ?

"तेन हावुसो कच्चान, तं येवेत्थ पटिपुच्छिस्सामि। यथा ते खमेय्य तथा नं ब्याकरेय्यासि। तं किं मञ्ञसि, आवुसो कच्चान, य्वायं भिक्खु यावता एकं रुक्खमूलं 'महग्गतं' ति फरित्वा अधिमुच्चित्वा विहरति, यो चायं भिक्खु यावता द्वे वा तीणि वा रुक्खमूलानि 'महग्गतं' ति फरित्वा अधिमुच्चित्वा विहरति—इमासं उभिन्नं चित्तभावनानं कतमा चित्तभावना महग्गततरा" ति।

"य्वायं, भन्ते, भिक्खु यावता द्वे वा तीणि वा रुक्खमूलानि 'महग्गतं' ति फरित्वा अधिमुच्चित्वा विहरति—अयं इमासं उभिन्नं चित्तभावनानं महग्गततरा" ति।

"तं किं मञ्ञसि, आवुसो कच्चान, य्वायं भिक्खु यावता द्वे वा तीणि वा रुक्खमूलानि 'महग्गतं' ति फरित्वा अधिमुच्चित्वा विहरति, यो चायं [N. 217] भिक्खु यावता एकं गामक्खेत्तं 'महग्गतं' ति फरित्वा अधिमुच्चित्वा विहरति—इमासं उभिन्नं चित्तभावनानं कतमा चित्तभावना महग्गततरा" ति ?

"य्वायं, भन्ते, भिक्खु यावता एकं गामक्खेत्तं 'महग्गतं' ति फरित्वा अधिमुच्चित्वा विहरति—अयं इमासं उभिन्नं चित्तभावनानं महग्गततरा" ति।

"आयुष्मन् अनुरुद्ध ! इसमें क्या हेतु या क्या प्रत्यय है कि कुछ देवता तो परित्ताभ होते हैं ? और कुछ अप्रमाणाभ ?"

"तो आयुष्मन् कात्यायन ! यहाँ मैं तुम्ही से पूछता हूँ, जैसा तुम्हें उचित लगे वैसा उत्तर दो। तो क्या मानते हो, आयुष्मन् कात्यायन ! यहाँ जो भिक्षु एक वृक्षमूल के बराबर महद्‌गत (बड़े स्थान) को व्याप्त कर साधना करता है और दूसरा भिक्षु दो तीन वृक्षमूल के बराबर महद्‌गत की साधना करता है—इन दोनों साधनाओं में कौन साधना बड़ी होगी ?"

"भन्ते ! यह जो भिक्षु दो तीन वृक्षमूल के बराबर महद्‌गत का आश्रयण कर साधना करता है, वही साधना इन साधनाओं में अपेक्षाकृत बड़ी होगी।"

"तो क्या मानते हो, आयुष्मन् कात्यायन ! यह जो भिक्षु दो तीन वृक्षमूलों के…या जो भिक्षु एक ग्रामक्षेत्र के बराबर महद्‌गत का आश्रयण कर साधना करता है, इन दोनों में कौन सी साधना अपेक्षाकृत बड़ी होगी ?"

"भन्ते ! एक ग्रामक्षेत्र…अपेक्षाकृत बड़ी होगी।"

"तं किं मञ्ञसि, आवुसो कच्चान, य्वायं भिक्खु यावता एकं गामक्खेत्तं 'महग्गतं' ति फरित्वा अधिमुच्चित्वा विहरति, यो चायं भिक्खु यावता द्वे वा तीणि वा गामक्खेत्तानि 'महग्गतं' ति फरित्वा अधिमुच्चित्वा विहरति—इमासं उभिन्नं चित्तभावनानं कतमा चित्तभावना महग्गततरा" ति ?

"य्वायं, भन्ते, भिक्खु यावता द्वे वा तीणि वा गामक्खेत्तानि 'महग्गतं' ति फरित्वा अधिमुच्चित्वा विहरति--अयं इमासं उभिन्नं चित्तभावनानं महग्गततरा" ति ।

"तं किं मञ्ञसि, आवुसो कच्चान, य्वायं भिक्खु यावता द्वे वा तीणि वा गामक्खेत्तानि 'महग्गतं' ति फरित्वा अधिमुच्चित्वा विह- [R. 150] रति, यो चायं भिक्खु यावता एकं महारज्जं 'महग्गतं' ति फरित्वा अधिमुच्चित्वा विहरति—इमासं उभिन्नं चित्तभावनानं कतमा चित्तभावना महग्गततरा" ति ? [B. 189]

"य्वायं, भन्ते, भिक्खु यावता एकं महारज्जं 'महग्गतं' ति फरित्वा अधिमुच्चित्वा विहरति—अयं इमासं उभिन्नं चित्तभावनानं महग्गततरा" ति ।

"तं किं मञ्ञसि, आवुसो कच्चान, य्वायं भिक्खु यावता एकं महारज्जं 'महग्गतं' ति फरित्वा अधिमुच्चित्वा विहरति, यो चायं भिक्खु यावता द्वे वा तीणि वा महारज्जानि 'महग्गतं' ति फरित्वा अधिमुच्चित्वा विहरति—इमासं उभिन्नं चित्तभावनानं कतमा चित्तभावना महग्गततरा" ति ?

"य्वायं, भन्ते, भिक्खु यावता द्वे वा तीणि वा महारज्जानि 'महग्गतं' ति फरित्वा अधिमुच्चित्वा विहरति—अयं इमासं उभिन्नं चित्तभावनानं महग्गततरा" ति ।

"तं किं मञ्ञसि, आवुसो कच्चान, य्वायं भिक्खु यावता [N. 218] द्वे वा तीणि वा महारज्जानि 'महग्गतं' ति फरित्वा अधिमुच्चित्वा विहरति,

---

"तो क्या ?...एक ग्रामक्षेत्र...दो या तीन ग्रामक्षेत्र...?"

"दो या तीन ग्रामक्षेत्रों के बराबर...अपेक्षाकृत बड़ी होगी।"

"तो क्या...दो या तीन ग्रामक्षेत्र...एक महाराज्य...!"

"एक महाराज्य के बराबर...अपेक्षाकृत बड़ी होगी।"

"तो क्या...एक महाराज्य...दो या तीन महाराज्य के बराबर !"

"दो या तीन महाराज्य के बराबर...बड़ी होगी।"

"तो क्या...दो या तीन महाराज्य...या समुद्रपर्यन्त पृथ्वी के बराबर...!"

यो चायं भिक्खु यावता समुद्दपरियन्तं पथविं 'महग्गतं' ति फरित्वा अधि-मुच्चित्वा विहरति—अयं इमासं उभिन्नं चित्तभावनानं कतमा चित्तभावना महग्गततरा" ति ?

"य्वायं, भन्ते, भिक्खु यावता समुद्दपरियन्तं पथविं 'महग्गतं' ति फरित्वा अधिमुच्चित्वा विहरति—अयं इमासं उभिन्नं चित्तभावनानं महग्गततरा" ति ।

"अयं खो, आवुसो कच्चान, हेतु अयं पच्चयो, येन तासं देवतानं एकं देवनिकायं उपपन्नानं सन्तेत्थ एकच्चा देवता परित्ताभा, सन्ति पनेत्थ एकच्चा देवता अप्पमाणाभा" ति ।

५. सङ्किलिट्ठाभा च परिसुद्धाभा च देवता

७. "साधु, भन्ते अनुरुद्ध ! अत्थि च मे एत्थ उत्तरिं पटिपुच्छितब्बं । यावता, भन्ते, देवता आभा सब्बा ता सङ्किलिट्ठाभा ? उदाहु सन्तेत्थ एकच्चा देवता परिसुद्धाभा" ति ?

[R. 151] "तदङ्गेन खो, आवुसो कच्चान, सन्तेत्थ एकच्चा देवता सङ्किलिट्ठाभा, सन्ति पनेत्थ एकच्चा देवता परिसुद्धाभा" ति ।

"को नु खो, भन्ते, अनुरुद्ध, हेतु को पच्चयो, येन तासं देवतानं एकं देवनिकायं उपपन्नानं सन्तेत्थ एकच्चा देवता सङ्किलिट्ठाभा, सन्ति पनेत्थ एकच्चा देवता परिसुद्धाभा" ति ?

[B. 190] "तेन, आवुसो कच्चान, उपमं ते करिस्सामि । उपमाय

"यह जो भन्ते ! समुद्रपर्यन्त पृथ्वी के बराबर···अपेक्षाकृत बड़ी होगी ।"

"आयुष्मन् ! यही हेतु और यही प्रत्यय उन एक ही कुल (निकाय) में उत्पन्न हुए देवताओं के विषय में भी समझ लो जिनमें से कुछ परित्ताभ हैं तो कुछ अप्रमाणाभ ।

५. संक्लिष्टाभ और परिशुद्धाभ देवता

७. "साधु, भन्ते अनुरुद्ध ! साधु ! इससे आगे मेरा एक प्रश्न और भी है । वह यह कि ये जो देवता हैं वे सभी धुँधली आभा वाले (संक्लिष्टाभ) ही हैं या उन में कोई परिशुद्धाभ (निर्मल आभा वाले) भी हैं ?

"आयुष्मन् कात्यायन ! इस दृष्टि से कुछ देवता संक्लिष्टाभ भी हैं और कुछ परिशुद्धाभ भी ।"

"भन्ते अनुरुद्ध ! इसमें क्या हेतु या क्या प्रत्यय है कि उनमें से एक ही निकाय में उत्पन्न हुए देवता···?"

"आयुष्मन् कात्यायन ! यह बात मैं तुम्हें एक उदाहरण (उपमा) दे कर

पिधेकच्चे विञ्ञू पुरिसा भासितस्स अत्थं आजानन्ति। सेय्यथापि, आवुसो कच्चान, तेलप्पदीपस्स झायतो तेलं पि अपरिसुद्धं वट्टि पि अपरिसुद्धा, सो तेलस्स पि अपरिसुद्धत्ता वट्टिया पि अपरिसुद्धता अन्धन्धं विय झायति; एवमेव खो, आवुसो कच्चान, इधेकच्चो भिक्खु 'सङ्किलिट्ठाभा' ति फरित्वा अधिमुच्चित्वा विहरति, तस्स कायदुट्ठुल्लं पि न सुप्पटिप्पस्सद्धं होति, थीनमिद्धं पि न सुसमूहतं होति, उद्धच्चकुक्कुच्चं [N. 219] पि न सुप्पटिविनीतं होति, सो कायदुट्ठुल्लस्स पि न सुप्पटिप्पस्सद्धत्ता थीनमिद्धस्स पि न सुसमूहतत्ता उद्धच्चकुक्कुच्चस्स पि न सुप्पटिविनीतत्ता अन्धन्धं विय झायति। सो कायस्स भेदा परं मरणा सङ्किलिट्ठाभानं देवानं सहब्यतं उपपज्जति।

"सेय्यथापि, आवुसो कच्चान, तेलप्पदीपस्स झायतो तेलं पि परिसुद्धं, वट्टि पि परिसुद्धा, सो तेलस्स पि परिसुद्धत्ता वट्टिया पि परिसुद्धत्ता न अन्धन्धं विय झायति; एवमेव खो, आवुसो कच्चान, इधेकच्चो भिक्खु 'परिसुद्धाभा' ति फरित्वा अधिमुच्चित्वा विहरति, तस्स कायदुट्ठुल्लं पि सुप्पटिप्पस्सद्धं होति, थीनमिद्धं पि सुसमूहतं होति, उद्धच्चकुक्कुच्चं पि

समझाता हूँ; क्योंकि उदाहरण के सहारे से भी कोई बात विज्ञजनों को जल्दी समझ में आ जाती है। जैसे, आयुष्मन् कात्यायन ! किसी जलते तैल-दीप में तैल भी मैला (अपरिशुद्ध) हो, बत्ती भी मैली हो, उस समय, उस तैल और बत्ती के मैली होने के कारण, वह तैलदीप कुछ धुँधला प्रकाश देता हुआ जले; इसी तरह, आयुष्मान् कात्यायन ! यहाँ कोई भिक्षु मलिन आभा को व्याप्त कर साधना करता है उसका शारीरिक व्यतिक्रम (दौःष्ठूल्य) सम्यक्तया शान्त (सुप्रतिप्रश्रब्ध) नहीं होता, स्त्यानमृद्ध भी समीचनतया विनष्ट नहीं होता, औद्धत्य-कौकृत्य भी ठीक तरह से हटाया गया नहीं रहता तो वह (भिक्षु) कायिक दौःष्ठूल्य के शान्त न होने से, स्त्यानमृद्ध के सम्यक्तया नष्ट न होने से तथा औद्धत्य-कौकृत्य भी समीचीनतया न हटाया गया होने से धुंधला ध्यान करता है। वैसा साधक भिक्षु इस देहपात के बाद मरणानन्तर संक्लिष्टाभ देवताओं का सहवास ही प्राप्त कर पाता है।

"और फिर, आयुष्मन् कात्यायन ! जैसे किसी जलते हुए तैलदीप में तैल और बत्ती दोनों ही परिशुद्ध हों, तो उस तैल और बत्ती की परिशुद्धता से वह तैलदीप धुँधला-धुँधला न जल कर साफ प्रकाश देता है; वैसे ही, आयुष्मन् कात्यायन ! यहाँ कोई साधक भिक्षु परिशुद्धाभ देवता को व्याप्त कर साधना करता है तो उस समय उसका कायिक दौःष्ठूल्य भली भाँति...स्त्यानमृद्ध भी...औद्धत्य कौकृत्य

सुप्पटिविनीतं होति सो, कायदुट्ठुल्लस्स पि सुप्पटिप्पस्सद्धत्ता थीनमिद्धस्स पि सुसमूहतत्ता उद्धच्चकुक्कुच्चस्स पि सुप्पटिविनीतत्ता न अन्धन्धं विय झायति। सो कायस्स भेदा परं मरणा परिसुद्धाभानं देवानं सहब्यतं उप- [R. 152] पज्जति। अयं खो, आवुसो कच्चान, हेतु अयं पच्चयो येन तासं देवतानं एकं देवनिकायं उपपन्नानं सन्तेत्थ एकच्चा देवता सङ्किलिट्ठाभा, सन्ति पनेत्थ एकच्चा देवता परिसुद्धाभा" ति।

८. एवं वुत्ते, आयस्मा सभियो कच्चानो आयस्मन्तं अनुरुद्धं एतद-वोच—"साधु, भन्ते अनुरुद्ध ! न, भन्ते, आयस्मा अनुरुद्धो एवमाह– 'एवं मे सुतं' ति वा 'एवं अरहति भवितुं' ति वा; अथ च पन, भन्ते, आयस्मा अनुरुद्धो 'एवं पि ता देवता, इति पि ता देवता' त्वेव भासति। तस्स मय्हं, भन्ते, एवं होति—'अद्धा आयस्मता अनुरुद्धेन ताहि देवताहि सद्धिं सन्नि-वुत्थपुब्बं चेव सल्लपितपुब्बं च, साकच्छा च समापज्जितपुब्बा' " ति।

"अद्धा खो अयं, आवुसो कच्चान, आसज्ज उपनीय वाचा भासिता, [B. 191] अपि च ते अहं व्याकरिस्सामि—'दीघरत्तं खो मे, आवुसो कच्चान, ताहि देवताहि सद्धिं सन्निवुत्थपुब्बं चेव सल्लपितपुब्बं च साकच्छा च समापज्जितपुब्बा' " ति।

भी भली भाँति शान्त हो जाता है। इस तरह वह भिक्षु कायिक दौःष्ठूल्य...स्त्यान मृद्ध...औद्धत्य-कौकृत्य के शान्त हो जाने से धुँधले प्रकाश का ध्यान न कर साफ प्रकाश का ध्यान करता है तो ऐसा साधक भिक्षु इस देहपात के बाद मरणानन्तर परिशुद्धाभ देवों का सहवास प्राप्त करता है। आयुष्मन् कात्यायन ! यह हेतु या यह प्रत्यय है कि कोई साधक भिक्षु संक्लिष्टाभ...परिशुद्धाभ देवों का सहवास प्राप्त करता है"।

८. ऐसा कहे जाने पर, आयुष्मान् सभ्य कत्यायन ने आयुष्मान् अनुरुद्ध को यों कहा—"साधु, भन्ते अनुरुद्ध ! (यह उपदेश करते समय) आपने यह नहीं कहा कि ऐसा मैंने सुना है, न यही कहा कि ऐसा हो सकता है; अपितु आप अपने प्रवचन में यही कहते गये कि ऐसे भी देवता हैं और ऐसे भी देवता होते हैं। इससे मुझे ऐसा ज्ञात होता है कि आप आयुष्मान् अनुरुद्ध उन देवताओं के साथ रहे हैं, उन से आप ने सँल्लाप किया है, या उनसे साक्षात्कार किया है !"

"अवश्य, आयुष्मन् कात्यायन ! मैंने अभी जो कुछ तुम से कहा वह सब मेरा स्वयं जाना-बूझा था, किसी से सुना-सुनाया नहीं; अपितु, आयुष्मन् कात्यायन ! मैं तुम्हें यह भी बता दूँ कि मैं उन देवताओं के साथ चिरकाल तक रहा हूँ, उनसे बहुत सा संवाद किया है, साक्षात्कार किया है।"

एवं वुत्ते, आयस्मा सभियो कच्चानो पञ्चकङ्गं थपतिं [N. 220] एतदवोच—"लाभा ते, गहपति, सुलद्धं ते, गहपति, यं त्वं चेव तं कङ्खाधम्मं पहासि, मयं चिमं धम्मपरियायं अलत्थम्हा सवनाया" ति।

●

(आयुष्मान् अनुरुद्ध के) ऐसा कहने पर, आयुष्मान् सभ्य कात्यायन ने पञ्चकाङ्ग स्थपति से यह कहा—"गृहपति ! तुम अत्यधिक भाग्यशाली हो ! आयुष्मान् अनुरुद्ध से उपदेश सुनकर तुमने इतना पुण्य कमाया कि तुम्हारे सन्देह भी मिट गये और साथ ही साथ मुझे भी यह धर्मोपदेश सुनने को मिल गया" ॥

अनुरुद्धसुत्त समाप्त ॥

●

२८. उपक्किलेससुत्तं

१. कोसम्बिका भण्डनकारका भिक्खू

[N. 221] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा कोसम्बियं विहरति घोसितारामे। तेन खो पन समयेन कोसम्बियं भिक्खू भण्डनजाता कलहजाता विवादापन्ना अञ्ञमञ्ञं मुखसत्तीहि वितुदन्ता विहरन्ति। अथ खो [R. 153] अञ्ञतरो भिक्खु येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"इध, भन्ते, कोसम्बियं भिक्खू भण्डनजाता कलहजाता विवादापन्ना अञ्ञमञ्ञं मुखसत्तीहि वितुदन्ता विहरन्ति। साधु, भन्ते, भगवा येन ते भिक्खू तेनुपसङ्कमतु अनुकम्पं उपादाया" ति। अधिवासेसि भगवा तुण्हीभावेन। अथ खो भगवा येन ते भिक्खू तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा ते भिक्खू एतदवोच—"अलं, भिक्खवे, मा भण्डनं मा कलहं मा विग्गहं मा विवादं" ति।

एवं वुत्ते, अञ्ञतरो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"आगमेतु, भन्ते! भगवा धम्मस्सामी; अप्पोस्सुक्को, भन्ते, भगवा दिट्ठधम्मसुखविहारं अनुयुत्तो विहरतु; मयमेतेन भण्डनेन कलहेन विग्गहेन विवादेन पञ्ञायिस्सामा" ति।

---

२८. उपक्लेशसूत्र

१. कौशाम्बीवासी कलहकारी भिक्षु

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) कौशाम्बीस्थित घोषिताराम में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय कौशाम्बी के रहने वाले भिक्षु झगड़ा, कलह एवं विवाद करते हुए परस्पर एक दूसरे को बातों ही बातों में भला-बुरा कहते फिरते थे। तब किसी एक भिक्षु ने भगवान् के सम्मुख जा, उन्हें प्रणाम कर, एक तरफ बैठ कर यों निवेदन किया—"भन्ते! यहाँ कौशाम्बी के भिक्षु झगड़ा... कहते-फिरते हैं। अच्छा होता, भन्ते! कि आप भगवान् उन पर कृपा कर, उन्हें सत्पथ पर लाने हेतु वहाँ पधारते।" भगवान् ने मौनभाव से भिक्षु का निवेदन स्वीकार कर लिया। भगवान् उन भिक्षुओं के यहाँ पहुँचे। पहुँच कर भगवान् ने उन भिक्षुओं को आदेश दिया—"यह झगड़ा, यह कलह, यह विग्रह और यह विवाद तत्काल बन्द करो।"

भगवान् द्वारा ऐसा कहे जाने पर, उनमें से कोई भिक्षु बोला—"भन्ते! भगवान् तो धर्मस्वामी हैं। आप रहने दें। आप इसकी परवाह न करें। आप तो एक तरफ विराज कर दृष्टधर्मसुखविहार प्राप्त करते रहें। इस कलह या विवाद को तो हम स्वयं ही निर्णीत कर लेंगे!"

दुतियं पि खो भगवा ते भिक्खू एतदवोच—"अलं, भिक्खवे, मा भण्डनं मा कलहं मा विग्गहं मा विवादं" ति। दुतियं पि खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"आगमेतु, भन्ते! भगवा धम्मसामी; अप्पोस्सुक्को, भन्ते भगवा दिट्ठधम्मसुखविहारं अनुयुत्तो विहरतु; मयमेतेन भण्डनेन कलहेन विग्गहेन विवादेन पञ्ञायिस्सामी" ति। ततियं पि खो भगवा ते भिक्खू [B. 192] एतदवोच—"अलं, भिक्खवे, मा भण्डनं मा कलहं मा विग्गहं मा विवादं" ति! ततियं पि खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"आगमेतु, भन्ते, भगवा धम्मस्सामी; अप्पोसुक्को, भन्ते, भगवा दिट्ठधम्मसुखविहारं [N. 222] अनुयुत्तो विहरतु; मयमेतेन भण्डनेन कलहेन विग्गहेन विवादेन पञ्ञायिस्सामी" ति।

अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय कोसम्बिं पिण्डाय पाविसि। कोसम्बियं पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो सेनासनं संसामेत्वा पत्तचीवरमादाय ठितको व इमा गाथा अभासि—

२. "पुथुसद्दो समजनो, न बालो कोचि मञ्ञथ। [R. 154]
सङ्घस्मिं भिज्जमानस्मिं, नाञ्ञं भिय्यो अमञ्ञरुं॥
"परिमुट्ठा पण्डिताभासा, वाचागोचरभाणिनो।
याविच्छन्ति मुखायामं, येन नीता न तं विदू॥
"अक्कोच्छि मं अवधि मं, अजिनि मं अहासि मे।
ये च तं उपनय्हन्ति, वेरं तेसं न सम्मति॥

भगवान् ने फिर दूसरी बार आदेश दिया...। दूसरी बार भी उनमें से किसी भिक्षु ने उत्तर दिया... ।

भगवान् ने तीसरी बार भी...। तीसरी बार भी किसी भिक्षु ने उत्तर दिया...।

तब भगवान् ने पूर्वाह्ण समय, वस्त्र पहन कर, पात्रचीवर ले, कौशाम्बी में भिक्षा कर पिण्डपात से उठ, शयनासन समेट कर पात्र-चीवर ले, खड़े ही खड़े, ये गाथायें कहीं—

२. "बड़बोले वे सभी भिक्षु आपस में किसी से भी अपने को कम नहीं समझते। कोई भी अपने को अज्ञ नहीं मानता। सङ्घ के टूट जाने पर, ये अपने किसी दूसरे रक्षक की कल्पना भी नहीं कर पा रहे॥

"ये मूढ, पण्डितम्मन्य, जिह्वा पर आये किसी भी शब्द को निःसङ्कोच बकने वाले, मन चाहे मुख का प्रसार (घण्टों बकवाद) करने वाले इस कलह के कारण किधर ले जाये जा रहे हैं—ये नहीं जानते॥

" 'मुझे इसने अपमानित किया', मुझे इसने मारा', मुझे इसने जीत लिया',

"अक्कोच्छि मं अवधि मं, अजिनि मं अहासि मे।
ये च तं नुपनय्हन्ति, बेरं तेसूपसम्मति ॥
"न हि वेरेन वेरानि, सम्मन्तीध कुदाचनं।
अवेरेन च सम्मन्ति, एस धम्मो सनन्तनो ॥
"परे च न विजानन्ति, मयमेत्थ यमामसे।
ये च तत्थ विजानन्ति, ततो सम्मन्ति मेधगा ॥
"अट्ठिच्छिन्ना पाणहरा, गवस्सधनहारिनो।
रट्ठं वेलुम्पमानानं, तेसं पि होति सङ्गति।
कस्मा तुम्हाकं नो सिया ॥
"सचे लभेथ निपकं सहायं, सद्धिं चरं साधुविहारि धीरं।
अभिभुय्य सब्बानि परिस्सयानि, चरेय्य तेनत्तमनो सतीमा ॥
[B. 193, N. 223] "नो चे लभेथ निपकं सहायं,
सद्धिं चरं साधुविहारि धीरं।
राजा व रट्ठं विजितं पहाय, एको चरे मातङ्गरञ्ञेव नागो ॥

'मुझे इसने त्याग दिया'—जिनके मन में इस तरह की गाँठें पड़ पाती हैं, उनका वैर (कलह) कभी शान्त नहीं होता ॥

"हाँ ! इसके विपरीत 'मुझे इसने अपमानित नहीं ··· त्याग दिया'···जिनके मन में ऐसी गाँठें नहीं पड़ती, उनका बैर कभी न कभी शान्त हो ही जाता है ॥

"क्योंकि यहाँ बैर करने से कभी बैर शान्त नहीं हुआ करता, इसके विपरीत वह अवैर (क्षमा) से ही शान्त होता है—यही परिपाटी सृष्टि के प्रारम्भ (सनातन) से चली आ रही है ॥

"दूसरे (मूर्ख) लोग नहीं जानते कि वे ऐसा करते हुए ही मृत्यु को ही प्राप्त होंगे। और विद्वान् लोग यह वास्तविकता जानते हैं अतः इसे बुद्धि के सहारे शान्त कर लेते हैं ॥

"क्रूरतापूर्वक हड्डी तोड़ने वालों, प्राणिहिंसकों, गौ, अश्व एवं धन के लुण्ठकों और राष्ट्र के विनाशकों का भी कभी मेल (सन्धि) हो जाता है तो तुम्हारा ही पारस्परिक बैर स्थायी क्यों हो !

"यदि कोई नम्र, साधुतया साधना करने वाला, धैर्यवान् साथी मिले तो बुद्धिमान् पुरुष को सब झगडे छोड़, प्रसन्न हो, उसी के साथ मिल-बैठ कर साधना में ध्यान लगाना चाहिये ॥

"यदि ऐसा नम्र···साथी न मिले तो राजा की भाँति अपने विजित राष्ट्र को छोड़कर हस्तिराज की तरह एकाकी विचरण करना चाहिये ॥

एकस्स चरितं सेय्यो, नत्थि बाले सहायता।
एको चरे न च पापानि कयिरा,
अप्पोस्सुक्को मातङ्गरञ्ञेव नागो' ति ॥

२. खीरोदकीभूता अनुरुद्धा

३. अथ खो भगवा ठितको व इमा गाथा भासित्वा येन बालकलोणकारगामो तेनुपसङ्कमि। तेन खो पन समयेन आयस्मा भगु बालक- [R .155] लोणकारगामे विहरति। अद्दसा खो आयस्मा भगु भगवन्तं दूरतो व आगच्छन्तं। दिस्वान आसनं पञ्ञापेसि उदकं च पादानं धोवनं। निसीदि भगवा पञ्ञत्ते आसने। निसज्ज पादे पक्खालेसि। आयस्मा पि खो भगु भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं भगुं भगवा एतदवोच—"कच्चि, भिक्खु, खमनीयं, कच्चि यापनीयं, कच्चि पिण्डकेन न किलमसी" ति ?

"खमनीयं भगवा, यापनीयं भगवा, न चाहं, भन्ते, पिण्डकेन किलमामी" ति।

अथ खो भगवा आयस्मन्तं भगुं धम्मिया कथाय सन्दस्सेत्वा समादपेत्वा समुत्तेजेत्वा सम्पहंसेत्वा उट्ठायासना येन पाचीनवंसदायो तेनुपसङ्कमि।

("क्योंकि) अकेले विचरण करना अधिक श्रेयस्कर है, अपेक्षाकृत इसके कि किसी दुर्बुद्धि का सङ्ग किया जाय ! ॥

"एकाकी विचरण से न पापों में प्रवृत्ति होगी, न किसी की अपेक्षा रहेगी। उसे तो हस्तिराज की तरह एकाकी विचरण में ही आनन्द मिलेगा" ॥

२. दूध-पानी की तरह मिले अनुरुद्ध के सहचर

३. तब भगवान् ने, खड़े ही खड़े ये गाथाएँ, कह कर, बालकलवणकार ग्राम की तरफ प्रस्थान किया। उस समय वहाँ (लवणकार ग्राम के पास) आयुष्मान् भृगु ने भगवान् को आते हुए, दूर से ही, देखा ! उसने देखकर भगवान् को पादप्रक्षालनार्थं जल दिया। भगवान् एक बिछे आसन पर बैठ गये और अपने चरणों का प्रक्षालन किया। उधर आयष्मान् भृगु से भगवान् को प्रणाम कर एक तरफ बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् भृगु से भगवान् ने पूछा—"कहो भिक्षु ! सब कुशल तो है ? तुम स्वस्थ तो हो ? भिक्षा न मिलने के कारण कोई कष्ट तो नहीं है ?"

(भिक्षु ने उत्तर दिया—) "सब कुशल है भगवन् ! मेरा स्वास्थ्य भी ठीक ही रहता है। और भिक्षा भी सरलता से मिल जाती है, उसमें कोई कष्ट नहीं है।"

तब भगवान् ने उस आयुष्मान् भृगु को धार्मिक कथा कह कर सन्दृष्ट, समुत्तेजित

तेन खो पन समयेन आयस्मा च अनुरुद्धो आयस्मा च नन्दियो आयस्मा च किमिलो पाचीनवंसदाये विहरन्ति। अद्दसा खो दायपालो भगवन्तं दूरतो व आगच्छन्तं। दिस्वान भगवन्तं एतदवोच—"मा, महासमण, एतं दायं पाविसि। सन्तेत्थ तयो कुलपुत्ता अत्तकामरूपा विहरन्ति। मा [N. 224] तेसं अफासुमकासी" ति। अस्सोसि खो आयस्मा अनुरुद्धो दायपालस्स भगवता सद्धिं मन्तयमानस्स। सुत्वान दायपालं एतदवोच—"मा, आवुसो दायपाल, भगवन्तं वारेसि। सत्था नो भगवा अनुप्पत्तो" ति। [B. 194] ४. अथ खो आयस्मा अनुरुद्धो येनायस्मा च नन्दियो येनायस्मा च किमिलो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं च नन्दियं आयस्मन्तं च किमिलं एतदवोच—"अभिक्कमथायस्मन्तो, अभिक्कमथायस्मन्तो, सत्था नो भगवा अनुप्पत्तो" ति।

४. अथ खो आयस्मा च अनुरुद्धो आयस्मा च नन्दियो आयस्मा च किमिलो भगवन्तं पच्चुग्गन्त्वा एको भगवतो पत्तचीवरं पटिग्गहेसि, एको आसनं पञ्ञापेसि, एको पादोदकं उपट्ठपेसि। निसीदि भगवा पञ्ञत्ते आसने। निसज्ज पादे पक्खालेसि। ते पि खो आयस्मन्तो भगवन्तं अभिवादेत्वा

आत्मस्थ अतएव सम्प्रहृष्ट कर, आसन से उठ, जिधर पुराना वंशदाव था उधर प्रस्थान किया। उस समय उस प्राचीन वंशदाव में, आयुष्मान् अनुरुद्ध, नन्दिय एवं आयुष्मान् किमिल भी साधनाहेतु ठहरे हुए थे। उस वंशदाव के रक्षक ने भगवान् को आते हुए दूर से ही देखा। देखकर उसने भगवान् को निषेध किया—"महाश्रमण! आप इस वंशदाव में प्रवेश न करें; क्योंकि यहाँ (पहले ही) तीन कुलपुत्र संसार के झगड़ों से दूर रहते हुए साधना कर रहे हैं। आप के आने से, हो सकता है, उनकी साधना में बाधा पड़े"। दूर (खड़े या बैठे) आयुष्मान् अनुरुद्ध ने दायरक्षक द्वारा भगवान् को प्रवेशनिषेध करते सुन लिया। सुनते ही उन्होंने दायरक्षक को फटकारा—"अरे दायपाल! भगवान् को ऐसे न रोक। ये तो हमारे शास्ता हैं।"

४. तब आयुष्मान् अनुरुद्ध जल्दी-जल्दी आयुष्मान् नन्दिय एवं आयुष्मान् किमिल के पास पहुँचे और कहा—"अरे आयुष्मानो! जल्दी आओ, जल्दी आओ! हमारे शास्ता यहाँ पधारे हैं!"

तब आयुष्मान् अनुरुद्ध, आयुष्मान् नन्दिय एवं आयुष्मान् किमिल ने भगवान् की अगवानी की, अगवानी कर एक ने उनका पात्र-चीवर सम्हाला, एक ने उनके लिये आसन बिछाया और एक ने पादोदक रखा। भगवान् ने बिछे हुए आसन पर बैठकर पैर धोये। उसके बाद उन तीनों आयुष्मानों ने भगवान् का अभिवादन किया।

एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं अनुरुद्धं भगवा एतदवोच—"कच्चि वो, अनुरुद्धा, खमनीयं, कच्चि यापनीयं, कच्चि पिण्डकेन न किलमथा" ति ?

"खमनीयं भगवा, यापनीयं भगवा, न च मयं, भन्ते, [R. 156] पिण्डकेन किलमामा" ति ।

"कच्चि पन वो, अनुरुद्धा, समग्गा सम्मोदमाना अविवदमाना खीरोदकीभूता अञ्ञमञ्ञं पियचक्खूहि सम्पस्सन्ता विहरथा" ति ?

"तग्घ मयं, भन्ते, समग्गा सम्मोदमाना अविवदमाना खीरोदकीभूता अञ्ञमञ्ञं पियचक्खूहि सम्पस्सन्ता विहरामा" ति ।

"यथा कथं पन तुम्हे, अनुरुद्धा, समग्गा सम्मोदमाना अविवदमाना खीरोदकीभूता अञ्ञमञ्ञं पियचक्खूहि सम्पस्सन्ता विहरथा" ति ?

"इध मय्हं, भन्ते, एवं होति—'लाभा वत मे, सुलद्धं वत मे योहं एवरूपेहि सब्रह्मचारीहि सद्धिं विहरामी' ति । तस्स मय्हं, भन्ते, इमेसु आयस्मन्तेसु मेत्तं कायकम्मं पच्चुपट्ठितं आवि चेव रहो च, मेत्तं [N. 225] वचीकम्मं पच्चुपट्ठितं आवि चेव रहो च, मेत्त मनोकम्मं पच्चुपट्ठितं आवि चेव रहो च। तस्स, मय्हं, भन्ते, एवं होति—'यन्नूनाहं सकं चित्तं निक्खिपित्वा इमेसंयेव आयस्मन्तानं चित्तस्स वसेन वत्तेय्यं' ति । सो खो अहं,

---

अभिवादन कर वे सब एक तरफ बैठ गये । एक तरफ बैठे आयुष्मान् अनुरुद्ध से भगवान् ने पूछा—"अनुरुद्ध ! तुम लोग कुशल से तो हो ? स्वस्थ रहते हो न ? भिक्षा आदि का तो कोई कष्ट नहीं है ?"

"भन्ते ! (आप की कृपा से) सब कुशल ही है । हम स्वस्थ भी हैं ! भिक्षा आदि का भी कोई कष्ट नहीं है ।"

"अनुरुद्धो ! क्या तुम एकत्र (समय) हो, प्रसन्नतापूर्वक, विना मतभेद के, दूध-पानी की तरह, एक दूसरे को प्रिय दृष्टि से देखते हुए साधना कर रहे हो ?"

"हाँ, भन्ते ! हम एकत्र हो···साधना कर रहे हैं ।"

"तो कैसे तुम, अनुरुद्धो ! एकत्र हो···साधना करते हो ?"

"भन्ते ! यहाँ मुझे यों विचार होता है—'अहो ! मेरा यह सौभाग्य है कि मैं ऐसे अच्छे साथियों के साथ रह रहा हूँ । भन्ते ! इन सब्रह्मचारी आयुष्मानों में मेरा कायिक कर्म अन्दर और बाहर से मित्रतापूर्ण होता है, वाचसिक कर्म··· मानसिक कर्म भी अन्दर और बाहर से मित्रतापूर्ण होता है । तब भन्ते ! मुझे यह होता है—क्यों न मैं, अपना मन अन्यत्र से हटा कर, इन आयुष्मानों के ही अनुसार व्यवहार करूँ ।' यों मैं अपना चित्त अन्यत्र से हटाकर इन आयुष्मानों के

भन्ते, सकं चित्तं निक्खिपित्वा इमेसं येव आयस्मन्तानं चित्तस्स वसेन वत्तामि। नाना हि खो नो, भन्ते, काया, एकं च पन मञ्ञे चित्त" ति।

आयस्मा पि खो नन्दियो...पे०...आयस्मा पि खो किमिलो भगवन्तं एतदवोच—"मय्हं पि खो, भन्ते, एवं होति—'लाभा वत मे, सुलद्धं वत मे योहं एवरूपेहि सब्रह्मचारीहि सद्धिं विहरामी' ति। तस्स मय्हं, भन्ते, इमेसु आयस्मन्तेसु मेत्तं कायकम्मं पच्चुपट्ठितं आवि चेव रहो च, मेत्तं वचीकम्मं पच्चुपट्ठितं आवि चेव रहो च मेत्तं मनोकम्मं पच्चुपट्ठितं आवि [B. 195] चेव रहो च। तस्स मय्हं, भन्ते, एवं होति—'यन्नूनाहं सकं चित्तं निक्खिपित्वा इमेसं येव आयस्मन्तानं चित्तस्स वसेन वत्तेय्यं' ति। सो खो अहं, भन्ते, सकं चित्तं निक्खिपित्वा इमेसं येव आयस्मन्तानं चित्तस्स वसेन वत्तामि। नाना हि खो नो, भन्ते, काया; एकं च पन मञ्ञे चित्तं' ति। एवं खो मयं, भन्ते, समग्गा सम्मोदमाना अविवदमाना खरोदकीभूता अञ्ञमञ्ञं पियचक्खूहि सम्पस्सन्ता विहरामा" ति।

५. "साधु, साधु, अनुरुद्धा! कच्चि पन वो, अनुरुद्धा, अप्पमत्ता आतापिनो पहितत्ता विहरथा" ति?

[R. 157] "तग्घ मयं, भन्ते, अप्पमत्ता आतापिनो पहितत्ता विहरामा" ति।

"यथा कथं पन तुम्हे, अनुरुद्धा, अप्पमत्ता आतापिनो पहितत्ता विहरथा" ति?

"इध, भन्ते अम्हाकं यो पठमं गामतो पिण्डाय पटिक्कमति सो आस-

अनुसार ही व्यवहार करता हूँ। भन्ते! अब हमलोगों की स्थिति यह है कि हम शरीरमात्र से भले ही अलग हैं, परन्तु चित्त से हम एक ही हैं।"

तब आयुष्मान् नन्दिय ने भी...। आयुष्मान् किमिल ने भी कहा - "भन्ते! यहाँ मुझे यों...चित्त से हम एक ही हैं। यों, भन्ते! हम एकत्र हो, प्रसन्नतापूर्वक बिना किसी मतभेद के दूध-पानी की तरह सम्मिलित हो, एक दूसरे को स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखते हुए साधना करते हैं।"

५. "बहुत ठीक है, अनुरुद्धो! क्या तुम अप्रमत्त, उद्योगरत संयत एवं आत्मस्थ होकर साधना करते हो?"

"हाँ, भन्ते! हम अप्रमत्त, उद्योगरत, संयत एवं स्वस्थ होकर ही साधना करते हैं।"

"अनुरुद्धो! कैसे तुम अप्रमत्त...हो साधना करते हो?"

"यहाँ, भन्ते! हमारे में जो पहले. ग्राम से भिक्षा करते लौटता है वह (सबके

नानि पञ्ञापेति, पानीयं परिभोजनीयं उपट्ठापेति, अवक्कारपातिं उपट्ठापेति। यो पच्छा गामतो पिण्डाय पटिक्कमति—सचे [N. 226] होति भुत्तावसेसो, सचे आकङ्खति, भुञ्जति; नो चे आकङ्खति, अप्पहरिते वा छड्डेति अप्पाणके वा उदके ओपिलापेति; सो आसनानि पटिसामेति, भत्तग्गं सम्मज्जति। यो पस्सति पानीयघटं वा परिभोजनीयघटं वा वच्चघटं वा रित्तं तुच्छं सो उपट्ठापेति; सचस्स होति अविसय्हं, हत्थविकारेन दुतियं आमन्तेत्वा हत्थविलङ्घकेन उपट्ठापेम, न त्वेव मयं, भन्ते, तप्पच्चया वाचं भिन्दाम। पञ्चाहिकं खो पन मयं, भन्ते, सब्बरत्तिं धम्मिया कथाय सन्निसीदाम। एवं खो मयं भन्ते, अप्पमत्ता आतापिनो पहितत्ता विहरामा" ति।

३. चित्तुपक्किलेसपहानं

६. "साधु, साधु, अनुरुद्धा ! अत्थि पन वो, अनुरुद्धा, एवं अप्पमत्तानं आतापीनं पहितत्तानं विहरतं उत्तरिमनुस्सधम्मा अलमरियञाणदस्सनविसेसो अधिगतो फासुविहारो" ति ?

"इध मयं भन्ते, अप्पमत्ता आतापिनो पहितत्ता विहरन्ता ओभासं

लिये) आसन लगाता है, पीने के लिये जल रखता है, कूड़े का बर्तन हटाता है। जो बाद में ग्राम से भिक्षा करके लौटता है वह भोजन में से जो कुछ बचा रहता है, चाहता है तो उसे खाता है; यदि नहीं चाहता है उसे ऐसे स्थान में रख देता है जहाँ हरियाली न हो, या जीवरहित जल में बहा देता है। आसन तथा पीने का जल एक तरफ रख देता है। कूड़े का बर्तन धोकर यथास्थान रख देता है। भोजन-स्थान को साफ करता है। पीने का जलपात्र या शौचालय का जलपात्र, जिसे खाली देखता है, उसे भरकर रख देता है। यदि वह कार्य उससे शक्य न हो तो वह हाथ के संकेत से दूसरों को बुलाकर स्वयं भी हाथ से सहारा देकर उसे रखवा देता है। भन्ते ! हम इस कारण उसे वाणी से भला-बुरा नहीं कहते। भन्ते ! हम पाँच दिन तक निरन्तर रात्रिभर जागरण कर धार्मिक कथा करते बैठे रहते हैं। इस प्रकार, भन्ते ! हम अप्रमत्त...हो साधना करते हैं।"

३. चित्तोपक्लेशों का प्रहाण

६. "साधु साधु अनुरुद्धो ! परन्तु अनुरुद्धो ! क्या तुम्हें इस प्रकार प्रमाद-रहित, निरलस, संयत हो साधना करते-करते आर्यज्ञानदर्शनविशेष से ही सम्भव लोकोत्तर मनुष्य धर्म के अनुकूल साधना प्राप्त हो चुकी है ?"

"भन्ते ! इस अप्रमत्त...हो साधना करते-करते अवभास और रूपों के दर्शन को

चेव सञ्जानाम दस्सनं च रूपानं। सो खो पन नो ओभासो नचिरस्सेव अन्तरधायति दस्सनं च रूपानं; तं च निमित्तं नप्पटिविज्झामा" ति।

[B. 196] "तं खो पन वो, अनुरुद्धा, निमित्तं पटिविज्झितब्बं। अहं पि सुदं, अनुरुद्धा, पुब्बे व सम्बोधा अनभिसम्बुद्धो बोधिसत्तो व समानो [R. 158] ओभासं चेव सञ्जानामि दस्सनं च रूपानं। सो खो पन मे ओभासो नचिरस्सेव अन्तरधायति दस्सनं च रूपानं। तस्स मय्हं, अनुरुद्धा, एतदहोसि—'को नु, खो हेतु को पच्चयो येन मे ओभासो अन्तरधायति दस्सनं च रूपानं' ति? तस्स मय्हं, अनुरुद्धा, एतदहोसि—'विचिकिच्छा खो मे उदपादि, विचिकिच्छाधिकरणं च पन मे समाधि चवि। समाधिम्हि चुते ओभासो अन्तरधावति दस्सनं च रूपानं। सोहं तथा करिस्सामि यथा मे पुन न विचिकिच्छा उप्पज्जिस्सती' ति।

[N. 227] "सो खो अहं अनुरुद्धा, अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो ओभासं चेव सञ्जानामि दस्सनं च रूपानं। सो खो पन मे ओभासो नचिरस्सेव अन्तरधायति दस्सनं च रूपानं। तस्स मय्हं अनुरुद्धा, एतदहोसि—'को नु खो हेतु को पच्चयो येन मे ओभासो अन्तरधायति दस्सनं च रूपानं' ति? तस्स मय्हं, अनुरुद्धा, एतदहोसि—'अमनसिकारो खो मे

हम जान तो लेते हैं, परन्तु वे अवभास (प्रकाश) और रूपों के दर्शन शीघ्र ही अन्तर्हित हो जाते हैं। हम इसका कारण नहीं जान पाते।"

"अनुरुद्धो! तुम्हें वह कारण जान लेना चाहिये। मैं भी सम्बोधि से पूर्व, जब बुद्ध नहीं हुआ था तब, बोधिसत्त्व रहते समय, अवभास और रूपों के दर्शन को जानता था, परन्तु मेरा भी वह अवभास व रूपों का दर्शन शीघ्र ही अन्तर्हित हो जाता था। तब मुझे अनुरुद्धो! यह विचार हुआ—'क्या हेतु (कारण) और क्या प्रत्यय (कार्य) है कि जिससे मेरा अवभास और रूपों का दर्शन अन्तर्हित हो जाता है?' तब, अनुरुद्धो! मुझे यह समझ में आया—

(१) "विचिकित्सा (शङ्का, सन्देह) मुझे उत्पन्न हुई, इसी विचिकित्सा के कारण मेरी समाधि च्युत हो गयी। समाधि की च्युति होने पर मेरा यह अवभास और रूपों का दर्शन अन्तर्हित होता है। अतः क्यों न मैं ऐसा करूँ कि जिससे मुझे पुनः विचिकित्सा उत्पन्न न हो। "वह मैं, अनुरुद्धो! अप्रमत्त...साधना करते हुए अवभास और रूपों का दर्शन करने लगा।

(२) अनुरुद्धो! मैं फिर विचार करने लगा कि क्या हेतु क्या प्रत्यय है कि मेरा यह अवभास एवं रूपों का दर्शन अन्तर्हित हो जाता है? तब मुझे समझ में आया कि मुझे यह जो अमनस्कार (मन में दृढ़ सङ्कल्प न होना) हो जाता है,

उदपादि, अमनसिकाराधिकरणं च पन मे समाधि चवि। समाधिम्हि चुते ओभासो अन्तरधायति दस्सनं च रूपानं। सोहं तथा करिस्सामि यथा मे पुन न विचिकिच्छा उप्पज्जिस्सति न अमनसिकारो' ति।

"सो खो अहं, अनुरुद्धा···पे०···तस्स मय्हं, अनुरुद्धा, एतदहोसि—'थीनमिद्धं खो मे उदपादि, थीनमिद्धाधिकरणं च पन मे समाधि चवि। समाधिम्हि चुते ओभासो अन्तरधायति दस्सनं च रूपानं। सोहं तथा करिस्सामि यथा मे पुन न विचिकिच्छा उप्पज्जिस्सति न अमनसिकारो न थीनमिद्धं' ति।

"सो खो अहं, अनुरुद्धा···पे०···तस्स मय्हं, अनुरुद्धा, एतदहोसि—'छम्भितत्तं खो मे उदपादि, छम्भितत्ताधिकरणं च पन मे समाधि चवि। समाधिम्हि चुते ओभासो अन्तरधायति दस्सनं च रूपानं। सेय्यथापि, अनुरुद्धा, पुरिसो अद्धानमग्गप्पटिपन्नो, तस्स उभतोपस्से वट्टका उप्पतेय्युं, तस्स ततोनिदानं छम्भितत्तं उप्पज्जेय्य; एवमेव खो मे, अनुरुद्धा, छम्भितत्तं उदपादि, छम्भितत्ताधिकरणं च पन मे, समाधि चवि। [B. 197] समाधिम्हि चुते ओभासो अन्तरधायति दस्सनं च रूपानं। सोहं [R. 159] तथा करिस्सामि यथा मे पुन न विचिकिच्छा उप्पज्जिस्सति न अमनसिकारो न थीनमिद्धं न छम्भितत्तं' ति।

"सो खो अहं, अनुरुद्धा···पे०···तस्स मय्हं, अनुरुद्धा, एतदहोसि—'उप्पिलं खो मे उदपादि, उप्पिलाधिकरणं च पन मे समाधि चवि। समाधिम्हि चुते ओभासो अन्तरधायति दस्सनं च रूपानं। सेय्यथापि, अनुरुद्धा,

---

इसी अमनस्कार के कारण मैं समाधि से च्युत हो जाता हूँ। समाधि से च्युत होने पर मेरा यह अवभास एवं रूपों का दर्शन अन्तर्हित हो जाता है। अतः मैं ऐसा करूँ कि मुझे न विचिकित्सा उत्पन्न हो न अमनस्कार।

(३) "यों मैं अनुरुद्धो!···उपरिवत्···स्त्यानमृद्ध मुझको उत्पन्न हुआ, इसके कारण मुझे समाधिच्युति हुई।···न विचिकित्सा उत्पन्न हो, न अमनस्कार और न स्त्यानमृद्ध।"

(४) "यों मैं, अनुरुद्धो!···उपरिवत्···स्तम्भितत्व (जड़ता) के कारण मेरी समाधिच्युति हुई। समाधि की च्युति से अवभास एवं रूपों का अन्तर्धान हुआ। अनुरुद्धो! जैसे कोई पुरुष अन्धेरी रात्रि में कहीं जा रहा हो, रास्ते में उसके दोनों तरफ चमगादड़ (रात्रि में उड़ने वाला पक्षी) अचानक उड़ने लगे, उस कारण उसको उड़ता उत्पन्न हो जाय। ऐसे ही, अनुरुद्धो, मुझे स्तब्धता (औद्विल्य) उत्पन्न हुई। इस इस स्तब्धता के कारण···न स्त्यानमृद्ध और न स्तम्भितत्व।

[N. 228] पुरिसो एकं निधिमुखं गवेसन्तो सकिदेव पञ्चनिधिमुखानि अधिगच्छेय्य, तस्स ततोनिदानं उप्पिलं उप्पज्जेय्य; एवमेव खो मे, अनुरुद्धा, उप्पिलं उदपादि, उप्पिलाधिकरणं च पन मे समाधि चवि। समाधिम्हि चुते ओभासो अन्तरधायति दस्सनं च रूपानं। सोहं तथा करिस्सामि यथा मे पुन न विचिकिच्छा उप्पज्जिस्सति न अमनसिकारो न थीनमिद्धं न छम्भितत्तं न उप्पिलं' ति।

"सो खो अहं, अनुरुद्धा···पे०···तस्स मय्हं, अनुरुद्धा, एतदहोसि— 'दुट्ठुल्लं खो मे उदपादि दुट्ठुल्लाधिकरणं च पन मे समाधि चवि! समाधिम्हि चुते ओभासो अन्तरधायति दस्सनं च रूपानं। सोहं तथा करिस्सामि यथा मे पुन न विचिकिच्छा उप्पज्जिस्सति न अमनसिकारो न थीनमिद्धं न छम्भितत्तं न उप्पिलं न दुट्ठुल्लं' ति।

"सो खो अहं, अनुरुद्धा···पे०···तस्स मय्हं, अनुरुद्धा, एतदहोसि— 'अच्चारद्धविरियं खो मे उदपादि, अच्चारद्धविरियाधिकरणं च पन मे समाधि चवि। समाधिम्हि चुते ओभासो अन्तरधायति दस्सनं च रूपानं। सेय्यथापि, अनुरुद्धा, पुरिसो उभोहि हत्थेहि वट्टकं गाळ्हं गण्हेय्य, सो तत्थेव मतमेय्य; एवमेव खो मे अनुरुद्धा अच्चारद्धविरियं उदपादि, अच्चारद्धविरियाधिकरणं च पन मे समाधि चवि। समाधिम्हि चुते ओभासो अन्तरधायति दस्सनं च रूपानं। सोहं तथा करिस्सामि यथा मे पुन न विचिकिच्छा उपज्जिस्सति न अमनसिकारो न थीनमिद्धं न छम्भितत्तं न उप्पिलं न दुट्ठुल्लं न अच्चारद्धविरियं' ति।

"सो खो अहं, अनुरुद्धा···पे०···तस्स मय्हं, अनुरुद्धा, एतदहोसि—'अतिलीनविरियं खो मे उदपादि, अतिलीनविरियाधिकरणं च पन [R. 160]

(५) "यों मैं, अनुरुद्धो!···उपरिवत्···उत्पीडन (विह्वलता) के कारण··· रूपों के दर्शन का अन्तर्धान हुआ। अनुरुद्धो! जैसे कोई पुरुष एक खजाने की खोज में निकले और उसे अचानक एक साथ पाँच खजाने मिल जाँय तो विह्वलता होने लगे उसी प्रकार मुझे भी विह्वलता के कारण···।···उत्पीडन भी न हो।

(६) "सो मैं, अनुरुद्धो!···दौःस्थूल्य···।···दौःस्थूल्य भी न हो।

(७) "सो मैं, अनुरुद्धो!···अत्यारब्धवीर्य (अत्यधिक अभ्यास)···रूपों का अन्तर्धान हुआ। अनुरुद्धो! जैसे कोई बटेर पक्षी को दोनों हाथों से दृढता से दबाये तो वह बटेर वहीं मर जाय; ऐसे ही मुझे, अनुरुद्धो!···तो क्यों न मैं ऐसा करूँ···अत्यारब्धवीर्य भी उत्पन्न न हो।

(८) "सो मैं, अनुरुद्धो!···अतिलीनवीर्य (अत्यल्प अभ्यास)···। जैसे कोई पुरुष

मे समाधि चवि। समाधिम्हि चुते ओभासो अन्तरधायति [B. 198] दस्सनं च रूपानं। सेय्यथापि, अनुरुद्धा, पुरिसो वट्टकं सिथिलं गण्हेय्य, सो तस्स हत्थतो उप्पतेय्य; एवमेव खो मे, अनुरुद्धा, अतिलीनविरियं उदपादि, अतिलीनविरियाधिकरणं च पन मे समाधि चवि। समाधिम्हि चुते ओभासो अन्तरधायति दस्सनं च रूपानं। सोहं तथा करिस्सामि यथा मे पुन न विचिकिच्छा उप्पज्जिस्सति न अमनसिकारो न [N. 229] थीनमिद्धं न छम्भितत्तं न उप्पिलं न दुट्ठुल्लं न अच्चारद्धविरियं न अतिलीनविरियं' ति।

"सो खो अहं अनुरुद्धा...पे०...तस्स मय्हं, अनुरुद्धा, एतदहोसि--'अभिजप्पा खो मे उदपादि, अभिजप्पाधिकरणं च पन मे समाधि चवि। समाधिम्हि चुते ओभासो अन्तरधायति दस्सनं च रूपानं। सोहं तथा करिस्सामि यथा मे पुन न विचिकिच्छा उप्पज्जिस्सति न अमनसिकारो न थीनमिद्धं न छम्भितत्तं न उप्पिलं न दुट्ठुल्लं न अच्चारद्धविरियं न अतिलीनविरियं त अभिजप्पा' ति।

"सो खो अहं, अनुरुद्धा...पे०...तस्स मय्हं, अनुरुद्धा, एतदहोसि—'नानत्तसञ्ञा खो मे उदपादि, नानत्तसञ्ञाधिकरणं च पन मे समाधि चवि। समाधिम्हि चुते ओभासो अन्तरधायति दस्सनं च रूपानं। सोहं तथा करिस्सामि यथा मे पुन न विचिकिच्छा उप्पज्जिस्सति न अमनसिकारो न थीनमिद्धं न छम्भितत्तं न उप्पिलं न दुट्ठुल्लं न अच्चारद्धविरियं न अतिलीनविरियं न अभिजप्पा न नानत्तसञ्ञा' ति।

"सो खो अहं, अनुरुद्धा, अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो ओभासं चेव सञ्जानामि दस्सनं च रूपानं। सो खो पन मे ओभासो नचिरस्सेव अन्तरधायति दस्सनं च रूपानं। तस्स मय्हं, अनुरुद्धा, एतदहोसि--'को नु खो हेतु को पच्चयो येन मे ओभासो अन्तरधायति दस्सनं च रूपानं' ति।

बटेर को बहुत ढीला पकड़े और वह उसके हाथों से उड़ जाय, उसी तरह, अनुरुद्धो ! मुझे अतिलीन वीर्य उत्पन्न हुआ...। तो क्यों न मैं ऐसा करूँ...अतिलीन वीर्य भी उत्पन्न न हो।

(९) "सो मैं अनुरुद्धो !...अभिजल्प...। तो क्यों न...अभिजल्प भी उत्पन्न न हो।

(१०) "सो मैं, अनुरुद्धो !...नानात्वसंज्ञा...उत्पन्न न हो।

(११) "सो मैं, अनुरुद्धो !...मुझे रूपों का अविनिध्यायितत्व उत्पन्न हुआ। ...तो क्यों न मैं ऐसा करूँ...मुझे रूपों का अतिनिध्यायितत्व भी उत्पन्न न हो।

तस्स मय्हं, अनुरुद्धा, एतदहोसि—'अतिनिज्झायितत्तं खो मे रूपानं उदपादि, अतिनिज्झायितत्ताधिकरणं च पन मे रूपानं समाधि चवि। समाधिम्हि चुते ओभासो अन्तरधायति दस्सनं च रूपानं। सोहं तथा करिस्सामि यथा मे पुन न विचिकिच्छा उप्पज्जिस्सति न अमनसिकारो न थीनमिद्धं न छम्भितत्तं न उप्पिलं न दुट्ठुल्लं न अच्चारद्धविरियं न अतिलीनविरियं न अभिजप्पा न नानत्तसञ्ञा न अतिनिज्झायितत्तं रूपानं' ति।

[B. 199] ७. "सो खो अहं, अनुरुद्धा, 'विचिकिच्छा चित्तस्स उपक्किलेसो' ति—इति विदित्वा विचिकिच्छं चित्तस्स उपक्किलेसं पजहिं, [N. 230] 'अमनसिकारो चित्तस्स उपक्किलेसो' ति—इति विदित्वा अमनसिकारं चित्तस्स उपक्किलेसं पजहिं, 'थीनमिद्धं चित्तस्स उपक्किलेसो' ति—इति विदित्वा थीनमिद्धं चित्तस्स उपक्किलेसं पजहिं, 'छम्भितत्तं चित्तस्स उपक्किलेसो' ति–इति विदित्वा छम्भितत्तं उपक्किलेसं पजहिं, 'उप्पिलं चित्तस्स उपक्किलेसो' ति–इति विदित्वा उप्पिलं चित्तस्स उपक्किलेसं पजहिं, 'दुट्ठुल्लं चित्तस्स उपक्किलेसो' ति—इति विदित्वा दुट्ठुलं चित्तस्स उपक्किलेसं पजहिं, 'अच्चारद्धविरियं चित्तस्स उपक्किलेसो' ति—इति विदित्वा अच्चारद्धविरियं चित्तस्स उपक्किलेसं पजहिं,' अतिलीनविरियं चित्तस्स उपक्किलेसो' ति—इति विदित्वा अतिलीनविरियं चित्तस्स उपक्किलेसो' ति--इति विदित्वा दुट्ठुल्लं चित्तस्स उपक्किलेसं पजहिं, 'अभिजप्पा चित्तस्स उपक्किलेसो' ति--इति विदित्वा अभिजप्पं चित्तस्स उपक्किलेसं पजहिं, 'नानत्तसञ्ञा चित्तस्स उपक्किलेसो' ति--इति विदित्वा नानत्तसञ्ञं चित्तस्स उपक्किलेसं पजहिं, 'अतिनिज्झायितत्तं रूपानं चित्तस्स उपक्किलेसो' ति--इति विदित्वा [R. 161] अतिनिज्झायितत्तं रूपानं चित्तस्स उपक्किलेसं पजहिं।

८. "सो खो अहं, अनुरुद्धा, अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो ओभासं हि खो सञ्जानामि, न च रूपानि पस्सामि; रूपानि हि खो

---

७. "अतः मैने, अनुरुद्धो! 'विचिकित्सा चित्त का उपक्लेश है'—यह जान कर विचिकित्सा को सर्वथा त्याग दिया, अमनस्कार...स्त्यानमृद्ध...स्तम्भितत्व...उत्पीड़न...दौःष्ठूल्य...अत्यारब्धवीर्य...अतिलीनवीर्य...अभिजल्प...नानात्वसंज्ञा...'रूपों का अतिनिध्यायितत्व चित्त का उपक्लेश है'—यह जानकर इस रूपों के अतिनिध्यायितत्व चित्तोपक्लेश का सर्वथा त्याग कर दिया।

८. "यों मैं, अनुरुद्धो! प्रमादरहित, निरलस, संयत हो साधना करता हुआ अवभास को देखता तो रूपों को नहीं देख पाता और रूपों को देखता तो अवभास

पस्सामि, न च ओभासं सञ्जानामि--'केवलं पि रत्तिं केवलं पि दिवं केवलं पि रत्तिन्दिवं'। तस्स मय्हं, अनुरुद्धा, एतदहोसि--'को नु खो हेतु को पच्चयो य्वाहं ओभासं हि खो सञ्जानामि न च रूपानि पस्सामि; रूपानि हि खो पस्सामि न च ओभासं सञ्जानामि—केवलं पि रत्तिं केवलं पि दिवं केवलं पि रत्तिन्दिवं' ति।

"तस्स मय्हं, अनुरुद्धा, एतदहोसि—"यस्मिं हि खो अहं समये रूपनिमित्तं अमनसिकरित्वा ओभासनिमित्तं मनसि करोमि, ओभासं हि खो तस्मिं समये सञ्जानामि न च रूपानि पस्सामि। यस्मिं पनाहं समये ओभासनिमित्तं अमनसिकरित्वा रूपनिमित्तं मनसि करोमि, रूपानि हि खो तस्मिं समये पस्सामि न च ओभासं सञ्जानामि—'केवलं पि रत्तिं केवलं पि दिवं केवलं पि रत्तिन्दिवं' ति।

"सो खो अहं, अनुरुद्धा, अप्पमत्तो आतापी [N.231, B.200] पहितत्तो विहरन्तो परित्तं चेव ओभासं सञ्जानामि, परित्तानि च रूपानि पस्सामि; अप्पमाणं चेव ओभासं सञ्जानामि, अप्पमाणानि च रूपानि पस्सामि—केवलं पि रत्तिं केवलं पि दिवं केवलं पि रत्तिन्दिवं। तस्स मय्हं, अनुरुद्धा, एतदहोसि—'को नु खो हेतु को पच्चयो य्वाहं परित्तं चेव ओभासं सञ्जानामि, परित्तानि च रूपानि पस्सामि; अप्पमाणं चेव ओभासं सञ्जानामि, अप्पमाणानि च रूपानि पस्सामि—केवलं पि रत्तिं केवलं पि दिवं केवलं रत्तिन्दिवं' ति।

को नहीं पहचान पाता कि केवल रात है या केवल दिन या केवल रात-दिन। तब मुझे अनुरुद्धो ! यह (विचार) हुआ —इसमें क्या हेतु या क्या प्रत्यय है कि मैं अवभास को देखता हूँ तो रूपों को नहीं देख पाता और रूपों को देखता हूँ तो अवभास को नहीं पहचान पाता कि···केवल रात-दिन।

("विचार करते-करते) मुझे यह समझ में आया कि जिस समय रूपों के निमित्त (विशेषता) को मन में न कर अवभास के निमित्त को ही मन में लाता हूँ तो उस समय मुझे अवभास का ही दर्शन होता है, रूपों का नहीं। और जिस समय अवभास के निमित्त को मन में न कर रूपों के निमित्त को ही मन में करता हूँ तो उस समय रूप का ही दर्शन होता है, अवभास (रात या दिन के भेद) का नहीं कि यह केवल रात है···या केवल रात-दिन।

"सो मैं, अनुरुद्धो अप्रमत्त···साधना करता हुआ अल्प (परीत्त) अवभास को भी पहचानता, अल्प रूप को भी देखता; महान् (अप्पमाण) अवभास एवं रूप को भी देखता कि अब केवल रात है, अब केवल दिन है, अब दिन-रात है।

"तस्स मय्हं, अनुरुद्धा, एतदहोसि—'यस्मिं खो मे समये परित्तो समाधि होति, परित्तं मे तस्मिं समये चक्खु होति। सोहं परित्तेन चक्खुना परित्तं चेव ओभासं सञ्जानामि, परित्तानि च रूपानि पस्सामि। यस्मिं पन मे समये अप्पमाणो समाधि होति, अप्पमाणं मे तस्मिं समये चक्खु होति। सोहं अप्पमाणेन चक्खुना अप्पमाणं चेव ओभासं सञ्जानामि, अप्पमाणानि च रूपानि पस्सामि—केवलं पि रत्तिं केवलं पि दिवं केवलं पि रत्तिन्दिवं' ति।

[R. 162] "यतो खो मे, अनुरुद्धा, 'विचिकिच्छा चित्तस्स उपक्किलेसो' ति–इति विदित्वा विचिकिच्छा चित्तस्स उपक्किलेसो पहीनो अहोसि, 'अमनसिकारो चित्तस्स उपक्किलेसो' ति—इति विदित्वा अमनसिकारो चित्तस्स उपक्किलेसो पहीनो अहोसि, 'थीनमिद्धं चित्तस्स उपक्किलेसो' ति—इति विदित्वा थीनमिद्धं चित्तस्स उपक्किलेसो पहीनो अहोसि, 'छम्भितत्तं चित्तस्स उपक्किलेसो' ति—इति विदित्वा छम्भितत्तं चित्तस्स उपक्किलेसो पहीनो अहोसि, 'उप्पिलं चित्तस्स उपक्किलेसो' ति—इति विदित्वा उप्पिलं चित्तस्स उपक्किलेसो पहीनो अहोसि, 'दुट्ठुल्लं चित्तस्स उपक्किलेसो' ति—इति विदित्वा दुट्ठुल्लं चित्तस्स उपक्किलेसो पहीनो अहोसि, 'अच्चारद्धविरियं चित्तस्स उपक्किलेसो' ति—इति विदित्वा अच्चारद्धविरियं चित्तस्स उपक्किलेसो पहीनो अहोसि, 'अतिलीनविरियं चित्तस्स उपक्किलेसो' ति—इति विदित्वा अतिलीनविरियं चित्तस्स उपक्कि-लेसो पहीनो अहोसि, 'अभिजप्पा चित्तस्स उपक्किलेसो' ति—इति विदत्वा अभिजप्पा चित्तस्स उपक्किलेसो पहीनो अहोसि, 'नानत्तसञ्ञा चित्तस्स

"तब मुझको मन में हुआ कि क्या हेतु क्या प्रत्यय"'दिन रात है !

("विचार करते-करते) मुझे यह समझ में आया—जिस समय समाधि अल्प होती है, तब मेरी चक्षुरिन्द्रिय भी अल्पप्रमाण होती है, अतः मुझे इस अल्पप्रमाण चक्षु से अल्पप्रमाण रूप या अल्पप्रमाण अवभास का ही दर्शन हो पाता है। और जिस समय अप्रमाण समाधि लगती है तब चक्षुरिन्द्रिय भी अप्रमाण होती है, अतः उस समय अप्रमाण चक्षु से अप्रमाण अवभास एवं अप्रमाण रात्रि आदि रूपों के दर्शन होते हैं।

समाधि की इसी अवस्था में 'विचिकित्सा चित्त का उपक्लेश है'—ऐसा जानने के बाद चित्त के उपक्लेश के रूप में मेरी विचिकित्सा का प्रहाण हो गया था। अमनस्कार'''स्त्यानमृद्ध ''' स्तम्भितत्व ''' उत्पीड़ा ''' दौःष्ठूल्य'''अत्यारब्धवीर्य''' अतिलीनवीर्य'''अभिजल्प'''नानात्वसंज्ञा'''रूपों का अतिनिध्यायितत्व'''प्रहीण हो गया था।

उपक्किलेसो' ति—इति विदित्वा नानत्तसञ्ञा चित्तस्स उपक्किलेसो पहीनो अहोसि, 'अतिनिज्झायितत्तं रूपानं चित्तस्स उपक्किलेसो' [N. 232] ति—इति विदित्वा अतिनिज्झायितत्तं रूपानं चित्तस्स [B. 201] उपक्किलेसो पहीनो अहोसि।

९. "तस्स मय्हं, अनुरुद्धा, एतदहोसि—'ये खो मे चित्तस्स उपक्किलेसा ते मे पहीना। हन्द, दानाहं तिविधेन समाधिं भावेमी' ति। सो खो अहं अनुरुद्धा, सवितक्कं पि सविचारं समाधिं भावेसिं, अवितक्कं पि विचारमत्तं… समाधिं भावेसिं, सप्पीतिकं पि समाधिं भावेसिं, निप्पीतिकं पि समाधिं भावेसिं, सातसहगतं पि समाधिं भावेसिं, उपेक्खासहगतं पि समाधिं भावेसिं। यतो खो मे, अनुरुद्धा, सवितक्को पि सविचारो समाधि भावितो अहोसि, अवितक्को पि विचारमत्तो समाधि भावितो अहोसि, अवितक्को पि अविचारो समाधि भावितो अहोसि, सप्पीतिको पि समाधि भावितो अहोसि, सप्पीतिको पि समाधि भावितो अहोसि, निप्पीतिको पि समाधि भावितो अहोसि, सातसहगतो पि समाधि भावितो अहोसि, उपेक्खासहगतो पि समाधि भावितो अहोसि। ञाणं च पन मे दस्सनं उदपादि, अकुप्पा मे चेतोविमुत्ति। अयमन्तिमा जाति, नत्थि दानि पुनब्भवो" ति।

१०. इदमवोच भगवा। अत्तमनो आयस्मा अनुरुद्धो भगवतो भासितं अभिनन्दी ति।

---

९. वैसी स्थिति में, अनुरुद्धो ! जब मेरे चित्त के उपर्युक्त सभी उपक्लेश प्रहीण हो चुके तो मुझको यह हुआ कि क्यों न मैं अब तीन प्रकार की समाधि की भावना में लगूँ। तब अनुरुद्धो ! मैंने सवितर्कसविचार समाधि की भी भावना की, अवितर्क-विचारमात्र समाधि की भी, एवं अवितर्कअविचार समाधि की भी भावना की। इसी तरह मैंने (उस अवस्था में) सप्रीतिक, निष्प्रीतिक, सुखसहगत एवं उपेक्षासहगत समाधियों का भी अभ्यास किया। अनुरुद्धो ! जब मुझे सवितर्कसविचार, अवितर्क-विचारमात्र एवं अवितर्क-अविचार तथा सप्रीतिक, निष्प्रीतिक, सुखसहगत और उपेक्षासहगत समाधियों में पूर्ण सफलता मिल गयी तब मुझे ज्ञानदर्शन भी हो गया और मेरे चित्त की विमुक्ति भी अटल (स्थिर) हो गयी। अब यह मेरा अन्तिम जन्म है। अब मेरा पुनर्जन्म असम्भव है।"

१०. भगवान् ने यह प्रवचन किया। आत्तमना आयुष्मान् अनुरुद्ध ने भगवान् के इस प्रवचन का अभिनन्दन किया॥

उपक्किलेससुत्त समाप्त ॥

२६. बालपण्डितसुत्तं

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं [N. 233, R. 163] विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

१. तीणि बालस्स बाललक्खणानि

"तीणिमानि, भिक्खवे, बालस्स बाललक्खणानि बालनिमित्तानि बालापदानानि। कतमानि तीणि? इध, भिक्खवे, बालो दुच्चिन्तितचिन्ती च होति दुब्भासितभासी च दुक्कटकम्मकारी च। नो चेतं, भिक्खवे, बालो दुच्चिन्तितचिन्ती च अभविस्स दुब्भासितभासी च दुक्कट- [B. 202] कम्मकारी च, केन नं पण्डिता जानेय्युं—'बालो अयं भवं असप्पुरिसो' ति? यस्मा च खो, भिक्खवे, बालो दुच्चिन्तितचिन्ती च होति दुब्भासितभासी च दुक्कटकम्मकारी च, तस्मा नं पण्डिता जानन्ति—'बालो अयं भवं असप्पुरिसो' ति।

"स खो सो, भिक्खवे, बालो तिविधं दिट्ठेव धम्मे दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदेति। सचे, भिक्खवे, बालो सभायं वा निसिन्नो होति, रथिकाय वा निसिन्नो होति, सिङ्घाटके वा निसिन्नो होति; तत्र चे जनो तज्जं तस्सारुप्पं कथं मन्तेति। सचे, भिक्खवे, बालो पाणातिपाती होति, अदिन्नादायी

---

२६. बाल-पण्डितसूत्र

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती में अनाथपिण्डक द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। यहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को सामूहिक सम्बोधन से अपने पास बुलाया। "हाँ भन्ते" कहकर भिक्षुजन उनके सम्मुख उपस्थित हुए। भगवान् ने उनको यों उपदेश किया—

१. मूर्ख के मूर्खताबोधक तीन लक्षण

"भिक्षुओ! बाल (अज्ञ, मूर्ख) की ये तीन बातें अज्ञताबोधक लक्षण, चिह्न या अवदान (चरित्रबोधक) होती हैं। कौन सी तीन? यहाँ भिक्षुओ! वह अज्ञ निरन्तर दुश्चिन्ताओं से घिरा रहता है, हर समय अपशब्द बोलता रहता है, और बराबर दुष्कर्म करने में ही उसका ध्यान रहता है। क्योंकि भिक्षुओ! वह अज्ञ इन बातों से घिरा होता है, इसलिये पण्डितजन उसके विषय में इतना ही कहते हैं—'यह भला आदमी तो अज्ञ है!'

"भिक्षुओ! वह बाल जन्मभर तीन प्रकार के दुःख-दौर्मनस्य का अनुभव करता है। भिक्षुओ! यदि वह अज्ञ सभा में, रथिका (गली) में या चौराहे पर बैठा हो तो लोग उसी के सम्बन्ध में उसी के दुश्चारित्र्य की बातें करने लगते हैं। भिक्षुओ!

होति, कामेसुमिच्छाचारी होति, मुसावादी होति, सुरामेरयमज्जपमादट्ठायी होति, तत्र, भिक्खवे, बालस्स एवं होति--'यं खो जनो तज्जं तस्सारुप्पं कथं मन्तेति, संविज्जन्तेव ते धम्मा मयि, अहं च तेसु धम्मेसु सन्दिस्सामी' ति। इदं, भिक्खवे, बालो पठमं दिट्ठेव धम्मे दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदेति। (१)

२. "पुन च परं, भिक्खवे, बालो पस्सति राजानो चोरं आगुचारिं गहेत्वा विविधा कम्मकारणा कारेन्ते--कसाहि पि ताळेन्ते [N. 234] वेत्तेहि पि ताळेन्ते अद्धदण्डकेहि पि ताळेन्ते हत्थं पि छिन्दन्ते [R. 164] कण्णं पि छिन्दन्ते नासं पि छिन्दन्ते कण्णनासं पि छिन्दन्ते बिलङ्गथालिकं पि करोन्ते सङ्खमुण्डिकं पि करोन्ते राहुमुखं पि करोन्ते जोतिमालिकं पि पि करोन्ते हत्थपज्जोतिकं पि करोन्ते एरकवत्तिकं पि करोन्ते चीरकवासिकं पि करोन्ते एणेय्यकं पि करोन्ते बळिसमंसिकं पि करोन्ते कहापणिकं पि करोन्ते खारापतच्छिकं पि करोन्ते पलिघपरिवत्तिकं पि करोन्ते पलालपीठकं पि करोन्ते तत्तेन पि पि तेलेन ओसिञ्चन्ते सुनखेहि पि खादापेन्ते जीवन्तं पि सूले उत्तासेन्ते असिना पि सीसं छिन्दन्ते। तत्र, भिक्खवे, बालस्स एवं होति--'यथारूपानं खो पापकानं कम्मानं हेतु राजानो चोरं आगुचारिं गहेत्वा विविधा कम्मकारणा कारेन्ति--कसाहि पि ताळेन्ति...पे०...असिना पि सीसं छिन्दन्ति; संविज्जन्तेव ते धम्मा मयि, अहं च तेसु धम्मेसु सन्दिस्सामि। मं चे पि राजानो जानेय्युं, ममं पि राजानो गहेत्वा विविधा कम्मकारणा कारेय्युं—कसाहि [B. 203] पि ताळेय्युं...जीवन्तं पि सूले उत्तासेय्युं...असिना पि सीसं छिन्देय्युं'

यदि वह बाल प्राणातिपाती होता है, चौर, व्यभिचारी एवं मिथ्याभाषी, मद्यपायी होता है तो भिक्षुओ! उस मूर्ख को अपने मन में यह होने लगता है—'ये लोग उसके बारे में जिन दुर्गुणों की चर्चा कर रहे हैं वे मुझमें अवश्य हैं, मैं उन से लिप्त हूँ। भिक्षुओ! यह उस अज्ञ का पहला जन्मभर का दुःख-दौर्मनस्य (चिन्ता) है। (१)

२. "फिर, भिक्षुओ! वह अज्ञ राजाओं द्वारा अपराधी चोरों को पकड़वा कर नानाविध कष्ट पाते हुए देखता है। वे कोड़ों से भी पीटे जाते हैं...पूर्ववत्...[1] तलवार से उनका सिर भी काट दिया जाता है। उन्हें देखकर उस अज्ञ को मन में यह होता है -'जैसे इन चोरों को इनके अपराध के कारण राजा लोग अनेक तरह से दण्ड दे रहे हैं, वे कोड़ों से भी......सिर भी काट दिया जाता है तो राजा लोग मेरे विषय में जान जाँय कि यह भी ऐसा ही अपराधी है तो मुझे भी इसी तरह का दण्ड

---

१. द्र०—पीछे पृ० १८१-८२ (१३. महादुक्खक्खन्धसुत्त)।

ति। इदं पि, भिक्खवे, बालो दुतियं दिट्ठेव धम्मे दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदेति। (२)

३. "पुन च परं भिक्खवे, बालं पीठसमारूळ्हं वा मञ्चसमारूळ्हं वा छमायं वा सेमानं, यानिस्स पुब्बे पापकानि कम्मानि कतानि कायेन दुच्चरितानि वाचाय···मनसा दुच्चरितानि तानिस्स तम्हि समये ओलम्बन्ति अज्झोलम्बन्ति अभिप्पलम्बन्ति। सेय्यथापि, भिक्खवे, महतं पब्बतकूटानं छाया सायन्हसमयं पथविया ओलम्बन्ति अज्झोलम्बन्ति अभिप्पलम्बन्ति; एवमेव खो, भिक्खवे, बालं पीठ···मञ्चसमारूळ्हं वा छमायं वा सेमानं, यानिस्स पुब्बे पापकानि कम्मानि कतानि कायेन दुच्चरितानि वाचाय दुच्चरितानि [R. 165] मनसा दुच्चरितानि तानिस्स तम्हि समये ओलम्बन्ति अज्झो- [N. 235] लम्बन्ति अभिप्पलम्बन्ति। तत्र, भिक्खवे, बालस्स एवं होति— 'अकतं वत मे कल्याणं, अकतं कुसलं अकतं हीरुत्ताणं[1], कतं पापं, कतं लुद्दं, कतं किब्बिसं। यावता, भो, अकतकल्याणानं अकतकुसलानं अकतहीरुत्ताणानं कतपापानं कतलुद्दानं कतकिब्बिसानं गति तं गतिं पेच्च गच्छामी' ति। सो सोचति किलमति परिदेवति उरत्ताळिं कन्दति सम्मोहं आपज्जति।

देंगे।' मुझे कोड़े भी लगवायेंगे···मेरा सिर तलवार से कटवा देंगे।' भिक्षुओ! यह दण्ड (भय) उस अज्ञ के लिये जन्मभर का दुःख-दौर्मनस्य है। (२)

३. "फिर भिक्षुओ! वह बाल भले ही पीठासन (कुर्सी) पर बैठा हो या मञ्च पर, या पृथ्वी पर लेटा हो, प्रतिक्षण उसको अपने पूर्वकृत कायिक, वाचिक, मानसिक दुष्कर्म घेरे रहते हैं, दिमाग पर चढ़े रहते हैं। जैसे, भिक्षुओ! किसी बड़े पर्वत-शिखर की छाया सायङ्काल पृथ्वी पर पड़े और ज्यों-ज्यों सूर्य अस्ताचल की ओर जाय तो पृथ्वी पर बढ़ती रहे; उसी तरह वह अज्ञ चाहे पीठासीन हो, या मञ्चासीन या जमीन पर ही क्यों न लेटा हो, उसे उसके पूर्वकृत कायिक, वाचिक मानसिक दुष्कृत घेरे रहते हैं, उसे याद आते रहते हैं। उस समय उस अज्ञ को यह विचार होता है--'मैंने कभी सत्कर्म नहीं किया, कुशल कर्म नहीं किया, उलटे मैं तो जीवन भर दुष्कर्म ही करता रह गया जिनसे मेरी सामाजिक स्थिति भी सम्मानास्पद नहीं रह गयी अर्थात् मेरी लज्जा (= हीरुत्ताण) भी ढकी नहीं रह सकी। ['भीरुत्ताणं' पाठभेद मानें तो उसका अर्थ होगा--मृत्युभय से बचाने वाले कार्य नहीं किये।] पाप ही पाप किया, दूसरों को लूटा-खसोटा, या मारा-पीटा। अब तो मेरी, इस देहपात के बाद, वही गति होगी जो सुकृत न करने वालों की, कुशल कर्म न करनेवालों की, पापभय न मानकर कुकर्म करने वाले की, पापियों की या चोर-लुटेरों की हुआ करती है'। यों सोच-सोच कर वह दुःखी होता है, रोता है, कलपता है, छाती पीटता

---

१. भीरुत्ताणं--मु० पा०।

इदं पि, भिक्खवे, बालो ततियं दिट्ठेव धम्मे दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदेति। (३)

विनिपातगतो बालो

४. "स खो सो, भिक्खवे, बालो कायेन दुच्चरितं चरित्वा वाचाय दुच्चरितं चरित्वा मनसा दुच्चरितं चरित्वा कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति। यं खो तं भिक्खवे, सम्मा वदमानो वदेय्य–'एकन्तं अनिट्ठं एकन्तं अकन्तं एकन्तं अमनापं' ति, निरयमेव तं सम्मा वदमानो वदेय्य–'एकन्तं अनिट्ठं एकन्तं अकन्तं एकन्तं अमनापं' ति। यावञ्चिदं, भिक्खवे, उपमा पि न सुकरा याव दुक्खा निरया" ति।

५. एवं वुत्ते, अञ्ञतरो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"सक्का पन, भन्ते, उपमं कातुं" ति? "सक्का भिक्खू" ति भगवा अवोच। "सेय्यथापि, भिक्खु चोरं आगुचारिं गहेत्वा रञ्ञो दस्सेय्युं—'अयं खो, देव, चोरो आगुचारी इमस्स यं इच्छसि तं दण्डं पणेही' ति। तमेनं राजा एवं वदेय्य—'गच्छथ, भो, इमं पुरिसं पुब्बण्हसमयं सत्तिसतेन हनथा' ति। तमेनं पुब्बण्हसमयं सत्तिसतेन हनेय्युं। अथ राजा मज्झन्हिकसमयं एवं वदेय्य—[B. 204] 'अम्भो, कथं सो पुरिसो' ति?

है, चिल्लाता है, मूर्छित होता है। यों, भिक्षुओ! वह अज्ञ जीवनपर्यन्त इस तीसरे दुःख-दौर्मनस्य से घिरा रहता है। (३)

पतनशील बाल

४. "भिक्षुओ! वह अज्ञ काय से वाणी से मन से दुष्कर्म करके इस देह-पात के बाद दुर्गतिमय नीच योनियों में ही गिरेगा। उसके इस पतन तर यदि कोई ठीक से कहना चाहे तो यही कहेगा—'उसका पतन सर्वांशतः अनिष्टकारक, सर्वांशतः अमनोहर एवं सर्वांशतः अप्रिय है।' भिक्षुओ! यहाँ तक कि इस अज्ञ के ऐसे हीन (अधः) पतन की उपमा देना भी सरल नहीं है।"

५. (भगवान् द्वारा) ऐसा कहे जाने पर किसी भिक्षु ने पूछा—"क्या, भन्ते! इसकी कोई उपमा दी ही नहीं जा सकती!" "हाँ, भिक्षु! (प्रयास करने पर) दी तो जा सकती है। जैसे, भिक्षु! जनता किसी अपराधी चोर को पकड़ कर राजा के सामने ले जाय और निवेदन करे कि—'देव, यह मनुष्य चोर है, अपराधी है, अतः आप इसे जैसा चाहें दण्ड दें।' तब राजा अपने दण्डाधिकारी को आज्ञा दे—'इस अपराधी चोर को प्रातःकाल सौ कोड़े लगाओ'। उसे यथासमय सौ कोड़े लगाये जाँय। फिर वह राजा दोपहर को उस चोर के बारे में पूछे—'उस चोर की शारीरिक दशा कैसी है?' दण्डाधिकारी कहे—'राजन्!

" 'तथेव, देव, जीवती' ति ! तमेनं राजा एवं वदेय्य--"गच्छथ, भो, तं पुरिसं मज्झन्हिकसमयं सत्तिसतेन हनथा' ति। तमेनं मज्झन्हिकसमयं सत्तिसतेन हनेय्युं। अथ राजा सायन्हसमयं एवं वदेय्य—'अम्भो, कथं सो पुरिसो' ति ?

[N. 236] " 'तथेव, देव, जीवती' ति। तमेनं राजा एवं वदेय्य--'गच्छथ, भो, तं पुरिसं सायन्हसमयं सत्तिसतेन हनथा' ति। तमेनं सायन्ह-[R. 166] समयं सत्तिसतेन हनेय्युं। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे; अपि नु सो पुरिसो तीहि सत्तिसतेन हञ्ञमानो ततोनिदानं दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदियेथा'' ति ?

"एकिस्सा पि, भन्ते, सत्तिया हञ्ञमानो सो पुरिसो ततोनिदानं दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदियेथ, को पन वादो तीहि सत्तिसतेही'' ति।

६. अथ खो भगवा परित्तं पाणिमत्तं पासाणं गहेत्वा भिक्खू आमन्तेसि—"तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, कतमो नु खो महन्ततरो—यो चायं मया परित्तो पाणिमत्तो पासाणो गहितो, यो च हिमवा पब्बतराजा'' ति ?

"अप्पमत्तको अयं भन्ते, भगवा परित्तो पाणिमत्तो पासाणो गहितो, हिमवन्तं पब्बतराजानं उपनिधाय सङ्खं पि न उपेति, कलभागं पि न उपेति, उपनिधं पि न उपेति''।

अभी तो वह जीवित है।' तब राजा पुनः आज्ञा दे—'उसे दोपहर को भी सौ कोड़े लगाये जाँय'। और उसे दोपहर को भी सौ कोड़े लगाये जाँय। फिर सायङ्काल भी राजा पुनः उस चोर के विषय में पूछे—'उसकी दशा कैसी है ?' दण्डाधिकारी कहे—'देव ! अभी भी वह जीवित है'। तब राजा पुनः आज्ञा दे कि 'उसे सायङ्काल भी सौ कोड़ों से पीटा जाय'। तब राजपुरुष सायङ्काल भी उसे सौ कोड़ों से पीटें। तो क्या मानते हो भिक्षुओ ! उस चोर को तीन सौ कोड़ों से पीटे जाने पर कोई वेदना नहीं हुई होगी ?''

"भन्ते ! एक ही कोड़ा लगने पर मनुष्य को प्राणहर पीड़ा होने लगती है, फिर तीन सौ कोड़े की मार से होने वाली वेदना (दुःख-दौर्मनस्य) का तो कहना ही क्या !"

६. तब भगवान् ने हाथ से पकड़ने योग्य एक छोटा सा पत्थर का टुकड़ा उठा कर भिक्षुओं से पूछा—"तो क्या मानते हो, भिक्षुओ ! इन दोनों पत्थरों में कौन बड़ा, है यह मेरे हाथ का पत्थर या पर्वतराज हिमालय ?"

"भन्ते ! आपके हाथ का पत्थर तो बहुत छोटा है। हिमवान् पर्वतराज के सामने इसकी क्या गिनती है ! यह तो उसके कला-भाग के बराबर भी नहीं है। यह उसकी कहीं से भी बराबरी नहीं कर सकता, उसके सामने रखने योग्य भी नहीं है !"

"एवमेव खो, भिक्खवे, यं सो पुरिसो तीहि सत्तिसतेहि हञ्ञमानो ततोनिदानं दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदेति तं निरयकस्स दुक्खस्स उपनिधाय सङ्खं पि न उपेति, कलभागं पि न उपेति, उपनिधं पि न उपेति।

"तमेनं, भिक्खवे, निरयपाला पञ्चविधबन्धनं नाम कम्मकारणं करोन्ति--तत्तं अयोखिलं हत्थे गमेन्ति, तत्तं अयोखिलं दुतिये हत्थे गमेन्ति, तत्तं अयोखिलं पादे गमेन्ति, तत्तं अयोखिलं दुतिये पादे गमेन्ति, तत्तं अयोखिलं मज्झे उरस्मि गमेन्ति। सो तत्थ दुक्खा तिब्बा खरा कटुका वेदना वेदेति, न च ताव कालं करोति याव न तं पापकम्मं ब्यन्तीहोति। तमेनं, भिक्खवे, निरयपाला संवेसेत्वा कुठारीहि तच्छन्ति। सो तत्थ दुक्खा तिब्बा…पे०…ब्यन्तीहोति।

"तमेनं, भिक्खवे, निरयपाला उद्धंपादं अधोसिरं गहेत्वा [N. 237] वासीहि तच्छन्ति। सो तत्थ दुक्खा तिब्बा…पे०…ब्यन्तीहोति। [B. 205]

"तमेनं, भिक्खवे, निरयपाला रथे योजेत्वा आदित्ताय पथविया सम्पज्जलिताय सजोतिभूताय सारेन्ति पि पच्चासारेन्ति पि। सो [R. 167] तत्थ दुक्खा तिब्बा…पे०…ब्यन्तीहोति।

"तमेनं, भिक्खवे, निरयपाला महन्तं अङ्गारपब्बतं आदित्तं सम्पज्जलितं सजोतिभूतं आरोपेन्ति पि ओरोपेन्ति पि। सो तत्थ दुक्खा तिब्बा खरा कटुका वेदना वेदेति, न च ताव कालं करोति याव न तं पापकम्मं ब्यन्तीहोति।

"इसी तरह, भिक्षुओ! इन तीन सौ कोड़ों की मार से हुए दुःख-दौर्मनस्य की नरक में पाये जाने वाले दुःखदौर्मनस्य के सामने कोई गिनती नहीं है।…

"भिक्षुओ! नरकपाल ऐसे दुष्कर्मकारी अज्ञ को पाँच तरह का दण्डविधान करते हैं—१. गर्म लोहे की कील उसके दाहिने हाथ में, २. बाँये हाथ में, ३. बाँये पैर में, ४. दाहिने पैर में और ५. छाती के बीच में ठोकते हैं। वह उससे दुःखमय, तीव्र, कठोर एवं असह्य वेदनाएँ अनुभव करता है; परन्तु फिर भी वह वहाँ उस वेदना से तब तक नहीं मरता जब तक उसके पापकर्म का अन्त न हो जाय!

"तब, भिक्षुओ! ये नरकपाल उस अज्ञ को बैठाकर कुल्हाड़ियों से काटते हैं, उससे भी वह दुःखमय…पापकर्म का अन्त न हो जाय।

"…उसे सब तरह से दहकते सम्प्रज्वलित एवं गरम-लपट फेंकते अग्निपर्वत पर चढ़ाते-उतारते हैं…अन्त न हो जाय।

"…उसे ऊपर पैर नीचे सिर कर तपती, चिलचिलाती, दहकती लोहे की कढाई में डालते-निकालते हैं, वह वहाँ झाग फेंकता (=फेणुद्देहक) पकता रहता है।

"तमेनं भिक्खवे, निरयपाला उद्धम्पादं अधोसिरं गहेत्वा तत्ताय लोह-कुम्भिया पक्खिपन्ति आदित्ताय सम्पज्जलिताय सजोतिभूताय। सो तत्थ फेणुद्देहकं पच्चति। सो तत्थ फेणुद्देहकं पच्चमानो सकिं पि उद्धं गच्छति, सकिं पि अधो गच्छति, सकिं पि तिरियं गच्छति। सो तत्थ दुक्खा तिब्बा खरा कटुका वेदना वेदेति, न च ताव कालं करोति याव न तं पापकम्मं ब्यन्तीहोति।

"तमेनं, भिक्खवे, निरयपाला महानिरये पक्खिपन्ति। सो खो पन, भिक्खवे, महानिरयो--

चतुक्कोणो[1] चतुद्वारो, विभत्तो भागसो मितो।
अयोपाकारपरियन्तो, अयसा पटिकुज्जितो॥
तस्स अयोमया भूमि, जलिता तेजसा युता।
समन्ता योजनसतं, फरित्वा तिट्ठति सब्बदा॥

"अनेकपरियायेन पि खो अहं भिक्खवे, निरयकथं कथेय्यं; यावञ्चिदं, भिक्खवे, न सुकरा अक्खानेन पापुणितुं याव दुक्खा निरया।

७. "सन्ति, भिक्खवे, तिरच्छानगता पाणा तिणभक्खा। ते अल्लानि पि तिणानि सुक्खानि पि तिणानि दन्तुल्लेहकं खादन्ति। कतमे च भिक्खवे, तिरच्छानगता पाणा तिणभक्खा? हत्थी अस्सा गोणा गद्रभा अजा मिगा,

---

वह वहाँ वैसे पकता हुआ एक बार नीचे जाता है तो एक बार ऊपर आता है। एक बार तिरछे जाता है…।

"…तब उसे वे नरकपाल अन्त में महानरक में डाल देते हैं। उस महानरक का वर्णन यों है—

"उसके चार कोण है। चार द्वार हैं। वह खण्ड खण्ड में नाप कर विभाजित किया हुआ लौह के परकोटे (प्राकार) से घिरा हुआ, लौह से निर्मित है॥

"उसकी नीचे की जमीन भी लोहे की ही बनी हुई है, जो दिन-रात धधकती अग्नि से दहकती रहती है। वह जमीन चार सौ योजन लम्बी-चौड़ी है, और उसमें अग्नि सब तरफ नित्य प्रज्वलित रहती है॥

"भिक्षुओ! वास्तविकता तो यह है कि इस नरकसमूह का मैं कितना भी वर्णन करूँ वह वाणी से कहकर पूरा नहीं किया जा सकता और न यही बताया जा सकता है वहाँ कितना दुःख भोगना पड़ता है!

७. "भिक्षुओ! तिर्यग्योनि (पशुयोनि) में तृणभक्षी प्राणी, वे हरे या सूखे तृण भी, दाँत से काट कर, खाते हैं। कौन से हैं, भिक्षुओ! वे तृणभक्षी प्राणी? जैसे—हाथी, घोड़े, गाय, गधे, बकरियाँ एवं हिरण या ऐसे ही अन्य तृणभक्षी

---

१. चतुक्कण्णो—सु० पा०।

ये वा पनञ्ञे पि केचि तिरच्छानगता पाणा तिणभक्खा। स खो सो, भिक्खवे, बालो इध पुब्बे रसादो, इध पापानि कम्मानि करित्वा कायस्स भेदा परं मरणा तेसं सत्तानं सहब्यतं उपपज्जति ये ते सत्ता तिणभक्खा।

"सन्ति, भिक्खवे, तिरच्छानगता पाणा गूथभक्खा। ते [N. 238] दूरतो व गूथगन्धं घायित्वा धावन्ति—'एत्थ भुञ्जिस्साम, एत्थ भुञ्जिस्सामा' ति। सेय्यथापि नाम ब्राह्मणा आहुतिगन्धेन धावन्ति--[B. 206] 'एत्थ भुञ्जिस्साम, एत्थ भुञ्जिस्सामा' ति; एवमेव खो, भिक्खवे, सन्ति तिरच्छानगता पाणा गूथभक्खा, ते दूरतो व गूथगन्धं घायित्वा [R. 168] धावन्ति--'एत्थ भुञ्जिस्साम, एत्थ भुञ्जिस्सामा' ति। कतमे च, भिक्खवे, तिरच्छानगता पाणा गूथभक्खा ? कुक्कुटा सूकरा सोणा सिङ्गाला, ये वा पनञ्ञे पि केचि तिरच्छानगता पाणा गूथभक्खा। स खो सो, भिक्खवे, बालो इध पुब्बे रसादो, इध पापानि कम्मानि करित्वा कायस्स भेदा परं मरणा तेसं सत्तानं सहब्यतं उपपज्जति ये ते सत्ता गूथभक्खा।

"सन्ति, भिक्खवे, तिरच्छानगता पाणा अन्धकारे जायन्ति अन्धकारे जीयन्ति अन्धकारे मीयन्ति। कतमे च, भिक्खवे, तिरच्छानगता पाणा अन्धकारे जायन्ति अन्धकारे जीयन्ति अन्धकारे मीयन्ति ? कीटा पुळवा गण्डुप्पादा, ये वा पनञ्ञे पि केचि तिरच्छानगता पाणा अन्धकारे जायन्ति अन्धकारे जीयन्ति अन्धकारे मीयन्ति। स खो सो, भिक्खवे, बालो इध पुब्बे रसादो, इध पापानि कम्मानि करित्वा कायस्स भेदा परं मरणा तेसं सत्तानं सहब्यतं उपपज्जति ये ते सत्ता अन्धकारे जायन्ति अन्धकारे जीयन्ति अन्धकारे मीयन्ति।

प्राणी। भिक्षुओ ! वह दुष्कर्मकारी अज्ञ पहले की रसभक्षी काया छोड़ने के बाद उन तृणभक्षी प्राणियों की योनियों में जाता है।

"भिक्षुओ ! इस तिर्यग्योनि में कुछ मलभक्षी प्राणी होते हैं, जो मल की गन्ध पाते ही उस पर इस इच्छा से टूट पड़ते हैं कि हम ही इसे पहले खायँगें। जैसे ब्राह्मण लोग घी की गन्ध पाते ही घी से बने भोजन पर टूट पड़ते हैं कि इसे हम ही पहले खायँगें, उसी तरह भिक्षुओ ! ये मलभक्षी प्राणी होते हैं। वे मलभक्षी प्राणी कौन से हैं ! जैसे—मुर्गे, सूअर, कुत्ते, गीदड़ या ऐसे ही मलभक्षी प्राणी। भिक्षुओ ! वह अज्ञ दुष्कर्मकारी''' गूथभक्षी योनियों में जाता है।

"और, भिक्षुओ ! इसी तिर्यग्योनि में ऐसे भी प्राणी हैं जो अन्धेरे में ही पैदा होते हैं और अन्धेरे में ही जीते-मरते हैं। ऐसे प्राणी कौन से हैं ! जैसे कीट, पतङ्ग, व्रणों में पैदा होने वाले कृमि या ऐसे ही अन्य प्राणी'''। वह दुष्कर्मकारी अज्ञ''' अन्धकार में ही जन्मने-मरने वाले इन प्राणियों की योनियों में उत्पन्न होता है।

"सन्ति, भिक्खवे, तिरच्छानगता पाणा उदकस्मिं जायन्ति उदकस्मिं जीयन्ति ऊदकस्मिं मीयन्ति। कतमे च भिक्खवे, तिरच्छानगता पाणा उदकस्मिं जायन्ति उदकस्मिं जीयन्ति उदकस्मिं मीयन्ति? मच्छा कच्छपा सुंसुमारा, ये वा पनञ्ञे पि केचि तिरच्छानगता पाणा उदकस्मिं जायन्ति उदकस्मिं जीयन्ति उदकस्मिं मीयन्ति। स खो सो, भिक्खवे, बालो इध पुब्बे रसादो, इध पापानि कम्मानि करित्वा कायस्स भेदा परं मरणा तेसं सत्तानं सहब्यतं उपपज्जति ये ते सत्ता उदकस्मिं जायन्ति उदकस्मिं जीयन्ति उदकस्मिं मीयन्ति।

[N. 239] "सन्ति, भिक्खवे, तिरच्छानगता पाणा असुचिस्मिं जायन्ति असुचिस्मिं जीयन्ति असुचिस्मिं मीयन्ति। कतमे च, भिक्खवे, तिरच्छानगता पाणा असुचिस्मिं जायन्ति असुचिस्मिं जीयन्ति असुचिस्मिं मीयन्ति? ये ते, भिक्खवे, सत्ता पूतिमच्छे वा जायन्ति पूतिमच्छे वा जीयन्ति पूतिमच्छे वा मीयन्ति पूतिमच्छे वा…पे०…पूतिकम्मासे वा…चन्दनिकाय वा…ओलि- [B. 207] गल्ले वा जायन्ति, ये वा पनञ्ञे पि केचि तिरच्छानगता पाणा असुचिस्मिं जायन्ति असुचिस्मिं जीयन्ति असुचिस्मिं मीयन्ति। स खो सो, [R. 169] भिक्खवे, बालो इध पुब्बे रसादो, इध पापानि कम्मानि करित्वा कायस्स भेदा परं मरणा तेसं सत्तानं सहब्यतं उपपज्जति ये ते सत्ता असुचिस्मिं जायन्ति असुचिस्मिं जीयन्ति असुचिस्मिं मीयन्ति।

"अनेकपरियायेन पि खो अहं, भिक्खवे, तिरच्छानयोनिकथं कथेय्यं; यावञ्चिदं, भिक्खवे, न सुकरं अक्खानेन पापुणितुं याव दुक्खा तिरच्छानयोनि।

"और, भिक्षुओ! उसी तिर्यग्योनि में ऐसे भी होते हैं जो जल में ही पैदा होते हैं और जल में ही जीते-मरते हैं। ऐसे प्राणी कौन से हैं? जैसे—मछलियाँ, कछुए, मकर या ऐसे ही अन्य प्राणी। वह दुष्कर्मकारी अज्ञ…जल में जन्मने-मरने वाली इन तिर्यग्योनियों में पैदा होता है।

"भिक्षुओ! इसी तिर्यग्योनि में ऐसे भी प्राणी होते हैं जो गन्दगी में ही जन्मते हैं, बढ़ते हैं और मरते भी हैं। भिक्षुओ! ऐसे प्राणी कौन से हैं? जो सड़ी हुई मछली, सड़े मृत शरीर, सड़े अन्न या गन्दे पानी के गड्ढे (चन्दनिका) या गड्ढी (ओलिगल्ल) में ही पैदा होते हैं, बढ़ते भी हैं और वहीं मरते भी हैं। वह दुष्कर्मकारी अज्ञ इन तिर्यग्योनियों में पैदा होता है।

"भिक्षुओ! यों मैं तिर्यग्योनियों का कितना भी विस्तार से वर्णन करूँ, फिर भी इन तिर्यग्योनियों के दुःखों का पूरा-पूरा वर्णन नहीं कर पाऊँगा जो यहाँ उस दुष्कर्मकरी अज्ञ को भोगने पड़ते हैं!

मनुस्सत्तदुल्लभता

८. "सेय्यथापि, भिक्खवे, पुरिसो एकच्छिग्गलं युगं महासमुद्दे पक्खिपेय्य। तमेनं पुरत्थिमो वातो पच्छिमेन संहरेय्य, पच्छिमो वातो पुरत्थिमेन संहरेय्य, उत्तरो वातो दक्खिणेन संहरेय्य, दक्खिणो वातो उत्तरेन संहरेय्य। तत्रास्स काणो कच्छपो, सो वस्ससतस्स वस्ससतस्स अच्चयेन सकिं उम्मुज्जेय्य। तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, अपि नु सो काणो कच्छपो अमुस्मिं एकच्छिग्गले युगे गीवं पवेसेय्या" ति ?

"नो हेतं, भन्ते। यदि पन, भन्ते, कदाचि करहचि दीघस्स अद्धुनो अच्चयेना" ति।

"खिप्पतरं खो सो, भिक्खवे, काणो कच्छपो अमुस्मिं एकच्छिग्गले युगे गीवं पवेसेय्य, अतो दुल्लभतराहं, भिक्खवे, मनुस्सत्तं वदामि सकिं विनिपातगतेन बालेन। तं किस्स हेतु ? न हेत्थ, भिक्खवे, अत्थि धम्मचरिया [N. 240] समचरिया कुसलकिरिया पुञ्ञकिरिया। अञ्ञमञ्ञखादिका एत्थ, भिक्खवे, वत्तति दुब्बलखादिका।

"स खो सो, भिक्खवे, बालो सचे कदाचि करहचि दीघस्स अद्धुनो अच्चयेन मनुस्सत्तं आगच्छति, यानि तानि नीचकुलानि—चण्डालकुलं वा

मनुष्यत्वप्राप्ति की दुर्लभता

८. "भिक्षुओ ! जैसे कोई पुरुष किसी छिग्गल (जाल) के जोड़े को महासमुद्र में डाल दे। उस छिग्गल को पूर्वी हवा पश्चिम की ओर ढकेलती रहे, पश्चिमी हवा पूर्व की ओर। इसी तरह उत्तरी हवा उसे दक्षिण की तरफ ढकेलती रहे और दक्षिण की हवा उत्तर की तरफ। वहाँ कोई काणाँ कछुआ हो जो सौ-सौ वर्ष के बाद उस समुद्र जल में उतराता हो। तो क्या मानते हो, भिक्षुओ ! वह काणाँ कछुआ इस छिग्गल-युगल में अपनी गर्दन घुसायगा ?"

"नहीं, भन्ते ! या फिर सम्भवतः बहुत दीर्घकाल के बाद कभी !"

"तो फिर, भिक्षुओ ! जैसे यह बात कठिन है कि वह काणाँ कछुआ उस छिग्गलयुग में बहुत सुदीर्घकाल के बाद भी अपनी गर्दन फँसायगा; भिक्षुओ ! मैं उस दुष्कर्मकारी अज्ञ के लिये पुनः मनुष्ययोनि प्राप्त करना इससे भी दुर्लभ समझता हूँ। उसमें क्या कारण है ? कारण है, भिक्षुओ ! कि इस तिर्यग्योनि में धर्माचरण, समभाव का आचरण, कुशलकर्म या पुण्यकर्म असम्भव है। यहाँ (तिर्यग्योनि में) तो भिक्षुओ ! एक दूसरे को मार कर खा जाने वाले या दुर्बल को ही सताने वाले पैदा होते हैं।

"और मान लो, भिक्षुओ ! यह अज्ञ दुष्कर्मकारी किसी समय कहीं, बहुत

नेसादकुलं वा वेनकुलं वा रथकारकुलं वा पुक्कुसकुलं वा। तथारूपे कुले पच्चाजायति दलिद्दे अप्पन्नपानभोजने कसिरवुत्तिके, यत्थ कसिरेन घासच्छादो लब्भति। सो च होति दुब्बण्णो दुद्दसिको ओकोटिमको बव्हाबाधो [B. 208] काणो वा कुणी वा खुज्जो वा पक्खहतो वा, न लाभी पानस्स [R. 170] वत्थस्स यानस्य मालागन्धविलेपनस्स सेय्यावसथपदीपेय्यस्स। सो कायेन दुच्चरितं चरति वाचाय···मनसा दुच्चरितं चरति। सो कायेन दुच्चरितं चरित्वा वाचाय मनसा···दुच्चरितं चरित्वा मनसा दुच्चरितं चरित्वा कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, अक्खधुत्तो पठमेनेव कलिग्गहेन पुत्तं पि जीयेथ, दारं पि जीयेथ, सब्बं सापतेय्यं पि जीयेथ, उत्तरि पि अधिबन्धं निगच्छेय्य। अप्पमत्तको सो, भिक्खवे, कलिग्गहो यं सो अक्खधुत्तो पठमेनेव कलिग्गहेन पुत्तं पि जीयेथ, दारं पि जीयेथ, सब्बं सापतेय्यं पि जीयेथ, उत्तरि पि अधिबन्धं निगच्छेय्य। अथ खो अयमेव ततो महन्ततरो कलिग्गहो यं सो बालो कायेन दुच्चरितं चरित्वा वाचाय दुच्चरितं चरित्वा मनसा दुच्चरितं चरित्वा कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति। अयं, भिक्खवे, केवला परिपूरा बालभूमी ति॥

योनियाँ पार करते-करते मनुष्यत्व प्राप्त भी कर ले तो वह उस मनुष्ययोनि में जो हीन कुल हैं उन्हीं में पैदा हो पायगा। जैसे—चाण्डाल, निषाद (मल्लाह), वेणुकार, रथकार या पुल्कष कुल। या फिर वैसे कुल में पैदा होता है जहाँ रूखा-सूखा भोजन भी बड़ी कठिनाई से मिल पाता है। वहाँ भी वह कुरूप, भद्दा दिखायी देने वाला, छोटी (कौंचा) गर्दन वाला, कई रोगों से घिरा हुआ, काणाँ, लूला-लँगड़ा, पक्षाघातवाला पैदा होता है। वहाँ भी उसे अन्न, जल, वस्त्र, सवारी, माला-गन्धविलेपन, खाट, अच्छा प्रकाशयुक्त घर नहीं मिल पाता। वहाँ भी वह शरीर, वाणी या मन से दुराचरण ही करता रहता है। इन त्रिविध दुराचरणों के कारण इस देहपात के बाद, मरणानन्तर वह पुनः नरक में ही पहुँच जाता है।

"जैसे, भिक्षुओ! कोई जुआरी पहले ही दाव में अपने पुत्र को, पत्नी को, समग्र सम्पत्ति (सापतेय्य) को हार जाय या इससे भी कठोर बन्धन में बन्ध जाय; तो भिक्षुओ! इस जुआरी के दाव से भी उस दुष्कर्मकारी अज्ञ का दाव अधिक बड़ा है कि जिसके सहारे वह कायिक वाचिक मानसिक दुष्कर्म करता हुआ इस देहपात के बाद नरक की तरफ ढकेल दिया जाता है। भिक्षुओ! यह हुई समग्र एवं परिपूर्ण बालभूमि॥

२. तीणि पण्डितस्स पण्डितलक्खणानि

९. "तीणिमानि, भिक्खवे, पण्डितस्स पण्डितलक्खणानि पण्डितनिमित्तानि पण्डितापदानानि। कतमानि तीणि? इध, भिक्खवे, पण्डितो सुचिन्तितचिन्ती च होति सुभासितभासी च सुतकम्मकारी च। नो चेतं, भिक्खवे, पण्डितो सुचिन्तितचिन्ती च अभविस्स सुभासितभासी च सुकतकम्मकारी च, केन नं पण्डिता जानेय्युं—'पण्डितो अयं [N. 241] भवं सप्पुरिसो' ति? यस्मा च खो; भिक्खवे, पण्डितो सुचिन्तितचिन्ती च होति सुभासितभासी च सुकतकम्मकारी च तस्मा नं पण्डिता जानन्ति—'पण्डितो अयं भवं सप्पुरिसो' ति।

"स खो सो, भिक्खवे, पण्डितो तिविधं दिट्ठेव धम्मे सुखं सोमनस्सं पटिसंवेदेति। सचे, भिक्खवे, पण्डितो सभायं वा निसिन्नो होति, रथिकाय वा निसिन्नो होति, सिङ्घाटके वा निसिन्नो होति; तत्र चे जनो तज्जं तस्सारुप्पं कथं मन्तेति। सचे, भिक्खवे, पण्डितो पाणातिपाता [B. 209] पटिविरतो होति, अदिन्नादाना पटिविरतो होति, कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो होति, मुसावादा पटिविरतो होति, सुरामेरय- [R. 171] मज्जप्पमादट्ठाना पटिविरतो होति; तत्र, भिक्खवे, पण्डितस्स एवं होति—'यं खो जनो तज्जं तस्सारुप्पं कथं मन्तेति; संविज्जन्तेव ते धम्मा मयि, अहं च तेसु धम्मेसु सन्दिस्सामी' ति। इदं, भिक्खवे, पण्डितो पठमं दिट्ठेव धम्मे सुखं सोमनस्सं पटिसंवेदेति। (१)

१०. "पुन च परं, भिक्खवे, पण्डितो पस्सति राजानो चोरं आगुचारिं गहेत्वा विविधा कम्मकारणा कारेन्ते—कसाहि पि ताळेन्ते वेत्तेहि पि

---

२. पण्डित के तीन पाण्डित्यबोधक चिह्न

९. "भिक्षुओ! पण्डित (विवेकी) के तीन पाण्डित्य के निदर्शक चिह्न, लक्षण एवं चरित्रबोधक अवदान होते हैं। कौन से तीन? यहाँ भिक्षुओ! कोई पुरुष पण्डित, अच्छी बातों का चिन्तन करने वाला, अच्छी वाणी बोलने वाला, सत्कर्म करने वाला होता है। भिक्षुओ! यदि यह पुरुष अच्छी बातों का चिन्तन करनेवाला, अच्छी वाणी बोलने वाला या सत्कर्मकारी न होता तो कैसे कोई साधारण अपरिचित जन भी इसके बारे में यह जान पाता कि यह पण्डित सत्पुरुष है!' क्योंकि, भिक्षुओ! यह सुचिन्तितचिन्ती…। तभी लोग कहते हैं कि 'यह पण्डित सत्पुरुष है। भिक्षुओ! यह पण्डित पुरुष (सत्कर्मों के कारण) जीवन भर ऐसे त्रिविध सुख-सौमनस्य प्राप्त करता है।

ताळेन्ते अद्धदण्डकेहि पि ताळेन्ते हत्थं पि छिन्दन्ते पादं पि छिन्दन्ते हत्थपादं पि छिन्दन्ते कण्णं पि छिन्दन्ते नास पि छिन्दन्ते कण्णनासं पि छिन्दन्ते बिलङ्गथालिकं पि करोन्ते सङ्खमुण्डिकं पि करोन्ते राहुमुखं पि करोन्ते जोतिमालिकं पि करोन्ते हत्थपज्जोतिकं पि करोन्ते एरकवत्तिकं पि करोन्ते चीरकवासिकं पि करोन्ते एणेय्यकं पि करोन्ते बळिसमंसिकं पि करोन्ते कहापणिकं पि करोन्ते खारापतच्छिकं पि करोन्ते पलिघपरिवत्तिकं पि करोन्ते पलालपीठकं पि करोन्ते तत्तेन पि तेलेन ओसिञ्चन्ते सुनखेहि पि खादापेन्ते जीवन्तं पि सूले उत्तासेन्ते असिना पि सीसं छिन्दन्ते। तत्र, भिक्खवे, पण्डितस्स एवं होति—'यथारूपानं खो पापकानं कम्मानं हेतु राजानो चोरं आगुचारिं गहेत्वा विविधा कम्मकारणा कारेन्ति…पे०… न ते धम्मा मयि संविज्जन्ति, अहं च न तेसु धम्मेसु सन्दिस्सामी' ति। इदं पि, भिक्खवे, [N. 242] पण्डितो दुतियं दिट्ठेव धम्मे सुखं सोमनस्सं पटिसंवेदेति।(२)

[B. 210] ११. "पुन च परं, भिक्खवे, पण्डितं पीठसमारूळ्हं वा मञ्चसमारूळ्हं वा छमायं वा सेमानं, यानिस्स पुब्बे कल्याणानि कम्मानि कतानि कायेन सुचरितानि वाचाय…मनसा सुचरितानि तानिस्स तम्हि समये ओलम्बन्ति…पे०…सेय्यथापि, भिक्खवे, महतं पब्बतकूटानं छाया सायन्हसमयं पथविया ओलम्बन्ति अज्झोलम्बन्ति अभिप्पलम्बन्ति; एवमेव खो, भिक्खवे, पण्डितं पीठसमारूळ्हं वा मञ्चसमारूळ्हं वा छमायं वा सेमानं यानिस्स पुब्बे कल्याणानि कम्मानि कतानि कायेन सुचरितानि वाचाय सुचरितानि मनसा सुचरितानि तानिस्स तम्हि समये ओलम्बन्ति अज्झोलम्बन्ति अभिप्पलम्बन्ति। तत्र, भिक्खवे, पण्डितस्स एवं होति—'अकतं वत मे पापं, अकतं लुद्दं, अकतं किब्बिसं; कतं कल्याणं, कतं कुसलं, कतं भीरुत्ताणं। यावता, भो, अकतपापानं अकतलुद्दानं अकतकिब्बिसानं कतकल्याणानं कतकुसलानं कतभीरुत्ताणानं गति तं गतिं पेच्च गच्छामी' ति। सो न सोचति, न किलमति, न परिदेवति, न उरत्ताळिं कन्दति, न सम्मोहं आपज्जति। इदं पि, भिक्खवे, पण्डितो ततियं दिट्ठेव धम्मे सुखं सोमनस्सं पटिसंवेदेति। (३)

"स खो सो, भिक्खवे, पण्डितो कायेन सुचरितं चरित्वा वाचाय [R. 172] सुचरितं चरित्वा मनसा सुचरितं चरित्वा कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति। यं खो तं, भिक्खवे, सम्मा वदमानो

---

१०. …पूर्ववत्[१]…।

१. इसी सूत्र के मूर्ख-लक्षण के प्रसङ्ग को विपरीत रूप से पढ़ें।

वदेय्य—'एकन्तं इट्ठं एकन्तं कन्तं एकन्तं मनापं' ति, सग्गमेव तं सम्मा वदमानो वदेय्य--'एकन्तं इट्ठं एकन्तं कन्तं एकन्तं मनापं' ति। यावञ्चिदं, भिक्खवे, उपमा पि न सुकरा याव सुखा सग्गा" ति।

सेय्यथापि राजा चक्कवत्ती

१२. एवं वुत्ते, अञ्ञतरो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"सक्का पन, भन्ते, उपमं कातुं" ति? "सक्का भिक्खू" ति भगवा अवोच। "सेय्यथापि, भिक्खवे, राजा चक्कवत्ती सत्तहि रतनेहि समन्नागतो चतूहि [N. 243] च इद्धीहि ततोनिदानं सुखं सोमनस्सं पटिसंवेदेति। कतमेहि सत्तहि?

"इध, भिक्खवे, रञ्ञो खत्तियस्स मुद्धावसित्तस्स तदहुपोसथे पन्नरसे सीसंन्हातस्स उपोसथिकस्स उपरिपासादवरगतस्स दिब्बं चक्करतनं पातुभवति सहस्सारं सनेमिकं सनाभिकं सब्बाकारपरिपूरं। तं दिस्वान रञ्ञो खत्तियस्स मुद्धावसित्तस्स एवं होति—'सुतं खो पन मेतं यस्स [B. 211] रञ्ञो खत्तियस्स मुद्धावसित्तस्स तदहुपोसथे पन्नरसे सीसंन्हातस्स उपोसथिकस्स उपरिपासादवरगतस्स दिब्बं चक्करतनं पातुभवति सहस्सारं सनेमिकं सनाभिकं सब्बाकारपरिपूरं। सो होति राजा चक्कवत्ती ति। अस्सं नु खो अहं राजा चक्कवत्ती' ति?

---

११. "भिक्षुओ! यदि यह पण्डितपुरुष सभा में मञ्च परबैठा हो, गली या चौराहे पर खड़ा हो, लोग इसके अनुकूल प्रशंसापरक बातें ही इसके बारे में बोलते मिलेंगे।··· पूर्ववत्[1]···। इस पण्डित के स्वर्गिक सुख की उपमा देना भी सम्भव नहीं है।

जैसे चक्रवर्ती राजा

१२. (भगवान् द्वारा) ऐसा कहे जाने पर, किसी भिक्षु ने पूछा—"भन्ते! क्या इसकी कोई उपमा सम्भव है?" "हाँ, भिक्षु! सम्भव तो है"—भगवान् ने कहा। "भिक्षुओ! जैसे कोई चक्रवर्ती राजा सात रत्नों और चार ऋद्धियों से युक्त हो, उनके कारण वह असीम सुख-सौमनस्य प्राप्त किये रहे। कौन से सात रत्नों से?

"यहाँ भिक्षुओ! पूर्णिमा को उपोसथ के दिन शिरःस्नात एवं उपोसथ-व्रती होकर महल में स्थित मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा के लिये नेमि एवं नाभि युक्त, सर्वाङ्गसम्पन्न सहस्र अरों वाला दिव्य चक्ररत्न प्रकट होता है। उसको देख कर उस मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा को मन में यह होता है—'मैंने सुना है कि जिस ···राजा के चक्ररत्न प्रकट होता है वह चक्रवर्ती होता है। क्या मैं चक्रवर्ती राजा हूँ'।

---

१. इसी सूत्र के मूर्ख-लक्षण के प्रसङ्ग को विपरीत रूप से पढ़ें।

"अथ खो, भिक्खवे, राजा खत्तियो मुद्धावसित्तो वामेन हत्थेन भिङ्कारं गहेत्वा दक्खिणेन हत्थेन चक्करतनं अब्भुक्किरति—'पवत्ततु भवं चक्करतनं, अभिविजिनातु भवं चक्करतनं' ति। अथ खो तं, भिक्खवे, चक्करतनं पुरत्थिमं दिसं पवत्तति। अन्वदेव राजा चक्कवत्ती सद्धिं चतुरङ्गिनिया सेनाय। यस्मिं खो पन, भिक्खवे, पदेसे चक्करतनं पतिट्ठाति तत्थ राजा चक्कवत्ती वासं उपेति सद्धिं चतुरङ्गिनिया सेनाय। ये खो पन, भिक्खवे, [R. 173] पुरत्थिमाय दिसाय पटिराजानो ते राजानं चक्कवत्तिं उपसङ्कमित्वा एवमाहंसु-'एहि खो, महाराज! स्वागतं ते, महाराज! सकं ते, महाराज, अनुसास, महाराजा' ति। राजा चक्कवत्ती एवमाह—'पाणो न हन्तब्बो, अदिन्नं नादातब्बं, कामेसुमिच्छा न चरितब्बा, मुसा न भासितब्बा, मज्जं न पातब्बं, यथाभुत्तं च भुञ्जथा' ति। ये खो पन, भिक्खवे, पुरत्थिमाय दिसाय पटिराजानो ते रञ्ञो चक्कवत्तिस्स अनुयन्ता भवन्ति।

[N. 244] १३. "अथ खो तं, भिक्खवे, चक्करतनं पुरत्थिमं समुद्दं अज्झोगाहेत्वा पच्चुत्तरित्वा दक्खिणं दिसं पवत्तति...पे०...दक्खिणं समुद्दं अज्झोगाहेत्वा पच्चुत्तरित्वा पच्छिमं दिसं पवत्तति...पच्छिमं समुद्दं अज्झोगाहेत्वा पच्चुत्तरित्वा उत्तरं दिसं पवत्तति। अन्वदेव राजा चक्कवत्ती

"तब, भिक्षुओ! वह...राजा बाँये हाथ में सोने की झारी ले कर दाहिने हाथ से चक्ररत्न पर जल छींटते हुए कहता है—"चलें आप चक्ररत्न! विजय प्राप्त करें आप चक्ररत्न।' तब वह चक्ररत्न पूर्व दिशा की तरफ चल पड़ता है। उसके पीछे-पीछे वह राजा भी अपनी चतुरङ्गिणी सेना के साथ चल पड़ता है। भिक्षुओ! चलते-चलते जिस प्रदेश में वह चक्ररत्न ठहर जाता है, वह राजा भी अपनी सेना के साथ वहीं पड़ाव डाल देता है। उस समय उस पूर्व दिशा के राजा लोग उस मूर्धाभिषिक्त राजा के दरबार में आ कर यों निवेदन करते हैं—'महाराज! आपका स्वागत है! हमारा यह सब कुछ आपका ही है। आज्ञा कीजिये!' तब चक्रवर्ती राजा आदेश देता है—'आज से इस राज्य में कोई प्राणिहिंसा न होगी, न चौरी, न व्यभिचार, न असत्यभाषण होगा, न मद्यपान होगा। आप लोग ही विधानानुसार पूर्ववत् अपने राज्य का सञ्चालन करते रहें।' इस तरह, भिक्षुओ! पूर्वदिशा के सभी विरोधी राजा उस चक्रवर्ती राजा के अनुगामी हो जाते हैं।

१३. "तदनन्तर, भिक्षुओ! वह चक्ररत्न पूर्वी समुद्र पार कर...दक्षिण दिशा में चलता है...पूर्ववत्...दक्षिण समुद्र को पार कर पश्चिम दिशा की तरफ बढता है...पश्चिम समुद्र को पार कर उत्तर दिशा की तरफ बढता है, राजा भी उसके

सद्धिं चतुरङ्गिनिया सेनाय। यस्मिं खो पन, भिक्खवे, पदेसे चक्करतनं पतिट्ठाति तत्थ राजा चक्कवत्ती वासं उपेति सद्धिं चतुरङ्गिनिया सेनाय।

"ये खो पन, भिक्खवे, उत्तराय दिसाय पटिराजानो ते राजानं चक्कवत्तिं उपसङ्कमित्वा एवमाहंसु—'एहि खो, महाराज! स्वागतं ते, महाराज! सकं ते, महाराज! अनुसास, महाराजा' ति। राजा चक्कवत्ती एवमाह—'पाणो न हन्तब्बो, अदिन्नं नादातब्बं, कामेसुमिच्छा न चरितब्बा, मुसा न भासितब्बा, मज्जं न पातब्बं; यथाभुत्तं च भुञ्जथा' ति। [B. 212] ये खो पन, भिक्खवे, उत्तराय दिसाय पटिराजानो ते रञ्ञो चक्कवत्तिस्स अनुयन्ता भवन्ति।

"अथ खो तं भिक्खवे, चक्करतनं समुद्दपरियन्तं पथविं अभिविजिनित्वा तमेव राजधानिं पच्चागन्त्वा रञ्ञो चक्कवत्तिस्स अन्तेपुरद्वारे अक्खाहतं मञ्ञे तिट्ठति रञ्ञो चक्कवत्तिस्स अन्तेपुरद्वारं उपसोभयमानं। रञ्ञो, भिक्खवे, चक्कवत्तिस्स एवरूपं चक्करतनं पातुभवति। (१)

१४. "पुन च परं, भिक्खवे, रञ्ञो चक्कवत्तिस्स हत्थिरतनं पातुभवति—सब्बसेतो सत्तप्पतिट्ठो इद्धिमा वेहासङ्गमो उपोसथो नाम नागराजा। तं दिस्वान रञ्ञो चक्कवत्तिस्स चित्तं पसीदति—'भद्दकं वत, भो, हत्थियानं, सचे दमथं उपेय्या' ति। अथ खो तं, भिक्खवे, हत्थिरतनं सेय्यथापि नाम भद्दो हत्थाजानीयो दीघरत्तं सुपरिदन्तो [R. 174]

पीछे-पीछे अपनी सेना के साथ चलता रहता है। तब वह चक्ररत्न उत्तर दिशा में चलते-चलते जहाँ ठहरता है वहीं वह राजा भी पड़ाव डाल देता है। भिक्षुओ! तब उत्तर दिशा के विरोधी राजा लोग···पूर्ववत्···अनुगामी हो जाते हैं।

"भिक्षुओ! तब वह चक्ररत्न समुद्रपर्यन्त पृथ्वी को जीत कर वापस अपनी राजधानी में ही लौटकर चक्रवर्ती राजा के अन्तःपुर के द्वार पर···अन्तःपुर की शोभा बढाता हुआ, धुरे में लगे की तरह, स्थित हो जाता है। भिक्षुओ! यों उस चक्रवर्ती राजा के इस प्रकार का चक्ररत्न प्रकट होता है। (१)

१४. "फिर, भिक्षुओ! उस चक्रवर्ती राजा के यहाँ प्राणियों में प्रतिष्ठा-(वीरता के कारण सम्मान-) प्राप्त, ऋद्धिसम्पन्न, आकाशचारी 'उपोसथ' नामक नागराज हस्तिरत्न के रूप में प्रकट होता है। उसको देखकर उस मूर्धाभिषिक्त राजा के मन में यह होता है—'अरे! यह हाथी तो सवारी (यान) के लिये बहुत उपयुक्त है, कितना अच्छा होता कि यह शिक्षा ग्रहण कर लेता!' तब भिक्षुओ! वह हस्तिरत्न, उच्चकुलोत्पन्न गजराज की तरह ही, मानो बहुत पहले से ही सुशिक्षित हो,

एवमेव दमथं उपेति। भूतपुब्बं, भिक्खवे, राजा चक्कवत्ती तमेव हत्थि-रतनं वीमंसमानो पुब्बण्हसमयं अभिरुहित्वा समुद्दपरियन्तं पथविं अनुसंयायित्वा तमेव राजधानिं पच्चागन्त्वा पातरासमकासि। रञ्ञो, भिक्खवे, चक्कवत्तिस्स एवरूपं हत्थिरतनं पातुभवति। (२)

[N. 245] "पुन च परं, भिक्खवे, रञ्ञो चक्कवत्तिस्स अस्सरतनं पातुभवति--सब्बसेतो काळसीसो मुञ्जकेसो इद्धिमा वेहासङ्गमो वलाहको नाम अस्सराजा। तं दिस्वान रञ्ञो चक्कवत्तिस्स चित्तं पसीदति--'भद्दकं वत, भो, अस्सयानं, सचे दमथं उपेय्या' ति। अथ खो तं, भिक्खवे, अस्सरतनं सेय्यथापि नाम भद्दो अस्साजानीयो दीघरत्तं सुपरिदन्तो एवमेव दमथं उपेति। भूतपुब्बं, भिक्खवे. राजा चक्कवत्ती तमेव अस्सरतनं वीमंसमानो पुब्बण्हसमयं अभिरुहित्वा समुद्दपरियन्तं पथविं अनुसंयायित्वा तमेव राजधानिं पच्चागन्त्वा पातरासमकासि। रञ्ञो, भिक्खवे, चक्क-वत्तिस्स एवरूपं अस्सरतनं पातुभवति। (३)

"पुन च परं, भिक्खवे, रञ्ञो चक्कवत्तिस्स मणिरतनं पातुभवति। सो होति मणि वेळुरियो सुभो जातिमा अट्ठंसो सुपरिकम्मकतो। तस्स खो पन, भिक्खवे, मणिरतनस्स आभा समन्ता योजनं फुटा होति। भूतपुब्बं, भिक्खवे, राजा चक्कवत्ती तमेव मणिरतनं वीमंसमानो चतुरङ्गिनिं सेनं [B. 213] सन्नय्हित्वा मणिं धजग्गं आरोपेत्वा रत्तन्धकारतिमिसाय

शिक्षा ग्रहण कर लेता है। तब उस काल में वह चक्रवर्ती राजा उस हस्तिरत्न की परीक्षा लेने के लिये उसपर सवार हो समुद्रपर्यन्त पृथ्वी का निरीक्षण कर पुनः लौटकर राजधानी में ही प्रातः का जलपान करता था। भिक्षुओ! चक्रवर्ती राजा को ऐसा हस्तिरत्न प्रकट होता है। (२)

"फिर, भिक्षुओ! उस चक्रवर्ती राजा को अश्वरत्न प्रकट होता है जो कोए की तरह ऊँची सीधी गर्दन वाला, मूँज की तरह खड़े केशों वाला, ऋद्धिसम्पन्न आकाशचारी, श्वेतवर्ण होता है। वह बलाहक नाम से जाना जाता है। उसको देखकर··· पूर्ववत्···ऐसा अश्वरत्न प्रकट होता है। (३)

"फिर, भिक्षुओ! उस चक्रवर्ती राजा को मणिरत्न प्रकट होता है, जो कि बैदूर्यमणि (हीरा) की तरह शुभ्र, अच्छी जाति का, अष्टकोण, पॉलिश (सुपरिकर्म) किया हुआ होता है। उस मणिरत्न की कान्ति चारों ओर एक योजन तक स्पष्ट दिखायी देती है। भिक्षुओ! पहले ऐसे चक्रवर्ती राजा लोग उस मणिरत्न की परीक्षा लेने के लिये चतुरङ्गिणी सेना के साथ मणिरत्न को ध्वजा के अग्रभाग में रखकर रात्रि के अन्धकार में किसी ग्राम में पहुँचते थे। उस ही ग्राम के नहीं, अपितु

पायासि। ये खो पन, भिक्खवे, समन्ता गामा अहेसुं ते तेनोभासेन कम्मन्ते पयोजेसुं 'दिवा' ति मञ्ञमाना। रञ्ञो, भिक्खवे, चक्कवत्तिस्स एवरूपं मणिरतनं पातुभवति। (४)

"पुन च परं, भिक्खवे, रञ्ञो चक्कवत्तिस्स इत्थिरतनं पातुभवति। सा अभिरूपा दस्सनीया पासादिका परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागता नातिदीघा नातिरस्सा नातिकिसा नातिथूला नातिकाळिका [R. 175] नाच्चोदाता, अतिक्कन्ता मानुसं वण्णं, अप्पत्ता दिब्बं वण्णं। तस्स खो पन, भिक्खवे, इत्थिरतनस्स एवरूपो कायसम्फस्सो होति सेय्यथापि नाम तूलपिचुनो वा कप्पासपिचुनो वा। तस्स खो पन, भिक्खवे, इत्थिरतनस्स सीते उण्हानि गत्तानि होन्ति, उण्हे सीतानि गत्तानि होन्ति। तस्स खो पन, भिक्खवे, इत्थिरतनस्स कायतो चन्दनगन्धो वायति, मुखतो उप्पलगन्धो [N. 246] वायति। त खो पन, भिक्खवे, इत्थिरतनं रञ्ञो चक्कवत्तिस्स पुब्बुट्ठायिनी होति पच्छानिपातिनी किङ्कारपटिस्साविनी मनापचारिनी पियवादिनी। तं खो पन, भिक्खवे, इत्थिरतनं राजानं चक्कवत्तिं मनसा पि नो अतिचरति, कुतो पन कायेन! रञ्ञो, भिक्खवे, चक्कवत्तिस्स एवरूपं इत्थिरतनं पातुभवति। (५)

उस ग्राम के चारों तरफ जो ग्राम होते थे उनके लोग भी मणिरत्न के प्रकाश को सूर्य का प्रकाश समझ कर अपने दैनिक कार्य में लग जाते थे। भिक्षुओ! उस राजा चक्रवर्ती को ऐसा मणिरत्न प्रकट होता है। (४)

"फिर, भिक्षुओ! उस चक्रवर्ती राजा को'''स्त्रीरत्न प्रकट होता है। वह स्त्री अभिरूप, दर्शनीय, मनोमोहक अत्यन्त सुन्दर वर्ण से सम्पन्न, न अधिक लम्बी, न अधिक छोटी, न अधिक तन्वी (पतली), न अधिक मोटी, न अधिक श्याम या न बहुत अधिक श्वेत, फिर भी साधारण मनुष्य से बहुत अच्छे वर्ण वाली, और देवताओं के वर्ण से कुछ ही कम होती थी। उसके शरीर को छू कर लगता था मानों रूई या कपास का स्पर्श किया जा रहा हो। उस स्त्रीरत्न के शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग शीत-ऋतु में गर्म होते हैं और ग्रीष्म ऋतु में ठण्ढे होते हैं। उस स्त्रीरत्न के शरीर से चन्दन की और मुख से कमल की गन्ध आती है। वह स्त्री राजा के सोकर उठने से पहले उठ जाती है और बाद में सोती है। बराबर 'अब क्या करना है'—इस तरह पूछने वाली, प्रियभाषिणी एवं प्रिय आचरण करने वाली होती है। वह स्त्रीरत्न राजा की किसी बात को मन से भी नहीं टालती है, शरीर से टालने की तो बात ही कहाँ! भिक्षुओ! उस चक्रवर्ती राजा को ऐसा स्त्रीरत्न प्रकट होता है। (५)

"पुन च परं, भिक्खवे. रञ्ञो चक्कवत्तिस्स गहपतिरतनं पातुभवति। तस्स कम्मविपाकजं दिब्बचक्खु पातुभवति, येन निधिं पस्सति सस्सामिकं पि अस्सामिकं पि। सो राजानं चक्कवत्तिं उपसङ्कमित्वा एवमाह--'अप्पसुक्को त्वं, देव, होहि। अहं ते धनेन धनकरणीयं करिस्सामी' ति। भूतपुब्बं, भिक्खवे, राजा चक्कवत्ती, तमेव गहपतिरतनं वीमंसमानो नावं अभिरुहित्वा मज्झे गङ्गाय नदिया सोतं ओगाहित्वा गहपतिरतनं एतदवोच—'अत्थो मे, गहपति, हिरञ्ञसुवण्णेना' ति।

'तेन हि, महाराज, एकं तीरं नावा उपेतू' ति।

'इधेव मे, गहपति, अत्थो हिरञ्ञसुवण्णेना' ति।

"अथ खो तं, भिक्खवे; गहपतिरतनं उभोहि हत्थेहि उदके ओमसित्वा पूरं हिरञ्ञसुवण्णस्स कुम्भिं उद्धरित्वा राजानं चक्कवत्तिं एतदवोच--'अलमेत्तावता, महाराज! कतमेत्तावता, महाराज! पूजितमेत्तावता, महाराजा' ति? राजा चक्कवत्ती एवमाह--'अलमेत्तावता, गहपति! [B. 214] कतमेत्तावता, गहपति! पूजितमेत्तावता, गहपती' ति। रञ्ञो, भिक्खवे, चक्कवत्तिस्स एवरूपं गहपतिरतनं पातुभवति। (६)

[R. 176] "पुन च परं, भिक्खवे, रञ्ञो चक्कवत्तिस्स परिणायकरतनं पातुभवति--पण्डितो ब्यत्तो मेधावी पटिबलो राजानं चक्कवत्तिं

"और फिर, भिक्षुओ...गृहपति--(धनदाता श्रेष्ठि-) रत्न प्रकट होता है। पूर्वकर्म के विपाक से उसे दिव्य चक्षु मिला रहता है, जिससे वह स्वामित्वसम्पन्न या अस्वामित्वसम्पन्न भूमिस्थ खजानों को देख पाता है। वह (समय-समय पर) उस राजा के पास आकर कहता रहता है—"देव! आप निश्चिन्त (अल्पौत्सुक्य) रहिये! आपके लिए धन की आवश्यकताओं की पूर्ति मैं करूँगा'। भिक्षुओ! पहले समय में ऐसा कोई राजा अपने गृहपतिरत्न की वास्तविकता के परीक्षणहेतु नाव पर चढ़कर गंगा नदी के मध्य में जाकर अपने गृहपतिरत्न से बोला—'गृहपति! मुझे यहीं सुवर्ण की आवश्यकता है।' (गृहपति—) 'तो महाराज! नाव से इस पार या उस पार चलें।' (राजा—) 'नहीं, मुझे तो वह सुवर्ण यहीं चाहिये।' तब भिक्षुओ! उस गृहपतिरत्न ने दोनों हाथों से नदी का जल छूकर हिरण्य-सुवर्ण से भरा कलश जल से निकाल कर राजा को देते हुए कहा—'इतना ही चाहिये, महाराज! या और कुछ! इतने से ही आपका कार्य चल गया?' राजा चक्रवर्ती ने उत्तर दिया—'बस, गृहपति! इतने से ही मेरा कार्य पुज गया (पूरा हो गया')। भिक्षुओ! ऐसा गृहपतिरत्न प्रकट होता है। (६)

"फिर भिक्षुओ! उस राजा के लिये एक परिणायक (मार्गदर्शक संरक्षक)

उपयापेतब्बं उपयापेतुं, अपयापेतब्बं अपयापेतुं, ठपेतब्बं ठपेतुं। सो राजानं चक्कवत्तिं उपसङ्कमित्वा एवमाह--'अप्पोस्सुक्को त्वं, देव, होहि। अहमनुसासिस्सामी' ति। रञ्ञो, भिक्खवे, चक्कवत्तिस्स एवरूपं परिणायकरतनं पातुभवति। राजा, भिक्खवे, चक्कवत्ती इमेहि सत्तहि रतनेहि समन्नागतो होति। (७)

१५. "कतमाहि चतूहि इद्धीहि? इध, भिक्खवे, राजा [N. 247] चक्कवत्ती अभिरूपो होति दस्सनीयो पासादिको परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागतो अतिविय अञ्ञेहि मनुस्सेहि। राजा, भिक्खवे, चक्कवत्ती इमाय पठमाय इद्धिया समन्नागतो होति। (१)

"पुन च परं, भिक्खवे, राजा चक्कवत्ती दीघायुको होति चिरट्ठितिको अतिविय अञ्ञेहि मनुस्सेहि। राजा, भिक्खवे, चक्कवत्ती इमाय दुतियाय इद्धिया समन्नागतो होति। (२)

"पुन च परं, भिक्खवे, राजा चक्कवत्ती अप्पाबाधो होति अप्पातङ्को समवेपाकिनिया गहणिया समन्नागतो नातिसीताय नाच्चुण्हाय अतिविय अञ्ञेहि मनुस्सेहि। राजा, भिक्खवे, चक्कवत्ती इमाय ततियाय इद्धिया समन्नागतो होति। (३)

रत्न प्रकट होता है। जो कि समझदार, चतुर, मेधावी, उस राजा को प्राप्तव्य की प्राप्ति कराने में, हेय को दूर (त्याग) कराने में, या रखने योग्य को रखवाने में समर्थ होता है। वह (समय-समय पर) राजा के पास आकर कहता रहता है—'देव! आप निश्चिन्त रहिये। इस समस्या का समाधान मैं करूँगा'। भिक्षुओ! उस चक्रवर्ती को ऐसा परिणायकरत्न प्रकट होता है। (७)

"भिक्षुओ! वह चक्रवर्ती राजा इन सात रत्नों से समन्वित होता है।

१५. "किन चार ऋद्धियों से (वह राजा) सम्पन्न होता है? भिक्षुओ! वह चक्रवर्ती राजा सर्वथा सुन्दर, दर्शनीय, मनोमोहक एवं अन्य साधारण मनुष्यों की अपेक्षा वर्णपुष्कलता (परम सौन्दर्य) से युक्त होता है। यों वह इस प्रथम ऋद्धि से सम्पन्न होता है। (१)

"फिर, भिक्षुओ! वह राजा अन्य मनुष्यों की अपेक्षा दीर्घायु एवं इस संसार में चिरकाल तक रहता है। भिक्षुओ! यों, वह राजा इस द्वितीय ऋद्धि से सम्पन्न होता है। (२)

"फिर भिक्षुओ! वह राजा अन्यों की अपेक्षा नीरोग (स्वस्थ) रहता है। अन्यों की अपेक्षा अत्यधिक समपाचक अग्नि एवं न अधिक शीत न अधिक उष्ण पाचनशक्ति (ग्रहणी) वाला होता है।...तृतीय ऋद्धि वाला होता है। (३)

"पुन च परं, भिक्खवे, राजा चक्कवत्ती ब्राह्मणगहपतिकानं पियो होति मनापो। सेय्यथापि, भिक्खवे, पिता पुत्तानं पियो होति मनापो; एवमेव खो, भिक्खवे, राजा चक्कवत्ती ब्राह्मणगहपतिकानं पियो होति मनापो। रञ्ञो पि, भिक्खवे, चक्कवत्तिस्स ब्राह्मणगहपतिका पिया होन्ति मनापा। सेय्यथापि, भिक्खवे, पितु पुत्ता पिया होन्ति मनापा; एवमेव खो, भिक्खवे, रञ्ञो पि चक्कवत्तिस्स ब्राह्मणगहपतिका पिया होन्ति मनापा।

[B. 215] "भूतपुब्बं, भिक्खवे, राजा चक्कवत्ती चतुरङ्गिनिया सेनाय उय्यानभूमिं निय्यासि। अथ खो, भिक्खवे, ब्राह्मणगहपतिका राजानं चक्कवत्तिं उपसङ्कमित्वा एवमाहंसु—'अतरमानो, देव, याहि, यथा तं मयं चिरतरं पस्सेय्यामा" ति। राजा पि, भिक्खवे, चक्कवत्ती सारथिं आम- [R. 177] न्तेसि—'अतरमानो, सारथि, पेसेहि यथा मं ब्राह्मणगहपतिका चिरतरं पस्सेय्युं' ति। राजा, भिक्खवे, चक्कवत्ती इमाय चतुत्थाय इद्धिया समन्नागतो होति। (४)

राजा, भिक्खवे, चक्कवत्ती इमाहि चतूहि इद्धीहि समन्नागतो होति।

"तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, अपि नु खो राजा चक्कवत्ती इमेहि सत्तहि रतनेहि समन्नागतो इमाहि चतूहि च इद्धीहि ततोनिदानं सुखं सोमनस्सं पटिसंवेदियेथा" ति ?

"फिर, भिक्षुओ! वह राजा चक्रवर्ती ब्राह्मणगृहपतियों का वैसे ही प्रिय होता है जैसे पिता पुत्रों को प्रिय होता है। और उस चक्रवर्ती राजा को भी ब्राह्मण गृहपति उतने ही प्रिय होते हैं जैसे पिता को पुत्र प्रिय होते हैं। पहले समय में ऐसा ही कोई राजा सेना के साथ उद्यानभूमि की ओर जा रहा था। तब भिक्षुओ! ब्राह्मणगृहपति राजा के पास आकर बोले—'देव! आप धीरे-धीरे ही (अत्वरा-पूर्वक) यहाँ से जाँय; क्योंकि इससे हम आपको अधिक देर तक देख सकेंगे!' तब राजा ने सारथि को आदेश दिया—'सारथि! रथ धीरे ही चलाओ, ताकि ये ब्राह्मण अधिक समय तक मेरा दर्शन कर सकें।' भिक्षुओ! वह राजा इस चौथे प्रकार की जनप्रियता नामक ऋद्धि से युक्त होता है। (४)

"भिक्षुओ! इस तरह वह चक्रवर्ती राजा चार ऋद्धियों से सम्पन्न होता है।"

"तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! वह चक्रवर्ती राजा इन सात रत्नों और चतुर्विध ऋद्धियों से युक्त होकर सुख-सौमनस्य नहीं प्राप्त कर पाता ?"

"एकमेकेन पि, भन्ते, रतनेन समन्नागतो राजा चक्कवत्ती [N. 248] ततोनिदानं सुखं सोमनस्सं पटिसंवेदियेथ, को पन वादो सत्तहि रतनेहि, चतूहि च इद्धीही' ति !

१९. अथ खो भगवा परित्तं पाणिमत्तं पासाणं गहेत्वा भिक्खू आमन्तेसि—"तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, कतमो नु खो महन्ततरो—यो चायं मया परित्तो पाणिमत्तो पासाणो गहितो, यो च हिमवा पब्बतराजा" ति ?

"अप्पमत्तको अयं, भन्ते, भगवता परित्तो पाणिमत्तो पासाणो गहितो; हिमवन्तं पब्बतराजानं उपनिधाय सङ्खं पि न उपेति; कलभागं पि न उपेति; उपनिधं पि न उपेती" ति।

"एवमेव खो, भिक्खवे, यं राजा चक्कवत्ती सत्तहि रतनेहि समन्नागतो चतूहि च इद्धीहि ततोनिदानं सुखं सोमनस्सं पटिसंवेदेति तं दिब्बस्स सुखस्स उपनिधाय सङ्खं पि न उपेति; कलभागं पि न उपेति; उपनिधं पि न उपेति।

"स खो सो, भिक्खवे, पण्डितो सचे कदाचि करहचि दीघस्स अद्धुनो अच्चयेन मनुस्सत्तं आगच्छति, यानि तानि उच्चाकुलानि—खत्तियमहासालकुलं वा ब्राह्मणमहासालकुलं वा गहपतिमहासालकुलं वा तथारूपे कुले पच्चाजायति अड्ढे महद्धने महाभोगे पहूतजातरूपरजते पहूतवित्तूपकरणे पहूतधनधञ्ञे। सो च होति अभिरूपो दस्सनीयो पासादिको परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागतो, लाभी अन्नस्स पानस्स वत्थस्स [B. 216] यानस्स मालागन्धविलेपनस्स सेय्यावसथपदीपेय्यस्स। सो कायेन सुचरितं

"भन्ते ! वह इनमें से एक के प्राप्त होने पर भी सुख-सौमनस्य का लाभी हो सकता था, फिर एक साथ सातों रत्नों और चतुर्विध ऋद्धियों के प्राप्त होने पर मिलने वाले सुख-सौमनस्य की तो बात ही क्या !"

१९. फिर भगवान् ने अपने हाथ में छोटा सा पत्थर (ढेला)...पूर्ववत्... बराबरी नहीं कर सकता।

"इसी तरह, भिक्षुओ ! कोई चक्रवर्ती राजा सात रत्नों एवं चार ऋद्धियों से सम्पन्न हो जो सुख-सौमनस्य पाता है, वह सुख स्वर्ग के सुख की यत्किञ्चित् भी समता नहीं रखता।

"भिक्षुओ ! ऐसा शुभकर्मकारी पण्डित यदि कभी कहीं बहुत काल बीतने पर मनुष्ययोनि में आने लगे तो (१) वह उच्चकुलों में ही, जैसे क्षत्रियमहाशाल ब्राह्मणमहाशाल, या गृहपतिमहाशाल या ऐसे ही किसी उच्च कुल में जन्म लेगा, जो आढ्य महाधन महाभोग (ऐश्वर्य) से युक्त, सोने-चाँदी से भरा-पूरा, नाना प्रकार की सम्पत्ति एवं धन-धान्य से युक्त हो। (२) वह स्वयं रूपवान्, दर्शनीय,

चरति, वाचाय सुचरितं चरति, मनसा सुचरितं चरति। सो कायेन [R. 178] सुचरितं चरित्वा, वाचाय सुचरितं चरित्वा, मनसा सुचरितं चरित्वा, कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति।

सेय्यथापि, भिक्खवे, अक्खधुत्तो पठमेनेव कटग्गहेन महन्तं भोगक्खन्धं अधिगच्छेय्य; अप्पमत्तको सो, भिक्खवे, कटग्गहो यं सो अक्खधुत्तो पठमेनेव कटग्गहेन महन्तं भोगक्खन्धं अधिगच्छेय्य। अथ खो अयमेव ततो महन्ततरो कटग्गहो यं सो पण्डितो कायेन सुचरितं चरित्वा, वाचाय सुचरितं [N. 249] चरित्वा, मनसा सुचरितं चरित्वा कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति। अयं, भिक्खवे, केवला परिपूरा पण्डितभूमी" ति।

१७. इदमवोच भगवा। अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति।

मनोमोहक, परम वर्णपुष्कलता से युक्त होगा। उसे अन्नपान, वस्त्र, रथ, मालागन्धविलेपन, शय्या एवं रहने को दीपप्रकाशमय घर मिलेंगे। (३) वह काया, वाणी, मन से सत्कर्म ही करेगा। और देहपात के बाद मरणानन्तर सुगतिमय स्वर्गलोक को प्राप्त करेगा।

"जैसे, भिक्षुओ ! कोई भाग्यशाली जुआरी पहले ही दाव पर महान् धनराशि (भोगस्कन्ध) पा जाय तो भिक्षुओ ! जुआरी का यह सब तो उस चक्रवर्ती राजा के सामने बहुत स्वल्पमात्र है... उससे कहीं बडा दाव तो वह है कि वह पण्डित (मनुष्ययोनि पाकर) इस काया से, वाणी से, मन से सत्कर्म करता हुआ, देहपात के बाद, मरणानन्तर सुगतिमय स्वर्गलोक में उत्पन्न हो। भिक्षुओ ! यह हुई एकान्ततः परिपूर्ण पण्डितभूमि।"

१७. भगवान् ने यह कहा। आत्तमना भिक्षुओं ने भगवान् के भाषण का अभिनन्दन किया।

बाल-पण्डितसुत्त समाप्त॥

३०. देवदूतसुत्तं

१. पञ्च देवदूता

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति [N. 250] जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि— "भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच--

"सेय्यथापि, भिक्खवे, द्वे अगारा सद्वारा, तत्थ चक्खुमा पुरिसो मज्झे ठितो पस्सेय्य मनुस्से गेहं पविसन्ते पि निक्खमन्ते पि अनुचङ्कमन्ते पि अनुविचरन्ते पि; एवमेव खो अहं, भिक्खवे, दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सामि चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे, सुगते दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानामि—(१) 'इमे वत भोन्तो सत्ता कायसुचरितेन समन्नागता वचीसुचरितेन समन्नागता मनोसुचरितेन समन्नागता अरियानं अनुपवादका सम्मा- [B. 217] दिट्ठिका सम्मादिट्ठिकम्मसमादाना; ते कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपन्ना। (२) इमे वा पन भोन्तो सत्ता कायसुचरितेन समन्नागता वचीसुचरितेन समन्नागता मनोसुचरितेन समन्नागता अरियानं अनुपवादका सम्मादिट्ठिका सम्मादिट्ठिकम्मसमादाना; ते कायस्स [R. 179] भेदा परं मरणा मनुस्सेसु उपपन्ना। (३) इमे वत भोन्तो सत्ता कायदुच्चरितेन समन्नागता वचीदुच्चरितेन समन्नागता मनोदुच्चरितेन समन्नागता अरियानं उपवादका मिच्छादिट्ठिका मिच्छादिट्ठिकम्मसमादाना; ते कायस्स भेदा परं मरणा पेत्तिविसयं उपपन्ना। (४) इमे वा पन भोन्तो सत्ता कायदुच्चरितेन समन्नागता वचीदुच्चरितेन समन्नागता मनो-

---

३०. देवदूतसुत्त

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्तीस्थित… जेतवनाराम में…। भगवान् यों बोले—

१. पाँच देवदूत

"भिक्षुओ ! जैसे कहीं द्वार से परस्पर जुड़े दो घर हों, उनके बीच में खड़ा आँख वाला पुरुष मनुष्यों को घर में प्रवेश करते भी, वहाँ से बाहर निकलते भी, टहलते-घूमते भी देखें; उसी प्रकार विशुद्ध मानवदुर्लभ दिव्य चक्षुओं से…पूर्ववत्[1]…नरक योनियों में गिरते देखा।

---

१. द्र०—पीछे पृ० ४७-४८ (भयभेरवसुत्त)।

दुच्चरितेन समन्नागता अरियानं उपवादका मिच्छादिट्ठिका मिच्छादिट्ठि-कम्मसमादाना; ते कायस्स भेदा परं मरणा तिरच्छानयोनिं उपपन्ना। (५) इमे वा पन भोन्तो सत्ता कायदुच्चरितेन समन्नागता वचीदुच्चरितेन [N. 251] समन्नागता मनोदुच्चरितेन समन्नागता अरियानं उपवादका मिच्छादिट्ठिका मिच्छादिट्ठिकम्मसमादाना; ते कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपन्ना' ति।

२. "तमेनं, भिक्खवे, निरयपाला नानाबाहासु गहेत्वा यमस्स रञ्ञो दस्सेन्ति—'अयं, देव, पुरिसो अमत्तेय्यो अपेत्तेय्यो असामञ्ञो अब्राह्मञ्ञो, न कुले जेट्ठापचायी। इमस्स देवो दण्डं पणेतू' ति। तमेनं, भिक्खवे, यमो राजा पठमं देवदूतं समनुयुञ्जति समनुगाहति समनुभासति—'अम्भो पुरिस, न त्वं अद्दस मनुस्सेसु पठमं देवदूतं पातुभूतं' ति? सो एवमाह—'नाद्दसं, भन्ते' ति।

"तमेनं, भिक्खवे, यमो राजा एवमाह—'अम्भो पुरिस, न त्वं अद्दस मनुस्सेसु दहरं कुमारं मन्दं उत्तानसेय्यकं सके मुत्तकरीसे पलिपन्नं सेमानं' ति? सो एवमाह—'अद्दसं, भन्ते' ति।

"तमेनं, भिक्खवे, यमो राजा एवमाह—'अम्भो पुरिस, तस्स ते विञ्ञुस्स सतो महल्लकस्स न एतदहोसि—अहं पि खोम्हि जातिधम्मो, जातिं अनतीतो। हन्दाहं कल्याणं करोमि कायेन वाचाय मनसा' ति? सो एवमाह—'नासक्खिस्सं, भन्ते, पमादस्सं, भन्ते' ति।

---

२. "भिक्षुओ! नरकपाल उस दुष्कर्मा को दोनों बाहों से पकड़ कर यमराज के सामने ले जाते हैं, और कहते हैं—'देव! यह न माता का आज्ञापालक है, न पिता का। न इसने श्रमणधर्म का पालन किया, न ब्राह्मणधर्म का और न इसने अपने से बड़ों का ही सम्मान किया। भगवन्! इसे क्या दण्ड दिया जाय, बताइये!' भिक्षुओ! तब यमराज उस पुरुष से प्रथम देवदूत की उत्पत्ति के विषय में पूछता है—'अरे मानव! क्या तूने मनुष्ययोनि में प्रथम देवदूत को उत्पन्न होते नहीं देखा?' वह बोला—'नहीं भन्ते! नहीं देखा।'

"भिक्षुओ! उसे यमराज फिर पूछते हैं—हे पुरुष! तूँने उत्तान सोने वले, अपने ही मल-मूत्र में लिपटे, सोते हुए बच्चे को देखा है?" "हाँ भन्ते! देखा है।"

"भिक्षुओ! यमराज उससे फिर पूछते हैं—'अरे पुरुष! तुम तो समझदार थे, क्या उस बालक को देख कर, तुम्हें बुड्ढे होने पर भी, मन में यह नहीं हुआ—'मैं भी जातिस्वभाव वाला (जातिधर्मा) हूँ, मैं भी संसार की इस जाति-प्रक्रिया को अतिक्रान्त नहीं कर पाऊँगा; तो क्यों न मैं मन, वचन, काय से शुभ कर्म करूँ'! उसने कहा—'नहीं सोच सका, भन्ते! मुझसे यह प्रमाद हो ही गया'।

"तमेनं, भिक्खवे, यमो राजा एवमाह--'अम्भो पुरिस, [B. 218] पमादवताय न कल्याणमकासि कायेन वाचाय मनसा। तग्घ त्वं, अम्भो पुरिस, तथा करिस्सन्ति यथा तं पमत्तं। तं खो पन ते एतं पापकम्मं नेव मातरा कतं न पितरा कतं न भातरा कतं न भगिनिया [R. 180] कतं न मित्तामच्चेहि कतं न ञातिसालोहितेहि कतं न समणब्राह्मणेहि कतं न देवताहि कतं, तयावेतं पापकम्मं कतं, त्वञ्ञेवेतस्स विपाकं पटिसंवेदिस्ससी' ति। (१)

१. "तमेनं, भिक्खवे, यमो राजा पठमं देवदूतं समनुयुञ्जित्वा समनुगाहित्वा समनुभासित्वा दुतियं देवदूतं समनुयुञ्जति समनुगाहति समनुभासति--'अम्भो पुरिस, न त्वं अद्दस मनुस्सेसु दुतियं देवदूतं पातुभूतं' ति ? सो एवमाह--'नाद्दसं, भन्ते' ति।

"तमेनं, भिक्खवे, यमो राजा एवमाह--"अम्भो पुरिस, [N. 252] न त्वं अद्दस मनुस्सेसु इत्थिं वा पुरिसं वा जिण्णं गोपानसिवङ्कं भोग्गं दण्डपरायनं पवेधमानं गच्छन्तं आतुरं गतयोब्बनं खण्डदन्तं पलितकेसं विलूनं खलितसिरं वलिनं तिलकाहतगत्तं' ति ?

सो एवमाह—'अद्दसं, भन्ते' ति।

"...'प्रमादी बन कर तूँने मन, वचन, काय से सत्कर्म नहीं किये, अपितु तूँने वही सब किया जो एक प्रमादी किया करता है ! यह पाप-कर्म करने में न तुम्हें पिता से प्रेरणा मिली, न माता से, न बहन से, न शत्रु या मित्र से, न नाते-रिश्तेदारों से, न श्रमण-ब्राह्मणों से और न देवताओं से; यह पाप कर्म तो तूँने स्वयं ही किया है, अतः इसका फल भी तुझे ही भोगना पड़ेगा।' (१)

२. भिक्षुओ ! तब यमराज ने इस पुरुष को प्रथम देवता के विषय में बताकर अच्छी तरह समझाकर दूसरे देवता के विषय में बताना प्रारम्भ किया —'अरे पुरुष ! तूँ ने द्वितीय देवता को मनुष्यों में उत्पन्न होते नहीं देखा क्या ?'

उस पुरुष ने कहा—"नहीं देखा, भन्ते !"

"यमराज ने फिर पूछा—'अरे पुरुष ! क्या तूंने मनुष्यों में ऐसी कोई स्त्री या पुरुष भी नहीं देखे जो शरीर से जीर्ण, डण्डे के सहारे चलते, बीमार, ढली जवानी में टूटे दाँत, सफेद बाल, काँपते शिर वाले, झुर्रीं पड़े व काले दागों से युक्त चेहरे वाले, मकान के टोड़े (गोपानसी) की तरह टेढ़े शरीर वाले हों वह हाथ में लाठी लिये लुढक कर चलते हों, जिनकी आयु अस्सी, नब्बे या सौ वर्ष की हो ?"

'देखा है ! भन्ते !'

"तमेनं, भिक्खवे, यमो राजा एवमाह--'अम्भो पुरिस, तस्स ते विञ्ञुस्स सतो महल्लकस्स न एतदहोसि—'अहं पि खोम्हि जराधम्मो, जरं अनतीतो। हन्दाहं कल्याणं करोमि कायेन वाचाय मनसा' ति ? सो एवमाह—'नासक्खिस्सं, भन्ते, पमादस्सं, भन्ते' ति।

"तमेनं, भिक्खवे, यमो राजा एवमाह--'अम्भो पुरिस, पमादवताय न कल्याणमकासि कायेन वाचाय मनसा। तग्घ त्वं, अम्भो पुरिस, तथा करिस्सन्ति यथा तं पमत्तं। तं खो पन ते एतं पापकम्मं नेव मातरा कतं [B. 219] न पितरा कतं न भातरा कतं न भगिनिया कतं न मित्ता-मच्चेहि कतं न ञातिसालोहितेहि कतं न समणब्राह्मणेहि कतं न देवताहि कतं, तयावेतं पापकम्मं कतं, त्वञ्ञेवेतस्स विपाकं पटिसंवेदिस्ससी' ति। (२)

४. "तमेनं, भिक्खवे, यमो राजा दुतियं देवदूतं समनुयुञ्जित्वा समनुगाहित्वा समनुभासित्वा ततियं देवदूतं समनुयुञ्जति समनुगाहति [R. 181] समनुभासति—'अम्भो पुरिस, न त्वं अद्दस मनुस्सेसु ततियं देवदूतं पातुभूतं' ति ? सो एवमाह—नाद्दसं, भन्ते' ति।

"तमेनं, भिक्खवे, यमो राजा एवमाह--'अम्भो पुरिस, न त्वं अद्दस मनुस्सेसु इत्थिं वा पुरिसं वा आबाधिकं दुक्खितं बाळ्हगिलानं सके मुत्त-करीसे पलिपन्नं सेमानं अञ्ञेहि वुट्ठापियमानं अञ्ञेहि संवेसियमानं' ति ?

सो एवमाह--'अद्दसं, भन्ते' ति।

"तमेनं, भिक्खवे, यमो राजा एवमाह--'अम्भो पुरिस, तस्स ते विञ्ञुस्स सतो महल्लकस्स न एतदहोसि--'अहं पि खोम्हि ब्याधिधम्मो, ब्याधिं अनतीतो। हन्दाहं कल्याणं करोमि कायेन वाचाय मनसा' ति ? [N. 253] सो एवमाह--'नासक्खिस्सं, भन्ते, पमादस्सं, भन्ते' ति।

"तमेनं, भिक्खवे, यमो राजा एवमाह—'अम्भो पुरिस, पमादवताय न कल्याणमकासि कायेन वाचाय मनसा। तग्घ त्वं, अम्भो पुरिस, तथा करिस्सन्ति यथा तं पमत्तं। तं खो पन ते एतं पापकम्मं नेव मातरा कतं न

"....'अरे पुरुष। तुम तो समझदार थे, क्या उस आदमी को देखकर भी तुझे यह नहीं हुआ—मुझ पर भी कभी यह बुढ़ापा आयगा। मैं भी इस जराधर्म को अतिक्रान्त नहीं कर सकता।'''फल भी तुझे ही भोगना पड़ेगा'। (२)

४. तब यमराज ने'''देवदूत को'''। 'नहीं देखा, भन्ते'।'''किसी स्त्री या पुरुष को रोगी, दुःखी, अत्यन्त दुर्बल, अपने ही मल-मूत्र में लिपटे और दूसरों द्वारा

भातरा कतं न भगिनिया कतं न मित्तामच्चेहि कतं न ञातिसालोहितेहि कतं न समणब्राह्मणेहि कतं न देवताहि कतं; तयावेतं पापकम्मं कतं, त्वञ्ञेवेतस्स विपाकं पटिसंवेदिस्ससी' ति। (३)

५. "तमेनं, भिक्खवे, यमो राजा ततियं देवदूतं समनुयुञ्जित्वा समनुगाहित्वा समनुभासित्वा चतुत्थं देवदूतं समनुयुञ्जति समनुगाहति—'अम्भो पुरिस, न त्वं अद्दस मनस्सेसु चतुत्थं देवदूतं पातुभूतं' ति ?

"सो एवमाह—'नाद्दसं, भन्ते' ति।

"तमेनं, भिक्खवे, यमो राजा एवमाह--'अम्भो पुरिस, न त्वं अद्दस मनुस्सेसु राजानो चोरं आगुचारिं गहेत्वा विविधा कम्मकारणा कारेन्ते—कसाहि पि ताळेन्ते वेत्तेहि पि ताळेन्ते अद्धदण्डकेहि पि ताळेन्ते हत्थं पि छिन्दन्ते पादं पि छिन्दन्ते हत्थपादं पि छिन्दन्ते कण्णं पि छिन्दन्ते नासं पि छिन्दन्ते कण्णनासं पि छिन्दन्ते बिलङ्गथालिकं [B. 220] पि करोन्ते सङ्खमुण्डिकं पि करोन्ते राहुमुखं पि करोन्ते जोतिमालिकं पि करोन्ते हत्थपज्जोतिकं पि करोन्ते एरकवत्तिकं पि करोन्ते चीरकवासिकं पि करोन्ते एणेय्यकं पि करोन्ते बळिसमंसिकं पि करोन्ते कहापणिकं पि करोन्ते खारापतच्छिकं पि करोन्ते पलिघपरिवत्तिकं पि करोन्ते पलालपीठकं पि करोन्ते तत्तेन पि तेलेन ओसिञ्चन्ते सुनखेहि पि खादापेन्ते जीवन्तं पि सूले उत्तासेन्ते असिना पि सीसं छिन्दन्ते' ति ?

सो एवमाह—'अद्दसं, भन्ते' ति।

"तमेनं, भिक्खवे, यमो राजा एवमाह--'अम्भो पुरिस, तस्स ते विञ्ञुस्स सतो महल्लकस्स न एतदहोसि-ये किर, भो, पापकानि कम्मानि करोन्ति ते दिट्ठेव धम्मे एवरूपा विविधा कम्मकारणा करीयन्ति, किमङ्ग पन परत्थ ! हन्दाहं कल्याणं करोमि कायेन वाचाय मनसा' ति ? [N. 254, R. 182]

"सो एवमाह--'नासक्खिस्सं, भन्ते, पमादस्सं, भन्ते' ति।

"तमेनं, भिक्खवे, यमो राजा एवमाह—'अम्भो पुरिस, पमादवताय न कल्याणमकासि कायेन वाचाय मनसा। तग्घ त्वं, अम्भो पुरिस, तथा करिस्सन्ति यथा तं पमत्तं। तं खो पन ते एतं पापकम्मं नेव मातरा कतं न

उठाये-बैठाये जाते हुए नहीं देखा ?...मैं भी कभी इसी तरह रोगी हो सकता हूँ...। फल भी तुझे ही भोगना पड़ेगा।

५. तब यमराज ने...चतुर्थ देवदूत को...। नहीं देखा, भन्ते !...किसी अपराधी चोर पुरुष को पकड़ कर उसे राजाओं द्वारा तरह-तरह की दण्डयातना देते हुए,

पितरा कतं न भातरा कतं न भगिनिया कतं न मित्तामच्चेहि कतं न ञातिसालोहितेहि कतं न समणब्राह्मणेहि कतं न देवताहि कतं; तयावेतं पापकम्मं कतं, त्वञ्ञेवेतस्स विपाकं पटिसंवेदिस्ससी' ति। (४)

६. "तमेनं, भिक्खवे, यमो राजा चतुत्थं देवदूतं समनुयुञ्जित्वा समनुगाहित्वा समनुभासित्वा पञ्चमं देवदूतं समनुयुञ्जति समनुगाहति समनुभासति--'अम्भो पुरिस, न त्वं अद्दस मनुस्सेसु पञ्चम देवदूतं पातुभूतं' ति ?

"सो एवमाह--'नाद्दसं, भन्ते' ति।

"तमेनं, भिक्खवे, यमो राजा एवमाह--'अम्भो पुरिस, न त्वं अद्दस मनुस्सेसु इत्थिं वा पुरिसं वा एकाहमतं वा द्वीहमतं वा तीहमतं वा उद्धुमातकं विनीलकं विपुब्बकजातं' ति ? सो एवमाह--'अद्दसं, भन्ते' ति।

[B. 221] "तमेनं, भिक्खवे, यमो राजा एवमाह--'अम्भो पुरिस, तस्स ते विञ्ञुस्स सतो महल्लकस्स न एतदहोसि--अहं पि खोम्हि मरणधम्मो, मरणं अनतीतो। हन्दाहं कल्याणं करोमि कायेन वाचाय मनसा' ति ? सो एवमाह--'नासक्खिस्सं, भन्ते, पमादस्सं, भन्ते' ति।

"तमेनं, भिक्खवे, यमो राजा एवमाह--'अम्भो पुरिस, पमादवताय न कल्याणमकासि कायेन वाचाय मनसा। तग्घ त्वं, अम्भो पुरिस, तथा करिस्सन्ति यथा तं पमत्तं। तं खो पन ते एतं पापकम्मं नेव मातरा कतं न पितरा कतं न भातरा कतं न भगिनिया कतं न मित्तामच्चेहि कतं न ञातिसालोहितेहि कतं न समणाब्राह्मणेहि कतं न देवताहि कतं; तयावेतं पापकम्मं कतं, त्वञ्ञेवेतस्स विपाकं पटिसंवेदिस्ससी' ति। (५)

२. पञ्चविधबन्धनं नाम कम्मकारणं

[N. 255] ७. "तमेनं, भिक्खवे, यमो राजा पञ्चमं देवदूतं समनु-

जैसे--कोड़ों से पीटते हुए "पूर्ववत्[1] "तलवार से सिर कटवाते हुए"। तुझे ही इसका फल भोगना पड़ेगा।

६. तब यमराज ने"'पञ्चम देवदूत को "। 'नहीं देखा, भन्ते !'"'किसी स्त्री या पुरुष को एक दिन दो दिन या तीन दिन पहले मरे हुए को, जो कि सड़ गया हो, नीला पड़ गया हो, जिसमें कीड़े पड़ गये हों"'तुझे ही इसका फल भोगना पड़ेगा !'

पञ्चविधबन्धन नामक दण्ड

७. "भिक्षुओ ! यमराज उस पुरुष को पञ्चम देवपुत्र के विषय में बता कर चुप

---

१. द्र०—पीछे पृ० १८१-१८२ (महादुक्खक्खन्धसुत्त)।

युञ्जित्वा समनुगाहित्वा समनुभासित्वा तुण्ही होति। तमेनं, भिक्खवे, निरयपाला पञ्चविधबन्धनं नाम कम्मकारणं करोन्ति--तत्तं [R. 183] अयोखिलं हत्थे गमेन्ति, तत्तं अयोखिलं दुतिये हत्थे गमेन्ति, तत्तं अयोखिलं पादे गमेन्ति, तत्तं अयोखिलं दुतिये पादे गमेन्ति, तत्तं अयोखिलं मज्झे-उरस्मि गमेन्ति। सो तत्थ दुक्खा तिब्बा खरा कटुका वेदना वेदेति, न च ताव कालं करोति याव न तं पापकम्मं ब्यन्तीहोति। तमेनं, भिक्खवे, निरयपाला संवेसेत्वा कुठारीहि तच्छन्ति...पे०...तमेनं, भिक्खवे, निरयपाला उद्धंपादं अधोसिरं गहेत्वा वासीहि तच्छन्ति...पे०...तमेनं, भिक्खवे, निरयपाला रथे योजेत्वा आदित्ताय पथविया सम्पज्जलिताय सजोतिभूताय सारेन्ति पि, पच्चासारेन्ति पि...पे०...तमेनं, भिक्खवे, निरयपाला महन्तं अङ्गारपब्बतं आदित्तं सम्पज्जलितं सजोतिभूतं आरोपेन्ति पि ओरोपेन्ति पि...पे०...तमेनं, भिक्खवे, निरयपाला उद्धंपादं अधोसिरं गहेत्वा तत्ताय लोहकुम्भिया पक्खिपन्ति आदित्ताय सम्पज्जलिताय सजोति-भूताय। सो तत्थ फेणुद्देहकं पच्चति। सो तत्थ फेणुद्देहकं पच्चमानो सकिं पि उद्धं गच्छति, सकिं पि अधो गच्छति, सकिं पि तिरियं गच्छति। सो तत्थ दुक्खा तिब्बा खरा कटुका वेदना वेदेति, न च ताव कालं करोति याव न तं पापकम्मं ब्यन्तीहोति। तमेनं, भिक्खवे, निरयपाला महानिरये पक्खिपन्ति। सो खो पन, भिक्खवे, महानिरयो--

'चतुक्कण्णो चतुद्वारो, विभत्तो भागसो मितो। [B. 222]
अयोपाकारपरियन्तो, अयसा पटिकुज्जितो॥
तस्स अयोमया भूमि, जलिता तेजसायुता।
समन्ता योजनसतं, फरित्वा तिट्ठति सब्बदा'॥

८. "तस्स खो पन, भिक्खवे, महानिरयस्स पुरत्थिमाय भित्तिया अच्चि उट्ठहित्वा पच्छिमाय भित्तिया पटिहञ्ञति, पच्छिमाय भित्तिया अच्चि उट्ठहित्वा पुरत्थिमाय भित्तिया पटिहञ्ञति, [N. 256, R. 184]

हो गये। तब, भिक्षुओ ! वे नरकपाल उस पुरुष को पञ्चविधबन्धन नामक दण्ड देना प्रारम्भ करते हैं—(१) उसके एक हाथ में गरम लोहे की कील ठोकते हैं... पूर्ववत्...। (२) उसे...बैठा कर कुल्हाड़ी से काटते हैं...। (३)...बसूले से छीलते हैं... (४) रथ में बाँधकर...(५) लम्बे-चौड़े अग्नि पर्वत पर चढ़ाते हैं...सौ योजन तक विस्तृत यह महानरक सदा-सर्वदा स्थित रहता है।

८. "भिक्षुओ ! उस महानरक की पूर्वी दीवार से उठी लपटें पश्चिमी दीवार से टकराती हैं, और पश्चिमी दीवार से उठी लपटें पूर्वी द्वार से टकराती हैं; इसी तरह

उत्तराय भित्तिया अच्चि उट्ठहित्वा दक्खिणाय भित्तिया पटिहञ्ञति, दक्खिणाय भित्तिया अच्चि उट्ठहित्वा उत्तराय भित्तिया पटिहञ्ञति, हेट्ठा अच्चि उट्ठहित्वा उपरि पटिहञ्ञति, उपरितो अच्चि उट्ठहित्वा हेट्ठा पटिहञ्ञति। सो तत्थ दुक्खा तिब्बा खरा कटुका वेदना वेदेति, न च ताव कालं करोति याव न तं पापकम्मं ब्यन्तीहोति।

"होति खो सो, भिक्खवे, समयो यं कदाचि करहचि दीघस्स अद्धुनो अच्चयेन तस्स महानिरयस्स पुरत्थिमं द्वारं अपापुरीयति। सो तत्थ सीघेन जवेन धावति। तस्स सीघेन जवेन धावतो छविं पि डय्हति, चम्मं पि डय्हति, मंसं पि डय्हति, न्हारुं पि डय्हति, अट्ठीनि पि सम्पधूपायन्ति, उब्भतं तादिसमेव होति। यतो च खो सो, भिक्खवे, बहुसम्पत्तो होति, अथ तं द्वारं पिधीयति। सो तत्थ दुक्खा तिब्बा खरा कटुका वेदना वेदेति, न च ताव कालं करोति याव न तं पापकम्मं ब्यन्तीहोति।

"होति खो सो, भिक्खवे, समयो यं कदाचि करहचि दीघस्स अद्धुनो अच्चयेन तस्स महानिरयस्स पच्छिमं द्वारं अपापुरीयति···पे०···उत्तरं द्वारं अपापुरीयति···पे०···दक्खिणं द्वारं अपापुरीयति। सो तत्थ सीघेन जवेन धावति। तस्स सीघेन जवेन धावतो छविं पि डय्हति, चम्मं पि डय्हति, मंसं पि डय्हति, न्हारुं पि डय्हति, अट्ठीनि पि सम्पधूपायन्ति, उब्भतं तादिसमेव होति। यतो च खो सो, भिक्खवे, बहुसम्पत्तो होति, अथ तं द्वारं पिधीयति। सो तत्थ दुक्खा तिब्बा खरा कटुका वेदना वेदेति, न च ताव कालं करोति याव न तं पापकम्मं ब्यन्तीहोति।

उत्तरी दीवार से उठी लपटें दक्षिणी दीवार से टकराती हैं और दक्षिणी दीवार से उठी लपटें उत्तरी दीवार से टकराती है···ऊपर···नीचे से उठी लपटें ऊपर की तरफ टकराती हैं। वह वहाँ तीव्र दुःखमय वेदनाएँ अनुभव करता है; किन्तु वह तब तक उस कष्ट से नहीं मरता जब तक कि उसके पापकर्म का अन्त नहीं हो जाता।

"भिक्षुओ! एक समय ऐसा आता है जब कभी किसी समय दीर्घकाल के बाद उस महानिरय (अवीचि) का पूर्व द्वार खुलता है। वह (अपराधी) जल्दी ही उस खुले द्वार की तरफ दौड़ता है। परन्तु यों शीघ्र दौड़ते समय, उसकी त्वचा की आभा झुलस जाती है, त्वचा भी, मांस भी, स्नायु भी···हड्डियाँ धुधुआँने लगती हैं। यों वह चिरकाल तक ऐसा ही कष्ट पाता रहता है। जब उसे वहाँ पहुँचे हुए बहुत समय बीत जाता है तब वह द्वार बन्द हो जाता है। वह वहाँ तब तक दुःखमय तीव्र···पापकर्म का अन्त नहीं हो जाता।

"भिक्षुओ! एक समय···पश्चिम द्वार···उत्तर द्वार···दक्षिण द्वार···।

"होति खो सो, भिक्खवे, समयो यं कदाचि करहचि [B. 223] दीघस्स अद्धुनो अच्चयेन तस्स महानिरयस्स पुरत्थिमं द्वारं अपापुरीयति। सो तत्थ सीघेन जवेन धावति । तस्स सीघेन जवेन धावतो छविं पि डय्हति, चम्मं पि डय्हति, मंसं पि डय्हति, न्हारुं पि डय्हति, अट्ठीनि पि सम्पधूपायन्ति, उब्भतं तादिसमेव होति । सो तेन द्वारेन निक्खमति ।

९. "तस्स खो पन, भिक्खवे, महानिरयस्स [N. 257, R. 185] समनन्तरा सहितमेव महन्तो गूथनिरयो । सो तत्थ पतति । तस्मिं खो पन, भिक्खवे, गूथनिरये सूचिमुखा पाणा छविं छिन्दन्ति, छविं छेत्वा चम्मं छिन्दन्ति, चम्मं छेत्वा मंसं छिन्दन्ति, मंसं छेत्वा न्हारुं छिन्दन्ति, न्हारुं छेत्वा अट्ठिं छिन्दन्ति, अट्ठिं छेत्वा अट्ठिमिञ्जं खादन्ति । सो तत्थ दुक्खा तिब्बा खरा कटुका वेदना वेदेति, न च ताव कालं करोति याव न तं पापकम्मं ब्यन्तीहोति ।

"तस्स खो पन, भिक्खवे, गूथनिरयस्स समनन्तरा सहितमेव महन्तो कुक्कुळनिरयो । सो तत्थ पतति । सो तत्थ दुक्खा तिब्बा खरा कटुका वेदना वेदेति, न च ताव कालं करोति याव न तं पापकम्मं ब्यन्तीहोति ।

"तस्स खो पन, भिक्खवे, कुक्कुलनिरयस्स समनन्तरा सहितमेव महन्तं सिम्बलिवनं उद्धं योजनमुग्गतं सोळसङ्गुलकण्टकं आदित्तं सम्पज्जलितं सजोतिभूतं तं तत्थ आरोपेन्ति पि ओरोपेन्ति पि। सो तत्थ दुक्खा तिब्बा खरा कटुका वेदना वेदेति, न च ताव कालं करोति याव न तं पापकम्मं ब्यन्तीहोति ।

"भिक्षुओ ! एक समय ऐसा भी आता है जब कभी उस महानिरय का पूर्व-द्वार खुलता है···हड्डियाँ धुधुआँने लगती हैं। ऐसे ही वह वहाँ···रहता है। तब वह उस द्वार से निकलता है।

९. "उस महानिरय के साथ लगा हुआ एक महान् गूथनिरय (बिष्ठा से भरा हुआ नरक) होता है वह वहाँ गिरता है। भिक्षुओ ! उस गूथनिरय के सूचीमुख (सूई की तरह तेज नोंक वाले) प्राणी उसकी छवि को छेदने लगते हैं, छवि को छेदते-छेदते त्वचा को, मांस को, स्नायु को, अस्थि को, अस्थिमज्जा को छेदने लगते हैं। उससे वह वहाँ दुःखमय···उसके पापों का अन्त न हो जाय।

भिक्षुओ ! उस गूथनिरय के पास ही लगा हुआ कुक्कुट-निरय (गरम राख वाला नरक) होता है, वह उसमें गिरता है···।

"भिक्षुओ ! उस कुक्कुटनिरय के साथ ही लगा हुआ महान् सिम्बलिवन होता है। जो ऊपर की ओर योजनभर उठा हुआ होता है। उसके सोलह-सोलह

"तस्स खो पन, भिक्खवे, सिम्बलिवनस्स समनन्तरा सहितमेव महन्तं असिपत्तवनं। सो तत्थ पविसति। तस्स वातेरितानि पत्तानि पतितानि हत्थं पि छिन्दन्ति, पादं पि छिन्दन्ति, हत्थपादं पि छिन्दन्ति, कण्णं पि छिन्दन्ति, नासं पि छिन्दन्ति, कण्णनासं पि छिन्दन्ति। सो तत्थ दुक्खा तिब्बा खरा कटुका वेदना वेदेति, न च ताव कालं करोति याव न तं पापकम्मं ब्यन्तीहोति।

"तस्स खो पन, भिक्खवे, असिपत्तवनस्स समनन्तरा सहितमेव महती खारोदका नदी। सो तत्थ पतति। सो तत्थ अनुसोतं पि वुय्हति, पटिसोतं पि [B. 224] वुय्हति, अनुसोतपटिसोतं पि वुय्हति। सो तत्थ दुक्खा तिब्बा खरा कटुका वेदना वेदेति, न च ताव कालं करोति याव न तं पापकम्मं ब्यन्तीहोति।

[N. 258, R. 186] १०. "तमेनं, भिक्खवे, निरयपाला बळिसेन उद्धरित्वा थले पतिट्ठापेत्वा एवमाहंसु—'अम्भो पुरिस, किं इच्छसी' ति? सो एवमाह—'जिघच्छितोस्मि, भन्ते' ति। तमेनं, भिक्खवे, निरयपाला तत्तेन अयोसङ्कुना मुखं विवरित्वा आदित्तेन सम्पज्जलितेन सजोतिभूतेन तत्तं लोहगुळं मुखे पक्खिपन्ति आदित्तं सम्पज्जलितं सजोतिभूतं। सो तस्स ओट्ठं पि दहति, मुखं पि दहति, कण्ठं पि दहति, उरं पि दहति, अन्तं पि अन्तगुणं पि आदाय अधोभागा निक्खमति। सो तत्थ दुक्खा तिब्बा खरा

अंगुल के तीखे काँटे होते हैं जो कि अग्नि से तपते-धधकते रहते हैं। उन पर वह चढाया उतराया जाता है। वह वहाँ दुःखमय...।

"भिक्षुओ! उस सिम्बलिवन के साथ ही लगा हुआ असिपत्र-वन होता है। वह उसमें प्रविष्ट कराया जाता है। वहाँ, तीव्र हवा के कारण, गिरते हुए पत्ते उसके हाथ भी, पैर भी, हाथ-पैर भी, कान भी, नाक भी, कान-नाक दोनों भी काटते रहते हैं। वह वहाँ दुःखमय...।

"भिक्षुओ! उस असिपत्र के वन के साथ लगी खारे पानी वाली एक बड़ी नदी होती है। वह कभी उसमें गिराया जाता है। वह वहाँ बहाव के अनुकूल या प्रतिकूल बहाया जाता है। उससे उसे वहाँ दुःखमय...।...जब तक पापकर्मों का अन्त न हो जाय।

१०. भिक्षुओ! तब वे निरयपाल उस पापी अपराधी को लम्बी सँड़सी से खींच-कर जमीन पर बैठा कर यों पूछते हैं—'अरे पुरुष! अब तुम्हारी क्या इच्छा है? वह कहता है—'भन्ते! खाने की इच्छा है।' भिक्षुओ! तब वे नरकपाल गरम छड़ से उसका मुँह फाड़कर, प्रज्वलित व दहकता अंगारा बने गोलक को उसके मुँह में डालते हैं। वह उसके ओठ, मुँह, कण्ठ, छाती, बड़ी आँतें व छोटी आँतें जलाता

कटुका वेदना वेदेति, न च ताव कालं करोति याव न तं पापकम्मं ब्यन्तीहोति।

"तमेनं, भिक्खवे, निरयपाला एवमाहंसु--'अम्भो पुरिस, किं इच्छसी' ति ? सो एवमाह—'पिपासितोस्मि, भन्ते' ति। तमेनं, भिक्खवे, निरयपाला तत्तेन अयोसङ्कुना मुखं विवरित्वा आदित्तेन सम्पज्जलितेन सजोतिभूतेन तत्तं तम्बलोहं मुखे आसिञ्चन्ति आदित्तं सम्पज्जलितं सजोतिभूतं। तं तस्स ओट्ठं पि दहति, मुखं पि दहति, कण्ठं पि दहति, उरं पि दहति, अन्तं पि अन्तगुणं पि आदाय अधोभागा निक्खमति। सो तत्थ दुक्खा तिब्बा खरा कटुका वेदना वेदेति, न च ताव कालं करोति, याव न तं पापकम्मं ब्यन्तीहोति। तमेनं, भिक्खवे, निरयपाला पुन महानिरये पक्खिपन्ति।

"भूतपुब्बं, भिक्खवे, यमस्स रञ्ञो एतदहोसि—'ये किर, भो, लोके पापकानि अकुसलानि कम्मानि करोन्ति ते एवरूपा विविधा कम्मकारणा करीयन्ति। अहो वताहं मनुस्सत्तं लभेय्यं। तथागतो च लोके उप्पज्जेय्य अरहं सम्मासम्बुद्धो। तं चाहं भगवन्तं पयिरुपासेय्यं। सो च मे भगवा धम्मं देसेय्य। तस्स चाहं भगवतो धम्मं आजानेय्यं' ति। तं खो पनाहं, भिक्खवे, नाञ्ञस्स समणस्स वा ब्राह्मणस्स वा सुत्वा वदामि, अपि च यदेव सामं ञातं सामं दिट्ठं सामं विदितं तदेवाहं वदामी" ति।

हुआ अधोभाग (गुदा मार्ग) से निकल जाता है। उससे उसको तीव्र दुःखमय··· जब तक उसके पापकर्म का अन्त न हो जाय।

"फिर, भिक्षुओ ! वे नरकपाल उससे यों पूछते हैं—'अब तुम्हारी क्या इच्छा है ?' तब वह कहता है—'मुझे बहुत तेज प्यास लगी है, भन्ते !' तब वे निरयपाल लोहे के छड़ से उसका मुँह खोल कर तप कर पिघला हुआ ताम्बा उसके मुँह में डालते हैं। वह गरम ताम्बा उसके ओठ, मुँह···पापकर्म का अन्त न हो जाय। भिक्षुओ ! बाद में उसे ये नरकपाल पुनः महानरक (अवीचि) में फेंक देते हैं।

"भिक्षुओ ! पूर्वकाल में यमराज के मन में यह विचार आया—'लोक में जो पापकर्म करते हैं वे इस (उपर्युक्त) प्रकार की यातनाएँ पाते हैं। क्या ही अच्छा हो, यदि मैं कभी मनुष्य योनि में जाऊँ, और उसी समय लोक में सम्यक्सम्बुद्ध भी अवतरित हों तो मैं उन भगवान् का पर्युपासन (=सत्सङ्ग) करूँ। वे मुझे धर्मोपदेश करें। मैं उस धर्म को समझूँ'। भिक्षुओ ! यह सब मैं किसी अन्य श्रमण-ब्राह्मण से सुनी-सुनायी बात नहीं कह रहा हूँ अपि तु मुझको जो स्वयं ज्ञात, विदित, दृष्ट है, वही कह रहा हूँ।"

[B. 225, R. 187] ११. इदमवोच भगवा। इदं वत्वान सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था--

[N. 259] "चोदिता देवदूतेहि, ये पमज्जन्ति माणवा।
ते दीघरत्तं सोचन्ति, हीनकायूपगा नरा॥
"ये च खो देवदूतेहि, सन्तो सप्पुरिसा इध।
चोदिता नप्पमज्जन्ति, अरियधम्मे कुदाचनं॥
"उपादाने भयं दिस्वा, जातिमरणसम्भवे।
अनुपादा विमुच्चन्ति, जातिमरणसङ्खये॥
"ते खेमप्पत्ता सुखिनो, दिट्ठधम्माभिनिब्बुता।
सब्बवेरभयातीता, सब्बदुक्खं उपच्चगुं" ति॥

सुञ्ञतवग्गो निट्ठितो ततियो।

तस्सुद्दानं

द्विधा व सुञ्ञता होति, अब्भुतधम्मबाकुलं।
अचिरवतभूमिजनामो, अनुरुद्धुपक्किलेसं।
बालपण्डितो देवदूतं च ते दसा ति॥

---

११. स्पष्टभाषी भगवान् शास्ता ने ऐसा कहने के बाद ऐसा भी कहा—

"देवदूतों द्वारा समझाये जाने पर भी जो लोग प्रमाद करते हैं वे लोग नीच योनि में पहुँच कर दीर्घकाल तक शोकमग्न रहते हैं॥

"और जो सज्जन देवदूतों द्वारा प्रेरणा प्राप्त कर, इस लोक में आकर उच्च-कुल में जन्म लेते हैं वे आर्यधर्म के आचरण में कभी प्रमाद नहीं करते॥

'वे उपादान (ग्रहण) में जन्म-मरण रूपी भवसागर में भय मानते हुए जन्म-मरण के क्षय से उपादानरहित हो विमुक्त हो जाते हैं॥

"ऐसे लोग क्षेम को प्राप्त हो, सुखमय जीवन बिताते, इसी जन्म में निर्वाण तक पहुँच कर सभी प्रकार के वैर एवं भय को अतिक्रान्त कर सभी दुःखों को पार कर जाते हैं॥"

देवदूत सुत्त समाप्त॥

(उपरिपञ्चाशतक में) तृतीय शून्यतावर्ग समाप्त॥

उसका उदान

इस वर्ग में दश सूत्रों का वर्णन है, जैसे—१. महाशून्यता, २. क्षुद्रशून्यता, ३. अद्भुतधर्म, ४. बाकुल, ५. अचिरवत, ६. भूमिज, ७. अनुरुद्ध, ८. उपक्लेश, ९. बालपण्डित एवं १०. देवदूत सूत्र॥

३१. भद्देकरत्तसुत्तं

१. भद्देकरत्तस्स उद्देसो

[N. 260, B. 226] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—"भद्देकरत्तस्स वो, भिक्खवे, उद्देसं च विभङ्गं च देसिस्सामि। तं सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; भासिस्सामी" ति।

"एवं, भन्ते" ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

"अतीतं नान्वागमेय्य, नप्पटिकङ्खे अनागतं।
यदतीतं पहीनं तं, अप्पत्तं च अनागतं॥
"पच्चुप्पन्नं च यो धम्मं, तत्थ तत्थ विपस्सति।
असंहीरं असङ्कुप्पं, तं विद्वा मनुब्रूहये॥
"अज्जेव किच्चमातप्पं, को जञ्ञा मरणं सुवे।
न हि नो सङ्गरं तेन, महासेनेन मच्चुना॥
"एवंविहारिं आतापिं, अहोरत्तमतन्दितं।
तं वे भद्देकरत्तो ति, सन्तो आचिक्खते मुनि॥

---

३१. भद्रैकरक्तसूत्र

१. भद्रैकरक्त का उद्देश (नामकीर्तन)

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती में··· विराजमान थे।···भगवान् यों बोले—

"भिक्षुओ! मैं तुम्हें एकमात्र शुभ में अनुरक्त का नाम-कथन (उद्देश) विभाजन (विभङ्ग) करके बताता हूँ। उसे सुनो और मन में अच्छी तरह धारण करो।"

"अच्छा, भन्ते!" कह कर भिक्षुओं ने भगवान् की आज्ञा स्वीकार की। भगवान् ने कहा—

"साधक अतीत का व्यर्थ चिन्तन न करे, न भविष्य की चिन्ता में ही फँसे। क्योंकि जिसे 'अतीत' कहते हो वह तो नष्ट हो गया, और 'भविष्यत्' अभी आया ही नहीं (उसकी चिन्ता क्या करनी!)॥

"वर्तमान में जो कुछ बीत रहा है उसी को यथाप्रसङ्ग देखना चाहिये। जो कुछ असंहारी व न टलने वाला है, विद्वान् को उसे ही बढ़ाना चाहिये॥

"क्या पता हमारा कब मरण हो जाय, अतः अभी (आज से) ही शुभ कर्मों में लग जाना चाहिये! उस महती सेना वाले मृत्युराज से युद्ध में हम अकिञ्चनों की क्या प्रतिद्वन्द्विता!

२. भद्देकरत्तस्स विभङ्गो

[R. 188] २. "कथं च, भिक्खवे, अतीतं अन्वागमेति ? 'एवंरूपो अहोसिं अतीतमद्धानं' ति तत्थ नन्दिं समन्वानेति, 'एवंवेदनो अहोसिं अतीतमद्धानं' ति तत्थ नन्दिं समन्वानेति, 'एवंसञ्ञो अहोसिं अतीतमद्धानं' ति तत्थ नन्दिं समन्वानेति, 'एवंसङ्खारो अहोसिं अतीतमद्धानं' ति तत्थ नन्दिं समन्वानेति, 'एवंविञ्ञाणो अहोसिं अतीतमद्धानं' ति तत्थ नन्दिं [N. 261] समन्वानेति—एवं खो, भिक्खवे, अतीतं अन्वागमेति ।

"कथं च भिक्खवे, अतीतं नान्वागमेति ? 'एवंरूपो अहोसिं अतीतमद्धानं' ति तत्थ नन्दिं न समन्वानेति, 'एवंवेदनो अहोसिं अतीतमद्धानं' ति तत्थ नन्दिं न समन्वानेति, 'एवंसञ्ञो अहोसिं अतीतमद्धानं' ति तत्थ [B. 227] नन्दिं न समन्वानेति, 'एवंसङ्खारो अहोसिं अतीतमद्धानं' ति तत्थ नन्दिं न समन्वानेति, 'एवंविञ्ञाणो अहोसिं अतीतमद्धानं' ति तत्थ नन्दिं न समन्वानेति—एवं खो, भिक्खवे, अतीतं नान्वागमेति ।

३. "कथं च, भिक्खवे, अनागतं पटिकङ्खति ? 'एवंरूपो सियं अनागतमद्धानं' ति एत्थ नन्दिं समन्वानेति, एवंवेदनो सियं···पे०···एवंसञ्ञो सियं···एवंसङ्खारो सियं···एवंविञ्ञाणो सियं अनागतमद्धानं ति तत्थ नन्दिं समन्वानेति—एवं खो, भिक्खवे, अनागतं पटिकङ्खति ।

"अतः दिन-रात आलस्यरहित उद्योगी साधक को ही मुनिजन 'भद्रैकरक्त' कहते हैं ।

२. भद्रैकरक्त गाथाओं का व्याख्यान

२. "कैसे, भिक्षुओ ! अतीत का अन्वागमन (चिन्तन) होता है ! 'मैं पहले ऐसे रूप वाला था'—ऐसा सोचकर उसमें राग (नन्दी) लाता है,···वेदना वाला··· संज्ञा वाला···संस्कार वाला···विज्ञान वाला था—ऐसा सोचकर उसमें राग करता है । यों, भिक्षुओ ! अतीत का अन्वागमन कहलाता है ।

"और, भिक्षुओ ! अतीत का अचिन्तन (अनन्वागमन) कैसे होता है ! 'मैं पहले ऐसा था'—ऐसा सोच कर भी उसमें राग नहीं करता,···वेदना···संज्ञा··· संस्कार वाला था—ऐसा सोच कर भी उसमें राग नहीं करता । भिक्षुओ ! यह अतीत का अचिन्तन है ।

३. "कैसे, भिक्षुओ ! भविष्यत् का चिन्तन होता है ! 'मैं आगे ऐसे रूपवाला होऊँगा'—ऐसा सोच कर उसमें राग करता है···वेदनावाला···संज्ञावाला··· संस्कारवाला···विज्ञानवाला होऊँगा'—यह सोच-सोचकर उसमें राग करता है । यही, भिक्षुओ ! अनागत (भविष्यत्) का चिन्तन है ।

"कथं च, भिक्खवे, अनागतं नप्पटिकङ्खति? 'एवंरूपो सियं अनागतमद्धानं' ति तत्थ नन्दिं न समन्वानेति, एवंवेदनो सियं…एवंसञ्ञो सियं… एवंसङ्खारो सियं…'एवंविञ्ञाणो सियं अनागतमद्धानं' ति तत्थ नन्दिं न समन्वानेति—एवं खो, भिक्खवे, अनागतं नप्पटिकङ्खति।

४. "कथं च, भिक्खवे, पच्चुप्पन्नेसु धम्मेसु संहीरति? इध, भिक्खवे, अस्सुतवा पुथुज्जनो अरियानं अदस्सावी अरियधम्मस्स अकोविदो अरियधम्मे अविनीतो सप्पुरिसानं अदस्सावी सप्पुरिसधम्मस्स अकोविदो सप्पुरिसधम्मे अविनीतो रूपं अत्ततो समनुपस्सति, रूपवन्तं वा अत्तानं, अत्तनि वा रूपं, रूपस्मिं वा अत्तानं; वेदनं…पे०…सञ्ञं…सङ्खारे…विञ्ञाणं अत्ततो समनुपस्सति, विञ्ञाणवन्तं वा अत्तानं, अत्तनि वा [R. 189] विञ्ञाणं, विञ्ञाणस्मिं वा अत्तानं--एवं खो, भिक्खवे, पच्चुप्पन्नेसु धम्मेसु संहीरति।

"कथं च, भिक्खवे, पच्चुप्पन्नेसु धम्मेसु न संहीरति? इध, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको अरियानं दस्सावी अरियधम्मस्स कोविदो अरियधम्मे सुविनीतो सप्पुरिसानं दस्सावी सप्पुरिसधम्मस्स कोविदो सप्पुरिसधम्मे सुविनीतो न रूपं अत्ततो समनुपस्सति. न रूपवन्तं वा अत्तानं, न अत्तनि वा रूपं, न रूपस्मिं वा अत्तानं; न वेदनं…न सञ्ञं…न [N. 262] सङ्खारे…न विञ्ञाणं अत्ततो समनुपस्सति, न विञ्ञाणवन्तं वा अत्तानं, न अत्तनि वा विञ्ञाणं, न विञ्ञाणस्मिं वा अत्तानं--एवं खो, भिक्खवे, पच्चुप्पन्नेसु धम्मेसु न संहीरति।

"कैसे, भिक्षुओ! अनागत का चिन्तन नहीं कहलाता? 'मैं आगे ऐसे रूपवाला होऊँगा'—ऐसा सोचकर भी उसमें राग नहीं करता।…विज्ञानवाला…राग नहीं करता।

४. "कैसे, भिक्षुओ! वर्तमान धर्मों में आसक्त होता है? यहाँ भिक्षुओ! कोई अश्रुतवान् पृथग्जन…पूर्ववत्[1]…रूप को आत्मा मानता है, आत्मा को रूपवान् मानता है, आत्मा में रूप मानता है, या रूप में आत्मा मानता है…वेदना को… संज्ञा को…संस्कार को…विज्ञान में आत्मा को मानता है। यों भिक्षुओ! वह पृथग्जन वर्तमान धर्मों में आसक्त होता है।

"और कैसे, भिक्षुओ! कोई पुरुष वर्तमान धर्मों में आसक्त नहीं होता! यहाँ,

---

१. द्र०—पीछे पृ० ४ (मूलपरियायसुत्त)।

"अतीतं नान्वागमेय्य, नप्पटिकङ्खे अनागतं ।
यदतीत पहीनं त, अप्पत्तं च अनागत ॥
[B. 228] "पच्चुप्पन्नं च यो धम्मं, तत्थ तत्थ विपस्सति ।
असंहीरं असङ्कुप्पं, तं विद्वा मनुब्रूहये ॥
"अज्जेव किच्चमातप्पं, को जञ्ञा मरणं सुवे ।
न हि नो सङ्गरं तेन, महासेनेन मच्चुना ॥
"एवंविहारिं आतापिं, अहोरत्तमतन्दितं ।
तं वे भद्देकरत्तो ति, सन्तो आचिक्खते मुनी ति ॥

" 'भद्देकरत्तस्स वो, भिक्खवे, उद्देसं च विभङ्गं च देसेस्सामी' ति--इति यं तं वुत्तं इदमेत पटिच्च वुत्तं" ति ।

५. इदमवोच भगवा । अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति ।

भिक्षुओ ! कोई श्रुतवान् आर्यश्रावक···पूर्ववत्···न रूप को आत्मा मानता है···न विज्ञान में आत्मा को मानता है—यों भिक्षुओ ! वह श्रुतवान् आर्यश्रावक वर्तमान धर्मों में आसक्त (अनुरक्त) नहीं होता ।

"इसी भाव से मैंने उपर्युक्त—'साधक अतीत का चिन्तन न करे···शान्त मुनिजन भद्रैकरक्त कहते हैं'--ये चारों गाथायें कही हैं ।

"और भिक्षुओ ! मैंने जो 'मैं तुम्हें भद्रैकरक्त का उद्देश और विभाजन बताऊँगा'—कहा था वह इसी भाव (तात्पर्य) से कहा था ।"

५. भगवान् ने यह उपदेश किया । आत्तमनस्क भिक्षुओं ने भगवान् के भाषण का अभिनन्दन किया ॥

भद्देकरत्तसुत्त समाप्त ॥

३२. आनन्दभद्देकरत्तसुत्तं

१. भगवता अनुञ्ञातो आनन्दो

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति [N. 263] जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तेन खो पन समयेन आयस्मा आनन्दो उपट्ठानसालायं भिक्खूनं धम्मिया कथाय सन्दस्सेति समादपेति समुत्तेजेति सम्पहंसेति, भद्देकरत्तस्स उद्देसं च विभङ्गं च भासति। [R. 190]

अथ खो भगवा सायन्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो येनुपट्ठानसाला तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। निसज्ज खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"को नु खो, भिक्खवे, उपट्ठानसालायं भिक्खूनं धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि समादपेसि समुत्तेजेसि सम्पहंसेसि, भद्देकरत्तस्स उद्देसं च विभङ्गं च अभासी" ति ?

"आयस्मा, भन्ते, आनन्दो उपट्ठानसालायं भिक्खूनं धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि समादपेसि समुत्तेजेसि सम्पहंसेसि, भद्देकरत्तस्स उद्देसं च विभङ्गं च अभासी" ति।

अथ खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—"यथा कथं पन त्वं, आनन्द, भिक्खूनं धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि समादपेसि समुत्तेजेसि सम्पहंसेसि, भद्देकरत्तस्स उद्देसं च विभङ्गं च अभासी" ति ? [B. 229]

२. आनन्देन ब्याकतं भद्देकरत्तं

२. "एवं खो अहं, भन्ते, भिक्खूनं धम्मिया कथाय सन्देस्सेसिं समादपेसिं समुत्तेजेसिं सम्पहंसेसिं, भद्देकरत्तस्स उद्देसं च विभङ्गं च अभासिं—

---

३२. आनन्दभद्रेकरक्तसूत्र

१. भगवान् द्वारा आनन्दकृत धार्मिक कथा का अनुमोदन

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् श्रावस्ती में...विराजमान थे। उस समय आयुष्मान् आनन्द ने उपस्थानशाला (पंचायती घर) में भिक्षुओं को धार्मिक कथा से सन्दृष्ट, समादपित, समुत्तेजित एवं सम्प्रहृष्ट किया और भद्रैकरक्त का उद्देश एवं विभाजन समझाया।

भगवान् भी सायङ्काल ध्यानभावना से निवृत्त हो उपस्थानशाला में पधारे और बिछे आसन पर विराजमान हुए। विराज कर भिक्षुओं को बुला कर पूछने लगे—"भिक्षुओ ! आज उपस्थानशाला में भिक्षुओं को किसने धार्मिक कथा...एवं भद्रैकरक्त का उद्देश एवं विभाजन समझाया ?"

"भन्ते ! आयुष्मान् आनन्द ने...समझाया।"

तब भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द को बुला कर पूछा—"आनन्द ! तुमने कैसे...विभाजन समझाया ?"

'अतीतं नान्वागमेय्य, नप्पटिकङ्खे अनागतं।
यदतीतं पहीनं तं, अप्पत्तं च अनागतं॥
[N. 264] 'पच्चुप्पन्नं च यो धम्मं, तत्थ तत्थ विपस्सति।
असंहीरं असङ्कुप्पं, तं विद्वा मनुब्रूहये॥
'अज्जेव किच्चमातप्पं, को जञ्ञा मरणं सुवे।
न हि नो सङ्गरं तेन, महासेनेन मच्चुना॥
'एवंविहारिं आतापिं, अहोरत्तमतन्दितं।
तं वे भद्देकरत्तो ति, सन्तो आचिक्खते मुनि॥

३. 'कथं च, आवुसो, अतीतं अन्वागमेति ? एवंरूपो अहोसिं अतीतमद्धानं ति तत्थ नन्दिं समन्वानेति, एवंसञ्ञो अहोसिं अतीतमद्धानं ति तत्थ नन्दिं समन्वानेति, एवंसञ्ञो अहोसिं अतीतमद्धानं ति तत्थ नन्दिं समन्वानेति, एवंसङ्खारो अहोसिं अतीतमद्धानं ति तत्थ नन्दिं समन्वानेति, एवंविञ्ञाणो अहोसिं अतीतमद्धानं ति तत्थ नन्दिं समन्वानेति—एवं खो, आवुसो, अतीतं अन्वागमेति।

'कथं च, आवुसो, अतीतं नान्वागमेति ? एवंरूपो अहोसिं अतीतमद्धानं ति तत्थ नन्दिं न समन्वानेति, एववेदनो अहोसिं अतीतमद्धानं ति तत्थ नन्दिं न समन्वानेति, एवंसञ्ञो अहोसिं अतीतमद्धानं ति तत्थ नन्दिं न समन्वानेति, एवंसङ्खारो अहोसिं अतीतमद्धानं ति तत्थ नन्दिं न समन्वानेति, एवंविञ्ञाणो अहोसिं अतीतमद्धानं ति तत्थ नन्दिं न समन्वानेति–एवं खो, आवुसो, अतीतं नान्वागमेति। (१)

'कथं च, आवुसो, अनागतं पटिकङ्खति ? एवंरूपो सियं अनागतमद्धानं ति तत्थ नन्दिं समन्वानेति, एवंवेदनो सियं…पे०…एवंसञ्ञो सियं…एवं-
[B. 230] सङ्खारो सियं…एवंविञ्ञाणो सियं अनागतमद्धानं ति तत्थ नन्दिं समन्वानेति–एवं खो, आवुसो, अनागतं पटिकङ्खति।

---

२. आनन्द द्वारा व्याख्यात भद्रैकरक्त

२. भन्ते ! मैंने भिक्षुओं को धार्मिक कथा से…सम्प्रहृष्ट करते हुए भद्रैकरक्त का उद्देश एवं विभङ्ग यों समझाया—

"अतीत का अन्वागमन (चिन्तन) नहीं करना चाहिये…पूर्ववत्[1]…शान्त मुनिजन 'भद्रैकरक्त' का व्याख्यान यों करते हैं।

३. "आयुष्मानो ! साधक कैसे अतीत का अन्वागमन करता है ?…पूर्ववत्[1]…।

---

१. द्र०—पीछे पृ० १४०७-१० (भद्देकरत्तसुत्त)।

'कथं च, आवुसो, अनागतं नप्पटिकङ्खति ? एवंरूपो सियं अनागतमद्धानं ति तत्थ नन्दि न समन्वानेति, एवंवेदनो सियं···पे०···एवंसञ्ञो सियं···एवंसङ्खारो सियं···एवंविञ्ञाणो सियं अनागतमद्धानं ति तत्थ नन्दि न समन्वानेति—एवं खो, आवुसो, अनागतं नप्पटिकङ्खति। (२)

'कथं च, आवुसो, पच्चुप्पन्नेसु धम्मेसु संहीरति ? इध, आवुसो, अस्सुतवा पुथुज्जनो अरियानं अदस्सावी अरियधम्मस्स अकोविदो [N. 265] अरियधम्मे अविनीतो सप्पुरिसानं अदस्सावी सप्पुरिसधम्मस्स अकोविदो सप्पुरिसधम्मे अविनीतो रूपं अत्ततो समनुपस्सति, रूपवन्तं वा अत्तानं, अत्तनि वा रूपं, रूपस्मिं वा अत्तानं; वेदनं···सञ्ञं···सङ्खारे···विञ्ञाणं अत्ततो समनुपस्सति, विञ्ञाणवन्तं वा अत्तानं, अत्तनि वा विञ्ञाणं, विञ्ञाणस्मिं वा अत्तानं—एवं खो, आवुसो, पच्चुप्पन्नेसु धम्मेसु संहीरति।

'कथं च, आवुसो, पच्चुप्पन्नेसु धम्मेसु न संहीरति ? इध, आवुसो, सुतवा अरियसावको अरियानं दस्सावी अरियधम्मस्स कोविदो अरियधम्मे सुविनीतो सप्पुरिसानं दस्सावी सप्पुरिसधम्मस्स कोविदो सप्पुरिसधम्मे सुविनीतो न रूपं अत्ततो समनुपस्सति, न रूपवन्तं वा अत्तानं, न अत्तनि वा रूपं, न रूपस्मिं वा अत्तानं; न वेदनं···न सञ्ञं···न सङ्खारे···न विञ्ञाणं अत्ततो समनुपस्सति, न विञ्ञाणवन्तं वा अत्तानं, न अत्तनि वा विञ्ञाणं, न विञ्ञाणस्मिं वा अत्तानं—एवं खो, आवुसो, पच्चुप्पन्नेसु धम्मेसु न संहीरति। (३)

'अतीतं नान्वागमेय्य, नप्पटिकङ्खे अनागतं। [R. 191]
यदतीतं पहीनं तं, अप्पत्तं च अनागतं॥
'पच्चुप्पन्नं च यो धम्मं, तत्थ तत्थ विपस्सति।
असंहीरं असङ्कुप्पं, तं विद्वा मनुब्रूहये॥
'अज्जेव किच्चमातप्पं, को जञ्ञा मरणं सुवे।
न हि नो सङ्गरं तेन, महासेनेन मच्चुना॥
'एवंविहारिं आतापिं, अहोरत्तमतन्दितं।
तं वे भद्देकरत्तो ति, सन्तो आचिक्खते मुनी' ति॥

"एवं खो अहं, भन्ते, भिक्खूनं धम्मिया कथाय सन्दस्सेसिं [B. 231] समादपेसिं समुत्तेजेसिं सम्पहंसेसिं, भद्देकरत्तस्स उद्देसं च विभङ्गं च अभासिं" ति।

"यों, भन्ते ! मैंने भिक्षुओं को···भद्रैकरक्त का उद्देश व विभाजन समझाया।"

३. भगवतो अनुमोदना

४. "साधु, साधु, आनन्द! साधु खो त्वं, आनन्द, भिक्खूनं धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि समादपेसि समुत्तेजेसि सम्पहंसेसि, भद्देककरत्तस्स उद्देसं च विभङ्गं च अभासि--

[N. 266] 'अतीतं नान्वागमेय्य, नप्पटिकङ्खे अनागतं। ...पे०...
तं वे भद्देकरत्तो ति, सन्तो आचिक्खते मुनी' ति॥

"कथं च, आनन्द, अतीतं अन्वागमेति...पे०...एवं खो, आनन्द, अतीतं अन्वागमेति। कथं च, आनन्द, अतीतं नान्वागमेति...पे०...एवं खो, आनन्द, अतीतं नान्वागमेति। कथं च, आनन्द, अनागतं पटिकङ्खति...पे०...एवं खो, आनन्द, अनागतं पटिकङ्खति। कथं च, आनन्द, अनागतं नप्पटिकङ्खति...पे०...एवं; खो, आनन्द, अनागतं नप्पटिकङ्खति। कथं च, आनन्द, पच्चुप्पन्नेसु धम्मेसु संहीरति...पे०...एवं खो, आनन्द, पच्चुप्पन्नेसु धम्मेसु संहीरति। कथं च, आनन्द, पच्चुप्पन्नेसु धम्मेसु न संहीरति...पे०...एवं खो, आनन्द, पच्चुप्पन्नेसु धम्मेसु न संहीरति।

"अतीतं नान्वागमेय्य, नप्पटिकङ्खे अनागतं। ...पे०...
तं वे भद्देकरत्तो ति, सन्तो आचिक्खते मुनी" ति॥

५. इदमवोच भगवा। अत्तमनो आयस्मा आनन्दो भगवतो भासितं अभिनन्दी ति।

⊙

---

३. भगवान् द्वारा आनन्द का अनुमोदन

४. "साधु साधु, आनन्द! तुमने भिक्षुओं को...भद्रैकरक्त का उद्देश्य एवं विभाग ठीक ही समझाया कि—

'साधक को अतीत (बीती बातों) का अन्वागमन नहीं करना चाहिये।...ऐसा शान्त मुनिजन भद्रैकरक्त के विषय में कहते हैं[1]।"

५. भगवान् ने ऐसे (भद्रैकरक्त का) अनुमोदन किया। आत्तमना आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् भाषण का अनुमोदन किया॥

आनन्दभद्देकरत्तसुत्त समाप्त॥

---

१. द्र०—पीछे पृ० १४०७-१४१०।

३३. महाकच्चानभद्देकरत्तसुत्तं

१. भगवतो सङ्खित्तदेसना

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति [N. 267] तपोदारामे। अथ खो आयस्मा समिद्धि रत्तिया पच्चूससमयं [R. 192] येन तपोदो तेनुपसङ्कमि गत्तानि परिसिञ्चितुं। तपोदे गत्तानि [B. 232] परिसिञ्चित्वा पच्चुत्तरित्वा एकचीवरो अट्ठासि गत्तानि पुब्बापयमानो। अथ खो अञ्ञतरा देवता अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं तपोदं ओभासेत्वा येनायस्मा समिद्धि तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठिता खो सा देवता आयस्मन्तं समिद्धि एतदवोच— "धारेसि त्वं, भिक्खु, भद्देकरत्तस्स उद्देसं च विभङ्गं चा" ति ?

"न खो अहं, आवुसो, धारेमि भद्देकरत्तस्स उद्देसं च विभङ्गं च। त्वं पनावुसो, धारेसि भद्देकरत्तस्स उद्देसं च विभङ्गं चा" ति ?

"अहं पि खो, भिक्खु, न धारेमि भद्देकरत्तस्स उद्देसं च विभङ्गं च। धारेसि पन त्वं, भिक्खु, भद्देकरत्तियो गाथा" ति ?

"न खो अहं, आवुसो, धारेमि भद्देकरत्तियो गाथा ति। त्वं पनावुसो, धारेसि भद्देकरत्तियो गाथा" ति ?

---

३३. महाकात्यायनभद्रैकरक्तसूत्र

१. भगवत्कृत संक्षिप्त देशना

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) राजगृह के तपोदाराम[1] में साधना हेतु विराजमान थे। तब आयुष्मान् समिद्धि (समृद्धि) रात्रि के अन्तिक प्रहर में उठ कर स्नान हेतु जहाँ तपोदा था वहाँ गये। तपोदा में शरीर को परिसिञ्चित कर तपोदा से निकल कर शरीर सुखते हुए एक वस्त्र पहिने खड़े रहे। उस समय उस प्रकाशयुक्त रात्रि में समग्र तपोदा को प्रकाशित करता कोई प्रकाशमान देवता आयुष्मान् समिद्धि के पास आया। आकर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े उस देवता ने आयुष्मान् समिद्धि से पूछा—"भिक्षु ! क्या तुम्हें भद्रैकरक्त का उद्देश एवं विभङ्ग याद है ?"

"नहीं, आयुष्मन् ! मुझे याद नहीं है। परन्तु क्या तुम्हें वह याद है ?"

"भिक्षु ! मुझे भी तो वह याद नहीं है। परन्तु क्या तुम्हें भद्रैकरक्त की गाथायें याद हैं ?"

"नहीं, आयुष्मन् ! मुझे उसकी गाथाएँ भी याद नहीं है। परन्तु क्या वे गाथाएँ तुम्हें याद हैं ?"

---

१. राजगृहस्थित वैभारगिरि की उपत्यका में गर्म जल के कुण्ड के पास।

"अहं पि खो, भिक्खु, न धारेमि भद्देकरत्तियो गाथा ति। उग्गण्हाहि त्वं, भिक्खु, भद्देकरत्तस्स उद्देसं च विभङ्गं च; परियापुणाहि त्वं, भिक्खु, भद्देकरत्तस्स उद्देसं च विभङ्गं च; धारेहि त्वं, भिक्खु, भद्देकरत्तस्स उद्देसं च विभङ्गं च। अत्थसंहितो, भिक्खु, भद्देकरत्तस्स उद्देसो च विभङ्गो च आदिब्रह्मचरियको" ति। इदमवोच सा देवता; इदं वत्वा तत्थेवन्तरधायि।

२. अथ खो आयस्मा समिद्धि तस्सा रत्तिया अच्चयेन येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा समिद्धि भगवन्तं एतदवोच—

[N. 268] "इधाहं, भन्ते, रत्तिया पच्चूससमयं पच्चुट्ठाय येन तपोदो [R. 193] तेनुपसङ्कमिं गत्तानि परिसिञ्चितुं। तपोदे गत्तानि परिसिञ्चित्वा पच्चुत्तरित्वा एकचीवरो अट्ठासिं गत्तानि पुब्बापयमानो। अथ खो, भन्ते, अञ्ञतरा देवता अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णा केवलकप्पं तपोदं ओभासेत्वा येनाहं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठिता खो सा देवता मं एतदवोच—'धारेसि त्वं, भिक्खु, भद्देकरत्तस्स उद्देसं च विभङ्गं चा' ति? एवं वुत्ते अहं, भन्ते, तं देवतं एतदवोचं—'न खो अहं, आवुसो, धारेमि भद्देकरत्तस्स उद्देसं च [B. 233] विभङ्गं च। त्व पनावुसो, धारेसि भद्देकरत्तस्स उद्देसं च विभङ्गं चा" ति?

'अहं पि खो, भिक्खु, न धारेमि भद्देकरत्तस्स उद्देसं च विभङ्गं च।

"नहीं, भिक्षु! मुझे भी वे गाथाएँ याद नहीं हैं। परन्तु, भिक्षु! तुम उस भद्रैकरक्त के उद्देश और विभङ्ग को याद करो, उसे अपनी साधना में उतारो। भिक्षु! इस भद्रैकरक्त के उद्देश एवं विभङ्ग सार्थक एवं धर्मसाधना में अत्यन्त उपयोगी एवं आवश्यक हैं।" उस देवता ने ऐसा कहा। ऐसा कह कर वह देवता वहीं अन्तर्हित हो गया।

२. "फिर आयुष्मान् समिद्धि उस रात्रि के बीतने पर भगवान् के पास गये। जाकर, प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठ कर आयुष्मान् समिद्धि ने भगवान् से यों निवेदन किया—

"भन्ते! मैं आज रात्रि के अन्तिम प्रहर में…वह देवता वहीं अन्तर्हित हो गया। अच्छा हो, भन्ते! यदि आप मुझे भद्रैकरक्त के उद्देश एवं विभङ्ग की देशना करने की कृपा करें।"

"तो, भिक्षु! सुनो, मेरी बातों पर मन लगाओ। मैं उपदेश करता हूँ।"

धारेसि पन त्वं, भिक्खु, भद्देकरत्तियो गाथा' ति ?

'न खो अहं, आवुसो, धारेमि भद्देकरत्तियो गाथा ति। त्वं पनावुसो, धारेसि भद्देकरत्तियो गाथा' ति ?

" 'अहं पि खो, भिक्खु, न धारेमि भद्देकरत्तियो गाथा ति। उग्गण्हाहि त्वं, भिक्खु, भद्देकरत्तस्स उद्देसं च विभङ्गं च; परियापुणाहि त्वं, भिक्खु, भद्देकरत्तस्स उद्देसं च विभङ्गं च; धारेहि त्वं, भिक्खु भद्देकरत्तस्स उद्देसं च विभङ्गं च। अत्थसंहितो, भिक्खु, भद्देकरत्तस्स उद्देसो च विभङ्गो च आदिब्रह्मचरियको' ति। इदमवोच, भन्ते, सा देवता; इदं वत्वा तत्थेवन्तरधायि। साधु मे, भन्ते, भगवा भद्देकरत्तस्स उद्देसं च विभङ्गं च देसेतू" ति।

"तेन हि, भिक्खु, सुणाहि, साधुकं मनसि करोहि; भासिस्सामी" ति।

"एवं, भन्ते" ति खो आयस्मा समिद्धि भगवतो पच्चस्सोसि। भगवा एतदवोच--

"अतीतं नान्वागमेय्य, नप्पटिकङ्खे अनागतं।
यदतीतं पहीनं तं, अप्पत्तं च अनागतं॥
"पच्चुप्पन्नं च यो धम्मं, तत्थ तत्थ विपस्सति।
असंहीरं असङ्कुप्पं, तं विद्वा मनुब्रूहये॥
"अज्जेव किच्चमातप्पं, को जञ्ञा मरणं सुवे॥ [N. 269]
न हि नो सङ्गरं तेन, महासेनेन मच्चुना॥
"एवंविहारिं आतापिं, अहोरत्तमतन्दितं।
तं वे भद्देकरत्तो ति, सन्तो आचिक्खते मुनी" ति॥

इदमवोच भगवा; इदं वत्वान सुगतो उट्ठायासना विहारं पाविसि। अथ खो तेसं भिक्खूनं, अचिरपक्कन्तस्स भगवतो एतदहोसि—"इदं खो नो, आवुसो, भगवा सङ्खित्तेन उद्देसं उद्दिसित्वा वित्थारेन अत्थं अविभजित्वा उट्ठायासना विहारं पविट्ठो--

'अतीतं नान्वागमेय्य, नप्पटिकङ्खे अनागतं।
यदतीतं पहीनं तं, अप्पत्तं च अनागतं॥

"ठीक है, भन्ते !" आयुष्मान् समिद्धि ने भगवान् को उत्तर दिया। भगवान् यों बोले—

"साधक अतीत का चिन्तन न करे…पूर्ववत्[1]…शान्त मुनिजन भद्रैकरक्त कहते हैं।"

---

१. द्र० पीछे पृ० १४०७-१०। (भद्देकरत्तसुत्त)

'पच्चुप्पन्नं च यो धम्मं, तत्थ तत्थ विपस्सति ।
असंहीरं असङ्कुप्पं, तं विद्वा मनुब्रूहये ॥
'अज्जेव किच्चमातप्पं, को जञ्ञा मरणं सुवे । [B. 234]
न हि नो सङ्गरं तेन, महासेनेन मच्चुना ॥
'एवंविहारिं आतापिं, अहोरत्तमतन्दितं ।
तं वे भद्देकरत्तो ति, सन्तो आचिक्खते मुनी' ति ॥

"को नु, खो इमस्स भगवता सङ्खित्तेन उद्देसस्स उद्दिट्ठस्स वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स वित्थारेन अत्थं विभजेय्या" ति ?

२. आयस्मतो महाकच्चानस्स वित्थारदेसना

३. अथ खो तेसं भिक्खूनं एतदहोसि--"अयं खो आयस्मा [R. 194] महाकच्चानो सत्थु चेव संवण्णितो सम्भावितो च विञ्ञूनं सब्रह्मचारीनं; पहोति चायस्मा महाकच्चानो इमस्स भगवता सङ्खित्तेन उद्देसस्स उद्दिट्ठस्स वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स वित्थारेन अत्थं विभजितुं। यन्नून मयं येनायस्मा महाकच्चानो तेनुपसङ्कमेय्याम; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं महाकच्चानं एतमत्थं पटिपुच्छेय्यामा" ति ।

अथ खो ते भिक्खू येनायस्मा महाकच्चानो तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा आयस्मता महाकच्चानेन सद्धिं सम्मोदिंसु। सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते [N. 270] भिक्खू आयस्मन्तं महाकच्चानं एतदवोचुं--"इदं खो भो आवुसो कच्चान, भगवा सङ्खित्तेन उद्देसं उद्दिसित्वा वित्थारेन अत्थं अविभजित्वा उट्ठायासना विहारं पविट्ठो--

---

ऐसा भगवान् ने कहा। और ऐसा कह कर भगवान् आसन से उठ कर गन्धकुटी में चले गये। उनके जाने के कुछ ही देर बाद आयुष्मान् समिद्धि के मन में यह विचार आया—"अरे! भगवान् तो भद्रैकरक्त के उद्देश और विभङ्ग संक्षेप में बता कर, इनका विस्तार न कर चले गये कि साधक अतीत का चिन्तन न करे…। अब इस भगवान् के संक्षेप में ही कहे और विस्तार से न कहे को विशद रूप से कौन समझावे!

२. आयुष्मान् महाकात्यायन द्वारा विस्तृत देशना

३. तब उन भिक्षुओं के मन में यह हुआ--"यह आयुष्मान् महाकात्यायन शास्ता द्वारा भी प्रशंसित और सब्रह्मचारियों द्वारा श्रद्धा की दृष्टि से देखे जाते हैं। और ये भगवान् के संक्षिप्त कथन को, जिसका उन्होंने विस्तार न किया हो, विशद रूप से समझा सकते हैं। तो क्यों न हम आयुष्मान् महाकात्यायन के पास चलकर इसका अर्थ पूछ लें।"

'अतीतं नान्वागमेय्य, नप्पटिकङ्खे अनागतं।...पे०...
तं वे भद्देकरत्तो ति, सन्तो आचिक्खते मुनी' ति ॥

"तेसं नो, आवुसो कच्चान, अम्हाकं, अचिरपक्कन्तस्स भगवतो, एतदहोसि—'इदं खो नो, आवुसो, भगवा सङ्खित्तेन उद्देसं उद्दिसित्वा वित्थारेन अत्थं अविभजित्वा उट्ठायासना विहारं पविट्ठो--

'अतीतं नान्वागमेय्य, नप्पटिकङ्खे अनागतं।...पे०...
तं वे भद्देकरत्तो ति, सन्तो आचिक्खते मुनी' ति ॥

"को नु खो इमस्स भगवता सङ्खित्तेन उद्देसस्स उद्दिट्ठस्स वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स वित्थारेन अत्थं विभजेय्या ति? तेसं नो, आवुसो [B. 235] कच्चान, अम्हाकं एतदहोसि--'अथ खो आयस्मा महाकच्चानो सत्थु चेव संवण्णितो सम्भावितो च विञ्ञूनं सब्रह्मचारीनं, पहोति चायस्मा महाकच्चानो इमस्स भगवता सङ्खित्तेन उद्देसस्स उद्दिट्ठस्स वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स वित्थारेण अत्थं विभजितुं। यन्नून मयं येनायस्मा महाकच्चानो तेनुपसङ्कमेय्याम; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं महाकच्चानं एतमत्थं पटिपुच्छेय्यामा' ति। विभजतायस्मा महाकच्चानो" ति।

४. "सेय्यथापि, आवुसो, पुरिसो सारत्थिको सारगवेसी सारपरियेसनं [R. 195] चरमानो महतो रुक्खस्स तिट्ठतो सारवतो अतिक्कम्मेव मूलं अतिक्कम्म खन्धं साखापलासे सारं परियेसितब्बं मञ्ञेय्य; एवं सम्पदमिदं आयस्मन्तानं सत्थरि सम्मुखीभूते तं भगवन्तं अतिसित्वा अम्हे एतमत्थं पटिपुच्छितब्बं मञ्ञथ। सो हावुसो, भगवा जानं जानाति, पस्सं पस्सति, चक्खुभूतो ञाणभूतो धम्मभूतो ब्रह्मभूतो वत्ता पवत्ता अत्थस्स निन्नेता अमतस्स दाता धम्मस्सामी तथागतो। सो चेव पनेतस्स

तब वे भिक्षु आयुष्मान् महाकात्यायन के पास गये...एक ओर बैठ कर पूछने लगे—"आयुष्मन् कात्यायन! भगवान्...पूर्ववत्...इसका अर्थ पूछ लें।"

४. (महाकात्यायन बोले--) "आयुष्मानो! जैसे कोई सार (मजबूत काष्ठ) का अर्थी उसकी खोज में निकला हुआ महान् सारवान् वृक्ष को पाकर भी उसके मूल, स्कन्ध को छोड़कर शाखा और पत्र में सार खोजना चाहे; इसी प्रकार इस समय शास्ता के रहते, उन को छोड़ कर, आप लोग मुझ से यह पूछना उचित समझते हो। आयुष्मानो! भगवान् तो ज्ञानी हैं ज्ञेय को भलीभाँति जानते हैं। दृश्य को देख सकते हैं। वे तो चक्षु, ज्ञान धर्म एवं ब्रह्म के तुल्य है। वे ही श्रेष्ठ वक्ता, प्रवक्ता, अर्थ के निर्णायक, अमृतप्रदाता, धर्मस्वामी एवं तथागत हैं। जब वे संक्षेप में देशना कर रहे थे, वही तो समय था कि आप लोग भगवान् से इसका विशद

[N. 271] कालो अहोसि यं भगवन्तं येव एतमत्थं पटिपुच्छेय्याथ, यथा वो भगवा ब्याकरेय्य तथा नं धारेय्याथा" ति ।

५. "अद्धावुसो कच्चान, भगवा जानं जानाति, पस्सं पस्सति, चक्खुभूतो ञाणभूतो ब्रह्मभूतो वत्ता पवत्ता अत्थस्स निन्नेता अमतस्स दाता धम्मस्सामी तथागतो। सो चेव पनेतस्स कालो अहोसि यं भगवन्तं येव एतमत्थं पटिपुच्छेय्याम; यथा नो भगवा ब्याकरेय्य तथा नं धारेय्याम। अपि चायस्मा महाकच्चानो सत्थु चेव संवण्णितो सम्भावितो च विञ्ञूनं सब्रह्मचारीनं; पहोति चायस्मा महाकच्चानो इमस्स भगवता सङ्खित्तेन उद्देसस्स उद्दिट्ठस्स वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स वित्थारेन अत्थं विभजितुं। विभजतायस्मा महाकच्चानो अगरुं करित्वा" ति ।

६. "तेन हावुसो, सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; भासिस्सामी" ति । "एवमावुसो" ति खो ते भिक्खू आयस्मतो महाकच्चानस्स पच्चस्सोसुं। आयस्मा महाकच्चानो एतदवोच—

[B. 236] "यं खो नो, आवुसो, भगवा सङ्खित्तेन उद्देसं उद्दिसित्वा वित्थारेन अत्थं अविभजित्वा उट्ठायासना विहारं पविट्ठो—

'अतीतं नान्वागमेय्य, नप्पटिकङ्खे अनागतं।

...पे०...

तं वे भद्देकरत्तो ति, सन्तो आचिक्खते मुनी' ति ॥

इमस्स खो अहं, आवुसो, भगवता सङ्खित्तेन उद्देसस्स उद्दिट्ठस्स वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स एवं वित्थारेन अत्थं आजानामि—

[R. 196] ७. 'कथं च, आवुसो, अतीतं अन्वागमेति ? इति मे चक्खु अहोसि अतीतमद्धानं इति रूपा ति—तत्थ छन्दरागप्पटिबद्धं होति विञ्ञाणं,

---

अर्थ बताने की भी प्रार्थना करते। और जैसा भगवान् बताते वैसा ही अपने मन में बैठा लेते।"

५. "आयुष्मन् महाकात्यायन ! (यद्यपि आप का यह कहना उचित ही है कि) भगवान् ज्ञेय को...पूर्ववत्...मन में बैठा लेते। परन्तु आप भी तो भगवान् द्वारा प्रशंसित...विशद अर्थ करने में समर्थ है। आयुष्मन् महाकात्यायन ! यदि आप भार न मानें तो इसका विशद अर्थ करें।"

६. "तो आयुष्मानो ! सुनो,...इस का विशद अर्थ मै यों जानता हूँ।"

७. आयुष्मानो ! कैसे कोई अतीत का अन्वागमन करता है ? 'अतीत काल में मेरी चक्षुरिन्द्रिय ऐसी थी, रूप ऐसा था'—यह सोचकर उसमें विज्ञान रागप्रति-

छन्दरागप्पटिबद्धत्ता विञ्ञाणस्स तदभिनन्दति, तदभिनन्दन्तो अतीतं अन्वागमेति । इति मे सोतं अहोसि अतीतमद्धानं इति सद्दा ति…पे०…इति मे घानं अहोसि अतीतमद्धानं इति गन्धा ति…इति मे जिह्वा अहोसि अतीतमद्धानं इति रसा ति…इति मे कायो अहोसि अतीतमद्धानं इति फोट्ठब्बा ति…इति मे मनो अहोसि अतीतमद्धानं इति धम्मा [N. 272] ति—तत्थ छन्दरागप्पटिबद्धं होति विञ्ञाणं, छन्दरागप्पटिबद्धत्ता विञ्ञाणस्स तदभिनन्दति, तदभिनन्दन्तो अतीतं अन्वागमेति—एवं खो, आवुसो, अतीतं अन्वागमेति ।

'कथं च, आवुसो, अतीतं नान्वागमेति ? इति मे चक्खु अहोसि अतीतमद्धानं इति रूपा ति—तत्थ न छन्दरागप्पटिबद्धं होति विञ्ञाणं, न छन्दरागप्पटिबद्धत्ता विञ्ञाणस्स न तदभिनन्दति, न तदभिनन्दन्तो अतीतं नान्वागमेति । इति मे सोतं अहोसि अतीतमद्धानं इति सद्दा ति…पे०…इति मे घानं अहोसि अतीतमद्धानं इति गन्धा ति…इति मे जिह्वा अहोसि अतीतमद्धानं इति रसा ति…इति मे कायो अहोसि अतीतमद्धानं इति फोट्ठब्बा ति…इति मे मनो अहोसि अतीतमद्धानं इति धम्मा ति—तत्थ न छन्दरागप्पटिबद्धं होति विञ्ञाणं, न छन्दरागप्पटिबद्धत्ता विञ्ञाणस्स न तदभिनन्दति, न तदभिनन्दन्तो अतीतं नान्वागमेति—एवं खो, आवुसो, अतीतं नान्वागमेति ।

८. 'कथं च, आवुसो, अनागतं पटिकङ्खति ? इति मे [B. 237] चक्खु सिया अनागतमद्धानं इति रूपा ति—अप्पटिलद्धस्स पटिलाभाय चित्तं पणिदहति, चेतसो पणिधानपच्चया तदभिनन्दति, तदभिनन्दन्तो अनागतं

बद्ध होता है, विज्ञान के रागप्रतिबद्ध होने से वह उसे अभिनन्दित (स्वागत) करता है। उसका अभिनन्दन करते-करते अतीत का अनुगमन करता है। अतीत काल में मेरी श्रोत्रेन्द्रिय…शब्द ऐसे थे, घ्राणेन्द्रिय…गन्ध…जिह्वेन्द्रिय…रस…काय…स्प्रष्टव्य…। मेरा मन ऐसा था, उसके धर्म ऐसे थे—यह सोच कर उसमें विज्ञान के छन्दरागप्रतिबद्ध होने से…यों वह अतीत का अनुगमन करता है ।

"और, आयुष्मानो ! वह अतीत का अनुगमन कैसे नहीं करता ? पूर्व काल में मेरी चक्षुरिन्द्रिय…रूप ऐसे थे'—इसमें अपने विज्ञान को रागप्रतिबद्ध नहीं होने देता । न रागप्रतिबद्धता से…पूर्ववत्…अतीत का अनुगमन नहीं करता ।

८. "और, आयुष्मानो ! वह कैसे भविष्यत् की चिन्ता करता है ? 'भविष्य में क्यों न मेरा चक्षु या रूप ऐसा हो'—ऐसा सोचते हुए अप्राप्त की प्राप्ति के लिये मन

पटिकङ्खति। इति मे सोतं सिया अनागतमद्धानं इति सद्दा ति…पे०…इति मे घानं सिया अनागतमद्धानं इति गन्धा ति …इति मे जिह्वा सिया अनागतमद्धानं इति रसा ति…इति मे कायो सिया अनागतमद्धानं इति फोट्ठब्बा ति…इति मे मनो सिया अनागतमद्धानं इति धम्मा ति—अप्पटिलद्धस्स [R. 197] पटिलाभाय चित्तं पणिदहति, चेतसो पणिधानपच्चया तदभिनन्दति, तदभिनन्दन्तो अनागतं पटिकङ्खति-एवं खो, आवुसो, अनागतं पटिकङ्खति।

९. 'कथं च, आवुसो, अनागतं नप्पटिकङ्खति? इति मे चक्खु सिया अनागतमद्धानं इति रूपा ति-अप्पटिलद्धस्स पटिलाभाय चित्तं नप्पणिदहति चेतसो अप्पणिधानपच्चया न तदभिनन्दति, न तदभिनन्दन्तो अनागतं नप्पटिकङ्खति। इति मे सोतं सिया अनागतमद्धानं इति सद्दा ति…पे०… इति मे घानं सिया अनागतमद्धानं इति गन्धा ति…इति मे जिह्वा सिया [N. 273] अनागतमद्धानं इति रसा ति…इति मे कायो सिया अनागतमद्धानं इति फोट्ठब्बा ति…इति मे मनो सिया अनागतमद्धानं इति धम्मा ति--अप्पटिलद्धस्स पटिलाभाय चित्तं नप्पणिदहति, चेतसो अप्पणिधानपच्चया न तदभिनन्दति, न तदभिनन्दन्तो अनागतं नप्पटिकङ्खति—एवं खो, आवुसो, अनागतं नप्पटिकङ्खति।

१०. कथं च, आवुसो, पच्चुप्पन्नेसु धम्मेसु संहीरति? यं चावुसो, चक्खु ये च रूपा--उभयमेतं पच्चुप्पन्नं। तस्मिं चे पच्चुप्पन्ने छन्दरागप्पटिबद्धं होति विञ्ञाणं, छन्दरागप्पटिबद्धत्ता विञ्ञाणस्स तदभिनन्दति, तदभिनन्दन्तो पच्चुप्पन्नेसु धम्मेसु संहीरति। यं चावुसो, सोतं ये च सद्दा… पे०…यं चावुसो, घानं ये च गन्धा…या चावुसो, जिह्वा ये च रसा…यो

का आग्रह (प्रणिधान) करता है, प्रणिधान के कारण उनका अभिनन्दन करता हुआ अनागत की आकांक्षा करता है। भविष्य में क्यों न मेरा श्रोत्र व शब्द…पूर्ववत्… भविष्यत् की चिन्ता करता है।

"और कैसे वह, आयुष्मानो! भविष्यत् की चिन्ता नहीं करता? 'भविष्यत्काल में मेरा चक्षु और रूप इस प्रकार का हो'--ऐसा सोच कर भी अप्राप्त की प्राप्ति के लिये मन में आग्रह नहीं करता, आग्रह न कर उसका अभिनन्दन न करता हुआ भविष्य की आकांक्षा नहीं करता…यों वह भविष्यत् का अनुगमन नहीं करता।

१०. और कैसे, भिक्षुओ! वह साधक प्रत्युत्पन्न (वर्तमान) धर्मों में आसक्त नहीं होता? आयुष्मानो! चक्षु और रूप--दोनों ही वर्तमान हैं। यदि वह वर्तमान में विज्ञान (चित्त) राग से प्रतिबद्ध होता है, और उसका अभिनन्दन करता

चावुसो, कायो ये च फोट्ठब्बा···यो चावुसो, मनो ये च धम्मा--उभयमेतं पच्चुप्पन्नं। तस्मिं चे पच्चुप्पन्ने छन्दरागप्पटिबद्धं होति विञ्ञाणं, छन्दरागप्पटिबद्धत्ता विञ्ञाणस्स तदभिनन्दति, तदभिनन्दन्तो पच्चुप्पन्नेसु धम्मेसु संहीरति—एवं खो, आवुसो, पच्चुप्पन्नेसु धम्मेसु संहीरति।

"कथं च, आवुसो, पच्चुप्पन्नेसु धम्मेसु न संहीरति? यं [B. 238] चावुसो, चक्खु ये च रूपा—उभयमेतं पच्चुप्पन्नं। तस्मिं चे पच्चुप्पन्ने न छन्दरागप्पटिबद्धं होति विञ्ञाणं, न छन्दरागप्पटिबद्धत्ता विञ्ञाणस्स न तदभिनन्दति, न तदभिनन्दन्तो पच्चुप्पन्नेसु धम्मेसु न संहीरति। यं चावुसो, सोतं ये च सद्दा···पे०···यं चावुसो, घानं ये च गन्धा···या चावुसो, जिव्हा ये च रसा···यो चावुसो, कायो ये च फोट्ठब्बा···यो चावुसो, मनो ये च धम्मा—उभयमेतं पच्चुप्पन्नं। तस्मिं चे पच्चुप्पन्ने न छन्दरागप्पटिबद्धं होति विञ्ञाणं, न छन्दरागप्पटिबद्धत्ता विञ्ञाणस्स न [R. 198] तदभिनन्दति, न तदभिनन्दन्तो पच्चुप्पन्नेसु धम्मेसु न संहीरति—एवं खो, आवुसो, पच्चुप्पन्नेसु धम्मेसु न संहीरति।

११. "यं खो नो आवुसो, भगवा संखित्तेन उद्देसं उद्दिसित्वा वित्थारेन अत्थं अविभजित्वा उट्ठायासना विहारं पविट्ठो–

'अतीतं नान्वागमेय्य, नप्पटिकङ्खे अनागतं।···पे०··· [N.274]
तं वे भद्देकरत्तो ति, सन्तो आचिक्खते मुनी' ति॥

इमस्स खो अहं, आवुसो भगवा संखित्तेन उद्देसस्स उद्दिट्ठस्स वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स एवं वित्थारेन अत्थं आजानामि। आकङ्खमाना च पन

है। उसका अभिनन्दन करते प्रत्युत्पन्न धर्मों (पदार्थों) में आसक्त होता है। इसी तरह जो श्रोत्र या शब्द हैं···घ्राण···गन्ध···जिह्वा···रस···काय···स्प्रष्टव्य··· मन···धर्म···आसक्त होता है।

"और कैसे, भिक्षुओ! वह प्रत्युत्पन्न धर्मों में आसक्त नहीं होता? आयुष्मानो! जो चक्षु और रूप वर्तमान हैं···प्रतिबद्ध नहीं···अभिनन्दन नहीं करता। उसका अभिनन्दन करते हुए उस में आसक्त नहीं होता।···पूर्ववत्···धर्म में आसक्त नहीं होता।

११. "आयुष्मानो! भगवान् यह जो संक्षेप में उद्देश व विभङ्ग कह कर, विस्तार से उस का व्याख्यान न कर, आसन से उठ साधनाविहार में चले गये थे कि--

'अतीत का अनुगमन नहीं करना चाहिये···ऐसा शान्त मुनिजन कहते हैं'— भगवान् के इस संक्षिप्त से कहे का, विस्तार से न कहे का व्याख्यान मैं इस प्रकार

तुम्हे आयस्मतो भगवन्तं येव उपसङ्कमित्वा एतमत्थं पटिपुच्छेय्याथ, यथा वो भगवा ब्याकरोति तथा नं धारेय्याथा" ति ।

३. तथागतस्स अनुमोदना

१२. अथ खो ते भिक्खू आयस्मतो महाकच्चानस्स भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा उट्ठायासना येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खू भगवन्तं एतदवोचुं-"यं खो नो, भन्ते, भगवा सङ्खित्तेन उद्देसं उद्दिसित्वा वित्थारेन अत्थं अविभजित्वा उट्ठायासना विहारं पविट्ठो—

'अतीतं नान्वागमेय्य, नप्पटिकङ्खे अनागतं। ···पे०···
तं वे भद्देकरत्तो ति, सन्तो आचिक्खते मुनी' ति॥

तेसं नो, भन्ते, अम्हाकं, अचिरपक्कन्तस्स भगवतो, एतदहोसि-'इदं खो नो, आवुसो, भगवा सङ्खित्तेन उद्देसं उद्दिसित्वा वित्थारेन अत्थं अविभजित्वा उट्ठायासना विहारं पविट्ठो--

[B. 239] अतीतं नान्वागमेय्य, नप्पटिकङ्खे अनागतं।
यदतीतं पहीनं तं, अप्पत्तं च अनागतं॥
पच्चुप्पन्नं च यो धम्मं, तत्थ तत्थ विपस्सति।
असंहीरं असङ्कुप्पं, तं विद्वा मनुब्रूहये॥
अज्जेव किच्चमातप्पं, को जञ्ञा मरणं सुवे।
न हि नो सङ्गरं तेन, महासेनेन मच्चुना॥
एवंविहारिं आतापिं, अहोरत्तमतन्दितं।
तं वे भद्देकरत्तो ति, सन्तो आचिक्खते मुनी ति॥

[R. 199] "को नु खो इमस्स भगवता सङ्खित्तेन उद्देसस्स उद्दिट्ठस्स
[N. 275] वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स वित्थारेन अत्थं विभजेय्या' ति ? तेसं नो, भन्ते, अम्हाकं एतदहोसि--'अयं खो आयस्मा महाकच्चानो सत्थु

जानता हूँ। यदि और कुछ तुम्हें सन्देह रह गया हो तो आप लोग भगवान् के पास जाकर उनसे पूछ कर अपना सन्देह मिटा लो। जैसा भगवान् बतावें उसे वैसा ही धारण करो।

३. तथागत का अनुमोदन

१२. तब वे भिक्षु आयुष्मान् महाकात्यायन के इस कथन का अभिनन्दन-अनुमोदन कर, आसन से उठ कर, जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचे। पहुँच कर उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे उन भिक्षुओं ने भगवान् से यों निवेदन किया—"आप जो यह संक्षेप से ही कह कर विस्तार से न कह कर, पुनः

चेव संवण्णितो च सम्भावितो च विञ्ञूनं सब्रह्मचारीनं, पहोति चायस्मा महाकच्चानो इमस्स भगवता सङ्खित्तेन उद्देसस्स उद्दिट्ठस्स वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स वित्थारेन अत्थं विभजितुं। यन्नून मयं येनायस्मा महाकच्चानो तेनुपसङ्कमेय्याम; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं महाकच्चानं एतमत्थं पटिपुच्छेय्यामा' ति। अथ खो मयं, भन्ते, येनायस्मा महाकच्चानो तेनुपसङ्कमिम्ह; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं महाकच्चानं एतमत्थं पटिपुच्छिम्ह। तेसं नो, भन्ते, आयस्मता महाकच्चानेन इमेहि आकारेहि इमेहि पदेहि इमेहि ब्यञ्जनेहि अत्थो विभत्तो" ति।

"पण्डितो, भिक्खवे महाकच्चानो। महापञ्ञो, भिक्खवे, महाकच्चानो। मं चे पि तुम्हे, भिक्खवे, एतमत्थं पटिपुच्छेय्याथ, अहं पि तं एवमेवं ब्याकरेय्यं यथा तं महाकच्चानेन ब्याकतं। एसो चेवेतस्स अत्थो। एवं च नं धारेथा" ति।

१३. इदमवोच भगवा। अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति।

साधनाविहार में पधार गये थे कि--'अतीत का अनुगमन नहीं करना चाहिये··· ऐसा शान्त मुनिजन कहते हैं'। उसके विषय में आपके पधारने के कुछ समय बाद हमारे मन में यह आया—···कौन इस अर्थ को विशद करे? तब हमें यह ध्यान में आया···आयुष्मान् महाकात्यायन ने इस आकार से, इन पदों से, इन व्यञ्जनों से आपके कथन को विशद किया।"

(भगवान् बोले--) "भिक्षुओ ! महाकात्यायन पण्डित है, महाप्राज्ञ है। यदि तुम मुझ से भी इसका विशद अर्थ पूछते तो मैं भी इसका इसी तरह विशद अर्थ करता जैसा कि महाकात्यायन ने किया है। अतः यही इसका अर्थ है, तुम्हें इसे इसी तरह ध्यान में रखना है।"

१३. भगवान् ने यह कहा। आत्तमना भिक्षुओं ने भगवान् के भाषण का अभिनन्दन किया॥

महाकच्चानभद्देकरत्तसुत्त समाप्त॥

३४. लोमसकङ्गियभद्देकरत्तसुत्तं

१. चन्दनदेवपुत्तेन उस्साहितो भिक्खु

[N. 276, B. 240] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तेन खो पन समयेन आयस्मा लोमसकङ्गियो सक्केसु विहरति कपिलवत्थुस्मिं निग्रोधारामे। अथ खो चन्दनो देवपुत्तो अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं निग्रोधारामं ओभासेत्वा येनायस्मा लोमसकङ्गियो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो चन्दनो देवपुत्तो आयस्मन्तं लोमसकङ्गियं एतदवोच--"धारेसि त्वं, भिक्खु, भद्देकरत्तस्स उद्देसं विभङ्गं चा" ति ?

[R. 200] न खो अहं, आवुसो, धारेमि भद्देकरत्तस्स उद्देसं च विभङ्गं च। त्वं पनावुसो, धारेसि भद्देकरत्तस्स उद्देसं च विभङ्गं चा" ति ?

"अहं पि खो, भिक्खु, न धारेमि भद्देकरत्तस्स उद्देसं च विभङ्गं च। धारेसि पन त्वं, भिक्खु, भद्देकरत्तियो गाथा" ति ?

"न खो अहं, आवुसो, धारेमि भद्देकरत्तियो गाथा। त्वं पनावुसो, धारेसि भद्देकरत्तियो गाथा" ति ?

---

३४. लोमशकाङ्गीय भद्रैकरक्त सूत्र

१. चन्दन देवपुत्र द्वारा उत्साहित भिक्षु

ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती के···विराजमान थे। उस समय आयुष्मान् लोमशकाङ्गीय भिक्षु शाक्यप्रदेश की कपिलवस्तु नगरी के न्यग्रोधाराम में साधना करते थे। वहाँ कभी प्रकाशमान रात्रि में तेजःपुञ्जमय शरीर वाला चन्दन नामक देवपुत्र समग्र न्यग्रोधाराम को अवभासित करता हुआ आयुष्मान् लोमशकाङ्गीय के पास आकर एक ओर बैठ कर यों बोला—कहा—

"क्या भिक्षु तुम्हें भद्रैकरक्त का उद्देश एवं विभङ्ग याद है ?"

'नहीं, आयुष्मन् ! मुझे तो याद नहीं है, परन्तु तुम्हें याद है ?"

भिक्षु ! मुझे भी उसका उद्देश व विभङ्ग याद नहीं है, पर तुम्हें उसकी गाथाएँ तो याद हैं ?

···नहीं, आयुष्मन् ! मुझे तो उसकी गाथाएँ भी याद नहीं हैं, परन्तु क्या तुम्हें वे गाथाएँ याद हैं ?

"धारेमि खो अहं, भिक्खु, भद्देकरत्तियो गाथा" ति।

"यथा कथं पन त्वं, आवुसो, धारेसि भद्देकरत्तियो गाथा" ति ?

"एकमिदं, भिक्खु, समयं भगवा देवेसु तावतिंसेसु विहरति पारिच्छत्तकमूले पण्डुकम्बलसिलायं। तत्र भगवा देवानं तावतिंसानं भद्देकरत्तस्स उद्देसं च विभङ्गं च अभासि—

'अतीतं नान्वागमेय्य, नप्पटिकङ्खे अनागतं।
यदतीतं पहीनं तं, अप्पत्तं च अनागतं॥
'पच्चुप्पन्नं च यो धम्मं, तत्थ तत्थ विपस्सति। [N. 277]
असंहीरं असङ्कुप्पं, तं विद्वा मनुब्रूहये॥
'अज्जेव किच्चमातप्पं, को जञ्ञा मरणं सुवे।
न हि नो सङ्गरं तेन, महासेनेन मच्चुना॥
'एवंविहारिं आतापिं, अहोरत्तमतन्दितं।
तं वे भद्देकरत्तो ति, सन्तो आचिक्खते मुनी' ति॥

एवं खो अहं, भिक्खु, धारेमि भद्देकरत्तियो गाथा। उग्गण्हाहि त्वं, भिक्खु, भद्देकरत्तस्स उद्देसं च विभङ्गं च; परियापुणाहि त्वं, भिक्खु, भद्देकरत्तस्स उद्देसं च विभङ्गं च; धारेहि त्वं, भिक्खु, [B. 241] भद्देकरत्तस्स उद्देसं च विभङ्गं च। अत्थसंहितो, भिक्खु, भद्देकरत्तस्स उद्देसो च विभङ्गो च आदिब्रह्मचरियको" ति। इदमवोच चन्दनो देवपुत्तो। इदं वत्वा च सो तत्थेवन्तरधायि।

२. अथ खो आयस्मा लोमसकङ्गियो तस्सा रत्तिया अच्चयेन सेनासनं संसामेत्वा पत्तचीवरमादाय येन सावत्थि तेन चारिकं पक्कामि। [R. 201]

"हाँ! भिक्षु! मुझे तो वे याद हैं!"

"आयुष्मन्! तुम्हें वे कैसे याद हुईं?"

भिक्षु! एक समय भगवान् त्रायस्त्रिंश देवलोक में पारिजात (कल्प) वृक्ष के नीचे पाण्डुकम्बल शिला पर विराजमान थे। वहाँ भगवान् ने यह भद्रैकरक्त सूत्र उद्देश एवं विभङ्ग के साथ उपदेशा था। जैसे—

"अतीत का अनुगमन न करे।...पूर्ववत्[1]...शान्त मुनि कहते हैं।"

"इस कारण भिक्षु! मुझे ये भद्रैकरक्त गाथाएँ याद हैं। भिक्षु! तूँ भी इन गाथाओं को...ब्रह्मचर्यसाधना में सहायक हैं।" ऐसा चन्दन देवपुत्र ने कहा और यों कह कर वह वहीं अन्तर्हित हो गया।

२. फिर वह आयुष्मान् लोमशकाङ्गीय अपना आसन समेट, पात्र-चीवर ले,

---

१. द्र०—पीछे पृ० १४०७-१० तक।

अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन सावत्थि जेतवनं अनाथपिण्डिकस्स आरामो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा लोमसकङ्गियो भगवन्तं एतदवोच—

"एकमिदाहं, भन्ते, समयं सक्केसु विहरामि कपिलवत्थुस्मिं निग्रोधारामे। अथ खो, भन्ते, अञ्ञतरो देवपुत्तो अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं निग्रोधारामं ओभासेत्वा येनाहं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो भन्ते, सो देवपुत्तो मं एतदवोच--'धारेसि त्वं, भिक्खु, भद्देकरत्तस्स उद्देसं च विभङ्गं चा' ति ? एवं वुत्ते अहं, भन्ते, तं देवपुत्तं एतदवोचं--'न खो अहं, आवुसो, धारेमि भद्देकरत्तस्स उद्देसं च विभङ्गं च। त्वं पनावुसो, धारेसि भद्देकरत्तस्स उद्देसं विभङ्गं चा ति ?

'अहं पि खो, भिक्खु, न धारेमि भद्देकरत्तस्स उद्देसं च विभङ्गं च। धारेसि पन त्वं, भिक्खु, भद्देकरत्तियो गाथा' ति ?

'न खो अहं, आवुसो, धारेमि भद्देकरत्तियो गाथा। त्वं पनावुसो, धारेसि भद्देकरत्तियो गाथा' ति ?

[N. 278] 'धारेमि खो अहं, भिक्खु, भद्देकरत्तियो गाथा' ति।

'यथा कथं पन त्वं, आवुसो, धारेसि भद्देकरत्तियो गाथा' ति ?

'एकमिदं, भिक्खु, समयं भगवा देवेसु तावतिंसेसु विहरति पारिच्छत्तकमूले पण्डुकम्बलसिलायं। तत्र खो भगवा देवानं तावतिंसानं भद्देकरत्तस्स उद्देसं च विभङ्गं च अभासि—

अतीतं नान्वागमेय्य नप्पटिकङ्खे अनागतं। ...पे०...
तं वे भद्देकरत्तो ति, सन्तो आचिक्खते मुनी' ति।

'एवं खो अहं, भिक्खु, धारेमि भद्देकरत्तियो गाथा। उग्गण्हाहि त्वं, [B. 242] भिक्खु, भद्देकरत्तस्स उद्देसं च विभङ्गं च; परियापुणाहि त्वं, भिक्खु, भद्देकरत्तस्स उद्देसं च विभङ्गं च; धारेहि त्वं, भिक्खु, भद्देकरत्तस्स उद्देसं च विभङ्गं च। अत्थसंहितो, भिक्खु, भद्देकरत्तस्स उद्देसो च विभङ्गो च आदिब्रह्मचरियको' ति। इदमवोच, भन्ते, सो

श्रावस्ती की तरफ चल दिया। क्रमशः चारिका करते हुये वह श्रावस्ती के जेतवन में...एक ओर बैठ भगवान् से यों निवेदन करने लगा—

"भन्ते ! एक समय शाक्यप्रदेश की कपिलवस्तु नगरी में...पूर्ववत्...ऐसा चन्दन देवपुत्र ने कहा। और यों कह कर वह वहीं अन्तर्हित हो गया। अच्छा

देवपुत्तो; इदं वत्वा च सो तत्थेवन्तरधायि। साधु मे, भन्ते, भगवा भद्देकरत्तस्स उद्देसं च विभङ्गं च देसेतू'' ति।

२. भगवतो भद्देकरत्तदेसना

३. "जानासि पन त्वं, भिक्खु, तं देवपुत्तं" ति?

"न खो अहं, भन्ते, जानामि तं देवपुत्तं" ति।

"चन्दनो नाम सो, भिक्खु, देवपुत्तो। चन्दनो, भिक्खु, देवपुत्तो अट्ठिं कत्वा मनसि कत्वा सब्बचेतसा समन्नाहरित्वा ओहितसोतो धम्मं सुणाति। तेन हि, भिक्खु, सुणाहि, साधुकं मनसि करोहि; भासिस्सामी" ति। "एवं, भन्ते" ति खो आयस्मा लोमसकङ्गियो भगवतो पच्चस्सोसि। भगवा एतदवोच—

"अतीतं नान्वागमेय्य, नप्पटिकङ्खे अनागतं।
यदतीतं पहीनं तं, अप्पत्तं च अनागतं॥
"पच्चुप्पन्नं च यो धम्मं, तत्थ तत्थ विपस्सति।
असंहीरं असङ्कुप्पं, तं विद्वा मनुब्रूहये॥
"अज्जेव किच्चमातप्पं, को जञ्ञा मरणं सुवे।
न हि नो सङ्गरं तेन, महासेनेन मच्चुना॥
"एवंविहारिं आतापिं, अहोरत्तमतन्दितं। [N. 279]
तं वे भद्देकरत्तो ति, सन्तो आचिक्खते मुनि॥

"कथं च, भिक्खु, अतीतं अन्वागमेति…पे०…एवं खो, भिक्खु अतीतं अन्वागमेति। कथं च, भिक्खु, अतीतं नान्वागमेति [R. 202] …पे०…एवं खो, भिक्खु, अतीतं नान्वागमेति। कथं च, भिक्खु, अनागतं पटिकङ्खति…पे०…एवं खो, भिक्खु, अनागतं, पटिकङ्खति। कथं च, भिक्खु, अनागतं नप्पटिकङ्खति…पे०…एवं खो, भिक्खु, अनागतं नप्पटिकङ्खति।

हो, भन्ते! भगवान् मुझे भी भद्रैकरक्त की, उद्देश-विभङ्ग के साथ, देशना कर दें।"

२. भगवान् द्वारा भद्रैकरक्त की देशना

३. "भिक्षु! तुम उस चन्दन देवपुत्र को जानते हो?"

"नहीं, भन्ते! मैं तो उसे नहीं जानता।"

"भिक्षु! वह चन्दन एक देवपुत्र है। वह धर्मप्रवचन को गहराई तक मन में धारण करता हुआ, उसकी सभी बातों को मन में बैठाता हुआ, कान खोल कर (स्थिर मन से) सुनता है। तो भिक्षु! तुम भी इसे सुनो! मैं तुम्हें उसकी देशना करता हूँ!"

कथं च, भिक्खु, पच्चुप्पन्नेसु धम्मेसु संहीरति...पे०...एवं खो, भिक्खु, पच्चुप्पन्नेसु धम्मेसु संहीरति। कथं च, भिक्खु, पच्चुप्पन्नेसु धम्मेसु न संहीरति...पे०...एवं खो, भिक्खु, पच्चुप्पन्नेसु धम्मेसु न संहीरति।

"अतीतं नान्वागमेय्य, नप्पटिकङ्खे अनागतं।
यदतीतं पहीनं तं, अप्पत्तं च अनागतं॥
[B. 243] "पच्चुप्पन्नं च यो धम्मं, तत्थ तत्थ विपस्सति।
असंहीरं असङ्कुप्पं, तं विद्वा मनुब्रूहये॥
"अज्जेव किच्चमातप्पं, को जञ्ञा मरणं सुवे।
न हि नो सङ्गरं तेन, महासेनेन मच्चुना॥
"एवंविहारिं आतापिं, अहोरत्तमतन्दितं।
तं वे भद्देकरत्तो ति, सन्तो आचिक्खते मुनी" ति॥

४. इदमवोच भगवा। अत्तमनो आयस्मा लोमसकङ्गियो भगवतो भासितं अभिनन्दी ति॥

●

"अच्छा, भन्ते!" कह कर आयुष्मान् लोमशकाङ्गीय ने भगवान् के आदेश को स्वीकारा। तब भगवान् ने यों देशना की—

"अतीत का अनुगमन न करे...ऐसा शान्त मुनि कहते हैं। "भिक्षु! कैसे कोई साधक अतीत का अन्वागमन करता है?...पूर्ववत्...यों भिक्षु! साधक वर्तमान धर्मों में आसक्त नहीं होता। इसी आशय से कहा है—'अतीत का अन्वागमन न करें...शान्त मुनि कहते हैं।"

४. ऐसा भगवान् ने कहा—आप्तमना आयुष्मान् लोमशकाङ्गीय ने भगवान् के उपदेश का अनुमोदन किया।

लोमसकङ्गियभद्देकरत्तसुत्त समाप्त॥

●

३५. चुल्लकम्मविभंगसुत्तं

१. मनुस्सानं हीनप्पणीतताय को हेतु ?

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति [N. 280] जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो सुभो माणवो तोदेय्यपुत्तो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सुभो माणवो तोदेय्यपुत्तो भगवन्तं एतदवोच—

"को नु खो, भो गोतम, हेतु को पच्चयो येन मनुस्सानं येव सतं मनुस्सभूतानं दिस्सन्ति हीनप्पणीतता ? दिस्सन्ति हि, भो गोतम, मनुस्सा अप्पायुका, दिस्सन्ति दीघायुका; दिस्सन्ति बव्हाबाधा, दिस्सन्ति अप्पाबाधा; दिस्सन्ति दुब्बण्णा, दिस्सन्ति वण्णवन्तो; दिस्सन्ति अप्पेसक्खा, दिस्सन्ति महेसक्खा; दिस्सन्ति अप्पभोगा, दिस्सन्ति महाभोगा; दिस्सन्ति नीचकुलीना, दिस्सन्ति उच्चाकुलीना; दिस्सन्ति दुप्पञ्ञा, दिस्सन्ति पञ्ञवन्तो। को नु खो, भो गोतम, हेतु को पच्चयो येन [R. 203] मनुस्सानं येव सतं मनुस्सभूतानं दिस्सन्ति हीनप्पणीतता" ति ?

---

३५. क्षुद्रकर्मविभङ्गसूत्र

१. मनुष्यों की ऊँच-नीच (हीनता व उत्तमता) का कारण

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती के··· जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। तब तोदेयपुत्र शुभ माणवक भगवान् के पास आया। उसने आ कर भगवान् से कुशल-मङ्गल पूछा। पूछ कर वह एक ओर बैठ गया ! एक ओर बैठे उस तोदेयपुत्र शुभ माणवक ने भगवान् से यह प्रश्न किया—

"भो गौतम ! क्या कारण है, क्या प्रत्यय है कि सभी मानव आकार-प्रकार से समान होते हुए भी उनमें परस्पर हीनता या उत्तमता दिखायी देती है ! भो गौतम ! इस संसार में कुछ लोग अल्पायु दिखायी देते हैं और कुछ दीर्घायु; कुछ रोगी दिखायी देते हैं, कुछ नीरोग (स्वस्थ); कुछ कुरूप दिखायी देते हैं तो कुछ सुरूप (वर्णवान्); कुछ कम शक्ति वाले दिखायी देते हैं तो कुछ असीम शक्ति वाले; कुछ अल्प भौतिक सुख-साधन वाले और कुछ अपरिमित सुख-साधनवाले; कुछ नीच कुल में उत्पन्न होते दिखायी देते हैं तो कुछ उच्च कुल में; कुछ मन्दबुद्धि दिखायी देते हैं तो कुछ अत्यधिक प्रज्ञावान्। यों, भो गौतम ! आकार-प्रकार से समान होते हुए भी क्या कारण है क्या प्रत्यय है कि उनमें कोई हीन दिखायी देता है तो कोई उत्तम !"

२. कम्महेतुका मनुस्सानं हीनप्पणीतता

[B. 244] २. "कम्मस्सका, माणव, सत्ता कम्मदायादा कम्मयोनी कम्मबन्धू कम्मप्पटिसरणा। कम्मं सत्ते विभजति यदिदं—हीनप्पणीतताया" ति।

"न खो अहं इमस्स भोतो गोतमस्स सङ्खित्तेन भासितस्स वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स वित्थारेन अत्थं आजानामि। साधु मे भवं गोतमो तथा धम्मं देसेतु यथा अहं इमस्स भोतो गोतमस्स सङ्खित्तेन भासितस्स वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स वित्थारेन अत्थं आजानेय्यं" ति।

[N. 281] ३. "तेन हि, माणव, सुणाहि, साधुकं मनसि करोहि; भासिस्सामी" ति। "एवं, भो" ति खो सुभो माणवो तोदेय्यपुत्तो भगवतो पच्चस्सोसि। भगवा एतदवोच--

"इध, माणव, एकच्चो इत्थी वा पुरिसो वा पाणातिपाती होति लुद्दो लोहितपाणि हतपहते निविट्ठो अदयापन्नो पाणभूतेसु। सो तेन कम्मेन एवं समत्तेन एवं समादिन्नेन कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति। नो चे कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति, सचे मनुसत्तं आगच्छति यत्थ यत्थ पच्चा-

---

२. मनुष्यों की हीनता या उत्तमता स्वकर्माधीन

२. "माणवक! प्राणी कर्मस्वक (कर्म ही है धन जिनका) होते हैं, कर्मदायाद, कर्मयोनि, कर्मबन्धु और कर्मप्रतिशरण (कर्म के ही सहारे वाले) हैं। अतः प्राणियों का कर्म ही उन्हें हीनता-उत्तमता में विभक्त करता है।"

"भो गौतम! मैं आपके इस संक्षिप्त कथन का तात्पर्य ठीक से नहीं समझ पाया। अच्छा हो, भो गौतम! आप इसे कुछ विस्तार से ऐसा बतावें कि मैं आपके कथन को मर्म भली-भाँति समझ सकूँ।"

३. "तो माणव! सुनो। मेरी बात पर ठीक से मन लगाओ। मैं बताता हूँ।"

"अच्छा, श्रीमन्!"...तोदेयपुत्र शुभ माणव ने भगवान् की बात का उत्तर दिया। भगवान् बोले—

"यहाँ, माणव! कोई स्त्री या पुरुष प्राणातिपाती, रुद्र (क्रोधी), खून से रंगे हाथों वाला, मारकाट में लगा हुआ, एवं सभी प्राणियों के प्रति निर्दय हो। इस प्रकार ग्रहीत एवं इस प्रकार प्राप्त कर्म से, यह काया छोड़, मरने के बाद, वह दुर्गतिमय नरक में उत्पन्न होगा। यदि किसी कारण, उसका नरकपात न हो पावे, और वह मनुष्य योनि ही प्राप्त कर ले तो जहाँ-जहाँ वह उत्पन्न होगा अल्प आयु वाला

जायति अप्पायुको होति। अप्पायुकसंवत्तनिका एसा, माणव, पटिपदा यदिदं--पाणातिपाती होति लुद्दो लोहितपाणि हतपहते निविट्ठो अदयापन्नो पाणभूतेसु।

"इध पन, माणव, एकच्चो इत्थी वा पुरिसो वा पाणातिपातं पहाय पाणातिपाता पटिविरतो होति निहितदण्डो निहितसत्थो, लज्जी दयापन्नो सब्बपाणभूतहितानुकम्पी विहरति। सो तेन कम्मेन एवं समत्तेन एवं समादिन्नेन कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति। नो चे कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति, सचे मनुस्सत्तं आगच्छति यत्थ यत्थ पच्चाजायति दीघायुको होति। दीघायुकसंवत्तनिका एसा, माणव, पटिपदा यदिदं—पाणातिपातं पहाय पाणातिपाता पटिविरतो [R. 204] होति निहितदण्डो निहितसत्थो, लज्जी दयापन्नो सब्बपाणभूतहितानुकम्पी विहरति।

४. "इध, माणव, एकच्चो इत्थी वा पुरिसो वा सत्तानं [B. 245] विहेठकजातिको होति, पाणिना वा लेड्डुना वा दण्डेन वा सत्थेन वा। सो तेन कम्मेन एवं समत्तेन एवं समादिन्नेन कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति। नो चे कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति, सचे मनुस्सत्तं आगच्छति यत्थ यत्थ पच्चाजायति बव्हाबाधो होति। बव्हाबाधसंवत्तनिका एसा, माणव, पटिपदा

ही होगा। माणव! उसका पूर्व जन्म में प्राणातिपाती…निर्दय होना ही उसकी इस वर्तमान अल्प आयु के होने में प्रधान कारण है।

"फिर माणव! यहाँ कोई स्त्री या पुरुष प्राणातिपात को छोड़ कर उससे दूर रहता है, किसी पर दण्ड या शस्त्र नहीं उठाता…पूर्ववत्…सुगतिमय स्वर्ग लोक में उत्पन्न होगा। यदि किसी कारण वह स्वर्ग में उत्पन्न न हो पाये तो इस मनुष्य-योनि में ही जहाँ-जहाँ उत्पन्न होगा वहाँ-वहाँ दीर्घ आयु वाला होगा। माणव! उसका पूर्व जन्म में प्राणातिपात से विरत रहना…दयालु होना ही इस जन्म में दीर्घायु होने में प्रधान कारण है।

४. "फिर, माणव! यहाँ कोई स्त्री या पुरुष हाथ से, ढेले से, डण्डे से या शस्त्र से प्राणियों को मारता है, परेशान करता है, अपमानित करता है, वह उस गृहीत व प्राप्त कर्म से, देहपात के बाद मरणानन्तर या तो नरक योनि में गिरेगा या फिर किसी कारण मनुष्य योनि में भी उत्पन्न हो भी जाय तो यहाँ वह सदा रोगी (नाना-व्याधियों से पीड़ित) रहेगा। यह उसका हाथ से, ढेले से या डण्डे से प्राणियों को

यदिदं—सत्तानं विहेठकजातिको होति पाणिना वा लेड्डुना वा दण्डेन वा सत्थेन वा।

"इध पन, माणव, एकच्चो इत्थी वा पुरिसो वा सत्तानं अविहेठक-जातिको होति पाणिना वा लेड्डुना वा दण्डेन वा सत्थेन वा। सो तेन कम्मेन एवं समत्तेन एवं समादिन्नेन कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं [N. 282] लोकं उपपज्जति। नो चे कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति, सचे मनुस्सत्तं आगच्छति यत्थ यत्थ पच्चाजायति अप्पाबाधो होति। अप्पाबाधसंवत्तनिका एसा, माणव, पटिपदा यदिदं-सत्तानं अविहेठकजातिको होति पाणिना वा लेड्डुना वा दण्डेन वा सत्थेन वा।

५. "इध, माणव, एकच्चो इत्थी वा पुरिसो वा कोधनो होति उपायासबहुलो; अप्पं पि वुत्तो समाना अभिसज्जति कुप्पति ब्यापज्जति पतिट्ठीयति कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पातुकरोति। सो तेन कम्मेन एवं समत्तेन एवं समादिन्नेन कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति। नो चे कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति, सचे मनुस्सत्तं आगच्छति यत्थ यत्थ पच्चाजायति दुब्बण्णो होति। दुब्बण्णसंवत्तनिका एसा, माणव, पटिपदा यदिदं--कोधनो होति उपायासबहुलो; अप्पं पि वुत्तो समानो अभिसज्जति कुप्पति ब्यापज्जति पतिट्ठीयति कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पातुकरोति।

"इध पन, माणव, एकच्चो इत्थी वा पुरिसो वा अक्कोधनो होति अनुपायासबहुलो; बहुं पि वुत्तो समानो नाभिसज्जति न कुप्पति न ब्यापज्जति न पतिट्ठीयति न कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पातुकरोति। सो तेन कम्मेन एवं समत्तेन एवं समादिन्नेन कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं [B. 246] सग्गं लोकं उपपज्जति। नो चे कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं

परेशान करना ही नाना व्याधियों से पीड़ित होने में कारण है।

"माणव! यहाँ कोई स्त्री या पुरुष प्राणियों को हाथ, ढेले, डण्डे या शस्त्र से कभी परेशान या अपमानित न करता हो तो वह उस कर्म के प्रभाव से उस देहपात के बाद स्वर्गलोक में...अल्पव्याधिवाला होने में प्रधान कारण है।

५. "माणव! यहाँ कोई...क्रोधी हो, सब को क्रोध के कारण परेशान (उपायास) करता हो, थोड़ा कहते ही आवेश में आ जाय, क्रोध करे, मारने को दौड़े, दूसरों पर द्वेष व अविश्वास करने लगे तो वह उस कर्म से...पूर्ववत्...दुर्वर्ण (कुरूप) होता है।...

सग्गं लोकं उपपज्जति, सचे मनुस्सत्तं आगच्छति यत्थ यत्थ पच्चाजायति पासादिको होति। पासादिकसंवत्तनिका एसा, माणव, पटिपदा यदिदं–अक्कोधनो होति अनुपायासबहुलो; बहुं पि वुत्तो समानो नाभिसज्जति न कुप्पति न ब्यापज्जति न पतिट्ठीयति न कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पातुकरोति।

६. "इध, माणव, एकच्चो इत्थी वा पुरिसो वा इस्सामनको होति; परलाभसक्कारगरुकारमाननवन्दनपूजनासु इस्सति उपदुस्सति इस्सं बन्धति। सो तेन कम्मेन एवं समत्तेन एवं समादिन्नेन कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति। नो चे कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति, सचे मनुस्सत्तं आगच्छति यत्थ यत्थ पच्चाजायति अप्पेसक्खो होति। अप्पेसक्खसंवत्तनिका एसा, [N. 283] माणव, पटिपदा यदिदं––इस्सामनको होति; परलाभसक्कारगरुकारमाननवन्दनपूजनासु इस्सति उपदुस्सति इस्सं बन्धति।

"इध पन, माणव, एकच्चो इत्थी वा पुरिसो वा अनिस्सा- [R. 205] मनको होति; परलाभसक्कारगरुकारमाननवन्दनपूजनासु न इस्सति न उपदुस्सति न इस्सं बन्धति। सो तेन कम्मेन एवं समत्तेन एवं समादिन्नेन कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति। नो चे कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति, सचे मनुस्सत्तं आगच्छति यत्थ यत्थ पच्चाजायति महेसक्खो होति। महेसक्खसंवत्तनिका एसा, माणव, पटिपदा यदिदं––अनिस्सामनको होति; परलाभसक्कारगरुकारमाननवन्दनपूजनासु न इस्सति न उपदुस्सति न इस्सं बन्धति।

७. "इध, माणव, एकच्चो इत्थी वा पुरिसो वा न दाता होति समणस्स वा ब्राह्मणस्स वा अन्नं पानं वत्थं यानं मालागन्धविलेपनं सेय्यावसथपदीपेय्यं। सो तेन कम्मेन एवं समत्तेन एवं समादिन्नेन कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति। नो चे कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति, सचे मनुस्सत्तं आगच्छति

"यदि कोई...क्रोधी न हो...प्रासादिक (सुन्दर वर्ण वाला) होता है।...

६. "यहाँ कोई...डाह (ईर्ष्या) करने वाला हो, दूसरों के लाभ, सत्कार एवं सम्मान को देख कर ईर्ष्या करे, द्वेष करे, जले-भुने तो वह उस कर्म के प्रभाव से... अल्पशक्ति वाला (अप्पेसक्ख) होता है...।

"यदि कोई...विपुल शक्तिवाला (महेसक्ख) होता है।...

७. "यहाँ, माणव, जो कोई स्त्री या पुरुष किसी श्रमण या ब्राह्मण को न अन्न देता है न पान, न वस्त्र, न सवारी, न मालागन्धविलेपन न प्रकाशयुक्त घर। वह

यत्थ यत्थ पच्चाजायति अप्पभोगो होति। अप्पभोगसंवत्तनिका एसा, [B. 247] माणव, पटिपदा यदिदं—न दाता होति समणस्स वा ब्राह्मणस्स वा अन्नं पानं वत्थं यानं मालागन्धविलेपनं सेय्यावसथपदीपेय्यं।

"इध पन, माणव, एकच्चो इत्थी वा पुरिसो वा दाता होति समणस्स वा ब्राह्मणस्स वा अन्नं पानं वत्थं यानं मालागन्धविलेपनं सेय्यावसथपदीपेय्यं। सो तेन कम्मेन एवं समत्तेन एवं समादिन्नेन कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति। नो चे कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति, सचे मनुस्सत्तं आगच्छति यत्थ यत्थ पच्चाजायति महाभोगो होति। महाभोगसंवत्तनिका एसा, माणव, पटिपदा यदिदं--दाता होति समणस्स वा ब्राह्मणस्स वा अन्नं पानं वत्थं यानं मालागन्धविलेपनं सेय्यावसथपदीपेय्यं।

[N. 284] ८. "इध, माणव, एकच्चो इत्थी वा पुरिसो वा थद्धो होति अतिमानी; अभिवादेतब्बं न अभिवादेति, पच्चुट्ठातब्बं न पच्चुट्ठेति, आसनारहस्स न आसनं देति, मग्गारहस्स न मग्गं देति, सक्कातब्बं न सक्करोति, गरुकातब्बं न गरुकरोति, मानेतब्बं न मानेति, पूजेतब्बं न पूजेति। सो तेन कम्मेन एवं समत्तेन एवं समादिन्नेन कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति। नो चे कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति, सचे मनुस्सत्तं आगच्छति यत्थ यत्थ पच्चाजायति नीचकुलीनो होति। नीचकुलीनसंवत्तनिका एसा, माणव, पटिपदा यदिदं--थद्धो होति अतिमानी; अभिवादेतब्बं न अभिवादेति, पच्चुट्ठातब्बं न पच्चुट्ठेति, आसनारहस्स न आसनं देति, मग्गारहस्स न मग्गं देति, सक्कातब्बं न सक्करोति, गरुकातब्बं न

इस कृत्य के प्रभाव से देहपात के बाद…उसकी इस अल्पभोगता में किसी को अन्न …न देना ही प्रधान कारण है।

"यहाँ कोई, माणव ! श्रमण-ब्राह्मण का अन्न, पान…दान देता है वह इस कर्म के प्रभाव से…स्वर्ग…उच्चकुल में…महाभोग…।

८. "फिर यहाँ, माणव ! कोई स्त्री या पुरुष स्तब्ध (अतिगर्व करने वाला) या अतिमानी होता है, वह किसी अभिवादनीय का न अभिवादन करता है, न अभ्युत्थान करता है, न आसन देने योग्य को आसन देता है, न मार्ग पूछने वाले को मार्ग बताता है, न सत्करणीय का सत्कार करता है, न गुरुकरणीय का गौरव मानता है, माननीय का मान नहीं करता, पूजनीय की पूजा नहीं करता। वह इस कर्म के प्रभाव से…नीच कुल में पैदा होता है। ये कार्य…उसके नीच कुल में पैदा

गरुकरोति, मानेतब्बं न मानेति, पूजेतब्बं न पूजेति ।

"इध पन, माणव, एकच्चो इत्थी वा पुरिसो वा अत्थद्धो होति अनतिमानी; अभिवादेतब्बं अभिवादेति, पच्चुट्ठेति, आसनारहस्स आसनं देति, मग्गारहस्स मग्गं देति, सक्कातब्बं सक्करोति, गरुकातब्बं गरुकरोति, मानेतब्बं मानेति, पूजेतब्बं पूजेति । सो तेन कम्मेन एवं समत्तेन एवं समादिन्नेन कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति । नो चे कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति, सचे [B. 248] मनुस्सत्तं आगच्छति यत्थ यत्थ पच्चाजायति उच्चाकुलीनो होति । उच्चाकुलीनसंवत्तनिका एसा, माणव, पटिपदा यदिदं—अत्थद्धो होति अनतिमानी; अभिवादेतब्बं अभिवादेति, पच्चुट्ठातब्बं पच्चुट्ठेति, आसनारहस्स आसनं देति, मग्गारहस्स मग्गं देति, सक्कातब्बं सक्करोति, गरुकातब्बं गरुकरोति, मानेतब्बं मानेति, पूजेतब्बं पूजेति ।

९. "इध, माणव, एकच्चो इत्थी वा पुरिसो वा समणं वा ब्राह्मणं वा उपसङ्कमित्वा न परिपुच्छिता होति—'किं, भन्ते, कुसलं, किं अकुसलं; किं सावज्जं, किं अनवज्जं; किं सेवितब्बं, किं न सेवितब्बं; किं मे करीयमानं दीघरत्तं अहिताय दुखाय होति, किं वा पन मे करीयमानं दीघरत्तं हिताय सुखाय होती' ति ? सो तेन कम्मेन एवं समत्तेन एवं समादिन्नेन कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति । नो चे कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं [N. 285] विनिपातं निरयं उपपज्जति, सचे मनुस्सत्तं आगच्छति यत्थ यत्थ पच्चाजायति दुप्पञ्ञो होति । दुप्पञ्ञसंवत्तनिका एसा, माणव, पटिपदा यदिदं—समणं वा ब्राह्मणं वा उपसङ्कमित्वा न परिपुच्छिता होति—'किं, भन्ते, कुसलं, किं अकुसलं; किं सावज्जं, किं अनवज्जं; किं सेवितब्बं, किं न सेवितब्बं; किं मे करीयमानं दीघरत्तं अहिताय दुक्खाय होति, किं वा पन मे करीयमानं दीघरत्तं हिताय सुखाय होती' ति ?

होने के प्रधान कारण हैं ।

"और यहाँ, माणव ! जो कोई स्त्री या पुरुष स्तब्ध, अतिमानी नहीं होता''' वह इस कार्य के प्रभाव से उच्च कुल में पैदा होता है । इस उच्च कुल में पैदा होने का यह स्तब्ध होना'''ही प्रधान कारण हैं ।

९. "यहाँ, माणव ! जो कोई स्त्री या पुरुष श्रमण या ब्राह्मण के पास जाकर यह नहीं पूछता—'भन्ते ! आप कुशल से तो हैं, या नहीं ? कोई कष्ट तो नहीं है ? आपकी क्या सेवा की जाय, क्या न किया जाय ? क्या करने से मेरे लिये दीर्घ काल तक अहित कर या दुःखप्रद'''या सुखप्रद होगा' ?

[R. 206] "'इध पन, माणव, एकच्चो इत्थी वा पुरिसो वा समणं वा ब्राह्मणं वा उपसङ्कमित्वा परिपुच्छिता होति—'किं, भन्ते, कुसलं, किं अकुसलं; किं सावज्जं, किं अनवज्जं; किं सेवितब्बं, किं न सेवितब्बं; किं मे करीयमानं दीघरत्तं अहिताय दुक्खाय होति, किं वा पन मे करीयमानं दीघरत्तं हिताय सुखाय होती' ति ? सो तेन कम्मेन एवं समत्तेन एवं समादिन्नेन कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति । नो चे कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति, सचे मनुस्सत्तं आगच्छति यत्थ यत्थ पच्चाजायति महापञ्ञो होति । महापञ्ञसंवत्तनिका एसा, माणव, पटिपदा यदिदं—समणं वा ब्राह्मणं वा उपसङ्कमित्वा परि- [B. 249] पुच्छिता होति—'किं, भन्ते, कुसलं, किं अकुसलं; किं अनवज्जं; किं सेवितब्बं, किं न सेवितब्बं; किं मे करीयमानं दीघरत्तं अहिताय दुक्खाय होति, किं वा पन मे करीयमानं दीघरत्तं हिताय सुखाय होती' ति ?

१०. "इति खो, माणव, अप्पायुकसंवत्तनिका पटिपदा अप्पायुकत्तं उपनेति, दीघायुकसंवत्तनिका पटिपदा दीघायुकत्तं उपनेति; बव्हाबाधसंवत्तनिका पटिपदा बव्हाबाधत्तं उपनेति, अप्पाबाधसंवत्तनिका पटिपदा अप्पाबाधत्तं उपनेति; दुब्बण्णसंवत्तनिका पटिपदा दुब्बण्णत्तं उपनेति, पासादिकसंवत्तनिका पटिपदा पासादिकत्तं उपनेति; अप्पेसक्खसंवत्तनिका पटिपदा अप्पेसक्खत्तं उपनेति, महेसक्खसंवत्तनिका पटिपदा महेसक्खत्तं उपनेति; अप्पभोगसंवत्तनिका पटिपदा अप्पभोगत्तं उपनेति, महाभोगसंव-

---

"वह इस कार्य के दुष्प्रभाव से देहपात के बाद नरकयोनि में··· दुष्प्रज्ञ (मन्द-बुद्धि) होगा । उसकी इस दुष्प्रज्ञता में··· प्रधान कारण हैं ।

"उधर दूसरी तरफ, माणव ! कोई स्त्री या पुरुष श्रमण-ब्राह्मणों के पास जाकर उनका कुशलक्षेम पूछता रहता है··· वह इस सत्कर्म के प्रभाव से स्वर्ग में··· उच्चकुल में पैदा होकर महाप्राज्ञ (अत्यन्त बुद्धिमान्) बनता है । उसकी इस महाप्राज्ञता में··· प्रधान कारण है ।

१०. "यों, माणव ! अल्पायु के उत्पादक कारण से उद्भूत कार्य मनुष्य को अल्पायु देते हैं और महाप्रज्ञा के उत्पादक कारण महाप्रज्ञा देते हैं । इसी तरह अधिक रोगोत्पादक कारण मनुष्य को अधिक रोगवान् बनाते हैं और अल्परोगोत्पादक··· स्वस्थ । कुरूप बनाने वाले··· कुरूप और सुन्दर बनाने वाले··· सुन्दर··· अल्पशक्ति वाले··· अल्प सामर्थ्य और महासामर्थ्य वाले··· महासामर्थ्यवान् बनाते हैं । अल्प-भोगवाले··· अल्पभोगवान् एवं महाभोग वाले··· महाभोगशाली बनाते हैं । नीच कुल में पैदा करने वाले··· नीच कुल में और उच्च कुल में पैदा करने वाले··· उच्च-

त्तनिका पटिपदा महाभोगत्तं उपनेति; नीचकुलीनसंवत्तनिका पटि- [N.286]
पदा नीचकुलीनत्तं उपनेति, उच्चाकुलीनसंवत्तनिका पटिपदा उच्चाकुलीनत्तं उपनेति; दुप्पञ्ञसंवत्तनिका पटिपदा दुप्पञ्ञत्तं उपनेति, महापञ्ञसंवत्तनिका पटिपदा महापञ्ञत्तं उपनेति। कम्मस्सका, माणव, सत्ता कम्मदायादा कम्मयोनी कम्मबन्धू कम्मप्पटिसरणा। कम्मं सत्ते विभजति यदिदं—हीनप्पणीतताया" ति।

३. तोदेय्यपुत्तस्स उपासकत्तपटिवेदना

११. एवं वुत्ते, सुभो माणवो तोदेय्यपुत्तो भगवन्तं एतदवोच—"अभिक्कन्तं, भो गोतम, अभिक्कन्तं, भो गोतम! सेय्यथापि, भो गोतम, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य-'चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती' ति; एवमेव भोता गोतमेन अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं भवन्तं गोतमं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति।

कुल में…। दुष्प्रज्ञता (मन्दबुद्धि) वाले…दुष्प्रज्ञ और महाप्रज्ञा वाले…महाप्रज्ञा के कारण (हेतु) बनते हैं। यों यहाँ, माणव! सभी प्राणी अपने-अपने किये कर्मों के अधीन व कर्मों के वश हो उस-उस रूप में जन्मते-मरते हैं। यों, कर्म ही प्राणियों की हीन या उत्तम कोटि का विभाजन करता है।

३. तौदेयपुत्र द्वारा भगवान् का उपासकत्व स्वीकार करना

११. (भगवान् द्वारा) ऐसा कहे जाने पर, तौदेयपुत्र शुभ माणव ने भगवान् से यों निवेदन किया—"भो गौतम! आपने बात को बहुत स्पष्ट कर दिया। जैसे, भो गौतम! कोई औंधे (पात्र) को सीधा कर दें, ढके को खुला कर दे, दिग्भ्रान्त (मूढ) को सही मार्ग पर लगा दे, या कोई अन्धकार में तैल का दीपक इसलिये ले कर खड़ा हो जाय कि रास्ता देखना चाहने वाले (चक्षुष्मान् प्राणी) रास्ता देख सकें; इसी तरह आप गौतम ने अनेक तरह से धर्म का स्पष्ट प्रवचन किया। (इस कारण) भो गौतम! यह मैं आप गौतम की शरण में जाता हूँ, धर्म की…भिक्षुसङ्घ की शरण में जाता हूँ। आज से आप पूज्य गौतम मुझे जीवनपर्यन्त अपना उपासक समझें॥"

चुल्लकम्मविभङ्गसुत्त समाप्त॥

●

३६. महाकम्मविभंगसुत्तं

१. पोतलिपुत्त-समिद्धि-उदायिवत्थु

[N. 287, R. 207, B. 250] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। तेन खो पन समयेन आयस्मा समिद्धि अरञ्ञकुटिकायं विहरति। अथ खो पोतलिपुत्तो परिब्बाजको जङ्घाविहारं अनुचङ्कममानो अनुविचरमानो येनायस्मा समिद्धि तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता समिद्धिना सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो पोतलिपुत्तो परिब्बाजको आयस्मन्तं समिद्धिं एतदवोच—"सम्मुखा मेतं, आवुसो समिद्धि, समणस्स गोतमस्स सुतं, सम्मुखा पटिग्गहितं—'मोघं कायकम्मं मोघं वचीकम्मं, मनोकम्ममेव सच्चं' ति। अत्थि च सा समापत्ति यं समापत्तिं समापन्नो न किञ्चि वेदियती" ति ?

"मा हेवं, आवुसो पोतलिपुत्त, अवच; मा हेवं, आवुसो पोतलिपुत्त, अवच; मा भगवन्तं अब्भाचिक्खि। न हि साधु भगवतो अब्भक्खानं। न हि भगवा एवं वदेय्य—'मोघं कायकम्मं मोघं वचीकम्मं, मनोकम्ममेव सच्चं' ति। अत्थि च खो सा, आवुसो, समापत्ति यं समापत्तिं समापन्नो न किञ्चि वेदियती" ति।

"कीवचिरं पब्बजितोसि, आवुसो समिद्धी" ति ?

"न चिरं, आवुसो ! तीणि वस्सानी" ति।

---

३६. महाकर्मविभङ्गसूत्र

१. पोतलिपुत्र, समृद्धि एवं उदायी का संवाद

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) राजगृह के वेणुवन-स्थित कलन्दकनिवाप में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय आयुष्मान् समृद्धि भी पास के जंगल में साधना कर रहे थे। तब पोतलिपुत्र परिव्राजक पैदल ही घूमते-घूमते वहाँ पहुँच कर कुशलमङ्गल पूछ कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस पोतलिपुत्र परिव्राजक ने आयुष्मान् समृद्धि को यों कहा— "आयुष्मन् समृद्धि ! मैंने स्वयं श्रमण गौतम को कहते सुना है, उन से जाना है कि कायिक कर्म निष्फल (मोघ) हैं, वाचिक कर्म भी निष्फल हैं, मानस कर्म ही सत्य है। क्या ऐसी कोई समाधि की अवस्था है, जिसे प्राप्त करने पर, कुछ भी अनुभव करने को नहीं रह जाता।"

"आयुष्मन् पोतलिपुत्र ! ऐसा न कहो !···ऐसा न कहो ! भगवान् पर झूठा (न कहे का) आरोप (अभ्याख्यान) न लगाओ। भगवान् पर झूठा आरोप लगाना उचित नहीं ! भगवान् ऐसा कह ही नहीं सकते—'कायिक कर्म निष्फल है···कुछ भी अनुभव करने को नहीं रह जाता।'"

"एत्थ दानि मयं थेरे भिक्खू किं वक्खाम, यत्र हि नाम एवंनवो भिक्खु सत्थारं परिरक्खितब्बं मञ्ञिस्सति ! सञ्चेतनिकं, आवुसो समिद्धि, कम्मं कत्वा कायेन वाचाय मनसा किं सो वेदियती" ति ?

"सञ्चेतनिकं, आवुसो पोतलिपुत्त, कम्मं कत्वा कायेन वाचाय मनसा दुक्खं सो वेदियति" ति।

अथ खो पोतलिपुत्तो परिब्बाजको आयस्मतो समि- [N. 288] द्धिस्स भासितं नेव अभिनन्दि नप्पटिक्कोसि; अनभिनन्दित्वा अप्पटिक्कोसित्वा उट्ठायासना पक्कामि।

२. अथ खो आयस्मा समिद्धि अचिरपक्कन्ते पोतलिपुत्ते परिब्बाजके येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कमि उपसङ्कमित्वा आयस्मता आनन्देन [R.208] सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा समिद्धि यावतको अहोसि पोतलिपुत्तेन परिब्बाजकेन सद्धिं कथासल्लापो तं सब्बं आयस्मतो आनन्दस्स आरोचेसि।

एवं वुत्ते, आयस्मा आनन्दो आयस्मन्तं समिद्धिं एतदवोच—"अत्थि

"आयुष्मन् समिद्धि ! तुम्हें प्रव्रजित हुए कितने वर्ष हुए ?"

"आयुष्मन् ! बहुत अधिक नहीं, केवल तीन वर्ष"।

(तब पोतलिपुत्र परिव्राजक ने सोचा—) "बड़े-बूढ़े भिक्षुओं की तो बात ही क्या की जाय, जब कि छोटे (अचिरप्रव्रजित) भिक्षु भी अपने शास्ता की रक्षा करने में इतने सावधान हैं !" (तब वह बोला—) "आयुष्मन् समिद्धि ! मनुष्य जान-बूझ कर किये हुए काय-वाक्-मनः कर्म से क्या अनुभव करता है ?"

"मनुष्य जान-बूझ कर किये कर्म से दुःख अनुभव करता है।" तब उस पोतलिपुत्र परिव्राजक ने आयुष्मान् समिद्धि के इस कथन को न स्वीकार किया, न उसका विरोध ही किया। यों स्वीकृति या विरोध के विना ही वह आसन से उठ कर चल दिया।

२. तब आयुष्मान् समिद्धि, पोतलिपुत्र के जाने के कुछ ही समय बाद, जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे वहाँ पहुँचे। पहुँच कर आयुष्मान् आनन्द के साथ... सम्मोदन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् समिद्धि ने अभी कुछ देर पहले जो कुछ भी पोतलिपुत्र परिव्राजक के साथ कथासँल्लाप हुआ था, वह सब आयुष्मान् आनन्द को कह सुनाया।

ऐसा कहने पर आयुष्मान् आनन्द ने आयुष्मान् समिद्धि से कहा—

"आयुष्मन् समिद्धि ! भगवान के दर्शन के समय यह कथा धर्मश्रवण में सहायक

खो इदं, आवुसो समिद्धि, कथापाभतं भगवन्तं दस्सनाय। आयामावुसो [B. 251] समिद्धि, येन भगवा तेनुपसङ्कमिस्साम; उपसङ्कमित्वा एतमत्थं भगवतो आरोचेस्साम। यथा नो भगवा ब्याकरिस्सति तथा नं धारेस्सामा'' ति। ''एवमावुसो'' ति खो आयस्मा समिद्धि आयस्मतो आनन्दस्स पच्चस्सोसि।

अथ खो आयस्मा च आनन्दो आयस्मा च समिद्धि येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दो यावतको अहोसि आयस्मतो समिद्धिस्स पोतलिपुत्तेन परिब्बाजकेन सद्धिं कथासल्लापो तं सब्बं भगवतो आरोचेसि। एवं वुत्ते, भगवा आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच--''दस्सनं पि खो अहं, आनन्द, पोतलिपुत्तस्स परिब्बाजकस्स नाभिजानामि, कुतो पनेवरूपं कथासल्लापं! इमिना च, आनन्द, समिद्धिना मोघपुरिसेन पोतलिपुत्तस्स परिब्बाजकस्स विभज्जव्याकरणीयो पञ्हो एकंसेन ब्याकतो'' ति। एवं वुत्ते, आयस्मा उदायी भगवन्तं एतदवोच--''सचे पन, भन्ते, आयस्मता समिद्धिना इदं सन्धाय भासितं--यं किञ्चि वेदयितं तं दुक्खस्मि'' ति।

[N. 289] ३. अथ खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—

होगी। आओ, आयुष्मन् समिद्धि! जहाँ भगवान् विराजमान हैं वहाँ चलें। चल कर भगवान् से यह कथा-संवाद निवेदन करें। जैसा वे भगवान् बतायेंगे उसे ही हम लोग यथार्थ समझेंगे।

''ठीक है, आयुष्मन् आनन्द!''—आयुष्मान् समिद्धि ने उत्तर दिया।

तब आयुष्मान् आनन्द और आयुष्मान् समिद्धि जहाँ भगवान् विराजमान थे, वहाँ पहुँचे।...एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्द ने आयुष्मान् समिद्धि के साथ पोतलिपुत्र परिव्राजक की जो कुछ भी बात हुई थी, सब विस्तार से कह सुनायी। ऐसा कहे जाने पर भगवान् आयुष्मान् आनन्द से यों बोले—''आनन्द! मैंने तो पोतलिपुत्र परिव्राजक को आज तक देखा भी नहीं है, उससे कथासँल्लाप करना तो दूर की बात है! और आनन्द! इस समृद्धि मोघपुरुष ने भी पोतलिपुत्र परिव्राजक को विभाग करके उत्तर देने योग्य प्रश्न का एक अंश से ही व्याख्यान किया।'' ऐसा कहे जाने पर (पास बैठे) उदायी भिक्षु ने भगवान् से पूछा—''भन्ते! आयुष्मन् समिद्धि ने क्या सोच कर यह कहा—'जो कुछ वेदनयोग्य है, वह दुःखविषयक है'?''

३. तब भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द को सम्बोधन करते हुए कहा—

"पस्ससि नो त्वं, आनन्द, इमस्स उदायिस्स मोघपुरिसस्स उम्मग्गं? अञ्ञासिं खो अहं, आनन्द--'इदानेवायं उदायी मोघपुरिसो उम्मुज्जमानो अयोनिसो उम्मुज्जिस्सती' ति। आदिं येव, आनन्द, पोतलिपुत्तेन परिब्बाजकेन तिस्सो वेदना पुच्छिता। सचायं, आनन्द, समिद्धि मोघपुरिसो पोतलिपुत्तस्स परिब्बाजकस्स एवं पुट्ठो एवं ब्याकरेय्य--'सञ्चेतनिकं, [R. 209] आवुसो पोतलिपुत्त, कम्मं कत्वा कायेन वाचाय मनसा सुखवेदनीयं सुखं सो वेदयति; सञ्चेतनिकं, आवुसो पोतलिपुत्त, कम्मं कत्वा कायेन वाचाय मनसा दुक्खवेदनीयं दुक्खं सो वेदयति; सञ्चेतनिकं, आवुसो पोतलिपुत्त, कम्मं कत्वा कायेन वाचाय मनसा अदुक्खमसुखवेदनीयं अदुक्खमसुखं सो वेदयती' ति। एवं ब्याकरमानो खो, आनन्द, समिद्धि मोघपुरिसो पोतलिपुत्तस्स परिब्बाजकस्स सम्मा ब्याकरमानो ब्याकरेय्य। अपि च, आनन्द, के च अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका बाला अब्यत्ता के च [B. 252] तथागतस्स महाकम्मविभङ्गं जानिस्सन्ति सचे तुम्हे, आनन्द, सुणेय्याथ तथागतस्स महाकम्मविभङ्गं विभजन्तस्सा" ति।

२. भगवतो महाकम्मविभङ्गे ब्याकरणं

४. "एतस्स, भगवा, कालो, एतस्स, सुगत, कालो यं भगवा महाकम्मविभङ्गं विभजेय्य। भगवतो सुत्वा भिक्खू धारेस्सन्ती" ति।

"आनन्द! तुम देख रहे हो न इस मोघपुरुष उदायी की उन्मार्गगामिता (उछल-कूद या उमंग)! मैं इसी समय समझ गया कि यह मोघपुरुष उदायी डुबकी लगाते हुए (किसी बात पर गहराई से विचार करते हुए), मूल पर ध्यान दिये बिना ही डुबकी लगायगा! आनन्द! पोतलिपुत्र परिव्राजक ने तो प्रारम्भ में ही तीन वेदनाएँ पूछी थीं! आनन्द! इस मोघपुरुष समिद्धि द्वारा पोतलिपुत्र परिव्राजक को यह उत्तर देना चाहिये था—'आयुष्मन् पोटलिपुत्र! जान-बूझकर किये काय-वचन-मन से कर्म कर के वह सुखवेदनीय सुख को अनुभव करेगा,''' दुखवेदनीय दुःख को''' अदुःख-असुख-वेदनीय अदुःख-असुख को अनुभव करेगा।' आनन्द! उस पोतलिपुत्र को यह उत्तर देकर यह मोघपुरुष समिद्धि ठीक से उत्तर देता। और, ये अन्यतीर्थिक परिव्राजक तो अज्ञ या मोटी बुद्धि वाले हैं, उनमें कौन तथागत द्वारा उपदिष्ट महाकर्मविभङ्ग को जान-समझ पायगा। आनन्द! क्या तुम तथागत द्वारा महाकर्मविभङ्ग का व्याख्यान किये जाते हुए सुनना चाहोगे?"

भगवान् द्वारा महाकर्मविभङ्ग का व्याख्यान

४. आनन्द ने कहा—"हाँ! भगवन्! इसी व्याख्यान का तो अब अवसर है, प्रसङ्ग है। भगवान् से सुनकर ही भिक्षु इसे सम्यक्तया समझ पायेंगे।"

"तेन हानन्द, सुणाहि, साधुकं मनसि करोहि; भासिस्सामी" ति।

"एवं, भन्ते" ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि।

भगवा एतदवोच—

चत्तारो पुग्गला

५. "चत्तारोमे, आनन्द, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो?

"इधानन्द, एकच्चो पुग्गलो इध पाणातिपाती होति, अदिन्नादायी होति, कामेसुमिच्छाचारी होति, मुसावादी होति, पिसुणवाचो होति, [N. 290] फरुसवाचो होति, सम्फप्पलापी होति, अभिज्झालु होति, ब्यापन्नचित्तो होति, मिच्छादिट्ठि होति। सो कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति। (१)

"इध पनानन्द, एकच्चो पुग्गलो इध पाणातिपाती होति, अदिन्नादायी होति, कामेसुमिच्छाचारी होति, मुसावादी होति, पिसुणवाचो होति, फरुसवाचो होति, सम्फप्पलापी होति, अभिज्झालु होति, ब्यापन्नचित्तो होति, मिच्छादिट्ठि होति। सो कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति। (२)

"इधानन्द, एकच्चो पुग्गलो इध पाणातिपाता पटिविरतो होति, अदिन्नादाना पटिविरतो होति, कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो होति, मुसावादा पटिविरतो होति, पिसुणाय वाचाय पटिविरतो होति, फरुसाय

"तो, आनन्द! सुनो, ठीक से मन में बैठा लो, मैं बताता हूँ।"

"ठीक है, भन्ते"—आनन्द ने कहा।

चार पुद्गल—

भगवान् यों बोले—

"आनन्द! लोक में चार प्रकार के पुद्गल होते हैं। कौन से चार?

"यहाँ, आनन्द! कोई पुद्गल हिंसक, चौर, व्यभिचारी व मृषावादी होता है। चुगलखोर, कर्कशवाक्, सम्प्रलापी, अभिध्यालु, व्यापादचित्त एवं मिथ्यादृष्टि होता है। वह इस देहपात के बाद, मरणानन्तर, ...नरक में पैदा होता है। (१)

"और फिर यहाँ, आनन्द! कोई पुद्गल प्राणातिपाती, चौर...मिथ्यादृष्टि होकर भी देहपात के बाद मरणानन्तर सुगतिमय...स्वर्ग लोक में उत्पन्न होता है। (२)

"...प्राणातिपात...सम्प्रलाप से विरत रहता है, अनभिध्यालु, अव्यापन्नचित्त एवं

वाचाय पटिविरतो होति, सम्फप्पलापा पटिविरतो होति, [R. 210] अनभिज्झालु होति, अब्यापन्नचित्तो होति, सम्मादिट्ठि होति। सो कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति। (३)

"इध पनानन्द एकच्चो पुग्गलो इध पाणातिपाता पटिविरतो होति, अदिन्नादाना पटिविरतो होति, कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो होति, मुसावादा पटिविरतो होति, पिसुणाय वाचाय पटिविरतो होति, [B.253] फरुसाय वाचाय पटिविरतो होति, सम्फप्पलापा पटिविरतो होति, अनभिज्झालु होति, अब्यापन्नचित्तो होति, सम्मादिट्ठि होति। सो कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं बिनिपातं निरयं उपपज्जति। (४)

६. "इधानन्द, एकच्चो समणो वा ब्राह्मणो वा आतप्पमन्वाय पधानमन्वाय अनुयोगमन्वाय अप्पमादमन्वाय सम्मामनसिकारमन्वाय तथारूपं चेतोसमाधिं फुसति यथासमाहिते चित्ते दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन अमुं पुग्गलं पस्सति—इध पाणातिपातिं अदिन्नादायिं कामेसुमिच्छाचारिं मुसावादिं पिसुणवाचं फरुसवाचं सम्फप्पलापिं अभिज्झालुं ब्यापन्नचित्तं मिच्छादिट्ठिं कायस्स भेदा परं मरणा पस्सति अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपन्नं। सो एवमाह—'अत्थि किर, भो, पापकानि कम्मानि, अत्थि दुच्चरितस्स विपाको। [N. 291] अमाहं पुग्गलं अद्दसं इध पाणातिपातिं अदिन्नादायिं ...पे०... मिच्छादिट्ठिं कायस्स भेदा परं मरणा पस्सामि अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपन्नं ति। सो एवमाह—'यो किर, भो, पाणातिपाती अदिन्नादायी ...पे०... मिच्छादिट्ठि, सब्बो सो कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति। ये एवं जानन्ति, ते सम्मा जानन्ति;

सम्यग्दृष्टि होता है। वह देहपात के बाद...स्वर्ग लोक में उत्पन्न होता है। (३)

"...प्राणातिपात...सम्प्रलाप से विरत रहता है, अनभिध्यालु, अव्यापन्नचित्त एवं सम्यग्दृष्टि होता है। फिर भी वह देहपात के बाद...नरकयोनि में ही गिरता है। (४)

६. "यहाँ, आनन्द ! कोई श्रमण या ब्राह्मण उद्योगी, अप्रमादरत एवं सावहितचित्त हो कर वैसी चेतःसमाधि (चित्त की एकाग्रता) प्राप्त करता है, जिस के कारण मानव दुर्लभ दिव्य चक्षु से वह उस पुद्गल को देखता है। ऐसा पुद्गल प्राणातिपाती, चौर...मिथ्यादृष्टि होते हुए नरक योनि में गिरा होता है। वह कहता है—'अरे पापकर्म हैं, उनका फल भी मिलता है। तभी तो मैंने उस प्राणातिपाती,

ये अञ्ञथा जानन्ति, मिच्छा तेसं ञाणं' ति। इति सो यदेव तस्स सामं ञातं सामं दिट्ठं सामं विदितं तदेव तत्थ थामसा परामासा अभिनिविस्स वोहरति--'इदमेव सच्चं, मोघमञ्ञं' ति। (१)

[R. 211.] "इध पनानन्द, एकच्चो समणो वा ब्राह्मणो वा आतप्पमन्वाय पधानमन्वाय अनुयोगमन्वाय अप्पमादमन्वाय सम्मामनसिकारमन्वाय तथारूपं चेतोसमाधिं फुसति यथासमाहिते चित्ते दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन अमुं पुग्गलं पस्सति--इध पाणातिपातिं अदिन्नादायिं···पे०···मिच्छादिट्ठिं, कायस्स भेदा परं मरणा पस्सति सुगतिं सग्गं उपपन्नं। सो एवमाह--'नत्थि किर, भो, पापकानि, नत्थि दुच्चरितस्स विपाको। अमाहं पुग्गलं अद्दसं--इध पाणातिपातिं अदिन्नादायिं··· पे०···मिच्छादिट्ठिं, कायस्स भेदा परं मरणा पस्सामि सुगतिं सग्गं लोकं उपपन्नं ति। सो एवमाह--'यो किर, भो, पाणातिपाती अदिन्नादायी··· [B. 254] पे०···मिच्छादिट्ठि, सब्बो सो कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति। ये एवं जानन्ति ते सम्मा जानन्ति; ये अञ्ञथा जानन्ति, मिच्छा तेसं ञाणं' ति। इति सो यदेव तस्स सामं ञातं सामं दिट्ठं सामं विदितं तदेव तत्थ थामसा परामासा अभिनिविस्स वोहरति-- 'इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' ति। (२)

"इधानन्द, एकच्चो समणो वा ब्राह्मणो वा आतप्पमन्वाय पधानमन्वाय

चौर···को नरक योनि में पड़े हुए देखा। "जो प्राणातिपाती, चौर···होता है, वह नरकयोनि में ही गिरता है'—ऐसा जो जानते हैं, वे ही ठीक जानते हैं। जो इसके विपरीत जानते हैं वे मिथ्याज्ञानी हैं। (१)

"और यहाँ, आनन्द ! कोई श्रमण या ब्राह्मण उद्योगी···सावहितचित्त हो··· चित्तसमाधि के कारण···दिव्य चक्षु से···देखता है—ऐसा पुद्गल प्राणातिपाती··· मिथ्यादृष्टि होते हुए भी स्वर्गलोक में पहुँच चुका है। वह ऐसा कहता है—'नहीं है कोई पापकर्म, और न है पापकर्म का फल। क्योंकि मैंने ऐसे पुद्गल को भी देखा है जो हिंसक···मिथ्यादृष्टि होते हुए भी स्वर्ग में पहुँच गया।' तब वह कहता है—

'सभी···मरने के बाद···स्वर्ग लोक में उत्पन्न होते हैं—जो ऐसा जानते हैं वही ठीक जानते हैं, इससे अन्यथा जानने वाले मिथ्याज्ञानी हैं।' इस प्रकार उसने जो कुछ स्वयं जाना, समझा या देखा उसी पर अपना अभिनिवेश करते हुए वह कहता है—'यही सत्य है, बाकी सब झूठ है।' (२)

"यहाँ, आनन्द ! कोई श्रमण या ब्राह्मण उद्योगी···दिव्य चक्षु से किसी ऐसे

अनुयोगमन्वाय अप्पमादमन्वाय सम्मामनसिकारमन्वाय तथारूपं चेतोसमाधिं फुसति यथासमाहिते चित्ते दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन अमुं पुग्गलं पस्सति—इध पाणातिपाता पटिविरतं अदिन्नादाना [N. 292] पटिविरतं कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतं मुसावादा पटिविरतं पिसुणाय वाचाय पटिविरतं फरुसाय वाचाय पटिविरतं सम्फप्पलापा पटिविरतं अनभिज्झालुं अब्यापन्नचित्तं सम्मादिट्ठिं, कायस्स भेदा परं मरणा पस्सति सुगतिं सग्गं लोकं उपपन्नं। सो एवमाह—'अत्थि किर, भो, कल्याणानि कम्मानि, अत्थि सुचरितस्स विपाको। अमाहं पुग्गलं अद्दस--इध पाणातिपाता पटिविरतं अदिन्नादाना पटिविरतं···पे०···सम्मादिट्ठिं, कायस्स भेदा परं मरणा पस्सामि सुगतिं सग्गं लोकं उपपन्नं' ति। सो एवमाह—'यो किर, भो, पाणातिपाता पटिविरतो अदिन्नादाना पटिविरतो···पे०···सम्मादिट्ठि, सब्बो सो कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति। ये एवं जानन्ति ते सम्मा जानन्ति; ये अञ्ञथा जानन्ति, मिच्छा तेसं ञाणं' ति। इति सो यदेव तस्स सामं ञातं सामं दिट्ठं सामं विदितं तदेव तत्थ थामसा परामासा अभिनिविस्स वोहरति—'इदमेव सच्चं, मोघमञ्ञं' ति। (३)

'इध पनानन्द, एकच्चो समणो वा ब्राह्मणो वा आतप्पमन्वाय पधानमन्वाय अनुयोगमन्वाय अप्पमादमन्वाय सम्मामनसिकारमन्वाय तथारूपं चेतोसमाधिं फुसति यथासमाहिते चित्ते दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्क[R. 212]न्तमानुसकेन अमुं पुग्गलं पस्सति—इध पाणातिपाता पटिविरतं···पे०···सम्मादिट्ठिं, कायस्स भेदा परं मरणा पस्सति अपायं दुग्गतिं

पुद्गल को देखता है जो प्राणातिपात से विरत···सम्यग्दृष्टि हो, वह इस देहपात के बाद स्वर्ग में उत्पन्न हो। उसे देख कर वह (श्रमण) यों कहे—'अरे! कुशल (कल्याण) कर्म भी होते हैं और इन कुशल कर्मों का फल भी मिलता है; क्योंकि अभी मैंने ऐसे पुद्गल को देखा है जो प्राणातिपात से विरत हो···स्वर्गलोक में पहुँच गया। तो मुझे ऐसा लगता है कि जो प्राणिसमूह प्राणातिपात से विरत··· सम्यग्दृष्टि होता है वह मरणानन्तर स्वर्गलोक पहुँच जाता है'—ऐसा जो जानते हैं वही ठीक जानते हैं। दूसरों की इससे विपरीत जानकारी गलत है, मिथ्या है। इस प्रकार उसने जो कुछ···बाकी सब झूठ है।' (३)

"यहाँ, आनन्द ! कोई श्रमण या ब्राह्मण उद्योगी···दिव्य चक्षु से ऐसा पुद्गल देखता है जो प्राणातिपात से विरत···सम्यग्दृष्टि होने पर भी इस देहपात के बाद नरक में ही गिरता है। तब उस श्रमण को यह हो—'अरे! कुशल कर्म भी कोई

विनिपातं निरयं उपपन्नं। सो एवमाह–'नत्थि किर, भो, कल्याणानि कम्मानि, नत्थि सुचरितस्स विपाको। अमाहं पुग्गलं अद्दसं–इध पाणाति- [B. 255] पाता पटिविरतं अदिन्नादाना पटिविरतं…पे०…सम्मादिट्ठिं, कायस्स भेदा परं मरणा पस्सामि अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपन्नं' ति। सो एवमाह–'यो किर, भो, पाणातिपाता पटिविरतो अदिन्नादाना पटिविरतो…पे०…सम्मादिट्ठि, सब्बो सो कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति। ये एवं जानन्ति ते सम्मा जानन्ति; ये अञ्ञथा जानन्ति, मिच्छा तेसं ञाणं' ति। इति सो यदेव तस्स सामं ञातं सामं दिट्ठं सामं विदितं तदेव तत्थ थामसा परामासा अभिनिविस्स वोहरति–'इदमेव सच्चं, मोघमञ्ञं' ति। (४)

[N. 293] ७. "तत्रानन्द, य्वायं समणो वा ब्राह्मणो वा एवमाह–'अत्थि किर, भो, पापकानि कम्मानि, अत्थि दुच्चरितस्स विपाको' ति, इदमस्स अनुजानामि; यं पि सो एवमाह–'अमाहं पुग्गलं अद्दसं–इध पाणातिपातिं अदिन्नादायिं…पे०…मिच्छादिट्ठिं, कायस्स भेदा परं मरणा पस्सामि अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपन्नं' ति, इदं पिस्स अनुजानामि; यं च खो सो एवमाह–'यो किर, भो, पाणातिपाती अदिन्नादायी…पे०…मिच्छादिट्ठि, सब्बो सो कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जती' ति, इदमस्स नानुजानामि; यं पि सो एवमाह–'ये एवं जानन्ति ते सम्मा जानन्ति; ये अञ्ञथा जानन्ति, मिच्छा तेसं ञाणं' ति, इदं पिस्स नानुजानामि; यं पि सो यदेव तस्स सामं ञातं सामं दिट्ठं सामं विदितं तदेव तत्थ थामसा परामासा अभिनिविस्स

महत्त्व नहीं रखते, न उनका कोई फल ही है; क्योंकि मैंने अभी प्राणातिपातविरत… सम्यग्दृष्टि को ही नरक में गिरे हुए देखा है।' वह यों कहता है–'जो भी प्राणातिपातविरत…सम्यग्दृष्टि होगा वह भी नरक में ही गिरेगा।' जो ऐसा जानता है वही यथार्थ जानता है। अवशिष्ट अन्यथा जानने वाला तो मिथ्याज्ञानसम्पन्न ही है।…बाकी सब झूठ है। (४)

७. "वहाँ, आनन्द! (क) जो श्रमण-ब्राह्मण यह कहता है–'पापकर्म हैं और उनका फल भी है', मैं उसकी इस बात से सहमत हूँ। (ख) और जो यह कहता है–'अभी मैंने ऐसे पुद्गल को देखा जो प्राणातिपाती…मिथ्यादृष्टि था, वह नरक में गिरा हुआ था', मैं उसकी इस बात से भी सहमत हूँ'। (ग) और जो यह कहता है–'जो ऐसा जानते हैं, वही ठीक जानते हैं, जो अन्यथा जानते हैं उनका ज्ञान मिथ्या है', इससे मैं सहमत नहीं। (घ) और जो कि

वोहरति--'इदमेव सच्चं, मोघमञ्ञं' ति, इदं पिस्स नानुजानामि। तं किस्स हेतु? अञ्ञथा हि, आनन्द, तथागतस्स महाकम्मविभङ्गे ञाणं होति। (१)

"तत्रानन्द, य्वायं समणो वा ब्राह्मणो वा एवमाह----'नत्थि किर, भो, पापकानि कम्मानि, नत्थि दुच्चरितस्स विपाको' ति, इदमस्स नानुजानामि; यं च खो सो एवमाह----'अमाहं पुग्गलं अद्दसं----इध पाणातिपातिं अदिन्नादायिं…पे०…मिच्छादिट्ठिं कायस्स भेदा परं मरणा पस्सामि सुगतिं सग्गं लोकं उपपन्नं' ति, इदमस्स अनुजानामि; यं च खो सो एवमाह---'यो किर, भो, पाणातिपाती अदिन्नादायी…पे०…मिच्छादिट्ठि, सब्बो सो कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जती' [R. 213] ति इदमस्स नानुजानामि, यं पि सो एवमाह---'ये एवं जानन्ति [B. 256] ते सम्मा जानन्ति; ये अञ्ञथा जानन्ति, मिच्छा तेसं ञाणं' ति, इदं पिस्स नानुजानामि; यं पि सो यदेव तस्स सामं ञातं सामं दिट्ठं सामं विदितं तदेव तत्थ थामसा परामासा अभिनिविस्स वोहरति----'इदमेव सच्चं, मोघमञ्ञं' ति, इदं पिस्स नानुजानामि। तं किस्स हेतु? अञ्ञथा हि, आनन्द, तथागतस्स महाकम्मविभङ्गे ञाणं होति। (२)

"तत्रानन्द, य्वायं समणो वा ब्राह्मणो वा एवमाह----'अत्थि किर, भो,

---

उसे स्वयं ज्ञात…वह…आग्रह के साथ उसका व्याहार करता है—'यही सत्य है बाकी सब मिथ्या', उसकी इस बात से मैं सहमत नहीं। वह किस कारण? क्योंकि, आनन्द! कर्मफल-विभाजन के विषय में तथागत का मत (ज्ञान) इससे भिन्न है। (१)

"और, आनन्द! (क) जो श्रमण-ब्राह्मण यह कहता है--'पाप कर्म नहीं हैं, और उनका फल भी नहीं है'—उसकी इस बात से मैं सहमत नहीं हूँ। (ख) और जो यह कहता है—'मैंने ऐसा पुद्गल देखा है जो प्राणतिपाती…मिथ्यादृष्टि होते हुए भी स्वर्ग में पहुँच गया है', उसकी इस बात से भी मैं सहमत नहीं। (ग) और जो यह कहता है—'…मिथ्यादृष्टि…स्वर्ग में पहुँच जाता है' उसकी इस बात से भी मैं सहमत नहीं। (घ) और जो यह कहता है—'जो ऐसा जानता है वही ठीक जानता है…' उसकी इस बात से भी मैं सहमत नहीं। (ङ) और जो यह कहता है—'जो उसने स्वयं जाना, समझा, देखा या सुना है वही सच है, बाकी सब मिथ्या', उसकी इस बात से भी मैं सहमत नहीं; क्योंकि महाकर्मविभङ्ग के विषय में तथागत का मत इससे भिन्न है (२)

"और, आनन्द! (क) जो श्रमण-ब्राह्मण यह कहता है—पुण्य (कुशल)

[N. 294] कल्याणानि कम्मानि, अत्थि सुचरितस्स विपाको' ति, इदमस्स अनुजानामि; यं पि सो एवमाह----'अमाहं पुग्गलं अद्दसं---इध पाणातिपाता पटिविरतं अदिन्नादाना पटिविरतं पे० सम्मादिट्ठिं, कायस्स भेदा परं मरणा पस्सामि सुगतिं सग्गं लोकं उपपन्नं' ति, इदं पिस्स अनुजानामि; यं च खो सो एवमाह----'यो किर, भो, पाणातिपाता पटिविरतो अदिन्नादाना पटिविरतो…पे०…सम्मादिट्ठि, सब्बो सो कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जती' ति, इदमस्स नानुजानामि; यं पि सो एवमाह----'ये एवं जानन्ति ते सम्मा जानन्ति; ये अञ्ञथा जानन्ति, मिच्छा तेसं ञाणं' ति, इदं पिस्स नानुजानामि; यं पि सो यदेव तस्स सामं ञातं सामं दिट्ठं सामं विदितं तदेव तत्थ थामसा परामासा अभिनिविस्स वोहरति----'इदमेव सच्चं, मोघमञ्ञं' ति, इदं पिस्स नानुजानामि। तं किस्स हेतु ? अञ्ञथा हि, आनन्द, तथागतस्स महाकम्मविभङ्गे ञाणं होति। (२)

"तत्रानन्द, य्वायं समणो वा ब्राह्मणो वा एवमाह----'नत्थि किर, भो, कल्याणानि कम्मानि, नत्थि सुचरितस्स विपाको' ति, इदमस्स नानुजानामि; यं च खो सो एवमाह----'अमाहं पुग्गलं अद्दसं---इध पाणातिपाता पटिविरतं अदिन्नादाना पटिविरतं पे० सम्मादिट्ठिं, कायस्स भेदा परं मरणा पस्सामि अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपन्नं' ति इदमस्स अनुजानामि; यं च खो सो एवमाह----'यो किर, भो, पाणातिपाता पटिविरतो अदिन्नादाना पटिविरतो…पे०…सम्मादिट्ठि, सब्बो सो कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जती' ति, इदमस्स नानुजानामि; [R. 214] यं च खो सो एवमाह----'ये एवं जानन्ति ते सम्मा जानन्ति;

कर्म हैं और उनका फल भी मिलता है', उसकी इस बात से मैं सहमत हूँ। (ख) वह जो यह कहता है—'मैंने ऐसा पुद्गल देखा है…स्वर्ग में उत्पन्न हुआ है', इस बात से भी मैं सहमत हूँ। पर (ग) जो वह यह कहता है—'जो ऐसा जानते हैं वही ठीक जानते हैं…', इससे मैं सहमत नहीं। (घ) और उसने जो यह कहा—'मैंने जैसा देखा-सुना, जाना-समझा वही सच है और सब मिथ्या', उसकी इस बात से भी मै सहमत नहीं; क्योंकि तथागत का महाकर्मविभङ्ग के विषय में पृथक् मत है। (२)

"और, आनन्द ! (क) जो श्रमण-ब्राह्मण यह कहता है—'पुण्यकर्म नहीं हैं, न उनका कोई फल ही है'… मैं सहमत नहीं। (ख) …मैंने ऐसा पुद्गल देखा है जो प्राणतिपातविरत…होते हुए भी नरक योनि में ही गया है', इससे भी मैं

ये अञ्ञथा जानन्ति, मिच्छा तेसं ञाणं' ति, इदं पिस्स नानुजानामि; यं पि सो यदेव तस्स सामं ञात साम दिट्ठ सामं विदित तदेव [B. 257] तत्थ थामसा परामासा अभिनिविस्स वोहरति----'इदमेव सच्चं, मोघमञ्ञं' ति, इदं पिस्स नानुजानामि। तं किस्स हेतु ? अञ्ञथा हि, आनन्द, तथागतस्स महाकम्मविभङ्गे ञाणं होति। (४)

चत्तारि कम्मानि

८. "तत्रानन्द, य्वायं पुग्गलो इध पाणातिपाती अदिन्नादायी···पे०··· मिच्छादिट्ठि, कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं [N. 295] विनिपातं निरयं उपपज्जति, पुब्बे वास्स तं कतं होति पापकम्मं दुक्खवेदनीयं, पच्छा वास्स तं कतं होति पापकम्मं दुक्खवेदनीयं, मरणकाले वास्स होति मिच्छादिट्ठि समत्ता समादिन्ना। तेन सो कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति। यं च खो सो इध पाणातिपाती होति अदिन्नादायी होति···पे०··· मिच्छादिट्ठि होति तस्स दिट्ठेव धम्मे विपाकं पटिसंवेदेति उपपज्ज वा अपरे वा परियाये। (१)

"तत्रानन्द, य्वायं पुग्गलो इध पाणातिपाती अदिन्नादायी··पे०··,मिच्छादिट्ठि कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति, पुब्बे वास्स तं कतं होति कल्याणकम्मं सुखवेदनीयं, पच्छा वास्स तं कतं होति कल्याण-

---

सहमत नहीं। (ग) जो···सम्यग्दृष्टि हो तो वह भी···नरक में ही जाता है— इस बात से भी मैं सहमत नहीं। (घ) और जो···जैसा मैंने देखा सुना···वही सच है···' मैं इससे भी सहमत नहीं; क्योंकि महाकर्मविभङ्ग के विषय में तथागत का मत भिन्न है। (४)

चतुर्विध कर्म

८. वहाँ, आनन्द ! यहाँ यह जो पुद्गल प्राणातिपाती, और···मिथ्यादृष्टि होता है वह देहपात के बाद···नरक में उत्पन्न होता है तो उसने उस दुःखमय पापकर्म को पहले ही कर लिया होगा, या पीछे किये होगा, या उसने मरणकाल में कोई मिथ्यादृष्टि ग्रहण कर ली होगी; इसी लिये वह इस देहपात के बाद··· नरकयोनि में गिरा होगा। और जो यहाँ प्राणातिपाती···और मिथ्यादृष्टि होता है अतः उसका फल भी या तो वह इसी जन्म में भोग लेगा या फिर पुनः उत्पन्न होकर भोगेगा। (१)

"आनन्द ! जो वह पुद्गल प्राणातिपाती···मिथ्यादृष्टि···देहपात के बाद··· स्वर्ग चला जाता है यहाँ या तो उसने वह सुखमय कुशल कर्म पहले ही कर लिया

कम्मं सुखवेदनीयं, मरणकाले वास्स होति सम्मादिट्ठि समत्ता समादिन्ना। तेन सो कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति। यं च खो सो इध पाणातिपाती होति अदिन्नादायी होति···पे०···मिच्छादिट्ठि होति तस्स दिट्ठेव धम्मे विपाकं पटिसंवेदेति उपपज्ज वा अपरे वा परियाये। (२)

"तत्रानन्द, य्वायं पुग्गलो इध पाणातिपाता पटिविरतो अदिन्नादाना पटिविरतो···पे०···सम्मादिट्ठि, कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति, पुब्बे वास्स···पच्छा वास्स तं कतं होति कल्याणकम्मं सुखवेदनीयं, मरणकाले वास्स होति सम्मादिट्ठि समत्ता समादिन्ना। तेन सो कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति। यं च खो सो इध [R 215] पाणातिपाता पटिविरतो होति अदिन्नादाना पटिविरतो होति···पे०···सम्मादिट्ठि होति तस्स दिट्ठेव धम्मे विपाकं पटिसंवेदेति उपपज्ज वा अपरे वा परियाये। (३)

[B 258] "तत्रानन्द, य्वायं पुग्गलो इध पाणातिपाता पटिविरतो अदिन्नादाना पटिविरतो···पे०···सम्मादिट्ठि, कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति, पुब्बे वास्स तं कतं होति पापकम्मं दुक्खवेदनीयं, पच्छा वास्स तं कतं होति पापकम्मं दुक्खवेदनीयं, [N. 296] मरणकाले वास्स होति मिच्छादिट्ठि समत्ता समादिन्ना। तेन सो कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति। यं च खो सो इध पाणातिपाता पटिविरतो होति, अदिन्नादाना पटिविरतो होति···पे०···सम्मादिट्ठि होति, तस्स दिट्ठेव धम्मे विपाकं पटिसंवेदेति उपपज्ज वा अपरे वा परियाये। (४)

होगा या मरणकाल में उसने सम्यग्दृष्टि ग्रहण कर ली होगी इसलिये···मरणानन्तर स्वर्ग जाता है। और जो कि वह यहाँ···उत्पन्न होकर भोगेगा। (२)

"और, आनन्द! जो पुद्गल प्राणातिपातविरत···सम्यग्दृष्टि होता है, देहपात के बाद···स्वर्ग में ही उत्पन्न होता है तो···पुण्यकर्म पहले ही···सम्यग्दृष्टि ग्रहण कर ली होगी, अतः···स्वर्ग में जाता है। और जो कि वह यहाँ प्राणातिपातविरत··· सम्यग्दृष्टि होता है उसका फल···उत्पन्न होकर भोगेगा···। (३)

"और, आनन्द! जो पुरुष प्राणातिपातविरत···सम्यग्दृष्टि होता है···नरक में उत्पन्न होता है तो पापकर्म पहले ही···मिथ्यादृष्टि ग्रहण कर ली होगी, अतः··· नरक में गिरता है। और जो कि वह यहाँ प्राणतिपातविरत···होता है उसका फल··· उत्पन्न होकर भोगेगा···। (४)

"इति खो, आनन्द, अत्थि कम्मं अभब्बं अभब्बाभासं, अत्थि कम्मं अभब्बं भब्बाभासं, अत्थि कम्मं भब्बं चेव भब्बाभासं च, अत्थि कम्मं भब्बं अभब्बाभासं" ति ।

९. इदमवोच भगवा । अत्तमनो आयस्मा आनन्दो भगवतो भासितं अभिनन्दी ति ।

●

"यों, आनन्द ! चार प्रकार के कर्म होते हैं—१. अभव्य अभव्याभास, २. अभव्य भव्याभास, ३. भव्य भव्याभास, एवं ४. भव्य अभव्याभास" ।

९. भगवान् ने (कर्म और कर्मफल के विषय में) यों बताया । प्रसन्नमन आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् के भाषण का अभिनन्दन किया ॥

महाकम्मविभङ्गसुत्त समाप्त ॥

●

३७. सलायतनविभंगसुत्तं

१. सळायतनविभङ्गस्स उद्देसो

[N. 297] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि--"भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच----सळायतनविभङ्गं वो, भिक्खवे, देसेस्सामि। तं सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; भासिस्सामी" ति। "एवं, भन्ते" ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच----

[R. 216] "'छ अज्झत्तिकानि आयतनानि वेदितब्बानि, छ बाहिरानि आयतनानि वेदितब्बानि, छ विञ्ञाणकाया वेदितब्बा, छ फस्सकाया वेदितब्बा, अट्ठारस मनोपविचारा वेदितब्बा, छत्तिंस सत्तपदा वेदितब्बा, तत्र इदं निस्साय इदं पजहथ, तयो सतिपट्ठाना यदरियो सेवति यदरियो [B. 259] सेवमानो सत्था गणमनुसासितुमरहति, सो वुच्चति योग्गाचरियानं अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथी' ति---अयमुद्देसो सळायतनविभस्सङ्ग।

२. सळायतनविभङ्गस्स विभङ्गो

२. "'छ अज्झत्तिकानि आयतनानि वेदितब्बानी' ति—इति खो

---

३७. षडायतनविभङ्गसूत्र

१. षडायतनविभाजन का उद्देश

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती के··· जेतवनाराम में विराजमान थे।···भगवान् ने कहा—"भिक्षुओ! अब मैं तुम्हें षडायनविभङ्ग का उद्देश बताऊँगा···। भगवान् बोले—

"छह आध्यात्मिक (शरीरान्तर्गत) आयतनों को जानना चाहिये। छह बाह्य आयतनों को जानना चाहिये। छह विज्ञानकायों को···। छह स्पर्श-(इन्द्रिय और विषय का सम्पर्क)—कायों को···। अठारह मन के उपविचारों को···। छत्तीस (३६) सत्त पदों को जानना चाहिए। वहाँ—'इसके द्वारा इसको छोड़ो। तीन स्मृतिप्रस्थान, जिनका आर्यजन (मुक्त, मोक्षभागी पुरुष) आचरण करते हैं, और जिन पर आचरण करते हुए आर्य शास्ता अनुयायियों को अनुशासन कर पाता है। ऐसा वह शास्ता अनुपम 'सारथि' (वाहन चलाने में निपुण) 'पुरुषदम्य' (पुरुषों को विनय सिखाने वाला चाबुक सवार) कहा जाता है यह षडायतनविभङ्ग का उद्देश (=प्रतिपाद्य विषयों का नाममात्र गिनाना) हुआ।

२. षडायतनविभङ्ग का विस्तृत व्याख्यान

२. छह आध्यात्मिक आयतनों को जानना चाहिये—यह जो कहा है,

पनेतं वुत्तं; किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं ? 'चक्खायतनं सोतायतनं घानायतनं जिव्हायतनं कायायतनं मनायतनं—छ अज्झत्तिकानि आयतनानि वेदितब्बानी' ति—इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं ।

३. " '**छ बाहिरानि आयतनानि वेदितब्बानी**' ति—इति खो पनेतं वुत्तं किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं ? 'रूपायतनं सद्दायतनं गन्धायतनं रसायतनं फोट्ठब्बायतनं धम्मायतनं—छ बाहिरानि आयतनानि वेदितब्बानी' ति—इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं ।

४. " '**छ विञ्ञाणकाया वेदितब्बा**' ति--इति खो पनेतं [N. 298] वुत्तं; किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं ? 'चक्खुविञ्ञाणं सोतविञ्ञाणं घानविञ्ञाणं जिव्हाविञ्ञाणं कायविञ्ञाणं मनोविञ्ञाणं—छ विञ्ञाणकाया वेदितब्बा' ति-इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं ।

५. " '**छ फस्सकाया वेदितब्बा**' ति--इति खो पनेतं वुत्तं; किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं ? 'चक्खुसम्फस्सो सोतसम्फस्सो घानसम्फस्सो जिव्हासम्फस्सो कायसम्फस्सो मनोसम्फस्सो—छ फस्सकाया वेदितब्बा' ति-इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं ।

६. " '**अट्ठारस मनोपविचारा वेदितब्बा**' ति-इति खो पनेतं वुत्तं; किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं ? 'चक्खुना रूपं दिस्वा सोमनस्सट्ठानीयं रूपं उप-

---

वह किस आशय से कहा है ? 'चक्षुरायतन, श्रोत्रायतन, घ्राणायतन, जिह्वायतन, कायायतन, और मन आयतन--इन छह आध्यात्मिक आयतनों को जानने चाहिये'— वह जो कहा है, इस आशय से कहा है ।

३. "'छह बाह्य आयतन जानने चाहिये'—यह जो कहा है, किस आशय से कहा है ? 'रूपायतन, शब्दायतन, गन्धायतन, रसायतन, स्प्रष्टव्यायतन, एवं धर्मायतन—(ये) छह बाह्य आयतन साधक द्वारा जानने योग्य हैं'--वह जो कहा है इस आशय से कहा है ।

४. "'छह विज्ञानकाय जानने चाहिये'—यह जो कहा है किस आशय से कहा है ? 'चक्षुर्विज्ञान, श्रोत्रविज्ञान, घ्राणविज्ञान, जिह्वाविज्ञान, कायविज्ञान, ऐवं मनोविज्ञान--(ये) छह विज्ञान (साधक द्वारा) जानने योग्य हैं'--ऊपर जो कहा है यही सोच कर कहा है ।

५. "'छह स्पर्शकाय वेदितव्य हैं' ?—यह जो कहा है क्या सोच कर कहा है ? चक्षुःसस्पर्श, श्रोत्र…घ्राण…जिह्वा…काय…एवं मनःसंस्पर्श--(ये छह) स्पर्शकाय जानने योग्य हैं'--ऊपर जो कहा है इसी आशय से कहा है ।

६. "'अट्ठारह मन-उपविचार वेदितव्य है ?'–यह जो कहा है क्या सोच कर

विचरति, दोमनस्सट्ठानीयं रूपं उपविचरति, उपेक्खट्ठानीयं रूपं उपविचरति। सोतेन सद्दं सुत्वा…पे०…घानेन गन्धं घायित्वा…जिव्हाय रसं सायित्वा… [R. 217] कायेन फोट्ठब्बं फुसित्वा…मनसा धम्मं विञ्ञाय सोमनस्सट्ठानीयं धम्मं उपविचरति, दोमनस्सट्ठानीयं धम्मं उपविचरति, उपेक्खट्ठानीयं धम्मं उपविचरति। इति छ सोमनस्सूपविचारा, छ दोमनस्सूपविचारा, छ उपेक्खूपविचारा, अट्ठारस मनोपविचारा वेदितब्बा' ति-इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं।

[B. 260] ७. "'**छत्तिस सत्तपदा वेदितब्बा**' ति—इति खो पनेतं वुत्तं; किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं ? छ गेहसितानि सोमनस्सानि, छ नेक्खम्मसितानि सोमनस्सानि, छ गेहसितानि दोमनस्सानि, छ नेक्खम्मसितानि दोमनस्सानि, छ गेहसिता उपेक्खा, छ नेक्खम्मसिता उपेक्खा !

"तत्थ कतमानि छ गेहसितानि सोमनस्सानि ? चक्खुविञ्ञेय्यानं रूपानं इट्ठानं कन्तानं मनापानं मनोरमानं लोकामिसपटिसंयुत्तान पटिलाभं वा पटिलाभतो समनुपस्सतो पुब्बे वा पटिलद्धपुब्बं अतीत निरुद्धं विपरिणतं समनुपस्सतो उपपज्जति सोमनस्सं। यं एवरूपं सोमनस्सं इदं वुच्चति

कहा है ? 'साधक चक्षु से रूप को देख कर सौमनस्य-स्थानीय रूप का उपविचार (=सौमनस्य आदि लाने वाले अनुभव पर मन की क्रिया) करता है। दौर्मनस्य-स्थानीय रूप का…उपेक्षा-स्थानीय रूप का उपविचार करता है; श्रोत्र से शब्द सुन कर…घ्राण से गन्ध सूँघ कर…जिह्वा से रस चख कर…काया से स्पर्श का अनुभव कर… मन से धर्म को जान कर सौमनस्य…दौर्मनस्य…उपेक्षास्थानीय धर्म का उपविचार करता है। यों छह सौमनस्योपविचार, छह दौर्मनस्योपविचार, और छह उपेक्षोपविचार—इस तरह इन अट्ठारह मन के उपविचारों को जानना चाहिये'—ऊपर जो कहा है वह यही सोच कर कहा है।

७. "'छत्तीस सत्पपदों को जानना चाहिये'—यह जो कहा, वह किसको लेकर कहा ? छह गार्ध्याश्रित[1] (लोभमूलक) सौमनस्य, छह नैष्कर्म्याश्रित सौमनस्य, छह गार्ध्याश्रित दौर्मनस्य, और छह नैष्कर्म्याश्रित दौर्मनस्य, छह गार्ध्याश्रित उपेक्षा और छह नैष्कर्म्याश्रित उपेक्षा। (६×६=३६)

वहाँ छह गार्ध्याश्रित सौमनस्य कौन से हैं ? इष्ट कान्त मनाप मनोरम लौकिक भोग से सम्बद्ध चक्षुर्विज्ञेय रूपों के लाभ को लाभ समझते हुए या अतीत (नष्ट), निरुद्ध, विकारप्राप्त रूपों के लाभ को लाभ समझते हुए स्मरण करने से सौमनस्य

---

१. गृधि (लोभ) का होना=गार्ध्य। गार्ध्य पर आश्रित या गार्ध्य से निःसृत=गेहसित=लोभ-प्रेरित या लोभमूलक।

गेहसितं सोमनस्सं। सोतविञ्ञेय्यानं सद्दानं…घानविञ्ञेय्यानं गन्धान… जिव्हाविञ्ञेय्यानं रसानं…कायविञ्ञेय्यानं फोट्ठब्बानं…मनोविञ्ञेय्यानं धम्मानं इट्ठानं कन्तानं मनापानं…पे०…सोमनस्सं। यं एवरूपं [N. 299] सोमनस्सं इदं वुच्चति गेहसितं सोमनस्सं। इमानि छ गेहसितानि सोमनस्सानि। (१), (६)

"तत्थ कतमानि छ नेक्खम्मसितानि सोमनस्सानि? रूपानं त्वेव अनिच्चतं विदित्वा विपरिणामविरागनिरोधं, 'पुब्बे चेव रूपा एतरहि च सब्बे ते रूपा अनिच्चा दुक्खा विपरिणामधम्मा' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सतो उप्पज्जति सोमनस्सं। यं एवरूपं सोमनस्सं इदं वुच्चति नेक्खम्मसितं सोमनस्सं। सद्दानं त्वेव गन्धानं त्वेव रसानं त्वेव फोट्ठब्बानं त्वेव धम्मानं त्वेव अनिच्चतं विदित्वा विपरिणाम- [R. 218] विरागनिरोधं, 'पुब्बे चेव धम्मा एतरहि च सब्बे ते धम्मा अनिच्चा दुक्खा विपरिणामधम्मा' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सतो उप्पज्जति सोमनस्सं। यं एवरूपं सोमनस्सं इदं वुच्चति नेक्खम्मसितं सोमनस्सं। इमानि छ नेक्खम्मसितानि सोमनस्सानि। (२), (१२)

"तत्थ कतमानि छ गेहसितानि दोमनस्सानि? चक्खुविञ्ञेय्यानं रूपानं…पे०…सोतविञ्ञेय्यानं सद्दानं घानविञ्ञेय्यानं गन्धानं जिव्हाविञ्ञेय्यानं रसानं कायविञ्ञेय्यानं फोट्ठब्बानं…मनोविञ्ञेय्यानं धम्मानं इट्ठानं कन्तानं मनापानं मनोरमानं लोकामिसपटिसंयुत्तानं अप्पटिलाभं वा

उत्पन्न होता है। ऐसे सौमनस्य को लोभमूलक सौमनस्य कहते हैं।…श्रोत्रविज्ञेय शब्दों के लाभ को,…घ्राणविज्ञेय गन्धों के लाभ को…जिह्वाविज्ञेय रसों के…कायविज्ञेय स्प्रष्टव्यों के…इष्ट कान्त मनाप…मनोविज्ञेय धर्मों के लाभ को…'लोभमूलक सौमनस्य' कहते हैं। ये छह लोभमूलक सौमनस्य कहलाते हैं। (१), (६)

"वहाँ छह नैष्कर्म्याश्रित सौमनस्य कौन से हैं? रूपों की अनित्यता, विपरिणाम, निरोध एवं विराग को जान कर, 'अतीत और वर्तमान के सभी रूप अनित्य दुःखात्मक एवं विनाशधर्मा हैं'—इस प्रकार इसे भली-भाँति प्रज्ञा से देख कर सौमनस्य पैदा होता है। ऐसा सौमनस्य 'नैष्कर्म्याश्रित (निष्कर्मतासम्बन्धी) सौमनस्य' कहा जाता है। शब्दों की अनित्यता…गन्धों की अनित्यता…रसों की अनित्यता…स्प्रष्टव्यों की अनित्यता…धर्मों की अनित्यता…यह 'नैष्कर्म्याश्रित सौमनस्य' कहलाता है। ये छह नैष्कर्म्याश्रित सौमनस्य कहलाते हैं। (२), (१२)

"वहाँ छह गेध (लोभ) मूलक दौर्मनस्य कौन से हैं? चक्षुर्विज्ञेय रूपों… श्रोत्रविज्ञेय शब्दों…घ्राणविज्ञेय गन्धों…जिह्वाविज्ञेय रसों…कायविज्ञेय स्प्रष्टव्यों…

अप्पटिलाभतो समनुपस्सतो पुब्बे वा अप्पटिलद्धपुब्बं अतीतं निरुद्धं विपरिणतं समनुस्सरतो उप्पज्जति दोमनस्सं। यं एवरूपं दोमनस्सं इदं वुच्चति [B. 261] गेहसितं दोमनस्सं। इमानि छ गेहसितानि दोमनस्सानि। (३)

"तत्थ कतमानि छ नेक्खम्मसितानि सोमनस्सानि? रूपानं त्वेव अनिच्चतं विदित्वा विपरिणामविरागनिरोधं, 'पुब्बे चेव रूपा एतरहि च सब्बे ते रूपा अनिच्चा दुक्खा विपरिणामधम्मा' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दिस्वा अनुत्तरेसु विमोक्खेसु पिहं उपट्ठापेति—'कुदास्सु नामाहं तदायतनं उपसम्पज्ज विहरिस्सामि यदरिया एतरहि आयतन उपसम्पज्ज विहरन्ती' ति इति अनुत्तरेसु विमोक्खेसु पिहं उपट्ठापयतो उप्पज्जति पिहपच्चया दोमनस्सं। यं एवरूपं दोमनस्सं इदं वुच्चति नेक्ख- [N. 300] म्मसितं दोमनस्सं। सद्दानं त्वेव…पे०…गन्धानं त्वेव…रसानं त्वेव…फोट्ठब्बानं त्वेव…धम्मानं त्वेव अनिच्चतं विदित्वा विपरिणाम- [R. 219] विरागनिरोध, 'पुब्बे चेव धम्मा एतरहि च सब्बे ते धम्मा अनिच्चा दुक्खा विपरिणामधम्मा' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दिस्वा अनुत्तरेसु विमोक्खेसु पिहं उपट्ठापेति—'कुदास्सु नामाहं तदायतनं उपसम्पज्ज विहरिस्सामि यदरिया एतरहि आयतनं उपसम्पज्ज विहरन्ती' ति इति अनुत्तरेसु विमोक्खेसु पिहं उपट्ठापयतो उप्पज्जति पिहपच्चया दोमनस्सं। यं एवरूपं दोमनस्सं इदं वुच्चति नेक्खम्मसितं दोमनस्सं। इमानि छ नेक्खम्मसितानि दोमनस्सानि। (४), (२४)

८. "तत्थ कतमा छ गेहसिता उपेक्खा? चक्खुना रूपं दिस्वा उप्पज्जति

मनोविज्ञेय धर्मों के या अतीत…रूपों के अलाभ को अलाभ समझते हुए दौर्मनस्य उत्पन्न होता है। ऐसे दौर्मनस्य को 'लोभमूलक दौर्मनस्य' कहते हैं।

"और वहाँ छह नैष्कर्म्याश्रित दौर्मनस्य कौन से हैं? रूपों की अनित्यता… को जानकर…भलीभाँत प्रज्ञा से देख अनुपम विमोक्षों में ऐसी स्पृहा (उत्कट इच्छा) उपस्थापित करता है—'अरे! मैं कब उस अवस्था में पहुँच कर साधना कर पाऊँगा, जिस अवस्था को प्राप्त कर आज आर्यजन साधना कर रहे हैं।' यों उन अनुपम विमोक्षों में स्पृहा दिखाते हुए को, उस स्पृहा के कारण जो दौर्मनस्य पैदा होता है उसे 'नैष्कर्म्याश्रित दौर्मनस्य' कहते हैं। शब्दों की…गन्धों की… रसों की…स्प्रष्टव्यों की…धर्मों की अनित्यता को…। यह कहा जाता है नैष्कर्म्याश्रित दौर्मनस्य। ये छह नैष्कर्म्याश्रित दौर्मनस्य हैं। (४) (२४)

८. "वहाँ कौन सी छह लोभमूलक उपेक्षा हैं? मूढ़, मन्द, पृथग्जन (अनाड़ी),

उपेक्खा बालस्स मूळ्हस्स पुथुज्जनस्स अनोधिजिनस्स अविपाकजिनस्स अनादीनवदस्साविनो अस्सुतवतो पुथुज्जनस्स। या एवरूपा उपेक्खा, रूपं सा नातिवत्तति। तस्मा सा उपेक्खा 'गेहसिता' ति वुच्चति। सोतेन सद्दं सुत्वा…घानेन गन्धं घायित्वा…जिह्वाय रसं सायित्वा…कायेन फोट्ठब्बं फुसित्वा…मनसा धम्मं विञ्ञाय उप्पज्जति उपेक्खा बालस्स मूळ्हस्स पुथुज्जनस्स अनोधिजिनस्स अविपाकजिनस्स अनादीनवदस्साविनो अस्सुतवतो पुथुज्जनस्स। या एवरूपा उपेक्खा, धम्मं सा नातिवत्तति। तस्मा सा उपेक्खा 'गेहसिता' ति वुच्चति। इमा छ गेहसिता उपेक्खा। (५), (३०)

"तत्थ कतमा छ नेक्खम्मसिता उपेक्खा? रूपानं त्वेव अनिच्चतं विदित्वा विपरिणामविरागनिरोधं, 'पुब्बे चेव रूपा एतरहि च सब्बे ते रूपा अनिच्चा दुक्खा विपरिणामधम्मा' ति एवमेतं यथाभूतं सम्म- [B. 262] प्पञ्ञाय पस्सतो उप्पज्जति उपेक्खा। या एवरूपा उपेक्खा, रूप सा अतिवत्तति। तस्मा सा उपेक्खा 'नेक्खम्मसिता' ति वुच्चति। सद्दानं त्वेव…गन्धानं त्वेव…रसानं त्वेव…फोट्ठब्बानं त्वेव…धम्मानं त्वेव अनिच्चतं विदित्वा विपरिणामविरागनिरोधं, 'पुब्बे चेव धम्मा एतरहि च सब्बे ते धम्मा अनिच्चा दुक्खा विपरिणामधम्मा' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सतो उप्पज्जति उपेक्खा। या एवरूपा उपेक्खा, धम्मं सा अतिवत्तति। तस्मा सा उपेक्खा 'नेक्खम्मसिता' ति वुच्चति। इमा छ नेक्ख- [N. 301] म्मसिता उपेक्खा। 'छत्तिंस सत्तपदा वेदितब्बा' ति—इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं। (६), (३६)

९. " 'तत्र इदं निस्साय इदं पजहथा' ति—इति खो [R. 220]

बद्ध, कर्मविपाक को न जीतने वाले, दुष्परिणाम को न समझने वाले, अज्ञ, अनाड़ी बालजन को चक्षु से रूप देख कर उपेक्षा होती है। ऐसी यह उपेक्षा (कालान्तर में) रूप को अतिक्रान्त नहीं कर पाती, अतः इसे 'लोभमूलक उपेक्षा' कहा जाता है। श्रोत्र से…मन से धर्मों को जान कर जो उस…बाल को उपेक्षा पैदा होती है, वह धर्म को अतिक्रान्त नहीं करती। ये छह लोभमूलक उपेक्षाएँ हैं। (५), (३०)

"और छह नैष्कर्म्याश्रित उपेक्षाएँ कौन सी हैं? रूपों की अनित्यता…को जान कर प्रज्ञा से देखते उपेक्षा होती है…अतः वह उपेक्षा नैष्कर्म्याश्रित कहलाती है। शब्दों की अनित्यता…धर्मों की अनित्यता जानकर…नैष्कर्म्याश्रित कहलाती है। ये छह नैष्कर्म्याश्रित उपेक्षा हैं।

'छत्तीस सत्तपदों को जानना चाहिये'—यह जो कहा था वह इसी आशय से कहा गया था। (६), (३६)

९. "यह जो—'इसके द्वारा इसको छोड़ो'—कहा, यह किस के बारे में कहा?

पनेतं वुत्तं; किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं? तत्र, भिक्खवे, यानि छ नेक्खम्मसितानि सोमनस्सानि तानि निस्साय तानि आगम्म यानि छ गेहसितानि सोमनस्सानि तानि पजहथ, तानि समतिक्कमथ। एवमेतेसं पहानं होति, एवमेतेसं समतिक्कमो होति। (१)

"तत्र, भिक्खवे, यानि छ नेक्खम्मसितानि दोमनस्सानि तानि निस्साय तानि आगम्म यानि छ गेहसितानि दोमनस्सानि तानि पजहथ, तानि समतिक्कमथ। एवमेतेसं पहानं होति, एवमेतेसं समतिक्कमो होति। (२)

"तत्र, भिक्खवे, या छ नेक्खम्मसिता उपेक्खा ता निस्साय ता आगम्म या छ गेहसिता उपेक्खा ता पजहथ, ता समतिक्कमथ। एवमेतासं पहानं होति, एवमेतासं समतिक्कमो होति। (३)

"तत्र, भिक्खवे, यानि छ नेक्खम्मसितानि सोमनस्सानि तानि निस्साय तानि आगम्म यानि छ नेक्खम्मसितानि दोमनस्सानि तानि पजहथ, तानि समतिक्कमथ। एवमेतेसं पहानं होति, एवमेतेसं समतिक्कमो होति। (४)

"तत्र, भिक्खवे, या छ नेक्खम्मसिता उपेक्खा ता निस्साय ता आगम्म यानि छ नेक्खम्मसितानि सोमनस्सानि तानि पजहथ, तानि समतिक्कमथ। एवमेतेसं पहानं होति, एवमेतेसं समतिक्कमो होति। (५)

[B. 263] "अत्थि, भिक्खवे, उपेक्खा नानत्ता नानत्तसिता, अत्थि उपेक्खा एकत्ता एकत्तसिता। कतमा च, भिक्खवे, उपेक्खा नानत्ता नानत्त-

---

(१) वहाँ, भिक्षुओ! ये जो छह नैष्कर्म्याश्रित सौमनस्य हैं, उनके द्वारा, उनका सहारा लेकर छह लोभमूलक सौमनस्यों को छोड़ देना चाहिये, उन्हें अतिक्रान्त कर देना चाहिये। इस प्रकार उनका प्रहाण होता है, उनका अतिक्रमण होता है।

(२) वहाँ, भिक्षुओ! नैष्कर्म्याश्रित दौर्मनस्य...।

(३) ...छह निष्कर्मतासम्बद्ध उपेक्षाएँ हैं, उनके द्वारा छह लोभमूलक उपेक्षाओं को छोड़ो, उनका अतिक्रमण करो। यों इनका प्रहाण एवं समतिक्रमण होता है।

(४) वहाँ, भिक्षुओ! छह नैष्कर्म्याश्रित सौमनस्यों के सहारे छह नैष्कर्म्याश्रित दौर्मनस्यों का प्रहाण व अतिक्रमण करो...।

(५) "वहाँ, भिक्षुओ! छह नैष्कर्म्याश्रित उपेक्षाओं के सहारे ही छह नैष्कर्म्याश्रित सौमनस्यों का प्रहाण एवं अतिक्रमण करो...।

"भिक्षुओ! यह उपेक्षा (कहीं) नाना अर्थ वाली है, नाना अर्थों से सम्बद्ध है। और यही उपेक्षा (कहीं) एक अर्थ वाली एवं एक अर्थ से सम्बद्ध है। भिक्षुओ!

सिता ? अत्थि, भिक्खवे, उपेक्खा रूपेसु, अत्थि सद्देसु, अत्थि गन्धेसु, अत्थि रसेसु, अत्थि फोट्ठब्बेसु—अयं, भिक्खवे, उपेक्खा नानत्ता नानत्तसिता। कतमा च, भिक्खवे, उपेक्खा एकत्ता एकत्तसिता ? अत्थि, भिक्खवे, उपेक्खा आकासानञ्चायतननिस्सिता, अत्थि विञ्ञाणञ्चायतननिस्सिता, अत्थि आकिञ्चञ्ञायतननिस्सिता, अत्थि नेवसञ्ञानासञ्ञायतन- [N.302] निस्सिता-अयं, भिक्खवे, उपेक्खा एकत्ता एकत्तसिता।

"तत्र, भिक्खवे, यायं उपेक्खा एकत्ता एकत्तसिता तं निस्साय त आगम्म यायं उपेक्खा नानत्ता नानत्तसिता तं पजहथ, तं समतिक्कमथ। एवमेतिस्सा पहान होति, एवमेतिस्सा समतिक्कमो होति।

"अतम्मयतं, भिक्खवे, निस्साय अतम्मयतं आगम्म यायं उपेक्खा एकत्ता एकत्तसिता तं पजहथ, तं समतिक्कमथ। एवमेतिस्सा पहानं होति, एवमेतिस्सा समतिक्कमो होति। 'तत्र इदं निस्साय इदं पजहथा' [R. 221] ति—इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं।

१०. " '**तयो सतिपट्ठाना यदरियो सेवति, यदरियो सेवमानो सत्था गणमनुसासितुमरहती**' ति—इति खो पनेतं वुत्तं; किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं ? इध, भिक्खवे, सत्था सावकानं धम्मं देसेति अनुकम्पको हितेसी अनुकम्पं

नानार्थक एवं नानार्थाश्रित उपेक्षा कौन सी है ? भिक्षुओ ! रूप, शब्द, गन्ध, रस एवं स्प्रष्टव्यों में जो उपेक्षा रहती है वह नानार्थक है, नाना अर्थों से सम्बद्ध है और, भिक्षुओ ! कौन सी उपेक्षा एक अर्थ वाली··· है ? भिक्षुओ ! जो उपेक्षा आकाशानन्त्यतननिःसृत होती है, विज्ञानानन्त्यायतननिःसृत ··आकिञ्चन्यायतननिःसृत···नैवसंज्ञानासंज्ञायतननिःसृत होती है वह उपेक्षा एक अर्थ वाली एवं एक अर्थाश्रित होती है।

"वहाँ, भिक्षुओ ! जो उपेक्षा एकार्थक एवं एकार्थाश्रित होती है उसके सहारे, उसके आलम्बन से नानार्थक नानार्थाश्रित उपेक्षाओं का प्रहाण व अतिक्रमण करो। इस तरह···समतिक्रमण होगा।

और, भिक्षुओ ! अतन्मयता के सहारे, अतन्मयता का आलम्बन कर एकार्थक··· उपेक्षा का प्रहाण व अतिक्रमण करो।···। वहाँ 'इसके सहारे इसका त्याग करो'—यह जो कहा था, वह इसी अपेक्षा से कहा गया था।

१०. "तीन स्मृतिप्रस्थान, जिनकी आर्यजन साधना करते हैं, जिनकी साधना करते हुए वे अपने शिष्यों पर अनुशासन करने योग्य बनते हैं'—यह जो उद्देश में कहा है वह किसकी अपेक्षा से कहा गया है ? यहाँ भिक्षुओ ! कोई शास्ता श्रावकों को, उन पर कृपा कर उनका हित सोच कर कि इनके लिये

उपादाय—'इदं वो हिताय, इदं वो सुखाया' ति। तस्स सावका न सुस्सूसन्ति, न सोतं ओदहन्ति, न अञ्ञा चित्तं उपट्ठपेन्ति, वोक्कम्म च सत्थुसासना वत्तन्ति'। तत्र, भिक्खवे, तथागतो न चेव अनत्तमनो होति, न च अनत्तमनतं पटिसंवेदेति, अनवस्सुतो च विहरति सतो सम्पजानो। इदं, भिक्खवे, पठमं सतिपट्ठानं यदरियो सेवति, यदरियो सेवमानो सत्था गणमनुसासितुमरहति (१)

"पुन च परं, भिक्खवे, सत्था सावकानं धम्मं देसेति अनुकम्पको हितेसी अनुकम्पं उपादाय—'इदं वो हिताय, इदं वो सुखाया' ति। तस्स एकच्चे सावका न सुस्सूसन्ति, न सोतं ओदहन्ति, न अञ्ञा चित्तं उपट्ठपेन्ति, वोकम्म च सत्थुसासना वत्तन्ति; एकच्चे सावका सुस्सूसन्ति, सोतं ओदहन्ति, अञ्ञा [B. 264] चित्तं उपट्ठपेन्ति, न च वोक्कम्म सत्थुसासना वत्तन्ति। तत्र, भिक्खवे, तथागतो न चेव अनत्तमनो होति, न च अनत्तमनतं पटिसंवेदेति; न च अत्तमनो होति, न च अत्तमनतं पटिसंवेदेति। अनत्तमनता च अत्तमनता च—तदुभयं अभिनिवज्जेत्वा उपेक्खको विहरति सतो सम्पजानो। [N. 303] इदं वुच्चति, भिक्खवे दुतियं सतिपट्ठानं यदरियो सेवति, यदरियो सेवमानो सत्था गणमनुसासितुरहति (२)

यह हितकर हो, सुखकर हो—उपदेश करता है। उसके कुछ शिष्य उस उपदेश को सुनना नहीं चाहते, उस पर कान नहीं धरते। अपना चित्त अन्यत्र से हटा कर उस उपदेश पर नहीं लगाते, यों उस शास्ता के अनुशासन का अतिक्रमणात्मक व्यवहार करते रहते हैं। भिक्षुओ! इस व्यवहार से शास्ता न असन्तुष्ट होते हैं, न किसी असन्तोष का अनुभव करते हैं। अपि तु स्मृतिसम्प्रजन्य के साथ अपनी साधना में लगे रहते हैं। भिक्षुओ! यह हुआ प्रथम स्मृतिप्रस्थान, जिसकी आर्यजन साधना...। (१)

फिर, भिक्षुओ! कोई शास्ता श्रावकों को...उपदेश करता है। उसके शिष्यों में कुछ उस उपदेश को सुनना चाहते हैं, कुछ नहीं सुनना चाहते। कुछ उस पर कान धरते हैं, कुछ नहीं धरते; कुछ अपना चित्त अन्यत्र से हटा कर उस उपदेश में नहीं लगाते, कुछ लगाते भी हैं। यों उनमें से कुछ शास्ता के अनुशासन उल्लङ्घन करते रहते हैं और कुछ नहीं भी करते। वहाँ भिक्षुओ! तथागत अपने इन दोनों ही प्रकार शिष्यों के व्यवहार से न प्रसन्न ही होते हैं न अप्रसन्न; न असन्तुष्ट होते हैं, न सन्तुष्ट न असन्तुष्ट। यो प्रसन्नता और अप्रसन्नता दोनों का ही परित्याग कर स्मृतिसम्प्रजन्य के सहारे उन दोनों के ही व्यवहार की उपेक्षा करते हुए साधना करते हैं। भिक्षुओ! यह द्वितीय स्मृतिप्रस्थान कहलाता है जिसकी आर्यजनसाधना...। (२)

"पुन च परं, भिक्खवे, सत्था सावकानं धम्मं देसेति अनुकम्पको हितेसी अनुकम्पं उपादाय—'इदं वो हिताय, इदं वो सुखाया' ति। तस्स सावका सुस्सूसन्ति, सोतं ओदहन्ति, अञ्ञा चित्तं उपट्ठपेन्ति, न च वोक्कम्म सत्थुसासना वत्तन्ति। तत्र, भिक्खवे, तथागतो अत्तमनो चेव होति, अत्तमनतं च पटिसंवेदेति, अनवस्सुतो च विहरति सतो सम्पजानो। इदं वुच्चति, भिक्खवे, ततियं सतिपट्ठानं यदरियो सेवति, यदरियो सेवमानो सत्था गणमनुसासितुमरहति। तयो सतिपट्ठाना; यदरियो [R. 222] सेवति, यदरियो सेवमानो सत्था गणमनुसासितुमरहती' ति—इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं। (३)

११. "'सो वुच्चति योग्गाचरियानं अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथी' ति—इति खो पनेतं वुत्तं; किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं? हत्थिदमकेन, भिक्खवे, हत्थिदम्मो सारितो एकं येव दिसं धावति—पुरत्थिमं वा पच्छिमं वा उत्तरं वा दक्खिणं वा। अस्सदमकेन, भिक्खवे, अस्सदम्मो सारितो एकं येव दिसं धावति—पुरत्थिमं वा पच्छिमं वा उत्तरं वा दक्खिणं वा। गोदमकेन, भिक्खवे, गोदम्मो सारितो एकं येव दिसं धावति—पुरत्थिमं वा पच्छिमं वा उत्तरं वा दक्खिणं वा। तथागतेन हि, भिक्खवे, अरहता सम्मासम्बुद्धेन पुरिसदम्मो सारितो अट्ठ दिसा विधावति। रूपी रूपानि पस्सति—अयं एका दिसा; अज्झत्तं अरूपसञ्ञी बहिद्धा रूपानि पस्सति—अयं दुतिया

"और फिर, भिक्षुओ! कोई शास्ता श्रावकों को धर्मोपदेश करता है…। उसके श्रावक धर्मोपदेश को सुनना चाहते हैं…अतिक्रमण नहीं करते। वहाँ तथागत सन्तुष्ट होते हैं…साधना करते हैं। भिक्षुओ! यह तृतीय स्मृतिप्रस्थान कहलाता है जिसकी साधना कर आर्यजन…।

'तीन स्मृतिप्रस्थान हैं, जिनकी साधना कर आर्यजन…शिष्यों को उपदेश करने योग्य होता है'—यह जो कहा है, यह इसी आशय से कहा है। (३)

११. 'वह अनुशासनाचार्यों में अद्वितीय पुरुषदम्य सारथि कहा जाता है'—यह जो कहा है, वह किस आशय से कहा है? हस्तिशिक्षक द्वारा सिखाया गया हाथी, चलने के लिये कहने पर एक समय में एक ही दिशा की तरफ चल सकता है, फिर भले ही वह पूर्व हो या पश्चिम, दक्षिण हो या उत्तर; इसी तरह अश्वशिक्षक द्वारा सिखाया अश्व…; वृषभशिक्षक द्वारा सिखाया गया बैल…दक्षिण हो या उत्तर; परन्तु अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध तथागत द्वारा उपदेश-(अनुशासन-)प्राप्त पुरुष आठों दिशाओं में दौड़ता है—(१) रूपी रूपों को देखता है—यह प्रथम दिशा है।

दिसा; सुभं त्वेव अधिमुत्तो होति—अयं ततिया दिसा; सब्बसो रूपसञ्ञानं समतिक्कमा पटिघसञ्ञानं अत्थङ्गमा नानत्तसञ्ञानं अमनसिकारा 'अनन्तो आकासो' ति आकासानञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति--अयं चतुत्थी दिसा; सब्बसो आकासानञ्चायतनं समतिक्कम्म 'अनन्तं विञ्ञाणं' ति विञ्ञाणञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति--अयं पञ्चमी दिसा; सब्बसो विञ्ञाणञ्चायतनं समतिक्कम्म 'नत्थि किञ्ची' ति आकिञ्चञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहरति--अयं छट्ठा दिसा; सब्बसो आकिञ्चञ्ञायतनं [B. 265, N. 304] समतिक्कम्म नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहरति—अयं सत्तमी दिसा; सब्बसो नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं समतिक्कम्म सञ्ञावेदयितनिरोधं उपसम्पज्ज विहरति--अयं अट्ठमी दिसा। तथागतेन, भिक्खवे, अरहता सम्मासम्बुद्धेन पुरिसदम्मो सारितो इमा अट्ठ दिसा विधावति। 'सो वुच्चति योग्गाचरियानं अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथी' ति—इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं" ति।

१२. इदमवोच भगवा। अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति।

●

---

(२) आध्यात्मिक अरूपसंज्ञी बाहरी रूपों को देखता है—यह दूसरी दिशा है। शुभ (अनुकूल) से ही अधिमुक्त होता है—यह तीसरी दिशा है। रूपसंज्ञा को सर्वथा छोड़ देने से...पूर्ववत्...आकाशानन्त्यायन को प्राप्त हो साधना करता है—यह चौथी दिशा है। आकाशानन्त्यायतन को समतिक्रान्त कर...विज्ञानानन्त्यायतन... यह पाँचवी दिशा है।...आकिञ्चन्यायतन...—यह छठी दिशा है।...नैवसंज्ञानासंज्ञायतन...—यह सातवीं दिशा है।...संज्ञावेदितनिरोध को प्राप्त हो साधना करता है—यह आठवीं दिशा है। भिक्षुओ! अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध तथागत द्वारा अनुशासित पुद्गल (पुरुषयुग्य) चलने के लिये कहने पर, इन आठों दिशाओं की तरफ ध्यान रख कर ही चलता है। 'वह अनुशासनाचार्यों में अनुपम पुरुषदम्य सारथि कहा गया है'—यह जो कहा है, वह उपर्युक्त आशय से ही कहा है।"

१२. भगवान् ने यह उपदेश किया। आप्तमना भिक्षुओं ने भगवान् के भाषण अभिनन्दन किया॥

सळायतनविभङ्गसुत्त समाप्त॥

●

३८. उद्देसविभंगसुत्तं

१. भगवतो सङ्खित्तदेसना

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं [N. 305, R. 223] विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—"उद्देसविभङ्गं वो, भिक्खवे, देसेस्सामि। तं सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; भासिस्सामी" ति। "एवं, भन्ते" ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

"तथा तथा, भिक्खवे, भिक्खु उपपरिक्खेय्य यथा यथा उपपरिक्खतो बहिद्धा चस्स विञ्ञाणं अविक्खित्तं अविसटं, अज्झत्तं असण्ठितं अनुपादाय न परितस्सेय्य। बहिद्धा, भिक्खवे, विञ्ञाणे अविक्खित्ते अविसटे सति अज्झत्तं असण्ठिते अनुपादाय अपरितस्सतो आयतिं जातिजरामरणदुक्खसमुदयसम्भवो न होती" ति। इदमवोच भगवा। इदं वत्वान सुगतो उट्ठायासना विहारं पाविसि।

२. अथ खो तेसं भिक्खूनं, अचिरपक्कन्तस्स भगवतो, एतदहोसि—"इदं खो नो, आवुसो, भगवा सङ्खित्तेन उद्देसं उद्दिसित्वा वित्थारेन अत्थं अविभजित्वा उट्ठायासना विहारं पविट्ठो—'तथा तथा, भिक्खवे, भिक्खु उपपरिक्खेय्य यथा यथा उपपरिक्खतो बहिद्धा चस्स विञ्ञाणं [B. 266] अविक्खित्तं अविसटं, अज्झत्तं असण्ठितं अनुपादाय न परितस्सेय्य। बहिद्धा,

---

३८. उद्देशविभङ्गसूत्र

१. भगवत्कृत संक्षिप्त देशना

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती के··· जेतवनविहार में साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को···। भगवान् बोले—"भिक्षुओ! उद्देशविभङ्ग (व्याख्येय विषयों के नाम का विभाजन) का उपदेश करता हूँ। उसे तुम स्थिर चित्त से ध्यानपूर्वक सुनो और मन में धारण करो।" "अच्छा, भन्ते" कह कर भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

भगवान् ने कहा—"भिक्षुओ! भिक्षु-साधक को वैसे-वैसे उपपरीक्षण करना चाहिये, जैसे-जैसे उपपरीक्षण करने से उसका विज्ञान (चित्त) बाहर विक्षिप्त, विसृष्ट न हो, और भीतर भी असंस्थित होने के कारण परित्रस्त न हो। भिक्षुओ! विज्ञान के बाहर विक्षिप्त या विसृष्ट न होने से और भीतर भी असंस्थित होने तथा ग्रहण न करने के कारण परित्रस्त न होने से, उसके लिये, वह भावी जन्म-जरा-मरणरूपी दुःखोत्पत्ति का हेतु नहीं रह जाता।" भगवान् ने यह कहा। इतना कह कर सुमधुरभाषी भगवान् आसन से उठ कर विहार में चले गये।

२. कुछ देर बाद, उन भिक्षुओं को, जब कि भगवान् को गये थोड़ा ही समय

भिक्खवे, विञ्ञाणे अविक्खित्ते अविसटे सति अज्झत्तं असण्ठिते अनुपादाय अपरितस्सतो आयतिं जातिजरामरणदुक्खसमुदयसम्भवो न होती' ति। को नु खो इमस्स भगवता सङ्खित्तेन उद्देसस्स उद्दिट्ठस्स वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स वित्थारेन अत्थं विभजेय्या" ति ? अथ खो तेसं भिक्खूनं एतदहोसि--"अयं खो आयस्मा महाकच्चानो सत्थु चेव संवण्णितो सम्भावितो [N. 306] च विञ्ञूनं सब्रह्मचारीनं; पहोति चायस्मा महाकच्चानो इमस्स भगवता सङ्खित्तेन उद्देसस्स उद्दिट्ठस्स वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स [R. 224] वित्थारेन अत्थं विभजितुं। यन्नून मयं येनायस्मा महाकच्चानो तेनुपसङ्कमेय्याम; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं महाकच्चानं एतमत्थं पटिपुच्छेय्यामा" ति।

अथ खो ते भिक्खू येनायस्मा महाकच्चानो तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा आयस्मता महाकच्चानेन सद्धिं सम्मोदिंसु। सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खू आयस्मन्तं महाकच्चानं एतदवोचुं—

"इदं खो नो, आवुसो कच्चान, भगवा सङ्खित्तेन उद्देसं उद्दिसित्वा वित्थारेन अत्थं अविभजित्वा उट्ठायासना विहारं पविट्ठो—'तथा तथा, भिक्खवे, भिक्खु उपपरिक्खेय्य यथा यथा उपपरिक्खतो बहिद्धा चस्स विञ्ञाणं अविक्खित्तं अविसटं, अज्झत्तं असण्ठितं अनुपादाय न परितस्सेय्य। बहिद्धा, भिक्खवे, विञ्ञाणे अविक्खित्ते अविसटे सति अज्झत्तं असण्ठिते अनुपादाय अपरितस्सतो आयतिं जातिजरामरणदुक्खसमुदयसम्भवो न होती' ति। तेसं नो, आवुसो कच्चान, अम्हाकं, अचिरपक्कन्तस्स भगवतो, एतदहोसि—'इदं खो नो, आवुसो, भगवा सङ्खित्तेन उद्देसं उद्दिसित्वा [B. 267] वित्थारेन अत्थं अविभजित्वा उट्ठायासना विहारं पविट्ठो··· पे०···यन्नून मयं येनायस्मा महाकच्चानो तेनुपसङ्कमेय्याम; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं महाकच्चानं एतमत्थं पटिपुच्छेय्यामा' ति। विभजतायस्मा महाकच्चानो" ति।

३. "सेय्यथापि, आवुसो, पुरिसो सारत्थिको सारगवेसी सारपरियेसनं चरमानो महतो रुक्खस्स तिट्ठतो सारवतो अतिक्कम्मेव मूलं अति-

---

हुआ था···पूर्ववत्···आयुष्मन् महाकात्यायन ! आप इसका विशद व्याख्यान करें।

३. आयुष्मानो ! जैसे कोई सारवान् (दृढ) काष्ठ का इच्छुक···इस तरह विशद व्याख्यान जानता हूँ—

क्कम्म खन्धं साखापलासे, सारं परियेसितब्बं मञ्ञेय्य; एवंसम्पदमिदं आयस्मन्तानं सत्थरि सम्मुखीभूते तं भगवन्तं अतिसित्वा अम्हे एतमत्थं पटिपुच्छितब्बं मञ्ञथ। सो, आवुसो, भगवा जानं जानाति, पस्सं पस्सति, चक्खुभूतो ञाणभूतो धम्मभूतो ब्रह्मभूतो वत्ता पवत्ता अत्थस्स निन्नेता अमतस्स दाता धम्मस्सामी तथागतो। सो चेव पनेतस्स कालो अहोसि यं भगवन्तं येव एतमत्थं पटिपुच्छेय्याथ; यथा वो भगवा ब्याक- [N. 307] रेय्य तथा नं धारेय्याथा" ति।

"अद्धावुसो कच्चान, भगवा जानं जानाति, पस्सं पस्सति, चक्खुभूतो ञाणभूतो धम्मभूतो ब्रह्मभूतो वत्ता पवत्ता अत्थस्स निन्नेता अमतस्स दाता धम्मस्सामी तथागतो। सो चेव पनेतस्स कालो अहोसि यं भगवन्तं येव एतमत्थं पटिपुच्छेय्याम; यथा नो भगवा ब्याकरेय्य तथा नं धारेय्याम। अपि चायस्मा महाकच्चानो सत्थु चेव संवण्णितो सम्भावितो च [R. 225] विञ्ञूनं सब्रह्मचारीनं। पहोति चायस्मा महाकच्चानो इमस्स भगवता सङ्खित्तेन उद्देसस्स उद्दिट्ठस्स वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स वित्थारेन अत्थं विभजितुं विभजतायस्मा महाकच्चानो अगरुं करित्वा" ति।

"तेन हावुसो, सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ, भासिस्सामी" ति। "एवमावुसो" ति खो ते भिक्खू आयस्मतो महाकच्चानस्स पच्चस्सोसुं। आयस्मा महाकच्चानो एतदवोच—

"यं खो नो आवुसो, भगवा सङ्खित्तेन उद्देसं उद्दिसित्वा वित्थारेन अत्थं अविभजित्वा उट्ठायासना विहारं पविट्ठो…पे॰… इमस्स खो [B. 268] अहं, आवुसो, भगवता सङ्खित्तेन उद्देसस्स उद्दिट्ठस्स वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स एवं वित्थारेन अत्थं आजानामि—

२. आयस्मतो महाकच्चानस्स वित्थारदेसना

४. 'कथमावुसो, बहिद्धा विञ्ञाणं विक्खित्तं विसटं ति वुच्चति? इधावुसो, भिक्खुनो चक्खुना रूपं दिस्वा रूपनिमित्तानुसारि विञ्ञाणं होति रूपनिमित्तस्सादगधितं रूपनिमित्तस्सादविनिबन्धं रूपनिमित्तस्सादसंयोजन-

---

२. आयुष्मान् महाकात्यायन द्वारा विस्तृत व्याख्यान—

४. 'आयुष्मानो! कैसे बाह्य विज्ञान विक्षिप्त एवं विसृष्ट होता है? आयुष्मानो! यहाँ साधक भिक्षु को चक्षु से रूप के देखने पर रूपनिमित्तानुसारि (रूप के निमित्त लिङ्गादि का अनुस्मरण करने वाला) विज्ञान होता है जो कि रूपनिमित्त के स्वाद में ग्रथित…बद्ध…संयोजन (बन्धन) से संयोजित बाहरी विज्ञान

संयुत्तं बहिद्धा विञ्ञाणं विक्खित्तं विसटं ति वुच्चति। सोतेन सद्दं सुत्वा… पे०…घानेन गन्धं घायित्वा…जिव्हाय रसं सायित्वा…कायेन फोट्ठब्बं फुसित्वा…मनसा धम्मं विञ्ञाय धम्मनिमित्तानुसारि विञ्ञाणं होति; धम्मनिमित्तस्सादगधितं धम्मनिमित्तस्सादविनिबन्धं धम्मनिमित्तस्साद- [N. 308] संयोजनसंयुत्तं बहिद्धा विञ्ञाणं विक्खित्तं विसटं ति वुच्चति। एवं खो, आवुसो, बहिद्धा विञ्ञाणं विक्खित्तं विसटं ति वुच्चति।

५. 'कथञ्चावुसो, बहिद्धा विञ्ञाणं अविक्खित्तं अविसटं ति वुच्चति? इधावुसो, भिक्खुनो चक्खुना रूपं दिस्वा न रूपनिमित्तानुसारि विञ्ञाणं होति, न रूपनिमित्तस्सादगधितं न रूपनिमित्तस्सादविनिबन्धं न रूपनिमित्त-स्सादसंयोजनसंयुत्तं बहिद्धा विञ्ञाणं अविक्खित्तं अविसटं ति वुच्चति। [R. 226] सोतेन सद्दं सुत्वा…पे०…घानेन गन्धं घायित्वा…जिव्हाय रसं सायित्वा…कायेन फोट्ठब्बं फुसित्वा…मनसा धम्मं विञ्ञाय न धम्मनि-मित्तानुसारि विञ्ञाणं होति, न धम्मनिमित्तस्सादगधितं न धम्मनिमित्त-स्सादविनिबन्धं न धम्मनिमित्तस्सादसंयोजनसंयुत्तं बहिद्धा विञ्ञाणं अवि-क्खित्तं अविसटं ति वुच्चति। एवं खो, आवुसो, बहिद्धा विञ्ञाणं अविक्खित्तं अविसटं ति वुच्चति।

६. 'कथञ्चावुसो, अज्झत्तं सण्ठितं ति वुच्चति? इधावुसो, भिक्खु विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति। तस्स विवेकजपीतिसुखानुसारि विञ्ञाणं होति विवेकजपीतिसुखस्सादगधितं विवेकजपीतिसुखस्सादविनि-

---

विक्षिप्त विसृष्ट कहलाता है। श्रोत्र से…मन से कर्म जान कर…यों…विसृष्ट कहा जाता है।

५. 'और कैसे, आयुष्मानो! बाहरी विज्ञान अविक्षिप्त एवं अविसृष्ट होता है? यहाँ, आयुष्मानो! किसी साधक भिक्षु को चक्षु से रूप के देखने पर रूप के निमित्त लिङ्गादि का अनुस्मरण करने वाला विज्ञान नहीं होता; यह न रूपनिमित्त के स्वाद में ग्रथित, न बद्ध, न संयोजन से संयोजित बाहरी विज्ञान अविक्षिप्त एवं अविसृष्ट कहलाता है। श्रोत्र से…पूर्ववत्…मन से धर्म को जान कर…अविसृष्ट कहा जाता है।

६. 'कैसे, आयुष्मानो! वह विज्ञान अपने भीतर (अध्यात्म) संस्थित कहलाता है? यहाँ, आयुष्मानो! भिक्षु जब कामरहित…प्रथम ध्यान की अवस्था में पहुँच कर साधना करता है, उस समय उस का विज्ञान विवेकजन्य प्रीतिसुख का अनुस्मरण

बन्धं विवेकजपीतिसुखस्सादसंयोजनसंयुत्तं अज्झत्तं चित्तं [B. 269] सण्ठितं ति वुच्चति।

'पुन च परं, आवुसो, भिक्खु वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं सम्पसादनं चेतसो एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं समाधिजं पीतिसुखं दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। तस्स समाधिजपीतिसुखानुसारि विञ्ञाणं होति, समाधिजपीतिसुखस्सादगधितं समाधिजपीतिसुखस्सादविनिबन्धं समाधिजपीतिसुखस्सादसंयोजनसंयुत्तं अज्झत्तं चित्तं सण्ठितं ति वुच्चति।

'पुन च परं, आवुसो, भिक्खु पीतिया च विरागा उपेक्खको च विहरति सतो च सम्पजानो सुखं च कायेन पटिसंवेदेति, यं तं अरिया आचिक्खन्ति– उपेक्खको सतिमा सुखविहारी ति ततियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। तस्स उपेक्खानुसारि विञ्ञाणं होति, उपेक्खासुखस्सादगधितं [N. 309] उपेक्खासुखस्सादविनिबन्धं उपेक्खासुखस्सादसंयोजनसंयुत्तं अज्झत्तं चित्तं सण्ठित ति वुच्चति।

'पुन च परं, आवुसो, भिक्खु सुखस्स च पहाना दुक्खस्स च पहाना पुब्बेव सोमनस्सदोमनस्सानं अत्थङ्गमा अदुक्खमसुखं उपेक्खासतिपारिसुद्धिं चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। तस्स अदुक्खमसुखानुसारि विञ्ञाणं होति अदुक्खमसुखस्सादगधितं अदुक्खमसुखस्सादविनिबन्धं अदुक्खमसुखस्सादसंयोजनसंयुत्तं अज्झत्तं चित्त सण्ठितं ति वुच्चति। एवं खो, आवुसो, अज्झत्तं सण्ठितं ति वुच्चति।

७. 'कथञ्चावुसो, अज्झत्तं असण्ठितं ति वुच्चति ? इधा- [R. 227] वुसो, भिक्खु विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि...पे०...पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति। तस्स न विवेकजपीतिसुखानुसारि विञ्ञाणं

करने वाला विवेकज प्रीतिसुख के आस्वादन से ग्रथित...बद्ध...सयोजन से संयोजित चित्त अपने भीतर संस्थित कहलाता है।

'और फिर, आयुष्मानो ! वह साधक भिक्षु वितर्क-विचारों के शान्त होने पर...द्वितीय ध्यान की अवस्था में पहुँच कर साधना करता है। उस समय उसका विज्ञान समाधिज प्रीतिसुख के स्वाद से ग्रथित, बद्ध...संयोजन से संयुक्त हो अपने भीतर संस्थित कहा जाता है।

'और फिर, आयुष्मानो ! वह भिक्षु प्रीति से भी विरक्त हो...तृतीय ध्यान... उपेक्षा का अनुसरण करने वाला...अपने भीतर संस्थित कहा जाता है।

७. 'और फिर, आयुष्मानो ! सुख एवं दुःख के प्रहाण से, सौमनस्य-दौर्मनस्यों के अस्त हो जाने से, अदुःख-असुखमय उपेक्षास्मृतिपरिशुद्धिस्वरूप चतुर्थ ध्यान की

होति, न विवेकजपीतिसुखस्सादगधितं न विवेकजपीतिसुखस्सादविनिबन्धं न विवेकजपीतिसुखस्सादसंयोजनसंयुत्तं अज्झत्तं चित्तं असण्ठितं ति वुच्चति।

'पुन च परं, आवुसो, भिक्खु वितक्कविचारानं वूपसमा···पे॰···दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। तस्स न समाधिजपीतिसुखानुसारि विञ्ञाणं होति, न समाधिजपीतिसुखस्सादगधितं न समाधिजपीतिसुखस्सादविनिबन्धं न समाधिजपीतिसुखस्सादसंयोजनसंयुत्तं अज्झत्तं चित्तं असण्ठितं ति वुच्चति।

[B. 270] 'पुन च परं, आवुसो, भिक्खु पीतिया च विरागा···पे॰··· ततियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। तस्स न उपेक्खानुसारि विञ्ञाणं होति न उपेक्खासुखस्सादगधितं न उपेक्खासुखस्सादविनिबन्धं न उपेक्खासुखस्साद-संयोजनसंयुत्तं अज्झत्तं चित्तं असण्ठितं ति वुच्चति।

'पुन च परं, आवुसो, भिक्खु सुखस्स च पहाना दुक्खस्स च पहाना पुब्बेव सोमनस्सदोमनस्सानं अत्थङ्गमा अदुक्खमसुखं उपेक्खासतिपारिसुद्धिं चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। तस्स न अदुक्खमसुखानुसारि विञ्ञाणं होति, न अदुक्खमसुखस्सादगधितं न अदुक्खमसुखस्सादविनिबन्धं न अदुक्खमसुखस्सादसंयोजनसंयुत्तं अज्झत्तं चित्तं असण्ठितं ति वुच्चति। एवं [N. 310] खो, आवुसो, अज्झत्तं असण्ठितं ति वुच्चति।

८. 'कथञ्चावुसो, अनुपादा परितस्सना होति? इधावुसो, अस्सुतवा पुथुज्जनो अरियानं अदस्सावी अरियधम्मस्स अकोविदो अरियधम्मे अविनीतो सप्पुरिसानं अदस्सावी सप्पुरिसधम्मस्स अकोविदो सप्पुरिसधम्मे अविनीतो रूपं अत्ततो समनुपस्सति रूपवन्तं वा अत्तानं अत्तनि वा रूपं रूपस्मिं वा अत्तानं। तस्स तं रूपं विपरिणमति, अञ्ञथा होति। तस्स रूपविपरिणामञ्ञथाभावा रूपविपरिणामानुपरिवत्ति विञ्ञाणं होति। तस्स

अवस्था में पहुँच कर साधना करता है। उस समय उसका विज्ञान न अदुःख-असुख का अनुस्मरण करता है···। ऐसे आयुष्मानो! वह विज्ञान अपने भीतर असंस्थित कहलाता है।

८. 'और कैसे, आयुष्मानो! उपादान (रागयुक्त ग्रहण) न करने से परित्रास होता है? यहाँ आयुष्मानो! आर्यों के दर्शन से वञ्चित···पूर्ववत्··· अश्रुतवान् (अज्ञ) पृथग्जन रूप को आत्मा मानता है या आत्मा को रूपवान्, आत्मा में रूप को या रूप में आत्मा को मानता है। उसका वह रूप विकृत होता है, अन्यथा होता है। उसके रूप के इस विपरिणाम (विकार) एवं अन्यथाभाव से विज्ञान भी परिवर्तित होता है। तब इस रूप के विपरिणाम से उत्पन्न परित्रासधर्मों की उत्पत्ति

रूपविपरिणामानुपरिवत्तजा परितस्सना धम्मसमुप्पादा चित्तं परियादाय तिट्ठन्ति। चेतसो परियादाना उत्तासवा च होति विघातवा च अपेक्खवा च अनुपादाय च परितस्सति। वेदनं···पे॰···सञ्ञं···सङ्खारे··· [R. 228] विञ्ञाणं अत्ततो समनुपस्सति विञ्ञाणवन्तं वा अत्तानं अत्तनि वा विञ्ञाणं विञ्ञाणस्मिं वा अत्तानं। तस्स तं विञ्ञाणं विपरिणमति, अञ्ञथा होति। तस्स विञ्ञाणविपरिणामञ्ञथाभावा विञ्ञाणविपरिणामानुपरिवत्ति विञ्ञाणं होति। तस्स विञ्ञाणविपरिणामानुपरिवत्तजा परितस्सना धम्मसमुप्पादा चित्तं परियादाय तिट्ठन्ति। चेतसो परियादाना उत्तासवा च होति विघातवा च अपेक्खवा च अनुपादाय च परितस्सति। एवं खो, आवुसो, अनुपादा परितस्सना होति।

९ 'कथञ्चावुसो, अनुपादाना अपरितस्सना होति? इधावुसो, सुतवा अरियसावको अरियानं दस्सावी अरियधम्मस्स कोविदो अरियधम्मे सुविनीतो सप्पुरिसानं दस्सावी सप्पुरिसधम्मस्स कोविदो सप्पु· [B. 271] रिसधम्मे सुविनीतो न रूपं अत्ततो समनुपस्सति न रूपवन्तं वा अत्तानं न अत्तनि वा रूपं न रूपस्मिं वा अत्तानं। तस्स तं रूपं विपरिणमति, अञ्ञथा होति। तस्स रूपविपरिणामञ्ञथाभावा न च रूपविपरिणामानुपरिवत्ति विञ्ञाणं होति। तस्स न रूपविपरिणामानुपरिवत्तजा परितस्सना धम्मसमुप्पादा चित्तं परियादाय तिट्ठन्ति। चेतसो परियादाना न च वुत्तासवा होति न च विघातवा न च अपेक्खवा अनुपादाय च न [N. 311] परितस्सति। न वेदनं···न सञ्ञं···न सङ्खारे···न विञ्ञाणं अत्ततो समनुपस्सति न विञ्ञाणवन्तं वा अत्तान न अत्तनि वा विञ्ञाणं विञ्ञाणस्मिं वा अत्तानं। तस्स तं विञ्ञाणं विपरिणमति, अञ्ञथा होति। तस्स विञ्ञाणविपरिणामञ्ञथाभावा न च विञ्ञाणविपरिणामानुपरिवत्ति विञ्ञाणं होति। तस्स न विञ्ञाणविपरिणामानुपरिवत्तजा परितस्सना धम्मसमुप्पादा चित्तं परियादाय तिट्ठन्ति। चेतसो परियादाना न च वुत्तासवा होति न च विघातवा न च अपेक्खवा, अनुपादाय च न परितस्सति। एवं

से वे उसके चित्त को पकड़ कर स्थित होते हैं। चित्त को पकड़ने से विज्ञान उत्त्रासयुक्त, विघातवान् (प्रतिहिंसायुक्त), एवं अपेक्षावान् हो जाता है···वेदना··· संज्ञा···संस्कार···विज्ञान को आत्मा के रूप में देखता है···परित्रासधर्मों की उत्पत्ति से वे उसके चित्त को पकड़ कर स्थित होते हैं।···अपेक्षावान् हो जाता है। यों, आयुष्मानो! 'अनुपादान से परित्रास' होता है।

९. 'और कैसे, आयुष्मानो! उपादान न करने से परित्रास नहीं होता? यहाँ

खो, आवुसो, अनुपादा अपरितस्सना होति' ।

"यं खो नो, आवुसो, भगवा सङ्खित्तेन उद्देसं उद्दिसित्वा वित्थारेन अत्थं अविभजित्वा उट्ठायासना विहारं पविट्ठो—'तथा तथा, भिक्खवे, भिक्खु उपपरिक्खेय्य यथा यथा उपपरिक्खतो बहिद्धा चस्स विञ्ञाणं अविक्खित्तं अविसटं, अज्झत्तं असण्ठितं अनुपादाय न परितस्सेय्य । बहिद्धा, भिक्खवे, विञ्ञाणे अविक्खित्ते अविसटे सति अज्झत्तं असण्ठिते अनुपादाय अपरितस्सतो आयतिं जातिजरामरणदुक्खसमुदयसम्भवो न होती' ति । इमस्स खो अहं, आवुसो, भगवता सङ्खित्तेन उद्देसस्स उद्दिट्ठस्स वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स एवं वित्थारेन अत्थं आजानामि । आकङ्खमाना च पन [R. 229] तुम्हे आयस्मन्तो भगवन्तं येव उपसङ्कमित्वा एतमत्थं पटिपुच्छेय्याथ; यथा वो भगवा ब्याकरोति तथा नं धारेय्याथा" ति ।

३. भगवतो अनुमोदना

१०. अथ खो ते भिक्खू आयस्मतो महाकच्चानस्स भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा उट्ठायासना येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु । एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खू भगवन्तं एदवोचुं—

[B. 272] "यं खो नो, भन्ते, भगवा सङ्खित्तेन उद्देसं उद्दिसित्वा वित्थारेन अत्थं अविभजित्वा उट्ठायासना विहारं पविट्ठो—तथा तथा, भिक्खवे, भिक्खु उपपरिक्खेय्य यथा यथा उपपरिक्खतो बहिद्धा चस्स विञ्ञाणं अविक्खित्तं अविसटं, अज्झत्तं असण्ठितं अनुपादाय न परि- [N. 312] तस्सेय्य । बहिद्धा, भिक्खवे, विञ्ञाणे अविक्खित्ते अविसटे

आयुष्मानो ! कोई आर्यश्रावक[1]...आयुष्मानो ! अनुपादान से परित्रास नहीं होता ।

"आयुष्मानो ! भगवान् जिस बात को संक्षेप में उद्देश रूप से बता कर... विहार में चले गये—'भिक्षुओ ! वैसे-वैसे उपपरीक्षण करना चाहिये...दुःख का हेतु नहीं रह जाता' । आयुष्मानो ! भगवान् के उस संक्षिप्त उद्देश का मैंने विस्तृत व्याख्यान कर दिया । यदि आप लोग चाहें तो भगवान् के पास जा कर भी इस का अर्थ पूछ लें । वे जैसा आप लोगों के बतावें वैसा ही धारण कर लें ।"

३. महाकात्यायन के कथन का भगवान् द्वारा समर्थन

१०. तब वे भिक्षु आयुष्मान् महाकात्यायन के कथन का अभिनन्दन एवं अनुमोदन कर जहाँ भगवान् थे...आयुष्मान् महाकात्यायन ने इस तरह, इन वाक्यों

---

१. पिछले आठवें पैरा को प्रतिलोम कर के पढ़े ।

सति अज्झत्तं असण्ठिते अनुपादाय अपरितस्सतो आयतिं जातिजरामरण-दुक्खसमुदयसम्भवो न होती" ति ।

"तेसं नो, भन्ते, अम्हाकं अचिरपक्कन्तस्स भगवतो, एतदहोसि—'इदं खो नो, आवुसो, भगवा सङ्खित्तेन उद्देसं उद्दिसित्वा वित्थारेन अत्थं अविभजित्वा उट्ठायासना विहारं पविट्ठो--तथा तथा, भिक्खवे, भिक्खु उपपरिक्खेय्य, यथा यथा उपपरिक्खतो बहिद्धा चस्स विञ्ञाणं अविक्खित्तं अविसटं, अज्झत्तं असण्ठितं अनुपादाय न परितस्सेय्य । बहिद्धा, भिक्खवे, विञ्ञाणे अविक्खित्ते अविसटे सति अज्झत्तं असण्ठिते अनुपादाय अपरितस्सतो आयतिं जातिजरामरणदुक्खसमुदयसम्भवो न होती ति । को नु खो इमस्स भगवता सङ्खित्तेन उद्देसस्स उद्दिट्ठस्स वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स वित्थारेन अत्थं विभजेय्या' ति ? तेसं नो, भन्ते, अम्हाकं एतदहोसि—'अयं खो आयस्मा महाकच्चानो सत्थु चेव संवण्णितो सम्भावितो च विञ्ञूनं सब्रह्मचारीनं । पहोति चायस्मा महाकच्चानो इमस्स भगवता सङ्खित्तेन उद्देसस्स उद्दिट्ठस्स वित्थारेन अत्थं अविभत्तस्स वित्थारेन अत्थं विभजितुं । यन्नून मयं येनायस्मा महाकच्चानो तेनुपसङ्कमेय्याम; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं महाकच्चानं एतमत्थं पटिपुच्छेय्यामा' ति । अथ खो मयं, भन्ते, येनायस्मा महाकच्चानो तेनुपसङ्कमिम्ह; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं महाकच्चानं एतमत्थं पटिपुच्छिम्ह । तेसं नो, भन्ते, आयस्मता महाकच्चानेन इमेहि आकारेहि इमेहि पदेहि इमेहि व्यञ्जनेहि अत्थो विभत्तो" ति ।

"पण्डितो, भिक्खवे, महाकच्चानो; महापञ्ञो, भिक्खवे, महाकच्चानो । मं चे पि तुम्हे, भिक्खवे, एतमत्थं पटिपुच्छेय्याथ, अहं पि एवमेवं ब्याक-[B. 273] रेय्यं यथा तं महाकच्चानेन ब्याकतं । एसो चेवेतस्स अत्थो । एवं च नं धारेय्याथा" ति ।

११. इदमवोच भगवा । अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति ।

•

से इन व्यञ्जनों से आपके कथन का विशद व्याख्यान किया है ।"

भगवान् बोले—"भिक्षुओ ! महाकात्यायन पण्डित है, महाप्राज्ञ है । यदि तुम ... यही इसका सारतत्त्व है । इसे तुम लोग इसी तरह अपने मन में धारण कर लो ।"

११. भगवान् ने यह कहा । आप्तमना उन भिक्षुओं ने भगवान् के भाषण का अभिनन्दन किया ॥

उद्देसविभङ्गसुत्त समाप्त ॥

•

३६. अरणविभगसुत्तं

१. अरणविभङ्गस्स उद्देसो

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं [N. 313, R. 230] विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—"अरणविभङ्गं वो, भिक्खवे, देसेस्सामि। तं सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; भासिस्सामी" ति। "एवं, भन्ते" ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

"न कामसुखमनुयुञ्जेय्य हीनं गम्मं पोथुज्जनिकं अनरियं अनत्थसंहितं, न च अत्तकिलमथानुयोगमनुयुञ्जेय्य दुक्खं अनरियं अनत्थसहितं।

"एते खो, भिक्खवे, उभो अन्ते अनुपगम्म मज्झिमा पटिपदा तथागतेन अभिसम्बुद्धा, चक्खुकरणी ञाणकरणी उपसमाय अभिञ्ञाय सम्बोधाय निब्बानाय संवत्तति।

"उस्सादनं च जञ्ञा, अपसादनं च जञ्ञा, उस्सादनं च ञत्वा अपसादनं च ञत्वा नेवुस्सादेय्य, न अपसादेय्य, धम्ममेव देसेय्य!

---

३६. अरणविभङ्गसूत्र

१. अरणविभङ्ग का उद्देश

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती के अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ भगवान् ने... यह कहा—"भिक्षुओ! अब मैं तुम्हें अरणविभङ्ग का उपदेश करूँगा, इसे तुम ध्यानपूर्वक सुनो। अपने मन में बैठा लो। (और तदनुसार आचरण करो")। "ठीक है, भन्ते!" कह कर भिक्षुओं ने भगवान् के आदेश को स्वीकार किया। भगवान् बोले—

१. (क) "साधक को हीन (निकृष्ट), ग्राम्य, पृथग्जनों के ही करने योग्य, अनार्य, अनर्थयुक्त कामसुखों में नहीं लगे रहना चाहिये; और (ख) न दुःखद, अनार्य एवं अनर्थयुक्त आत्मपीड़ादायक क्लेशकर्मों में लगना चाहिये।

२. भिक्षुओ! इन दोनों ही अतियों (अन्तों) को न स्वीकार कर तथागत ने (इनके बदले) एक मध्यम मार्ग खोज निकाला है, जो कि (साधक की) आखें खोल देने वाला, ज्ञान करा देने वाला, चित्तशान्ति ज्ञानसम्बोधि एव निर्वाण की तरफ ले जाने वाला है।

३. साधक को चाहिये कि वह जिज्ञासु को कोई भी बात कहने से पूर्व जिज्ञासु को उस बात से होने वाले उत्सादन (=बुद्धिभेद) एवं अवसादन (=जिज्ञासु के मन में उसके श्रद्धेय धर्म के प्रति व्यर्थ ग्लानि पैदा करना) को

"सुखविनिच्छयं जञ्ञा; सुखविनिच्छयं ञत्वा अज्झत्तं सुखमनुयुञ्जेय्य ।
"रहोवादं न भासेय्य, सम्मुखा न खीणं भणे।
"अतरमानो व भासेय्य, नो तरमानो।
"जनपदनिरुत्तिं नाभिनिवेसेय्य, समञ्ञं नातिधावेय्या ति।
"अयमुद्देसो अरणविभङ्गस्स।

२. अरणविभङ्गस्स निद्देसो

२. " 'न कामसुखमनुयुञ्जेय्य हीनं गम्मं पोथुज्जनिकं अनरियं अनत्थसंहितं, न च अत्तकिलमथानुयोगमनुयुञ्जेय्य दुक्खं अनरियं अनत्थसंहितं' ति—इति खो पनेतं वुत्तं; किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं? [B. 274] यो कामपटिसन्धिसुखिनो सोमनस्सानुयोगो हीनो गम्मो पोथुज्जनिको अनरियो अनत्थसंहितो, सदुक्खो एसो धम्मो सउपघातो [N. 314] सउपायासो सपरिळाहो; मिच्छापटिपदा। यो कामपटिसन्धिसुखिनो सोमनस्सानुयोगं अननुयोगो हीनं गम्मं पोथुज्जनिकं अनरियं [R. 231]

भी जान लें। यों इस उत्सादन एवं अवसादन को जान कर वह जिज्ञासु का न उत्सादन करे, न अवसादन ही; अपितु बिना किसी सम्मिश्रण (लाग-लपेट) के धर्म का उपदेश करे।

४. "सुख-विनिश्चय (कैसी साधना सुखपूर्वक हो सकती है—इस बात) को जाने। उसे जान कर वैसी साधना द्वारा आध्यात्मिक सुखानुभूति में लगा रहे।

५. "किसी से एकान्तवाद में (इकतरफा) बात न करे। किसी से इतना धीरे भी बात न करे कि सामने वाला (श्रोता) उसे सुन ही पाये।

६. "बात-चीत में शब्दों का उच्चारण स्पष्टतया करे, जल्दी-जल्दी न बोले।

७. "परस्पर बातचीत में प्रादेशिक भाषा-शब्दों का (जिन्हें सामने वाला न समझ पावे) प्रयोग न करे। संज्ञाओं (=किसी शब्द के विशेष अर्थ) के प्रति आग्रह न करें।

"यह अरणविभङ्ग का उद्देश (नाम-सङ्कीर्तनमात्र) हुआ।

२. अरणविभङ्ग का विस्तृत व्याख्यान (निर्देश)

२. "यह जो कहा—'साधक को हीन, ग्राम्य, पृथग्जनों द्वारा ही करणीय, अनार्य, अनर्थयुक्त कार्यों में नहीं लगना चाहिये और न…अनर्थमय आत्मपीड़ादायक क्लेशकर्मों में ही लगना चाहिये', यह जो कहा, किस कारण कहा? (क) काम-(विषय-) भोगों के सम्बन्ध से उद्भूत सौमनस्य से जो लगाव (सम्पर्क) होता है, वह निकृष्ट, ग्राम्य (असभ्य), पृथग्जनों द्वारा ही करणीय, अनार्य एवं अनर्थमय होता है। यह कामसुख से सम्पर्क दुःख, उपघात एवं उपायास (हैरानी-परेशानी) एवं दाह (ईर्ष्या=डाह) से युक्त है, यह मिथ्या प्रति-

अनत्थसंहितं, अदुक्खो एसो धम्मो अनुपघातो अनुपायासो अपरिळाहो; सम्मापटिपदा। यो अत्तकिलमथानुयोगो दुक्खो अनरियो अनत्थसंहितो, सदुक्खो एसो धम्मो सउपघातो सउपायासो सपरिळाहो; मिच्छापटिपदा। यो अत्तकिलमथानुयोगं अननुयोगो दुक्खं अनरियं अनत्थसंहितं, अदुक्खो एसो धम्मो अनुपघातो अनुपायासो अपरिळाहो; सम्मापटिपदा। 'न काम-सुखमनुयुञ्जेय्य हीनं गम्मं पोथुज्जनिकं अनरियं अनत्थसंहितं, न च अत्तकिलमथानुयोगं अनुयुञ्जेय्य दुक्खं अनरियं अनत्थसंहितं' ति--इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं।

३. " '**एते खो उभो अन्ते अनुपगम्म मज्झिमा पटिपदा तथागतेन अभिसम्बुद्धा, चक्खुकरणी ञाणकरणी उपसमाय अभिञ्ञाय सम्बोधाय निब्बानाय संवत्तती**' ति--इति खो पनेतं वुत्तं; किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं? अयमेव अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो, सेय्यथीदं--सम्मादिट्ठि, सम्मासङ्कप्पो, सम्मावाचा, सम्माकम्मन्तो, सम्माआजीवो, सम्मावायामो, सम्मासति, सम्मासमाधि। एते खो उभो अन्ते अनुपगम्म मज्झिमा पटिपदा तथागतेन अभिसम्बुद्धा, चक्खुकरणी ञाणकरणी उपसमाय अभिञ्ञाय सम्बोधाय निब्बानाय संवत्तती' ति—इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं।

पदा (गलत रास्ता) है। (ख) इसके विपरीत, विषय-भोगों के सम्बन्ध से उद्भूत सौमनस्य से जब साधक का सम्पर्क नहीं होता, फिर भले ही वह हीन ग्राम्य एवं अनर्थयुक्त ही क्यों न हो, तो यह धर्म दुःख उपघात उपायास तथा दाह से रहित होता है; यही सम्यग्मार्ग है। (क) इसी तरह आत्मपीड़ामय साधना से जो सम्पर्क है वह दुःखमय, अनार्य, अनर्थयुक्त और दुःख···दाह से युक्त होता है, अतः वह मिथ्या प्रतिपदा है। (ख) परन्तु आत्मपीड़ामय साधना के उद्योग में रत न होना, फिर भले ही वह दुःखमय···ही क्यों न हो, दुःख···दाह से रहित होता है; अतः यही सम्यग्मार्ग है। यों, यह जो कहा गया था—'साधक को हीन, ग्राम्य···पूर्ववत्··· आत्मपीड़ादायक क्लेशकर्मों में नहीं लगना चाहिये'--वह इसी उपर्युक्त अभिप्राय से कहा गया।

३. "यह जो कहा था—'इन दोनों अतियों को न स्वीकार कर, तथागत ने जिस मध्यममार्ग का साक्षात्कार किया है वह···निर्वाण की तरफ ले जाने वाला है'—किस अभिप्राय से कहा था? (भगवान् बुद्ध द्वारा साक्षात्कृत सम्यग्मार्ग ही) आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग है; जैसे—१. सम्यग्दृष्टि, २. सम्यक्सङ्कल्प, ३. सम्यग्वाक्, ४. सम्यक्कर्म, ५. सम्यगाजीव, ६. सम्यग्व्यायाम, ७. सम्यक्स्मृति एवं ८. सम्यक्समाधि। 'इन दोनों अतियों को न स्वीकार कर···निर्वाण की तरफ ले जाने वाला है'--यह जो कहा था, वह इसी अभिप्राय से कहा था।

४. " 'उस्सादनं च जञ्ञा, अपसादनं च जञ्ञा; उस्सादनं च ञत्वा अपसादनं च ञत्वा नेवुस्सादेय्य, न अपसादेय्य; धम्ममेव देसेय्या' ति—इति खो पनेतं वुत्तं; किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं? कथं च, भिक्खवे, उस्सादना च होति अपसादना च, नो च धम्मदेसना? 'ये कामपटिसन्धिसुखिनो सोमनस्सानुयोगं अनुयुत्ता हीनं गम्मं पोथुज्जनिकं अनरियं अनत्थसंहितं सब्बे ते सदुक्खा सउपघाता सउपायासा सपरिळाहा मिच्छापटिपन्ना' ति—इति वदं इत्थेके अपसादेति।

" 'ये कामपटिसन्धिसुखिनो सोमनस्सानुयोगं अननुयुत्तो हीनं गम्मं पोथुज्जनिकं अनरियं अनत्थसंहितं, सब्बे ते अदुक्खा अनुप- [B. 275] घाता अनुपायासा अपरिळाहा सम्मापटिपन्ना' ति—इति वदं [N. 315] इत्थेके उस्सादेति।

" 'ये अत्तकिलमथानुयोगं अनुयुत्ता दुक्खं अनरियं अनत्थसंहितं, सब्बे ते सदुक्खा सउपघाता सउपायासा सपरिळाहा मिच्छापटिपन्ना [R. 232] ति—इति वदं इत्थेके अपसादेति।

" 'ये अत्तकिलमथानुयोगं अननुयुत्ता दुक्खं अनरियं अनत्थसंहितं, सब्बे

---

४. "और यह जो कहा था—'साधक को चाहिये कि वह (जिज्ञासु को) कोई भी बात कहने से पूर्व (जिज्ञासु को) उसकी बात से होने वाले उत्सादन एवं अवसादन को भी जान ले'''अपितु विना किसी सम्मिश्रण के ही धर्मोपदेश करे।'—यह किस हेतु से कहा था? इस बात को समझने के लिये, भिक्षुओ! पहले यह समझना आवश्यक है कि कैसे यह उत्सादना और अवसादना ही होती है, वास्तविक धर्मोपदेश नहीं हो पाता!

"कुछ भिक्षु यों कह कर किसी का अवसादन करते हैं—'जो कामभोगों से सुख मानते हुए सौमनस्य को प्राप्त होते हैं, जो कि सौमनस्यहीन, ग्राम्य'''अनर्थयुक्त हैं, वे सभी दुःखमय, उपघातयुक्त, उपायास परिदाह से घिरे रहते हैं, अतः वे मिथ्याप्रतिपन्न हैं।'

"कुछ लोग—'परन्तु जो कामसुखों में लिप्त रहते हुए भी उनमें सौमनस्य नहीं मानते, भले ही उनका वह सौमनस्य हीन, ग्राम्य'''अनर्थयुक्त हो, वे सभी दुःखरहित, उपघात उपायास परिदाह से दूर हैं, अतः सम्यक्प्रतिपन्न हैं'—ऐसा कहते हुए किसी-किसी को उत्सन्न करते हैं।

"इसी तरह कुछ लोग जो आत्मपीड़ादायक साधना में लगे हुए हैं, उनका वह आत्मपीड़ानुयोग दुःखमय, ग्राम्य'''वे मिथ्याप्रतिपन्न हैं—ऐसा कहते हुए किसी को अवसन्न करते हैं।

"और कुछ लोग 'जो आत्मपीड़ादायक साधन से लगाव नहीं रखते, भले ही

ते अदुक्खा अनुपघाता अनुपायासा अपरिळाहा सम्मापटिपन्ना' ति-इति वदं इत्थेके उस्सादेति।

" 'येसं केसञ्चि भवसंयोजनं अप्पहीनं, सब्बे ते सदुक्खा सउपघाता सउपायासा सपरिळाहा मिच्छापटिपन्ना' ति—इति वदं इत्थेके अपसादेति।

" 'येसं केसञ्चि भवसंयोजनं पहीनं, सब्बे ते अदुक्खा अनुपघाता अनुपायासा अपरिळाहा सम्मापटिपन्ना' ति—इति वदं इत्थेके उस्सादेति।

"एवं खो, भिक्खवे, उस्सादना च होति अपसादना च, नो च धम्मदेसना।

५. "कथं च, भिक्खवे, नेवुस्सादना होति न अपसादना, धम्मदेसना च? 'ये कामपटिसन्धिसुखिनो सोमनस्सानुयोगं अनुयुत्ता हीनं गम्मं पोथुज्जनिकं अनरियं अनत्थसंहितं, सब्बे ते सदुक्खा सउपघाता सउपायासा सपरिळाहा मिच्छापटिपन्ना' ति—न एवमाह। 'अनुयोगो च खो सदुक्खो एसो धम्मो सउपघातो सउपायासो सपरिळाहो; मिच्छापटिपदा' ति-इति वदं धम्ममेव देसेति।

वह लगाव न रखना दुःखमय, ग्राम्य…वे सम्यक्प्रतिपन्न हैं'—ऐसा कहते हुए किसी को उत्सन्न करते हैं।

"कुछ धर्मोपदेशक 'जिनका भवसंयोजन प्रहीण नहीं हुआ है, वे दुःखमय… परिदाहयुक्त हैं, अतः मिथ्याप्रतिपन्न हैं'—ऐसा कहते हुए किसी-किसी को अवसन्न करते हैं।

"और कुछ उपदेशक 'जिनका भवसंयोजन क्षीण हो चुका है, वे…सम्यक्प्रतिपन्न हैं'—ऐसा कह कर किसी-किसी को उत्सन्न करते रहते हैं।

"भिक्षुओ! धर्मोपदेशकों का ऐसा कथन जिज्ञासु के चित्त में उत्सादना या अवसादना ही पैदा करता है। उन उपदेशकों का यह कथन वास्तविक धर्मोपदेश नहीं कहलाता।

५. "और कैसा करने से, भिक्षुओ! जिज्ञासु के मन में उत्सादन नहीं होता और वह उसके उपदेश को वास्तविक धर्मोपदेश ही मानता है? उपदेशक यदि ऐसा नहीं कहता—'जो कामभोगों में लगे रह कर उन कामभोगों से ही हीन ग्राम्य सौमनस्यानुयोग मानते हैं वे सभी दुःख उपघात उपायास एवं परिदाह से घिरे रहते हैं और मिथ्याप्रतिपन्न हैं', अपि तु यह कहता है—'कामभोगों में यह सौमनस्यानुयोग ही दुःख उपघात उपायास एवं परिदाह तथा मिथ्यामार्ग की तरफ ले जाने वाला है' तो वह ऐसा कहता हुआ उचित धर्मोपदेश ही करता है।

" 'ये कामपटिसन्धिसुखिनो सोमनस्सानुयोगं अननुयुत्ता हीनं गम्मं पोथुज्जनिकं अनरियं अनत्थसंहितं, सब्बे ते अदुक्खा अनुपघाता अनुपयासा अपरिळाहा सम्मापटिपन्ना' ति-न एवमाह। 'अननुयोगो च खो, अदुक्खो एसो धम्मो अनुपघातो अनुपायासो अपरिळाहो; सम्मापटिपदा' ति-इति वदं धम्ममेव देसेति।

" 'ये अत्तकिलमथानुयोगं अनुयुत्ता दुक्खं अनरियं अनत्थ- [B. 276] संहितं, सब्बे ते सदुक्खा सउपघाता सउपायासा सपरिळाहा मिच्छापटिपन्ना' ति—न एवमाह। 'अनुयोगो च खो, सदुक्खो एसो धम्मो सउपघातो सउपायासो सपरिळाहो; मिच्छापटिपदा' ति—इति वदं [N. 316] धम्ममेव देसेति।

" 'ये अत्तकिलमथानुयोगं अननुयुत्ता दुक्खं अनरियं अनत्थसंहितं, सब्बे ते अदुक्खा अनुपघाता अनुपायासा अपरिळाहा सम्मापटिपन्ना' ति—न एवमाह। 'अननुयोगो च खो, अदुक्खो एसो धम्मो अनुपघातो अनुपायासो अपरिळाहो; सम्मापटिपदा' ति—इति वदं धम्ममेव देसेति।

" 'येसं केसञ्चि भवसंयोजनं पहीनं, सब्बे ते अदुक्खा [R. 233]

"और जो उपदेशक जिज्ञासु को यह नहीं कहता—'जो मनुष्य कामभोगों में न लगे रह कर उनमें हीन ग्राम्य...सौमनस्यानुयोग नहीं मानते वे सभी दुःखरहित... परिदाह से विमुक्त रहते हैं एवं सम्यक्प्रतिपन्न हैं।' अपितु यह कहता है—'कामभोगों में न लगे रहने वालों का यह सौमनस्यानुयोग ही दुःखरहित...सम्यग्मार्ग की ओर ले जाने वाला है'। ऐसा कहने वाला ही उचित धर्म की देशना करता है।

"और इसी तरह जो उपदेशक यह नहीं कहता—'जो हीन, ग्राम्य...आत्मपीड़ा (दायक साधना) में लगे रहते हैं, वे सभी दुःखमय...मिथ्याप्रतिपन्न हैं'। अपितु यह कहता है—'उनका उस आत्मपीड़ादायक साधना में लगे रहना ही दुःखमय है...परिदाहयुक्त एवं मिथ्यामार्ग की ओर ले जानेवाला है'। ऐसा कहता हुआ वह उचित धर्मोपदेश ही करता है।

"और जो यह नहीं कहता—'जो हीन ग्राम्य...आत्मपीड़ादायक साधना में नहीं लगे रहते, वे सभी दुःखमय...परिदाहरहित एवं सम्यक्प्रतिपन्न हैं।' अपितु वह कहता है—'ऐसी आत्मपीड़ादायक साधना में उनका ऐसे न लगे रहना (अननुयोग) ही दुःखरहित...परिदाहरहित एवं सम्यग्मार्ग है'। तो ऐसा कहता हुआ वह उचित धर्मोपदेश ही करता है।

"और जो यह नहीं कहता—'जिन किन्हीं का भी भवसंयोजन क्षीण नहीं हुआ

सउपघाता सउपायासा सपरिळाहा मिच्छापटिपन्ना' ति—न एवमाह। 'भवसंयोजने च खो अप्पहीने भवो पि अप्पहीनो होती' ति--इति वदं धम्ममेव देसेति।

" 'येसं केसञ्चि भवसंयोजनं पहीनं, सब्बे ते अदुक्खा अनुपघाता अनुपायासा अपरिळाहा सम्मापटिपन्ना' ति--न एवमाह। 'भवसंयोजने च खो पहीने भवो पि पहीनो होती' ति—इति वदं धम्ममेव देसेति। एवं खो, भिक्खवे, नेवुस्सादना होति न अपसादना, धम्मदेसना च।

'उस्सादनं च जञ्ञा, अपसादनं च जञ्ञा; उस्सादनं च ञत्वा अपसादनं च ञत्वा नेवुस्सादेय्य, न अपसादेय्य, धम्ममेव देसेय्या' ति--इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं।

६. " '**सुखविनिच्छयं जञ्ञा; सुखविनिच्छयं ञत्वा अज्झत्तं सुखमनुयुञ्जेय्या**' ति—इति खो पनेतं वुत्तं; किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं? पञ्चिमे,

---

है, वे सब दुःख-सहित... परिदाहयुक्त मिथ्यामार्ग की तरफ ही जा रहे हैं'; अपितु यह कहता है--'भवसंयोजन के क्षीण न होने पर भव भी क्षीण नहीं हो पाता'। ऐसा कहते हुए उपदेशक का यह कथन उचित धर्मोपदेश ही कहलाता है।

"और जो यह नहीं कहता--'जिन किन्हीं का भवसंयोजन प्रहीण हो चुका है वे सभी दुःखरहित एवं परिदाहयुक्त और सम्यक्प्रतिपन्न हैं'। अपितु यह कहता है--'भवसंयोजन के प्रहीण होने पर भव भी प्रहीण हो जाता है'। ऐसे कहता हुआ वह उपदेशक उचित धर्मोपदेश ही करता है।

"भिक्षुओ! उपदेशक द्वारा यह पद्धति अपनाये जाने पर जिज्ञासु का न उत्सादन होता है, न अवसादन। उस स्थिति में वह उपदेशक उचित धर्मोपदेश करने वाला ही कहलायगा।

" 'उत्सादन को भी जान ले और अवसादन को भी जान ले। उत्सादन एवं अवसादन को जान कर किसी का न उत्सादन करे न अवसादन, उचित धर्मदेशना ही करे'--यह जो कहा था वह इसी उपर्युक्त आशय से कहा था।

[उपर्युक्त समग्र कथन का निष्कर्ष यह है कि अन्य श्रमणों (सन्तों) की तरह भगवान् बुद्ध की भी मान्यता यही है दुर्गुणी की निन्दा नहीं, अपितु दुर्गुण की निन्दा करनी चाहिये। दुर्गुण के हट जाने पर दुर्गुणी पुरुष तो स्वतः परिशुद्ध हो जायगा।]

६. "सुखविनिश्चय को जाने। सुखविनिश्चय को जानकर आध्यात्मिक सुख की प्राप्ति में लग जाय"--यह जो मैंने पीछे कहा, वह किस हेतु

भिक्खवे, कामगुणा। कतमे पञ्च ? चक्खुविञ्ञेय्या रूपा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया, सोतविञ्ञेय्या सद्दा… घानविञ्ञेय्या गन्धा… जिव्हाविञ्ञेय्या रसा… कायविञ्ञेय्या फोट्ठब्बा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया—इमे खो, भिक्खवे, पञ्च कामगुणा। यं खो, भिक्खवे, इमे पञ्च कामगुणे पटिच्च उप्पज्जति सुखं सोमनस्सं इदं वुच्चति कामसुखं मीळ्हसुखं पुथुज्जनसुखं अनरियसुखं। न आसेवितब्बं, न भावेतब्बं, न बहुलीकातब्बं, भायितब्बं एतस्स सुखस्सा'–ति वदामि।

"इध, भिक्खवे, भिक्खु विविच्चेव कामेहि [N. 317, B. 277] विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति। वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं सम्पसादनं चेतसो एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं समाधिजं पीतिसुखं दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। पीतिया च विरागा उपेक्खको च विहरति…पे०… ततियं झानं…पे०…चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। इदं वुच्चति नेक्खम्म-सुखं पविवेकसुखं उपसमसुखं सम्बोधिसुखं। 'आसेवितब्बं, भावेतब्बं, बहुलीकातब्बं, न भायितब्बं एतस्स सुखस्सा' ति–वदामि। 'सुखविनिच्छयं जञ्ञा; सुखविनिच्छयं ञत्वा अज्झत्तं सुखमनुयुञ्जेय्या' [R. 234] ति—इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं।

से कहा ? भिक्षुओ ! ये पाँच कामगुण हैं। कौन से पाँच ? इष्ट कान्त मनाप… पूर्ववत्…चक्षुर्विज्ञेय रूप…श्रोत्रविज्ञेय शब्द…घ्राणविज्ञेय गन्ध…जिह्वाविज्ञेय रस…कायविज्ञेय स्प्रष्टव्य…–भिक्षुओ ! ये पाँच कामगुण हैं। इन पाँच कामगुणों के सेवन से जो कुछ भी सुख-सौमनस्य पैदा होता है उसे हम कामसुख, मूढ़सुख, पृथग्जनोपयोगी सुख या अनार्य सुख ही कह सकते हैं। इस सुख के विषय में मेरा कहना तो यही है कि इसे न तो ज्यादा भोगना चाहिये, न इसके जोड़ने-बटोरने का ही प्रयत्न करना चाहिये; अपितु इस सुख से भय ही खाना चाहिये।

"यहाँ, भिक्षुओ ! कोई भिक्षु कामरहित एवं अकुशल धर्मों से रहित, वितर्क विचार सहित विवेकजन्य, प्रीतिसुखमय प्रथम ध्यान को प्राप्त…द्वितीय ध्यान को… तृतीय ध्यान को…चतुर्थ ध्यान को प्राप्त हो विहरता है। (इस ध्यान से प्राप्त होने वाला) यह सुख निष्कामतासुख, प्रविवेकसुख, उपशमसुख, या सम्बोधिसुख कहलाता है।

"अत: मैं कहता हूँ कि साधक के लिये यह सुख सेवितव्य (आराधनीय) है, बहुलीकरणीय (बढ़ाने योग्य) है। इसकी आराधना में साधक को भय नहीं खाना चाहिये। पीछे जो मैंने यह कहा था—'सुखविनिश्चय को जाने…आध्यात्मिक सुख-प्राप्ति में लग जाय'—वह इसी उपर्युक्त आशय से कहा था।

७. "'**रहोवादं न भासेय्य, सम्मुखा न खीणं भणे**' ति-इति खो पेनतं वुत्तं; किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं ? तत्र, भिक्खवे, यं जञ्ञा रहोवादं अभूतं अतच्छं अनत्थसंहितं ससक्कं तं रहोवादं न भासेय्य। यं पि जञ्ञा रहोवादं भूतं तच्छं अनत्थसंहितं तस्स पि सिक्खेय्य अवचनाय। यं च खो जञ्ञा रहोवादं भूतं तच्छं अत्थसंहितं तत्र कालञ्ञू अस्स तस्स रहोवादस्स वचनाय। तत्र, भिक्खवे, यं जञ्ञा सम्मुखा खीणवादं अभूतं अतच्छं अनत्थसंहितं ससक्कं तं सम्मुखा खीणवादं न भासेय्य। यं पि जञ्ञा सम्मुखा खीणवादं भूतं तच्छं अनत्थसंहितं तस्स पि सिक्खेय्य अवचनाय। यं च खो जञ्ञा सम्मुखा खीणवादं भूतं तच्छं अत्थसंहितं तत्र कालञ्ञू अस्स तस्स सम्मुखा खीणवादस्स वचनाय। 'रहोवादं न भासेय्य, सम्मुखा न खीणं भणे' ति-इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं।

८. "'**अतरमानो व भासेय्य नो तरमानो**' ति-इति खो पनेतं वुत्तं; किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं ? तत्र, भिक्खवे, तरमानस्स भासतो कायो पि किलमति, चित्तं पि उपहञ्ञति, सरो पि उपहञ्ञति, कण्ठो पि आतुरीयति, अविसट्ठं पि होति अविञ्ञेय्यं तरमानस्स भासितं। तत्र, भिक्खवे,

---

७. "यह जो कहा—'एकान्त-(रहो)वाद में (इकतरफा) बात न करे, किसी से इतना धीरे भी न बोले कि सामने वाला सुन भी न पाये।'—यह किसलिये कहा? (क) वहाँ, भिक्षुओ ! जिस एकान्तवाद को साधक अभूत, अतथ्य (असत्य), अनर्थयुक्त समझे उसे यथाशक्य दूसरे से न कहे। और जिस एकान्तवाद को वह भूत, तथ्यमय परन्तु अनर्थयुक्त समझता हो उसे भी दूसरे से न कहने का अभ्यास करे। हाँ, साधक जिस रहोवाद को भूत, तथ्य एवं सार्थक समझता हो, उसे समय पहचान कर, दूसरे से कह दे तो इसमें कोई हानि नहीं है। (ख) वहाँ भिक्षुओ ! साधक जिस धीमे बोलने की बात (क्षीणवाद) को अभूत अतथ्य···समझे उसे यथाशक्य न कहे। और जिसे भूत तथ्य परन्तु अनर्थयुक्त समझे, उसे भी न कहने का अभ्यास करे। हाँ, साधक जिस क्षीणवाद को भूत तथ्य और सार्थक समझे उसे उचित समय देख कर कहने में कोई हानि नहीं है। अतः मैंने यह जो कहा—'एकान्तवाद में बात न करे, न सामने वाले से बहुत क्षीण स्वर में बातचीत करे'।—यह इसी अभिप्राय स कहा।

८. 'विना शीघ्रता करता हुआ ही बोले, जल्दी-जल्दी न बोले' यह जो कहा गया, वह किस कारण कहा गया? वहाँ, भिक्षुओ ! शीघ्रता से बोलने वाले का शरीर भी कष्ट पाता है, चित्त भी पीड़ित होता है, स्वर भी विकृत होता है और उसका कण्ठ भी क्लेश पाता है। जल्दी-जल्दी बोलने वाले की बात सुनने-

अतरमानस्स भासतो कायो पि न किलमति, चित्तं पि न उपहञ्ञति, सरो पि न उपहञ्ञति, कण्ठो पि न आतुरीयति, विसट्ठं पि होति [N. 318] विञ्ञेय्यं अतरमानस्स भासितं। 'अतरमानो व भासेय्य, नो तरमानो' ति–इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं।

९. " 'जनपदनिरुत्तिं नाभिनिवेसेय्य, समञ्ञं नाति- [B. 278] धावेय्या' ति–इति खो पनेतं वुत्तं; किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं? कथं च, भिक्खवे, जनपदनिरुत्तिया च अभिनिवेसो होति समञ्ञाय च अतिसारो? इध, भिक्खवे, तदेवेकच्चेसु जनपदेसु 'पाती' ति सञ्जानन्ति, 'पत्तं' ति सञ्जानन्ति, 'वित्तं' ति सञ्जानन्ति, 'सरावं' ति सञ्जानन्ति, 'धारोपं' [R. 235] ति सञ्जानन्ति, 'पोणं' ति सञ्जानन्ति, 'पिसीलवं' ति सञ्जानन्ति। इति यथा यथा नं तेसु तेसु जनपदेसु सञ्जानन्ति तथा तथा थामसा परामासा अभिनिविस्स वोहरति–'इदमेव सच्चं, मोघमञ्ञं' ति। एवं खो, भिक्खवे, जनपदनिरुत्तिया च अभिनिवेसो होति समञ्ञाय च अतिसारो।

१०. "कथं च, भिक्खवे, जनपदनिरुत्तिया च अनभिनिवेसो होति

वाले को अविस्पष्ट और अविज्ञेय ही रह जाती है। इसके विपरीत, भिक्षुओ! जल्दी-जल्दी न बोलने वाले का न शरीर कष्ट पाता है, न चित्त पीड़ित होता है, न स्वर विकृत होता है, न कण्ठ ही क्लेश पाता है। और ऐसे वक्ता की बात सुनने वाले को भी स्पष्ट सुनायी देती है और समझ में भी आ जाती है। अतः 'शीघ्रता न करता हुआ ही बोले, जल्दी-जल्दी न बोले'—यह जो कहा यह इसी अभिप्राय से ही कहा।

९. " 'बातचीत में किसी क्षेत्रविशेष की भाषा (जनपदनिरुक्ति) का प्रयोग न करे, किसी संज्ञाविशेष पर विशेष बल न दे'—यह जो कहा, किस कारण से कहा? कैसे, भिक्षुओ! किसी क्षेत्रविशेष की भाषा के प्रयोग से अभिनिवेश (आग्रह) होता है? और कैसे किसी संज्ञाविशेष के प्रयोग से अतिसार (समझने में कठिनाई) होता है? यहाँ भिक्षुओ! एक ही वस्तु किसी क्षेत्रविशेष में पाती नाम से पुकारी जाती है, कहीं पत्त नाम से, और कहीं वित्त नाम से, कहीं शराव या कहीं धारोप और कहीं पोण या पिसीलव नाम से बोली जाती है। इस प्रकार उस वस्तु को उस-उस क्षेत्रविशेष में जिस-जिस नाम से बोला जाता है उस-उस नाम में ही आग्रह कर व्यवहार करता हुआ कहता है—'यही सत्य है, अन्य सब मिथ्या'। यों, भिक्षुओ! यह क्षेत्रविशेष की भाषा में आग्रह कहलाता है। और संज्ञाविशेष से बात समझने में कठिनाई भी होती है।

१०. "कैसे, भिक्षुओ! क्षेत्रविशेष की भाषा के प्रयोग में आग्रह नहीं होता?

समञ्ञाय च अनतिसारो ? इध, भिक्खवे, तदेवेकच्चेसु जनपदेसु 'पाती' ति सञ्जानन्ति, 'पत्तं' ति सञ्जानन्ति, 'वित्तं' ति सञ्जानन्ति, 'सरावं' ति सञ्जानन्ति, 'धारोपं' ति सञ्जानन्ति, 'पोणं' ति सञ्जानन्ति, 'पिसीलवं' ति सञ्जानन्ति। इति यथा यथा नं तेसु तेसु जनपदेसु सञ्जानन्ति 'इदं किर मे आयस्मन्तो सन्धाय वोहरन्ती' ति तथा तथा वोहरति अपरामसं। एवं खो, भिक्खवे, जनपदनिरुत्तिया च अनभिनिवेसो होति समञ्ञाय च अनतिसारो। 'जनपदनिरुत्तिं नाभिनिवेसेय्य समञ्ञं नातिधावेय्या' ति–इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं।

३. मिच्छापटिपदा च सम्मापटिपदा च

११. "तत्र, भिक्खवे, यो कामपटिसन्धिसुखिनो सोमनस्सानुयोगो हीनो गम्मो पोथुज्जनिको अनरियो अनत्थसंहितो, सदुक्खो एसो धम्मो सउपघातो [N. 319] सउपायासो सपरिळाहो; मिच्छापटिपदा। तस्मा एसो धम्मो सरणो। तत्र, भिक्खवे, यो कामपटिसन्धिसुखिनो सोमनस्सानुयोगं अननुयोगो हीनं गम्मं पोथुज्जनिकं अनरियं अनत्थसंहितं, अदुक्खो एसो धम्मो अनुपघातो अनुपायासो अपरिळाहो; सम्मापटिपदा। तस्मा एसो धम्मो अरणो।

और संज्ञाविशेष के प्रयोग से समझने में कठिनाई नहीं होती ? यहाँ, भिक्षुओ ! एक ही वस्तु किसी क्षेत्रविशेष में पाती···पिसीलव नाम से बोली जाती है। इस प्रकार जैसे-जैसे इसे उस-उस क्षेत्रविशेष में बोलते हैं वह आयुष्मान् 'इसके बारे में यह शब्द व्यवहृत करते हैं'—यह सोच कर वैसे ही वैसे व्यवहार करता है विना किसी आग्रहविशेष के। यों, भिक्षुओ ! क्षेत्रविशेष के भाषाप्रयोग में आग्रह नहीं रह जाता, न संज्ञाविशेष के समझने में कठिनाई होती है। अतः 'बातचीत में क्षेत्रविशेष की भाषा के प्रयोग में आग्रह न करे, न संज्ञाविशेष में ही'—यह जो कहा, वह इसी अभिप्राय से कहा।

३. मिथ्याप्रतिपदा एवं सम्यक्प्रतिपदा

११. (क) "वहाँ भिक्षुओ ! जो कामसम्बन्ध से सुखी के हीन···अनर्थयुक्त सौमनस्य का अनुयोग (सम्बन्ध) है वह सदुःख है, उपघात उपायास-परिदाह-युक्त है अतः वह मिथ्यामार्ग है। इसीलिये वह धर्म 'सरण'[1] कहलाता है। (ख) वहाँ, भिक्षुओ ! जो कामसम्बन्ध से सुखी के हीन···अनर्थयुक्त सौमनस्य का अननुयोग (= असम्बन्ध) है वह दुःखरहित है, उपघात-उपायास-परिदाहरहित है, अतः यह सम्यग्मार्ग है। इसलिये इस धर्म को 'अरण' कहते हैं।

---

१. 'सरणं तु वधे गेहे रक्खितस्मिं च रक्खणे'—अभिधानप्पदीपिका. अनेकत्थ. ९४७।

१२. "तत्र, भिक्खवे, यो अत्तकिलमथानुयोगो दुक्खो अनरियो अनत्थसंहितो, सदुक्खो एसो धम्मो सउपघातो सउपायासो सपरि- [B. 279] ळाहो; मिच्छापटिपदा। तस्मा एसो धम्मो सरणो। तत्र, भिक्खवे, यो अत्तकिलमथानुयोगं अननुयोगो दुक्खं अनरियं अनत्थसंहितं, अदुक्खो एसो धम्मो अनुपघातो अनुपायासो अपरिळाहो; सम्मापटिपदा। तस्मा एसो धम्मो अरणो। [R. 236]

१३. "तत्र, भिक्खवे, यायं मज्झिमा पटिपदा तथागतेन अभिसम्बुद्धा, चक्खुकरणी ञाणकरणी उपसमाय अभिञ्ञाय सम्बोधाय निब्बानाय संवत्तति, अदुक्खो एसो धम्मो अनुपघातो अनुपायासो अपरिळाहो; सम्मापटिपदा। तस्मा एसो धम्मो अरणो।

१४. तत्र, भिक्खवे, यायं उस्सादना च अपसादना च नो च धम्मदेसना, सदुक्खो एसो धम्मो सउपघातो सउपायासो सपरिळाहो; मिच्छापटिपदा। तस्मा एसो धम्मो सरणो। तत्र, भिक्खवे, यायं नेवुस्सादना च अपसादना च धम्मो धम्मदेसना च, अदुक्खो एसो धम्मो अनुपघातो अनुपायासो अपरिळाहो; सम्मापटिपदा। तस्मा एसो धम्मो अरणो।

१५. "तत्र, भिक्खवे, यमिदं कामसुखं मीळ्हसुखं पोथुज्जनसुखं अनरियसुखं, सदुक्खो एसो धम्मो सउपघातो सउपायासो सपरिळाहो; मिच्छा-

---

१२. (क) "वहाँ, भिक्षुओ! जो दुःख, अनार्य, अनर्थयुक्त एवं आत्मपीड़ादायक है, वह सदुःख, उपघात-उपायास-परिदाहयुक्त है, वह मिथ्यामार्ग है, अतः इस धर्म को 'सरण' कहते हैं। और (ख) वहाँ, भिक्षुओ! जो दुःख अनार्य अनर्थयुक्त होते हुए भी आत्मपीड़ादायक नहीं है उनका वह आत्मपीड़ाननुयोग दुःखरहित उपघात-उपायास-परिदाहरहित है, अतः यह सम्यग्मार्ग है। इसीलिये इस धर्म को 'अरण' कहते हैं।

१३. "वहाँ, भिक्षुओ! जिस आँख खोल देने वाले...मध्यम मार्ग का तथागत ने साक्षात्कार किया है वह धर्म भी दुःखरहित उपघात-उपायास-परिदाहरहित है। इसलिये इस धर्म को भी 'अरण' कहते हैं।

१४. "वहाँ, भिक्षुओ! पूर्ववर्णित, उचित धर्मोपदेशशून्य उत्सादन अवसादन भी दुखःमय....परिदाहयुक्त हैं। अतः यह धर्मप्रवचन 'सरण' है। परन्तु जो पूर्ववर्णित उचित धर्मोपदेशयुक्त अनुत्सादन एवं अनवसादन हैं, ये धर्म दुःखरहित...परिदाहरहित है, अतः ये सम्यग्मार्ग एवं 'अरण' कहलाते हैं।

१५. "वहाँ, भिक्षुओ! यह जो कामसुख है, मूढसुख है...वह...परिदाहयुक्त

पटिपदा। तस्मा एसो धम्मो सरणो। तत्र, भिक्खवे, यमिदं नेक्खम्मसुखं पविवेकसुखं उपसमसुखं सम्बोधिसुखं, अदुक्खो एसो धम्मो अनुपघातो अनुपायासो अपरिळाहो; सम्मापटिपदा। तस्मा एसो धम्मो अरणो।

१६. "तत्र, भिक्खवे, य्वायं रहोवादो अभूतो अतच्छो अनत्थसंहितो, [N. 320] सदुक्खो एसो धम्मो सउपघातो सउपायासो सपरिळाहो; मिच्छापटिपदा। तस्मा एसो धम्मो सरणो। तत्र, भिक्खवे, य्वायं रहोवादो भूतो तच्छो अनत्थसंहितो, सदुक्खो एसो धम्मो सउपघातो सउपायासो सपरिळाहो; मिच्छापटिपदा। तस्मा एसो धम्मो सरणो। तत्र, भिक्खवे, य्वायं रहोवादो भूतो तच्छो अत्थसंहितो, अदुक्खो एसो धम्मो अनुपघातो अनुपायासो अपरिळाहो; सम्मापटिपदा। तस्मा एसो धम्मो अरणो।

[B. 280] १७. "तत्र, भिक्खवे, य्वायं सम्मुखा खीणवादो अभूतो अतच्छो अनत्थसंहितो, सदुक्खो एसो धम्मो सउपघातो सउपायासो सपरिळाहो; मिच्छापटिपदा। तस्मा एसो धम्मो सरणो। तत्र. भिक्खवे, य्वायं सम्मुखा खीणवादो भूतो तच्छो अनत्थसंहितो, सदुक्खो एसो धम्मो सउपघातो सउपायासो सपरिळाहो; मिच्छापटिपदा। तस्मा एसो धम्मो [R, 237] सरणो। तत्र, भिक्खवे, य्वायं सम्मुखा खीणवादो भूतो तच्छो अत्थसंहितो, अदुक्खो एसो धम्मो अनुपघातो अनुपायासो अपरिळाहो; सम्मापटिपदा। तस्मा एसो धम्मो अरणो।

है।…'सरण' कहलाते हैं। और जो भिक्षुओ ! वहाँ जो नैष्कर्म्यसुख है, प्रविवेकसुख है, उपशमसुख है, सम्बोधिसुख है वह धर्म सम्यग्मार्ग एवं 'अरण' कहलाता है।

१६. (क) "वहाँ, भिक्षुओ ! पीछे जिस प्रथम प्रकार के अभूत, अतथ्य एकान्त (रहो) वाद का वर्णन किया है वह दुःखमय… मिथ्यामार्ग…'सरण' है। (ख) द्वितीय प्रकार का (भूत, तथ्य परन्तु अनर्थयुक्त) एकान्तवाद भी…'सरण' है। परन्तु, भिक्षुओ ! (ग) वहाँ जो तीसरे प्रकार का (भूत, तथ्य परन्तु अर्थयुक्त) एकान्तवाद दुःखरहित…परिदाहरहित है, वह सम्यग्मार्ग एवं 'अरण' है।

१७. (क) "वहाँ, भिक्षुओ ! क्षीणवाद अभूत अतथ्य एवं अनर्थयुक्त है… दुःखरहित है…मिथ्यामार्ग है…सरण है। (ख) वहाँ, भिक्षुओ ! क्षीणवादभूत तथ्ययुक्त होते हुए भी अनर्थयुक्त है…वह भी दुःखसहित है…मिथ्यामार्ग है…सरण है। (ग) परन्तु भिक्षुओ ! जो क्षीणवाद भूत, तथ एवं सार्थक है…दुःखरहित है… वह सम्यग्मार्ग है। अतः यह 'अरण' है।

१८. "तत्र, भिक्खवे, यमिदं तरमानस्स भासितं, सदुक्खो एसो धम्मो सउपघातो सउपायासो सपरिळाहो; मिच्छापटिपदा। तस्मा एसो धम्मो सरणो। तत्र, भिक्खवे, यमिदं अतरमानस्स भासितं, अदुक्खो एसो धम्मो अनुपघातो अनुपायासो अपरिळाहो; सम्मापटिपदा। तस्मा एसो धम्मो अरणो।

१९. "तत्र, भिक्खवे, य्वायं जनपदनिरुत्तिया च अभिनिवेसो समञ्ञाय च अतिसारो, सदुक्खो एसो धम्मो सउपघातो सउपायासो सपरिळाहो; मिच्छापटिपदा। तस्मा एसो धम्मो सरणो। तत्र, भिक्खवे, य्वायं जनपद-निरुत्तिया च अनभिनिवेसो समञ्ञाय च अनतिसारो, अदुक्खो एसो धम्मो अनुपघातो अनुपायासो अपरिळाहो; सम्मापटिपदा। तस्मा एसो धम्मो अरणो।

"तस्मातिह, भिक्खवे, 'सरणं च धम्मं जानिस्साम, अरणं च धम्मं जानिस्साम; सरणं च धम्मं ञत्वा अरणं च धम्मं ञत्वा अरणपटिपदं पटि-पज्जिस्सामा' ति—एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं। सुभूति [N. 321] च पन, भिक्खवे, कुलपुत्तो अरणपटिपदं पटिपन्नो" ति।

२०. इदमवोच भगवा। अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति॥

●

---

१८. (क) वहाँ, भिक्षुओ! जो शीघ्रता से बोलने वाले का भाषण है, वह दुःखमय है...परिदाहमय है, अतः मिथ्यामार्ग है, इसीलिये सरण है। (ख) परन्तु, वहीं, भिक्षुओ! शीघ्रता से न बोलने वाले का भाषण...सम्यग्मार्ग...अरण है।।

१९. (क) "वहाँ, भिक्षुओ! क्षेत्रविशेष की भाषा में जो आग्रह है, संज्ञा-विशेष में जो अतिसार है वह दुःखसहित...मिथ्यामार्ग...सरण है। (ख) और भिक्षुओ! क्षेत्रविशेष की भाषा में अनाग्रह एवं संज्ञाविशेष में अनतिसार है वह निर्दुःख...सम्यग्मार्ग है...अरण है।

"इसलिये, भिक्षुओ! तुम्हें यह सीखना चाहिये कि—'हम सरण धर्मों एवं अरणधर्मों के विषय में सही जानकारी प्राप्त करेंगे; इनकी सही जानकारी प्राप्त कर अरणधर्मों की प्राप्ति का ही प्रयत्न करेंगे।' भिक्षुओ! (मेरे शिष्यों में) सुभूति कुलपुत्र इन अरणधर्मों में सम्यक्तया आरूढ (अभ्यस्त) हो चुका है।

२०. भगवान् ने यह उपदेश किया। भिक्षुओं ने इससे सन्तुष्ट हो भगवान् के भाषण का अभिनन्दन किया॥

अरणविभङ्गसुत्त समाप्त॥

●

४०. धातुविभंगसुत्तं

१. अदिट्ठपुब्बेन भगवता आयस्मतो पुक्कुसातिस्स संवादो

[N. 322, B. 281] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा मगधेसु चारिकं चरमानो येन राजगहं तदवसरि; येन भग्गवो कुम्भकारो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भग्गवं कुम्भकारं एतदवोच—"सचे ते, भग्गव, अगरु विहरेमु आवेसने एकरत्तं" ति।

"न खो मे, भन्ते, गरु। अत्थि चेत्थ पब्बजितो पठमं वासूपगतो। सचे सो अनुजानाति, विहरथ, भन्ते, यथासुखं" ति।

[R. 238] तेन खो पन समयेन पुक्कुसाति नाम कुलपुत्तो भगवन्तं उद्दिस्स सद्धाय अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो। सो तस्मिं कुम्भकारावेसने पठमं वासूपगतो होति। अथ खो भगवा येनायस्मा पुक्कुसाति तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं पुक्कुसातिं एतदवोच—"सचे ते, भिक्खु, अगरु विहरेमु आवेसने एकरत्तं" ति।

"उरुन्दं, आवुसो, कुम्भकारावेसनं। विहरतायस्मा यथासुखं" ति।

---

४०. धातुविभङ्गसूत्र

१. आयुष्मान् पुक्कुसाति (पौष्करसादि) का अदृष्टपूर्व भगवान् से संवाद

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) मगध देश में चारिका करते हुए जहाँ राजगृह नगर था, जहाँ कि भार्गव नामक कुम्भकार (का घर) था, वहाँ पहुँचे। पहुँच कर वे भार्गव कुम्भकार को यों बोले—"भार्गव ! यदि तुम्हें (मेरे ठहरने से) कोई बोझ न मालूम पड़े तो मैं एक रात तुम्हारे इस घर में विश्राम कर लूं ?"

"भन्ते ! मुझे तो कोई बोझ नहीं होगा; किन्तु यहाँ पहले से एक प्रव्रजित (संन्यासी) ठहरा हुआ है, यदि वह अनुमति दे दे तो, भन्ते ! आप भी सुखपूर्वक विश्राम करें।"

उस समय पुक्कुसाति नामक कुलपुत्र भगवान् के ही नाम पर श्रद्धापूर्वक दीक्षा लेकर, घर से बेघर होकर, प्रव्रजित हो उसी कुम्भकार के घर में पहले से ही आकर ठहरा हुआ था। तब भगवान् जहाँ पुक्कसाती[1] था वहाँ पहुँचे। पहुँच कर आयुष्मान् पुक्कुसाती से यों कहा—"भिक्षु ! यदि तुम्हें मेरा यहाँ ठहरना बोझ न समझ में आवे तो मैं भी एक रात भर इस स्थान में विश्राम कर लूँ ?"

"आयुष्मन् ! यह कुम्भकार का घर तो बहुत लम्बा-चौड़ा है, आप जहाँ चाहें इसमें सुखपूर्वक विश्राम करें।"

---

१. अट्ठकथा में लिखा है—ये पुक्कुसाती पहले तक्षशिला के राजा थे। बिम्बिसार के पत्र से बुद्ध-धर्म के विषय में जानकर वे भिक्षु बन गये।

अथ खो भगवा कुम्भकारावेसनं पविसित्वा एकमन्तं तिणसन्थारकं पञ्ञापेत्वा निसीदि पल्लङ्कं आभुजित्वा उजुं कायं पणिधाय परिमुखं सतिं उपट्ठपेत्वा। अथ खो भगवा बहुदेव रत्तिं निसज्जाय वीतिनामेसि। आयस्मापि खो पुक्कुसाति बहुदेव रत्तिं निसज्जाय वीतिनामेसि।

अथ खो भगवतो एतदहोसि—"पासादिकं खो अयं कुलपुत्तो इरियति। यन्नूनाहं पुच्छेय्यं" ति। अथ खो भगवा आयस्मन्तं पुक्कुसातिं एतदवोच—"कंसि त्वं, भिक्खु, उद्दिस्स पब्बजितो? को वा ते सत्था? कस्स वा त्वं रोचेसी" ति?

"अत्थावुसो, समणो गोतमो सक्यपुत्तो सक्यकुला पब्ब- [N. 323] जितो। तं खो पन भगवन्तं गोतमं एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो-'इतिपि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा' [B. 282] ति। ताहं भगवन्तं उद्दिस्स पब्बजितो। सो च मे भगवा सत्था। तस्स चाहं भगवतो धम्मं रोचेमी" ति।

"कहं पन, भिक्खु, एतरहि सो भगवा विहरति अरहं सम्मासम्बुद्धो" ति?

तब भगवान् कुम्भकार के उस घर में जाकर एक तरफ तृण- (पुआल-) पुञ्ज बिछा कर, आसन लगा कर, काया को सीधा कर, स्मृति को सन्मुख उपस्थित रख विराजमान हुए। यों, भगवान् ने ध्यानावस्था में बैठे-बैठे बहुत रात बिता दी। उधर आयुष्मान् पुक्कुसाती भी उतने समय ध्यानावस्थ ही बैठे रहे। तब भगवान् को यह विचार आया—"इस कुलपुत्र की शारीरिक चेष्टाएँ तो मनोहर हैं, क्यों न मैं इससे इसके विषय में कुछ विस्तार से पूछूँ !"

तब भगवान् ने आयुष्मान् पुक्कुसाती से पूछा—"भिक्षु ! तुम किसके नाम पर प्रव्रजित हुए हो ? तुम्हारा शास्ता कौन है ? तुम किसके धर्म को मानते हो ?"

"आयुष्मन् ! एक श्रमण गौतम हैं जो शाक्यपुत्र हैं और शाक्यकुल से ही प्रव्रजित हुए हैं। उन भगवान् गौतम के विषय में ऐसे प्रशंसा-वाक्य लोक में सुनाई पड़ रहे थे—'वे भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध...देव-मनुष्यों के शास्ता बुद्ध भगवान् हैं।' उन्हीं भगवान् को उद्देश्य कर मैं प्रव्रजित हुआ हूँ। वही भगवान् मेरे शास्ता हैं। उन्हीं भगवान् के (द्वारा उपदिष्ट, प्रचारित) धर्म को मैं मानता हूँ।"

"भिक्षु ! इस समय वे भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध कहाँ विहार कर रहे हैं ?"

"अत्थावुसो, उत्तरेसु जनपदेसु सावत्थि नाम नगरं। तत्थ सो भगवा एतरहि विहरति अरहं सम्मासम्बुद्धो" ति।

"दिट्ठपुब्बो पन ते, भिक्खु, सो भगवा; दिस्वा च पन जानेय्यासी" ति?

[R. 239] "न खो मे, आवुसो, दिट्ठपुब्बो सो भगवा; दिस्वा चाहं न जानेय्यं" ति।

अथ खो भगवतो एतदहोसि—"ममं च ख्वायं कुलपुत्तो उद्दिस्स पब्बजितो। यन्नूनस्साहं धम्मं देसेय्यं" ति। अथ खो भगवा आयस्मन्तं पुक्कुसातिं आमन्तेसि—"धम्मं ते, भिक्खु, देसिस्सामि। तं सुणाहि, साधुकं मनसि करोहि; भासिस्सामी" ति। "एवमावुसो" ति खो आयस्मा पुक्कुसाति भगवतो पच्चस्सोसि। भगवा एतदवोच–

२. भगवतो धातुविभङ्गदेसना

२. "छधातुरो अयं, भिक्खु, पुरिसो छफस्सायतनो अट्ठारसमनोपविचारो चतुराधिट्ठानो; यत्थ ठितं मञ्ञस्सवा नप्पवत्तन्ति, मञ्ञस्सवे खो पन नप्पवत्तमाने मुनि 'सन्तो' ति वुच्चति। पञ्ञं नप्पमज्जेय्य, सच्चमनुरक्खेय्य,

---

"आयुष्मन्! इस देश में उत्तर दिशा की ओर श्रावस्ती नामक नगर है। वहीं वे मेरे भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध इस समय साधनाहेतु विराजमान हैं।"

"आयुष्मन्! क्या तुमने उन भगवान् को पहले कभी देखा है, क्या तुम उन्हें अब देख कर पहचान सकते हो?"

"नहीं, आयुष्मन्! इससे पहले मैंने उन भगवान् को नहीं देखा है, देखने पर मैं उन्हें पहचान नहीं पाऊँगा।"

तब भगवान् को यह विचार आया—"यह कुलपुत्र मेरे ही नाम पर प्रव्रजित हुआ है, तो क्यों न मैं इसे धर्म का (सूक्ष्मतया) उपदेश कर दूँ।" यह सोचकर भगवान् ने आयुष्मान् पुक्कुसाती से कहा—"भिक्षु! मैं तुम्हें धर्मोपदेश करूँगा। मैं जो बताने जा रहा हूँ उसे तुम ध्यानपूर्वक सुनो। मन में बैठा लो।" "अच्छा, आयुष्मन्!" कह कर आयुष्मान् पुक्कुसाती ने उत्तर दिया।

२. भगवान् द्वारा धातुविभङ्ग की देशना

भगवान् यों बोले—

२. "भिक्षु! यह पुरुष (पुद्गल) छह धातुओं वाला, छह स्पर्शायतनों वाला, अठारह मनोपविचार वाला, चार अधिष्ठानों वाला है, जहाँ स्थित को इनके मान और उत्सव प्रवृत्त नहीं होते। मान और उत्सव के न प्रवृत्त होने पर वह शान्त साधक 'मुनि' कहलाता है। प्रज्ञा को प्रमाद की तरफ न प्रवृत्त होने दे। सत्य

चागमनुब्रूहेय्य, सन्तिमेव सो सिक्खेय्या' ति–अयमुद्देसो धातुविभङ्गस्स ।

३. "'**छधातुरो अयं, भिक्खु, पुरिसो**' ति–इति खो पनेतं वुत्तं; किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं? छयिमा, भिक्खु, धातुयो–पथवीधातु, आपोधातु, तेजोधातु, वायोधातु, आकासधातु, विञ्ञाणधातु। 'छधातुरो [N. 324] अयं, भिक्खु, पुरिसो' ति–इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं।

४. "'**छफस्सायतनो अयं, भिक्खु, पुरिसो**' ति--इति खो पनेतं वुत्तं; किञ्चेतं वुत्तं? चक्खुसम्फस्सायतनं, सोतसम्फस्सायतनं, घानसम्फस्सायतनं, जिव्हासम्फस्सायतनं, कायसम्फस्सायतनं, मनोसम्फस्सायतनं। 'छफस्सायतनो अयं, भिक्खु, पुरिसो' ति--इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं।

५. "'**अट्ठारसमनोपविचारो अयं, भिक्खु, पुरिसो**' [B. 283] ति--इति खो पनेतं वुत्तं; किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं? चक्खुना रूपं दिस्वा सोमनस्सट्ठानीयं रूपं उपविचरति, दोमनस्सट्ठानीयं रूपं उपविचरति, उपेक्खट्ठानीय रूपं उपविचरति; सोतेन सद्दं सुत्वा...पे०...घानेन गन्धं घायित्वा...जिव्हाय रसं सायित्वा...कायेन फोट्ठब्बं फुसित्वा... [R. 240] मनसा धम्मं विञ्ञाय सोमनस्सट्ठानीयं धम्मं उपविचरति, दोमनस्सट्ठानीयं

की रक्षा करे। त्याग को बढ़ावे। वह शान्ति का ही अभ्यास करे।—यह धातुविभङ्ग का उद्देश है।

३. "भिक्षु! 'यह पुरुष छह धातुओं वाला है'—यह जो (मैंने) कहा, वह किस लिये कहा? भिक्षु! ये धातु छह हैं; जैसे—पृथ्वीधातु, जलधातु, तेजोधातु, वायुधातु, आकाशधातु एवं विज्ञानधातु। 'भिक्षु! यह पुरुष छह धातुओं वाला है'—यह जो कहा, यह इसी उद्देश्य से कहा।

४. "भिक्षु! 'यह पुरुष छह स्पर्शायतनों वाला है'—यह जो कहा, यह किस निमित्त से कहा? चक्षुःसंस्पर्शायतन, श्रोत्रसंस्पर्शायतन, घ्राण...जिह्वा...काय... मनः संस्पर्शायतन। भिक्षु! 'यह पुरुष छह स्पर्शायतनों वाला है'—यह जो कहा यह इसी (उपर्युक्त) कारण से कहा।

५. "भिक्षु! 'यह पुरुष अट्ठारह मनोपविचारों वाला है"—यह जो कहा यह किस कारण कहा? चक्षु से रूप को देखकर सौमनस्यस्थानीय रूप के विषय में ऊहापोह (उपविचार) करता है; श्रोत्र से शब्द सुन कर...घ्राण से गन्ध सूँघकर...जिह्वा से रसास्वादन कर...काय से स्प्रष्टव्य विषय का स्पर्श कर...मन से धर्म को जानकर सौमनस्यस्थानीय धर्म के विषय में...; उपेक्षास्थानीय धर्म के विषय में ऊहापोह करता है। यों ये छह सौमनस्यसम्बन्धी, छह दौर्मनस्य-सम्बन्धी

धम्मं उपविचरति, उपेक्खट्ठानीयं धम्मं उपविचरति--इति छ सोमनस्सुपविचारा छ दोमनस्सुपविचारा छ उपेक्खुपविचारा। 'अट्ठारसमनोपविचारो अयं, भिक्खु, पुरिसो' ति--इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं।

६. '''**चतुराधिट्ठानो अयं, भिक्खु, पुरिसो**' ति—इति खो पनेतं वुत्तं, किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं? पञ्ञाधिट्ठानो, सच्चाधिट्ठानो, चागाधिट्ठानो, उपसमाधिट्ठानो। 'चतुराधिट्ठानो अयं, भिक्खु, पुरिसो' ति—इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं।

७. '''**पञ्ञं नप्पमज्जेय्य, सच्चमनुरक्खेय्य, चागमनुब्रूहेय्य, सन्तिमेव सो सिक्खेय्या**' ति--इति खो पनेतं वुत्तं; किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं? कथं च, भिक्खु, पञ्ञं नप्पमज्जति? छयिमा, भिक्खु, धातुयो--पथवीधातु, आपोधातु, तेजोधातु, वायोधातु, आकासधातु, विञ्ञाणधातु।

[N. 325] ८. "कतमा च, भिक्खु, पथवीधातु? पथवीधातु सिया अज्झत्तिका सिया बाहिरा। कतमा च, भिक्खु, अज्झत्तिका पथवीधातु? यं अज्झत्तं पच्चत्तं कक्खळं खरिगतं उपादिन्नं, सेय्यथीदं—केसा लोमा नखा दन्ता तचो मंसं न्हारु अट्ठि अट्ठिमिञ्जं वक्कं हदयं यकनं किलोमकं

एवं छह उपेक्षासम्बन्धी उपविचार है। ये ही सब मिल कर अठारह मनोपविचार कहलाते हैं। 'भिक्षु, यह पुरुष अठारह मनोपविचारों वाला है'—यह जो कहा था वह इसी हेतु से कहा गया था।

६. "भिक्षु! 'यह पुरुष चार अधिष्ठानों वाला है'—यह जो कहा गया वह किस लिये कहा? वे चार अधिष्ठान ये हैं—१. प्रज्ञाधिष्ठान, २. सत्याधिष्ठान, ३. त्यागाधिष्ठान, और ४. उपशमाधिष्ठान। भिक्षु! 'यह पुरुष चार अधिष्ठानों वाला है'—यह जो कहा, यह इसी अभिप्राय से कहा।

७. " 'पुरुष प्रज्ञा. को प्रमाद की ओर न प्रवृत्त होने दे, सत्य की रक्षा करे, त्याग को बढ़ावे, वह शान्ति की धारणा का ही अभ्यास करे'–यह जो कहा, किस हेतु कहा? यहाँ कैसे, भिक्षु! प्रज्ञा प्रमाद की ओर प्रवृत्त नहीं होती? भिक्षु! ये छह धातु हैं—१. पृथ्वीधातु, २. अब्धातु, ३. तेजोधातु, ४. वायुधातु, ५. आकाशधातु एवं ६. विज्ञानधातु।

८. "भिक्षु! यह पृथ्वीधातु कौन सी है? पृथ्वीधातु दो प्रकार की हो सकती है— १. आध्यात्मिक भी, २. बाह्य भी। १. भिक्षु! यहाँ यह आध्यात्मिक (भीतरी) पृथ्वीधातु कौन सी है? शरीर के भीतर प्रत्येक शरीर में जो कर्कशता या खरखरापन है; जैसे कि केश, लोम...पूर्ववत्...पेट का मल या अन्य जो कुछ भी प्रति-

पिहकं पप्फासं अन्तं अन्तगुणं उदरियं करीसं, यं वा पनञ्ञं पि किञ्चि अज्झत्तं पच्चत्तं कक्खळं खरिगतं उपादिन्नं—अयं वुच्चति, भिक्खु, अज्झत्तिका पथवीधातु। या चेव खो पन अज्झत्तिका पथवीधातु या च बाहिरा पथवीधातु पथवीधातुरेवेसा। 'तं नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति—एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दिस्वा पथवीधातुया निब्बिन्दति, पथवीधातुया चित्तं विराजेति।

९. "कतमा च, भिक्खु, आपोधातु? आपोधातु सिया [B. 284] अज्झत्तिका सिया बाहिरा। कतमा च, भिक्खु, अज्झत्तिका [R. 241] आपोधातु? यं अज्झत्तं पच्चत्तं आपो आपोगतं उपादिन्नं, सेय्यथीदं—पित्तं सेम्हं पुब्बो लोहितं सेदो मेदो अस्सु वसा खेळो सिङ्घाणिका लसिका मुत्तं, यं वा पनञ्ञं पि किञ्चि अज्झत्तं पच्चत्तं आपो आपोगतं उपादिन्नं—अयं वुच्चति, भिक्खु, अज्झत्तिका आपोधातु। या चेव खो पन अज्झत्तिका आपोधातु या च बाहिरा आपोधातु आपोधातुरेवेसा। 'तं नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति—एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दिस्वा आपोधातुया निब्बिन्दति, आपोधातुया चित्तं विराजेति।

१०. "कतमा च, भिक्खु, तेजोधातु? तेजोधातु सिया अज्झत्तिका सिया बाहिरा। कतमा च, भिक्खु, अज्झत्तिका तेजोधातु? यं अज्झत्तं

शरीर में कर्कश या खरखरी वस्तु हैं वे सब, भिक्षु! आध्यात्मिक पृथ्वीधातु के ही अन्तर्गत है। यों यह जो आध्यात्मिक पृथ्वीधातु है, या बाह्य पृथ्वीधातु है—ये दोनों ही पृथ्वीधातु कहलाती हैं। 'यह सब न मेरा है', 'न यह मैं हूँ', और 'न यह मेरी आत्मा है'—यों इन सब को प्रज्ञा द्वारा सही ढंग से जानकर देखना चाहिये। ऐसे इसे अच्छी प्रकार देखने से पृथ्वीधातु के प्रति साधक का निर्वेद (ग्लानि=उपेक्षा) बढ़ने लगता है। पृथ्वीधातु से चित्त को विरक्ति होने लगती है।

९. "और क्या है, भिक्षु, अब्धातु? यह अब्धातु भी आध्यात्मिक और बाह्य भेद से द्विविध होती है। जो प्रत्येक शरीर के अन्दर द्रव या द्रवभूत पदार्थ है, जैसे कि पित्त, श्लेष्मा, पूय, रक्त, स्वेद, मेद, अश्रु, खेड़, सिङ्घाणक (नाक का मल), लसीका, या मूत्र अथवा ऐसा ही और कुछ द्रव पदार्थ—भिक्षु! ये सब शरीरस्थित अब्धातु के ही अन्तर्गत है। 'यह सब न मेरा है'...पूर्ववत्...चित्त को विरक्ति होने लगती है।

१०. "और, भिक्षु! तेजोधातु कौन सी है? यह तेजोधातु भी द्विविध है—आध्यात्मिक और बाह्य। आध्यात्मिक तेजोधातु कौन सी है? जो पुरुषों के प्रत्येक

पच्चत्तं तेजो तेजोगतं उपादिन्नं, सेय्यथीदं--येन च सन्तप्पति, येन च जीरीयति, येन च परिडय्हति, येन च असित-पीत-खायित-सायितं सम्मा परिणामं गच्छति, यं वा पनञ्ञं पि किञ्चि अज्झत्तं पच्चत्तं तेजो तेजोगतं [N. 326] उपादिन्नं--अयं वुच्चति, भिक्खु, अज्झत्तिका तेजोधातु। या चेव खो पन अज्झत्तिका तेजोधातु या च बाहिरा तेजोधातु तेजोधातुरेवेसा। 'तं नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति--एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दिस्वा तेजोधातुया निब्बिन्दति, तेजोधातुया चित्तं विराजेति।

११. "कतमा च, भिक्खु, वायोधातु? वायोधातु सिया अज्झत्तिका सिया बाहिरा। कतमा च, भिक्खु, अज्झत्तिका वायोधातु? यं अज्झत्तं पच्चत्तं वायो वायोगतं उपादिन्नं, सेय्यथीदं--उद्धङ्गमा वाता अधोगमा वाता कुच्छिसया वाता कोट्ठासया वाता अङ्गमङ्गानुसारिनो वाता अस्सासो पस्सासो इति, यं वा पनञ्ञं पि किञ्चि अज्झत्तं पच्चत्तं वायो वायोगतं उपादिन्नं--अयं वुच्चति, भिक्खु, अज्झत्तिका वायोधातु। या चेव खो पन अज्झत्तिका वायोधातु या च बाहिरा वायोधातु वायोधातु- [B. 285] रेवेसा। 'तं नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति--एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दिस्वा वायोधातुया निब्बिन्दति वायोधातुया चित्तं विराजेति।

शरीर में तेज या तेजसम्बन्धी पदार्थ दिखायी देता है; जैसे कि जिससे ताप, दाह होता है, उदरगत अन्न जीर्ण होता है जिससे कि खाया-पीया भली-भाँति पचता है, या ऐसा ही कोई शरीरगत अन्य तेजोमय पदार्थ--यह आध्यात्मिक तेजोधातु कहलाता है। यहाँ यह जो आध्यात्मिक या बाह्य तेजोधातु है, ये दोनों ही तेजोधातु कहलाती हैं। 'यह सब न मेरा है,'''पूर्ववत्'''चित्त को विरक्ति होने लगती है।

११. "और, भिक्षु, वायुधातु कौन सी है! यह वायुधातु भी आध्यात्मिक और बाह्यभेद से द्विविध होती है। ये जो पुरुषों के प्रत्येक शरीर में वायु या वायु-सम्बन्धी पदार्थ हैं, जैसे—ऊर्ध्वगामी वायु, अधोगामी वायु, कुक्षि (पेट) गत वायु, कोष्ठाशयगत वायु, अंग-अंग का सञ्चालन करने वाली वायु या श्वास-प्रश्वास आदि अथवा ऐसे ही शरीरगत वायुसम्बन्धी अन्य पदार्थ। भिक्षु! यह आध्यात्मिक वायुधातु कहलाती है। यों, ये आध्यात्मिक और बाह्य वायुधातु--दोनों ही वायुधातु ही कहलाती हैं। 'यह सब न मेरा है'''पूर्ववत्'''चित्त को विरक्ति होने लगती है।

१२. "कतमा च, भिक्खु, आकासधातु ? आकासधातु सिया अज्झत्तिका सिया बाहिरा। कतमा च, भिक्खु, अज्झत्तिका आकास- [R. 242] धातु ? यं अज्झत्तं पच्चत्तं आकासं आकासगतं उपादिन्नं, सेय्यथीदं–कण्णच्छिद्दं नासच्छिद्दं मुखद्वारं येन च असितपीतखायितसायितं अज्झोहरति, यत्थ च असितपीतखायितसायितं सन्तिट्ठति, येन च असितपीतखायितसायितं अधोभागं निक्खमति, यं वा पनञ्ञं पि किञ्चि अज्झत्तं पच्चत्तं आकासं आकासगतं अघं अघगतं विवरं विवरगतं असम्फुट्ठं मंसलोहितेहि उपादिन्नं—अयं वुच्चति, भिक्खु अज्झत्तिका आकासधातु। या चेव खो पन अज्झत्तिका आकासधातु या च बाहिरा आकासधातु आकासधातुरेवेसा। 'तं नेतं मम, नेसोहस्मि, न मेसो अत्ता' ति—एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दिस्वा आकासधातुया निब्बिन्दति, आकासधातुया चित्तं विराजेति।

१३. "अथापरं विञ्ञाणं येव अवसिस्सति परिसुद्धं [N. 327] परियोदातं। तेन च विञ्ञाणेन किं विजानाति ? 'सुखं' ति पि विजानाति, 'दुक्खं' ति पि विजानाति, 'अदुक्खमसुखं' ति पि विजानाति। सुखवेदनीयं, भिक्खु, फस्सं पटिच्च उप्पज्जति सुखा वेदना। सो सुखं वेदनं वेदयमानो 'सुखं वेदनं वेदयामी' ति पजानाति। 'तस्सेव सुखवेदनीयस्स फस्सस्स निरोधा

---

१२. "और, भिक्षु ! यह आकाशधातु कौन सी है ? आकाशधातु भी आध्यात्मिक और बाह्य भेद से द्विविध ही है। तो, भिक्षु ! इनमें आध्यात्मिक आकाशधातु कौन सी है ? प्राणियों के प्रत्येक शरीर में जो आकाश (रिक्त=खाली स्थान) या आकाशसम्बन्धी पदार्थ दिखायी देते हैं; जैसे--कान का छिद्र, नाक का छिद्र, मुखद्वार, जिस (छिद्र) से खाया-पीया, चाटा-चूसा पदार्थ खाया जाता है, जहाँ ठहरता है या नीचे निकलता है, अथवा ऐसे ही शरीरगत आकाशसम्बन्धी छिद्र, विवर जो रक्त-मांस से असंस्पृष्ट हैं--भिक्षु ! यह आध्यात्मिक आकाशधातु कहलाती है। यों ये आध्यात्मिक एवं बाह्य आकाशधातु दोनों ही आकाशधातु कहलाती हैं। 'यह सब न मेरा है'…पूर्ववत्…चित्त को विरक्त करता है।

१३. "तब फिर परिशुद्ध पर्यवदात विज्ञानधातु ही अवशिष्ट रहती है। उसी विज्ञान से मनुष्य कुछ जान पाता है, 'यह सुख है'—जानता है, 'यह दुःख है'—जानता है, 'यह अदुःख-असुख है'—ऐसा जानता है। भिक्षु ! सुखात्मक अनुभव वाले स्पर्श (विषयेन्द्रियसंयोग) के कारण सुखा वेदना उत्पन्न होती है ! वह उस सुखा वेदना का अनुभव करते हुए 'सुखा वेदना का अनुभव कर रहा हूँ'—ऐसा जानता है। उस सुखवेदनीय स्पर्श के निरोध होने पर, 'उससे अनुभवजन्य

यं तज्जं वेदयितं सुखवेदनीयं फस्सं पटिच्च उप्पन्ना सुखा वेदना सा निरुज्झति, सा वूपसम्मती' ति पजानाति।

१४. "दुक्खवेदनीयं, भिक्खु, फस्सं पटिच्च उप्पज्जति दुक्खा वेदना। सो दुक्खं वेदनं वेदयमानो 'दुक्खं वेदनं वेदयामी' ति पजानाति। 'तस्सेव दुक्खवेदनीयस्स फस्सस्स निरोधा यं तज्जं वेदयितं दुक्खवेदनीयं फस्सं पटिच्च उप्पन्ना दुक्खा वेदना सा निरुज्झति, सा वूपसम्मती' ति पजानाति।

१५. "अदुक्खमसुखवेदनीयं, भिक्खु, फस्सं पटिच्च उप्पज्जति अदुक्खमसुखा वेदना। सो अदुक्खमसुखं वेदनं वेदयमानो 'अदुक्खमसुखं वेदनं [B. 286] वेदयामी' ति पजानाति। 'तस्सेव अदुक्खमसुखवेदनीयस्स फस्सस्स निरोधा यं तज्जं वेदयितं अदुक्खमसुखवेदनीयं फस्सं पटिच्च उप्पन्ना अदुक्खमसुखा वेदना सा निरुज्झति, सा वूपसम्मती' ति पजानाति।

१६. "सेय्यथापि, भिक्खु, द्विन्नं कट्ठानं सङ्घट्टा समोधाना उस्मा जायति, तेजो अभिनिब्बत्तति, तेसं येव द्विन्नं कट्ठानं नानाभावा विनिक्खेपा या तज्जा उस्मा सा निरुज्झति, सा वूपसम्मति; एवमेव खो, भिक्खु, सुखवेद- [R. 243] नीयं फस्सं पटिच्च उप्पज्जति सुखा वेदना। सो सुखं वेदनं वेदयमानो 'सुखं वेदनं वेदयामी' ति पजानाति। 'तस्सेव सुखवेदनीयस्स फस्सस्स निरोधा यं तज्जं वेदयितं सुखवेदनीयं फस्सं पटिच्च उप्पन्ना सुखा वेदना सा निरुज्झति, सा वूपसम्मती' ति पजानाति। दुक्खवेदनीयं भिक्खु, फस्सं पटिच्च उप्पज्जति दुक्खा वेदना। सो दुक्खं वेदनं वेदयमानो 'दुक्खं वेदनं वेदयामी' ति पजानाति। 'तस्सेव दुक्खवेदनीयस्स फस्सस्स निरोधा यं तज्जं वेदयितं दुक्खवेदनीयं फस्सं पटिच्च उप्पन्ना दुक्खा वेदना सा

सुखवेदनीय स्पर्श के कारण जो सुखा वेदना है वह भी निरुद्ध हो जाती है। शान्त हो जाती है'--ऐसा जानता है।

१४. "भिक्षु! दुःखात्मक अनुभव वाले स्पर्श के कारण दुःखा वेदना उत्पन्न होती है।...वह शान्त हो जाती है--ऐसा जानता है।

१५. "भिक्षु! अदुःख-असुखात्मक अनुभव वाले स्पर्श के कारण अदुःखा-असुखा वेदना उत्पन्न होती है।...वह शान्त हो जाती है—ऐसा जानता है।

१६. "भिक्षु! जैसे दो लकड़ियों के सङ्घर्षण (रगड़) से गर्मी (ऊष्मा) प्रकट होती है, अग्नि उद्भूत होती है; और उन दोनों लकड़ियों के अलग होने पर, दूर हो जाने पर वही गर्मी या अग्नि शान्त हो जाती है; इसी तरह, भिक्षु! 'सुखवेदनीय स्पर्श के कारण...सुखा वेदना का अनुभव कर रहा हूँ...शान्त होती है'—

निरुज्झति, सा वूपसम्मती' ति पजानाति। अदुक्खमसुख- [N. 328] वेदनीयं, भिक्खु, फस्सं पटिच्च उप्पज्जति अदुक्खमसुखा वेदना। सो अदुक्खमसुखं वेदनं वेदयमानो 'अदुक्खमसुखं वेदनं वेदयामी' ति पजानाति। 'तस्सेव अदुक्खमसुखवेदनीयस्स फस्सस्स निरोधा यं तज्जं वेदयितं अदुक्खमसुखवेदनीयस्स फस्सं पटिच्च उप्पन्ना अदुक्खमसुखा वेदना सा निरुज्झति, सा वूपसम्मती' ति पजानाति।

१७. "अथापरं उपेक्खा येव अविसिस्सति परिसुद्धा परियोदाता मुदु च कम्मञ्ञा च पभस्सरा च। सेय्यथापि, भिक्खु, दक्खो सुवण्णकारो वा सुवण्णकारन्तेवासी वा उक्कं बन्धेय्य, उक्कं बन्धित्वा उक्कामुखं आलिम्पेय्य, उक्कामुखं आलिम्पेत्वा सण्डासेन जातरूपं गहेत्वा उक्कामुखे पक्खिपेय्य, तमेनं कालेन कालं अभिधमेय्य, कालेन कालं उदकेन परिप्फोसेय्य, कालेन कालं अज्झुपेक्खेय्य, तं होति जातरूपं सुधन्तं निद्धन्तं नीहटं निन्नीत-कसावं मुदु च कम्मञ्ञं च पभस्सरं च, यस्सा यस्सा च पिळन्धन-विकतिया आकङ्खति—यदि पट्टिकाय यदि कुण्डलाय यदि [B. 287] गीवेय्यकाय यदि सुवण्णमालाय तं चस्स अत्थं अनुभोति; एवमेव खो, भिक्खु, अथापरं उपेक्खा येव अवसिस्सति परिसुद्धा परियोदाता मुदु च कम्मञ्ञा च पभस्सरा च।

१८. "सो एवं पजानाति--'इमं चे अहं उपेक्खं एवं परिसुद्धं एवं

ऐसा जानता है। 'दुःखवेदनीय स्पर्श के कारण...दुःखा वेदना का अनुभव कर रहा हूँ।...शान्त होती है'—ऐसा जानता है। 'अदुःख असुखवेदनीय स्पर्श के कारण...अदुःख-असुखा वेदना का अनुभव कर रहा हूँ' ...ऐसा जानता है।

१७. इसके बाद तो परिशुद्ध एवं पर्यवदात, मृदु, कर्मण्य एवं प्रभास्वर उपेक्षा ही अवशिष्ट रहती है। जैसे, भिक्षु, कोई दक्ष सुवर्णकार या उसका कोई सहायक उल्कामुख का लेपन कर, संडसी से सोने को पकड़ कर उल्कामुख में डाले। साथ ही समय-समय पर उसे धौंकता रहे, समय-समय पर जल में डाल कर सोने को ठण्डा करता रहे। समय-समय पर उसे कुछ देर छोड़ रखे। तब अच्छी तरह तपाया हुआ वह सोना मृदु, कर्मण्य (काम में आने योग्य) प्रभास्वर, शुद्ध, निर्मल, निहत (धुला हुआ) एवं कषाय रंग वाला हो जाता है। तब वह उस सुवर्णपिण्ड से जैसा भी आभूषण बनाना चाहता है, भले ही पट्टिका हो, कान का कुण्डल हो या गले का कण्ठहार या सुवर्णमाला हो—कुछ भी सरलतया बना पाता है। इसी तरह, भिक्षु ! तब केवल उपेक्षा ही अवशिष्ट रह जाती है जो कि परिशुद्ध पर्यवदात...प्रभास्वर होती है।

१८. "वह इस प्रकार जानता है—'ऐसी परिशुद्ध पर्यवदात इस उपेक्षा से मैं

परियोदातं आकासानञ्चायतनं उपसंहरेय्यं, तदनुधम्मं च चित्तं भावेय्यं। एवं मे अयं उपेक्खा तन्निस्सिता तदुपादाना चिरं दीघमद्धानं तिट्ठेय्य। इमं चे अहं उपेक्खं एवं परिसुद्धं एवं परियोदातं विञ्ञाणञ्चायतनं उपसंहरेय्यं, तदनुधम्मं च चित्तं भावेय्यं; एवं मे अयं उपेक्खा तन्निस्सिता तदुपादाना चिरं दीघमद्धानं तिट्ठेय्य। इमं चे अहं उपेक्खं एवं परिसुद्धं एवं परियोदातं आकिञ्चञ्ञायतनं उपसंहरेय्यं, तदनुधम्मं च चित्तं भावेय्यं; एवं मे अयं उपेक्खा तन्निस्सिता तदुपादाना चिरं दीघमद्धानं तिट्ठेय्य। इमं चे अहं [R. 244] उपेक्खं एवं परिसुद्धं एवं परियोदातं नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं [N. 329] उपसंहरेय्यं, तदनुधम्मं च चित्तं भावेय्यं; एवं मे अयं उपेक्खा तन्निस्सिता तदुपादाना चिरं दीघमद्धानं तिट्ठेय्या' ति।

१९. "सो एवं पजानाति--'इमं चे अहं उपेक्खं एवं परिसुद्धं एवं परियोदातं आकासानञ्चायतनं उपसंहरेय्यं, तदनुधम्मं च चित्तं भावेय्यं, सङ्खतमेतं। इमं चे अहं उपेक्खं एवं परिसुद्धं एवं परियोदातं विञ्ञाणञ्चायतनं उपसंहरेय्यं, तदनुधम्मं च चित्तं भावेय्यं; सङ्खतमेतं। इमं चे अहं उपेक्खं एवं परिसुद्धं एवं परियोदातं आकिञ्चञ्ञायतनं उपसंहरेय्यं, तदनुधम्मं च चित्तं भावेय्यं; सङ्खतमेतं। इमं चे अहं उपेक्खं एवं परिसुद्धं एवं परियोदातं नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं उपसंहरेय्यं, तदनुधम्मं च चित्तं भावेय्यं; सङ्खतमेतं' ति।

"सो नेव तं अभिसङ्खरोति, न अभिसञ्चेतयति भवाय वा विभवाय वा। सो अनभिसङ्खरोन्तो अनभिसञ्चेतयन्तो भवाय वा विभवाय वा न

आकाशानन्त्यायतन को प्राप्त हो साधना करूँ, उसके धर्मानुसार चित्त में अभ्यास करूँ तो यह उसे उपादान बना कर चिरकाल तक ठहरेगी'।... विज्ञानानन्त्यायतन को... आकिञ्चन्यायतन को... नैवसंज्ञासंज्ञायतन को... चिर काल तक ठहरेगी।

१६. "वह यों जानता है—'यदि मैं ऐसी परिशुद्ध पर्यवदात उपेक्षा से आकाशानन्त्यायतन को प्राप्त हो साधना करूँ, उसके धर्मानुसार चित्त को अभ्यस्त करूँ तो यह भी संस्कृत है।... विज्ञानन्त्यायतन को... आञ्चिन्यायतन को... नैवसंज्ञानासंज्ञायतन को... चित्त को अभ्यस्त करूँ तो यह भी संस्कृत ही है।

"यह सोच कर, वह न उसके भव (उत्पत्ति) या विभव (विनाश) के लिये उसका अभिसंस्कार (रचना) करता है न उनका अभिसञ्चेतन (चिन्तन—खयाल) करता है। यों वह अभिसंस्कार व अभिसञ्चेतन न करते हुए भव या विभव के लिये लोक में किसी वस्तु का उपादान (ग्रहण) नहीं करता है, उपादान न करने

किञ्चि लोके उपादियति, अनुपादियं न परितस्सति, अपरितस्सं पच्चत्तं येव परिनिब्बायति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाति।

२०. "सो सुखं चे वेदनं वेदेति, 'सा अनिच्चा' ति पजानाति, 'अनज्झोसिता' ति पजानाति, 'अनभिनन्दिता' ति पजानाति। दुक्खं चे वेदनं वेदेति, 'सा अनिच्चा' ति पजानाति, 'अनज्झोसिता' ति [B. 288] पजानाति, 'अनभिनन्दिता' ति पजानाति। अदुक्खमदुखं चे वेदनं वेदेति, 'सा अनिच्चा' ति पजानाति, 'अनज्झोसिता' ति पजानाति, 'अनभिनन्दिता' ति पजानाति।

२१. "सो सुखं चे वेदनं वेदेति, विसंयुत्तो नं वेदेति; दुक्खं चे वेदनं वेदेति, विसंयुत्तो नं वेदेति; अदुक्खमसुखं चे वेदनं वेदेति, विसंयुत्तो नं वेदेति। सो कायपरियन्तिकं वेदनं वेदयमानो 'कायपरियन्तिकं वेदनं वेदयामी' ति पजानाति, जीवितपरियन्तिकं वेदनं वेदयमानो '[R. 245] 'जीवितपरियन्तिकं वेदनं वेदयामी' ति पजानाति, 'कायस्स भेदा परं मरणा उद्धं जीवितपरियादाना इधेव सब्बवेदयितानि अनभिनन्दितानि सीतीभविस्सन्ती' ति पजानाति।

से किसी तरह के त्रास को प्राप्त नहीं होता। त्रास को प्राप्त न होने से वह इसी शरीर से निर्वाण पा लेता है। तब वह यह समझ लेता है—'मेरी जाति (जन्म-परम्परा) क्षीण हो चुकी है, धर्मसाधना (ब्रह्मचर्य) पूर्ण हो चुकी है, अब मेरा यहाँ कोई कर्तव्य शेष नहीं है'।

२०. "उस समय वह यदि सुखा वेदना का अनुभव करता है तो उसे अनित्य समझते हुए, अनध्यवसित (अनिश्चित) समझते हुए उसका अभिनन्दन नहीं करता।...दुखा वेदना...अदुःख-असुख वेदना का अनुभव करता है तो उसे अनित्य व अनिश्चित समझते हुए उसका अभिनन्दन नहीं करता।

२१. "वह साधक (उस स्थिति में) यदि सुखा वेदना का अनुभव करता है तो वह उससे अलग (विसंयुक्त) हो कर उसका अनुभव नहीं करता...दुःखा वेदना...अदुःख-असुखा वेदना का अनुभव करता है तो वह उससे विसंयुक्त होकर उसका भी अनुभव नहीं करता। वह कायापर्यन्त की वेदना का अनुभव करते हुए 'कायापर्यन्त की वेदना का अनुभव कर रहा हूँ'—ऐसा जानता है। जीवित पर्यन्त की वेदना का अनुभव करता है तो 'जीवितपर्यन्त वेदना का अनुभव कर रहा हूँ'—ऐसा जानता है। 'इस काया के पतन के बाद, मरणानन्तर, जीवन समाप्त होने पर, ये समग्र अनुभव यहीं अनभिनन्दित हो ठण्ढे पड़ जाँयगें'—ऐसा जानता है।

[N. 330] २२. "सेय्यथापि, भिक्खु, तेलं च पटिच्च वट्टिं च पटिच्च तेलप्पदीपो झायति; तस्सेव तेलस्स च वट्टिया च परियादाना अञ्ञस्स च अनुपादाना अनाहारो निब्बायति; एवमेव खो, भिक्खु, कायपरियन्तिकं वेदनं वेदयमानो 'कायपरियन्तकं वेदनं वेदयामी' ति पजानाति, जीवित-परियन्तिकं वेदनं वेदयमानो 'जीवितपरियन्तिकं वेदनं वेदयामी' ति पजानाति, 'कायस्स भेदा परं मरणा उद्धं जीवितपरियादाना इधेव सब्ब-वेदयितानि अनभिनन्दितानि सीतीभविस्सन्ती' ति पजानाति। तस्मा एवं समन्नागतो भिक्खु इमिना परमेन पञ्ञाधिट्ठानेन समन्नागतो होति। एसा हि, भिक्खु, परमा अरिया पञ्ञा, यदिदं—सब्बदुक्खक्खये ञाणं।

२३. "तस्स सा विमुत्ति सच्चे ठिता अकुप्पा होति। तं हि, भिक्खु, मुसा यं मोसधम्मं, तं सच्चं यं अमोसधम्मं निब्बानं। तस्मा एवं समन्नागतो भिक्खु इमिना परमेन सच्चाधिट्ठानेन समन्नागतो होति। एतं हि, भिक्खु, परमं अरियसच्चं, यदिदं—अमोसधम्मं निब्बानं।

२४. "तस्सेव खो पन पुब्बे अविद्दसुनो उपधी होन्ति समत्ता समादिन्ना। त्यास्स पहीना होन्ति। उच्छिन्नमूला तालावत्थुकता अनभावङ्कता

---

२२. "जैसे, भिक्षु ! तैल और बत्ती के सहारे तैलप्रदीप जलता है। उसकी तैल और बत्ती के समाप्त होने पर, और दूसरा न मिलने पर वह (तैलप्रदीप) बुझ जाता है निर्वाण को प्राप्त हो जाता है; उसी प्रकार, भिक्षु ! वह साधक कायपर्यन्तक वेदना का अनुभव करता हुआ 'कायपर्यन्तक वेदना का अनुभव कर रहा हूँ'—ऐसा जानता है। जीवितपर्यन्तक वेदना का अनुभव करता हुआ 'जीवितपर्यन्तक वेदना का अनुभव कर रहा हूँ' ऐसा जानता है। 'इस काया के पतन के बाद, मरणानन्तर, यह जीवन समाप्त होने पर, यहाँ अनुभूत किये गये सभी अनुभव अनभिनन्दित होते हुए यहीं ठण्डे पड़ जाँयगे'—ऐसा जानता है। अतः, भिक्षु ! ऐसे गुणों से युक्त साधक इस परम प्रज्ञाधिष्ठान से संयुक्त हो जाता है। भिक्षु ! यह समग्र दुःखों के क्षय का ज्ञान ही परम आर्यप्रज्ञा है।

२३. उस साधक की वह विमुक्ति सत्य पर आधृत अतएव अचल (अकोप्य) है। भिक्षु ! यहाँ जो नाशवान् है वह मृषा (असत्य) है और जो अविनाशी (अमोषधर्मा) है वही सत्य है, जैसे निर्वाण। अतः भिक्षु, ! ऐसे गुणों से युक्त साधक इस परमसत्याधिष्ठान से समन्वित होता है। भिक्षु ! यह अविनाशी निर्वाण ही परम आर्यसत्य है।

२४. उस साधक ने, अपनी अज्ञानावस्था में, जो उपधियाँ (स्कन्ध, काय-क्लेश, कर्म) ग्रहण कर ली थीं, अब उसकी वे उपधियाँ जड़ से उच्छिन्न, कटे शिर-

आयतिं अनुप्पादधम्मा तस्मा एवं समन्नागतो भिक्खु इमिना परमेन चागाधिट्ठानेन समन्नागतो होति। एसो हि, भिक्खु, परमो [B. 289] अरियो चागो, यदिदं—सब्बूपधिपटिनिस्सग्गो।

२५. "तस्सेव खो पन पुब्बे अविद्दसुनो अभिज्झा होति छन्दो सारागो। स्वास्स पहीनो होति उच्छिन्नमूलो तालावत्थुकतो अनभावङ्कतो आयतिं अनुप्पादधम्मो। तस्सेव खो पन पुब्बे अविद्दसुनो आघातो होति ब्यापादो सम्पदोसो। स्वास्स पहीनो होति उच्छिन्नमूलो तालावत्थुकतो अनभावङ्कतो आयतिं अनुप्पादधम्मो। तस्सेव खो पन पुब्बे अविद्दसुनो अविज्जा होति सम्मोहो। स्वास्स पहीनो होति उच्छिन्नमूलो तालावत्थुकतो [R. 246] अनभावङ्कतो आयतिं अनुप्पादधम्मो। तस्मा एवं समन्नागतो भिक्खु इमिना परमेन उपसमाधिट्ठानेन समन्नागतो होति। एसो हि, [N. 331] भिक्खु, परमो अरियो उपसमो यदिदं—रागदोसमोहानं उपसमो। 'पञ्ञं नप्पमज्जेय्य, सच्चमनुरक्खेय्य, चागमनुब्रूहेय्य, सन्तिमेव सो सिक्खेय्या' ति—इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं।

२६. "'**यत्थ ठितं मञ्ञस्सवा नप्पवत्तन्ति, मञ्ञस्सवे खो नप्पवत्तमाने मुनि सन्तो ति वुच्चती**' ति—इति खो पनेतं वुत्तं; किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं? 'अस्मी' ति, भिक्खु, मञ्ञितमेतं, 'अयमहस्मी' ति मञ्ञितमेतं, 'भविस्सं'

वाले ताड़ वृक्ष की तरह हो चुकी हैं, अभावप्राप्त और भविष्य में कभी भी उत्पन्न न होने योग्य हो चुकी हैं। अतः ऐसे गुणों से युक्त भिक्षु इस परमत्यागाधिष्ठान से समन्वित होता है। भिक्षु! यह समग्र उपधियों का त्याग ही परम आर्य-त्याग है।

२५. "उसी साधक ने, अपनी अज्ञानावस्था में, जो अभिध्या (लोभ), छन्द, राग ग्रहण कर रखा था, उसका वह, इस अवस्था में आकर जड़ से उच्छिन्न हो जाता है।...आघात, व्यापाद, सम्प्रद्वेष...अविद्या, सम्मोह...उसका वह उस अवस्था में आकर जड़ से उच्छिन्न हो जाता है। अतः ऐसे गुणों से युक्त भिक्षु इस परम उपशमाधिष्ठान से समन्वित होता है। भिक्षु! यह राग-द्वेष-मोह का उपशम ही परम 'आर्य उपशम' कहलाता है। 'प्रज्ञा को प्रमाद की ओर न प्रवृत्त होने दे...शान्ति का ही अभ्यास करे'—यह जो मैंने कहा था, इसी लिये कहा था।

२६. "साधक को, जिस अवस्था में पहुँचने पर, मानाभिनिवेश और उत्सव नहीं सताते, ऐसी अवस्था में पहुँचा हुआ वह शान्त 'मुनि' कहलाता है।'—यह जो (पीछे मैंने) कहा, वह किस लिये कहा? भिक्षु! 'मैं हूँ' यह मान

ति मञ्ञितमेतं' 'न भविस्सं' ति मञ्ञितमेतं, 'रूपी भविस्सं' ति मञ्ञितमेतं, 'अरूपी भविस्सं' ति मञ्ञितमेतं, 'सञ्ञी भविस्सं' ति मञ्ञितमेतं, 'असञ्ञी भविस्सं' ति मञ्ञितमेतं, नेवसञ्ञीनासञ्ञी भविस्सं' ति मञ्ञितमेतं। मञ्ञितं, भिक्खु, रोगो मञ्ञितं गण्डो मञ्ञितं सल्लं। सब्बमञ्ञितानं त्वेव, भिक्खु, समतिक्कमा मुनि 'सन्तो' ति वुच्चति। मुनि खो पन, भिक्खु, सन्तो न जायति, न जीयति, न मीयति, न कुप्पति, न पिहेति। तञ्हिस्स, भिक्खु, नत्थि येन जायेथ, अजायमानो किं जीयिस्सति, अजीयमानो किं मीयिस्सति, अमीयमानो किं कुप्पिस्सति, अकुप्पमानो किस्स पिहेस्सति! 'यत्थ ठितं मञ्ञस्सवा नप्पवत्तन्ति, मञ्ञस्सवे खो पन नप्पवत्तमाने मुनि 'सन्तो' ति वुच्चती' ति--इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं। इमं खो मे त्वं, भिक्खु, सङ्खित्तेन छधातुविभङ्गं धारेही" ति।

३. आयस्मतो पुक्कुसातिस्स अभिसम्परायो

[B. 290] २७. अथ खो आयस्मा पुक्कुसाति--"सत्था किर मे अनुप्पत्तो, सुगतो किर मे अनुप्पत्तो, सम्मासम्बुद्धो किर मे अनुप्पत्तो" ति उट्ठायासना एकंसं चीवरं कत्वा भगवतो पादेसु सिरसा निपतित्वा भगवन्तं

(मान्यता, अभिनिवेश) है, 'यह मैं हूँ'...'मैं होऊँगा'...'नहीं होऊँगा' यह मान है। 'रूपी होऊँगा'...अरूपी...संज्ञी...असंज्ञी...'नैवसंज्ञीनासंज्ञी होऊँगा'--यह मान है। भिक्षु! यह मान ही रोग है, शल्य है, व्रण (गण्ड) है। इन सब मान्यताओं (अभिनिवेशों) को अतिक्रान्त करके ही साधक 'शान्त मुनि' कहलाता है। भिक्षु! ऐसे शान्त मुनि को न जन्म-मरण होते हैं, न वह किसी पर कुपित होता है, न वह किसी वस्तु की स्पृहा (इच्छा) करता है। उसके लिये ऐसा कुछ रह ही नहीं जाता कि जिसके लिये वह पुनः जन्मने की इच्छा करे। और जब उसकी जन्म लेने की ही इच्छा नहीं होगी तो वह क्यों जन्मेगा, जीयेगा! जब मृत्यु ही नहीं होगी तो वह किस पर कोप करेगा! जब कोप ही नहीं करेगा तो वह किसकी स्पृहा करेगा! अतः यह जो कहा था—'साधक को जिस अवस्था में पहुँचने पर...शान्त मुनि कहलाता है', यह इसी हेतु कहा था। भिक्षु! तू मेरे द्वारा उपदिष्ट इस धातुविभङ्ग को मन में ठीक तरह से बैठा ले।"

३. आयुष्मान् पुक्कुसाति का दौर्भाग्य (मन्द प्रारब्ध)

२७. तब आयुष्मान् पुक्कुसाति— "अरे! ये तो मेरे शास्ता मुझे मिल गये!" "सुगत मुझे मिल गये", "सम्यक्सम्बुद्ध मुझे मिल गये"—ऐसा जान कर वह आसन से उठ, उत्तरासङ्ग को एक (बाँये) कन्धे पर कर भगवान् के श्रीचरणों में गिर

एतदवोच—"अच्चयो मे, भन्ते, अच्चगमा यथाबालं यथामूळ्हं यथाअकुसलं, योहं भगवन्तं आवुसोवादेन समुदाचरितब्बं अमञ्ञिस्सं। [R. 247] तस्स मे, भन्ते, भगवा अच्चयं अच्चयतो पटिग्गण्हातु आयतिं संवराया" ति।

"तग्घ त्वं, भिक्खु, अच्चयो अच्चगमा यथाबालं यथा- [N. 332] मूळ्हं यथाअकुसलं, यं मं त्वं आवुसोवादेन समुदाचरितब्बं अमञ्ञित्थ। यतो च खो त्वं, भिक्खु, अच्चयं अच्चयतो दिस्वा यथाधम्मं पटिकरोसि, तं ते मयं पटिग्गण्हाम। वुद्धि हेसा, भिक्खु, अरियस्स विनये यो अच्चयं अच्चयतो दिस्वा यथाधम्मं पटिकरोति, आयतिं संवरं आपज्जती" ति।

"लभेय्याहं, भन्ते, भगवतो सन्तिके उपसम्पदं" ति।

"परिपुण्णं ते, भिक्खु, पत्तचीवरं ति ?"

"न खो मे, भन्ते, परिपुण्णं पत्तचीवरं" ति।

"न खो, भिक्खु, तथागता अपरिपुण्णपत्तचीवरं उपसम्पादेन्ती" ति।

अथ खो आयस्मा पुक्कुसाति भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा अनु-

कर उनसे यों बोला--"भन्ते ! बाल या मूढ की तरह किये गये मेरे इस अपराध को आप क्षमा करें कि मैंने अज्ञानवश आपको 'आयुष्मन्' शब्द से (जो कि बराबर वाले के लिये लोक में प्रयुक्त होता है) सम्बोधित करने योग्य समझा। भन्ते ! मेरे इस अपराध को बीती बात की तरह भुला दें। भविष्य में मैं स्वयं पर नियन्त्रण रखूंगा (कि फिर कभी आपके प्रति इस सम्बोधन का प्रयोग न करूँ")।

"भिक्षु ! तूं ने बाल या मूढ की तरह यह अपराध तो जरूर किया कि तूँ ने मुझको बराबर की आयु वालों के समान 'आयुष्मान्' कहा; परन्तु अब तूँ अपने उस अपराध को अपराध की तरह मान कर धर्मानुसार उसका प्रतीकार (प्रायश्चित्त) भी कर रहा है; अतः तेरे इस प्रतीकार को हम स्वीकार करते हैं। भिक्षु ! आर्यविनय (सन्तपरम्परा) में यह लाभ ही बताया गया है; क्योंकि यह भविष्य में किये जाने-वाले प्रमादों पर नियन्त्रण (संयम) रखता है।"

"क्या, भन्ते ! मैं आप से उपसम्पदा पा सकता हूं ?"

"क्या, भिक्षु ! तुम्हारे पास विनयानुमोदित समग्र पात्र-चीवर हैं ?

"नहीं, भन्ते, समस्त पात्रचीवर तो नहीं हैं।" "तो, भिक्षु ! तथागत पात्रचीवर न रखने वाले को उपसम्पन्न नहीं करते।"

तब आयुष्मान् पुक्कुसाति भगवान् के भाषण का अभिनन्दन अनुमोदन कर,

मोदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पत्तचीवर-परियेसनं पक्कामि।

अथ खो आयस्मन्तं पुक्कुसातिं पत्तचीवरपरियेसनं चरन्तं विब्भन्ता गावी जीविता वोरोपेसि। अथ खो सम्बहुला भिक्खू येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खू भगवन्तं एतदवोचुं—"यो सो, भन्ते, पुक्कुसाति नाम कुलपुत्तो भगवता सङ्खित्तेन ओवादेन ओवदितो सो कालङ्कतो! तस्स का गति, को अभिसम्परायो" ति?

"पण्डितो, भिक्खवे, पुक्कुसाति कुलपुत्तो पच्चपादि धम्मस्सानुधम्मं, न च मं धम्माधिकरणं विहेठेसि। पुक्कुसाति, भिक्खवे, कुलपुत्तो पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओपपातिको तत्थ परिनिब्बायी अनावत्तिधम्मो तस्मा लोका" ति।

२८. इदमवोच भगवा। अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दु ति॥

●

आसन से उठ कर, भगवान् को प्रणाम-प्रदक्षिणा कर पात्रचीवर-सामग्री की खोज में निकल पड़े।

कुछ समय बाद पात्रचीवर की खोज में निकले आयुष्मान् पुक्कुसाति को किसी उन्मत्त गाय (या साँड़) ने मार डाला। तब बहुत से भिक्षु भगवान् को यह समाचार सुनाने के लिए भगवान् के पास गये। वहाँ जाकर उन्हें प्रणाम कर वे एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे उन भिक्षुओं ने भगवान् से निवेदन किया—"भन्ते! जिस पुक्कुसाति कुलपुत्र को कुछ ही समय पूर्व भगवान् ने संक्षिप्त धर्मोपदेश किया था, वह मृत्यु को प्राप्त हो गया। भन्ते! कृपया बताइये—उसकी क्या गति या क्या भविष्य (अभिसम्पराय) होगा"?

"भिक्षुओ! पुक्कुसाति कुलपुत्र पण्डित (समझदार), सत्यवादी एवं धर्मानुसार आचरण वाला था। उसने मुझे धर्माचरणविषयक कोई कष्ट नहीं दिया (कि उसके किसी अधर्माचरण से मुझे क्षोभ हुआ हो)। भिक्षुओ! पुक्कुसाति कुलपुत्र पाँचों अवरभागीय संयोजनों के क्षय से औपपातिक (अयोनिज देव) हो, वहीं (देवलोक में उत्पन्न होकर) निर्वाण पाने वाला है। उस लोक में अब वह नहीं लौटेगा।"

भगवान् ने यह कहा। उन भिक्षुओं ने सन्तुष्ट हो भगवान् के भाषण का अभिनन्दन किया॥

धातुविभङ्गसुत्त समाप्त॥

○

४१. सच्चविभंगसुत्तं

१. सारिपुत्तमोग्गल्लाना सेवनीया

१. एवं मे सुतं। एकं समय भगवा [N. 333, B. 291, R. 248] बाराणसियं विहरति इसिपतने मिगदाये। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि —"भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

"तथागतेन, भिक्खवे, अरहता सम्मासम्बुद्धेन बाराणसियं इसिपतने मिगदाये अनुत्तरं धम्मचक्कं पवत्तितं अप्पटिवत्तियं समणेन वा ब्राह्मणेन वा देवेन वा मारेन वा ब्रह्मुना वा केनचि वा लोकस्मिं, यदिदं- चतुन्नं अरियसच्चानं आचिक्खना देसना पञ्ञापना पट्ठपना विवरणा विभजना उत्तानीकम्मं। कतमेसं चतुन्नं? दुक्खस्स अरियसच्चस्स आचिक्खना देसना पञ्ञापना पट्ठपना विवरणा विभजना उत्तानीकम्मं; दुक्खसमुदयस्स अरियसच्चस्स आचिक्खना देसना पञ्ञापना पट्ठपना विवरणा विभजना उत्तानीकम्मं; दुक्खनिरोधस्स अरियसच्चस्स आचिक्खना देसना पञ्ञापना पट्ठपना विवरणा विभजना उत्तानीकम्मं; दुक्खनिरोधगामिनिया पटिपदाय अरियसच्चस्स आचिक्खना देसना पञ्ञापना पट्ठपना विवरणा विभजना उत्तानीकम्मं। तथागतेन, भिक्खवे, अरहता सम्मासम्बुद्धेन बाराणसियं इसिपतने मिगदाये अनुत्तरं धम्मचक्कं पवत्तितं अप्पटिवत्तियं समणेन वा

---

४१. सत्यविभङ्गसूत्र

१. सारिपुत्र-मौद्गल्यायन सेवा करने योग्य हैं

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) वाराणसीस्थित ऋषिपतन मृगदाय (मृगारण्य) में साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को "भिक्षुओ" कह कर पास बुलाया। वे "हाँ, भन्ते" कह कर भगवान् के सम्मुख उपस्थित हुए। भगवान् यों बोले—

"भिक्षुओ! तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध ने वाराणसी के ऋषिपतन मृगदाय में अद्वितीय एवं किसी दूसरे श्रमण ब्राह्मण देवता मार ब्रह्मा या अन्य व्यक्ति द्वारा अप्रतिवर्तनीय (न घुमाये जा सकने योग्य) धर्मचक्र (धर्मोपदेश) का प्रवर्तन किया था। उस धर्मचक्र का मुख्य विषय था—चार आर्यसत्यों का उपदेश, आख्यान, प्रज्ञापन, प्रस्थापन, विवरण, विभाजन, स्पष्टीकरण (उत्तानीकर्म)। किन चार (आर्यसत्यों) का? दुःख आर्यसत्य का''' दुःखसमुदय आर्यसत्य का''' दुःखनिरोध आर्यसत्य का''' दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा आर्यसत्य का उपदेश, आख्यान, प्रज्ञापन, प्रस्थापन, विवरण, विभाजन, स्पष्टीकरण किया। तथागत ने

ब्राह्मणेन वा देवेन वा मारेन वा ब्रह्मना वा केनचि वा लोकस्मिं, यदिदं—इमेसं चतुन्नं अरियसच्चानं आचिक्खना देसना पञ्ञापना पट्ठपना विवरणा विभजना उत्तानीकम्मं।

"सेवेथ, भिक्खवे, सारिपुत्तमोग्गल्लाने; भजथ, भिक्खवे, सारिपुत्त-मोग्गल्लाने। पण्डिता भिक्खू अनुग्गाहका सब्रह्मचारीनं। सेय्यथापि, भिक्खवे, जनेता, एवं सारिपुत्तो; सेय्यथापि जातस्स आपादेता, एवं मोग्गल्लानो। सारिपुत्तो, भिक्खवे, सोतापत्तिफले विनेति, मोग्गल्लानो [N. 334] उत्तमत्थे। सारिपुत्तो, भिक्खवे, पहोति चत्तारि अरिय-सच्चानि वित्थारेन आचिक्खितुं देसेतुं पञ्ञापेतुं पट्ठपेतुं विवरितुं विभजितुं उत्तानीकातुं" ति। इदमवोच भगवा। इदं वत्वान सुगतो उट्ठायासना विहारं पाविसि।

२. आयस्मतो सारिपुत्तस्स देसना

[R. 249] २. तत्र खो आयस्मा सारिपुत्तो अचिरपक्कन्तस्स भगवतो भिक्खू आमन्तेसि—"आवुसो भिक्खवे" ति। "आवुसो" ति खो ते भिक्खू [B. 292] आयस्मतो सारिपुत्तस्स पच्चस्सोसुं। आयस्मा सारिपुत्तो एतदवोच—

भिक्षुओ! वाराणसी के ऋषिपतन मृगदाय में अद्वितीय एवं... धर्मचक्र का प्रवर्तन... स्पष्टीकरण किया था।

"भिक्षुओ! सारिपुत्र-मौद्गल्यायन की सेवा करो, उनका सङ्ग करो; क्योंकि, भिक्षुओ! वे दोनों ही अपने सब्रह्मचारियों का सर्वप्रकार से साथ देने वाले हैं। भिक्षुओ! सारिपुत्र पिता के तुल्य हैं और मौद्गल्यायन पैदा हुए का पालन-पोषण करने वाले की तरह। भिक्षुओ! जहाँ सारिपुत्र साधक भिक्षु को स्रोतआपत्ति फल में प्रतिष्ठित करने वाला है तो मौद्गल्यायन उत्तम अर्थ (निर्वाण) में। सारिपुत्र (मेरे द्वारा उपदिष्ट) चार आर्य सत्यों विस्तार से देशना, आख्यान... स्पष्टीकरण करने में समर्थ है।" भगवान् ने (भिक्षुओं से) यह कहा। यह कह कर भगवान् आसन से उठ कर साधनाकुटी (विहार) में चले गये।

२. आयुष्मान् सारिपुत्र की देशना

२. तभी आयुष्मान् सारिपुत्र ने, भगवान् के वहाँ से जाने के कुछ ही देर बाद "आयुष्मन् भिक्षुओ" कह कर भिक्षुओं को अपने पास बुलाया। "हाँ, आयुष्मन्" कह कर सभी भिक्षु आयुष्मान् सारिपुत्र के समीप आ गये। तब आयुष्मान् सारिपुत्र उनसे यों बोले—

"तथागतेन, आवुसो, अरहता सम्मासम्बुद्धेन बाराणसियं इसिपतने मिगदाये अनुत्तरं धम्मचक्कं पवत्तितं अप्पटिवत्तियं समणेन वा ब्राह्मणेन वा देवेन वा मारेन वा ब्रह्मुना वा केनचि वा लोकस्मि, यदिदं—चतुन्नं अरियसच्चानं आचिक्खना देसना पञ्ञापना पट्ठपना विवरणा विभजना उत्तानीकम्मं। कतमेसं चतुन्नं? दुक्खस्स अरियसच्चस्स आचिक्खना देसना पञ्ञापना पट्ठपना विवरणा विभजना उत्तानीकम्मं; दुक्खसमुदयस्स अरियसच्चस्स आचिक्खना देसना पञ्ञापना पट्ठपना विभजना उत्तानीकम्मं; दुक्खनिरोधस्स अरियसच्चस्स आचिक्खना देसना पञ्ञापना पट्ठपना विवरणा विभजना उत्तानीकम्मं; दुक्खनिरोधगामिनिया पटिपदाय अरियसच्चस्स आचिक्खना देसना पञ्ञापना पट्ठपना विवरणा विभजना उत्तानीकम्मं।

(१) दुक्खं अरियसच्चं

३. "कतमं चावुसो, दुक्खं अरियसच्चं? जाति पि दुक्खा, जरा पि दुक्खा, मरणं पि दुक्खं, सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा पि दुक्खा, यं पिच्छं न लभति तं पि दुक्खं; सङ्खित्तेन पञ्चुपादानाक्खन्धा दुक्खा।

"कतमा चावुसो, जाति? या तेसं तेसं सत्तानं तम्हि तम्हि सत्तनिकाये जाति सञ्जाति ओक्कन्ति अभिनिब्बत्ति खन्धानं पातुभावो [N. 335] आयतनानं पटिलाभो, अयं वुच्चतावुसो—'जाति'।

"आयुष्मानो! तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध ने वाराणसीस्थित ऋषिपतन मृगदाय अद्वितीय...पूर्ववत्...स्पष्टीकरण किया था।

(१) दुःख आर्यसत्य

३. "आयुष्मानो! यह 'दुःख आर्यसत्य' क्या है? (संसार में) पैदा होना दुःख है, बुढ़ापा भी दुःख है, मरण भी दुःख है, शोक, रोना, कलपना, दुःखी होना, चिन्तित व उदास होना भी दुःख है, अप्रिय विषयों से संयोग भी दुःख है, प्रिय विषयों से वियोग भी दुःख है, और जो चाहते हुए भी न मिले वह भी दुःख है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि ये पाँचों उपादानस्कन्ध ही दुःख हैं।

"और आयुष्मानो! 'जाति' (जन्म) किसे कहते हैं? यह जो उन-उन योनियों में जन्म लेना, पैदा होना, अवतरण होना, उत्पन्न होना है या स्कन्धों (भौतिक एवं अभौतिक) का प्रादुर्भाव है, और आयतनों (इन्द्रियभोगों) की उपलब्धि है—भिक्षुओ! यही 'जाति' कहलाती है।

"कतमा चावुसो, जरा ? या तेसं तेसं सत्तानं तम्हि तम्हि सत्तनिकाये जरा जीरणता खण्डिच्चं पालिच्चं वलित्तचता आयुनो संहानि इन्द्रियानं परिपाको, अयं वुच्चतावुसो-'जरा'।

"कतमं चावुसो, मरणं ? या तेस सत्तानं तम्हा तम्हा सत्तनिकाया चुति चवनता भेदो अन्तरधानं मच्चु मरणं कालङ्किरिया खन्धानं भेदो कळेवरस्स निक्खेपो जीवितिन्द्रियस्सुपच्छेदो, इदं वुच्चतावुसो-'मरणं'।

"कतमो चावुसो, सोको ? यो खो, आवुसो, अञ्ञतरञ्ञतरेन ब्यसनेन समन्नागतस्स अञ्ञतरञ्ञतरेन दुक्खधम्मेन फुट्ठस्स सोको सोचना सोचितत्तं अन्तोसोको अन्तोपरिसोको, अयं वुच्चतावुसो-'सोको'।

[B. 293] "कतमो चावुसो, परिदेवो ? यो खो, आवुसो, अञ्ञतरञ्ञतरेन ब्यसनेन समन्नागतस्स अञ्ञतरञ्ञतरेन दुक्खधम्मेन फुट्ठस्स [R. 250] आदेवो परिदेवो आदेवना परिदेवना आदेवितत्तं परिदेवितत्तं अय वुच्चतावुसो—'परिदेवो'।

"आयुष्मानो ! और 'जरा' किसे कहते हैं ? यह जो उन-उन प्राणियों का उन-उन योनियों में (जन्म लेकर) बुढ़ापे की ओर जाना, शरीर का बिखरने की ओर बढ़ना, दाँत आदि का टूटना, बालों का सफेद होना व झरने लगना, त्वचा में झुर्रियाँ पड़ना, आयु का घटते जाना—तथा इन्द्रियों का शिथिल होना है, आयुष्मानो ! यही 'जरा' कहलाती है।

"आयुष्मानो ! और 'मरण' क्या है ? यह जो उन-उन प्राणियों के उन-उन शरीरों का च्युत होना, पतन होना, अलग होना, अन्तर्हित होना, मृत्यु, मरण, कालक्रिया (मौत), स्कन्धों का बिखर जाना, देहपात और जीवन से विच्छेद है, आयुष्मानो ! यही 'मरण' कहलाता है।

"आयुष्मानो ! और 'शोक' किसे कहते हैं ? यह जो जिस किसी विपत्ति (व्यसन) से सम्पृक्त हुए प्राणी का या जिस किसी दुःख से दुःखी हुए प्राणी का सोचना है, चिन्तन है, शोक है, मानसिक कष्ट पाना है, आयुष्मानो ! यही 'शोक' कहलाता है।

"आयुष्मानो ! और 'परिदेव' (विलाप) किसे कहते हैं ? आयुष्मानो ! यह जो जिस किसी विपत्ति से ग्रस्त प्राणी का या जिस किसी दुःख से दुःखी प्राणी का रोना-कल्पना, छाती पीटना, सिर पीटना या चिल्लाना है, आयुष्मानो ! यही 'परिदेव' कहलाता है।

"आयुष्मानो ! और 'दुःख' किसे कहते हैं ? आयुष्मानो ! यह जो शारीरिक पीड़ा है, शरीरसम्बन्धी क्लेश है, प्रतिकूल शारीरिक अनुभूति है, आयुष्मानो ! यही 'दुःख' कहलाता है।

"कतमं चावुसो, दुक्खं ? यं खो, आवुसो, कायिकं दुक्खं कायिकं असातं कायसम्फस्सजं दुक्खं असातं वेदयितं, इदं वुच्चतावुसो---'दुक्खं'।

"कतमं चावुसो, दोमनस्सं ? यं खो, आवुसो, चेतसिकं दुक्खं चेतसिकं असातं मनोसम्फस्सजं दुक्खं असातं वेदयितं, इदं वुच्चतावुसो--'दोमनस्सं'।

"कतमो चावुसो, उपायासो ? यो खो, आवुसो, अञ्ञतरञ्ञतरेन ब्यसनेन समन्नागतस्स अञ्ञतरञ्ञतरेन दुक्खधम्मेन फुट्ठस्स आयासो उपायासो आयासितत्तं, अयं वुच्चतावुसो----'उपायासो'।

[N. 336] "कतमं चावुसो, यं पिच्छं न लभति तं पि दुक्खं ? जातिधम्मानं, आवुसो, सत्तानं एवं इच्छा उप्पज्जति----'अहो वत, मयं न जातिधम्मा अस्साम; न च, वत, नो जाति आगच्छेय्या' ति। न खो पनेतं इच्छाय पत्तब्ब। इद पि---'यं पिच्छं न लभति तं पि दुक्खं'। जराधम्मानं, आवुसो, सत्तानं···पे०···ब्याधिधम्मानं, आवुसो, सत्तानं···मरणधम्मानं, आवुसो, सत्तानं···सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासधम्मानं, आवुसो, सत्तानं एवं इच्छा उप्पज्जति—'अहो वत, मयं न सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासधम्मा अस्साम; न च, वत, नो सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सु-

---

"और आयुष्मानो ! 'दौर्मनस्य' किसे कहते हैं ? आयुष्मानो ! यह जो मानसिक दुःख, कष्ट, क्लेश या प्रतिकूल अनुभव (वेदना) है, आयुष्मानो ! यही 'दौर्मनस्य' कहलाता है।

"और आयुष्मानो ! 'उपायास' किसे कहते हैं ?

"आयुष्मानो ! यह जो किसी विपत्ति से सम्पृक्त हुए प्राणी का या किसी दुःख दुःखित प्राणी का हैरान-परेशान होना, थकना, थकावट मानना है, यही आयुष्मानो ! 'उपायास' कहलाता है।

"और, आयुष्मानो ! यह (पूर्वोक्त) 'चाहते हुए भी न मिलने का दुःख' क्या है ? आयुष्मानो! बार-बार जन्म लेने वाले इन प्राणियों की यह इच्छा होती है 'क्या ही अच्छा होता कि हम इस संसार में बार-बार जन्मते नहीं। अब आगे हमारा कोई जन्म न हो तो ठीक है।' परन्तु ऐसी बातें इच्छा करने मात्र से तो पूर्ण होती नहीं ! यही 'चाहते हुए भी न मिलने का दुःख' है। आयुष्मानो ! जन्म लेकर बुढ़ापे तक पहुँचने वाले प्राणियों की···बार-बार रोगग्रस्त होने वाले प्राणियों की···बार-बार मृत्यु को प्राप्त होने वाले प्राणियों की···शोक-परिदेव-दुःख-दौर्मनस्य-उपायास धर्मों से घिरे प्राणियों की यह इच्छा होती है—'क्या ही अच्छा होता कि हम इन शोक···उपायास धर्मों से न घिर पाते' ! परन्तु यह सब इच्छा

पायासा आगच्छेय्युं' ति। न खो पनेतं इच्छाय पत्तब्बं। इदं पि—'यं पिच्छं न लभति तं पि दुक्खं'।

"कतमे चावुसो, सङ्खित्तेन पञ्चुपादानक्खन्धा दुक्खा? सेय्यथीदं—रूपुपादानक्खन्धो, वेदनुपादानक्खन्धो, सञ्ञुपादानक्खन्धो, सङ्खारुपादानक्खन्धो, विञ्ञाणुपादानक्खन्धो। इमे वुच्चन्तावुसो—'सङ्खित्तेन पञ्चुपादानक्खन्धा दुक्खा'। इदं वुच्चतावुसो—'दुक्खं अरियसच्चं'।

(२) दुक्खसमुदयं अरियसच्चं

४. "कतमं चावुसो, दुक्खसमुदयं अरियसच्चं? यायं तण्हा पोनोब्भविका [B. 294] नन्दीरागसहगता तत्रतत्राभिनन्दिनी, सेय्यथीदं—कामतण्हा [R. 251] भवतण्हा विभवतण्हा, इदं वुच्चतावुसो—'दुक्खसमुदयं अरियसच्चं'।

(३) दुक्खनिरोधं अरियसच्चं

५. "कतमं चावुसो, दुक्खनिरोधं अरियसच्चं? यो तस्सायेव तण्हाय असेसविरागनिरोधो चागो पटिनिस्सग्गो मुत्ति अनालयो, इदं वुच्चतावुसो—'दुक्खनिरोधं अरियसच्चं'।

करने मात्र से पूर्ण नहीं हो जाता। यह भी 'चाहते हुए भी न मिलने का दुःख' है।

"और आयुष्मानो! 'संक्षेप से पाँच उपादानस्कन्ध दुःख है'—इसमें पाँच उपादानस्कन्ध क्या हैं? वे हैं, जैसे—१. रूपोपादानस्कन्ध, २. वेदनोपादानस्कन्ध, ३. संज्ञोपादानस्कन्ध, ४. संस्कारोपादानस्कन्ध एवं ५. विज्ञानोपादानस्कन्ध। आयुष्मानो! ये कहलाते हैं—संक्षेप से पाँच उपादानस्कन्ध। इसको कहते हैं—दुःख आर्यसत्य।

२. दुःखसमुदय आर्यसत्य

४. "आयुष्मानो! दुःखसमुदाय आर्यसत्य क्या है? यह जो संसार में बार-बार जन्म दिलाने वाली, उसमें आसक्ति या राग पैदा करने वाली तथा जहाँ-तहाँ आनन्द (रस) का अनुभव कराने वाली तृष्णा है, जैसे—१. कामभोगों की तृष्णा, २. भव (जन्म लेने) की तृष्णा, ३. विभव (नाश) की तृष्णा। यों, आयुष्मानो! यह तृष्णा ही 'दुःखसमुदय आर्यसत्य' है।

३. दुःखनिरोध आर्यसत्य

५. "आयुष्मानो! दुःखनिरोध आर्यसत्य क्या है? जो उस (उपर्युक्त त्रिविध) तृष्णा का निःशेषतः वैराग्य, निरोध, त्याग, परित्याग, मुक्ति एवं अनासक्ति है आयुष्मानो! उसी को 'दुःखनिरोध आर्यसत्य' कहते हैं।

(४) पटिपदा अरियसच्चं

६. "कतमं चावुसो, दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा अरियसच्चं ? अयमेव अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो, सेय्यथीदं—सम्मादिट्ठि, सम्मासङ्कप्पो, सम्मावाचा, सम्माकम्मन्तो, सम्माआजीवो, सम्मावायामो, सम्मासति, सम्मासमाधि।

"कतमा चावुसो, सम्मादिट्ठि ? यं खो, आवुसो, दुक्खे ञाणं [N. 337] दुक्खसमुदये ञाणं दुक्खनिरोधे ञाणं दुक्खनिरोधगामिनिया पटिपदाय ञाणं, अयं वुच्चतावुसो—'सम्मादिट्ठि'। (१)

"कतमो चावुसो, सम्मासङ्कप्पो ? नेक्खम्मसङ्कप्पो अब्यापादसङ्कप्पो अविहिंसासङ्कप्पो, अयं वुच्चतावुसो—'सम्मासङ्कप्पो'। (२)

"कतमा चावुसो, सम्मावाचा ? मुसावादा वेरमणी पिसुणाय वाचाय वेरमणी फरुसाय वाचाय वेरमणी सम्फप्पलापा वेरमणी, अयं वुच्चतावुसो—'सम्मावाचा'। (३)

"कतमो चावुसो, सम्माकम्मन्तो ? पाणातिपाता वेरमणी अदिन्नादाना वेरमणी कामेसुमिच्छाचारा वेरमणी, अयं वुच्चतावुसो—'सम्माकम्मन्तो'। (४)

---

४. दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा आर्यसत्य

"आयुष्मानो ! यह दुःखनिरोधगामी प्रतिपदा (मार्ग) आर्यसत्य क्या है ? यही दुःखनिरोध की ओर ले जाना वाला आठ अंगों वाला मार्ग आर्यसत्य है। जैसे—१. सम्यग्दृष्टि, २. सम्यक्सङ्कल्प, ३. सम्यग्वाक्, ४. सम्यक्कर्मान्त, ५. सम्यगाजीव, ६. सम्यग्व्यायाम, ७. सम्यक्स्मृति एवं ८. सम्यक्समाधि।

"आयुष्मानो ! यह 'सम्यग्दृष्टि' क्या है ? आयुष्मानो ! यह जो दुःखसम्बन्धी दुःखसमुदयसम्बन्धी दुःखनिरोधसम्बन्धी एवं दुःखनिरोधगामिमार्गसम्बन्धी ज्ञान है—इसे ही 'सम्यग्दृष्टि' कहते हैं। (१)

"आयुष्मानो ! यह सम्यक्सङ्कल्प क्या है ? यह जो नैष्कर्म्यसङ्कल्प, अव्यापादसङ्कल्प या अविहिंसासङ्कल्प है—यही, आयुष्मानो ! 'सम्यक्सङ्कल्प' है। (२)

"आयुष्मानो ! यह 'सम्यग्वाक्' क्या है ? यह जो मृषावाद से विराम (दूर होना), पिशुनवाक् (चुगलखोरी) से, कर्कश वाणी से, सम्प्रलाप से विराम है—यही, आयुष्मानो ! 'सम्यग्वाक्' कहलाती है। (३)

"आयुष्मानो ! यह सम्यक्कर्मान्त क्या है ? यह जो प्राणातिपात, अदत्तादान, या कामभोगों में मिथ्याचार है—यही 'सम्यक्कर्मान्त' कहलाता है। (४)

"कतमो चावुसो, सम्माआजीवो ? इधावुसो, अरियसावको मिच्छा-आजीवं पहाय सम्माआजीवेन जीविकं कप्पेति, अयं वुच्चतावुसो—सम्मा-आजीवो'। (५)

"कतमो चावुसो, सम्मावायामो ? इधावुसो, भिक्खु अनुप्पन्नानं पापकानं अकुसलानं धम्मानं अनुप्पादाय छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति चित्तं पग्गण्हाति पदहति, उप्पन्नानं पापकानं अकुसलानं धम्मानं पहानाय छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति चित्तं पग्गण्हाति पदहति, अनुप्पन्नानं [R. 252] कुसलानं धम्मानं उप्पादाय छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति चित्तं पग्गण्हाति पदहति, उप्पन्नानं कुसलानं धम्मानं ठितिया [B. 295] असम्मोसाय भिय्योभावाय वेपुल्लाय भावनाय पारिपूरिया छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति चित्तं पग्गण्हाति पदहति, अयं वुच्चतावुसो—'सम्मावायामो'। (६)

"कतमा चावुसो, सम्मासति ? इधावुसो, भिक्खु काये कायानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं, वेदनासु वेदनानुपस्सी विहरति…पे०…चित्ते चित्तानुपस्सी विहरति…धम्मेसु

"और आयुष्मानो ! यह 'सम्यगाजीव' (सजनानुमोदित आजीविका) क्या है ? आयुष्मानो ! यह जो (शस्त्र-व्यापार आदि पाँच प्रकार की) मिथ्या आजीविकाओं को छोड सम्यगाजीविका से जीवनयापन की कल्पना है—यही 'सम्यगाजीव' कहलाती है। (५)

"आयुष्मानो ! 'सम्यग्व्यायाम' क्या है ? आयुष्मानो ! यहाँ कोई साधक भिक्षु अनुत्पन्न पापमय अकुशल धर्मों के अनुत्पाद के लिये इच्छा करता है, उद्योग करता है, प्रयास करता है, चित्त को निगृहीत करता है, तदर्थ अभ्यास करता (दबाता) है; उत्पन्न पापमय अकुशल धर्मों के प्रहाण के लिये—प्रदहन करता (दबाता) है; अनुत्पन्न कुशल धर्मों के उत्पाद के लिये…उत्पन्न कुशल धर्मों की स्थिति, अनाश, पुनरुत्पाद, विपुलता, भावना एवं परिपूर्णता की इच्छा करता है, प्रयास करता है, उधर बढ़ता है, चित्त को वश में करता है, दबाता है। आयुष्मानो ! यह कहलाता है—'सम्यग्व्यायाम'। (६)

"और, आयुष्मानो ! यह 'सम्यक्स्मृति' कौन सी है ? आयुष्मानो ! १. यहाँ कोई साधक इस काया के अङ्गों को ही शरीर की वास्तविकता समझते हुए (काया में कायानुपश्यी), उद्योगशील, अनुभव एवं ज्ञान से युक्त, स्मृतिसम्पन्न, लोक, (शरीर) सम्बन्धी लोभ और दुःखदौर्मनस्य का संवरण कर अभ्यास करता है। २. वेदनाओं में वेदनानुपश्यी होकर…। ३. चित्त में चित्तानुपश्यी होकर…।

धम्मानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा विनेय्य लोके अभिज्झा-दोमनस्सं, अयं वुच्चतावुसो—'सम्मासति'। (७)

"कतमो चावुसो, सम्मासमाधि? इधावुसो, भिक्खु विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं [N. 338] पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति, वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं सम्पसादनं चेतसो एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं समाधिजं पीति-सुखं दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति, पीतिया च विरागा उपेक्खको च विहरति…पे०…ततियं झानं…पे०…चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति, अयं वुच्चतावुसो—'सम्मासमाधि'।

इदं वुच्चतावुसो—'दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा अरियसच्चं'।

७. "तथागतेनावुसो, अरहता सम्मासम्बुद्धेन बाराणसियं इसिपतने मिगदाये अनुत्तरं धम्मचक्कं पवत्तितं अप्पटिवत्तियं समणेन वा ब्राह्मणेन

---

४. धर्म में धर्मानुपश्यी होकर…अभ्यास करता है। आयुष्मानो! यह कहलाती है—'सम्यक्स्मृति'। (७)

"और आयुष्मानो! यह 'सम्यक्समाधि' क्या है? आयुष्मानो! यहाँ कोई साधक कामभोगों एवं अकुशल (पाप) धर्मों से दूर रहते हुए, वितर्कविचारसहित विवेकजन्य प्रीतिसुखमय प्रथम ध्यान को प्राप्त होकर साधना करता है; फिर वह साधक वितर्क विचारों के शान्त हो जाने पर आध्यात्मिक प्रसन्नता द्वारा चित्त की एकाग्रता के सहारे वितर्क-विचारसहित समाधि से उत्पन्न प्रीति-सुखमय द्वितीय ध्यान को प्राप्त होकर साधना करता है। फिर वह साधक प्रीति से भी वैराग्य होने के कारण उसके प्रति उपेक्षाभाव दिखाता हुआ, स्मृति एवं सम्प्रजन्य से युक्त होकर कायिक सुख का अनुभव करता है…ऐसे तृतीय ध्यान को प्राप्त कर साधना करता है…चतुर्थ ध्यान तक उपसम्पन्न कर साधना करता है। आयुष्मानो! यह कहलाती है—'सम्यक्समाधि'। (८)

"आयुष्मानो! यह आर्य अष्टाङ्गिकमार्ग 'दुःख-निरोधगामिनी प्रतिपदा' आर्यसत्य कहलाता है। (८)

७. "आयुष्मानो! अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध तथागत ने वाराणसी के ऋषिपतन मृगदाव में इसी अद्वितीय धर्मचक्र चतुरार्यसत्य एवं आर्यअष्टाङ्गिक मार्ग की प्रवर्तना की थी जो कि इस लोक में किसी अन्य श्रमण या ब्राह्मण देवता मार या ब्रह्मा द्वारा अप्रतिवर्त्त्य है। इन चार आर्यसत्यों का ऐसा उपदेश ऐसा आख्यान,

वा देवेन वा मारेन वा ब्रह्मना वा केनचि वा लोकस्मि, यदिदं—इमेसं चतुन्नं अरियसच्चानं आचिक्खना देसना पञ्ञापना पट्ठपना विवरणा विभजना उत्तानीकम्मं" ति।

८. इदमवोच आयस्मा सारिपुत्तो। अत्तमना ते भिक्खू आयस्मतो सारिपुत्तस्स भासितं अभिनन्दुं ति।

●

प्रज्ञापन, प्रस्थापन, विवरण, विभाजन एवं स्पष्टीकरण किसी अन्य द्वारा असम्भव है।"

८. आयुष्मान् सारिपुत्र ने यों इन चार आर्यसत्यों की देशना की। इससे आत्तमन हुए भिक्षुओं ने आयुष्मान् सारिपुत्र के भाषण का अभिनन्दन किया॥

सच्चविभङ्गसुत्त समाप्त॥

❀

४२. दक्खिणाविभंगसुत्तं

१. भगवन्तमुद्दिस्स कतं दुस्सयुगं

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सक्केसु [N. 339, R. 253] विहरति कपिलवत्थुस्मिं निग्रोधारामे। अथ खो महापजापति गोतमी नवं दुस्सयुगं आदाय येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भग- [B. 296] वन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्ना खो महापजापति गोतमी भगवन्तं एतदवोच—"इदं मे, भन्ते, नवं दुस्सयुगं भगवन्तं उद्दिस्स सामं कन्तं सामं वायितं। तं मे, भन्ते, भगवा पटिग्गण्हातु अनुकम्पं उपादाया" ति। एवं वुत्ते, भगवा महापजापतिं गोतमिं एतदवोच—"सङ्घे, गोतमि, देहि। सङ्घे ते दिन्ने अहं चेव पूजितो भविस्सामि सङ्घो चा" ति। दुतियं पि खो महापजापति गोतमी भगवन्तं एतदवोच—"इदं मे, भन्ते, नवं दुस्सयुगं भगवन्तं उद्दिस्स सामं कन्तं वायितं। तं मे, भन्ते, भगवा पटिग्गण्हातु अनुकम्पं उपादाया" ति। दुतियं पि खो भगवा महापजापतिं गोतमिं एतदवोच—"सङ्घे, गोतमि, देहि। सङ्घे ते दिन्ने अहं चेव पूजितो भविस्सामि सङ्घो चा" ति। ततियं पि खो महापजापति गोतमी भगवन्तं एतदवोच—"इदं मे, भन्ते, नवं दुस्सयुगं भगवन्तं उद्दिस्स सामं कन्तं सामं वायितं। तं मे, भन्ते, भगवा पटिग्गण्हातु अनुकम्पं उपादाया" ति। ततियं पि खो भगवा महापजापतिं गोतमिं एतदवोच—"सङ्घे, गोतमि, देहि। सङ्घे ते दिन्ने अहं चेव पूजितो भविस्सामि सङ्घो चा" ति।

२. एवं वुत्ते, आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—"पटिग्गण्हातु,

---

४२. दक्षिणाविभङ्गसूत्र

१. भगवान् के निमित्त बनाया गया दुशाला

१. ऐसा मैंने सुना है कि (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) शाक्य प्रदेश स्थित कपिलवस्तु नगरी के न्यग्रोधाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ किसी समय महाप्रजापति गौतमी एक नवनिर्मित दुशाला लेकर जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँच कर, भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गयी। एक ओर बैठी महाप्रजापति गौतमी ने भगवान् से यों निवेदन किया—"भन्ते! यह नया दुशाला आप के लिये मैंने स्वयं काता है, स्वयं बुना है। अतः इसे, मुझ पर कृपा करते हुए, स्वीकार करें।" ऐसा कहे जाने पर भगवान् ने महाप्रजापति गौतमी को यों उत्तर दिया--"गौतमी! इसे आप सङ्घ को ही दे दें। सङ्घ को दान करने से मेरा भी सम्मान हो जायगा, और सङ्घ का भी"। दूसरी बार भी...तीसरी बार भी महाप्रजापति गौतमी ने...मेरा भी सम्मान हो जायगा, और सङ्घ का भी।

२. ऐसा कहे जाने पर, आयष्मान् आनन्द ने भगवान् से यों निवेदन किया—

भन्ते, भगवा महापजापतिया गोतमिया नवं दुस्सयुगं। बहुपकारा, भन्ते, महापजापति गोतमी भगवतो मातुच्छा आपादिका पोसिका खीरस्स दायिका; भगवन्तं जनेत्तिया कालङ्कताय थञ्ञं पायेसि। भगवा पि, भन्ते, बहुपकारो महापजापतिया गोतमिया। भगवन्तं, भन्ते, आगम्म महापजा- [N. 340] पति गोतमी बुद्धं सरणं गता, धम्मं सरणं गता, सङ्घं सरणं गता। भगवन्तं, भन्ते, आगम्म महापजापति गोतमी पाणातिपाता पटिविरता अदिन्नादाना पटिविरता कामेसुमिच्छाचारा पटिविरता मुसावादा पटिविरता सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना पटिविरता। भगवन्तं, भन्ते, आगम्म महापजापति गोयमी बुद्धे अवेच्चप्पसादेन समन्नागता, धम्मे अवेच्चप्प- [R. 254] सादेन समन्नागता, सङ्घे अवेच्चप्पसादेन समन्नागता अरियकन्तेहि सीलेहि समन्नागता। भगवन्तं, भन्ते, आगम्म महापजापति गोतमी दुक्खे निक्कङ्खा, दुक्खसमुदये निक्कङ्खा, दुक्खनिरोधे निक्कङ्खा, दुक्खनिरोधगामिनिया पटिपदाय निक्कङ्खा। भगवा पि, भन्ते, बहुपकारो महापजापतिया गोतमिया" ति।

[B. 297] ३. "एवमेतं, आनन्द! यं, आनन्द, पुग्गलो पुग्गलं आगम्म बुद्धं सरणं गतो होति, धम्मं सरणं गतो होति, सङ्घं सरणं गतो

"भन्ते! आप कृपा करके महाप्रजापति गौतमी द्वारा भेंट किया गया यह दुशाला स्वीकार कर लें। भन्ते! यह महाप्रजापति गौतमी आपकी अभिभावक (=आपादिका) पालने-पोषने वाली, आपकी माँ के देहपात के बाद आपको दूध पिलाने वाली है। यह आपकी मौसी है, इसने आपके साथ बहुत उपकार किया है। आप ने भी, भन्ते, महाप्रजापति गौतमी का बहुत उपकार किया है; क्योंकि भन्ते! आपके ही कारण ये महाप्रजापति गौतमी बुद्ध की शरण में आयीं, धम्म की··· सङ्घ की शरण में आयीं। भगवान् (के उपदेश) के ही कारण महाप्रजापति गौतमी प्राणातिपात से, अदत्तादान से, कामभोगों के मिथ्याचार से, मृषावाद से, सुरा मैरेय मद्य आदि प्रमाद कराने वाले पदार्थों से विरत रहीं। भगवान् के ही कारण, भन्ते! ये महाप्रजापति गौतमी बुद्ध धर्म और सङ्घ के प्रति अत्यन्त श्रद्धा (=प्रसाद) युक्त हुईं। उत्तम, आर्यजनप्रिय शील धर्मों से समन्वित हुईं। और भन्ते! आप के ही कारण ये दुःख, दुःखसमुदय, दुःखनिरोध एवं दुःखनिरोधगामी मार्ग से निश्चिन्त (निक्कङ्ख) हुईं। यों, भगवान् ने भी इन महाप्रजापति गौतमी के साथ बहुत उपकार किये हैं।"

३. "बात यहाँ यह है आनन्द! कि कोई प्राणी किसी न किसी अन्य प्राणी के उपदेश के सहारे ही बुद्ध का, धर्म का, सङ्घ का शरणागत होता है; परन्तु, आनन्द!

होति, इमस्सानन्द, पुग्गलस्स इमिना पुग्गलेन न सुप्पतिकारं वदामि, यदिदं–अभिवादनपच्चुट्ठानअञ्जलिकम्मसामीचिकम्मचीवरपिण्डपातसेनासन - गिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारानुप्पदानेन।

"यं हानन्द, पुग्गलो पुग्गलं आगम्म पाणातिपाता पटिविरतो होति अदिन्नादाना पटिविरतो होति कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो होति मुसा-वादा पटिविरतो होति सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना पटिविरतो होति, इमस्सा-नन्द, पुग्गलस्स इमिना पुग्गलेन न सुप्पतिकारं वदामि, यदिदं—अभिवा-दनपच्चुट्ठानअञ्जलिकम्मसामीचिकम्मचीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चय-भेसज्जपरिक्खारानुप्पदानेन।

"यं हानन्द, पुग्गलो पुग्गलं आगम्म बुद्धे अवेच्चप्पसादेन समन्नागतो होति, धम्मे…सङ्घे…अरियकन्तेहि सीलेहि समन्नागतो होति, इमस्सानन्द, पुग्गलस्स इमिना पुग्गलेन न सुप्पतिकारं वदामि, यदिदं—अभिवादनपच्चु-ट्ठानअञ्जलिकम्मसामीचिकम्मचीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्ज-परिक्खारानुप्पदानेन।

"यं हानन्द, पुग्गलो पुग्गलं आगम्म दुक्खे निक्कङ्खो होति, दुक्खसमुदये निक्कङ्खो होति, दुक्खनिरोधे निक्कङ्खो होति, दुक्खनिरोधगामिनिया पटि-पदाय निक्कङ्खो होति, इमस्सानन्द, पुग्गलस्स इमिना पुग्गलेन [N. 341] न सुप्पतिकारं वदामि, यदिदं—अभिवादनपच्चुट्ठानअञ्जलिकम्मसामी-

---

उसके बदले यह जो (अपने से बड़ों के प्रति) अभिवादन, प्रत्युपस्थान (=सेवा, टहल), हाथ जोड़ना, समीचीकर्म, (मैत्रीपूर्ण आचरण), चीवर पिण्डपात शय-नासन भैषज्य-परिष्कार का देना है, उसे मैं इस प्राणी का उस प्राणी के प्रति किया गया प्रत्युपकार नहीं कहता।

"आनन्द ! कोई प्राणी किसी प्राणी के सदुपदेश के सहारे प्राणातिपात, अदत्तादान, कामभोगों में मिथ्याचार, मृषावाद, सुरा मैरेय मद्य आदि प्रमाद-कारणों से प्रतिविरत होता है, परन्तु उसके बदले में अभिवादन…भैषज्यपरिष्कार के देने से मैं प्रत्युपकार नहीं मानता।

"आनन्द ! कोई प्राणी किसी प्राणी के सत्परामर्श के सहारे बुद्ध धर्म एवं सङ्घ में…श्रद्धायुक्त होता है इसके बदले में इस प्राणी का उस प्राणी के लिये किये अभिवादन…भैषज्यपरिष्कार-दान को मैं प्रत्युपकार नहीं मानता।

"आनन्द ! कोई प्राणी किसी प्राणी के सत्परामर्श के सहारे दुःख, दुःख-समुदय, दुःखनिरोध, दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा के लिये निश्चिन्त होता है इस

चिकम्मचीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारानुप्पदानेन।

२. चुद्दस पाटिपुग्गलिका दक्खिणा

४. "चुद्दस खो पनिमानन्द, पाटिपुग्गलिका दक्खिणा। कतमा चुद्दस? तथागते अरहन्ते सम्मासम्बुद्धे दानं देति--अयं पठमा पाटिपुग्गलिका दक्खिणा। पच्चेकसम्बुद्धे दानं देति—अयं दुतिया पाटिपुग्गलिका दक्खिणा। तथागतसावके अरहन्ते दानं देति—अयं ततिया पाटिपुग्गलिका दक्खिणा। अरहत्तफलसच्छिकिरियाय पटिपन्ने दानं देति—अयं चतुत्थी पटिपुग्गलिका दक्खिणा। अनागामिस्स दानं देति--अयं पञ्चमी पाटिपुग्गलिका दक्खिणा। [R. 255] अनागामिफलसच्छिकिरियाय पटिपन्ने दानं देति--अयं छट्ठी पाटिपुग्गलिका दक्खिणा। सकदागामिस्स दानं देति--अयं सत्तमी पाटि-[B. 298] पुग्गलिका दक्खिणा। सकदागामिफलसच्छिकिरियाय पटिपन्ने दानं देति--अयं अट्ठमी पाटिपुग्गलिका दक्खिणा। सोतापन्ने दानं देति–अयं नवमी पाटिपुग्गलिका दक्खिणा। सोतापत्तिफलसच्छिकिरियाय पटिपन्ने दानं देति—अयं दसमी पाटिपुग्गलिका दक्खिणा। बाहिरके कामेसु वीतरागे दानं देति—अयं एकादसमी पाटिपुग्गलिका दक्खिणा। पुथुज्जनसीलवन्ते दानं

प्राणी का उस प्राणी के प्रति किये गये अभिवादन...भैषज्यपरिष्कार के दानमात्र से प्रत्युपकार नहीं मानता।

२. चौदह प्रातिपुद्गलिक दक्षिणायें

४. "परन्तु, आनन्द! ये चौदह प्रातिपुद्गलिक (व्यक्तिगत) दक्षिणायें (दान) हैं। कौन सी चौदह?

"तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध के निमित्त कोई दान देता है—यह पहली वैयक्तिक दक्षिणा हुई।

"प्रत्येकसम्बुद्ध के निमित्त दान देता है—यह दूसरी...।

"तथागत के ज्ञानी (अर्हत्) शिष्य के निमित्त...यह तीसरी...।

"अर्हत्त्वफल के साक्षात्कार में लगे भिक्षु के निमित्त...यह चौथी...।

"अनागामी के निमित्त...यह पाँचवीं...।

"अनागामी फल के साक्षात्कार में लगे भिक्षु के निमित्त...यह छठीं...।

"सकृदागामी के निमित्त...यह सातवीं...।

"सकृदागामी फल के साक्षात्कार में लगे...यह आठवीं...।

"स्रोतआपन्न के निमित्त...यह नवीं...।

"स्रोतआपत्ति फल के साक्षात्कार में लगे...यह दसवीं...।

देति—अयं द्वादसमी पाटिपुग्गलिका दक्खिणा। पुथुज्जनदुस्सीले दानं देति—अयं तेरसमी पाटिपुग्गलिका दक्खिणा। तिरच्छानगते दानं देति—अयं चुद्दसमी पाटिपुग्गलिका दक्खिणा ति।

"तत्रानन्द, तिरच्छानगते दानं दत्वा सतगुणा दक्खिणा पाटिकङ्खितब्बा, पुथुज्जनदुस्सीले दानं दत्वा सहस्सगुणा दक्खिणा पाटिकङ्खितब्बा, पुथुज्जन-सीलवन्ते दानं दत्वा सतसहस्सगुणा दक्खिणा पटिकङ्खितब्बा, बाहिरके कामेसु वीतरागे दानं दत्वा कोटिसहस्सगुणा दक्खिणा पाटिकङ्खितब्बा, सोतापत्तिफलसच्छिकिरियाय पटिपन्ने दानं दत्वा असङ्ख्येय्या अप्पमेय्या दक्खिणा पाटिकङ्खितब्बा, को पन वादो सोतापन्ने, को पन [N. 342] वादो सकदागामिफलसच्छिकिरियाय पटिपन्ने, को पन वादो सकदागामिस्स, को पन वादो अनागामिफलसच्छिकिरियाय पटिपन्ने, को पन वादो अनागामिस्स, को पन वादो अरहत्तफलसच्छिकिरियाय पटिपन्ने, को पन वादो अरहन्ते, को पन वादो पच्चेकसम्बुद्धे, को पन वादो तथागते अरहन्ते सम्मासम्बुद्धे !

३. सत्त सङ्घगता दक्खिणा

५. "सत्त खो पनिमानन्द, सङ्घगता दक्खिणा। कतमा सत्त? बुद्धप्पमुखे

"ग्राम (या सङ्घ) के बाहर रहने वाले वीतराग के…यह ग्यारहवीं…।

"शीलवान् पृथग्जन के निमित्त…यह बारहवीं…।

"दुःशील पृथग्जन के निमित्त…यह तेरहवीं…।

"पशु-पक्षियों के निमित्त दान दिया जाता है—यह चौदहवीं वैयक्तिक दक्षिणा हुई।

"वहाँ, आनन्द ! पशु-पक्षियों के निमित्त किये गये दान की सौगुना दक्षिणा की आशा रखनी चाहिये। दुःशील पृथग्जन के निमित्त…हजार गुना…। शीलवान् पृथग्जन के निमित्त…एकलाख गुना…। ग्राम (या सङ्घ) के बाहर के वीतराग के निमित्त…एक करोड़गुना…। स्रोतआपत्तिफल के साक्षात्कार में लगे भिक्षु के निमित्त…असङ्ख्य अप्रमेय दक्षिणा की आशा रखनी चाहिये। फिर स्रोतआपन्न… सकृदागामीफल के साक्षात्कार में लगे…सकृदागामी, अनागामिफल के साक्षात्कार में लगे अनागामी,…अर्हत्त्वफल के साक्षात्कार में लगे, अर्हत्…प्रत्येकसम्बुद्ध, तथागत सम्यक्सम्बुद्ध के निमित्त किये गये दान की तो बात ही क्या है !

३. सात सङ्घगत दक्षिणायें

५. "आनन्द ! सङ्घ के लिये की गयी ये सात दक्षिणायें हैं। कौन सी सात ?

उभतोसङ्घे दानं देति—अयं पठमा सङ्घगता दक्खिणा। तथागते परिनिब्बुते उभतोसङ्घे दानं देति—अयं दुतिया सङ्घगता दक्खिणा। भिक्खुसङ्घे दानं देति—अयं ततिया सङ्घगता दक्खिणा। भिक्खुनीसङ्घे दानं देति—अयं [R. 256] चतुत्थी सङ्घगता दक्खिणा। 'एत्तका मे भिक्खू च भिक्खुनियो च सङ्घतो उद्दिस्सथा' ति दानं देति—अयं पञ्चमी सङ्घगता दक्खिणा। 'एत्तका मे भिक्खू सङ्घतो उद्दिस्सथा' ति दानं देति—अयं छट्ठी सङ्घगता दक्खिणा। 'एत्तका मे भिक्खुनियो सङ्घतो उद्दिस्सथा' ति दानं देति—अयं सत्तमी सङ्घगता दक्खिणा।

[B. 299] "भविस्सन्ति खो पनानन्द, अनागतमद्धानं गोत्रभुनो कासावकण्ठा दुस्सीला पापधम्मा। तेसु दुस्सीलेसु सङ्घं उद्दिस्स दानं दस्सन्ति। तदापाहं, आनन्द, सङ्घगतं दक्खिणं असङ्खेय्यं अप्पमेय्यं वदामि। न त्वेवाहं, आनन्द, केनचि परियायेन सङ्घगताय दक्खिणाय पाटिपुग्गलिकं दानं महप्फलतरं वदामि।

४. चतस्सो दक्खिणाविसुद्धियो

६. "चतस्सो खो इमा, आनन्द, दक्खिणाविसुद्धियो। कतमा चतस्सो? अत्थानन्द, दक्खिणा दायकतो विसुज्झति नो पटिग्गाहकतो। अत्थानन्द,

---

बुद्धप्रमुख दोनों (भिक्षुसङ्घ एवं भिक्षुणीसङ्घ) सङ्घों के लिये दान करना—यह पहली सङ्घगत दक्षिणा हुई। बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद दोनों सङ्घों को दान देना—यह दूसरी…। केवल भिक्षुसङ्घ को ही दान देना—यह तीसरी दक्षिणा…। केवल भिक्षुणीसङ्घ को दान करना—यह चौथी…। इतने भिक्षु तथा इतनी भिक्षुणियों को दान देना—यह पाँचवीं…। इतने भिक्षुओं को ही दान देना—यह छठी…। इतनी भिक्षुणियों को ही दान देना—यह सातवीं सङ्घ के उद्देश्य से की गयी दक्षिणा हुई।

"आनन्द! आगामी (भविष्यत्) काल में ऐसे भी भिक्षु होंगे जो नाममात्र के एवं केवल काषायवस्त्रधारी होंगे, परन्तु उनका चरित्र दूषित होगा, पापमय आचरण होगा। उन दुःशील भिक्षुओं के सङ्घ को जो दान मिलेगा आनन्द! उस दान को भी मैं असङ्खेय, अप्रमेय दक्षिणा वाला कहता हूँ। आनन्द! मैं किसी भी तरह से सङ्घ के लिये किये गये दान का महत्त्व व्यक्तिगत दक्षिणा से कम नहीं आँकता। अपितु सङ्घ के लिये किया गया दान ही अधिक महत्त्वशाली होता है!

४. चार दक्षिणाविशुद्धियाँ

६. "आनन्द! ये चार दान (दक्षिणा) की विशुद्धियाँ हैं। कौन सी चार? (१) आनन्द! एक ऐसा दान होता है जो दायक (दाता) की ओर से तो शुद्ध

दक्खिणा पटिग्गाहकतो विसुज्झति नो दायकतो। अत्थानन्द, दक्खिणा नेव दायकतो विसुज्झति नो पटिग्गाहकतो। अत्थानन्द, दक्खिणा दायकतो चेव विसुज्झति पटिग्गाहकतो च।

"कथञ्चानन्द, दक्खिणा दायकतो विसुज्झति नो पटिग्गा- [N. 343] हकतो? इधानन्द, दायको होति सीलवा कल्याणधम्मो, पटिग्गाहका होन्ति दुस्सीला पापधम्मा—एवं खो, आनन्द, दक्खिणा दायकतो विसुज्झति नो पटिग्गाहकतो। (१)

"कथञ्चानन्द, दक्खिणा पटिग्गाहकतो विसुज्झति नो दायकतो? इधानन्द, दायको होति दुस्सीलो पापधम्मो, पटिग्गाहका होन्ति सीलवन्तो कल्याणधम्मा—एवं खो, आनन्द, दक्खिणा पटिग्गाहकतो विसुज्झति नो दायकतो। (२)

"कथञ्चानन्द, दक्खिणा नेव दायकतो विसुज्झति नो पटिग्गाहकतो? इधानन्द, दायको च होति दुस्सीलो पापधम्मो, पटिग्गाहका च होन्ति दुस्सीला पापधम्मा—एवं खो, आनन्द, दक्खिणा नेव दायकतो विसुज्झति नो पटिग्गाहकतो। (३)

होता है परन्तु प्रतिग्राहक की ओर से अशुद्ध। (अर्थात् उसका दाता तो सदाचारमय होता है परन्तु उसे लेने वाला कुपात्र)। (२) और आनन्द! दूसरा दान वह होता है जिसका देने वाला सुपात्र हो परन्तु लेने वाला कदाचारी हो। (३) और आनन्द! तीसरा दान वह होता है जिसके दाता-आदाता—दोनों ही दुराचारसम्पन्न हों। (४) और चौथा दान वह होता है जिसके दात-आदाता—दोनों ही सत्पात्र (शीलवान्) हों।

१. "कैसे, आनन्द! कोई दान दाता की ओर से शुद्ध होता है और प्रतिग्राहक (लेने वाले) की तरफ से अशुद्ध होता है? यहाँ, आनन्द! यदि दाता शीलवान् हो, कल्याणधर्मा हो परन्तु उस दान को लेनेवाले दुःशील हों, पापधर्मा हों तो, आनन्द! ऐसा दान दाता की ओर से ही शुद्ध कहलाता है, लेनेवाले की ओर से नहीं।

२. "और कैसे, आनन्द! कोई दान लेने वाले की ओर से तो शुद्ध कहलाता है परन्तु देने वाले की ओर से नहीं! यदि, आनन्द! दाता दुःशील एवं पापी हो और लेने वाला सुशील एवं कल्याणधर्मा हो तो ऐसा दान लेने वाले की ओर से…।

३. "और, आनन्द! कौन दान न लेने वाले न देने वाले—दोनों ही तरफ से शुद्ध नहीं होता? यहाँ, आनन्द! दाता भी यदि दुःशील एवं पापी हों, और लेने वाले भी दुःशील एवं पापी हों तो ऐसा दान उभयपक्ष (दोनों ओर) से अशुद्ध कहलाता है।

"कथञ्चानन्द, दक्खिणा दायकतो चेव विसुज्झति पटिग्गाहकतो च? इधानन्द, दायको च होति सीलवा कल्याणधम्मो, पटिग्गाहका च होन्ति [R. 257] सीलवन्तो कल्याणधम्मा--एवं खो, आनन्द, दक्खिणा दायकतो चेव विसुज्झति पटिग्गाहकतो च। इमा खो, आनन्द, चतस्सो दक्खिणा-विसुद्धियो"। (४)

७. इदमवोच भगवा। इदं वत्वान सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

[B. 300] "यो सीलवा दुस्सीलेसु ददाति दानं,
धम्मेन लद्धं सुपसन्नचित्तो।
अभिसद्दहं कम्मफलं उळारं,
सा दक्खिणा दायकतो विसुज्झति॥ १॥

"यो दुस्सीलो सीलवन्तेसु ददाति दानं,
अधम्मेन लद्धं अप्पसन्नचित्तो।
अनभिसद्दहं कम्मफलं उळारं,
सा दक्खिणा पटिग्गाहकतो विसुज्झति॥ २॥

[N. 344] "यो दुस्सीलो दुस्सीलेसु ददाति दानं,
अधम्मेन लद्धं अप्पसन्नचित्तो।

---

४. "और, आनन्द! कौन दान देने वाले और लेने वाले दोनों ही तरफ से शुद्ध होता है? यहाँ, आनन्द! यदि दाता और आदाता (प्रतिग्राहक)—दोनों ही शीलवान्, एवं कल्याणधर्मा हो तो, आनन्द! ऐसा दान उभयथा शुद्ध हुआ।

"आनन्द! इस तरह ये चार दान-शुद्धियाँ कहलाती हैं।"

७. भगवान् यों बोले। यह कह कर भगवान् ने इसी बात का गाथाओं के माध्यम से यों स्पष्टीकरण किया—

"जो दाता स्वयं शीलवान् है, जिसने देय धन धर्मपूर्वक अर्जित किया है, दान-विधि भी प्रसन्न मन से करता है, और वह उस दान के प्रति आगामिकाल में सत्फल की आशा रखता हुआ श्रद्धा रखता है, ऐसा दान दाता की ओर से शुद्ध कहलाता है॥ १॥

"परन्तु जो दाता स्वयं दुःशील हो, उसका देय धन भी धर्मोपार्जित न हो और वह उस दान के प्रति आगामिकाल में सत्फल की आशा न रखता हुआ अश्रद्धा-पूर्वक किसी सुशील को दान करता है। ऐसा दान लेने वाले (प्रतिग्राहक) की तरफ से शुद्ध कहलाता है॥ २॥

अनभिसद्दहं कम्मफलं उळारं,
न तं दानं विपुलप्फलं ति ब्रूमि ॥ ३ ॥
"यो सीलवा सीलवन्तेसु ददाति दानं,
धम्मेन लद्धं सुपसन्नचित्तो ।
अभिसद्दहं कम्मफलं उळारं,
तं वे दानं विपुलप्फलं ति ब्रूमि ॥ ४ ॥
"यो वीतरागो वीतरागेसु ददाति दानं,
धम्मेन लद्धं सुपसन्नचित्तो ।
अभिसद्दहं कम्मफलं उळारं,
तं वे दानं आमिसदानानमग्गं" ति ॥ ५ ॥

चतुत्थो विभङ्गवग्गो निट्ठितो ॥

तस्सुद्दानं

भद्देकानन्दकच्चान, लोमसकङ्गियासुभो ।
महाकम्मसळायतनविभङ्गा, उद्देसअरणा धातुसच्चं
दक्खिणाविभङ्गसुत्तं ति ॥

⊙

"जो स्वयं दुःशील, पापी हो और वैसों को अधर्मोपलब्ध धन अश्रद्धापूर्वक दान किया हो, और न उसे उस दान के प्रति आगामि काल में सत्फल की आशा या श्रद्धा है । ऐसा दान कोई विशेष फल नहीं देता—ऐसा मैं कहता हूँ ॥ ३ ॥

"और जो दाता स्वयं शीलवान् एवं कल्याणधर्मा होते हुए ऐसों को ही धर्मोपार्जित धन प्रसन्नतापूर्वक, आगामि काल में सत्फल की आशा में श्रद्धा रखता हुआ दान करता है, ऐसा दान अत्यधिक सुफल देने वाला होता है—ऐसा मेरा कहना है ॥ ४ ॥

"जो स्वयं वीतराग है तथा ऐसों को ही धर्मोपार्जित धन प्रसन्नतापूर्वक भविष्य में उसके फल में श्रद्धा रखता हुआ दान करता है वह दान सब दानों में श्रेष्ठ है ॥ ५ ॥

दक्षिणाविभङ्गसुत्त समाप्त ॥ चतुर्थ विभङ्गवर्ग समाप्त ॥

उसका उदान

इस चौथे विभङ्गवर्ग में इन दश सूत्रों का व्याख्यान है—१. भद्रैकरक्त, २. आनन्दभद्रैकरक्त, ३. महाकात्यायन भद्रैकरक्त, ४. लोमशकाङ्गीय ५. क्षुद्रकर्मविभङ्ग, ६. महाकर्मविभङ्ग, ७. षडायतनविभङ्ग, ८. उद्देशविभङ्ग, ९. अरणविभङ्ग, १०. धातुविभङ्ग, ११. सत्यविभङ्ग एवं १२. दक्षिणाविभङ्ग सुत्त ।

●

४३. अनाथपिण्डिकोवादसुत्तं

१. बाळ्हगिलानो अनाथपिण्डिको

[N. 345, B. 301, R. 258] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तेन खो पन समयेन अनाथपिण्डिको गहपति आबाधिको होति दुक्खितो बाळ्हगिलानो। अथ खो अनाथपिण्डिको गहपति अञ्ञतरं पुरिसं आमन्तेसि—"एहि त्वं, अम्भो पुरिस, येन भगवा तेनुपसङ्कम; उपसङ्कमित्वा मम वचनेन भगवतो पादे सिरसा वन्दाहि; एवं च वदेहि—'अनाथपिण्डिको, भन्ते, गहपति आबाधिको दुक्खितो बाळ्हगिलानो। सो भगवतो पादे सिरसा वन्दती' ति। येन चायस्मा सारिपुत्तो तेनुपसङ्कम; उपसङ्कमित्वा मम वचनेन आयस्मतो सारिपुत्तस्स पादे सिरसा वन्दाहि—'अनाथपिण्डिको, भन्ते, गहपति आबाधिको दुक्खितो बाळ्हगिलानो। सो आयस्मतो सारिपुत्तस्स पादे सिरसा वन्दती' ति। एवं च वदेहि—'साधु किर, भन्ते, आयस्मा सारिपुत्तो येन अनाथपिण्डिकस्स गहपतिस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमतु अनुकम्पं उपादाया'" ति।

"एवं, भन्ते" ति खो सो पुरिसो अनाथपिण्डिकस्स गहपतिस्स पटिस्सुत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं

---

४३. अनाथपिण्डिकाववादसूत्र

१. अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी गम्भीरतया रुग्ण

१. ऐसा मैने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती के जेतवनाराम में, जो कि अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी ने बनवाया था, साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय अनाथपिण्डिक गृहपति बहुत अधिक रुग्ण हो गया, अतः वह कष्टकर वेदना का अनुभव कर रहा था। तब अनाथपिण्डिक गृहपति ने एक आदमी से कहा—"हे पुरुष ! जहाँ भगवान् विराजमान है वहाँ जाओ। और जाकर मेरे कहने से उन्हें प्रणाम करना, और उनसे निवेदन करना—'भन्ते ! अनाथपिण्डिक गृहपति रोगग्रस्त अतएव बहुत अधिक दुःखी है, वह आपके श्रीचरणों में प्रणाम करता है'। फिर जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र हों वहाँ जाना, जाकर मेरी ओर से उनके भी श्रीचरणों में प्रणाम करना और कहना—'भन्ते ! अनाथपिण्डिक गृहपति बहुत अधिक रोगी अतएव दुःखी है, वह आप सारिपुत्र के चरणों में प्रणाम करता है।' और यह भी कहना—'भन्ते ! क्या ही अच्छा हो यदि आप कृपा कर अनाथपिण्डिक गृहपति के घर पर पधारें'।"

"अच्छा, श्रीमन्" कह कर वह पुरुष अनाथपिण्डिक गृहपति के घर से जहाँ भगवान् विराजमान थे, वहाँ पहुँचकर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ

निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सो पुरिसो भगवन्तं एतदवोच—"अनाथ-पिण्डिको, भन्ते, गहपति आबाधिको दुक्खितो बाळ्हगिलानो। सो भगवतो पादे सिरसा वन्दती" ति। येन चायस्मा सारिपुत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं सारिपुत्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सो पुरिसो आयस्मन्तं सारिपुत्तं एतदवोच—"अनाथपिण्डिको, भन्ते, गहपति आबाधिको दुक्खितो बाळ्हगिलानो। सो आयस्मतो सारिपुत्तस्स पादे सिरसा वन्दति; एवं च वदेति—'साधु किर, भन्ते, आयस्मा सारिपुत्तो येन अनाथपिण्डिकस्स गहपतिस्स [N. 346, B. 302] निवेसनं तेनुपसङ्कमतु अनुकम्पं उपादाया' " ति। अधिवासेसि खो आयस्मा सारिपुत्तो तुण्हीभावेन।

२. अथ खो आयस्मा सारिपुत्तो निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय आयस्मता आनन्देन पच्छासमणेन येन अनाथपिण्डिकस्स गहपतिस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। निसज्ज खो [R. 259] आयस्मा सारिपुत्तो अनाथपिण्डिकं गहपतिं एतदवोच—"कच्चि ते, गहपति, खमनीयं, कच्चि यापनीयं? कच्चि ते दुक्खा वेदना पटिक्कमन्ति, नो अभिक्कमन्ति; पटिक्कमोसानं पञ्ञायति, नो अभिक्कमो" ति?

"न मे, भन्ते सारिपुत्त, खमनीयं न यापनीयं। बाळ्हा मे दुक्खा वेदना अभिक्कमन्ति, नो पटिक्कमन्ति; अभिक्कमोसानं पञ्ञायति, नो पटिक्कमो। सेय्यथापि, भन्ते सारिपुत्त, बलवा पुरिसो तिण्हेन सिखरेन मुद्धनि अभिमत्थेय्य; एवमेव खो मे, भन्ते सारिपुत्त, अधिमत्ता वाता मुद्धनि ऊहनन्ति। न मे, भन्ते सारिपुत्त, खमनीयं न यापनीयं। बाळ्हा मे दुक्खा वेदना अभिक्कमन्ति, नो पटिक्कमन्ति; अभिक्कमोसानं पञ्ञायति, नो

गया।...पूर्ववत्...भन्ते सारिपुत्र...अनाथपिण्डिक गृहपति के घर पर कृपा कर पधारें।" आयुष्मान् सारिपुत्र ने मौन रह कर उसकी बात को स्वीकार कर लिया।

२. तब आयुष्मान् सारिपुत्र, वस्त्रों को सुव्यवस्थित पहन कर, पात्र-चीवर ले, एक भिक्षु के साथ अनाथपिण्डिक गृहपति के घर पहुँचे और बिछे आसन पर विराजे। और गृहपति से पूछा—"गृहपति! तुम ठीक तो हो। तुम्हारा कालयापन तो सुख-पूर्वक हो रहा है। क्या तुम्हारी दुःखा वेदना घट रही हैं? अधिक तो नहीं हो रहीं? क्या व्याधि का कम होना तुम्हें अनुभव हो रहा है या बढना?"

"नहीं, भन्ते सारिपुत्र! मुझे कुछ भी ठीक नहीं लग रहा है, समय भी, रोग के कारण, सुखमय नहीं बीत रहा। "मुझे व्याधि बढ़ती ही दिखायी दे रही है उसमें घटना कहीं से भी नहीं अनुभव होता। भन्ते सारिपुत्र! जैसे कोई बलवान्

पटिक्कमो। सेय्यथापि, भन्ते सारिपुत्त, बलवा पुरिसो दळ्हेन वरत्तखण्डेन सीसे सीसवेठं ददेय्य; एवमेव खो मे, भन्ते सारिपुत्त, अधिमत्ता सीसे सीस-वेदना। न मे, भन्ते सारिपुत्त, खमनीयं न यापनीयं। बाळ्हा मे दुक्खा वेदना अभिक्कमन्ति, नो पटिक्कमन्ति; अभिक्कमोसानं पञ्ञायति, नो पटिक्कमो। सेय्यथापि, भन्ते सारिपुत्त, दक्खो गोघातको वा गोघातकन्तेवासी वा तिण्हेन गोविकन्तनेन कुच्छिं परिकन्तेय्य; एवमेव खो मे, भन्ते सारिपुत्त, अधिमत्ता वाता कुच्छि परिकन्तन्ति। न मे, भन्ते सारिपुत्त, खमनीयं न यापनीयं। बाळ्हा मे दुक्खा वेदना अभिक्कमन्ति, नो पटिक्कमन्ति; अभि-क्कमोसानं पञ्ञायति, नो पटिक्कमो। सेय्यथापि, भन्ते सारिपुत्त, द्वे बलवन्तो पुरिसा दुब्बलतरं पुरिसं नानाबाहासु गहेत्वा अङ्गारकासुया सन्तापेय्युं, सम्परितापेय्युं; एवमेव खो, भन्ते सारिपुत्त, अधिमत्तो कायस्मिं डाहो। न मे, [N. 347, B. 303] भन्ते सारिपुत्त, खमनीयं न यापनीयं। बाळ्हा मे दुक्खा वेदना अभिक्कमन्ति, नो पटिक्कमन्ति; अभिक्कमोसानं पञ्ञायति, नो पटिक्कमो" ति।

२. आयस्मतो सारिपुत्तस्स धम्मदेसना

३. "तस्मातिह ते, गहपति, एवं सिक्खितब्बं—'न चक्खुं उपादियिस्सामि, न च मे चक्खुनिस्सितं विञ्ञाणं भविस्सती' ति। एवं हि ते, गहपति, सिक्खितब्बं।

पुरुष शिर पर मुद्गर का तीक्ष्ण प्रहार करे, उसी तरह तीक्ष्ण वायु मेरे शिर में कष्ट दे रही है। यों मुझे अपनी कष्टकर व्याधि बढ़ती ही दिखायी देती है, घटती हुई नहीं। जैसे, भन्ते सारिपुत्र! कोई बलवान् पुरुष मजबूत रस्सी से अपने सिर को बाँध दे···पूर्ववत्[1]···। जैसे, भन्ते सारिपुत्र! कोई चतुर पशुघातक (कसाई) या उसका कोई सहयोगी तीखा छुरा ले कर किसी पशु का पेट···पूर्ववत्···। जैसे भन्ते सारिपुत्र! दो बलवान् पुरुष किसी दुर्बल पुरुष की दोनों भुजाएँ···पूर्ववत्[2]··· उसका घटना कहीं से समझ में नहीं आता।"

२. आयुष्मान् सारिपुत्र की गृहपति को धर्मदेशना

३. "तो, गृहपति! तुम ऐसा अभ्यास करो—'चक्षु का उपादान नहीं करूँगा, और न मेरा चक्षुर्विज्ञान चक्षुविषय में आसक्त होगा।' गृहपति, तुम्हें यह अभ्यास करना चाहिये।

---

१. द्र० पृ० ३१३ (धनञ्जानि सुत्त)।

२. द्र०—पृष्ठ ३१३-१४ („ „)।

"तस्मातिह ते, गहपति, एवं सिक्खितब्बं—'न सोतं उपादियिस्सामि, न च मे सोतनिस्सितं विञ्ञाणं भविस्सती' ति। एवं हि ते, गहपति, सिक्खितब्बं। तस्मातिह ते, गहपति, एव सिक्खितब्बं—'न धानं उपादियिस्सामि, न च मे घाननिस्सितं विञ्ञाणं भविस्सती' ति। एवं हि ते, गहपति, सिक्खितब्बं। तस्मातिह ते, गहपति, एवं सिक्खितब्बं—'न जिव्हं…न कायं उपादियिस्सामि, न च मे कायनिस्सितं विञ्ञाणं भविस्सती' ति एवं हि ते, गहपति, सिक्खितब्बं। तस्मातिह ते, गहपति, एवं सिक्खितब्बं—'न मनं उपादियिस्सामि, न च मे मनोनिस्सितं विञ्ञाणं भविस्सती' ति। एवं हि ते, गहपति, सिक्खितब्बं।

"तस्मातिह ते, गहपति, एवं सिक्खितब्बं—'न रूपं उपादियिस्सामि, न च मे रूपनिस्सितं विञ्ञाणं भविस्सती' ति। एवं हि ते, गहपति, सिक्खितब्बं। तस्मातिह ते, गहपति, एवं सिक्खितब्बं—'न सद्दं उपादियिस्सामि…पे०…न गन्धं उपादियिस्सामि…न रसं उपादियिस्सामि…न फोट्ठब्बं उपादियिस्सामि…न धम्म उपादियिस्सामि न च मे धम्मनिस्सितं विञ्ञाणं भविस्सती' ति। एवं हि ते, गहपति, सिक्खितब्बं।

"तस्मातिह ते, गहपति, एवं सिक्खितब्बं—'न चक्खुविञ्ञाणं उपादियिस्सामि, न च मे चक्खुविञ्ञाणनिस्सितं विञ्ञाणं भविस्सती' ति। एवं हि ते, गहपति, सिक्खितब्बं। तस्मातिह ते, गहपति, एवं सिक्खितब्बं—'न सोतविञ्ञाणं उपादियिस्सामि…न घानविञ्ञाणं उपादियिस्सामि…न जिव्हाविञ्ञाणं उपादियिस्सामि…न कायविञ्ञाणं उपादि-[N. 348] यिस्सामि…न मनोविञ्ञाणं उपादियिस्सामि, न च मे मनोविञ्ञाणनिस्सितं विञ्ञाणं भविस्सती' ति। एवं हि ते, गहपति, सिक्खितब्बं।

"तस्मातिह ते, गहपति, एवं सिक्खितब्बं—'न [B. 304, R. 260] चक्खुसम्फस्सं उपादियिस्सामि, न च मे चक्खुसम्फस्सनिस्सितं विञ्ञाणं भविस्सती' ति। एवं हि ते, गहपति, सिक्खतब्बं। तस्मातिह ते, गहपति,

---

"और गृहपति! तुम यह भी अभ्यास करो—'श्रोत्र का उपादान नहीं करूँगा… घ्राण…जिह्वा…काय…मन…।

"…रूप…शब्द…गन्ध…रस…स्प्रष्टव्य…धर्म का…।

"…चक्षुर्विज्ञान का…श्रोत्रविज्ञान…घ्राणविज्ञान…जिह्वाविज्ञान…कायविज्ञान… मनोविज्ञान का उपादान नहीं करूँगा, न मनोविज्ञाननिःसृत विज्ञान में ही आसक्त होऊँगा। गृहपति! तुम्हें ऐसा अभ्यास करना चाहिये।

"और, गृहपति! तुम्हें यों भी अभ्यास करना चाहिये—'चक्षुःसंस्पर्श (इन्द्रिय-

एवं सिक्खितब्बं–'न सोतसम्फस्सं उपादियिस्सामि···न घानसम्फस्सं उपादियिस्सामि···न जिव्हासम्फस्सं उपादियिस्सामि···न कायसम्फस्सं उपादियिस्सामि···न मनोसम्फस्सं उपादियिस्सामि, न च मे मनोसम्फस्सनिस्सितं विञ्ञाणं भविस्सती' ति। एवं हि ते, गहपति, सिक्खितब्बं।

"तस्मातिह ते, गहपति, एवं सिक्खितब्बं––'न चक्खुसम्फस्सजं वेदनं उपादियिस्सामि, न च मे चक्खुसम्फस्सजावेदनानिस्सितं विञ्ञाणं भविस्सती' ति। एवं हि ते, गहपति, सिक्खितब्बं। तस्मातिह ते, गहपति, एवं सिक्खितब्बं––न सोतसम्फस्सजं वेदनं उपादियिस्सामि···न घानसम्फस्सजं वेदनं उपादियिस्सामि···न जिव्हासम्फस्सजं वेदनं उपादियिस्सामि···न मनोसम्फस्सजं वेदनं उपादियिस्सामि, न च मे मनोसम्फस्सजावेदनानिस्सितं विञ्ञाणं भविस्सती' ति। एवं हि ते, गहपति, सिक्खितब्बं।

४. "तस्मातिह ते, गहपति, एवं सिक्खितब्बं—'न पथवीधातुं उपादियिस्सामि, न च मे पथवीधातुनिस्सितं विञ्ञाणं भविस्सती' ति। एवं हि ते, गहपति, सिक्खितब्बं। तस्मातिह ते, गहपति एवं सिक्खितब्बं––'न आपोधातुं उपादियिस्सामि···न तेजोधातुं उपादियिस्सामि···न वायोधातुं उपादियिस्सामि···न आकासधातुं उपादियिस्सामि···न विञ्ञाणधातुं उपादियिस्सामि, न च मे विञ्ञाणधातुनिस्सितं विञ्ञाणं भविस्सती' ति। एवं हि ते, गहपति, सिक्खितब्बं।

[N. 349] "तस्मातिह ते, गहपति, एवं सिक्खितब्बं—'न रूपं उपादियिस्सामि, न च मे रूपनिस्सितं विञ्ञाणं भविस्सती' ति। एवं हि ते, गहपति, सिक्खितब्बं। तस्मातिह ते, गहपति, एवं सिक्खितब्बं—न वेदनं उपादियिस्सामि···न सञ्ञं उपादियिस्सामि···न सङ्खारे उपादियिस्सामि···न विञ्ञाणं उपादियिस्सामि, न च मे विञ्ञाणनिस्सितं विञ्ञाणं भविस्सती' ति। एवं हि ते, गहपति, सिक्खितब्बं।

विषय का सम्पर्क)···श्रोत्रसंस्पर्श···घ्राणसंस्पर्श···जिह्वासंस्पर्श···कायसंस्पर्श···मनःसंस्पर्श···तुम्हें ऐसा सीखना चाहिये!

"और गृहपति! तुम्हें यों भी सीखना चाहिये—चक्षुःसंस्पर्शजा वेदना (इन्द्रिय और विषय का सम्पर्क होने पर मन की दुःखमय, असुखमय एवं अदुःख-असुखमय अवस्था) ··· श्रोत्रसंस्पर्शजा ··· जिह्वासंस्पर्शजा···कायसंस्पर्शजा···मनःसंस्पर्शजा···ऐसा भी, गृहपति! तुम्हें सीखना चाहिये।

४. "और, गृहपति! तुम्हें यह भी सीखना चाहिये—पृथ्वीधातु···अब्धातु···तेजोधातु···वायुधातु···आकाशधातु···विज्ञानधातु···। ऐसा भी, गृहपति! तुम्हें···।

और, गृहपति! ऐसा भी तुम्हें सीखना चाहिये—रूप···वेदना···संज्ञा···संस्कार···विज्ञान···। ऐसा भी गृहपति तुम्हें सीखना चाहिये।

"तस्मातिह ते, गहपति, एवं सिक्खितब्बं—'न आकासानञ्चायतनं उपादियिस्सामि, न च मे आकासानञ्चायतननिस्सितं विञ्ञाणं भविस्सती' ति। एवं हि ते, गहपति, सिक्खितब्बं। तस्मातिह ते [B. 305] गहपति, एवं सिक्खितब्बं—न विञ्ञाणञ्चायतनं उपादियिस्सामि...न आकिञ्चञ्ञायतनं उपादियिस्सामि...न नेवसञ्ञाना- [R. 261] सञ्ञायतनं उपादियिस्सामि न च मे नेवसञ्ञानासञ्ञायतननिस्सितं विञ्ञाणं भविस्सती' ति। एवं हि ते, गहपति, सिक्खितब्बं।

"तस्मातिह ते, गहपति, एवं सिक्खितब्बं-'न इधलोकं उपादियिस्सामि, न च मे इधलोकनिस्सितं विञ्ञाणं भविस्सती' ति। एवं हि ते, गहपति, सिक्खितब्बं। तस्मातिह ते, गहपति, एवं सिक्खितब्बं—न परलोकं उपादियिस्सामि, न च मे परलोकनिस्सितं विञ्ञाणं भविस्सती' ति। एवं हि ते, गहपति, सिक्खितब्बं। तस्मातिह ते, गहपति, एवं सिक्खितब्बं। तस्मातिह ते, गहपति, एवं सिक्खितब्बं—'यं पि मे दिट्ठं सुतं मुतं विञ्ञातं पत्तं परियेसितं अनुपरियेसितं अनुविचरितं मनसा पि तं न उपादियिस्सामि, न च मे तन्निस्सितं विञ्ञाणं भविस्सती' ति। एवं हि ते, गहपति, सिक्खितब्बं" ति।

५. एवं वुत्ते, अनाथपिण्डिको गहपति परोदि, अस्सूनि पवत्तेसि। अथ खो आयस्मा आनन्दो अनाथपिण्डिकं गहपतिं एतदवोच—"ओलीयसि खो त्वं, गहपति, संसीदसि खो त्वं, गहपती" ति ?

"नाहं, भन्ते आनन्द, ओलीयामि, न पि संसीदामि; अपि च मे दीघरत्तं

"और, गृहपति ! तुम्हें यह भी सीखना चाहिये— आकाशानन्त्यायतन...विज्ञानानन्त्यायतन...आकिञ्चन्यायतन...नैवसंज्ञानासंज्ञायतन...। ऐसा भी तुम्हें सीखना चाहिये।

"और, गृहपति ! तुम्हें ऐसा भी सीखना चाहिये—न इस लोक का...न परलोक का...न दृष्ट श्रुत, स्मृत, विज्ञात, प्राप्त, परीष्ट (गवेषित), अनुपरीष्ट मन द्वारा अनुविचारित का उपादान करूँगा, और मेरा विज्ञान उसमें निःसृत (आसक्त) न होगा—ऐसा भी, गृहपति ! तुम्हें सीखना चाहिये !"

५. (सारिपुत्र द्वारा) ऐसा कहे जाने पर अनाथपिण्डिक गृहपति रो पड़ा, उसकी आँखों से झर झर आँसू गिरने लगे। तब आयुष्मान् आनन्द से गृहपति अनाथपिण्डिक से पूछा—"क्या गृहपति ! तुम घबरा रहे हो ? अपना दिल छोटा कर रहे हो ?

"भन्ते ! मैं घबरा नहीं रहा हूँ, न अपना दिल ही छोटा कर रहा हूँ; अपि तु मुझे इस बात का कष्ट हो रहा है कि मैंने इतने समय शास्ता की उपासना की,

सत्था पयिरुपासितो मनोभावनीया च भिक्खू; न च मे एवरूपी धम्मी कथा सुतपुब्बा" ति ।

[N. 350] "न खो, गहपति, गिहीनं ओदातवसनानं एवरूपी धम्मी कथा पटिभाति; पब्बजितानं खो, गहपति, एवरूपी धम्मा कथा पटिभाती" ति ।

"तेन हि, भन्ते सारिपुत्त, गिहीनं पि ओदातवसनानं एवरूपी धम्मी कथा पटिभातु । सन्ति हि, भन्ते, कुलपुत्ता अप्परजक्खजातिका, अस्सवनता धम्मस्स परिहायन्ति; भविस्सन्ति धम्मस्स अञ्ञातारो" ति ।

३. अनाथपिण्डिको देवपुत्तो

६. अथ खो आयस्मा च सारिपुत्तो आयस्मा च आनन्दो अनाथपिण्डिकं गहपतिं इमिना ओवादेन ओवदित्वा उट्ठायासना पक्कमिंसु । अथ खो अनाथपिण्डिको गहपति, अचिरपक्कन्ते आयस्मन्ते च सारिपुत्ते आयस्मन्ते च [R. 262] आनन्दे, कालमकासि, तुसितं कायं उपपज्जि ।

अथ खो अनाथपिण्डिको देवपुत्तो अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि । एकमन्तं ठितो खो अनाथपिण्डिको

अच्छे अच्छे भिक्षुओं की सेवा की; परन्तु आजतक ऐसी गम्भीर धार्मिक कथा मुझे सुनने को नहीं मिली !"

"गृहपति ! श्वेतवस्त्रधारी गृहस्थों को ऐसी धार्मिक कथा समझ में नहीं आती, प्रव्रजित के ही मन में ऐसी धार्मिक कथा बैठती हैं ।"

"तो, भन्ते ! सारिपुत्र ! गृहस्थों को भी ऐसी धार्मिक कथा समझ में आये— ऐसा कुछ कीजिये; क्योंकि गृहस्थों में भी कुछ लोग मिल ही जायँगे जो अल्प चित्तविकार वाले हैं । धर्म के न सुनने पर वे उस से वञ्चित रह जायँगे । (सुनने पर) वे भी धर्म (की सूक्ष्मता) को जान सकेंगे ।"

३. अनाथपिण्डिक देवपुत्र

तब आयुष्मान् सारिपुत्र एवं आनन्द अनाथपिण्डिक गृहपति को ऐसा उपदेश (अववाद) दे कर आसन से उठ कर चले गये । उधर गृहपति अनाथपिण्डिक भी आयुष्मान् सारिपुत्र एवं आनन्द के जाने के कुछ ही देर बाद, मृत्यु को प्राप्त हो, तुषित देवकाय के रूप में परिवर्तित हो गये ।

तब अनाथपिण्डिक देवपुत्र प्रकाशमान रात्रि में, तेजोमय वर्ण वाला हो कर, समग्र जेतवन को प्रकाशित करता हुआ, जहाँ भगवान् विराजमान थे, वहाँ पहुँचा । पहुँचकर, भगवान् को प्रणाम कर एक ओर खड़ा हो गया । एक ओर खड़े अनाथ-

देवपुत्तो भगवन्तं गाथाहि अज्झभासि— [B. 306]

७. "इदं हि तं जेतवनं, इसिसङ्घनिसेवितं।
आवुत्थं धम्मराजेन, पीतिसञ्जननं मम॥

"कम्मं विज्जा च धम्मो च, सीलं जीवितमुत्तमं।
एतेन मच्चा सुज्झन्ति, न गोत्तेन धनेन वा॥

"तस्मा हि पण्डितो पोसो, सम्पस्सं अत्थमत्तनो।
योनिसो विचिने धम्मं, एवं तत्थ विसुज्झति॥

"सारिपुत्तो व पञ्ञाय, सीलेन उपसमेन च।
यो पि पारङ्गतो भिक्खु, एतावपरमो सिया" ति॥

इदमवोच अनाथपिण्डिको देवपुत्तो। समनुञ्ञो सत्था अहोसि। अथ खो अनाथपिण्डिको देवपुत्तो—"समनुञ्ञो मे सत्था" ति [N. 351] भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा तत्थेवन्तरधायि।

८. अथ खो भगवा तस्सा रत्तिया अच्चयेन भिक्खू आमन्तेसि—"इमं, भिक्खवे, रत्तिं अञ्ञतरो देवपुत्तो अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येनाहं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा मं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो सो देवपुत्तो मं गाथाहि अज्झभासि—

पिण्डिक देवपुत्र ने गाथाओं के माध्यम से यों निवेदन किया—

"ऋषिसङ्घसेवित एवं धर्मराज (बुद्ध) का वास रह चुका यह जेतवन मुझे अतीव प्रसन्नता प्रदान करता है।

"मनुष्य कर्म, विद्या, धर्म, शील एवं उत्तम जीवन से ही शुद्ध होते हैं, ऊँचे गोत्र या अधिक धन से नहीं।

"अतः बुद्धिमान् पुरुष को, अपना हित देखते हुए, कार्य कारण का ध्यान करते हुए धर्म का चयन करना चाहिये। इसी से वह शुद्ध हो पाता है।

"प्रज्ञा, शील एवं उपशम में सारिपुत्र के सदृश पारङ्गत भिक्षु ही इतना महान् होगा।"

अनाथपिण्डिक देवपुत्र ने यह कहा। भगवान् ने उसके इस कथन का समर्थन किया। तब अनाथपिण्डिक देवपुत्र "भगवान् मेरा समर्थन कर रहे हैं"—ऐसा जानकर, भगवान् को प्रणाम कर वहीं अन्तर्हित हो गया।

८. तब भगवान् ने, उस रात्रि के बीत जाने पर, भिक्षुओं को बुलाया और उन्हें बतलाया—

'इदं हि तं जेतवनं, इसिसङ्घनिसेवितं।
आवुत्थं धम्मराजेन, पीतिसञ्जननं मम॥

'कम्मं विज्जा च धम्मो च, सीलं जीवितमुत्तमं।
एतेन मच्चा सुज्झन्ति, न गोत्तेन धनेन वा॥

'तस्मा हि पण्डितो पोसो, सम्पस्सं अत्थमत्तनो।
योनिसो विचिने धम्मं, एवं तत्थ विसुज्झति॥

'सारिपुत्तो व पञ्ञाय, सीलेन उपसमेन च।
यो पि पारङ्गतो भिक्खु, एतावपरमो सिया' ति॥

[R. 263] "इदमवोच, भिक्खवे, सो देवपुत्तो। 'समनुञ्ञो मे सत्था' ति मं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा तत्थेवन्तरधायी'' ति।

[B. 307] एवं वुत्ते, आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—"सो हि नून खो, भन्ते, अनाथपिण्डिको, देवपुत्तो भविस्सति। अनाथपिण्डिको, भन्ते, गहपति आयस्मन्ते सारिपुत्ते अभिप्पसन्नो अहोसी" ति।

"साधु, साधु, आनन्द! यावतकं खो, आनन्द, तक्काय पत्तब्बं, अनुप्पत्तं तं तया। अनाथपिण्डिको सो, आनन्द, देवपुत्तो'" ति।

"भिक्षुओ! विगत रात्रि में कोई एक देवपुत्र…जहाँ मैं था वहाँ आया, आकर मुझे अभिवादन कर एक ओर खड़े हो उस देवपुत्र ने मुझ को गाथाओं के माध्यम से यह कहा—

'ऋषिसङ्घसेवित…यह जेतवन मुझे अतीव प्रसन्नता प्रदान करता है।…

'प्रज्ञा, शील एवं उपशम में सारिपुत्र की तरह पारङ्गत भिक्षु इतना महान् होगा।'

"भिक्षुओ! वह देवपुत्र ऐसे बोला और 'शास्ता ने मेरा समर्थन कर दिया है'—ऐसा जानकर मुझे प्रणाम कर, प्रदक्षिणा कर, वहीं अन्तर्हित हो गया"।

(भगवान् द्वारा) ऐसा कहे जाने पर, आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से यों निवेदन किया—"भन्ते! वह देवपुत्र अवश्य ही अनाथपिण्डिक रहा होगा। भन्ते! अनाथपिण्डिक गृहपति ही आयुष्मान् सारिपुत्र पर इतना अधिक श्रद्धावान् था।"

"ठीक है, आनन्द! ठीक है! जितना तर्क (अनुमान) से जाना जा सकता है वह तुमने ठीक ही जान लिया। आनन्द! वह देवपुत्र अनाथपिण्डिक ही था।"

९. इदमवोच भगवा। अत्तमनो आयस्मा आनन्दो भगवतो भासितं अभिनन्दी ति।

---

९. भगवान् यों बोले। सन्तुष्ट हो आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् के भाषण का अभिनन्दन किया॥

अनाथपिण्डिकोवादसुत्त समाप्त॥

४४. छन्नोवादसुत्तं

बाळ्हगिलानो आयस्मा छन्नो

[N. 352] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। तेन खो पन समयेन आयस्मा च सारिपुत्तो आयस्मा च महाचुन्दो आयस्मा च छन्नो गिज्झकूटे पब्बते विहरन्ति। तेन खो पन समयेन आयस्मा छन्नो आबाधिको होति दुक्खितो बाळ्हगिलानो। अथ खो आयस्मा सारिपुत्तो सायन्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो येनायस्मा महाचुन्दो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं महाचुन्दं एतदवोच—"आयामावुसो" चुन्द, येनायस्मा छन्नो तेनुपसङ्कमिस्साम गिलानपुच्छका" ति। "एवमावुसो" ति खो आयस्मा महाचुन्दो आयस्मतो सारिपुत्तस्स पच्चस्सोसि।

अथ खो आयस्मा च सारिपुत्तो आयस्मा च महाचुन्दो येनायस्मा छन्नो तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा आयस्मता छन्नेन सद्धिं सम्मोदिंसु। सम्मोद- [R. 264] नीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा सारिपुत्तो आयस्मन्तं छन्नं एतदवोच—"कच्चि ते, आवुसो छन्न, खमनीयं, कच्चि यापनीयं? कच्चि ते दुक्खा वेदना पटिक्कमन्ति, नो अभिक्कमन्ति; पटिक्कमोसानं पञ्ञायति, नो अभिक्कमो" ति?

---

४४. छन्नाववादसूत्र

१. आयुष्मान् छन्न अत्यधिक रुग्ण

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) राजगृह के वेणुवनस्थित कलन्दकनिवाप में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय आयुष्मान् सारिपुत्र, आयुष्मान् महाचुन्द एवं आयुष्मान् छन्न गृध्रकूट पर्वत पर साधना करते थे। उस समय आयुष्मान् छन्न बहुत अधिक रोगापन्न होने से असह्य कष्ट पा रहे थे। तब कभी आयुष्मान् सारिपुत्र सायङ्काल ध्यानभावना से निवृत्त हो जहाँ आयुष्मान् महाचुन्द थे, वहाँ गये। जा कर आयुष्मान् महाचुन्द को यों बोले—"आओ, आयुष्मान् चुन्द! जहाँ आयुष्मान् छन्न है वहाँ चलें, उनके रोग का हालचाल पूछ आवें।" "अच्छा, आयुष्मन्" कह कर आयुष्मान् चुन्द आयुष्मान् सारिपुत्र के साथ हो लिये।

तब आयु० सारिपुत्र एवं आ० चुन्द जहाँ आ० छन्न थे वहाँ गये। जा कर आ० छन्न का कुशलमङ्गल पूछा। कुशल-मङ्गल पूछ आ० सारिपुत्र ने आ० छन्न से यों पूछा—"आयुष्मन् छन्न! तुम ठीक तो हो? तुम्हारा समय ठीक से बीत रहा है? रोग के कारण तुम्हारी परेशानियाँ बढ़ तो नहीं रही हैं? तुम्हें रोग का का घटना ही अनुभव होता है ना, बढ़ना तो नहीं?"

"न मे, आवुसो सारिपुत्त, खमनीयं न यापनीयं। बाळ्हा मे दुक्खा वेदना अभिक्कमन्ति, नो पटिक्कमन्ति, अभिक्कमोसानं पञ्ञायति, नो पटिक्कमो। सेय्यथापि, आवुसो सारिपुत्त, बलवा पुरिसो तिण्हेन सिखरेन मुद्धनि अभिमत्थेय्य; एवमेव खो मे, आवुसो सारिपुत्त, अधि- [B. 308] मत्ता वाता मुद्धनि ऊहनन्ति। न मे, आवुसो सारिपुत्त, खमनीयं न यापनीयं। बाळ्हा मे दुक्खा वेदना अभिक्कमन्ति, नो पटिक्कमन्ति; अभिक्कमोसानं पञ्ञायति नो पटिक्कमो। सेय्यथापि, आवुसो [N. 353] सारिपुत्त, बलवा पुरिसो दळ्हेन वरत्तक्खण्डेन सीसे सीसवेठं ददेय्य; एवमेव खो मे, आवुसो सारिपुत्त, अधिमत्ता सीसे सीसवेदना। न मे, आवुसो सारिपुत्त, खमनीयं न यापनीयं। बाळ्हा मे दुक्खा वेदना अभिक्कमन्ति, नो पटिक्कमन्ति; अभिक्कमोसानं पञ्ञायति, नो पटिक्कमो। सेय्यथापि, आवुसो सारिपुत्त, दक्खो गोघातको वा गोघातकन्तेवासी वा तिण्हेन गोविकन्तनेन कुच्छिं परिकन्तेय्य; एवमेव खो मे, आवुसो सारिपुत्त, अधिमत्ता वाता कुच्छिं परिकन्तन्ति। न मे, आवुसो सारिपुत्त, खमनीयं यापनीयं। बाळ्हा मे दुक्खा वेदना अभिक्कमन्ति, नो पटिक्कमन्ति; अभिक्कमोसानं पञ्ञायति, नो पटिक्कमो। सेय्यथापि, आवुसो सारिपुत्त, द्वे बलवन्तो पुरिसा दुब्बलतरं पुरिसं नानाबाहासु गहेत्वा अङ्गारकासुया सन्तापेय्युं सम्परितापेय्युं; एवमेव खो मे, आवुसो सारिपुत्त, अधिमत्तो कायस्मिं डाहो। न मे, आवुसो सारिपुत्त, खमनीयं न यापनीयं। 'बाळ्हा मे दुक्खा वेदना अभिक्कमन्ति, नो पटिक्कमन्ति; अभिक्कमोसानं पञ्ञायति, नो पटिक्कमो। सत्थं, आवुसो सारिपुत्त, आहरिस्सामि, नावकङ्खामि जीवितं" ति।

२. "मायस्मा छन्नो सत्थं आहरेसि। यापेतायस्मा छन्नो। यापेन्तं मयं आयस्मन्तं छन्नं इच्छाम। सचे आयस्मतो छन्नस नत्थि सप्पायानि भोज-

---

"नहीं, आयुष्मन् सारिपुत्र ! मैं ठीक नहीं हूँ। मेरा रोगजन्य कष्ट बढ़ता ही जा रहा है, घटने का नाम नहीं लेता ! मुझे रोग का बढ़ना तो अनुभव हो रहा है, घटना नहीं।" जैसे आयुष्मन् सारिपुत्र ! कोई बलवान् पुरुष शिर में हथोड़ा (या मुद्गर) मारे...पूर्ववत्[1]...रोगजन्य कष्ट का बढ़ना ही ज्ञात हो रहा है, घटना नहीं। मैं तो अब (इस कष्ट से छुटकारा पाने के लिये) शस्त्र से आत्महत्या कर लूंगा, मैं इतना कष्ट पाकर जीवित नहीं रहना चाहता।"

२. "नहीं, आयुष्मन् छन्न ! आप शस्त्र से आत्महत्या न करें। आप किसी तरह इस कष्ट को सहें। आप जीवित रहें, आपको हम जीवित देखना चाहते हैं। यदि

---

१. द्र०—पीछे पृ० ३१३ (धनञ्जानिसुत्त)।

नानि, अहं आयस्मतो छन्नस्स सप्पायानि भोजनानि परियेसिस्सामि। सचे आयस्मतो छन्नस्स नत्थि सप्पायानि भेसज्जानि, अहं आयस्मतो छन्नस्स सप्पायानि भेसज्जानि परियेसिस्सामि। सचे आयस्मतो छन्नस्स नत्थि पतिरूपा उपट्ठाका, अहं आयस्मन्तं छन्नं उपट्ठहिस्सामि। मायस्मा छन्नो सत्थं आहरेसि। यापेतायस्मा छन्नो। यापेन्तं मयं आयस्मन्तं छन्नं इच्छामा" ति।

"न पि मे, आवुसो सारिपुत्त, नत्थि सप्पायानि भोजनानि; न पि मे नत्थि सप्पायानि भेसज्जानि; न पि मे नत्थि पतिरूपा उपट्ठाका; अपि [B. 309] चावुसो सारिपुत्त, परिचिण्णो मे सत्था दीघरत्तं मनापेनेव [N. 354] नो अमनापेन। एतं हि, आवुसो सारिपुत्त, सावकस्स पतिरूपं यं सत्थारं परिचरेय्य मनापेनेव नो अमनापेन। 'अनुपवज्जं छन्नो भिक्खु सत्थं आहरिस्सती' ति एवमेतं, आवुसो सारिपुत्त, धारेही" ति?

"पुच्छेय्याम मयं आयस्मन्तं छन्नं कञ्चिदेव देसं, सचे आयस्मा छन्नो ओकासं करोति पञ्हस्स वेय्याकरणाया" ति।

"पुच्छावुसो सारिपुत्त, सुत्वा वेदिस्सामी" ति।

२. "चक्खुं, आवुसो छन्न, चक्खुविञ्ञाणं चक्खुविञ्ञाणविञ्ञातब्बे

आपको अनुकूल भोजन न मिलता हो तो मैं ला दिया करूँगा। यदि आपको अनुकूल औषध न मिलती हों तो उन्हें भी मैं ला दिया करूँगा। यदि आपको उचित परिचारक न मिलता हो तो मैं आप की उचित परिचर्या भी कर दूँगा; परन्तु आप शस्त्र से आत्महत्या करने की न सोचें। आप इस रोगजन्य कष्ट को सहन कीजिये! हम आपको जीवित देखना चाहते हैं।"

"आयुष्मन् सारिपुत्र! न तो मुझे अनुकूल भोजन (पथ्य) की कमी है, न अनुकूल औषध की, न अनुकूल परिचारक की ही कमी है; अपि तु, आयुष्मन् सारिपुत्र! मैंने चिरकाल तक प्रेम के साथ शास्ता (बुद्ध) सेवा की है, अप्रेम (उपेक्षा) से नहीं। आयुष्मन् सारिपुत्र! श्रावक के लिये यही उचित है कि वह (जब तक बन पड़े) प्रेम से ही उनकी परिचर्या करे, उपेक्षा से नहीं। (अब मेरे लिये इस रोग के कारण यह सम्भव नहीं रहा,) अतः तुम यह निश्चित समझ लो कि छन्न अब पुनर्जन्मरहित (अनुपवज्जं) हो शस्त्र से आत्महत्या कर लेगा!"

"अच्छा तो, आयुष्मन् छन्न! आप से कुछ बात पूछें, यदि आप उस का ठीक उत्तर दें तो?"

"पूछें, आयुष्मन् सारिपुत्र! सुनकर बात को समझूँगा।"

२. "क्या, आयुष्मन् छन्न! आप चक्षु, चक्षुर्विज्ञान, एवं चक्षुर्विज्ञान से ज्ञेय

धम्मे 'एतं मम, ऐसोहमस्मि, एसो मे अत्ता' ति समनुपस्ससि ? सोतं, आवुसो छन्न, सोतविञ्ञाणं…पे०…घानं, आवुसो छन्न, घानविञ्ञाणं…जिव्हं, आवुसो छन्न, जिव्हाविञ्ञाणं…कायं, आवुसो छन्न, कायविञ्ञाणं…मनं आवुसो छन्न, मनोविञ्ञाणं मनोविञ्ञाणविञ्ञातब्बे धम्मे [R. 265] 'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता' ति समनुपस्ससी" ति ?

"चक्खुं, आवुसो सारिपुत्त, चक्खुविञ्ञाणं चक्खुविञ्ञाणविञ्ञातब्बे धम्मे 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति समनुपस्सामि। सोतं, आवुसो सारिपुत्त…पे०…घानं, आवुसो सारिपुत्त…जिव्हं, आवुसो सारिपुत्त…कायं आवुसो सारिपुत्त…मनं, आवुसो सारिपुत्त, मनोविञ्ञाणं मनोविञ्ञाणविञ्ञातब्बे धम्मे 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति समनुपस्सामि" ति।

४. "चक्खुस्मिं, आवुसो छन्न, चक्खुविञ्ञाणे चक्खुविञ्ञाणविञ्ञातब्बेसु धम्मेसु किं दिस्वा अभिञ्ञाय चक्खुंविञ्ञाणं चक्खुविञ्ञाणविञ्ञातब्बे धम्मे 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति समनुपस्ससि ? सोतस्मिं, आवुसो छन्न, सोतविञ्ञाणे…घानस्मिं, आवुसो छन्न, घानविञ्ञाणे… जिव्हाय, आवुसो छन्न, जिव्हाविञ्ञाणे…कायस्मिं, आवुसो छन्न, कायविञ्ञाणे…मनस्मिं, आवुसो छन्न, मनोविञ्ञाणे मनोविञ्ञाणविञ्ञातब्बेसु धम्मेसु किं दिस्वा किं अभिञ्ञाय मनं मनोविञ्ञाणं मनोविञ्ञाणविञ्ञा-

---

धर्मों को 'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरी आत्मा है'—ऐसा समझते हो ? श्रोत्र… घ्राण…जिह्वा…काय…मन, मनोविज्ञान एवं मनोविज्ञान से ज्ञेय धर्मों को 'यह मेरा है…' ऐसा समझते हो ?"

"…मैं चक्षु, चक्षुर्विज्ञान एवं चक्षुर्विज्ञान से ज्ञेय धर्मों को 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरी आत्मा नहीं है'—ऐसा समझता हूँ। 'श्रोत्र… मन…मेरी आत्मा नहीं है'—ऐसा समझता हूँ।

"तो, आयुष्मन् छन्न ! आप चक्षु, चक्षुर्विज्ञान और चक्षुर्विज्ञान से ज्ञेय धर्मों में क्या देख कर, क्या जान कर उनको 'यह मेरा…मैं नहीं हूँ, यह मेरी आत्मा नहीं है'—ऐसा समझते हो ?…श्रोत्र…घ्राण…जिह्वा…काय…मन…में क्या देख कर… मेरी आत्मा नहीं है—ऐसा समझते हो ?"

"आयुष्मन् सारिपुत्र ! मैं चक्षु, चक्षुर्विज्ञान एवं चक्षुर्विज्ञान से ज्ञेय धर्मों में निरोध को देख कर, निरोध को समझ कर 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरी आत्मा नहीं है' ऐसा समझता हूँ। श्रोत्र…मन…में निरोध को देखकर…

[N. 355] तब्बे धम्मे 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति समनुपस्ससी" ति ?

[B. 310] "चक्खुस्मि, आवुसो सारिपुत्त, चक्खुविञ्ञाणे चक्खुविञ्ञाणविञ्ञातब्बेसु धम्मेसु निरोधं अभिञ्ञाय चक्खुं चक्खुविञ्ञाणं चक्खुविञ्ञाणविञ्ञातब्बे धम्मे 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति समनुपस्सामि। सोतस्मि, आवुसो सारिपुत्त, सोतविञ्ञाणे···घानस्मि, आवुसो सारिपुत्त, घानविञ्ञाणे···जिव्हाय, आवुसो सारिपुत्त, जिव्हाविञ्ञाणे···कायस्मि, आवुसो सारिपुत्त, कायविञ्ञाणे···मनस्मि, आवुसो [R. 266] सारिपुत्त, मनोविञ्ञाणे मनोविञ्ञाणविञ्ञातब्बेसु धम्मेसु निरोधं दिस्वा निरोधं अभिञ्ञाय मनं मनोविञ्ञाणं मनोविञ्ञाणविञ्ञातब्बे धम्मे 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति समनुपस्सामी" ति।

५. एवं वुत्ते, आयस्मा महाचुन्दो आयस्मन्तं छन्नं एतदवोच—"तस्मातिह, आवुसो छन्न, इदं पि तस्स भगवतो सासनं, निच्चकप्पं मनसि कातब्बं—'निस्सितस्स चलितं, अनिस्सितस्स चलितं नत्थि'। चलिते असति पस्सद्धि, पस्सद्धिया सति नति न होति। नतिया असति आगतिगति न होति। आगतिगतिया असति चुतूपपातो न होति। चुतूपपाते असति नेविध न हुरं न उभयमन्तरेन। एसेवन्तो दुक्खस्सा" ति।

अथ खो आयस्मा च सारिपुत्तो आयस्मा च महाचुन्दो आयस्मन्तं छन्नं इमिना ओवादेन ओवदित्वा उट्ठायासना पक्कमिंसु।

आत्मा नहीं है'—ऐसा समझता हूँ।

५. (आ० छन्न द्वारा) ऐसा कहे जाने पर, आयुष्मान् चुन्द आयुष्मान् छन्न को यों बोले—"तब तो, आयुष्मन् छन्न ! तुम्हें भगवान् का वह सनातन (नित्यकल्प) उपदेश (शासन) भी ध्यान में रखना चाहिये कि 'तृष्णासक्त पुरुष का ही चित्त चञ्चल होता है, अनासक्त का नहीं'। चित्त के चञ्चल न होने पर, एकाग्रता (प्रश्रब्धि) होती है, एकाग्रता होने पर चित्त फिर तृष्णा की ओर नहीं झुकता। इस झुकाव (नति) के न होने पर संसार में गमनागमन नहीं होता। इस गमनागमन के न होने पर च्युति (मृत्यु) या उत्पत्ति की तो बात ही नहीं रह जाती ! इस च्युति या उत्पत्ति के न होने पर प्राणी न इस लोक में, न परलोक में, न दोनों के बीच में ही रहता है। यही 'दुःख का अन्त' कहलाता है।"

आयुष्मान् सारिपुत्र एवं आयुष्मान् चुन्द आयुष्मान् छन्न को यह उपदेश (परामर्श) दे कर आसन से उठ कर चले गये।

२. आयस्मतो छन्नस्स गति

६. अथ खो आयस्मा छन्नो अचिरपक्कन्ते आयस्मन्ते च सारिपुत्ते आयस्मन्ते च महाचुन्दे सत्थं आहरेसि। अथ खो आयस्मा सारिपुत्तो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा सारिपुत्तो भगवन्तं एतदवोच—"आयस्मता, भन्ते, छन्नेन सत्थं आहरितं। तस्स का गति, को अभिसम्परायो" ति ?

"ननु ते, सारिपुत्त, छन्नेन भिक्खुना सम्मुखायेव अनुप- [N. 356] वज्जता ब्याकता" ति ?

"अत्थि, भन्ते पुब्बजिरं नाम वज्जिगामो। तत्थायस्मतो छन्नस्स मित्तकुलानि सुहज्जकुलानि उपवज्जकुलानी" ति।

"होन्ति हेते, सारिपुत्त, छन्नस्स भिक्खुनो मित्तकुलानि सुहज्जकुलानि उपवज्जकुलानि। नाहं, सारिपुत्त, एतावता 'सउपवज्जो' ति [B. 311] वदामि। यो खो, सारिपुत्त, इमं च कायं निक्खिपति अञ्ञं च कायं उपादियति तमहं 'सउपवज्जो' ति वदामि। तं छन्नस्स भिक्खुनो नत्थि। 'अनुपवज्जो छन्नो भिक्खु सत्थं आहरेसी' ति एवमेतं, सारिपुत्त, धारेही" ति।

---

२. आयुष्मान् छन्न की गति

६. तब उन दोनों के चले जाने के कुछ ही समय बाद आयुष्मान् छन्न ने शस्त्र से आत्महत्या कर ही ली। तब आयुष्मान् सारिपुत्र जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचे। पहुँच कर प्रणाम कर एक ओर बैठ, भगवान् से यों निवेदन किया—"भन्ते! छन्न ने शस्त्र से आत्महत्या कर ली है। उसको क्या गति या क्या भविष्य (अभिसम्पराय) होगा ?"

"क्यों, सारिपुत्र ! छन्न भिक्षु ने तुम्हारे सामने अपनी अनुपवद्यता (पुनर्जन्मरहितता) की बात (व्याकरण) नहीं कही थी ?"

"भन्ते ! वज्जिप्रदेश में पुब्बजिर नामक ग्राम है। जिसमें आयुष्मान् छन्न के मित्र सुहृत् एवं नाते-रिश्तेदार लोग रहते हैं।"

"सारिपुत्र ! होंगे उस ग्राम में छन्न भिक्षु के ऐसे मित्र, सुहृत् एवं नाते-रिश्तेदार ! मैं इन लौकिक रिश्तेदारों के कारण उसको 'सउपवद्य' नहीं कहता। मैं तो जो व्यक्ति इस काया को छोड़ता है और दूसरी काया धारण कर लेता है उसे 'सउपवद्य' कहता हूँ। वह कायान्तरधारण कर्म छन्न भिक्षु का नहीं रह गया, अतः उस अनुपवद्य (पुनर्जन्मरहित) छन्न भिक्षु ने शस्त्र से आत्महत्या की—ऐसा तुम्हें समझना चाहिये।"

७. इदमवोच भगवा। अत्तमनो आयस्मा सारिपुत्तो भगवतो भासितं अभिनन्दी ति।

७. भगवान् ने ऐसा कहा। आप्तमना आयुष्मान् सारिपुत्र ने भगवान् के भाषण का अभिनन्दन किया।

छन्नाववादसुत्त समाप्त ॥

४५. पुण्णोवादसुत्तं

१. भगवतो पुण्णस्स ओवादो

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं [N. 357, R. 267] विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो आयस्मा पुण्णो सायन्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा पुण्णो भगवन्तं एतदवोच—"साधु मं, भन्ते, भगवा सङ्खित्तेन ओवादेन ओवदतु, यमहं भगवतो धम्मं सुत्वा एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरेय्यं" ति।

"तेन हि, पुण्ण, सुणाहि, साधुकं मनसि करोहि; भासिस्सामी" ति। "एवं, भन्ते" ति खो आयस्मा पुण्णो भगवतो पच्चस्सोसि। भगवा एतदवोच—

"सन्ति खो, पुण्ण, चक्खुविञ्ञेय्या रूपा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे भिक्खु अभिनन्दति अभिवदति अज्झोसाय तिट्ठति। तस्स तं अभिनन्दतो अभिवदतो अज्झोसाय तिट्ठतो उप्पज्जति नन्दी। 'नन्दीसमुदया दुक्खसमुदयो, पुण्णा' ति वदामि।

---

४५. पूर्ण-अववादसुत्त

१. पूर्ण भिक्षु को भगवान् का उपदेश

ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती के…जेतवन में साधनाहेतु विराजमान थे। तब आयुष्मान् पूर्ण सायङ्काल ध्यानभावना से निवृत्त हो जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचे। पहुँच कर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे उन्होंने भगवान् से यों निवेदन किया—"अच्छा हो, भन्ते ! भगवान् मुझे संक्षेप से ऐसा उपदेश करें कि जिसे सुन उसके सहारे मैं एकाकी, एकान्तसेवी (व्यपकृष्ट), प्रमादरहित, उद्योगशील एवं संयतेन्द्रिय (प्रहितात्मा) हो कर साधना कर सकूँ।"

"तो, पूर्ण ! सुनो, उसे चित्त में भली-भाँति बैठा लो।" "अच्छा भन्ते !" कहकर पूर्ण ने भगवान् को प्रत्युत्तर दिया। भगवान् यों बोले—

"पूर्ण ! चक्षुर्विज्ञेय रूप मनुष्य को इष्ट कान्त मनाप प्रियरूप कामोपसंहित एवं रजनीय होते हैं। जब भिक्षु इनका अभिनन्दन, स्वागत (अभिवादन) एवं अध्यवसाय करता है, यों अभिनन्दन आदि करते हुए उसको तृष्णा (नन्दी) उत्पन्न होती है। पूर्ण ! 'उस तृष्णा की उत्पत्ति (समुदय) से दुःख की उत्पत्ति होती है'—ऐसा मेरा मानना है।

"सन्ति खो, पुण्ण, सोतविञ्ञेय्या सद्दा...घानविञ्ञेय्या गन्धा... जिव्हाविञ्ञेय्या रसा...कायविञ्ञेय्या फोट्ठब्बा...मनोविञ्ञेय्या धम्मा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे भिक्खु अभिनन्दति अभिवदति अज्झोसाय तिट्ठति। तस्स तं अभिनन्दतो अभिवदतो अज्झोसाय तिट्ठतो उप्पज्जति नन्दी। 'नन्दीसमुदया दुक्खसमुदयो, पुण्णा' ति वदामि।

[B. 312] "सन्ति च खो, पुण्ण, चक्खुविञ्ञेय्या रूपा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे भिक्खु नाभिनन्दति नाभिवदति नाज्झोसाय तिट्ठति। तस्स तं अनभिनन्दतो अनभिवदतो अनज्झो- [N. 358] साय तिट्ठतो नन्दी निरुज्झति। 'नन्दीनिरोधा दुक्खनिरोधो, पुण्णा' ति वदामि।

"सन्ति च खो, पुण्ण, सोतविञ्ञेय्या सद्दा...घानविञ्ञेय्या गन्धा... जिव्हाविञ्ञेय्या रसा...कायविञ्ञेय्या फोट्ठब्बा...मनोविञ्ञेय्या धम्मा [R. 268] इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया। तं चे भिक्खु नाभिनन्दति नाभिवदति नाज्झोसाय तिट्ठति। तस्स तं अनभिनन्दतो अनभिवदतो अनज्झोसाय तिट्ठतो नन्दी निरुज्झति। 'नन्दीनिरोधा दुक्खनिरोधो, पुण्णा' ति वदामि।

२. सुनापरन्तका मनुस्सा चण्डा

२. "इमिना च त्वं पुण्ण, मया सङ्खित्तेन ओवादेन ओवदितो, कतरस्मिं जनपदे विहरिस्ससी" ति?

"पूर्ण! जिह्वाविज्ञेय रस इष्ट...दुख की उत्पति होती है—ऐसा मेरा कहना है।

"और पूर्ण! श्रोत्रविज्ञेय...घ्राणविज्ञेय...जिह्वाविज्ञेय...कायविज्ञेय...मनोविज्ञेय धर्म जो कि इष्ट कान्त...दुःख की उत्पत्ति होती है—ऐसा मेरा मानना है।

"और पूर्ण! चक्षुर्विज्ञेय रूप इष्ट कान्त...हों तो भी यदि भिक्षु उनका अभिनन्दन, स्वागत एवं अध्यवसाय न करे तो यह अभिनन्दन आदि न करने से तृष्णा उत्पन्न नहीं होती, तृष्णा की उत्पत्ति न होने से दुःख की उत्पत्ति भी नहीं होती—ऐसा मेरा मानना है।

"और, पूर्ण! श्रोत्रविज्ञेय शब्द...पूर्ववत्...दुःख की उत्पत्ति नहीं होती—ऐसा मेरा मानना है।

२. शूनापरान्तक मनुष्य अत्यन्त क्रोधी होते हैं

२. "पूर्ण! तुम मेरे इस संक्षिप्त उपदेश से उपदिष्ट होने के बाद किस जनपद में (रहते हुए) साधना करोगे?"

"इमिनाहं, भन्ते, भगवता सङ्खित्तेन ओवादेन ओवदितो, अत्थि सुनापरन्तो नाम जनपदो, तत्थाहं विहरिस्सामी" ति।

"चण्डा खो, पुण्ण, सुनापरन्तका मनुस्सा; फरुसा खो, पुण्ण, सुनापरन्तका मनुस्सा। सचे तं, पुण्ण, सुनापरन्तका मनुस्सा अक्कोसिस्सन्ति परिभासिस्सन्ति, तत्थ ते, पुण्ण, किन्ति भविस्सती" ति?

"सचे मं, भन्ते, सुनापरन्तका मनुस्सा अक्कोसिस्सन्ति परिभासिस्सन्ति, तत्थ मे एवं भविस्सति—'भद्दका वतिमे सुनापरन्तका मनुस्सा, सुभद्दका वतिमे सुनापरन्तका मनुस्सा, यं मे नयिमे पाणिना पहारं देन्ती' ति। एवमेत्थ, भगवा, भविस्सति; एवमेत्थ, सुगत, भविस्सती" ति।

"सचे पन ते, पुण्ण, सुनापरन्तका मनुस्सा पाणिना पहारं दस्सन्ति, तत्थ पन ते, पुण्ण, किन्ति भविस्सती" ति?

"सचे मे, भन्ते, सुनापरन्तका मनुस्सा पाणिना पहारं दस्सन्ति, तत्थ मे एवं भविस्सति—'भद्दका वतिमे सुनापरन्तका मनुस्सा, सुभद्दका वतिमे सुनापरन्तका मनुस्सा, यं मे नयिमे लेड्डुना पहारं देन्ती' ति। एवमेत्थ, भगवा, भविस्सति; एवमेत्थ, सुगत, भविस्सती" ति।

"सचे पन ते, पुण्ण, सुनापरन्तका मनुस्सा लेड्डुना पहारं [N. 359] दस्सन्ति, तत्थ पन ते, पुण्ण, किन्ति भविस्सती" ति?

"भन्ते, मैं आप के इस संक्षिप्त उपदेश के सहारे, शूनापरान्तक नाम का जो जनपद है उसमें, रह कर साधना करूँगा।"

"अरे पूर्ण! शूनापरान्तक जनपदवासी मनुष्य तो बहुत क्रोधी (चण्ड) हैं, कठोर व्यवहार वाले हैं। पूर्ण! यदि वे शूनापरान्तक जनपदवासी तुम्हारे साथ कुवाच्य (गाली-गलौज) या अपशब्द बोलेंगे तो तब पूर्ण! तुम्हारे मन में (उनके प्रति) क्या भाव होगा?"

"भन्ते! यदि शूनापरान्तकवासी कुवाच्य या अपशब्द बोलेंगे तो मैं अपने मन में यही सोचूँगा कि ये शूनापरान्तकवासी तो बहुत भद्र हैं कि इन्होंने मुझे कुवाच्य कह कर ही छोड़ दिया और मुझ पर हाथ से प्रहार (थप्पड़) नहीं किया।"

"पूर्ण! यदि वे तुम्हें थप्पड़ों से मारेंगे तब तुम्हारे मन में क्या विचार होगा?"

"भन्ते! तब भी मैं उनके विषय में यही सोचूँगा कि ये फिर भी अच्छे हैं; क्योंकि इन्होंने मुझे थप्पड़ मार कर ही छोड़ दिया, और इन्होंने मुझे पत्थरों से नहीं मारा। भन्ते! मेरे मन में यही होगा"।

"...यदि वे पत्थरों से तुम पर प्रहार करेंगे तब...?"

[B. 313] "सचे मे, भन्ते, सुनापरन्तका मनुस्सा लेड्डुना पहारं दस्सन्ति, तत्थ मे एवं भविस्सति—'भद्दका वतिमे सुनापरन्तका मनुस्सा, सुभद्दका…यं मे नयिमे दण्डेन पहारं देन्ती' ति। एवमेत्थ, भगवा, भविस्सति; एवमेत्थ, सुगत, भविस्सती" ति।

[R. 269] "सचे पन ते, पुण्ण, सुनापरन्तका मनुस्सा दण्डेन पहारं दस्सन्ति, तत्थ पन ते, पुण्ण, किन्ति भविस्सती" ति ?

"सचे मे, भन्ते, सुनापरन्तका मनुस्सा दण्डेन पहारं दस्सन्ति, तत्थ मे एवं भविस्सति—'भद्दका वतिमे सुनापरन्तका मनुस्सा, सुभद्दका वतिमे सुनापरन्तका मनुस्सा, यं मे नयिमे सत्थेन पहारं देन्ती' ति। एवमेत्थ, भगवा, भविस्सति; एवमेत्थ, सुगत, भविस्सती" ति।

"सचे पन ते, पुण्ण, सुनापरन्तका मनुस्सा सत्थेन पहारं दस्सन्ति, तत्थ प न ते, पुण्ण, किन्ति भविस्सती" ति ?

"सचे मे, भन्ते, सुनापरन्तका मनुस्सा सत्थेन पहारं दस्सन्ति, तत्थ मे एवं भविस्सति—'भद्दका वतिमे सुनापरान्तका मनुस्सा, सुभद्दका वतिमे सुनापरन्तका मनुस्सा, यं मं नयिमे तिण्हेन सत्थेन जीविता वोरोपेन्ती' ति। एवमेत्थ, भगवा, भविस्सति; एवमेत्थ, सुगत, भविस्सती" ति।

"सचे पन तं, पुण्ण, सुनापरन्तका मनुस्सा तिण्हेन सत्थेन जीविता वोरोपेस्सन्ति, तत्थ पन ते, पुण्ण, किन्ति भविस्सती" ति ?

"सचे मं, भन्ते, सुनापरन्तका मनुस्सा तिण्हेन सत्थेन जीविता वोरोपेस्सन्ति, तत्थ मे एवं भविस्सति—'सन्ति खो भगवतो सावका काये च

"भन्ते! यदि ये मुझ पर पत्थरों से प्रहार करेंगे तब भी…इन्होंने मुझको लाठियों से नहीं पीटा। भगवन्!…।"

"…यदि वे तुम्हें लाठियों (दण्ड) से पीटने लगेंगे तब…?"

"भन्ते! यदि वे मुझे लाठियों से पीटने लगेंगे तब भी…उन्होंने मुझ पर शस्त्र से प्रहार नहीं किया…।

"पूर्ण! यदि वे तुम पर शस्त्र से प्रहार करेंगे तब…?"

"भन्ते! यदि वे मुझ पर शस्त्र से प्रहार करेंगे तब भी…इन्होंने मुझ पर तीक्ष्ण शस्त्र से प्रहार कर मुझे मार नहीं दिया।…।"

"पूर्ण! यदि वे तुझ पर तीक्ष्ण शस्त्र से प्रहार कर तुम्हारे जीवन को ही समाप्त करने का प्रयास करें तब…?"

"भन्ते!…तब मेरे मन में यह होगा कि भगवान् के कुछ श्रावक अपने जीवन से किसी कारण निराश होकर, ऊब कर, घृणा कर, अपने शरीर को नष्ट करनेहेतु

जीविते च अट्टीयमाना हरायमाना जिगुच्छमाना सत्थहारकं परियेसन्ति, तं मे इदं अपरियिट्ठं येव सत्थहारकं लद्धं' ति। एवमेत्थ, भगवा, भविस्सति; एवमेत्थ, सुगत, भविस्सती" ति।

"साधु, साधु, पुण्ण! सक्खिस्ससि खो त्वं, पुण्ण, इमिना [N. 360] दमूपसमेन समन्नागतो सुनापरन्तस्मिं जनपदे विहरितुं। यस्सदानि त्वं, पुण्ण, कालं मञ्ञसी" ति।

३. परिनिब्बुतो आयस्मा पुण्णो

३. अथ खो आयस्मा पुण्णो भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा सेनासनं संसामेत्वा पत्तचीवरमादाय येन सुनापरन्तो जनपदो तेन चारिकं [B. 314] पक्कामि। अनुपुब्बेन चारिकं चरमानो येन सुनापरन्तो जनपदो तदवसरि। तत्र सुदं आयस्मा पुण्णो सुनापरन्तस्मिं जनपदे विहरति। अथ खो आयस्मा पुण्णो तेनेवन्तरवस्सेन पञ्चमत्तानि उपासकसतानि पटिवेदेसि, तेनेवन्तरवस्सेन पञ्चमत्तानि उपासिकासतानि पटिवेदेसि, तेनेवन्तरवस्सेन तिस्सो विज्जा सच्छाकासि। अथ खो आयस्मा पुण्णो अपरेन समयेन परिनिब्बायि।

अथ खो सम्बहुला भिक्खू येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खू

अपने लिये शस्त्रघात का उपाय खोजते रहते हैं, मुझे तो यह उपाय अनायास मिल गया, अतः इसकी मुझे प्रसन्नता ही है।'"।

"साधु, पूर्ण! साधु। इस तरह तो तुम पूर्ण! उस शूनापरान्तक जनपद में भी शम-दमयुक्त रहते हुए सकुशल साधना कर ही सकते हो। अब तुम जैसा उचित समझो।"

३. आयुष्मान पूर्ण का परिनिर्वाण

३. तब आयुष्मान् पूर्ण भगवान् के वचनों का अभिनन्दन कर, आसन से उठ, भगवान् को अभिवादन एवं प्रदक्षिणा कर, शयनासन सम्हाल, पात्र-चीवर ले, जिधर शूनापरान्तक प्रदेश था, उधर चारिकाहेतु चल पड़े। क्रमशः चारिका करते हुए वे, जहाँ शूनापरान्तक जनपद था, वहाँ पहुँचे। पहुँच कर आयुष्मान् पूर्ण उस जनपद में साधनाहेतु विचरण करने लगे।

वहाँ आयुष्मान् पूर्ण ने उस वर्षावास की अवधि में ही पाँच सौ उपासकों को ज्ञान-लाभ कराया, पाँच सौ उपासिकाओं को भी ज्ञान दिया और उन्होंने स्वयं भी,

भगवन्तं एतदवोचुं—"यो सो, भन्ते, पुण्णो नाम कुलपुत्तो भगवता संखित्तेन ओवादेन ओवदितो सो कालङ्कतो। तस्स का गति, को [R. 270] अभिसम्परायो" ति ?

"पण्डितो, भिक्खवे, पुण्णो कुलपुत्तो पच्चपादि धम्मस्सानुधम्मं, न च मं धम्माधिकरणं विहेठेसि। परिनिब्बुतो, भिक्खवे, पुण्णो कुलपुत्तो" ति।

४. इदमवोच भगवा। अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति ॥

उसी वर्षावास की अवधि में, तीनों विद्याओं का साक्षात्कार किया। इसके बाद आयुष्मान् पूर्ण परिनिर्वृत हो गये।

तब बहुत से भिक्षु, जहाँ भगवान् साधनाहेतु विराजमान थे, वहाँ पहुँचे। वहाँ पहुँच कर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे उन भिक्षुओं ने भगवान् को यह समाचार सुनाया कि—"भन्ते! अभी आप ने कुछ समय पूर्व जिस आयुष्मान् पूर्ण को संक्षिप्त उपदेश किया था वह मर (कालङ्कत हो) गया है। भन्ते! उसकी क्या गति या क्या भविष्य (अभिसम्पराय) होगा?",

"भिक्षुओ! पूर्ण कुलपुत्र पण्डित, सत्यवादी, धर्मानुसार आचरण करने वाला था। उसने धर्माचरण करते हुए मुझे भी कोई पीड़ा नहीं दी। भिक्षुओ! पूर्ण कुलपुत्र तो परिनिर्वाण को प्राप्त हो चुका है!"

भगवान् ने यह कहा। सन्तुष्ट हो भिक्षुओं ने भगवान् के भाषण का अभिनन्दन किया ॥

पुण्णोवादसुत्त समाप्त ॥

४६. नन्दकोवादसुत्तं

१. नन्दको अनुञ्ञातो भिक्खुनोवादाय

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति [N. 361] जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो महापजापति गोतमी पञ्चमत्तेहि भिक्खुनिसतेहि सद्धिं येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठिता खो महापजापति गोतमी भगवन्तं एतदवोच—"ओवदतु, भन्ते, भगवा भिक्खुनियो; अनुसासतु, भन्ते, भगवा भिक्खुनियो; करोतु, भन्ते, भगवा भिक्खुनीनं धम्मिं कथं" ति।

तेन खो पन समयेन थेरा भिक्खू भिक्खुनियो ओवदन्ति परियायेन। आयस्मा नन्दको न इच्छति भिक्खुनियो ओवदितुं परियायेन। अथ खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—"कस्स नु खो, आनन्द, अज्ज परियायो भिक्खुनियो ओवदितुं परियायेना" ति ? [B. 315]

"सब्बेहेव, भन्ते, कतो परियायो भिक्खुनियो ओवदितुं परियायेन। अयं भन्ते, आयस्मा नन्दको न इच्छति भिक्खुनियो ओवदितुं परियायेना" ति।

२. अथ खो भगवा आयस्मन्तं नन्दकं आमन्तेसि—"ओवद, नन्दक, भिक्खुनियो; अनुसास, नन्दक, भिक्खुनियो; करोहि त्वं, ब्राह्मण, भिक्खुनीनं

---

४६. नन्दकाववादसूत्र

१. भिक्षुणियों को उपदेशहेतु नन्दक को भगवान् का आदेश

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्तीस्थित जेतवन के अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित आराम में साधनाहेतु विराजमान थे। तब कभी महाप्रजापति गौतमी पाँच सौ भिक्षुणियों के साथ, जहाँ भगवान् विराजमान थे, वहाँ पहुँची। पहुँच कर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गयी। एक ओर बैठी महाप्रजापति गौतमी ने भगवान् से यह कहा—"भन्ते ! भगवान् भिक्षुणियों को उपदेश दें, धार्मिक अनुशासन करें, धार्मिक कथा कहें।"

उस समय स्थविर भिक्षु भिक्षुणियों को क्रमशः उपदेश किया करते थे। परन्तु आयुष्मान् नन्दक अपना क्रम (बारी) आने पर, भिक्षुणियों को उपदेश करना नहीं चाहते थे। तब भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द को बुलाया और पूछा—"आज भिक्षुणियों को उपदेश करने का किसका क्रम है ?"

"भन्ते ! सभी स्थविर भिक्षुओं ने अपना क्रम पूरा कर दिया है। भन्ते ! यह आयुष्मान् नन्दक, अपना क्रम आने पर भी, भिक्षुणियों को उपदेश नहीं करना चाहता।"

२. तब भगवान् ने आयुष्मान् नन्दक को बुलाकर आदेश दिया—"नन्दक ! भिक्षुणियों को उपदेश कर, अनुशासन कर, और, ब्राह्मण, उन्हें धार्मिक कथा कह।"

धम्मिं कथं" ति। "एवं, भन्ते" ति खो आयस्मा नन्दको भगवतो पटिस्सुत्वा [R. 271] पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सावत्थिं पिण्डाय पाविसि। सावत्थियं पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो अत्तदुतियो येन राजकारामो तेनुपसङ्कमि। अद्दसंसु खो ता भिक्खुनियो आयस्मन्तं नन्दकं दूरतो व आगच्छन्तं। दिस्वान आसनं पञ्ञापेसुं, उदकं च पादानं उपट्ठपेसुं। निसीदि खो आयस्मा नन्दको पञ्ञत्ते आसने। [N. 362] निसज्ज पादे पक्खालेसि। ता पि खो भिक्खुनियो आयस्मन्तं नन्दकं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु।

२. आयस्मतो नन्दकस्स पटिपुच्छकथा

३. एकमन्तं निसिन्ना खो ता भिक्खुनियो आयस्मा नन्दको एतदवोच— "पटिपुच्छकथा खो, भगिनियो, भविस्सति। तत्थ आजानन्तीहि—'आजानामा' तिस्स वचनीयं, न आजानन्तीहि—'न आजानामा' तिस्स वचनीयं। यस्सा वा पनस्स कङ्खा वा विमति वा अहमेव तत्थ पटिपुच्छितब्बो—'इदं, भन्ते, कथं? इमस्स क्वत्थो' " ति?

"एत्तकेन पि मयं, भन्ते, अय्यस्स नन्दकस्स अत्तमना अभिरद्धा यं नो अय्यो नन्दको पवारेती" ति।

"अच्छा, भन्ते" कह कर आयुष्मान् नन्दक भगवान् की आज्ञा स्वीकार कर पूर्वाह्न समय वस्त्रों से सुव्यवस्थित हो, पात्रचीवर ले, श्रावस्ती में भिक्षाचर्या के लिये प्रविष्ट हुए। श्रावस्ती में भिक्षा कर भोजनकर्म से निवृत्त हो, एक भिक्षु को अपने साथ (आत्मद्वितीय) लेकर जहाँ राजकाराम (भिक्षुणीनिवास) था वहाँ पहुँचे। भिक्षुणियों ने आयुष्मान् नन्दक को आते हुए दूर से ही देख लिया। उन्हें देखकर आसन बिछा दिया और पैर धोने के लिये जल रख दिया। आयुष्मान् नन्दक (वहाँ पहुँच कर) बिछे आसन पर बैठे और पैर धोए। वे भिक्षुणियाँ भी आयुष्मान् नन्दक को प्रणाम कर एक ओर बैठ गयीं।

२. आयुष्मान् नन्दक द्वारा प्रतिपृच्छा (प्रश्नोत्तर) कथा

३. एक ओर बैठी भिक्षुणियों को आयुष्मान् नन्दक ने यह कहा—"बहनो! अब प्रश्नोत्तर के रूप में धार्मिक कथा होगी। वहाँ जो जानती हैं वे 'जानती हूँ' कहें। जो नहीं जानतीं वे 'नहीं जानती' कहें। और जिसको कोई कांक्षा या सन्देह (विमति) हो उसे मुझसे ही पूछना चाहिये—'यह, भन्ते! कैसे? या इसका क्या अर्थ है?"

"भन्ते! आर्य नन्दक के इतना कहने से भी हम सन्तुष्ट हैं कि नन्दक हमें धार्मिक कथा कहने को सन्नद्ध तो हुए।"

४. "तं किं मञ्ञथ, भगिनियो, चक्खु निच्चं वा अनिच्चं वा" ति ?
"अनिच्चं, भन्ते"।
"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति ? "दुक्खं, भन्ते"।
"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता' " ति ? "नो हेतं, भन्ते"।
"तं किं मञ्ञथ, भगिनियो, सोतं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति ?
"अनिच्चं, भन्ते···पे०···
"घानं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति ? "अनिच्चं, भन्ते···
"जिव्हा निच्चा वा अनिच्चा वा" ति ? "अनिच्चा, भन्ते···
"कायो निच्चो वा अनिच्चो वा" ति ? "अनिच्चो, भन्ते···
"मनो निच्चो वा अनिच्चो वा" ति ? "अनिच्चो, भन्ते"।
"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं" ति ? "दुक्खं, भन्ते"।
"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणाम- [N. 363, B. 316, R. 272] धम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता' " ति ? "नो हेतं, भन्ते"। "तं किस्स हेतु" ?

---

४. "तो क्या मानती हो, बहनो ! कि चक्षु नित्य है या अनित्य ?"
"अनित्य है, भन्ते !"
"जो अनित्य है वह दुःखमय है या सुखमय ?"
"दुःखमय ही है, भन्ते !"
"तो जो अनित्य है, विनाशी है उसके विषय में क्या यह सोचना ठीक है—'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरी आत्मा है ?"
"भन्ते ! ऐसा तो नहीं है।"
"तो क्या मानती हो, बहनो ! श्रोत्र नित्य है या अनित्य ?
"अनित्य, भन्ते !"
"···घ्राण नित्य है या अनित्य ?" "अनित्य, भन्ते !" ···
"···जिह्वा नित्य है या अनित्य ?" "अनित्य, भन्ते !" ···
"···काय नित्य है या अनित्य ?" "अनित्य, भन्ते !" ···
"···मन नित्य है या अनित्य ?" "अनित्य, भन्ते !"···
"और जो अनित्य है वह दुःखमय···पूर्ववत्···आत्मा है ?" "नहीं भन्ते !"
"वह किस कारण ?"

"पुब्बेव नो एतं, भन्ते, यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय सुदिट्ठं—'इतिपिमे छ अज्झत्तिका आयतना अनिच्चा' " ति।

"साधु, साधु, भगिनियो! एवं हेतं, भगिनियो, होति अरियसावकस्स यथाभूतं सम्माप्पञ्ञाय पस्सतो। तं किं मञ्ञथ, भगिनियो, रूपा निच्चा वा अनिच्चा वा" ति? "अनिच्चा, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति? "दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता' " ति? "नो हेतं, भन्ते"।

"तं किं मञ्ञथ, भगिनियो, सद्दा निच्चा वा अनिच्चा वा" ति?

"अनिच्चा, भन्ते,…पे०…

"गन्धा निच्चा वा अनिच्चा वा ति?" अनिच्चा भन्ते"

"रसा निच्चा वा अनिच्चा वा" ति? "अनिच्चा, भन्ते…।

"फोट्ठब्बा निच्चा वा अनिच्चा वा" ति? "अनिच्चा, भन्ते…।

"धम्मा निच्चा वा अनिच्चा वा" ति? "अनिच्चा, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति? "दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्ख विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं--एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता' " ति? "नो हेतं, भन्ते"। "त किस्स हेतु"?

"भन्ते! यह पहले ही सम्यक्प्रज्ञा द्वारा समझ लिया गया है—'ये छह आध्यात्मिक आयतन अनित्य हैं।"

"ठीक है, भगनियो। ठीक है! आर्यश्रावकों को सम्यक्प्रज्ञा द्वारा समझने पर ऐसा ही ज्ञान होता है।

"तो क्या मानती हो, भगनियो! रूप नित्य है या अनित्य?" "अनित्य हैं, भन्ते!

"जो अनित्य है वह दुःखमय…?" "दुःखमय है भन्ते!"

"जो अनित्य है विनाशी है…… मेरी आत्मा है?" "नहीं भन्ते!"

"…शब्द नित्य हैं या अनित्य?" "अनित्य"…

"गन्ध नित्य हैं…?" "अनित्य…।"…

"रस नित्य हैं…?" "अनित्य…।"…

"स्प्रष्टव्य नित्य हैं…?" "अनित्य…।"…

"धर्म नित्य हैं…?" "अनित्य…।"…

"जो अनित्य हैं वह दुःखमय है या…" "दुःखमय है, भन्ते!"

जो अनित्य दुःखमय एवं विनाशी है…मेरी आत्मा है?"

"नहीं भन्ते!" वह किस कारण?

"पुब्बेव नो एतं, भन्ते, यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय सुदिट्ठं— [N. 364] इतिपिमे छ बाहिरा आयतना अनिच्चा' " ति ।

"साधु, साधु, भगिनियो ! एवं हेतं, भगिनियो, होति अरियसावकस्स यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सतो ।

"तं किं मञ्ञथ, भगिनियो, चक्खुविञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति ?

"अनिच्चं, भन्ते" ।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति ? "दुक्खं, भन्ते" ।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता' " ति ? "नो हेतं, भन्ते" ।

"तं किं मञ्ञथ, भगिनियो, सोतविञ्ञाणं निच्चं वा [R. 273] अनिच्चं वा" ति ? "अनिच्चं, भन्ते"··· ।

"घानविञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति ? "अनिच्चं, भन्ते"··· ।

"जिव्हाविञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति ? "अनिच्चं, भन्ते"··· ।

"कायविञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति ? "अनिच्चं, भन्ते"··· ।

"मनोविञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति ? "अनिच्चं, भन्ते" ।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा ति" ? "दुक्खं, भन्ते" ।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं-'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता' " ति ? "नो हेतं, भन्ते" ।

"तं किस्स हेतु" ?

"भन्ते ! यह पहले ही सम्यक्प्रज्ञा द्वारा यथाभूत रूप में समझ लिया गया है—'ये छह बाह्य आयतन अनित्य हैं ।"

"ठीक है, भगनियो ! ठीक है, सम्यक्प्रज्ञा द्वारा यथाभूत रूप में समझने पर आर्यश्रावकों को यही साक्षात्कार होता है ।

"तो क्या मानती हो, भगिनियो ! चक्षुर्विज्ञान नित्य है या अनित्य ?"

"अनित्य है, भन्ते !"

"जो अनित्य है वह दुःखमय है या···?" "दुःखमय, भन्ते !"

"जो अनित्य, दुःखमय, विनाशी है···मेरा आत्मा है ?" "ऐसा तो नहीं है, भन्ते" ।

"तो क्या मानती हो, भगिनियो ! श्रोत्रविज्ञान···घ्राणविज्ञान···जिह्वाविज्ञान··· कायविज्ञान···मनोविज्ञान नित्य है या अनित्य ?" "अनित्य है, भन्ते !"

"जो अनित्य है वह दुःखमय है···?" "दुःखमय···"

"जो दुःखमय, अनित्य एवं विनाशी है···मेरी आत्मा है ?"

"ऐसा तो नहीं है, भन्ते !"। "वह क्यों ?"

"पुब्बेव नो एतं, भन्ते, यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय सुदिट्ठं—'इतिपिमे छ विञ्ञाणकाया अनिच्चा" ' ति

"साधु, साधु, भगिनियो ! एवं हेतं, भगिनियो, होति अरियसावकस्स यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सतो।

[N. 365, B. 317] ५. "सेय्यथापि, भगिनियो, तेलप्पदीपस्स झायतो तेलं पि अनिच्चं विपरिणामधम्मं, वट्टि पि अनिच्चा विपरिणामधम्मा, अच्चि पि अनिच्चा विपरिणामधम्मा, आभा पि अनिच्चा विपरिणामधम्मा। यो नु खो, भगिनियो, एवं वदेय्य—'अमुस्स तेलप्पदीपस्स झायतो तेलं पि अनिच्चं विपरिणामधम्मं, वट्टि पि अनिच्चा विपरिणामधम्मा, अच्चि पि अनिच्चा विपरिणामधम्मा; या च ख्वास्स आभा सा निच्चा धुवा सस्सता अविपरिणामधम्मा' ति; सम्मा नु खो सो, भगिनियो, वदमानो वदेय्या" ति ?

"नो हेतं, भन्ते"।

"तं किस्स हेतु" ?

"अमुस्स हि, भन्ते, तेलप्पदीपस्स झायतो तेलं पि अनिच्चं विपरिणामधम्मं, वट्टि पि अनिच्चा विपरिणामधम्मा, अच्चि पि अनिच्चा विपरिणामधम्मा; पगेवस्स आभा अनिच्चा विपरिणामधम्मा" ति।

"एवमेव खो, भगिनियो, यो नु खो एवं वदेय्य--'छ खोमे अज्झत्तिका

"भन्ते ! इसके यथातथ के विषय में पहले ही सम्यक्प्रज्ञा द्वारा समझ लिया गया कि 'छहों विज्ञानकाय अनित्य हैं'।"

"ठीक है, ठीक है भगिनियो ! आर्यश्रावक को सम्यक्प्रज्ञा द्वारा इनके यथातथ के विषय में सोचने पर इनकी अनित्यता ही समझ में आती है।

५. "भगिनियो ! जैसे किसी जलते तैल प्रदीप का तैल भी अनित्य है, विनाशी है, बत्ती भी अनित्य है···उसकी लौ भी अनित्य है···उसकी आभा भी अनित्य है विनाशी है; बहनो ! वहाँ कोई यह कहे—'इस जलते तैल-प्रदीप का तैल भी अनित्य है, विनाशी है, बत्ती भी···इसकी अग्नि (आंच) भी अनित्य एवं विनाशी है, परन्तु इसकी आभा (प्रकाश) नित्य, ध्रुव, शाश्वत एवं अविनाशी है'—क्या बहनो ! वह ऐसा कहता हुआ ठीक कह रहा है ?"

"नहीं, भन्ते ! वह ठीक नहीं कह रहा है।" "वह किस लिये ?"

"क्यों कि उस जलते तैलदीपक के तैल, बत्ती, अग्नि आदि सभी कुछ अनित्य है, तो उसकी आभा तो और भी पहले अनित्य एवं विनाशी होगी।"

"इसी तरह बहनो ! जो यह कहे—'ये छह आध्यात्मिक आयतन (चक्षुरिन्द्रिय

आयतना अनिच्चा; यं च खो छ अज्झत्तिके आयतने पटिच्च पटिसंवेदेति सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं निच्चं धुवं सस्सतं अविपरिणामधम्मं ति; सम्मा नु खो सो, भगिनियो, वदमानो वदेय्या" ति ?

"नो हेतं, भन्ते"। '-तं किस्स हेतु" ?

"तज्जं तज्जं, भन्ते, पच्चयं पटिच्च तज्जा तज्जा वेदना उप्पज्जन्ति। तज्जस्स तज्जस्स पच्चयस्स निरोधा तज्जा तज्जा वेदना [R. 274] निरुज्झन्ती" ति।

"साधु, साधु, भगिनियो! एवं हेतं, भगिनियो, होति अरियसावकस्स यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सतो।

६. "सेय्यथापि, भगिनियो, महतो रुक्खस्स तिट्ठतो सारवतो मूलं पि अनिच्चं विपरिणामधम्मं, खन्धो पि अनिच्चो विपरिणामधम्मो, [N. 366] साखापलासं पि अनिच्चं विपरिणामधम्मं, छाया पि अनिच्चा विपरिणामधम्मा। यो नु खो, भगिनियो, एवं वदेय्य—'अमुस्स महतो रुक्खस्स तिट्ठतो सारवतो मूलं पि अनिच्चं विपरिणामधम्मं, खन्धो पि अनिच्चो विपरिणामधम्मो, साखापलासं पि अनिच्चं विपरिणामधम्मं, या च ख्वास्स छाया सा निच्चा धुवा सस्सता अविपरिणामधम्मा' ति; सम्मा नु खो सो भगिनियो, वदमानो वदेय्या" ति ? "नो हेतं, भन्ते"।

"तं किस्स हेतु" ?

आदि) तो अनित्य हैं; परन्तु इन छह आयतनों की अपेक्षा से होने वाला सुख, दुःख या अदुःख-असुख नित्य, ध्रुव, शाश्वत एवं अविनाशी है, क्या बहनो ! वह ऐसा कहता हुआ ठीक कह रहा है ?"

"नहीं, भन्ते ! वह ठीक नहीं कह रहा है।" "वह क्यों ?"

"वह इसलिये कि, भन्ते ! उस उस प्रत्यय (कारण) को लेकर वे वे सुखादि वेदनाएँ उत्पन्न होती हैं और उस उस प्रत्यय के निरोध से वे वे वेदनाएँ निरुद्ध होती हैं।"

"साधु, साधु भगिनियो !··· अनित्यता ही समझ में आती है।"

६. "बहनो ! जैसे एक सीधे खड़े, दृढ, सारवान् महान् वृक्ष का मूल भी अनित्य है···स्कन्ध भी···शाखा-पत्र भी···छाया भी···। वहाँ, बहनो ! जो यह कहे—'इस महान् वृक्ष का मूल, स्कन्ध, शाखापत्र तो अनित्य एवं विनाशी हैं; परन्तु इसकी यह जो छाया है वह नित्य ध्रुव शाश्वत एवं अविनाशी है, तो क्या बहनो ! वह ऐसा कहता हुआ ठीक कह रहा है ?' "नहीं भन्ते !"

"वह किस लिये !-'

"अमुस्स हि, भन्ते, महतो रुक्खस्स तिट्ठतो सारवतो मूलं पि अनिच्चं विपरिणामधम्मं, खन्धो पि अनिच्चो विपरिणामधम्मो, साखापलासं पि अनिच्चं विपरिणामधम्मं; पगेवस्स छाया अनिच्चा विपरिणामधम्मा" ति।

"एवमेव खो, भगिनियो, यो नु खो एवं वदेय्य—'छ योमे बाहिरा [B. 318] आयतना अनिच्चा। यं च खो छ बाहिरे आयतने पटिच्च पटिसंवेदेति सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं निच्चं धुवं सस्सतं अविपरिणामधम्मं' ति; सम्मा नु खो सो, भगिनियो, वदमानो वदेय्या" ति ?

"नो हेतं, भन्ते"। "तं किस्स हेतु" ?

"तज्जं तज्जं, भन्ते, पच्चयं पटिच्च तज्जा तज्जा वेदना उप्पज्जन्ति। तज्जस्स तज्जस्स पच्चयस्स निरोधा तज्जा तज्जा वेदना निरुज्झन्ती" ति।

"साधु, साधु, भगिनियो ! एवं हेतं, भगिनियो, होति अरियसावकस्स यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सतो।

७. "सेय्यथापि, भगिनियो, दक्खो गोघातको वा गोघातकन्तेवासी वा गाविं वधित्वा तिण्हेन गोविकन्तनेन गाविं सङ्कन्तेय्य अनुपहच्च अन्तरं [N. 367] मंसकायं अनुपहच्च बाहिरं चम्मकायं। यं यदेव तत्थ अन्तरा विलिमंसं अन्तरा नहारु अन्तरा बन्धनं तं तदेव तिण्हेन गोविकन्तनेन [R. 275] सञ्छिन्देय्य सङ्कन्तेय्य सम्पकन्तेय्य सम्परिकन्तेय्य। सञ्छि-

---

"भन्ते ! जब इस खड़े विशाल वृक्ष का मूल अनित्य, विनाशी है, स्कन्ध··· शाखापत्र अनित्य विनाशी है तो उसकी छाया तो (उन मूल आदि पर आधृत होने के कारण) उनसे भी पहले ही अनित्य एवं विनाशी होगी"।

"इसी तरह, बहनो ! जो यह कहे—'ये छह बाह्य आयतन तो अनित्य एवं विनाशी है, परन्तु इनकी अपेक्षा कर उत्पन्न होने वाली सुखा, दुःखा एवं अदुःख-असुखा वेदनाएँ नित्य है, अविनाशी हैं,' तो क्या वह ऐसा कहता हुआ ठीक कह रहा है ?" "नहीं, भन्ते !" "वह किस कारण ?"

"वह इसलिये, भन्ते ! कि उस उस प्रत्यय (कारण) को लेकर वे वे सुखादि वेदनाएँ उत्पन्न होती हैं और उस उस प्रत्यय के निरोध से वे वे वेदनाएँ निरुद्ध हो हो जाती हैं।"

"साधु, साधु भगिनियो !···अनित्यता ही समझ में आती है।"

७. जैसे, भगिनियो ! कोई चतुर पशुघातक (कसाई) या उसका सहायक किसी पशु को तीक्ष्ण शस्त्र से ऐसे काटे कि उसका भीतरी मांस या बाहरी चमड़ा कुछ भी विकृत न हो, भीतरी कोमल मांस, भीतरी नस (स्नायु) भी विकृत न हों; यों, छेद

न्दित्वा सङ्कन्तित्वा सम्पकन्तित्वा विधुनित्वा बाहिरं चम्मकायं तेनेव चम्मेन तं गावि पटिच्छादेत्वा एवं वदेय्य—'तथेवायं गावी संयुत्ता इमिना व चम्मेना' ति; सम्मा नु खो सो, भगिनियो वदमानो वदेय्या" ति ?

"नो हेतं, भन्ते"। "तं किस्स हेतु" ?

"अमुं हि, भन्ते, दक्खो गोघातको वा गोघातकन्तेवासी वा गावि वधित्वा तिण्हेन गोविकन्तनेन गावि सङ्कन्तेय्य अनुपहच्च अन्तरं मंसकायं अनुपहच्च बाहिरं चम्मकायं। यं यदेव तत्थ अन्तरा विलिमंसं अन्तरा नहारु अन्तरा बन्धनं तं तदेव तिण्हेन गोविकन्तनेन सञ्छिन्देय्य सङ्कन्तेय्य सम्पकन्तेय्य सम्परिकन्तेय्य। सञ्छिन्दित्वा सङ्कन्तित्वा सम्पकन्तित्वा सम्परिकन्तित्वा विधुनित्वा बाहिरं चम्मकायं तेनेव चम्मेन तं गावि पटिच्छादेत्वा किञ्चापि सो एवं वदेय्य—'तथेवायं गावी संयुत्ता इमिना व चम्मेना' ति; अथ खो सा गावी विसंयुत्ता तेनेव चम्मेना" ति।

"उपमा खो मे अयं, भगिनियो, कता अत्थस्स विञ्ञापनाय। अयमेवेत्थ अत्थो; 'अन्तरा मंसकायो' ति खो, भगिनियो, छन्नेतं अज्झत्तिकानं आयतनानं अधिवचनं; 'बाहिरो चम्मकायो' ति खो, भगिनियो, छन्नेतं बाहिरानं आयतनानं अधिवचनं; 'अन्तरा विलिमंसं, अन्तरा नहारु, अन्तरा बन्धनं ति खो, भगिनियो, नन्दीरागस्सेतं अधिवचनं; 'तिण्हं [B. 319] गोविकन्तनं' ति खो, भगिनियो, अरियायेतं पञ्ञाय अधिवचनं; यायं

कर, काटकर, बाहरी चमड़े को झाड़-फटकार कर उसी चमड़े में उस पशु को ढक कर वह यह कहे--'यह पशु वैसे ही, (पहले की तरह ही,) उस चर्म से युक्त है' बहनो! क्या वह ऐसा कहता हुआ ठीक (तथ्य) कह रहा है ?"

"नहीं, भन्ते! ऐसा तो नहीं है।" "वह किस कारण ?"

"उस चतुर पशुघातक ने तीक्ष्ण शस्त्र से पशु को उसके बाहरी चमड़े व भीतरी मांस स्नायुबन्धन आदि को सुरक्षित रखते हुए, काटकर उसके चमड़े से पुनः उस मृत पशु को ढक कर यह कह दिया कि यह पशु उसी चर्म से युक्त है; परन्तु वस्तुतः वह पशु उस चर्म से विसंयुक्त (पृथक्) ही है।"

"भगिनियो! प्रसङ्गागत बात को समझाने के लिये मैने तुमलोगों को इस पशुघातक द्वारा काटे गये पशु का दृष्टान्त दिया। इसका अर्थ यों समझो : यहाँ 'भीतरी माँस' से तात्पर्य है—छह आध्यात्मिक आयतन (चक्षु आदि), 'बाहरी चमड़े' से तात्पर्य है—छह बाह्य आयतन (रूप आदि) 'भीतरी चिकने मांस, स्नायुबन्धन' आदि से तात्पर्य है—नन्दी राग (तृष्णा)। 'तीक्ष्ण शस्त्र' से तात्पर्य है—आर्य प्रज्ञा। इसी

अरिया पञ्ञा अन्तरा किलेसं अन्तरा संयोजनं अन्तरा बन्धनं सञ्छिन्दति सङ्कन्तति सम्पकन्तति सम्परिकन्तति।

८. "सत्त खो पनिमे, भगिनियो, बोज्झङ्गा, येसं भावितत्ता बहुलीकतत्ता भिक्खु आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्ति पञ्ञाविमुत्ति दिट्ठेव [N. 368] धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति। कतमे सत्त? इध, भगिनियो, भिक्खु सतिसम्बोज्झङ्गं भावेति विवेकनिस्सितं विरागनिस्सितं निरोधनिस्सितं वोस्सग्गपरिणामिं, धम्मविचयसम्बोज्झङ्गं भावेति···पे० विरियसम्बोज्झङ्गं भावेति···पीतिसम्बोज्झङ्गं भावेति··· पस्सद्धिसम्बोज्झङ्गं भावेति···समाधिसम्बोज्झङ्गं भावेति···उपेक्खासम्बोज्झङ्गं भावेति विवेकनिस्सितं विरागनिस्सितं निरोधनिस्सितं वोस्सग्गपरिणामिं। इमे खो, भगिनियो, सत्त बोज्झङ्गा, येसं भावितत्ता बहुलीकतत्ता भिक्खु आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्ति पञ्ञाविमुत्ति दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरती" ति।

[R. 276] ९. अथ खो आयस्मा नन्दको ता भिक्खुनियो इमिना ओवादेन ओवदित्वा उय्योजेसि—"गच्छथ, भगिनियो, कालो" ति।

अथ खो ता भिक्खुनियो आयस्मतो नन्दकस्स भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा उट्ठायासना आयस्मन्तं नन्दकं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा

आर्य प्रज्ञा से आन्तरिक क्लेशों (मलों), भीतरी संयोजनों, एवं भीतरी बन्धनों को काटा जा सकता है।

८. "भगिनियो! ये सात बोध्यङ्ग हैं, जिनकी भावना से, बहुलीकरण से, अभ्यास से कोई भी साधक भिक्षु इसी जन्म में आस्रवों के क्षय से आस्रवरहित चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को स्वयं जानकर साक्षात्कार कर, साधना करता है। कौन से सात? यहाँ भगिनियो! कोई भिक्षु विवेक (एकान्तचिन्तन), वैराग्य, निरोध एवं त्याग से सम्बद्ध स्मृतिसम्बोध्यङ्ग···धर्मविचयसम्बोध्यङ्ग···वीर्यसम्बोध्यङ्ग···प्रीतिसम्बोध्यङ्ग··· प्रश्रब्धिसम्बोध्यङ्ग···उपेक्षासम्बोध्यङ्ग···समाधिसम्बोध्यङ्ग की भावना करता है। भगिनियो! ये सात सम्बोध्यङ्ग हैं जिनकी भावना से···साक्षात्कार कर साधना करता है।

९. तब आयुष्मान् नन्दक ने उन भिक्षुणियों को इस अववाद (उपदेश) से उपदिष्ट कर प्रेरित किया—"जाओ, भगिनियो! अब तुम्हारे जाने का समय हो गया है।"

तब वे भिक्षुणियाँ आयुष्मान् नन्दक के भाषण का अभिनन्दन, अनुमोदन कर, आसन से उठ, आयुष्मान् नन्दक को प्रणाम-प्रदक्षिणा कर, जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचीं। पहुँचकर प्रणाम कर एक ओर खड़ी हो गयीं। एक ओर खड़ी उन

येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। एकमन्तं ठिता खो ता भिक्खुनियो भगवा एतदवोच—"गच्छथ, भिक्खुनियो; कालो" ति। अथ खो ता भिक्खुनियो भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कमिंसु।

अथ खो भगवा अचिरपक्कन्तीसु तासु भिक्खुनीसु भिक्खू आमन्तेसि—"सेय्यथापि, भिक्खवे, तदहुपोसथे न होति बहुनो जनस्स कङ्खा वा विमति वा—'ऊनो नु खो चन्दो, पुण्णो नु खो चन्दो' ति, अथ खो ऊनो चन्दो त्वेव होति। एवमेव खो, भिक्खवे, ता भिक्खुनियो नन्दकस्स धम्मदेसनाय अत्तमना होन्ति नो च खो परिपुण्णसङ्कप्पा" ति।

३. दुतियम्पि नन्दको अनुञ्ञातो भिक्खुनोवादाय

१०. अथ खो भगवा आयस्मन्तं नन्दकं आमन्तेसि—"तेन हि त्वं, नन्दक, स्वेपि ता भिक्खुनियो तेनेवोवादेन ओवदेय्यासी" ति। "एवं, भन्ते" ति खो आयस्मा नन्दको भगवतो पच्चस्सोसि। [B. 320]

अथ खो आयस्मा नन्दको तस्सा रत्तिया अच्चयेन पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सावत्थिं पिण्डाय पाविसि। [N. 369]

भिक्षुणियों को, कुछ देर बाद, भगवान् ने कहा—"जाओ भिक्षुणियो ! अब समय हो गया है"। तब वे भिक्षुणियाँ भगवान् को प्रणाम-प्रदक्षिणा कर चली गयीं।

उन भिक्षुणियों के जाने के कुछ काल बाद भगवान् ने भिक्षुओं से कहा—"जैसे, भिक्षुओ ! कृष्णपक्षकी अमावस्या के उपोसथ के दिन प्रायः किसी भी व्यक्ति को यह आकांक्षा या संशय नहीं होता कि 'आज चन्द्रमा क्षीण क्यों है ? पूर्ण क्यों नहीं ?' क्योंकि उस दिन तो चन्द्रमा क्षीण होता ही है; इसी प्रकार, भिक्षुओ ! वे भिक्षुणियाँ नन्दक की नन्दक की धर्मदेशना से सन्तुष्ट तो हुईं परन्तु परिपूर्णसङ्कल्प नहीं हो सकीं।"

३. नन्दक को पुनः भिक्षुणियों को उपदेश का आदेश

१०. तब भगवान् ने आयुष्मान् नन्दक को बुला कर कहा—"तो तुम, नन्दक, कल भी इन भिक्षुणियों को यही उपदेश देना।" "अच्छा, भन्ते" कहकर नन्दक ने भगवान् का आदेश स्वीकार किया।

तब आयुष्मान् नन्दक उस रात्रि के बीतने के बाद पूर्वाह्ण समय वस्त्रों से सुव्यवस्थित हो... पूर्ववत्[1] ... प्रदक्षिणा कर चली गयीं।

---

१. यहाँ से पैरा संख्या १८ तक पीछे इसी सूत्र के पैरा संख्या १ (पृ० १५४८) से पैरा संख्या १० तक का पालिपाठ अक्षरशः दुहराया गया है। अतः इस अंश का हिन्दी रूपान्तर वहीं देखें।

सावत्थियं पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो अत्तदुतियो येन राजकारामो तेनुपसङ्कमि। अद्दसंसु खो ता भिक्खुनियो आयस्मन्तं नन्दकं दूरतो व आगच्छन्तं। दिस्वान आसनं पञ्ञापेसुं, उदकं च पादानं उपट्ठपेसुं। निसीदि खो आयस्मा नन्दको पञ्ञत्ते आसने। निसज्ज पादे पक्खालेसि। ता पि खो भिक्खुनियो आयस्मन्तं नन्दकं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ता भिक्खुनियो आयस्मा नन्दको एतदवोच—पटिपुच्छकथा खो, भगिनियो, भविस्सति। तत्थ आजानन्तीहि 'आजानामा' तिस्स वचनीयं, न आजानन्तीहि 'न आजानामा' तिस्स वचनीयं। यस्सा वा [R. 277] पनस्स कङ्खा वा विमति वा, अहमेव तत्थ पटिपुच्छितब्बो—'इदं, भन्ते, कथं; इमस्स क्वत्थो ?'" ति।

"एत्तकेन पि मयं, भन्ते, अय्यस्स नन्दकस्स अत्तमना अभिरद्धा यं नो अय्यो नन्दको पवारेती" ति।

११. "तं किं मञ्ञथ, भगिनियो, चक्खु निच्चं वा अनिच्चं वा" ति ?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं, त दुक्खं वा सुखं वा" ति ? "दुक्खं भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता' " ति ? "नो हेतं, भन्ते"।

"तं किं मञ्ञथ, भगिनियो, सोतं निच्चं वा अनिच्चं वा ति ?

"अनिच्चं, भन्ते…पे०…"

"घानं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति ?

"अनिच्चं, भन्ते…।"

"जिव्हा…कायो…मनो निच्चो वा अनिच्चो वा" ति ? "अनिच्चो, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा' " ति ? "दुक्खं, भन्ते"।

[N. 370] "यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता' " ति ?

"नो हेतं, भन्ते"। "तं किस्स हेतु ?"

"पुब्बेव नो एतं, भन्ते, यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय सुदिट्ठं—इतिपिमे छ अज्झत्तिका आयतना अनिच्चा' " ति।

"साधु साधु, भगिनियो ! एवं हेतं, भगिनियो, होति अरियसावकस्स यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सतो।

१२. "तं किं मञ्ञथ, भगिनियो, रूपा निच्चा वा अनिच्चा वा" ति ?

"अनिच्चा, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं, दुक्खं वा तं सुखं वा" ति ? "दुक्ख, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं-'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता' " ति ? [B. 321]

"नो हेतं, भन्ते"।

"तं किं मञ्ञथ, भगिनियो, सद्दा निच्चा वा अनिच्चा वा" ति ?

"अनिच्चा, भन्ते...पे०...।

"गन्धा निच्चा वा अनिच्चा वा ति ? अनिच्चा, भन्ते...

"रसा निच्चा वा अनिच्चा वा ति ? अनिच्चा, भन्ते...

"फोट्ठब्बा निच्चा वा अनिच्चा वा ति ? अनिच्चा, भन्ते ..

"धम्मा निच्चा वा अनिच्चा वा" ति ? "अनिच्चा, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं, दुक्खं वा तं सुखं वा" ति ? "दुक्खं भन्ते।"

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं--'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता' " ति ?

"नो हेतं भन्ते"। "तं किस्स हेतु" ?

"पुब्बेव नो एतं, भन्ते, यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय सुदिट्ठं- [N. 371] 'इतिपिमे छ बाहिरा आयतना अनिच्चा' ति।

"साधु साधु, भगिनियो ! एवं हेतं, भगिनियो, होति अरियसावकस्स यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सतो।

१३. "तं किं मञ्ञथ, भगिनियो, चक्खुविञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति ?

"सोतविञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति ? अनिच्चं, भन्ते...

"घानविञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति ? अनिच्चं, भन्ते...

"जिव्हाविञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति ? अनिच्चं, भन्ते ..

"कायविञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति ? अनिच्चं, भन्ते...

"मनोविञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति ? अनिच्चं भन्ते...

"यं पनानिच्चं, दुक्खं वा तं सुखं वा" ति ? "दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता" ति ?

"नो हेतं, भन्ते"। "तं किस्स हेतु" ?

"पुब्बेव नो एतं, भन्ते, यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय सुदिट्ठं—'इतिपिमे छ विञ्ञाणकाया अनिच्चा' " ति।

"साधु साधु, भगिनियो ! एवं हेतं, भगिनियो, होति अरियसावकस्स यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सतो।

१४. "सेय्यथापि, भगिनियो, तेलप्पदीपस्स झायतो तेलं पि अनिच्चं विपरिणामधम्मं, वट्टि पि अनिच्चा विपरिणामधम्मा, अच्चि पि अनिच्चा विपरिणामधम्मा, आभा पि अनिच्चा विपरिणामधम्मा। यो नु खो भगिनियो, एवं वदेय्य--'अमुस्स तेलप्पदीपस्स झायतो तेलं पि अनिच्चं विपरिणामधम्मं, वट्टि पि अनिच्चा विपरिणामधम्मा, अच्चि पि अनिच्चा विपरिणामधम्मा; या च ख्वास्स आभा सा निच्चा धुवा सस्सता अवि-[N. 372] परिणामधम्मा' ति; सम्मा नु खो सो, भगिनियो; वदमानो वदेय्या" ति ?

"नो हेतं, भन्ते"। "तं किस्स हेतु" ?

"अमुस्स हि, भन्ते, तेलप्पदीपस्स झायतो तेलं पि अनिच्चं विपरिणामधम्मं, वट्टि पि अनिच्चा विपरिणामधम्मा, अच्चि पि अनिच्चा विपरिणाम-[B. 322] धम्मा; पगेवस्स आभा अनिच्चा विपरिणामधम्मा" ति।

"एवमेव खो, भगिनियो, यो नु खो एवं वेदय्य—'छ खो मे अज्झत्तिका आयतना अनिच्चा। यं च खो अज्झत्तिके आयतने पटिच्च पटिसंवेदेति सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं निच्चं धुवं सस्सतं अविपरिणामधम्मं' ति; सम्मा नु खो सो, भगिनियो, वदमानो वदेय्या" ति ?

"नो हेतं, भन्ते"। "तं किस्स हेतु" ?

"तज्जं तज्जं, भन्ते, पच्चयं पटिच्च तज्जा तज्जा वेदना उप्पज्जन्ति। तज्जस्स तज्जस्स पच्चयस्स निरोधा तज्जा तज्जा निरुज्झन्ती" ति।

"साधु साधु, भगिनियो ! एवं हेतं, भगिनियो, होति अरियसावकस्स यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सतो।

१५. "सेय्यथापि, भगिनियो, महतो रुक्खस्स तिट्ठतो सारवतो मूलं पि अनिच्चं विपरिणामधम्मं, खन्धो पि अनिच्चो विपरिणामधम्मो, साखापलासं पि अनिच्चं विपरिणामधम्मं, छाया पि अनिच्चा विपरिणामधम्मा। यो नु खो, भगिनियो, एवं वदेय्य—'अमुस्स महतो रुक्खस्स तिट्ठतो सारवतो मूलं पि अनिच्चं विपरिणामधम्मं, खन्धो पि अनिच्चो विपरिणामधम्मो, साखापलासं पि अनिच्चं विपरिणामधम्मं; या च ख्वास्स छाया सा निच्चा धुवा सस्सता अविपरिणामधम्मा' ति; सम्मा नु खो सो भगिनियो, वदमानो वदेय्या" ति ?

[N. 373] "नो हेतं, भन्ते"। "तं किस्स हेतु ?"

"अमुस्स हि, भन्ते, महतो रुक्खस्स तिट्ठतो सारवतो मूलं पि अनिच्चं विपरिणामधम्मं, खन्धो पि अनिच्चो विपरिणामधम्मो, साखापलासं पि अनिच्चं विपरिणामधम्मं; पगेवस्स छाया अनिच्चा विपरिणामधम्मा" ति।

"एवमेव खो, भगिनियो, यो नु खो एवं वदेय्य—'छ खोमे बाहिरा आयतना अनिच्चा। यं च खो बाहिरे आयतने पटिच्च पटिसंवेदेति सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं निच्चं धुवं सस्सतं अविपरिणामधम्मं' ति; सम्मा नु खो सो, भगिनियो, वदमानो वदेय्या" ति ?

"नो हेतं, भन्ते"। "तं किस्स हेतु" ?

"तज्जं तज्जं, भन्ते, पच्चयं पटिच्च तज्जा तज्जा वेदना उप्पज्जन्ति। तज्जस्स तज्जस्स पच्चयस्स निरोधा तज्जा तज्जा वेदना निरुज्झन्ती" ति।

"साधु साधु, भगिनियो ! एवं हेतं, भगिनियो, होति अरियसावकस्स यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सतो।

१६. "सेय्यथापि, भगिनियो, दक्खो गोघातको वा गोघातकन्तेवासी वा गाविं वधित्वा तिण्हेन गोविकन्तनेन गाविं सङ्कन्तेय्य अनुपहच्च अन्तरं मंसकायं अनुपहच्च बाहिरं चम्मकायं। यं यदेव तत्थ अन्तरा [B. 323] विलिमंसं अन्तरा नहारु अन्तरा बन्धनं तं तदेव तिण्हेन गोविकन्तनेन सञ्छिन्देय्य सङ्कन्तेय्य सम्पकन्तेय्य सम्परिकन्तेय्य। सञ्छिन्दित्वा सङ्कन्तित्वा सम्पकन्तित्वा सम्परिकन्तित्वा विधुनित्वा बाहिरं चम्मकायं तेनेव चम्मेन तं गाविं पटिच्छादेत्वा एवं वदेय्य—'तथेवायं गावो संयुत्ता इमिना व चम्मेना' ति; सम्मा नु खो सो, भगिनियो, वदमानो वदेय्या" ति ?

"नो हेतं, भन्ते"। "तं किस्स हेतु ?" [N. 374]

"अमुं हि, भन्ते, दक्खो गोघातको वा गोघातकन्तेवासी वा गाविं वधित्वा तिण्हेन गोविकन्तनेन गाविं सङ्कन्तेय्य अनुपहच्च अन्तरं मंसकायं अनुपहच्च बाहिरं चम्मकायं। यं यदेव तत्थ अन्तरा विलिमंसं अन्तरा नहारु अन्तरा बन्धनं तं तदेव तिण्हेन गोविकन्तनेन सञ्छिन्देय्य सङ्कन्तेय्य सम्पकन्तेय्य सम्परिकन्तेय्य। सञ्छिन्दित्वा सङ्कन्तित्वा सम्पकन्तित्वा सम्परिकन्तित्वा विधुनित्वा बाहिरं चम्मकायं तेनेव चम्मेन तं गाविं पटिच्छादेत्वा किञ्चापि सो एवं वदेय्य—'तथेवायं गावी संयुत्ता इमिना व चम्मेना' ति; अथ खो सा गावी विसंयुत्ता तेनेव चम्मेना' " ति।

"उपमा खो मे अयं, भगिनियो, कता अत्थस्स विञ्ञापनाय। अयमेवेत्थ अत्थो—'अन्तरा मंसकायो' ति खो, भगिनियो, छन्नेतं अज्झत्तिकानं आयतनानं अधिवचनं; 'बाहिरो चम्मकायो' ति खो, भगिनियो, छन्नेतं बाहिरानं आयतनानं अधिवचनं; 'अन्तरा विलिमंसं अन्तरा नहारु अन्तरा बन्धनं' ति खो, भगिनियो, नन्दीरागस्सेतं अधिवचनं; 'तिण्हं गोविकन्तनं अन्तरा' ति खो, भगिनियो, अरियायेतं पञ्ञाय अधिवचनं; ,यायं अरिया

पञ्ञा अन्तरा किलेसं अन्तरा संयोजनं अन्तरा बन्धनं सञ्छिन्दति सङ्कन्तति सम्पकन्तति सम्परिकन्तति ।

१७. "सत्त खो पनिमे, भगिनियो, बोज्झङ्गा, येसं भावितत्ता बहुलीकतत्ता भिक्खु आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति। कतमे सत्त? इध, भगिनियो, भिक्खु सतिसम्बोज्झङ्गं भावेति विवेकनिस्सितं विरागनिस्सितं निरोधनिस्सितं वोस्सग्गपरिणामिं, धम्मविचयसम्बोज्झङ्गं भावेति···पे०···विरियसम्बोज्झङ्गं भावेति···पीतिसम्बोज्झङ्गं भावेति···पस्सद्धिसम्बोज्झङ्गं भावेति···समाधिसम्बोज्झङ्गं भावेति···उपेक्खासम्बोज्झङ्गं [B. 324] भावेति विवेकनिस्सितं विरागनिस्सितं निरोधनिस्सितं वोस्सग्गपरिणामिं। इमे खो, भगिनियो, सत्त बोज्झङ्गा येसं भावितत्ता बहुलीकतत्ता भिक्खु आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरती" ति ।

[N. 375] १८. अथ खो आयस्मा नन्दको ता भिक्खुनियो इमिना ओवादेन ओवदित्वा उय्योजेसि--"गच्छथ, भगिनियो; कालो" ति । अथ खो भिक्खुनियो आयस्मतो नन्दकस्स भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा ता उट्ठायासना आयस्मन्तं नन्दकं अभिवादेत्वा दक्खिणं कत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। एकमन्तं ठिता खो ता भिक्खुनियो भगवा एतदवोच—"गच्छथ, भिक्खुनियो; कालो" ति। अथ खो ता भिक्खुनियो भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कमिंसु ।

अथ खो भगवा अचिरपक्कन्तीसु तासु भिक्खुनीसु भिक्खू आमन्तेसि--"सेय्यथापि, भिक्खवे, तदहुपोसथे पन्नरसे न होति बहुनो जनस्स कङ्खा वा विमति वा--'ऊनो नु खो चन्दो, पुण्णो नु खो चन्दो' ति! अथ खो पुण्णो चन्दो त्वेव होति; एवमेव खो, भिक्खवे, ता भिक्खुनियो नन्दकस्स धम्मदेसनाय अत्तमना चेव परिपुण्णसङ्कप्पा च। तासं, भिक्खवे, पञ्चन्नं

तब भगवान् ने उन भिक्षुणियों के चले जाने के कुछ समय बाद भिक्षुओं को बुला कर कहा—"जैसे भिक्षुओ! पूर्णिमा के उपोसथ के समय प्रायः किसी भी व्यक्ति को यह आकांक्षा या विमति (संशय) नहीं होती कि चन्द्रमा कलाविहीन है, या पूर्ण है; क्यों कि उस दिन तो चन्द्रमा पूर्ण ही होता है, इसी तरह, भिक्षुओ! वे भिक्षुणियाँ भी नन्दक के धर्मोपदेश से सन्तुष्ट और परिपूर्णसङ्कल्प हो गयीं।

भिक्खुनिसतानं या पच्छिमिका ता भिक्खुनियो सोतापन्ना अविनिपात-धम्मा नियता सम्बोधिपरायना" ति।

१९. इदमवोच भगवा। अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति।

⊙

भिक्षुओ ! इन पाँच सौ भिक्षुणियों में से सबसे पिछली (पच्छिमिका) भिक्षुणी भी स्रोतआपन्न, निर्माणमार्ग से च्युत न होनेवाली, निर्वाणप्राप्ति में नियत (निश्चित) एवं सम्बोधिपरायण है।"

भगवान् ने यह कहा। सन्तुष्ट हुए भिक्षुओं ने भगवान् के इस भाषण का अभिनन्दन किया॥

नन्दकोवादसुत्त समाप्त॥

४७. चूलराहुलोवादसुत्तं

१. आयस्मा राहुलो आसवक्खये विनीतो

[N. 376] एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो भगवतो रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—"परिपक्का खो राहुलस्स [B. 325] विमुत्तिपरिपाचनीया धम्मा। यन्नूनाहं राहुलं उत्तरिं आसवानं खये विनेय्यं" ति। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सावत्थिं पिण्डाय पाविसि। सावत्थियं पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो आयस्मन्तं राहुलं आमन्तेसि—"गण्हाहि, राहुल, निसीदनं; येन अन्धवनं तेनुपसङ्कमिस्साम दिवाविहाराया" ति। "एवं, भन्ते" ति खो आयस्मा राहुलो भगवतो पटिस्सुत्वा निसीदनं आदाय [R. 278] भगवन्तं पिट्ठितो पिट्ठितो अनुबन्धि।

तेन खो पन समयेन अनेकानि देवतासहस्सानि भगवन्तं अनुबन्धानि होन्ति—"अज्ज भगवा आयस्मन्तं राहुलं उत्तरिं आसवानं खये विनेस्सती" ति। अथ खो भगवा अन्धवनं अज्झोगाहेत्वा अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले

---

४७. क्षुद्रराहुलाववादसूत्र

१. आयुष्मान् राहुल को आश्रवक्षय-साधनारत होने की प्रेरणा

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्तीस्थित, अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे।

तब एकान्त में ध्यानावस्थित भगवान् को यह विचार आया—"राहुल को विमुक्तिहेतु परिपाक होने योग्य धर्म (विचार) परिपक्व हो गये हैं। क्यों न मैं अब राहुल को आगे चित्तमलों (आस्रवों) के क्षयहेतु प्रेरित करूँ।" तब भगवान् प्रातःकाल वस्त्रों से सुव्यवस्थित हो, पात्र-चीवर ले, श्रावस्ती में भिक्षाहेतु प्रविष्ट हुए। श्रावस्ती में भिक्षाटन कर भोजनोपर्यन्त, भिक्षाकर्म से निवृत्त हो, आयुष्मान् राहुल को अपने पास बुलाया और कहा—"राहुल ! आसन लो, दिवाविहार (दिन की साधना) के लिये जहाँ अन्धवन है वहाँ चलेंगे।" "जैसी आज्ञा, भन्ते" कह कर आसन लेकर आयुष्मान् राहुल भगवान् के पीछे-पीछे चल पड़े।

उसी समय कई हजार देवता भी भगवान् का अनुगमन करने लगे कि—'आज भगवान् आयुष्मान् राहुल को आगे आस्रवों के क्षयहेतु प्रेरणा देते हुए उपदेश करेंगे।"

तब भगवान् अन्धवन में प्रविष्ट हो, किसी वृक्ष के नीचे राहुल द्वारा आसन

पञ्ञत्ते आसने निसीदि। आयस्मा पि खो राहुलो भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं राहुलं भगवा एतदवोच—

२. "तं किं मञ्ञसि, राहुल, चक्खु निच्चं वा अनिच्चं वा" ति ?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति ? "दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं [N. 377] समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता'" ति ?

"नो हेतं, भन्ते"।

"तं किं मञ्ञसि, राहुल, रूपा निच्चा वा अनिच्चा वा" ति ?

"अनिच्चा, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति ? "दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता'" ति ? "नो हेतं, भन्ते"।

"तं किं मञ्ञसि, राहुल, चक्खुविञ्ञाणं निच्चं वा अनिच्चं वा" ति ?

"अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं वा तं सुखं वा" ति ? "दुक्खं भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता'" ति ? "नो हेतं, भन्ते"।

"तं किं मञ्ञसि, राहुल, चक्खुसम्फस्सो निच्चो वा अनिच्चो [R. 279] वा" ति ? "अनिच्चो, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं, दुक्खं वा तं सुखं वा" ति ? "दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं, कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता'" ति ? "नो हेतं, भन्ते"।

बिछा दिये जाने पर विराजे। आयुष्मान् राहुल भी भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् राहुल को भगवान् ने यों देशना की—

२. "तो क्या मानते हो, राहुल ! चक्षु (इन्द्रिय) नित्य है या अनित्य !... पूर्ववत्[1]...।

"तो क्या मानते हो, राहुल ! चक्षुःसंस्पर्श (विषयेन्द्रिय संयोग) नित्य है या अनित्य है !...।

"तो क्या मानते, राहुल ! चक्षुःसंस्पर्श के कारण उत्पन्न वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान मत ज्ञान नित्य है या अनित्य !...।

१. द्र०--पीछे (नन्दकोवादसुत्त) पृ० १५४९।

"तं किं मञ्ञसि, राहुल, यमिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति [N. 378] वेदनागतं सञ्ञागतं सङ्खारगतं विञ्ञाणगतं तं पि निच्चं [B. 326] वा अनिच्चं वा" ति ? "अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं, दुक्खं वा तं सुखं वा" ति ? "दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि··· । "नो हेतं, भन्ते" ।···पे०···।

"तं किं मञ्ञसि, राहुल, यमिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदनागतं सञ्ञागतं सङ्खारगतं विञ्ञाणगतं तं पि निच्चं वा अनिच्चं वा" ति ? "अनिच्चं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं, दुक्खं वा तं सुखं वा" ति ? "दुक्खं, भन्ते"।

"यं पनानिच्चं दुक्खं विपरिणामधम्मं कल्लं नु तं समनुपस्सितुं—'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता' " ति ? "नो हेतं, भन्ते"।

३. "एवं पस्सं, राहुल, सुतवा अरियसावको चक्खुस्मिं निब्बिन्दति, रूपेसु निब्बिन्दति, चक्खुविञ्ञाणे निब्बिन्दति, चक्खुसम्फस्से निब्बिन्दति, यमिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदनागतं सञ्ञागतं सङ्खारगतं विञ्ञाणगतं तस्मिं पि निब्बिन्दति। सोतस्मिं निब्बिन्दति, सद्देसु निब्बि- [B. 327] न्दति···पे०···घानस्मिं···गन्धेसु···जिव्हाय···रसेसु···कायस्मिं ···फोट्ठब्बेसु···मनस्मिं···धम्मेसु···मनोविञ्ञाणे···मनोसम्फस्से निब्बिन्दति, [R. 280] यमिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदनागतं सञ्ञागतं

"तो क्या मानते हो, राहुल ! मनःसंस्पर्श के कारण उत्पन्न वेदना-संज्ञा-संस्कार-विज्ञानविषयक ज्ञान नित्य है या अनित्य ?" "अनित्य है, भन्ते !"

"तो जो अनित्य है वह दुःखमय है या सुखमय ?" "दुःखमय, भन्ते !"

"फिर जो दुःखमय अनित्य एवं विनाशी है उसके विषय में यह समझना उचित है कि 'यह मेरा है' या 'यह मैं हूँ' या 'यह मेरी आत्मा है ?" "नहीं भन्ते !"

३. "राहुल ! ऐसे विचार करता हुआ श्रुतवान् (बहुश्रुत) आर्य श्रावक चक्षु (इन्द्रिय) में उदासीनता को प्राप्त होता है, रूप (विषय) में···चक्षुर्विज्ञान में···चक्षुःसंस्पर्श में···चक्षुःसंस्पर्श के कारण उत्पन्न वेदना-संज्ञा-संस्कार-विज्ञान विषयक ज्ञान से उदासीनता को प्राप्त होता है। श्रोत्र···शब्द··घ्राण···गन्ध··· जिह्वा···रस···काय···स्प्रष्टव्य··मन···धम्म···मनोविज्ञान ··· मनःसंस्पर्श में निर्वेद (उदासीनता) को प्राप्त होता है। मनःसंस्पर्श प्रत्यय के कारण उत्पन्न वेदना-संज्ञा-संस्कार विज्ञानगत ज्ञान में भी निर्वेद को प्राप्त होता है। यहाँ तक कि एक समय उसे उस उदासीनता से भी वैराग्य हो जाता है। वह वैराग्य से विमुक्ति की

सङ्खारगतं विञ्ञाणगतं तस्मि पि निब्बिन्दति। निब्बिन्दं विरज्जति, विरागा विमुच्चिति। विमुत्तस्मि विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाती" ति।

४. इदमवोच भगवा। अत्तमनो आयस्मा राहुलो भगवतो [N. 379] भासितं अभिनन्दी ति।

इमस्मि च पन वेय्याकरणस्मि भञ्ञमाने आयस्मतो राहुलस्स अनुपादाय आसवेहि चित्तं विमुच्चि। तासं च अनेकानं देवतासहस्सानं विरजं वीतमलं धम्मचक्खुं उदपादि—'यं किञ्चि समुदयधम्मं सब्बं तं निरोधधम्मं' ति।

ओर बढ जाता है। विमुक्त होने पर उसे 'मैं विमुक्त हूँ'—यह ज्ञान हो जाता है। 'मेरा जन्ममरणप्रवाह क्षीण हो चुका, मेरी धर्मसाधना पूर्ण हुई, मुझे जो कुछ करना था कर चुका, अब मेरा यहाँ कोई कर्तव्य शेष नहीं है'—ऐसा ज्ञान हो जाता है।"

४. भगवान् ने यह कहा। सन्तुष्ट हो आयुष्मान् राहुल ने भगवान् के भाषण अभिनन्दन किया।

इस व्याख्यान के दिये जाते-जाते ही आयुष्मान् राहुल का चित्त (विकारों का) उपादान (ग्रहण) न कर उनसे मुक्त हो गया। और उन अनेक देवताओं में से हजारों को यह निर्मल धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ कि—'संसार में जो कुछ भी उत्पत्तिधर्मा है वह वस्तुतः निरोधधर्मा ही है'॥

राहुलोवादसुत्त समाप्त॥

४८. छछक्कसुत्तं

१. छ छक्कानि—उद्देसो

[N. 380] १. एवं मे सुतं । एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे । तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"भिक्खवो" ति । "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं । भगवा एतदवोच—"धम्मं वो, भिक्खवे, देसिस्सामि आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेस्सामि. यदिदं—छ छक्कानि । तं सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; भासिस्सामी" ति । "एवं, भन्ते" ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं । भगवा एतदवोच—

(१) "छ अज्झत्तिकानि आयतनानि वेदितब्बानि, (२) छ बाहिरानि आयतनानि वेदितब्बानि, (३) छ विञ्ञाणकाया वेदितब्बा, (४) छ फस्सकाया वेदितब्बा, (५) छ वेदनाकाया वेदितब्बा, (६) छ तण्हाकाया वेदितब्बा ।

२. छ अज्झत्तिकानि आयतनानि

२. " 'छ अज्झत्तिकानि आयतनानि वेदितब्बानी' ति—इति खो पनेतं

---

४८. षट्षट्कसूत्र

१. छह षट्कों का नामकीर्तन

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्तीस्थित, अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे । वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को 'भिक्षुओ' कह कर अपने सम्मुख बुलाया और भिक्षुओं ने "हाँ, भन्ते" कह कर भगवान् की आज्ञा स्वीकार की । भगवान् ने यों कहना प्रारम्भ किया—"भिक्षुओ ! अब मैं तुम्हें ऐसे धर्म का उपदेश करूँगा जो प्रारम्भ में, मध्य में और अन्त में भी कल्याणप्रद ही है, जो कि सार्थक है और जिसका एक-एक अक्षर अत्यावश्यक है, ऐकान्तिक (केवल) है, स्वयं में परिपूर्ण है, परिशुद्ध है, ब्रह्मचर्य (धर्मसाधना) को प्रकाशित करने वाला है जो कि ये छह षट्क हैं । उसे सुनो, अच्छी तरह मन में बैठा लो । कहता हूँ ।" "अच्छा भन्ते" कह कर भिक्षुओं ने स्वीकार किया । भगवान् बोले—

(१) छह आध्यात्मिक आयतन जानने चाहिये, (२) छह बाह्य आयतन··· (३) छह विज्ञानकाय··· (४) छह स्पर्शकाय··· (५) छह वेदनाकाय··· और (६) छह तृष्णाकाय जानने चाहिये ।

२. छह आध्यात्मिक आयतन

२. " 'छह आध्यात्मिक आयतन जानने चाहिये'—यह जो अभी मैंने पीछे

वुत्तं; किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं ? चक्खायतनं, सोतायतनं, घानायतनं, जिव्हायतनं, कायायतनं, मनायतनं। 'छ अज्झत्तिकानि आयत- [B. 328] नानि वेदितब्बानी' ति—इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं। इदं पठमं छक्कं। (१)

३. छ बाहिरानि आयतनानि

३. " 'छ बाहिरानि आयतनानि वेदितब्बानी' ति—इति [R. 281] खो पनेतं वुत्तं; किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं ? रूपायतनं, सद्दायतनं, गन्धायतनं, रसायतनं, फोट्ठब्बायतनं, धम्मायतनं। 'छ बाहिरानि आयतनानि वेदितब्बानी' ति—इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं। इदं दुतियं छक्कं। (२)

४. छ विञ्ञाणकाया

४. " 'छ विञ्ञाणकाया वेदितब्बा' ति—इति खो पनेतं [N. 381] वुत्तं; किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं ? चक्खुं च पटिच्च रूपे च उपज्जति चक्खुविञ्ञाणं, सोतं च पटिच्च सद्दे च उप्पज्जति सोतविञ्ञाणं, घानं च पटिच्च गन्धे च उप्पज्जति घानविञ्ञाणं, जिव्हं च पटिच्च रसे च उप्पज्जति जिव्हाविञ्ञाणं, कायं च पटिच्च फोट्ठब्बे च उप्पज्जति कायविञ्ञाणं, मनं च पटिच्च धम्मे च उप्पज्जति मनोविञ्ञाणं। 'छ विञ्ञाणकाया वेदितब्बा' ति—इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं। इदं ततियं छक्कं। (३)

कहा, यह किस कारण कहा ? चक्षुरायतन, श्रोत्रायतन, घ्राणायतन, जिह्वायतन, कायायतन एवं मनआयतन। 'छह आध्यात्मिक आयतन जानने चाहिये'—यह जो कहा, इन्हीं छह की अपेक्षा करके कहा। यह प्रथम षट्क हुआ। (१)

३. छह बाह्य आयतन

३. " 'छह बाह्य आयतनों को जानना चाहिये' यह जो कहा; वह किस कारण कहा ? रूपायतन, शब्दायतन, गन्धायतन, रसायतन, स्प्रष्टव्यायतन, एवं धर्मायतन। 'छह बाह्य आयतनों को जानना चाहिये'—यह जो कहा, यह इन छह की अपेक्षा करके कहा। यह द्वितीय षट्क हुआ। (२)

४. छह विज्ञानकाय

४. " 'छह विज्ञानकायों को जानना चाहिये'—यह जो कहा, किस कारण कहा ? चक्षुरिन्द्रिय द्वारा रूपों में चक्षुर्विज्ञान उत्पन्न होता है। श्रोत्र...घ्राण...जिह्वा...काय...मन इन्द्रिय द्वारा धर्मों में मनोविज्ञान उत्पन्न होता है। छह विज्ञानकायों की...अपेक्षा करके कहा। यह तृतीय षट्क हुआ। (३)

५. छ फस्सकाया

५. " 'छ फस्सकाया वेदितब्बा' ति—इति खो पनेतं वुत्तं; किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं ? चक्खुं च पटिच्च रूपे च उप्पज्जति चक्खुंविञ्ञाणं, तिण्णं सङ्गति फस्सो; सोतं च पटिच्च सद्दे च उप्पज्जति सोतविञ्ञाणं, तिण्णं सङ्गति फस्सो; घानं च पटिच्च गन्धे च उप्पज्जति घानविञ्ञाणं, तिण्णं सङ्गति फस्सो; जिव्हं च पटिच्च रसे च उप्पज्जति जिव्हाविञ्ञाणं, तिण्णं सङ्गति फस्सो; कायं च पटिच्च फोट्ठब्बे च उप्पज्जति कायविञ्ञाणं, तिण्णं सङ्गति फस्सो; मनं च पटिच्च धम्मे च उप्पज्जति मनोविञ्ञाणं, तिण्णं सङ्गति फस्सो। 'छ फस्सकाया वेदितब्बा' ति—इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं। इदं चतुत्थं छक्कं। (४)

६. छ वेदनाकाया

६. " 'छ वेदनाकाया वेदितब्बा' ति—इति खो पनेतं वुत्तं; किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं ? चक्खुं च पटिच्च रूपे च उप्पज्जति चक्खुविञ्ञाणं, तिण्णं सङ्गति फस्सो, फस्सपच्चया वेदना; सोतं च पटिच्च सद्दे च उप्पज्जति सोतविञ्ञाणं, तिण्णं सङ्गति फस्सो, फस्सपच्चया वेदना; घानं च पटिच्च गन्धे च उप्पज्जति घानविञ्ञाणं, तिण्णं सङ्गति फस्सो, फस्सपच्चया वेदना; जिव्हं च पटिच्च रसे च उप्पज्जति जिव्हाविञ्ञाणं, तिण्णं सङ्गति फस्सो, फस्सपच्चया वेदना; कायं च पटिच्च फोट्ठब्बे च उप्पज्जति
[B. 329] कायविञ्ञाणं, तिण्णं सङ्गति फस्सो, फस्सपच्चया
[N. 382] वेदना; मनं च पटिच्च धम्मे च उप्पज्जति मनोविञ्ञाणं,

---

५. छह स्पर्शकाय

५. " 'छह स्पर्शकायों को जानना चाहिये'—यह जो कहा, किस कारण कहा ? चक्षु द्वारा रूप में चक्षुर्विज्ञान उत्पन्न होता है। चक्षु, रूप और विज्ञान—इन तीनों का सङ्गम 'स्पर्श' कहलाता है। श्रोत्र द्वारा रूप में···घ्राण द्वारा गन्ध में··· जिह्वा द्वारा रस में···काय द्वारा स्प्रष्टव्य में···मन इन्द्रिय द्वारा धर्म में मनोविज्ञान उत्पन्न होता है। इन तीनों का सङ्गम 'स्पर्श' कहलाता है। 'छह स्पर्शकायों को जानना चाहिये' यह जो कहा इसी कारण कहा। यह चतुर्थ षट्क हुआ। (४)

६. छह वेदनाकाय

६. " 'छह वेदनाकायों को जानना चाहिये'—यह जो कहा, किस कारण से कहा ? चक्षु द्वारा रूप में चक्षुर्विज्ञान उत्पन्न होता है। तीनों का सङ्गम 'स्पर्श' कहलाता है। इस स्पर्श के कारण वेदना होती है। श्रोत्र···घ्राण···जिह्वा···काय···

तिण्णं सङ्गति फस्सो, फस्सपच्चया वेदना। 'छ वेदनाकाया वेदितब्बा' ति—इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं। इदं पञ्चमं [R. 282] छक्कं। (५)

७. छ तण्हाकाया

७. "'छ तण्हाकाया वेदितब्बा' ति—इति खो पनेतं वुत्तं, किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं? चक्खुं च पटिच्च रूपे च उप्पज्जति चक्खुविञ्ञाणं, तिण्णं सङ्गति फस्सो, फस्सपच्चया वेदना, वेदनापच्चया तण्हा; सोतं च पटिच्च सद्दे च उप्पज्जति सोतविञ्ञाणं···पे०···घानं च पटिच्च गन्धे च उप्पज्जति घानविञ्ञाणं···पे०···जिव्हं च पटिच्च रसे च उप्पज्जति जिव्हाविञ्ञाणं···पे०···कायं च पटिच्च फोट्ठब्बे च उप्पज्जति कायविञ्ञाणं···पे०···मनं च पटिच्च धम्मे च उप्पज्जति मनोविञ्ञाणं, तिण्णं सङ्गति फस्सो, फस्सपच्चया वेदना, वेदनापच्चया तण्हा। 'छ तण्हाकाया वेदितब्बा' ति—इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं। इदं छट्ठं छक्कं। (६)

८. अत्तदिट्ठि न उपपज्जति

८. "'चक्खु अत्ता' ति यो वदेय्य तं न उपपज्जति। चक्खुस्स उप्पादो पि वयो पि पञ्ञायति। यस्स खो पन उप्पादो पि वयो पि पञ्ञायति, 'अत्ता मे उप्पज्जति च वेति चा' ति इच्चस्स एवमागतं होति। तस्मा तं न

मन इन्द्रिय द्वारा धर्मों में मनोविज्ञान उत्पन्न होता है। इन तीनों का सङ्गम 'स्पर्श' कहलाता है। इस स्पर्श से वेदना होती है। यह पञ्चम षट्क हुआ। (५)

७. छह तृष्णाकाय

७. "'छह तृष्णाकायों को जानना चाहिये'—यह जो कहा, यह किस लिये कहा? चक्षु द्वारा रूप में···'स्पर्श' कहलाता है। स्पर्श से वेदना होती है और वेदना से तृष्णा उत्पन्न होती है। श्रोत्र···घ्राण···जिह्वा···काय···मन इन्द्रिय द्वारा···स्पर्श कहलाता है। स्पर्श के प्रत्यय से वेदना होती है और वेदना के प्रत्यय से तृष्णा उत्पन्न होती है। 'ये छह तृष्णाकाय जानने चाहिये'—यह जो कहा; वह इस कारण कहा। यह छठा षट्क हुआ। (६)

७. आत्मदृष्टि उत्पन्न नहीं होती

८. "'चक्षु आत्मा है'—यह जो कहता है उसे (आत्मदृष्टि की वास्तविकता) उत्पन्न नहीं होती। लोक में चक्षु का उत्पाद भी देखा जाता है और नाश भी। जिसका उत्पाद व नाश देखा गया हो उसके विषय में 'मेरी आत्मा उत्पन्न भी होती है नष्ट भी होती है'—यह समझ में आता है। अतः जो यह कहता है कि

उपपज्जति—'चक्खु अत्ता' ति यो वदेय्य। इति चक्खु अनत्ता।

" 'रूपा अत्ता' ति यो वदेय्य तं न उपपज्जति। रूपानं उप्पादो पि वयो पि पञ्ञायति। यस्स खो पन उप्पादो पि वयो पि पञ्ञायति, 'अत्ता मे उपज्जति च वेति चा' ति इच्चस्स एवमागतं होति। तस्मा तं न उपपज्जति—'रूपा अत्ता' ति यो वदेय्य। इति चक्खु अनत्ता, रूपा अनत्ता।

" 'चक्खुविञ्ञाणं अत्ता' ति यो वदेय्य तं न उपपज्जति। चक्खुविञ्ञाणस्स उप्पादो पि वयो पि पञ्ञायति। यस्स खो पन उप्पादो पि वयो पि पञ्ञायति, 'अत्ता मे उप्पज्जति च वेति चा' ति इच्चस्स एव- [N. 383] मागतं होति। तस्मा तं न उपपज्जति—'चक्खुविञ्ञाणं अत्ता' ति यो वदेय्य। इति चक्खु अनत्ता, रूपा अनत्ता, चक्खुविञ्ञाणं अनत्ता।

" 'चक्खुसम्फस्सो अत्ता' ति यो वदेय्य तं न उपपज्जति। चक्खुसम्फस्सस्स उप्पादो पि वयो पि पञ्ञायति। यस्स खो पन उप्पादो पि वयो पि पञ्ञायति, 'अत्ता मे उप्पज्जति च वेति चा' ति इच्चस्स एवमागतं होति। तस्मा तं न उपपज्जति—'चक्खुसम्फस्सो अत्ता' ति यो वदेय्य। [B. 330] इति चक्खु अनत्ता, रूपा अनत्ता, चक्खुविञ्ञाणं अनत्ता, चक्खुसम्फस्सो अनत्ता।

[R. 283] " 'वेदना अत्ता' ति यो वदेय्य तं न उपपज्जति। वेदनाय उप्पादो पि वयो पि पञ्ञायति। यस्स खो पन उप्पादो पि वयो पि पञ्ञायति, 'अत्ता मे उप्पज्जति च वेति चा' ति इच्चस्स एवमागतं होति। तस्मा तं न उपपज्जति—'वेदना अत्ता' ति यो वदेय्य। इति

'चक्षु आत्मा है', उसे (आत्मदृष्टिविषयक) वास्तविकता उत्पन्न नहीं होती; क्योंकि चक्षु तो आत्मरहित है।

" 'रूप आत्मा है'—ऐसा जो कहता है उसे··· क्योंकि जब चक्षुरिन्द्रिय आत्मारहित तो उसका विषय भी अनात्म ही होगा।

" 'चक्षुर्विज्ञान आत्मा है'—ऐसा जो कहता है उसे··· क्योंकि जब चक्षु भी अनात्मा है, रूप भी अनात्मा है तो उसका चक्षुर्विज्ञान भी अनात्म ही होगा।

" 'चक्षुःसंस्पर्श आत्मा है'—ऐसा जो कहता है उसे··· क्योंकि चक्षु, रूप, चक्षुर्विज्ञान ही जब अनात्म हैं तो चक्षुः संस्पर्श को तो अनात्म होना ही है।

" 'वेदना आत्मा है'—ऐसा जो कहता है, उसे··· क्योंकि जब इन्द्रिय, विषय और उनका संगम (स्पर्श) अनात्म है तो उसकी वेदना भी अनात्म ही होगी।

चक्खु अनत्ता, रूपा अनत्ता, चक्खुविञ्ञाणं अनत्ता, चक्खुसम्फस्सो अनत्ता, वेदना अनत्ता।

" 'तण्हा अत्ता' ति यो वदेय्य तं न उपपज्जति। तण्हाय उप्पादो पि वयो पि पञ्ञायति। यस्स खो पन उप्पादो पि वयो पि पञ्ञायति, 'अत्ता मे उप्पज्जति च वेति चा' ति इच्चस्स एवमागतं होति। तस्मा तं न उपपज्जति—'तण्हा अत्ता' ति यो वदेय्य। इति चक्खु अनत्ता, रूपा अनत्ता, चक्खुविञ्ञाणं अनत्ता, चक्खुसम्फस्सो अनत्ता, वेदना अनत्ता, तण्हा अनत्ता।

९. " 'सोतं अत्ता' ति यो वदेय्य…पे०…घानं अत्ता ति यो वदेय्य…पे०…जिव्हा अत्ता ति यो वदेय्य…पे०…कायो अत्ता ति यो वदेय्य…पे०…मनो अत्ता ति यो वदेय्य तं न उपपज्जति। मनस्स उप्पादो पि वयो पि पञ्ञायति। यस्स खो पन उप्पादो पि वयो पि पञ्ञायति, 'अत्ता मे उप्पज्जति च वेति चा' ति इच्चस्स एवमागतं होति। तस्मा तं न उपपज्जति—'मनो अत्ता' ति यो वदेय्य। इति मनो अनत्ता।

" 'धम्मा अत्ता' ति यो वदेय्य तं न उपपज्जति। धम्मानं उप्पादो [N. 384] पि वयो पि पञ्ञायति। यस्स खो पन उप्पादो पि वयो पि पञ्ञायति, 'अत्ता मे उप्पज्जति च वेति चा' ति इच्चस्स एवमागतं होति। तस्मा तं न उपपज्जति—'धम्मा अत्ता' ति यो वदेय्य। इति मनो अनत्ता, धम्मा अनत्ता।

" 'मनोविञ्ञाणं अत्ता' ति यो वदेय्य तं न उपपज्जति। मनोविञ्ञाणस्स उप्पादो पि वयो पि पञ्ञायति। यस्स खो पन उप्पादो पि वयो पि पञ्ञायति, 'अत्ता मे उप्पज्जति—'मनोविञ्ञाणं अत्ता' ति यो वदेय्य। [B. 331] इति मनो अनत्ता, धम्मा अनत्ता, मनोविञ्ञाणं अनत्ता।

" 'मनोसम्फस्सो अत्ता' ति यो वदेय्य तं न उपपज्जति। मनोसम्फस्सस्स उप्पादो पि वयो पि पञ्ञायति। यस्स खो पन उप्पादो पि वयो पि

(इसी तरह) "तृष्णा आत्मा है'—ऐसा जो कहता है, उसे…क्योंकि इन्द्रिय से वेदना तक सभी के अनात्म होने पर (तद्विषयक) तृष्णा भी अनात्म होगी ही।

९. " 'श्रोत्र आत्मा है'…'घ्राण आत्मा है'… 'जिह्वा आत्मा है' …'काय आत्मा है' …'मन आत्मा है'—ऐसा जो कहे, उसे वास्तविक आत्मदृष्टि की समझ नहीं है। (क्योंकि) मन का उत्पाद भी देखा जाता है, विनाश भी। जिसका उत्पाद-विनाश होता है, इस उत्पाद-विनाश के रहते उसको मनोविषयक आत्मदृष्टि समझ में नहीं आती। जब कि मन (वस्तुतः) अनात्म है।

" 'धर्म आत्मा है'—ऐसा जो कहे, उसे…जब कि धर्म अनित्य है।

पञ्ञायति, 'अत्ता मे उप्पज्जति च वेति चा' ति इच्चस्स एवमागतं होति। तस्मा तं न उपपज्जति—'मनोसम्फस्सो अत्ता' ति यो वदेय्य। इति मनो अनत्ता, धम्मा अनत्ता, मनोविञ्ञाणं अनत्ता, मनोसम्फस्सो अनत्ता।

"'वेदना अत्ता' ति यो वदेय्य तं न उपपज्जति। वेदनाय उप्पादो पि [R. 284] वयो पि पञ्ञायति। यस्स खो पन उप्पादो पि वयो पि पञ्ञायति, 'अत्ता मे उप्पज्जति च वेति चा' ति इच्चस्स एवमागतं होति। तस्मा तं न उपपज्जति--'वेदना अत्ता' ति यो वदेय्य। इति मनो अनत्ता, धम्मा अनत्ता, मनोविञ्ञाणं अनत्ता, मनोसम्फस्सो अनत्ता, वेदना अनत्ता।

"'तण्हा अत्ता'' ति यो वदेय्य तं न उपपज्जति। तण्हाय उप्पादो पि वयो पि पञ्ञायति। यस्स खो पन उप्पादो पि वयो पि पञ्ञायति, 'अत्ता मे उप्पज्जति च वेति चा' ति इच्चस्स एवमागतं होति। तस्मा तं न उपपज्जति--'तण्हा अत्ता' ति यो वदेय्य। इति मनो अनत्ता, धम्मा अनत्ता, मनोविञ्ञाणं अनत्ता, मनोसम्फस्सो अनत्ता, वेदना अनत्ता, तण्हा अनत्ता।

६. सक्कायसमुदयगामिनी पटिपदा

[N. 385] १०. "अयं खो पन, भिक्खवे, सक्कायसमुदयगामिनी पटिपदा--चक्खुं 'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता' ति समनुपस्सति; रूपे 'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता' ति समनुपस्सति; चक्खुविञ्ञाणं 'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता' ति समनुपस्सति; चक्खुसम्फस्सं 'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता' ति समनुपस्सति; वेदनं…तण्हं… सोतं…पे०…घानं…पे०…जिव्हं…पे०…कायं…पे०…मनं धम्मे [B. 332] मनोविञ्ञाणं…मनोसम्फस्सं…वेदनं…तण्हं 'एतं मम, एसोहमस्मि, एसो मे अत्ता' ति समनुपस्सति।

"'मनोविज्ञान'…मनःसंस्पर्श…वेदना…'तृष्णा आत्मा है'--ऐसा जो कहे, उसे…जब कि तृष्णा अनित्य है।

९. सत्कायसमुदयगामी मार्ग

१०. "भिक्षुओ! यह सत्काय (आत्मवाद) की दृष्टि की ओर ले जाने वाला मार्ग है, जो चक्षुरिन्द्रिय के बिषय में यह समझे—'यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरा आत्मा है'। रूप…चक्षुविज्ञान…चक्षुः संस्पर्श…वेदना…तृष्णा…यह मेरी आत्मा है।

"श्रोत्र … घ्राण … जिह्वा…काय…मन…धर्म… मनोविज्ञान…मनः संस्पर्श… वेदना…तृष्णा के विषय में यह समझे कि यह मेरा है, यह मैं हूँ, यह मेरी आत्मा है।

१०. सक्कायनिरोधगामिनी पटिपदा

११. "अयं खो पन, भिक्खवे, सक्कायनिरोधगामिनी पटिपदा--चक्खुं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति समनुपस्सति, रूपे 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति समनुपस्सति, चक्खुविञ्ञाणं···चक्खुसम्फस्सं···वेदनं···तण्हं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति समनुपस्सति; सोतं···पे॰···घानं···पे॰···जिव्हं···पे॰···कायं···पे॰···मनं···धम्मे···मनोविञ्ञाणं···मनोसम्फस्सं···वेदनं ···पे॰ ··· तण्हं 'नेतं [N. 386] मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति समनुपस्सति। [R. 285]

११. सानुसयो न दुक्खस्सन्तकरो होति

१२. "चक्खुं च, भिक्खवे, पटिच्च रूपे च उप्पज्जति चक्खुविञ्ञाणं, तिण्णं सङ्गति फस्सो, फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा। सो सुखाय वेदनाय फुट्ठो समानो अभिनन्दति अभिवदति अज्झोसाय तिट्ठति। तस्स रागानुसयो अनुसेति। दुक्खाय वेदनाय फुट्ठो समानो सोचति किलमति परिदेवति उरत्तालिं कन्दति, सम्मोहं [B. 333] आपज्जति। तस्स पटिघानुसयो अनुसेति। अदुक्खमसुखाय वेदनाय फुट्ठो

---

१०. सत्कायनिरोधगामी मार्ग

११. "और भिक्षुओ! यह सत्कायदृष्टि से दूर हटाने (निरोध) वाला मार्ग है जिसके सहारे चक्षुरिन्द्रिय के विषय में यह समझे कि यह मेरी नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरी आत्मा नहीं है'। रूप···चक्षुर्विज्ञान···वेदना···तृष्णा···।

"श्रोत्र···घ्राण···जिह्वा ··· काय···मन··· धर्म···मनोविज्ञान···मनःसंस्पर्श ··· तद्विषयक वेदना···तद्विषयक तृष्णा के विषय में यह समझे कि 'यह मेरी नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरी आत्मा नहीं है'।

११. अनुशयों की उत्पत्ति दुःखविनाशक नहीं होती

१२. "चक्षुरिन्द्रिय के कारण रूप में जो चक्षुर्विज्ञान उत्पन्न होता है, यह (चक्षु, रूप और चक्षुर्विज्ञान) तीनों का सङ्गम ही 'स्पर्श' कहलाता है। इस स्पर्श के कारण उसे सुखा, दुःखा या अदुःख-असुखा वेदनाएँ उत्पन्न होती हैं। वह सुखा वेदना से संयुक्त हुआ व्यक्ति उस वेदना का अभिनन्दन, स्वागत एवं अध्यवसाय कर बैठता है। तब उसका रागानुशय बढ़ने लगता है। इसी तरह दुःखा वेदना से संयुक्त हुआ व्यक्ति चिन्ता, शोक, विलाप करने लगता है, छाती पीटता है, मूर्च्छित होता है। तब उसका प्रतिघानुशय (द्वेष) बढने लगता है। और अदुःख-असुख वेदना से संयुक्त हुआ व्यक्ति उस वेदना के कारण

समानो तस्सा वेदनाय समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं नप्पजानाति। तस्स अविज्जानुसयो अनुसेति। सो वत, भिक्खवे, सुखाय वेदनाय रागानुसयं अप्पहाय, दुक्खाय वेदनाय पटिघानुसयं अप्पटिविनोदेत्वा, अदुक्खमसुखाय वेदनाय अविज्जानुसयं असमूहनित्वा, अविज्जं अप्पहाय विज्जं अनुप्पादेत्वा दिट्ठेव धम्मे दुक्खस्सन्तकरो भविस्सती ति—नेतं ठानं विज्जति।

"सोतं च भिक्खवे, पटिच्च सद्दे च उप्पज्जति सोतविञ्ञाणं…पे०… घानं च, भिक्खवे, पटिच्च गन्धे च उप्पज्जति घानविञ्ञाणं…पे०…जिव्हं च, भिक्खवे, पटिच्च रसे च उप्पज्जति जिव्हाविञ्ञाणं…पे०…कायं च, भिक्खवे, पटिच्च फोट्ठब्बे च उप्पज्जति कायविञ्ञाणं…पे०…मनं च, भिक्खवे, पटिच्च धम्मे च उप्पज्जति मनोविञ्ञाणं, तिण्णं सङ्गति फस्सो, फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा। सो सुखाय वेदनाय फुट्ठो समानो अभिनन्दति अभिवदति अज्झोसाय तिट्ठति। [N. 387] तस्स रागानुसयो अनुसेति। दुक्खाय वेदनाय फुट्ठो समानो सोचति किलमति परिदेवति उरत्ताळिं कन्दति सम्मोहं आपज्जति। तस्स पटिघानुसयो अनुसेति। अदुक्खमसुखाय वेदनाय फुट्ठो समानो तस्सा वेदनाय समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं नप्पजानाति। तस्स अविज्जानुसयो अनुसेति। सो वत, भिक्खवे, सुखाय वेदनाय रागानुसयं अप्पहाय दुक्खाय वेदनाय पटिघानुसयं अप्पटिविनोदेत्वा अदुक्खमसुखाय वेदनाय अविज्जानुसयं असमूहनित्वा अविज्जं अप्पहाय विज्जं अनुप्पादेत्वा दिट्ठेव धम्मे दुक्खस्सन्तकरो भविस्सती ति—नेतं ठानं विज्जति।

(उस वेदना के) समुदय (उत्पत्ति), अस्तङ्गम (नाश), आस्वाद, दुष्परिणाम (आदीनव) और निःसरण (उससे छुटकारे का उपाय) यथार्थतया नहीं जान पाता; क्योंकि उसे उस समय अविद्यानुशय घेरे रहता है। ऐसा व्यक्ति, भिक्षुओ ! सुखा वेदना से उत्पन्न रागानुशय को विना हटाये, दुःखा वेदना से उत्पन्न प्रतिघानुशय को विना दूर किये और अदुःख-असुखा वेदना से उत्पन्न अविद्यानुशय का विना प्रहाण किये, अविद्या को विना छोड़े, विद्या को विना उत्पन्न किये, अपने इसी जीवनकाल में दुःखों का अन्त कर पायेगा—यह सम्भव नहीं है।

"भिक्षुओ ! श्रोत्रेन्द्रिय के कारण शब्द में…पूर्ववत्…घ्राण…जिह्वा…काय… मन…विद्या को विना उत्पन्न किये अपने इसी जीवनकाल में दुःखों का अन्त कर पायेगा—यह सम्भव नहीं है।

१२. अनासवो दुक्खस्सन्तकरो होति

१३. "चक्खुं च, भिक्खवे, पटिच्च रूपे च उप्पज्जति [R. 286] चक्खुविञ्ञाणं, तिण्णं सङ्गति फस्सो, फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा। सो सुखाय वेदनाय फुट्ठो समानो नाभिनन्दति नाभिवदति नाज्झोसाय तिट्ठति। तस्स रागानुसयो नानुसेति। दुक्खाय वेदनाय फुट्ठो समानो न सोचति न किलमति न परिदेवति न न उरत्ताळिं कन्दति न सम्मोहं आपज्जति। तस्स पटिघानुसयो नानुसेति। अदुक्खमसुखाय वेदनाय फुट्ठो समानो तस्सा वेदनाय समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं पजानाति। [B. 334] तस्स अविज्जानुसयो नानुसेति। सो वत, भिक्खवे, सुखाय वेदनाय रागानुसयं पहाय दुक्खाय वेदनाय पटिघानुसयं पटिविनोदेत्वा अदुक्खमसुखाय वेदनाय अविज्जानुसयं समूहनित्वा अविज्जं पहाय विज्जं उप्पादेत्वा दिट्ठेव धम्मे दुक्खस्सन्तकरो भविस्सती ति—ठानमेतं विज्जति।

"सोतं च, भिक्खवे, पटिच्च सद्दे च उप्पज्जति सोतविञ्ञाणं…पे०… घानं च भिक्खवे, पटिच्च गन्धे च उप्पज्जति घानविञ्ञाणं…पे०…जिव्हं च, भिक्खवे, पटिच्च रसे च उप्पज्जति जिव्हाविञ्ञाणं…पे०…कायं च भिक्खवे, पटिच्च फोट्ठब्बे च उप्पज्जति कायविञ्ञाणं…पे०…मनं च भिक्खवे, पटिच्च धम्मे च उप्पज्जति मनोविञ्ञाणं, तिण्णं सङ्गति फस्सो,

---

१२. चित्तविकाररहित साधक ही अपने दुःखों का अन्त कर पाता है

१३. "भिक्षुओ ! चक्षु के कारण रूप में चक्षुर्विज्ञान उत्पन्न होता है, यह इन तीनों का सङ्गम ही स्पर्श कहलाता है। इस स्पर्श के कारण उसे सुखा, दुःखा या अदुःख-असुखा वेदनाएँ उत्पन्न होती हैं। वह सुखा वेदना से संयुक्त हुआ कोई व्यक्ति उस वेदना का अभिनन्दन, स्वागत या अध्यवसाय नहीं करता। यों उसका रागानुशय नहीं बढता। इसी तरह दुःखा वेदना से संस्पृष्ट हुआ व्यक्ति भी न चिन्ता, शोक, विलाप करता है, न छाती पीटता है, न मूर्च्छित होता है। अतः उसका प्रतिघानुशय भी नहीं बढता। और अदुःख-असुखा वेदना से संयुक्त हुआ व्यक्ति भी उस वेदना के उत्पत्ति-विनाश, आस्वाद, दोष, उससे छुटकारे का उपाय ठीक तरह से जानने में लगा रहता है। तब उसे अविद्यानुशय नहीं घेरता। भिक्षुओ ! ऐसे व्यक्ति सुखा वेदना में रागानुशय को, दुःखा वेदना में प्रतिघानुशय को और अदुःख-असुखा वेदना में अविद्यानुशय को हटा कर, दूर कर, विद्या को उत्पन्न कर इसी जन्म में अपने समग्र दुःखों का अन्त कर पायेंगे—यह सम्भव है।

फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा। सो [N. 388] सुखाय वेदनाय फुट्ठो समानो नाभिनन्दति नाभिवदति नाज्झोसाय तिट्ठति। तस्स रागानुसयो नानुसेति। दुक्खाय वेदनाय फुट्ठो समानो न सोचति न किलमति न परिदेवति न उरत्तालिं कन्दति न सम्मोहं आपज्जति। तस्स पटिघानुसयो नानुसेति अदुक्खमसुखाय वेदनाय फुट्ठो समानो तस्सा वेदनाय समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं पजानाति। तस्स अविज्जानुसयो नानुसेति। सो वत, भिक्खवे, सुखाय वेदनाय रागानुसयं पहाय, दुक्खाय वेदनाय पटिघानुसयं पटिविनोदेत्वा, अदुक्खमसुखाय वेदनाय अविज्जानुसयं समूहनित्वा अविज्जं पहाय विज्जं उप्पादेत्वा दिट्ठेव धम्मे दुक्खस्सन्तकरो भविस्सती ति—ठानमेतं विज्जति।

१४. "एवं पस्सं, भिक्खवे, सुतवा अरियसावको चक्खुस्मिं निब्बिन्दति, रूपेसु निब्बिन्दति, चक्खुविञ्ञाणे निब्बिन्दति, चक्खुसम्फस्से निब्बिन्दति, वेदनाय निब्बिन्दति, तण्हाय निब्बिन्दति; सोतस्मिं निब्बिन्दति, सद्देसु निब्बिन्दति···पे०···घानस्मिं निब्बिन्दति, गन्धेसु निब्बिन्दति··· जिव्हाय निब्बिन्दति, रसेसु निब्बिन्दति,··· कायस्मिं निब्बिन्दति, फोट्ठब्बेसु निब्बिन्दति···मनस्मिं निब्बिन्दति, धम्मेसु निब्बिन्दति, मनोविञ्ञाणे निब्बिन्दति, मनोसम्फस्से निब्बिन्दति, वेदनाय निब्बिन्दति, [R.287] तण्हाय निब्बिन्दति। निब्बिन्दं विरज्जति, विरागा विमु- [B, 335] च्चति। विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाती" ति।

"भिक्षुओ ! श्रोत्र के कारण शब्द में···पूर्ववत्···घ्राण···जिह्वा···काय···मन··· विद्या को उत्पन्न कर इसी जन्म में अपने दुःखों का अन्त कर पायेंगे—यह सम्भव है।

१४. "भिक्षुओ ! इस प्रकार सोचते-विचारते चिन्तन करते कोई बहुश्रुत आर्यश्रावक चक्षु में···रूप में···चक्षुर्विज्ञान में···चक्षुःसंस्पर्श में···तज्जनित वेदना में···तज्जनित तृष्णा में निर्वेद (औदासीन्य) प्राप्त करता है। श्रोत्र···शब्द···; घ्राण···गन्ध; जिह्वा···रस···; काय···स्प्रष्टव्य···; मन···धर्म···मनोविज्ञान···मनःसंस्पर्श···तज्जनित वेदना···तज्जनित तृष्णा में निर्वेद करता है। इस निर्वेद से वह वैराग्य की ओर बढता है तथा वैराग्य के सहारे एक दिन विमुक्त हो ही जाता है। विमुक्त होने पर, उसे 'मैं विमुक्त हो गया'—यह समझ में आ जाता है। 'मेरी जाति क्षीण हो चुकी है, मेरी धर्मसाधना पूर्ण हो चुकी है, मेरा कर्तव्य पूरा हो गया है। अब मुझे आगे करने को कुछ नहीं बचा'—यह भी वह समझ लेता है।"

१५. इदमवोच भगवा। अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति। इमस्मिं खो पन वेय्याकरणस्मिं भञ्ञमाने सट्ठिमत्तानं भिक्खूनं अनुपादाय आसवेहि चित्तानि विमुच्चिसू ति।

❋

---

१५. भगवान् ने यह उपदेश किया। आत्तमना भिक्षुओं ने भगवान् के इस उपदेश पर हर्ष प्रकट किया।

यह उपदेश किये जाते समय साठ भिक्षुओं का चित्त, विषयों का उपादान न करने के कारण, आस्रवों से विमुक्त हो गया॥

छछक्कसुत्त समाप्त॥

●

४९. महासळायतनिकसुत्तं

१. सारत्तो दुक्खं पटिसंवेदेति

१. [N. 389] एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—"महासळायतनिकं वो, भिक्खवे, देसिस्सामि। तं सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; भासिस्सामी" ति। "एवं, भन्ते" ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

२. "चक्खुं, भिक्खवे, अजानं अपस्सं यथाभूतं, रूपे अजानं अपस्सं यथाभूतं, चक्खुविञ्ञाणं अजानं अपस्सं यथाभूतं, चक्खुसम्फस्सं अजानं अपस्सं यथाभूतं, यमिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अजानं अपस्सं यथाभूतं, चक्खुस्मिं सारज्जति, रूपेसु सारज्जति, चक्खुविञ्ञाणे सारज्जति, चक्खुसम्फस्से सारज्जति, यमिदं चक्खुसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तस्मिं पि सारज्जति।

"तस्स सारत्तस्स संयुत्तस्स मूळ्हस्स अस्सादानुपस्सिनो विहरतो आयतिं पञ्चुपादानक्खन्धा उपचयं गच्छन्ति। तण्हा चस्स पोनोब्भविका नन्दी-

---

४९. महाषडायतनिकसूत्र

१. विषयानुरागी दुःख से सम्पृक्त होता है

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्तीस्थित अनाथपिण्डिक द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को "भिक्षुओ" कह कर अपने सम्मुख बुलाया। भिक्षु भी "हाँ भन्ते !" कह कर तत्काल उपस्थित हुए। भगवान् उनसे बोले—"भिक्षुओ ! मैं तुम्हें अब महाषडायतनिक (धर्म) का उपदेश करूँगा। तुम उसे ध्यानपूर्वक सुनो। और अपने मन में बैठा लो। कहता हूँ।" "अच्छा भन्ते !" कह कर भिक्षुओं ने उत्तर दिया। भगवान् यों बोले—

२. "भिक्षुओ ! चक्षुरिन्द्रिय को यथार्थतया न जाने-समझे, रूप को, चक्षु-विज्ञान को, चक्षुःसंस्पर्श को, एवं तज्जनित सुखा-दुःखा और अदुःख-असुखा वेदनाओं को न जाने-समझे; उनमें जो अनुरक्त होता है और इस चक्षुःसंस्पर्श के कारण उनसे अनुभूत सुखा-दुःखा, अदुःख-असुखा वेदनाओं में भी अनुरक्त होता है।

उनमें रक्त, सम्पृक्त एवं सम्मूर्छित हुए ऐसे व्यक्ति को भविष्य में पाँच उपादान स्कन्ध सञ्चित होते हैं। और उस विषय में अभिनन्दन करने वाली, रागयुक्त,

रागसहगता तत्रतत्राभिनन्दिनी, सा चस्स पवड्ढति। तस्स कायिका पि दरथा पवड्ढन्ति, चेतसिका पि दरथा पवड्ढन्ति; कायिका पि सन्तापा [R. 288] पवड्ढन्ति, चेतसिका पि सन्तापा पवड्ढन्ति; कायिका पि परिळाहा पवड्ढन्ति, चेतसिका पि परिळाहा पवड्ढन्ति। सो कायदुक्खं पि चेतोदुक्खं पि पटिसंवेदेति।

"सोतं, भिक्खवे, अजानं अपस्सं यथाभूतं...पे०...घानं, [B. 336] भिक्खवे, अजानं अपस्सं यथाभूतं...पे० जिव्हं, भिक्खवे, अजानं अपस्सं यथाभूतं...पे०...कायं, भिक्खवे, अजानं अपस्सं यथाभूतं...पे०... [N. 390] मनं, भिक्खवे, अजानं अपस्सं यथाभूतं, धम्मे, भिक्खवे, अजानं अपस्सं यथाभूतं, मनोविञ्ञाणं, भिक्खवे, अजानं अपस्सं यथाभूतं, मनोसम्फस्सं, भिक्खवे, अजानं अपस्सं यथाभूतं, यमिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि अजानं अपस्सं यथाभूतं, मनस्मि सारज्जति, धम्मेसु सारज्जति, मनोविञ्ञाणे सारज्जति, मनोसम्फस्से सारज्जति, यमिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तस्मि पि सारज्जति।

"तस्स सारत्तस्स संयुत्तस्स सम्मूळ्हस्स अस्सादानुपस्सिनो विहरतो आयतिं पञ्चुपादानक्खन्धा उपचयं गच्छन्ति। तण्हा चस्स पोनोब्भविका नन्दीरागसहगता तत्रतत्राभिनन्दिनी, सा चस्स पवड्ढति। तस्स कायिका पि दरथा पवड्ढन्ति, चेतसिका पि दरथा पवड्ढन्ति; कायिका पि सन्तापा पवड्ढन्ति, चेतसिका पि परिळाहा पवड्ढन्ति। सो कायदुक्खं पि चेतोदुक्खं पि पटिसंवेदेति।

पुनर्जन्म देने वाली उसकी तृष्णा (नन्दी) बढती है। उसके शारीरिक व मानसिक खेद भी बढते हैं, कायिक मानसिक सन्ताप भी बढते हैं, कायिक मानसिक परिदाह (ईर्ष्यायुक्त जलन) भी बढते हैं। तब वह शारीरिक मानसिक दुःखों का अनुभव करने लगता है।

"भिक्षुओ! वह श्रोत्रेन्द्रिय को यथार्थतया न जाने-समझे...घ्राण को...जिह्वा को ...काय को...मन को...धर्म को...मनोविज्ञान को...मनःसंस्पर्श को यथार्थतया न जाने-समझे तज्जनित सुखा दुःखा या अदुःख-असुखा वेदना में अनुरक्त होता है।

उनमें अनुरक्त सम्पृक्त एवं सम्मूर्च्छित को भविष्य में...शारीरिक एवं मानसिक दुःखों का अनुभव करने लगता है।

२. असारत्तो सुखं पटिसंवेदेति

३. "चक्खु च खो, भिक्खवे, जानं पस्सं यथाभूतं, रूपे जानं पस्सं यथाभूतं, चाक्खुविञ्ञाणं जानं पस्सं यथाभूतं, चाक्खुसम्फस्सं जानं पस्सं यथाभूतं, यमिदं चक्खुसम्फस्सपच्चाया उप्पज्जन्ति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि जानं पस्सं यथाभूतं चक्खुस्मिं न सारज्जति, रूपेसु न सारज्जति, चक्खुविञ्ञाणे न सारज्जति, चाक्खुसम्फस्से न सारज्जति, यमिदं चक्खुसम्फस्सपच्चाया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुखं वा अदुक्खसुखं वा तस्मिं पि न सारज्जति।

"तस्स असारत्तस्स असंयुत्तस्स असम्मूळ्हस्स आदीनवानुपस्सिनो विहरतो आयतिं पञ्चुपादानक्खन्धा अपचयं गच्छन्ति। तण्हा चस्स पोनोब्भविका नन्दीरागसहगता तत्रतत्राभिनन्दिनी, सा चास्स पहीयति। तस्स कायिका पि दरथा पहीयन्ति, चेतसिका पि दरथा पहीयन्ति; कायिका पि सन्तापा पहीयन्ति, चेतसिका पि सन्तापा पहीयन्ति; कायिका [N. 391, R. 289] पि परिळाहा पहीयन्ति, चेतसिका पि परिळाहा पहीयन्ति। सो कायसुखं पि चेतोसुखं पि पटिसंवेदेति।

३. असारत्तो मग्गं परिपूरेति

४. "या तथाभूतस्स दिट्ठि सास्स होति सम्मादिट्ठि; यो [B. 337] तथाभूतस्स सङ्कप्पो स्वास्स होति सम्मासङ्कप्पो; यो तथाभूतस्स वायामो स्वास्स होति सम्मावायामो; या तथाभूतस्स सति सास्स होति सम्मासति;

---

२. विषयों में अनुराग न रखने वाला सुखानुभव करता है

३. चक्षुरिन्द्रिय को जानता-समझता हुआ व्यक्ति रूप… चक्षुर्विज्ञान… चक्षुःसंस्पर्श… अदुःख-असुख वेदनाओं में अनुरक्त नहीं होता।

उस वेदनाओं में अननुरक्त असम्पृक्त व्यक्ति के, उनमें दोष दिखायी पड़ने के कारण, भविष्य में पाँच उपादानस्कन्ध अपचित होने लगते हैं। उसके कारण उसके शारीरिक मानसिक खेद… सन्ताप… परिदाह भी प्रहीण होने लगते हैं। तब वह शारीरिक एवं मानसिक सुख का अनुभव करने लगता है।

३. विषयों से असम्पृक्त साधक ही मार्गसाधनापूर्ण कर पाता है

४. वैसे विषयाननुरागी व्यक्ति की दृष्टि (चिन्तन) ही 'सम्यग्दृष्टि' कहलाती है। उसका सङ्कल्प सम्यक्सङ्कल्प… व्यायाम (प्रयास) सम्यग्व्यायाम… स्मृति सम्यक्स्मृति… समाधि सम्यक्समाधि कहलाती है। उसके कायकर्म, वाक्कर्म और

यो तथाभूतस्स समाधि स्वास्स होति सम्मासमाधि। पुब्बेव खो पनस्स कायकम्मं वचीकम्मं आजीवो सुपरिसुद्धो होति। एवमस्सायं अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो भावनापारिपूरिं गच्छति।

"तस्स एवं इमं अरियं अट्ठङ्गिकं मग्गं भावयतो चत्तारो पि सतिपट्ठाना भावनापरिपूरिं गच्छन्ति, चत्तारो पि सम्मप्पधाना भावनापारिपूरिं गच्छन्ति, चत्तारो पि इद्धिपादा भावनापरिपूरिं गच्छन्ति, पञ्च पि इन्द्रियानि भावनापरिपूरिं गच्छन्ति, पञ्च पि बलानि भावनापरिपूरिं गच्छन्ति, सत्त पि बोज्झङ्गा भावनापरिपूरिं गच्छन्ति।

"तस्सिमे द्वे धम्मा युगनद्धा वत्तन्ति—समथो च विपस्सना च। सो ये धम्मा अभिञ्ञा परिञ्ञेय्या ते धम्मे अभिञ्ञा परिजानाति; ये धम्मा अभिञ्ञा पहातब्बा ते धम्मे अभिञ्ञा पजहति; ये धम्मा अभिञ्ञा भावेतब्बा ते धम्मे अभिञ्ञा भावेति; ये धम्मा अभिञ्ञा सच्छिकातब्बा ते धम्मे अभिञ्ञा सच्छिकरोति।

"कतमे च, भिक्खवे, धम्मा अभिञ्ञा परिञ्ञेय्या? 'पञ्चुपादानक्खन्धा' तिस्स वचनीयं, सेय्यथीदं-रूपूपादानक्खन्धो, वेदनूपादानक्खन्धो, सञ्ञूपादानक्खन्धो, सङ्खारूपादानक्खन्धो, विञ्ञाणूपादानक्खन्धो। इमे धम्मा अभिञ्ञा परिञ्ञेय्या।

आजीविका तो पहले ही सुपरिशुद्ध हो चुके होते हैं। यों इस विषयाननुरागी पुरुष का आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग साधना की पूर्णता की ओर बढने लगता है।

"इस प्रकार आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग के उस साधक के चार स्मृतिप्रस्थान…चार सम्यक्प्रधान…चार ऋद्धिपाद…पञ्च इन्द्रिय…पञ्च बल…सात बोध्यङ्गों की साधना पूर्णता की ओर बढने लगती है।

"उसकी साधना में ये दो धर्म जुड़े (युगनद्ध) रहते हैं (अर्थात् मिलकर कार्य करते हैं)—१. शमथ और २. विपश्यना। उनमें जो धर्म ज्ञान (अभिज्ञा) से प्राप्त होने योग्य हैं वे अभिज्ञा से प्राप्त होते हैं, और जो धर्म अभिज्ञा द्वारा प्रहाण करने योग्य हैं वे उससे प्रहीण होते हैं; और जो धर्म साधना के योग्य हैं, उनकी अभिज्ञा द्वारा साधना की जाती है। अथ च, जो धर्म अभिज्ञा द्वारा साक्षात्करणीय हैं उनका साक्षात्कार होता है।

"भिक्षुओ! इनमें कौन से धर्म अभिज्ञा द्वारा अभिज्ञेय एवं परिज्ञेय हैं? पाँच उपादानस्कन्ध (अभिज्ञेय हैं)। जैसे—रूपोपादान स्कन्ध…वेदनोपादानस्कन्ध…। ये धर्म अभिज्ञेय एवं परिज्ञेय हैं।

"कतमे च, भिक्खवे, धम्मा अभिञ्ञा पहातब्बा ? अविज्जा च भवतण्हा च—इमे धम्मा अभिञ्ञा पहातब्बा।

"कतमे च, भिक्खवे, धम्मा अभिञ्ञा भावेतब्बा ? समथो च विपस्सना च—इमे धम्मा अभिञ्ञा भावेतब्बा।

[N. 392, R. 290] "कतमे च, भिक्खवे, धम्मा अभिञ्ञा सच्छिकातब्बा ? विज्जा च विमुत्ति च—इमे धम्मा अभिञ्ञा सच्छिकातब्बा।

[B. 338] ५. "सोतं, भिक्खवे, जानं पस्सं यथाभूतं...पे०...घानं भिक्खवे, जानं पस्सं यथाभूतं...पे०...जिव्हं, भिक्खवे, जानं पस्सं यथाभूतं...पे०...कायं, भिक्खवे, जानं पस्सं यथाभूतं...पे०...मनं, भिक्खवे, जानं पस्सं यथाभूतं, धम्मे जानं पस्सं यथाभूतं, मनोविञ्ञाणं जानं पस्सं यथाभूतं, मनोसम्फस्सं जानं पस्सं यथाभूतं, यमिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तं पि जानं पस्सं यथाभूतं, मनस्मि न सारज्जति, धम्मेसु न सारज्जति, मनोविञ्ञाणे न सारज्जति, मनोसम्फस्से न सारज्जति, यमिदं मनोसम्फस्सपच्चया उप्पज्जति वेदयितं सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा तस्मि पि न सारज्जति।

"तस्स असारत्तस्स असंयुत्तस्स असम्मूळ्हस्स आदीनवानुपस्सिनो विहरतो आयतिं पञ्चुपादानक्खन्धा अपचयं गच्छन्ति। तण्हा चस्स पोनोब्भविका नन्दीरागसहगता तत्रतत्राभिनन्दिनी, सा चस्स पहीयति। तस्स कायिका पि दरथा पहीयन्ति, चेतसिका पि दरथा पहीयन्ति; कायिका पि सन्तापा पहीयन्ति, चेतसिका पि सन्तापा पहीयन्ति; कायिका पि परिळाहा पहीयन्ति, चेतसिका पि परिळाहा पहीयन्ति। सो कायसुखं पि चेतोसुखं पि पटिसंवेदेति।

६. "या तथाभूतस्स दिट्ठि सास्स होति सम्मादिट्ठि; यो तथाभूतस्स

"भिक्षुओ ! कौन से धर्म अभिज्ञा द्वारा प्रहेय हैं ? अविद्या और भवतृष्णा।

"भिक्षुओ ! कौन से धर्म अभिज्ञा द्वारा भावनीय (साधना के योग्य) हैं ? शमथ और विपश्यना। ये धर्म अभिज्ञा द्वारा भावनीय हैं।

"भिक्षुओ ! कौन धर्म अभिज्ञा द्वारा साक्षात्करणीय हैं ? विद्या और विमुक्ति...।

५. "भिक्षुओ ! श्रोत्र को जानता-समझता हुआ...पूर्ववत्[1]...घ्राण को...जिह्वा को...काया को...मन को...अनुरक्त नहीं होता।...शारीरिक एवं मानसिक सुख का अनुभव करने लगता है।

६. "वैसे विषयानुरागी व्यक्ति की दृष्टि (चिन्तन) ही सम्यग्दृष्टि कहलाती है।...

---

१. द्र०—इसी सूत्र की पैरा सं० २।

सङ्कप्पो स्वास्स होति सम्मासङ्कप्पो; यो तथाभूतस्स वायामो स्वास्स होति सम्मावायामो; या तथाभूतस्स सति सास्स होति सम्मासति; यो तथाभूतस्स समाधि स्वास्स होति सम्मासमाधि। पुब्बेव खो पनस्स कायकम्मं वचीकम्मं आजीवो सुपरिसुद्धो होति। एवमस्सायं अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो भावनापारिपूरिं गच्छति।

"तस्स एवं इमं अरियं अट्ठङ्गिकं मग्गं भावयतो चत्तारो पि सतिपट्ठाना भावनापारिपूरिं गच्छन्ति, चत्तारो पि सम्मप्पधाना भावनापारिपूरिं गच्छन्ति, चत्तारो पि इद्धिपादा भावनापारिपूरिं गच्छन्ति, पञ्च पि इन्द्रियानि भावनापारिपूरिं गच्छन्ति, पञ्च पि बलानि भावनापारिपूरिं गच्छन्ति, सत्त पि बोज्झङ्गा भावनापारिपूरिं गच्छन्ति।

"तस्सिमे द्वे धम्मा युगनद्धा वत्तन्ति—समथो च विप- [N. 393] स्सना च। सो ये धम्मा अभिञ्ञा परिञ्ञेय्या ते धम्मे अभिञ्ञा परिजानाति; ये धम्मा अभिञ्ञा पहातब्बा ते धम्मे अभिञ्ञा पजहति; ये धम्मा अभिञ्ञा भावेतब्बा ते धम्मे अभिञ्ञा भावेति; ये धम्मा अभिञ्ञा सच्छिकातब्बा ते धम्मे अभिञ्ञा सच्छिकरोति।

"कतमे च, भिक्खवे, धम्मा अभिञ्ञा परिञ्ञेय्या? 'पञ्चु- [B. 339] पादानक्खन्धा' तिस्स वचनीयं, सेय्यथीदं—रूपुपादानक्खन्धो, वेदनूपादानक्खन्धो, सञ्ञूपादानक्खन्धो, सङ्खारूपादानक्खन्धो, विञ्ञाणूपादानक्खन्धो। इमे धम्मा अभिञ्ञा परिञ्ञेय्या।

"कतमे च, भिक्खवे, धम्मा अभिञ्ञा पहातब्बा? अविज्जा च भवतण्हा च—इमे धम्मा अभिञ्ञा पहातब्बा।

"कतमे च, भिक्खवे, धम्मा अभिञ्ञा भावेतब्बा? समथो च विपस्सना च—इमे धम्मा अभिञ्ञा भावेतब्बा।

"कतमे च, भिक्खवे, धम्मा अभिञ्ञा सच्छिकातब्बा? विज्जा च विमुत्ति च—इमे धम्मा अभिञ्ञा सच्छिकातब्बा" ति।

७. एतदवोच भगवा। अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति।

उसका सङ्कल्प···पूर्ववत्···पूर्णता की ओर बढ़ने लगता है।

"यों उसके आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग की साधना से चारों स्मृतिप्रस्थान···सात बोध्यङ्ग···।

"उस साधक की साधना में ये दो धर्म जुड़े रहते हैं···शमथ और विपश्यना।···

७. भगवान् ने यह कहा। उन आत्तमना भिक्षुओं ने भगवान् के भाषण का अभिनन्दन किया॥

● महासळायतनिकसुत्त समाप्त॥

५०. नगरविन्देय्यसुत्तं

१. कथम्भूता समणब्राह्मणा न सक्कातब्बा

[N. 394] १. एवं मे सुतं । एकं समयं भगवा कोसलेसु चारिकं चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं येन नगरविन्दं नाम कोसलानं ब्राह्मणानं गामो तदवसरि । अस्सोसुं खो नगरविन्देय्यका ब्राह्मणगहपतिका— "समणो खलु, भो, गोतमो सक्यपुत्तो सक्यकुला पब्बजितो कोसलेसु [R. 291] चारिकं चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं नगरविन्दं अनुप्पत्तो । तं खो पन भवन्तं गोतमं एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो— 'इति पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा' ति । सो [B. 340] इमं लोकं सदेवकं समारकं सब्रह्मकं सस्समणब्राह्मणिं पजं सदेवमनुस्सं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेति । सो धम्मं देसेति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं ब्रह्मचरियं पकासेति । साधु खो पन तथारूपानं अरहतं दस्सनं होती" ति ।

अथ खो नगरविन्देय्यका ब्राह्मणगहपतिका येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा अप्पेकच्चे भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु । अप्पेकच्चे भगवता सद्धिं सम्मोदिंसु; सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा

---

५०. नगरविन्दीयसूत्र

१. कैसे श्रमण-ब्राह्मणों का सत्कार नहीं करना चाहिये ?

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) कौसल प्रदेश में चारिका करते हुए जहाँ नगरविन्द नामक कौसलदेशवासी ब्राह्मणों का ग्राम था, वहाँ पहुँचे । (उनके पहुँचने पर) नगरविन्द ग्राम में रहने वाले गृहपति ब्राह्मणों ने सुना—"शाक्यकुल से प्रव्रजित शाक्यपुत्र श्रमण गौतम प्रव्रजित (होकर) कौसल देश में चारिका करते हुए, बड़े भिक्षुसङ्घ के साथ नगरविन्द ग्राम में पधारे हैं । उस पूज्य गौतम के लिये ऐसे मङ्गलमय कीर्ति शब्द लोक में सुनायी दे रहे हैं— "वह भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध विद्या और और चरण से युक्त···पूर्ववत्[१]···' ऐसे अर्हत् ज्ञानिजनों का दर्शन शुभ मङ्गलमय होता है ।

तब वे नगरविन्दीय ब्राह्मण गृहपति जहाँ भगवान् विराजे थे वहाँ पहुँचे । पहुँचकर उनमें से कुछ भगवान् को प्रणाम कर एक तरफ बैठ गये । कुछ ने कुशल-मङ्गल पूछ कर एक ओर स्थान ग्रहण कर लिया । कुछ ने अपना नाम-गोत्र सुनाते

---

१. द्र०—पीछे पृ० ५६७ (सालेय्यकसुत्त) ।

एकमन्तं निसीदिंसु। अप्पेकच्चे येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। अप्पेकच्चे भगवतो सन्तिके नामगोत्तं सावेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। अप्पेकच्चे तुण्हीभूता एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ने खो नगरविन्देय्यके ब्राह्मणगहपतिके भगवा एतदवोच—

२. "सचे वो, गहपतयो, अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका एवं पुच्छेय्युं—'कथंभूता, गहपतयो, समणब्राह्मणा न सक्कातब्बा न गरुकातब्बा न मानेतब्बा न पूजेतब्बा' ति? एवं पुट्ठा तुम्हे, गहपतयो, तेसं अञ्ञतित्थियानं परिब्बाजकानं एवं ब्याकरेय्याथ—'ये ते समणब्राह्मणा [N. 395] चक्खुविञ्ञेय्येसु रूपेसु अवीतरागा अवीतदोसा अवीतमोहा, अज्झत्तं अवूपसन्तचित्ता, समविसमं चरन्ति कायेन वाचाय मनसा, एवरूपा समणब्राह्मणा न सक्कातब्बा न गरुकातब्बा न मानेतब्बा न पूजेतब्बा। तं किस्स हेतु? मयं पि हि चक्खुविञ्ञेय्येसु रूपेसु अवीतरागा अवीतदोसा अवीतमोहा, अज्झत्तं अवूपसन्तचित्ता, समविसमं चराम कायेन वाचाय मनसा, तेसं नो समचरियं पि हेतं उत्तरि अपस्सतं। तस्मा ते भोन्तो समणब्राह्मणा न सक्कातब्बा न गरुकातब्बा न मानेतब्बा न पूजेतब्बा।

'ये ते समणब्राह्मणा सोतविञ्ञेय्येसु सद्देसु…घानविञ्ञेय्येसु गन्धेसु…जिव्हाविञ्ञेय्येसु रसेसु…कायविञ्ञेय्येसु फोट्ठब्बेसु…मनोविञ्ञेय्येसु धम्मेसु अवीतरागा अवीतदोसा अवीतमोहा, अज्झत्तं अवूपसन्तचित्ता, समविसमं चरन्ति कायेन वाचाय मनसा, एवरूपा समणब्राह्मणा न सक्कातब्बा न

हुए अपना स्थान ग्रहण किया। और कुछ तो चुपचाप ही, जहाँ स्थान मिला वहाँ बैठ गये। एक ओर बैठे उन नगरविन्दवासी ब्राह्मण गृहपतियों को भगवान् ने यह कहा—

२. "गृहपतियो! यदि तुम्हें अन्य मत वाले परिव्राजक यह पूछें कि—'गृहपतियो! कैसे श्रमण ब्राह्मणों का सत्कार, गौरव, सम्मान एवं पूजन नहीं करना चाहिए?' ऐसा पूछे जाने पर, गृहपतियो! तुम्हें यह उत्तर देना चाहिये—'जो श्रमण-ब्राह्मण चक्षुर्विज्ञेय रूपों में राग द्वेष मोह से विरत नहीं हुए हैं, आध्यात्मिक रूप से शान्तचित्त नहीं हुए हैं, काय वाक् मन द्वारा बुरा-भला आचरण करते रहते हैं ऐसे श्रमण ब्राह्मणों का सत्कार, गौरव, मान एवं पूजन नहीं करना चाहिये। वह किस लिये? वह इस लिये कि हम भी तो चक्षुर्विज्ञेय रूपों में राग-द्वेष-मोह से विरत नहीं हुए हैं, तो हम भी उनके समान हैं, फिर हम उन में भविष्य में (उत्तरि) भी सही मार्ग पर चलने की प्रवृत्ति (इच्छा) नहीं देखते। इसलिये ऐसे श्रमण ब्राह्मणों का सत्कार…पूजन नहीं करना चाहिये।

गरुकातब्बा न मानेतब्बा न पूजेतब्बा। तं किस्स हेतु ? मयं पि हि मनो-
[B. 341] विञ्ञेय्येसु धम्मेसु अवीतरागा अवीतदोसा अवीतमोहा,
[R. 292] अज्झत्तं अवूपसन्तचित्ता, समविसमं चराम कायेन वाचाय
मनसा, तेसं नो समचरियं पि हेतं उत्तरि अपस्सतं। तस्मा ते भोन्तो समण-
ब्राह्मणा न सक्कातब्बा न गरुकातब्बा न मानेतब्बा न पूजेतब्बा' ति। एवं
पुट्ठा तुम्हे, गहपतयो, तेसं अञ्ञतित्थियानं परिब्बाजकानं एवं ब्याकरेय्याथ।

२. कथम्भूता समणब्राह्मणा सक्कातब्बा

३. "सचे पन वो, गहपतयो, अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका एवं पुच्छेय्युं--'कथं-
भूता, गहपतयो, समणब्राह्मणा सक्कातब्बा गरुकातब्बा मानेतब्बा पूजेतब्बा'
ति ? एवं पुट्ठा तुम्हे, गहपतयो, तेसं अञ्ञतित्थियानं परिब्बाजकानं एवं
ब्याकरेय्याथ--'ये ते समणब्राह्मणा चक्खुविञ्ञेय्येसु रूपेसु वीतरागा वीत-
दोसा वीतमोहा, अज्झत्तं वूपसन्तचित्ता, समचरियं चरन्ति कायेन वाचाय
मनसा, एवरूपा समणब्राह्मणा सक्कातब्बा गरुकातब्बा मानेतब्बा पूजे-
[N. 396] तब्बा। तं किस्स हेतु ? मयं पि हि चक्खुविञ्ञेय्येसु रूपेसु
अवीतरागा अवीतदोसा अवीतमोहा, अज्झत्तं अवूपसन्तचित्ता, समविसमं
चराम कायेन वाचाय मनसा, तेसं नो समचरियं पि हेतं उत्तरि पस्सतं।
तस्मा ते भोन्तो समणब्राह्मणा सक्कातब्बा गरुकातब्बा मानेतब्बा
पूजेतब्बा।

"और जो श्रमण ब्राह्मण श्रोत्रविज्ञेय शब्दों में···पूर्ववत्···घ्राणविज्ञेय···जिह्वा-
विज्ञेय···पूजन नहीं करना चाहिये। गृहपतियो ! इस तरह पूछे जाने पर अन्य मत
वाले परिव्राजकों को यह उत्तर देना चाहिये।

२. कैसे श्रमण ब्राह्मणों का सत्कार करना चाहिये ?

३. "और गृहपतियो ! यदि वे अन्य मतवादी परिव्राजक तुम से यह प्रश्न
करें--'गृहपतियो ! कैसे श्रमण-ब्राह्मणों का सत्कार···पूजन करना चाहिये ?' ऐसा
पूछे जाने पर गृहपतियो ! तुम्हें उन···को यह उत्तर देना चाहिये—'जो श्रमण-
ब्राह्मण चक्षुर्विज्ञेय रूपों में राग-द्वेष-मोह से दूर हो चुके हैं, भीतर से जिनका चित्त
शान्त है, जो काय-वाणी-मन से समचर्या (धर्माचरण) करते हैं, ऐसे श्रमण-ब्राह्मणों
का सत्कार···पूजन करना चाहिये। वह किस लिये ? वह इसलिये कि हम तो
चक्षुर्विज्ञेय रूपों में अवीतराग-द्वेष-मोह हैं, भीतर से अशान्त चित्त हैं, काय-वाणी-
मन से गलत-सही कार्य करते रहते हैं, उन पूज्यों के, जो कि अपने सद्धविष्य पर
सदा दृष्टि (ध्यान) रखते हैं, सामने हमारी क्या स्थिति है ! अतः हमें उनका
सत्कार···पूजन करना ही चाहिये।

"ये ते समणब्राह्मणा सोतविञ्ञेय्येसु सद्देसु···घानविञ्ञेय्येसु गन्धेसु··· जिव्हाविञ्ञेय्येसु रसेसु···कायविञ्ञेय्येसु फोट्ठब्बेसु···मनोविञ्ञेय्येसु धम्मेसु वीतरागा वीतदोसा वीतमोहा, अज्झत्तं वूपसन्तचित्ता, समचरियं चरन्ति कायेन वाचाय मनसा, एवरूपा समणब्राह्मणा सक्कातब्बा गरुकातब्बा मानेतब्बा पूजेतब्बा। तं किस्स हेतु? मयं पि हि मनोविञ्ञेय्येसु धम्मेसु अवीतरागा अवीतदोसा अवीतमोहा अज्झत्तं अवूपसन्तचित्ता, समविसमं चराम कायेन वाचाय ममसा, तेसं नो समचरियं पि हेतं उत्तरि पस्सतं। तस्मा ते भोन्तो समणब्राह्मणा सक्कातब्बा गरुकातब्बा पूजेतब्बा ति। एवं पुट्ठा तुम्हे, गहपतयो, तेसं अञ्ञतित्थियानं परिब्बाजकानं एवं ब्याकरेय्याथ।

४. "सचे पन वो, गहपतयो, अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका एवं पुच्छेय्युं--'के पनायस्मन्तानं आकारा, के अन्वया, येन तुम्हे आयस्मन्तो एवं वदेथ? अद्धा ते आयस्मन्तो वीतरागा वा रागविनयाय [B. 342, R. 293] वा पटिपन्ना, वीतदोसा वा दोसविनयाय वा पटिपन्ना, वीतमोहा वा मोहविनयाय वा पटिपन्ना' ति? एवं पुट्ठा तुम्हे, गहपतयो, तेसं अञ्ञतित्थियानं परिब्बाजकानं एवं ब्याकरेय्याथ—'तथा हि ते आयस्मन्तो अरञ्ञवनपत्थानि पन्तानि सेनासनानि पटिसेवन्ति। नत्थि खो पन तत्थ तथारूपा चक्खुविञ्ञेय्या रूपा ये दिस्वा दिस्वा अभिरमेय्युं, नत्थि खो पन तत्थ तथारूपा सोतविञ्ञेय्या···घानविञ्ञेय्या गन्धा ये घायित्वा घायित्वा अभिरमेय्युं, नत्थि खो पन तत्थ तथारूपा जिव्हाविञ्ञेय्या रसा ये सायित्वा सायित्वा अभिरमेय्युं, नत्थि खो पन तत्थ तथारूपा कायविञ्ञेय्या फोट्ठब्बा ये

और जो श्रमण-ब्राह्मण श्रोत्रविज्ञेय शब्दों में···घ्राणविज्ञेय गन्धों में···जिह्वाविज्ञेय रसों में···कायविज्ञेय स्प्रष्टव्यों में···मनोविज्ञेय धर्मों में राग-द्वेष-मोह से दूर हो चुके हैं···उनके सामने हमारी क्या स्थिति है!···यह उत्तर देना चाहिये।

४. "फिर यदि, गृहपतियो! वे अन्य मतवादी परिव्राजक तुम से यह पूछें—'वैसे महानुभावों के आकार (पहचान) क्या हैं, अन्वय क्या है? जिससे कि तुम उनके विषय में ऐसा कह रहे हो? अवश्य ही वे वीतराग हैं या वैसा राग हटाने में लग चुके हैं, वीतद्वेष हैं या द्वेष हटाने में लग चुके हैं, वीतमोह हैं या वैसे मोह से दूर रहने का अभ्यास कर रहे हैं'? ऐसा पूछे जाने पर तुम्हें उन परिव्राजकों को यह उत्तर देना चाहिये। वैसे वे आयुष्मान् अरण्य या वन प्रान्तों के एकान्त-स्थान में अपना शयनासन लगाते हैं, उनके सामने ऐसे चक्षुर्विज्ञेय रूप आते ही नहीं कि जिन्हें देख-देखकर वे उनमें अभिरत हो सकें, ऐसे श्रोत्रविज्ञेय शब्द···

फुसित्वा फुसित्वा अभिरमेय्युं। इमे खो नो, आवुसो, आकारा, इमे अन्वया, येन मयं एवं वदेम—अद्धा ते आयस्मन्तो वीतरागा वा रागविनयाय वा [N. 397] पटिपन्ना, वीतदोसा वा दोसविनयाय वा पटिपन्ना, वीतमोहा वा मोहविनयाय वा पटिपन्ना' ति। एवं पुट्ठा तुम्हे, गहपतयो, तेस अञ्ञतित्थियानं परिब्बाजकानं एवं ब्याकरेय्याथा" ति।

३. नगरविन्देय्यकानं सरणगमनं

५. एवं वुत्ते, नगरविन्देय्यका ब्राह्मणगहपतिका भगवन्तं एतदवोचुं—"अभिक्कन्तं, भो गोतम, अभिक्कन्तं, भो गोतम! सेय्यथापि, भो गोतम, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य—'चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती" ति; एवमेवं भोता गोतमेन अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एते मयं भवन्तं सरणं गच्छाम धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासके नो भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेते सरणं गते" ति।

●

जिन्हें सुन-सुनकर···घ्राणविज्ञेय गन्ध···जिन्हें सूँघ-सूँघ कर···जिह्वाविज्ञेय रस··· जिन्हें चख-चख कर···कायविज्ञेय स्प्रष्टव्य··· जिन्हें छू-छूकर उनमें अभिरत हो सकें। आयुष्मानो! उन महानुभावों की यह पहचान है, यह अन्वय हैं जो कि अवश्य वीतराग···वीतमोह हो चुके हैं जिनका कि सत्कार-मान-पूजन करने की बात हम कर रहे हैं"।

३. नगरविन्दवासी ब्राह्मणों का शरणगमन

५. (भगवान् द्वारा) ऐसा कहे जाने पर, उन नगरविन्दवासी ब्राह्मणों ने भगवान् से यों निवेदन किया—"आश्चर्य है, भो गौतम! आश्चर्य है!! जैसे कोई औंधे बर्तन को सीधा कर दे, ढके हुए को खोल दे, दिग्भ्रान्त (भटके हुए) व्यक्ति को सही रास्ता दिखा दे, या कोई अन्धकार में तैलप्रदीप लेकर खड़ा हो जाय कि--'आँख से देखने वालों को विषय (रूप) दिखायी दे जाय'; इसी तरह आप गौतम ने नाना प्रकार से समझा-समझा कर धर्म का विस्तार किया। (अतः) ये हम सब आप गौतम की शरण में आये हैं, धर्म की···सङ्घ की शरण में आये हैं। आप गौतम हम सब को आज से जीवनपर्यन्त अपना शरणागत समझें॥"

नगरविन्देय्यसुत्त समाप्त॥

●

५१. पिण्डपातपारिसुद्धिसुत्तं

१. सुञ्ञताविहारो महापुरिसविहारो

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति [N. 398] वेळुवने कलन्दकनिवापे। अथ खो आयस्मा सारिपुत्तो सायन्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा [B. 343] भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं सारिपुत्तं भगवा एतदवोच—

"विप्पसन्नानि खो ते, सारिपुत्त, इन्द्रियानि, परिसुद्धो [R. 294] छविवण्णो परियोदातो। कतमेन खो त्वं, सारिपुत्त, विहारेन एतरहि बहुलं विहरसी" ति ?

"सुञ्ञताविहारेन खो अहं, भन्ते, एतरहि बहुलं विहरामी" ति।

"साधु, साधु, सारिपुत्त! महापुरिसविहारेन किर त्वं, सारिपुत्त, एतरहि बहुलं विहरसि। महापुरिसविहारो एसो, सारिपुत्त, यदिदं—सुञ्ञता।

---

५१. पिण्डपातपारिसुद्धिसूत्र

१. शून्यता-साधना ही महापुरुषों का साधनामार्ग है

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) राजगृह के वेणुवन-स्थित कलन्दकनिवाप में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय आयुष्मान् सारिपुत्र सायङ्काल की ध्यान-साधना से उठकर जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचे। पहुँच कर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् सारिपुत्र को भगवान् ने पूछा—

"सारिपुत्र! आज तुम्हारी सभी इन्द्रियाँ प्रसन्न दिखायी दे रही हैं, तुम्हारा चेहरा भी मुदित एवं प्रसन्न है। सारिपुत्र! आजकल तुम किस साधना के सहारे अपना अधिक समय बिता रहे हो ?"

"भन्ते! आजकल मैं अधिकतया शून्यताविहार[1] के ही सहारे साधना कर रहा हूँ।"

"ठीक है, सारिपुत्र! ठीक है! कि तुम शून्यता के सहारे साधना कर रहे हो। महापुरुषों (महासाधकों) द्वारा भी यह शून्यता-साधनामार्ग ही प्रमुखतया स्वीकार किया गया है।

---

१. शून्यताविहार की साधना के विशेष ज्ञानहेतु द्र०—पीछे सुञ्ञतसुत्त पृ० १२८१-१३०१।

२. तस्स भिक्खुनो पटिसञ्चिक्खितब्बानि

२. "तस्मातिह, सारिपुत्त, भिक्खु सचे आकङ्खेय्य—'सुञ्ञताविहारेन बहुलं विहरेय्यं' ति, तेन, सारिपुत्त, भिक्खुना इति पटिसञ्चिक्खितब्बं—'येन चाहं मग्गेन गामं पिण्डाय पाविसिं, यस्मिं च पदेसे पिण्डाय अचरिं, येन च मग्गेन गामतो पिण्डाय पटिक्कमिं, अत्थि नु खो मे तत्थ चक्खुविञ्ञेय्येसु रूपेसु छन्दो वा रागो वा दोसो वा मोहो वा पटिघं वा पि चेतसो' ति ? सचे सारिपुत्त, भिक्खु पच्चवेक्खमानो एवं जानाति—'येन चाहं मग्गेन गामं पिण्डाय पाविसिं, यस्मिं च पदेसे पिण्डाय अचरिं, येन च [N. 399] मग्गेन गामतो पिण्डाय पटिक्कमिं, अत्थि मे तत्थ चक्खुविञ्ञेय्येसु रूपेसु छन्दो वा रागो वा दोसो वा मोहो वा पटिघं वा पि चेतसो' ति, तेन, सारिपुत्त, भिक्खुना तेसं येव पापकानं अकुसलानं धम्मानं पहानाय वायमितब्बं। सचे पन, सारिपुत्त, भिक्खु पच्चवेक्खमानो एवं जानाति—'येन चाहं मग्गेन गामं पिण्डाय पाविसिं, यस्मिं च पदेसे पिण्डाय अचरिं, येन च मग्गेन गामतो पिण्डाय पटिक्कमिं, नत्थि मे तत्थ चक्खुविञ्ञेय्येसु रूपेसु छन्दो वा रागो वा दोसो वा मोहो वा पटिघं वा पि चेतसो' ति, तेन, सारिपुत्त, भिक्खुना तेनेव पीतिपामोज्जेन विहातब्बं अहोरत्तानुसिक्खिना कुसलेसु धम्मेसु।

३. "पुन च परं, सारिपुत्त, भिक्खुना इति पटिसञ्चिक्खितब्बं—'येन चाहं मग्गेन गामं पिण्डाय पाविसिं, यस्मिं च पदेसे पिण्डाय अचरिं, येन च

---

२. उस भिक्षु को यों परिशीलन करना चाहिये

२. "इसलिये, सारिपुत्र ! यदि साधक भिक्षु यह चाहे कि 'मैं शून्यता के सहारे साधना करूँ' तो उस भिक्षु को अपनी चर्याओं का यों परिशीलन करना चाहिये—'जिस मार्ग से मैं भिक्षाचर्या के लिये ग्राम में प्रविष्ट होता हूँ, जहाँ मैं भिक्षा करता हूँ, और जिस मार्ग से मैं ग्राम में भिक्षा कर के लौटता हूँ, क्या वहाँ चक्षुर्विज्ञेय रूपों में मेरे मन का छन्द, राग, द्वेष या मोह था ?' यदि, सारिपुत्र ! वह साधक भिक्षु ऐसा अनुशीलन करते-करते यह समझें कि—'जिस मार्ग से मैं भिक्षा के लिये ग्राम में'''या मोह था', तो, सारिपुत्र ! उस साधक को अपने उन पापमय अकुशल धर्मों के प्रहाणहेतु प्रयत्न करना चाहिये। और सारिपुत्र ! यदि वही भिक्षु वैसा अनुशीलन करते-करते यह समझे कि—'जिस मार्ग से मैं'''या मोह उत्पन्न नहीं हुआ। तो, सारिपुत्र ! उस साधक भिक्षु को दिनरात कुशल धर्मों का परिशीलन करते हुए साधनारत रहना चाहिये।

३. "और फिर सारिपुत्र ! उस भिक्षु को यों अनुशीलन करना चाहिये—'जिस

मग्गेन गामतो पिण्डाय पटिक्कमिं, अत्थि न खो मे तत्थ सोतविञ्ञेय्येसु सद्देसु···पे०···घानविञ्ञेय्येसु गन्धेसु···जिव्हाविञ्ञेय्येसु [B. 344] रसेसु···कायविञ्ञेय्येसु फोट्ठब्बेसु···मनोविञ्ञेय्येसु धम्मेसु छन्दो वा रागो वा दोसो वा मोहो वा पटिघं वा पि चेतसो' ति ? सचे, [R. 295] सारिपुत्त, भिक्खु पच्चवेक्खमानो एवं जानाति—'येन चाहं मग्गेन गामं पिण्डाय पाविसिं, यस्मिं च पदेसे पिण्डाय अचरिं, येन च मग्गेन गामतो पिण्डाय पटिक्कमिं, अत्थि मे तत्थ मनोविञ्ञेय्येसु धम्मेसु छन्दो वा रागो वा दोसो वा मोहो वा पटिघं वा पि चेतसो' ति, तेन, सारिपुत्त, भिक्खुना तेसं येव पापकानं अकुसलानं धम्मानं पहानाय वायमितब्बं। सचे पन, सारिपुत्त, भिक्खु पच्चवेक्खमानो एवं जानाति—'येन चाहं मग्गेन गामं पिण्डाय पाविसिं, यस्मिं च पदेसे पिण्डाय अचरिं, येन च मग्गेन गामतो पिण्डाय पटिक्कमिं, नत्थि मे तत्थ मनोविञ्ञेय्येसु धम्मेसु छन्दो वा रागो वा दोसो वा मोहो वा पटिघं वा पि चेतसो' ति, तेन, सारिपुत्त, भिक्खुना तेनेव पीतिपामोज्जेन विहातब्बं अहोरत्तानुसिक्खिना कुसलेसु धम्मेसु।

४. "पुन च परं, सारिपुत्त, भिक्खुना इति पटिसञ्चिक्खितब्बं—'पहीना नु खो मे पञ्च कामगुणा' ति ? सचे, सारिपुत्त, भिक्खु पच्च- [N. 400] वेक्खमानो एवं जानाति—'अप्पहीना खो मे पञ्च कामगुणा' ति, तेन सारिपुत्त, भिक्खुना पञ्चन्नं कामगुणानं पहानाय वायमितब्बं। सचे पन, सारिपुत्त, भिक्खु पच्चवेक्खमानो एवं जानाति—'पहीना खो मे पञ्च कामगुणा' ति, तेन, सारिपुत्त, भिक्खुना तेनेव पीतिपामोज्जेन विहातब्बं अहोरत्तानुसिक्खिना कुसलेसु धम्मेसु।

५. "पुन च परं, सारिपुत्त, भिक्खुना इति पटिसञ्चिक्खितब्बं—'पहीना नु खो मे पञ्च नीवरणा' ति ? सचे, सारिपुत्त, भिक्खु पच्चवेक्खमानो एवं

मार्ग से मैं ग्राम में···मोह या प्रतिघ (द्वेष) उत्पन्न हुआ ? तो सारिपुत्र ! उस भिक्षु को पापमय अकुशल धर्मों के प्रहाण का प्रयत्न करना चाहिये। और यदि, सारिपुत्र ! यह भिक्षु अनुशीलन करते-करते यह जान जाय कि 'जिस मार्ग से मैं···मोह या प्रतिघ उत्पन्न नहीं हुआ' तो···कुशल धर्मों का दिनरात अनुशीलन करते हुए साधनारत रहना चाहिये।

४. "और फिर, सारिपुत्र ! उस साधक भिक्षु को अनुशीलन करना चाहिये कि—'मेरे पाँचों कामगुण प्रहीण हुए कि नहीं ?'···।

५. ···मेरे पाँच नीवरण क्षीण हुए कि नहीं ?···।

जानाति—'अप्पहीना खो मे पञ्च नीवरणा' ति, तेन, सारिपुत्त, भिक्खुना पञ्चन्नं नीवरणानं पहानाय वायमितब्बं। सचे पन, सारिपुत्त, भिक्खु पच्चवेक्खमानो एवं जानाति—'पहीना खो मे पञ्च नीवरणा' ति, तेन, सारिपुत्त, भिक्खुना तेनेव पीतिपामोज्जेन विहातब्बं अहोरत्तानुसिक्खिना कुसलेसु धम्मेसु।

६. "पुन च परं, सारिपुत्त, भिक्खुना इति पटिसञ्चिक्खितब्बं—'परिञ्ञाता नु खो मे पञ्चुपादानक्खन्धा' ति ? सचे, सारिपुत्त, भिक्खु पच्चवेक्खमानो एवं जानाति--'अपरिञ्ञाता खो मे पञ्चुपादानक्खन्धा' ति, [B. 345] तेन, सारिपुत्त, भिक्खुना पञ्चन्नं उपादानक्खन्धानं परिञ्ञाय वायमितब्बं। सचे पन, सारिपुत्त, भिक्खु पच्चवेक्खमानो एवं जानाति-- [R. 296] 'परिञ्ञाता खो मे पञ्चुपादानक्खन्धा' ति, तेन, सारिपुत्त, भिक्खुना तेनेव पीतिपामोज्जेन विहातब्बं अहोरत्तानुसिक्खिना कुसलेसु धम्मेसु।

७. "पुन च परं, सारिपुत्त, भिक्खुना इति पटिसञ्चिक्खितब्बं--'भाविता नु खो मे चत्तारो सतिपट्ठाना' ति ? सचे, सारिपुत्त, भिक्खु पच्चवेक्खमानो एवं जानाति--'अभाविता खो मे चत्तारो सतिपट्ठाना' ति, तेन, सारिपुत्त, भिक्खुना चतुन्नं सतिपट्ठानानं भावनाय वायमितब्बं। सचे पन, सारिपुत्त, भिक्खु पच्चवेक्खमानो एवं जानाति--'भाविता खो मे चत्तारो सतिपट्ठाना' ति, तेन, सारिपुत्त, भिक्खुना तेनेव पीतिपामोज्जेन [N. 401] विहातब्बं अहोरत्तानुसिक्खिना कुसलेसु धम्मेसु।

८. "पुन च परं, सारिपुत्त, भिक्खुना इति पटिसञ्चिक्खितब्बं—'भाविता नु खो मे चत्तारो सम्मप्पधाना' ति ? सचे, सारिपुत्त, भिक्खु पच्चवेक्खमानो एवं जानाति—'अभाविता खो मे चत्तारो सम्मप्पधाना' ति, तेन, सारिपुत्त, भिक्खुना चतुन्नं सम्मप्पधानानं भावनाय वायमितब्बं। सचे पन, सारिपुत्त, भिक्खु पच्चवेक्खमानो एवं जानाति—'भाविता खो मे चत्तारो सम्मप्पधाना' ति, तेन, सारिपुत्त, भिक्खुना तेनेव पीतिपामोज्जेन विहातब्बं अहोरत्तानुसिक्खिना कुसलेसु धम्मेसु।

---

६. ···मैंने पाँच उपादानस्कन्धों (की वास्तविकता) को जान लिया कि नहीं···।

७. ···मैंने चारों स्मृतिप्रस्थानों की भावना कर ली है कि नहीं !···।

८. ···मैने चारों सम्यक्प्रधानों की···!···।

९. "पुन च परं, सारिपुत्त, भिक्खुना इति पटिसञ्चिक्खितब्बं—'भाविता नु खो मे चत्तारो इद्धिपादा' ति ? सचे, सारिपुत्त, भिक्खु पच्चवेक्खमानो एवं जानाति—'अभाविता खो मे चत्तारो इद्धिपादा' ति, तेन, सारिपुत्त, भिक्खुना चतुन्नं इद्धिपादानं भावनाय वायमितब्बं। सचे पन, सारिपुत्त, भिक्खु पच्चवेक्खमानो एवं जानाति--'भाविता खो मे चत्तारो इद्धिपादा' ति, तेन, सारिपुत्त, भिक्खुना तेनेव पीतिपामोज्जेन विहातब्बं अहोरत्तानुसिक्खिना कुसलेसु धम्मेसु ।

१०. "पुन च परं, सारिपुत्त, भिक्खुना इति पटिसञ्चिक्खितब्बं—'भावितानि नु खो मे पञ्चिन्द्रियानी' ति ? सचे, सारिपुत्त, भिक्खु पच्चवेक्खमानो एवं जानाति—'अभावितानि खो मे पञ्चिन्द्रियानी' ति, तेन, सारिपुत्त, भिक्खुना पञ्चन्नं इन्द्रियानं भावनाय वायमितब्बं। सचे पन, सारिपुत्त, भिक्खु पच्चवेक्खमानो एवं जानाति--'भावितानि [B. 346] खो मे पञ्चिन्द्रियानी' ति, तेन, सारिपुत्त, भिक्खुना तेनेव पीतिपामोज्जेन विहातब्बं अहोरत्तानुसिक्खिना कुसलेसु धम्मेसु ।

११. "पुन च परं, सारिपुत्त, भिक्खुना इति पटिसञ्चिक्खितब्बं--'भावितानि नु खो मे पञ्च बलानी' ति ? सचे, सारिपुत्त, भिक्खु पच्चवेक्खमानो एवं जानाति--'अभावितानि खो मे पञ्च बलानी' ति, तेन, सारिपुत्त, भिक्खुना पञ्चन्नं बलानं भावनाय वायमितब्बं। [N. 402] सचे पन, सारिपुत्त, भिक्खु पच्चवेक्खमानो एवं जानाति--'भावितानि खो मे पञ्च बलानी' ति, तेन, सारिपुत्त, भिक्खुना तेनेव पीतिपामोज्जेन विहातब्बं अहोरत्तानुसिक्खिना कुसलेसु धम्मेसु ।

१२. "पुन च परं, सारिपुत्त, भिक्खुना इति पटिसञ्चिक्खितब्बं--'भाविता नु खो मे सत्त बोज्झङ्गा' ति ? सचे, सारिपुत्त, भिक्खु पच्चवेक्खमानो एवं जानाति--'अभाविता खो मे सत्त बोज्झङ्गा' ति, तेन, सारिपुत्त, भिक्खुना सत्तन्नं बोज्झङ्गानं भावनाय वायमितब्बं। सचे पन, सारिपुत्त, भिक्खु पच्चवेक्खमानो एवं जानाति—'भाविता खो मे सत्त बोज्झङ्गा' ति, तेन, सारिपुत्त, भिक्खुना तेनेव पीतिपामोज्जेन विहातब्बं अहोरत्तानुसिक्खिना कुसलेसु धम्मेसु ।

९.…मैने चारों ऋद्धिपादों की…?…।

१०. मैने पाँच इन्द्रियों (श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि व प्रज्ञा) की भावना की है या नहीं…?

११. …मैने पाँचों बलों की साधना की है या नहीं ?…।

१२. मैने सातों बोध्यङ्गों की भावना की है या नहीं ?…।

१३. "पुन च परं, सारिपुत्त, भिक्खुना इति पटिसञ्चिक्खितब्बं— 'भावितो नु खो मे अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो' ति ? सचे, सारिपुत्त, भिक्खु पच्चवेक्खमानो एवं जानाति—'अभावितो खो मे अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो' ति, तेन, सारिपुत्त, भिक्खुना अरियस्स अट्ठङ्गिकस्स मग्गस्स भावनाय वायमितब्बं। सचे पन, सारिपुत्त, भिक्खु पच्चवेक्खमानो एवं जानाति— [R. 297] 'भावितो खो मे अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो' ति, तेन, सारिपुत्त, भिक्खुना तेनेव पीतिपामोज्जेन विहातब्बं अहोरत्तानुसिक्खिना कुसलेसु धम्मेसु।

१४. "पुन च परं, सारिपुत्त, भिक्खुना इति पटिसञ्चिक्खितब्बं— 'भाविता नु खो मे समथो च विपस्सना चा' ति ? सचे, सारिपुत्त, भिक्खु पच्चवेक्खमानो एवं जानाति—'अभाविता खो मे समथो च विपस्सना चा' ति, तेन, सारिपुत्त, भिक्खुना समथविपस्सनानं भावनाय वायमितब्बं। सचे पन, सारिपुत्त, भिक्खु पच्चवेक्खमानो एवं जानाति—'भाविता खो मे [B. 347] समथो च विपस्सना चा' ति, तेन, सारिपुत्त, भिक्खुना तेनेव पीतिपामोज्जेन विहातब्बं अहोरत्तानुसिक्खिना कुसलेसु धम्मेसु।

१५. "पुन च परं, सारिपुत्त, भिक्खुना इति पटिसञ्चिक्खितब्बं— 'सच्छिकता नु खो मे विज्जा च विमुत्ति चा' ति ? सचे, सारिपुत्त, भिक्खु [N. 403] पच्चवेक्खमानो एवं जानाति—'असच्छिकता खो मे विज्जा च विमुत्ति चा' ति, तेन, सारिपुत्त, भिक्खुना विज्जाय विमुत्तिया सच्छिकिरियाय वायमितब्बं। सचे पन, सारिपुत्त, भिक्खु पच्चवेक्खमानो एवं जानाति—'सच्छिकता खो मे विज्जा च विमुत्ति चा' ति, तेन, सारिपुत्त, भिक्खुना तेनेव पीतिपामोज्जेन विहातब्बं अहोरत्तानुसिक्खिना कुसलेसु धम्मेसु।

१६. "ये हि केचि, सारिपुत्त, अतीतमद्धानं समणा वा ब्राह्मणा वा पिण्डपातं परिसोधेसुं, सब्बे ते एवमेव पच्चवेक्खित्वा पच्चवेक्खित्वा पिण्डपातं परिसोधेसुं। ये पि हि केचि, सारिपुत्त, अनागतमद्धानं समणा वा

---

१३. मैने आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग की भावना की है या नहीं ?...।...।

१४. "...मैने शमथ और विपश्यना की भावना की है या नहीं ?...।

१५. "...मैने विद्या और विमुक्ति का साक्षात्कार किया है या नहीं ?...।

१६. "सारिपुत्र ! भूतकाल में जिन किन्हीं भी श्रमण-ब्राह्मणों साधकों ने अपनी पिण्डपातपरिशुद्धि का प्रत्यवेक्षण किया है उन सभी ने इसी तरह उसका प्रत्यवेक्षण किया है। और सारिपुत्र ! भविष्यत्काल में...प्रत्यवेक्षण करेंगे। तथा इस समय

ब्राह्मणा वा पिण्डपातं परिसोधेस्सन्ति, सब्बे ते एवमेव पच्चवेक्खित्वा पच्चवेक्खित्वा पिण्डपातं परिसोधेस्सन्ति। ये पि हि केचि, सारिपुत्त, एतरहि समणा वा ब्राह्मणा वा पिण्डपातं परिसोधेन्ति, सब्बे ते एवमेव पच्चवेक्खित्वा पच्चवेक्खित्वा पिण्डपातं परिसोधेन्ति। तस्मातिह, सारिपुत्त, 'पच्चवेक्खित्वा पच्चवेक्खित्वा पिण्डपातं परिसोधेस्सामा' ति—एवं हि वो, सारिपुत्त, सिक्खितब्बं" ति।

१७, इदमवोच भगवा! अत्तमनो आयस्मा सारिपुत्तो भगवतो भासितं अभिनन्दी ति।

○

(वर्तमान में) जो श्रमण-ब्राह्मण साधक पिण्डपात की शुद्धि का प्रत्यवेक्षण करना सोचते हैं, वे भी इसी (उपर्युक्त) पद्धति से उसका प्रत्यवेक्षण करते हैं।

"इसलिये, सारिपुत्र! 'प्रत्यवेक्षण कर कर के पिण्डपात का परिशोधन करूँगा' ऐसा तुम्हें सीखना चाहिये।"

भगवान् ने यह उपदेश किया, आप्तमना सारिपुत्र ने भगवान् के भाषण का अभिनन्दन किया॥

पिण्डपातपारिसुद्धिसुत्त समाप्त॥

⊙

५२. इन्द्रियभावनासुत्तं

१. पारासिवियवादो निराकतो

[N. 404, B. 348, R. 298] १. एवं मे सुतं । एकं समयं भगवा गजङ्गलायं विहरति सुवेळुवने। अथ खो उत्तरो माणवो पारासिवियन्तेवासी येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं साराणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो उत्तरं माणवकं पारासिरियन्तेवासिं भगवा एतदवोच—"देसेति, उत्तर, पारासिवियो ब्राह्मणो सावकानं इन्द्रियभावनं" ति ?

"देसेति, भो गोतम, पारासिवियो ब्राह्मणो सावकानं इन्द्रियभावनं" ति।

"यथा कथं पन, उत्तर, देसेति पारसिवियो ब्राह्मणो सावकानं इन्द्रियभावनं" ति ?

"इध, भो गोतम, चक्खुना रूपं न पस्सति, सोतेन सद्दं न सुणाति—एवं खो, भो गोतम, देसेति पारसिवियो ब्राह्मणो सावकानं इन्द्रियभावनं" ति।

"एवं सन्ते खो, उत्तर, अन्धो भावितिन्द्रियो भविस्सति, बधिरो भावितिन्द्रियो भविस्सति; यथा पारसिवियस्स ब्राह्मणस्स वचनं। अन्धो हि,

---

५२. इन्द्रियभावनासूत्र

१. पाराशित्रीय मत का निराकरण

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) कजङ्गला के सुवेणुवन में साधनाहेतु विराजमान थे। तब किसी समय पाराशिवि का अन्तेवासी उत्तर नामक माणवक जहाँ भगवान् विराजमान थे, वहाँ गया। जाकर, वह भगवान् से कुशल-मङ्गल पूछ एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस पारिशिविकान्तेवासी उत्तर माणवक को भगवान् ने यह पूछा—"उत्तर ! तुम्हारा पाराशिवि गुरु अपने शिष्यों को इन्द्रियसाधना के विषय में कुछ उपदेश देता है ?"

"हाँ, भो गौतम ! पाराशिविय ब्राह्मण अपने शिष्यों को इन्द्रियसाधना के विषय में उपदेश करता है।"

"तो तुम्हारा वह पाराशिविय ब्राह्मण शिष्यों को कैसी इन्द्रियसाधना बताता है ?"

"भो गौतम ! चक्षुरिन्द्रिय से रूप को न देखना, श्रोत्रेन्द्रिय से शब्द न सुनना—इस प्रकार वे शिष्यों को इन्द्रियसाधना का उपदेश करते हैं।"

"ऐसा होने पर तो, जैसा कि तुम्हारे पाराशिविय ब्राह्मण का कथन है, इन्द्रिय-

उत्तर, चक्खुना रूपं न पस्सति, बधिरो सोतेन सद्दं न सुणाती" ति। एवं वुत्ते, उत्तरो माणवो पारसिवियन्तेवासी तुण्हीभूतो मङ्कुभूतो पत्तक्खन्धो अधोमुखो पज्झायन्तो अप्पटिभानो निसीदि।

अथ खो भगवा उत्तरं माणवं पारसिवियन्तेवासिं तुण्हीभूतं मङ्कुभूतं पत्तक्खन्धं अधोमुखं पज्झायन्तं अप्पटिभानं विदित्वा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—"अञ्ञथा खो, आनन्द, देसेति पारसिवियो ब्राह्मणो सावकानं इन्द्रियभावनं, अञ्ञथा च पनानन्द, अरियस्स विनये अनु- [N. 405] त्तरा इन्द्रियभावना होति" ति।

२. अनुत्तरा इन्द्रियभावना

२. "एतस्स, भगवा, कालो; एतस्स, सुगत, कालो यं भगवा अरियस्स विनये अनुत्तरं इन्द्रियभावनं देसेय्य। भगवतो सुत्वा भिक्खू [R. 299] धारेस्सन्ती" ति।

"तेनहानन्द, सुणाहि, साधुकं मनसि करोहि; भासिस्सामी" ति। "एवं, भन्ते" ति खो आयस्मा आनन्दो भगवतो पच्चस्सोसि। भगवा एतदवोच—

साधना का साधक अन्धा हो जायगा, बहरा हो जायगा; क्योंकि, उत्तर! अन्धा आँख से रूप नहीं देखता, बहरा कान से शब्द नहीं सुनता।"

(भगवान द्वारा) ऐसा कहे जाने पर, वह पाराशिवि-अन्तेवासी उत्तर माणवक चुपचाप, गूंगा सा बना हुआ, गर्दन झुकाये, मुँह लटकाये, न कुछ सोचता, प्रतिभाहीन सा बैठा रह गया।

तब भगवान् ने पाराशिवि का अन्तेवासी उत्तर माणवक को चुप-चाप…बैठा देखकर आयुष्मान् आनन्द से कहा—"आनन्द! यह पाराशिविय ब्राह्मण अपने शिष्यों के इन्द्रियसाधना के विषय में अन्यथा उपदेश करता है और हमारे आर्यविनय में यह अद्वितीय इन्द्रियभावना दूसरी ही विधि से बतायी गयी है।

२. अद्वितीय इन्द्रियसाधना

"भगवन्! इसी का प्रसङ्ग है। (अतः उचित) समय भी है कि आप (अपने श्रीमुख से) उस अद्वितीय आर्य (बौद्धसम्मत) इन्द्रियभावना का निरूपण करें। आप से सुनकर ही भिक्षुजन उसे यथातथरूप से अपने मन में धारण करेंगे"।

"तो, आनन्द! सुनो, उसे ठीकसे मन में बैठा लो। बताता हूँ।"

"ठीक है भन्ते!" कहकर आनन्द ने भगवान् की आज्ञा स्वीकार की। भगवान् बोले—

३. "कथं पनानन्द, अरियस्स विनये अनुत्तरा इन्द्रियभावना होति? इधानन्द, भिक्खुनो चक्खुना रूपं दिस्वा उप्पज्जति मनापं, उप्पज्जति अमनापं, उप्पज्जति मनापामनापं। सो एवं पजानाति—'उप्पन्नं खो मे इदं मनापं, उप्पन्नं अमनापं, उप्पन्नं मनापामनापं। तं च खो सङ्खतं ओळारिकं पटिच्चसमुप्पन्नं। एतं सन्तं एतं पणीतं यदिदं—उपेक्खा' ति। तस्स तं उप्पन्नं मनापं उप्पन्नं अमनापं उप्पन्नं मनापामनापं निरुज्झति; उपेक्खा सण्ठाति। सेय्यथापि, आनन्द, चक्खुमा पुरिसो उम्मीलेत्वा वा निमीलेय्य, निमीलेत्वा वा उम्मीलेय्य; एवमेव खो, आनन्द, यस्स कस्सचि [B. 349] एवंसीघं एवंतुवटं एवंअप्पकसिरेन उप्पन्नं मनापं उप्पन्नं अमनापं उप्पन्नं मनापामनापं निरुज्झति, उपेक्खा सण्ठाति—अयं वुच्चतानन्द, अरियस्स विनये अनुत्तरा इन्द्रियभावना चक्खुविञ्ञेय्येसु रूपेसु।

४. "पुन च परं, आनन्द, भिक्खुनो सोतेन सद्दं सुत्वा उप्पज्जति मनापं, उप्पज्जति अमनापं, उप्पज्जति मनापामनापं। सो एवं पजानाति—'उप्पन्नं खो मे इदं मनापं, उप्पन्नं अमनापं, उप्पन्नं मनापामनापं। तं च खो सङ्खतं ओळारिकं पटिच्चसमुप्पन्नं। एतं सन्तं एतं पणीतं यदिदं--उपेक्खा' ति। तस्स तं उप्पन्नं मनापं उप्पन्नं अमनापं उप्पन्नं मनापामनापं निरुज्झति; उपेक्खा सण्ठाति। सेय्यथापि, आनन्द, बलवा पुरिसो अप्पकसिरेनेव अच्छरिकं पहरेय्य; एवमेव खो, आनन्द, यस्स कस्सचि

---

३. "आनन्द! आर्यों के विनय (धर्मसाधना-पद्धति) में इन्द्रियसाधना कैसे बतायी गयी है? यहाँ, आनन्द! किसी साधक भिक्षु को चक्षु से कोई रूप देखकर प्रिय लगता है, कोई अप्रिय और कोई प्रिय-अप्रिय लगता है। तब वह समझता है 'मुझे जो प्रिय उत्पन्न हुआ है या अप्रिय उत्पन्न हुआ है या प्रिय-अप्रिय उत्पन्न हुआ है वह संस्कृत है, औदारिक है प्रतीत्यसमुत्पन्न है (कारणजनित है')। अतः अच्छा यही रहेगा कि इसके प्रति उपेक्षा दिखायी जाय। इससे उसका उत्पन्न वह प्रिय, अप्रिय एवं प्रियाप्रिय निरुद्ध हो जाता है और वहाँ उपेक्षामात्र रह जाती है। जैसे, आनन्द! स्वस्थ पुरुष आँख खोलता भी है मूँदता भी है, उसे कोई कष्ट नहीं होता; उसी तरह अच्छे साधक के ये प्रिय, अप्रिय या प्रियाप्रिय विषय जितनी जल्दी उत्पन्न होते हैं उसी तरह निरुद्ध भी हो जाते हैं, अन्त में वहाँ उपेक्षामात्र अवशिष्ट रहती है।

४. "फिर, आनन्द! भिक्षु को श्रोत्र से शब्द सुन कर प्रिय, अप्रिय···उपेक्षामात्र रह जाती है। आनन्द! जैसे कोई अनायास ही चुटकी (अच्छरिका) बजावे, उसी तरह, आनन्द! अच्छे साधक के ये प्रिय, अप्रिय···उपेक्षामात्र अवशिष्ट रहती

एवंसीघं एवंतुवटं एवंअप्पकसिरेन उप्पन्नं मनापं अमनापं [N. 406] उप्पन्नं मनापामनापं निरुज्झति, उपेक्खा सण्ठाति—अयं वुच्चतानन्द, अरियस्स विनये अनुत्तरा इन्द्रियभावना सोतविञ्ञेय्येसु सद्देसु।

५. "पुन च परं आनन्द, भिक्खुनो घानेन गन्धं घायित्वा उप्पज्जति मनापं, उप्पज्जति अमनापं, उप्पज्जति मनापामनापं। सो एवं पजानाति--'उप्पन्नं खो मे इदं मनापं, उप्पन्नं अमनापं, उप्पन्नं मनापामनापं। तं च खो सङ्खतं ओळारिकं पटिच्चसमुप्पन्नं। एतं सन्तं एतं पणीतं यदिदं--उपेक्खा' ति। तस्स तं उप्पन्नं मनापं उप्पन्नं अमनापं उप्पन्नं मनापामनापं निरुज्झति; उपेक्खा सण्ठाति। सेय्यथापि, आनन्द, ईसकपोणे पदुमपलासे [R. 300] उदकफुसितानि पवत्तन्ति, न सण्ठन्ति, एवमेव खो, आनन्द, यस्स कस्सचि एवंसीघं एवंतुवटं एवंअप्पकसिरेन उप्पन्नं मनापं उप्पन्नं अमनापं उप्पन्नं मनापामनापं निरुज्झति, उपेक्खा सण्ठाति--अयं वुच्चतानन्द, अरियस्स विनये अनुत्तरा इन्द्रियभावना घानविञ्ञेय्येसु गन्धेसु।

६. "पुन च परं, आनन्द, जिव्हाय रसं सायित्वा उप्पज्जति मनापं, उप्पज्जति अमनापं, उप्पज्जति मनापामनापं,। सो एवं पजानाति—उप्पन्नं खो मे इदं मनापं, उप्पन्नं अमनापं उप्पन्नं मनापामनापं। तं च खो सङ्खतं ओळारिकं पटिच्चसमुप्पन्नं। एतं सन्तं एतं पणीतं यदिदं--उपेक्खा' ति। तस्स तं उप्पन्नं मनापं उप्पन्नं अमनापं उप्पन्नं मनापामनापं निरुज्झति; उपेक्खा सण्ठाति। सेय्यथापि, आनन्द, बलवा पुरिसो जिव्हग्गे [B. 350] खेळपिण्डं संयूहित्वा अप्पकसिरेन वमेय्य; एवमेव खो, आनन्द, यस्स कस्सचि एवंसीघं एवंतुवटं एवंअप्पकसिरेन उप्पन्नं मनापं उप्पन्नं अमनापं उप्पन्नं मनापामनापं निरुज्झति, उपेक्खा सण्ठाति--अयं वुच्चतानन्द, अरियस्स विनये अनुत्तरा इन्द्रियभावना जिव्हाविञ्ञेय्येसु रसेसु।

है। आनन्द! यह आर्यविनय में श्रोत्रविज्ञेय शब्दों के विषय की अद्वितीय इन्द्रिय-साधना कही जाती है।

५. "और फिर, आनन्द! किसी साधक भिक्षु को घ्राण से गन्ध का ग्रहण कर उसके प्रति प्रिय...उपेक्षामात्र रह जाती है। जैसे कि, आनन्द! पद्मपत्र में थोड़ी सी हवा से पानी के बुलबुले उठते हैं, ठहरते नहीं; उसी प्रकार...घ्राणविज्ञेय गन्धों के विषय में इन्द्रियसाधना कही जाती है।

६. और फिर, आनन्द! किसी साधक भिक्षु को जिह्वा से रस चखकर उसके प्रति...उपेक्षामात्र रह जाती है। जैसे, आनन्द! कोई बलवान् पुरुष कफपिण्ड (थूक या कफ) को जिह्वा के अग्रभाग पर जमाकर अनायास ही दूर फेंक दें; ऐसे ही इन जिह्वाविज्ञेय रसों के विषय में इन्द्रियसाधना कही जाती है।

७. "पुन च परं, आनन्द, भिक्खुनो कायेन फोट्ठब्बं फुसित्वा उप्पज्जति मनापं, उप्पज्जति अमनापं, उप्पज्जति मनापामनापं। सो एवं पजानाति—'उप्पन्नं खो मे इदं मनापं, उप्पन्नं अमनापं, उप्पन्नं मनापामनापं। [N. 407] तं च खो सङ्खतं ओळारिकं पटिच्चसमुप्पन्नं। एतं सन्तं एतं पणीतं यदिदं—उपेक्खा' ति। तस्स तं उप्पन्नं मनापं उप्पन्नं अमनापं उप्पन्नं मनापामनापं निरुज्झति; उपेक्खा सण्ठाति। सेय्यथापि, आनन्द, बलवा पुरिसो सम्मिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य, पसारितं वा बाहं सम्मिञ्जेय्य; एवमेव खो, आनन्द, यस्स कस्सचि एवंसीघं एवंतुवटं एवंअप्पकसिरेन उप्पन्नं मनापं उप्पन्नं मनापं उप्पन्नं अमनापं उप्पन्नं मनापामनापं निरुज्झति, उपेक्खा सण्ठाति—अयं वुच्चतानन्द, अरियस्स विनये अनुत्तरा इन्द्रियभावना कायविञ्ञेय्येसु फोट्ठब्बेसु।

८. "पुन च परं आनन्द, भिक्खुनो मनसा धम्मं विञ्ञाय उप्पज्जति मनापं, उप्पज्जति अमनापं, उप्पज्जति मनापामनापं। सो एवं पजानाति—"उप्पन्नं खो मे इदं मनापं, उप्पन्नं अमनापं, उप्पन्नं मनापामनापं। तं च खो सङ्खतं ओळारिकं पटिच्चसमुप्पन्नं। एतं सन्तं एतं पणीतं यदिदं—उपेक्खा' ति। तस्स तं उप्पन्नं मनापं उप्पन्नं अमनापं उप्पन्नं मनापामनापं निरुज्झति; उपेक्खा सण्ठाति। सेय्यथापि, आनन्द, बलवा पुरिसो दिवसंसन्तत्ते अयोकटाहे द्वे वा तीणि वा उदकफुसितानि निपातेय्य; दन्धो, आनन्द, उदकफुसितानं निपातो, अथ खो नं खिप्पमेव परिक्खयं परियादानं गच्छेय्य; एवमेव खो, आनन्द, यस्स कस्सचि एवंसीघं एवंतुवटं एवंअप्पकसिरेन उप्पन्नं मनापं उप्पन्नं अमनापं उप्पन्नं मनापामनापं निरुज्झति, उपेक्खा सण्ठाति—अयं वुच्चतानन्द, अरियस्स विनये अनुत्तरा इन्द्रियभावना मनोविञ्ञेय्येसु धम्मेसु। एवं खो, आनन्द, अरियस्स विनये अनुत्तरा इन्द्रियभावना होति।

---

७. और फिर, आनन्द ! भिक्षु को काया से स्प्रष्टव्य विषयों को छूकर उनके प्रति…उपेक्षामात्र रह जाती है। जैसे आनन्द ! कोई स्वस्थ पुरुष अनायास ही अपनी खुली बाँह को सिकोड़ ले, या सिकुड़ी बाँह को फैला दे, उसी प्रकार…काय-विज्ञेय स्प्रष्टव्य विषयों में इन्द्रियसाधना कही जाती है।

८. फिर, आनन्द ! किसी साधक को मन से धर्मों को जानकर उनके प्रति… उपेक्षामात्र रह जाती है। जैसे, आनन्द ! कोई बलवान् दिनभर तपे लोहे के कड़ाहे पर जल की दो-तीन बूँद डाले, आनन्द ! वहाँ दो-तीन बूँदों का पड़ना क्या महत्त्व रखता है ! वे जलकी बूँदें तुरन्त ही क्षय को प्राप्त हो जाती हैं। उसी प्रकार…मनो-विज्ञेय धर्मों में इन्द्रियसाधना कही गयी है।

"इस तरह, आनन्द ! हमारे आर्यविनय में यह अद्वितीय इन्द्रियसाधना वर्णित है।

३. सेखो पाटिपदो

९. "कथञ्चानन्द, सेखो होति पाटिपदो? इधानन्द, भिक्खुनो चक्खुना रूपं दिस्वा उप्पज्जति मनापं, उप्पज्जति अमनापं, उप्पज्जति मनापामनापं। सो तेन उप्पन्नेन मनापेन उप्पन्नेन अमनापेन [B. 351] उप्पन्नेन मनापामनापेन अट्टीयति हरायति जिगुच्छति। [R. 301] सोतेन सद्दं सुत्वा ...पे०...घानेन गन्धं घायित्वा...जिव्हाय रसं सायित्वा... कायेन फोट्ठब्बं फुसित्वा...मनसा धम्मं विञ्ञाय उप्पज्जति मनापं, उप्पज्जति अमनापं, उप्पज्जति मनापामनापं। सो तेन उप्पन्नेन [N. 408] मनापेन उप्पन्नेन अमनापेन उप्पन्नेन मनापामनापेन अट्टीयति हरायति जिगुच्छति। एवं खो, आनन्द, सेखो होति पाटिपदो।

४. अरियो भावितिन्द्रियो

१०. "कथञ्चानन्द, अरियो होति भावितिन्द्रियो? इधानन्द, भिक्खुनो चक्खुना रूपं दिस्वा उप्पज्जति मनापं, उप्पज्जति अमनापं, उप्पज्जति मनापामनापं। सो सचे आकङ्खति—'पटिकूले अप्पटिकूलसञ्ञी विहरेय्यं' ति, अप्पटिकूलसञ्ञी तत्थ विहरति; सचे आकङ्खति—'अप्पटिकूले पटिकूलसञ्ञी विहरेय्यं' ति, पटिकूलसञ्ञी तत्थ विहरति; सचे आकङ्खति—'पटिकूले च अप्पटिकूले च अप्पटिकूलसञ्ञी विहरेय्यं' ति

---

३. शैक्ष्य प्रातिपद

९. आनन्द ! यह शैक्ष्य (जिसको अभी बहुत कुछ सीखना अवशिष्ट है) प्रतिपद् (मार्ग) क्या है ? यहाँ, आनन्द ! किसी भिक्षु को चक्षु से रूप (विषय) देखकर उसके प्रति प्रिय या अप्रिय भाव...उत्पन्न हो, वह उस उत्पन्न हुए प्रिय से...दुःखी हो, घबराये या घृणा करे। इस प्रकार आनन्द ! यह शैक्ष्य प्रतिपद् होती है। श्रोत्र से शब्द सुनकर...मन से धर्मों को जानकर उनके प्रति...उत्पन्न हो। वह उस उत्पन्न हुए प्रिय भाव से दुःखी हो, घबराये या घृणा करे। यों, आनन्द ! शैक्ष्यप्रतिपद् होता है।

४. निगृहीतेन्द्रिय आर्य

१०. "कैसे, आनन्द ! शैक्ष्य साधक भावितेन्द्रिय होकर 'आर्य' कहलाता है ? यहाँ, आनन्द ! किसी साधक भिक्षु को चक्षु से रूप को देखकर उसके प्रति प्रिय, अप्रिय या प्रियाप्रिय भाव उत्पन्न होता है। वह यदि चाहता है कि प्रतिकूल में अप्रतिकूल जानकर साधना करूँ तो वह वहाँ अप्रतिकूल जानते हुए साधना करता है। यदि वह चाहे तो अप्रतिकूल में प्रतिकूल जानकर साधना करता है। और यदि

अप्पटिकूलसञ्ञी तत्थ विहरति; सचे आकङ्खति—'अप्पटिकूले च पटिकूले च पटिकूलसञ्ञी विहरेय्यं' ति, पटिकूलसञ्ञी तत्थ विहरति; सचे आकङ्खति—'पटिकूलं च अप्पटिकूलं च तदुभयं अभिनिवज्जेत्वा उपेक्खको विहरेय्यं सतो सम्पजानो' ति, उपेक्खको तत्थ विहरति सतो सम्पजानो।

११. "पुन च परं, आनन्द, भिक्खुनो सोतेन सद्दं सुत्वा···पे०···घानेन गन्धं घायित्वा···जिव्हाय रसं सायित्वा···कायेन फोट्ठब्बं फुसित्वा···मनसा धम्मं विञ्ञाय उप्पज्जति मनापं, उप्पज्जति अमनापं, उप्पज्जति मनापामनापं। सो सचे आकङ्खति—'पटिकूले अप्पटिकूलसञ्ञी विहरेय्यं' ति अप्पटिकूलसञ्ञी तत्थ विहरति, सचे आकङ्खति—'अप्पटिकूले पटिकूलसञ्ञी विहरेय्यं' ति, पटिकूलसञ्ञी तत्थ विहरति; सचे आकङ्खति—'पटिकूले च अप्पटिकूले च अप्पटिकूलसञ्ञी विहरेय्यं' ति, अप्पटिकूलसञ्ञी तत्थ विहरति; सचे आकङ्खति—'अप्पटिकूले च पटिकूले च पटिकूलसञ्ञी विहरेय्यं' ति, पटिकूलसञ्ञी तत्थ विहरति; सचे आकङ्खति—पटिकूलं च [R. 302] अप्पटिकूलं च तदुभयं पि अभिनिवज्जेत्वा उपेक्खको विहरेय्यं सतो सम्पजानो' ति, उपेक्खको तत्थ विहरति सतो सम्पजानो। एवं खो, आनन्द, अरियो होति भावितिन्द्रियो।

[N. 409, B. 352] १२. "इति खो, आनन्द, देसिता मया अरियस्स विनये अनुत्तरा इन्द्रियभावना, देसितो सेखो पाटिपदो, देसितो अरियो भावितिन्द्रियो। यं खो, आनन्द, सत्थारा करणीयं सावकानं हितेसिना अनुकम्पकेन अनुकम्पं उपादाय, कतं वो तं मया। एतानि, आनन्द, रुक्खमूलानि, एतानि सुञ्ञागारानि, झायथानन्द, मा पमादत्थ, मा पच्छा विप्पटिसारिनो अहुवत्थ। अयं वो अम्हाकं अनुसासनी" ति।

वह चाहता है कि 'प्रतिकूल अप्रतिकूल—दोनों को छोड़कर स्मृतिसम्प्रजन्य युक्त होकर उपेक्षक हो साधना करूँ' तो वह वैसा करता है। इस प्रकार, आनन्द! वह भावितेन्द्रिय साधक आर्य (मुक्त) हो जाता है।

१२. "यो, आनन्द! मैने तुमको इस आर्यविनय की अद्वितीय इन्द्रियसाधना का उपदेश कर दिया। शैक्ष्य मार्ग बता दिया। भावितेन्द्रिय साधक आर्य कैसे बनता है–बता दिया। आनन्द! हितैषी कृपालु गुरु (शास्ता) द्वारा शिष्य के प्रति जो भी करणीय है, वह सब मैने (तुम्हारे लिये) कर दिया। आनन्द! (स्थान-स्थान पर) ये वृक्षों के मूल हैं, एकान्त आवास हैं, इन्हीं का आश्रय लेकर ध्यान-भावना में रत रहो। साधना के समय किसी प्रकार का प्रमाद न करना। बाद में पछताना नहीं। यही मेरा तुम्हारे लिये अनुशासन है।"

१३, इदमवोच भगवा। अत्तमनो आयस्मा आनन्दो भगवतो भासितं अभिनन्दी ति।

सळायतनवग्गो निट्ठितो पञ्चमो ॥

तस्सुद्दानं

अनाथपिण्डिको[1] छन्नो[2], पुण्णो[3] नन्दक[4]राहुला[5]।
छछक्कं[6] [7]सळायतनिकं, [8]नगरविन्देय्यसुद्धिका[9]।
इन्द्रियभावना[10] चा पि, वग्गो ओवादपञ्चमो ति ॥

उपरिपण्णासकं समत्तं ॥

तीहि पण्णासकेहि पटिमण्डितो सकलो मज्झिमनिकायो समत्तो ॥

---

१३. भगवान् ने यह कहा। आत्तमना आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् के इस भाषण का अभिनन्दन किया ॥

इन्द्रियभावनासुत्त समाप्त ॥

पाँचवाँ सळायतनवग्ग समाप्त ॥

उस का उदान

इस वर्ग में, जिसे अववादवर्ग भी कहते हैं, इन १० सूत्रों का व्याख्यान संगृहीत है—१. अनाथपिण्डिकोवाद, २. छन्नोवाद, ३. पुण्णोवाद, ४. नन्दकोवाद, ५. राहुलोवाद, ६. छछक्क, ७. सळायतनिक, ८. नगरविन्देय्य, ९. पिण्डपातपारिसुद्धि एवं १०. इन्द्रियभावना सूत्र ॥

उपरिपण्णासक नामक तृतीय भाग समाप्त ॥

तीन पञ्चाशतक से प्रतिमण्डित (अलंकृत) सम्पूर्ण मज्झिमनिकाय समाप्त ॥

ये धम्मा हेतुप्पभवा हेतुं तेसं तथागतो आह ।
तेसं च यो निरोधो एवंवादी महासमणो ॥

—आयस्मा अस्सजि

बहुजनहिताय बहुजनसुखाय

बौद्धभारती-ग्रन्थमाला

प्रधानसम्पादक : स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

१-२. तत्त्वसंग्रह, कमलशीलपञ्जिकासहित (भाग १-२) [प्रेस में]
३. प्रमाणवार्त्तिक, मनोरथनन्दिवृत्तिसहित [,,]
४. परमार्थचिन्तन, (सिद्धार्थमहाभिनिष्क्रमण नाटक) २)
५. ६-७-६. अभिधर्मकोश [भाष्य-स्फुटार्थासहित] (सम्पूर्ण) २००)
८. वादन्याय, आचार्य शान्तरक्षितकृत व्याख्यासहित एवं सम्बन्धपरीक्षा, प्रभाचन्द्रकृत व्याख्या हिन्दी अनुवाद ७५)
१०. बालावतार (पालि-व्याकरण) २०)
११. न्यायदर्शन, वात्स्यायनभाष्य एवं हिन्दीरूपान्तरसहित ६०)
१२. विसुद्धिमग्ग, हिन्दी-संक्षेपसहित (प्रथम भाग) १००)
१३. मिलिन्दपञ्ह, हिन्दी-अनुवादसहित १२५)
१४. अभिधानप्पदीपिका, (पालिशब्दकोश) ५०)
१५. पालिसद्दनिदस्सिका, (पालि-संस्कृत-हिन्दीकोश) [प्रेस में]
१६. मध्यमकशास्त्र, प्रसन्नपदा, हिन्दी-भावानुवादसहित १००)
१७. (क) पातिमोक्खसुत्त, (भिक्खुपातिमोक्ख) १०)
(ख) गुह्यसमाजतन्त्र, (वज्रयान-बौद्धतन्त्र) ७५)
१८. न्यायबिन्दुप्रकरण, विनीतदेव, धर्मोत्तर टीका सहित ७५)
१९. महायानसूत्रालङ्कार, हिन्दीभावानुवादसहित ७५)
२०. तत्त्वोपप्लवसिंह, (चार्वाकदर्शन) श्रीजयराशिभट्ट कृत ७५)
२१. बोधिचर्यावतार, पञ्जिका व्याख्या, हिन्दी-अनुवादसहित १०
२२. मज्झिमनिकाय, हिन्दी-अनुवादसहित [प्रथम भाग] ७
२३. मज्झिमनिकाय, हिन्दी-अनुवादसहित [द्वितीय भाग] १०
२४. मज्झिमनिकाय, हिन्दी-अनुवादसहित [तृतीय भाग] १००
२५. मज्झिमनिकाय, हिन्दी-अनुवादसहित [चतुर्थ भाग] १००
२६. मज्झिमनिकाय, हिन्दी-अनुवादसहित [पंचम भाग] १५०)
२७. अपोहवाद, (अपोह सिद्धान्त पर प्राचीन आचार्यों के अविकल ग्रन्थांश) १००)
२८. सच्चसंगहो, (चार आर्यसत्यों पर बुद्धवचनों का संग्रह) २०)
२९. आगमशास्त्र, (गौडपादाचार्य) हिन्दी-अनुवादसहित १००)
३०. विग्रहव्यावर्तनी, (आर्य नागार्जुन) डॉ॰ एस्॰ मुकर्जी के इंग्लिश अनुवाद सहित ७५)

बौद्धभारतीग्रन्थमाला में हिन्दी-अनुवादसहित प्रकाशित,
स्वामी द्वारिकादासशास्त्री द्वारा सम्पादित
पालिसाहित्य के अतिमहत्त्वपूर्ण दुर्लभ आकर

ग्रन्थों का विवरण

१. बालावतार (पालिव्याकरण)	२०)-
२. अभिधानप्पदीपिका (पालिशब्दकोष)	५०)-
३. पालिसद्दनिदस्सिका (पालि-संस्कृत-हिन्दी शब्दकोष)	प्रेस में
४. मिलिन्दपञ्हपालि (मिलिन्द-नागसेनसंवाद)	१२५)-
५. पातिमोक्खसुत्त (बुद्धोक्त शिक्षापद—भिक्षुनियम)	१०)-
६. विसुद्धिमग्ग (बौद्धयोग) (प्रथम भाग) [अवशिष्ट २ भागों का हिन्दी अनुवाद प्रेस में]	१००)-
७. मज्झिमनिकाय [मूलपण्णासक] (पहला भाग)	७५)-
८. ” ” [” ”] (दूसरा भाग)	१००)-
९. मज्झिमनिकाय [मज्झिमपण्णासक] (तीसरा भाग)	१००)-
१०. ” ” [” ”] (चौथा भाग)	१००)-
११. मज्झिमनिकाय [उपरिपण्णासक] (पञ्चम भाग)	१५०)-
१२. सच्चसङ्गहो [आर्यसत्यचतुष्टय पर बुद्धवचन-संग्रह)	२०)-
१३. अभिधम्मत्थसङ्गहो [विभावनी टीका एवं हिन्दी अनुवाद]	प्रेस में

•

बौद्ध भारती

पो० बॉ० 1049, वाराणसी-221 001

दूरभाष : ३३३०९४